दर्शन-दिग्दर्शन

राहुल साकृत्यायन

किताब-महल
इलाहाबाद
१९४४

प्रकाशक—किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
मूल्य १२ रु०

मुद्रक—ज० के० शर्मा
इलाहाबाद लीजनल प्रेस, इलाहाबाद

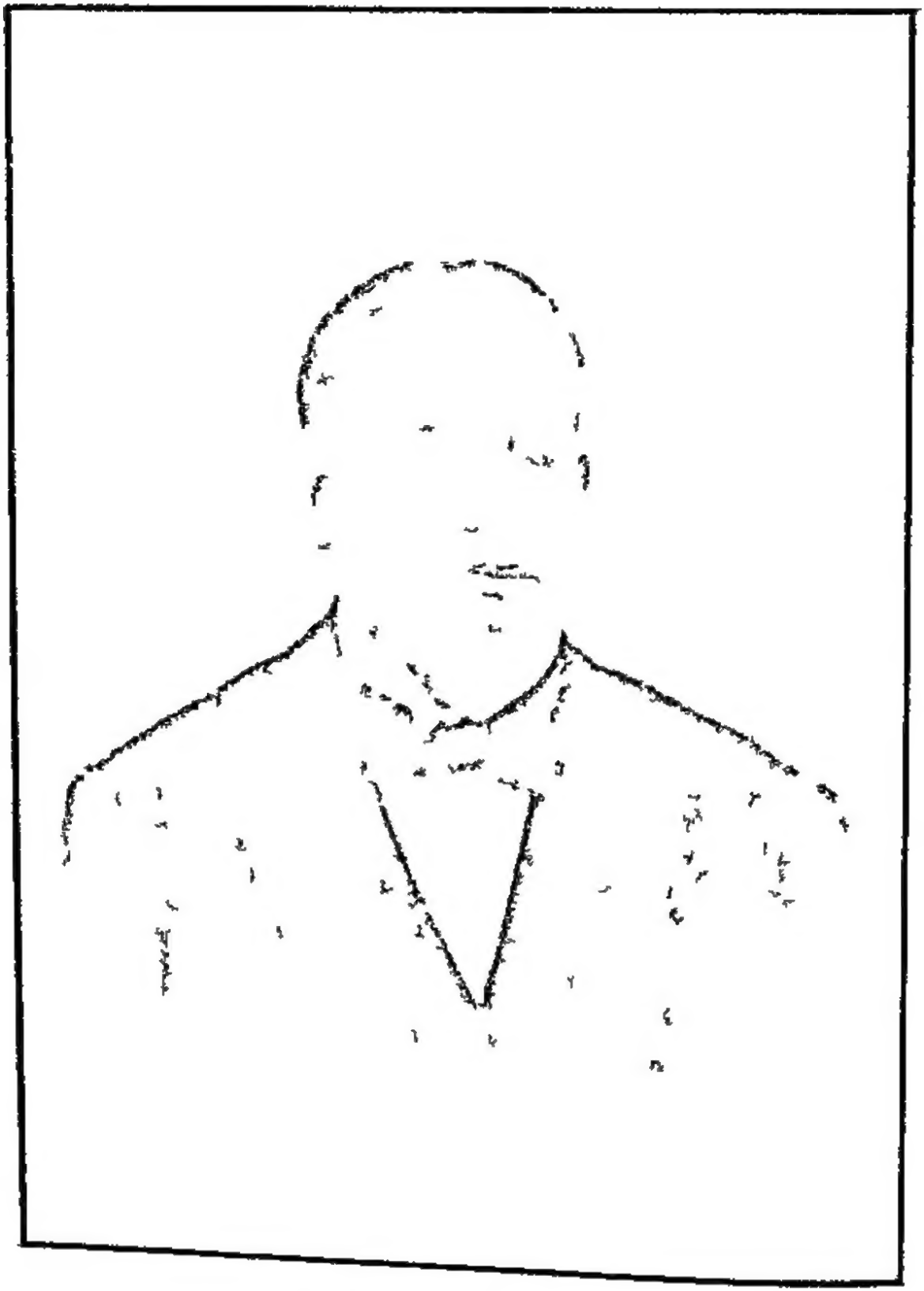

डा काशी प्रसाद जायसवाल

समर्पण

का० प्र० जायसवालकी स्नेह-पूर्ण स्मृतिमें
जिनके शब्द पुस्तक लिखते वक्त
बराबर कानोंमें गूँजते थे, और
जिन्हें सुनानेकी उत्कंठा-
में कितनी ही बार मैं
भूल जाता था, कि
सुनने वाला
चिर-निद्रा-
विलीन
है।

भूमिका

मानवका अस्तित्व पृथ्वीपर यद्यपि लाखों वर्षोंसे है, किन्तु उसके दिमाग की उड़ानका सबसे भव्य-युग ५०००-३००० ई० पू० है, जब कि उसने खेती, नहर, सौर-पंचांग आदि आदि कितने ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा समाजकी कायापलट करनेवाले आविष्कार किए। इस तरहकी मानव मस्तिष्ककी तीव्रता हम फिर १७६० ई० के बादसे पाते हैं, जब कि आधुनिक आविष्कारोंका सिलसिला शुरू होता है। किन्तु दर्शनका अस्तित्व तो पहिले युगमें था ही नहीं, और दूसरे युगमें वह एक बूढ़ा बुजुर्ग है जो अपने दिन बिता चुका है, बूढ़ा होनेसे उसकी इज्जत की जाती जरूर है, किन्तु उसकी बातकी ओर लोगोंका ध्यान तभी खिंचता है, जब कि वह प्रयोग-आश्रित चिन्तन—साइंस—का पल्ला पकड़ता है। यद्यपि इस बातको सर राधाकृष्णन् जैसे परान ढर्रेके 'धर्म प्रचारक' माननेके लिए तयार नहीं हैं, उनका कहना है—

"प्राचीन भारतमें दर्शन किसी भी दूसरी साइंस या कलाका लग्गू भग्गू न हो, सदा एक स्वतन्त्र स्थान रखता रहा है।"[1] भारतीय दर्शन साइंस या कलाका लग्गू भग्गू न रहा हो, किन्तु धर्मका लग्गू भग्गू तो वह सदासे चला आता है, और धर्मकी गुलामीसे बदतर गुलामी और क्या हो सकती है?

३०००-२६०० ई० पू० मानव-जातिके बौद्धिक जीवनके उत्कर्ष नहीं अपकर्षका समय है, इन सदियोंमें मानवने बहुत कम नए आविष्कार किए। पहिलेकी दो सहस्राब्दियोंके कड़े मानसिक श्रमके बाद १०००-७०० ई० पू० में, जान पड़ता है, मानव-मस्तिष्क पूर्ण विश्राम लेना चाहता

---

[1] Indian Philosophy, vol I, p 22

था और इसी स्वर्णावस्था का उदय होता है और इस उदय का प्रारंभ निश्चय ही हमारे देश में उसकी रक्षा का रक्षा नहीं पड़ता है। लेकिन इसका प्रभाव [illegible] था। उसका मध्याह्न नहीं है। इसका सुवर्णयुग ७०० ई० पू० से शुरू होता और चार शताब्दियों [illegible] इसका यह आरम्भ उपनिषदों तक बढ़ जाता और पुराणों में बहुत बाद अपना मार्ग [illegible] निर्माण होता है। यह [illegible] धाराएँ आपस में मिलकर [illegible] धाराओं का उद्गम बनाता है—[illegible] और एक दूसरा धाराओं [illegible] नव अवस्थाओं में आगे प्रगति करता [illegible] पाठक आगे पढ़ें।

मानव का यह सुवर्णयुग यद्यपि प्रथम और अन्तिम आविष्कारयुगों से समानता नहीं कर सकता किन्तु साथ ही यह मानव सभ्यता का [illegible] समय नहीं था। कहना चाहिए इस समय का [illegible] अंग अंग नहीं बल्कि एक [illegible] प्रगति का [illegible]। मानव-समाज की प्रगति का क्रम इस प्रकार[1] चलता आया है कि सभी देशों में इस प्रगति के एक साथ होने का कोई नियम नहीं है। ९०० ई० पू० के [illegible] है कि मिस्र, मेसोपोटामिया और सिन्ध उपत्यका के पुराने मानव [illegible] उठाने के बाद थककर बैठ गए थे लेकिन इसी काल में नवागन्तुकों के मिश्रण से नवीन जातियों—हिन्दू और यूनानी—अपना दिमाग उठाने लगे थे। [illegible] में यूनान ६०० ई० पू० तक आगे बढ़ता रहा है किन्तु हिन्दू ४०० ई० पू० के आसपास थककर बैठ जाते हैं। यूरोप में ३०० ई० पू० में ही अंधेरा छा जाता है और १४०० ई० में १६ शताब्दियों बाद नया प्रकाश (पुनर्जागरण) आने लगता है यद्यपि इसमें नए नए [illegible] लेकिन बीच की तीन शताब्दियों—९०० १२०० ई०—में मानव का [illegible] बिल्कुल बुझता नहीं बल्कि इस्लामिक शक्तियों के हाथ में [illegible] जलता रहता है और पीछे उसका आधुनिक युग अपने [illegible] प्रकाश

---

[1] मानव-समाज।

जलानेमें सफल होता है। उधर दर्शनकी भारतीय शाखा ४०० ई० पू०की बादकी चार शताब्दियोंमें राखकी ढेरमें चिंगारी बनी पड़ी रहती है। किन्तु ईसाकी पहिलीसे छठी शताब्दी तक—विशेषकर पिछली तीन शताब्दियोंमें—वह अपना कमाल दिखलाती है। यह वह समय है, जब कि पश्चिममें दर्शनकी अवस्था अन्धेर रही है। नवासे बारहवीं सदी तक भारतीय दर्शन इस्लामिक दर्शनका समकालीन ही नहीं समकक्ष रहता है किन्तु उसके बाद वह ऐसी चिर समाधि लेता है, कि आजतक भी उसकी समाधि खुली नहीं है। इस्लामिक दर्शनके अवसानके बाद यूरोपीय दर्शनकी भी यही हालत हुई होती, यदि उसने सोलहवीं सदीमें[1] धर्मसे अपनेको मुक्त न किया होता।—सोलहवीं सदी यूरोपमें स्कोलास्तिक—धर्मपोषक—दर्शनका अन्त करती है, किन्तु भारतमें एकके बाद स्कोलास्तिक दार्शनिक पैदा होते रहे हैं और दर्शनकी इस दासताको वह गर्वकी बात समझते हैं। यह उनकी समझमें नहीं आता, कि साइंस और कलाका सहयोगी बननेका मतलब है जीवित प्रकृति—प्रयोग—का जबर्दस्त आश्रय ग्रहण कर अपनी सर्जनशक्तिको बढ़ाना, जो दर्शन उससे आजादी चाहता है, वह बुद्धि जीवन और खुद आजादीसे भी आजादी चाहता है।

विश्वव्यापी दर्शनकी धाराको देखनेसे मालूम होगा कि वह राष्ट्रीयकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय ज्यादा है। दार्शनिक विचारोंके ग्रहण करनेमें उसने कहीं ज्यादा उदारता दिखलाई जितना कि धर्मने एक दूसरे देशके धर्मोंको स्वीकार करनेमें। यह कहना गलत होगा, कि दर्शनके विचारोंके पीछे आर्थिक प्रश्नोंका कोई लगाव नहीं था तो भी धर्मोंकी अपेक्षा वह बहुत कम एक राष्ट्रके स्वार्थको दूसरेपर लादना चाहता रहा, इसीलिए हम जितना गंगा-आमू-दजला और नालंदा-बुखारा-बगदाद-कार्दोवाका स्वतंत्र स्नेहपूर्ण समागम दर्शनोंमें पाते हैं उतना साइंसके क्षेत्रमें अलग नहीं पाते। हमें अफसोस है, समय और साधनके अभावसे हम चीन-जापानकी दार्शनिक

---

[1] देखिए परिशिष्ट "दार्शनिकोंका काल क्रम"।

धाराका नहीं है सकें किंतु वैसा होनेपर भी इस निष्कर्षमें तो कोई अन्तर नहीं पड़ता कि दर्शनशास्त्रमें राष्ट्रीयताकी तान छेड़नेवाला गुरु धोखेमें है और दूसरोंको धोखेमें डालना चाहता है।

मैंने यहाँ दर्शनका विस्तृत भूगोलके मानचित्रपर एक पीढ़ीके बाद दूसरी पीढ़ीका सामने रखते हुए देखनेकी कोशिश की है। मैं इसमें कितना सफल हुआ हूँ इसे कहनेका अधिकारी मैं नहीं हूँ। किन्तु मैं इतना जरूर समझता हूँ कि दर्शनके समझनेका यही ठीक तरीका है और मुझे अफसोस है कि अभी तक किसी भाषामें दर्शनका इस तरह अध्ययन करनेका प्रयत्न नहीं किया गया है।—लेकिन इस तरीकेकी उपेक्षा ज्यादा समय तक नहीं की जा सकेगी यह निश्चित है।

पुस्तक लिखनेमें जिन ग्रंथोंसे मुझे सहायता मिली है उनकी तथा उनके लेखकोंकी नामावली मैंने पुस्तकके अन्तमें दे दी है। उन ग्रंथोंका मैं जितना ऋणी हूँ उसमें कृतज्ञता प्रकाशन द्वारा मैं अपनेको उऋण नहीं समझता—और वस्तुतः इस ऋणके उऋण होनेका तो एक ही रास्ता है कि हिन्दीमें दर्शनपर ऐसी पुस्तकें निकलने लगें जिनमें दर्शन 'निर्दर्शन' को कोई बात भी न कर। प्रत्येक ग्रंथकारको, मैं समझता हूँ, अपने ग्रंथके प्रति यही भाव रखना चाहिए।—अमरता? बहुत भारी भ्रमके सिवा और कुछ नहीं है।

पुस्तक लिखनेमें पुस्तकों तथा आवश्यक सामग्री सुलभ करनेमें भदन्त आनन्द कौसल्यायन और पंडित उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्य रत्नने सहायता की है। शिष्टाचारके नाते ऐसे आत्मीयोंको भी धन्यवाद देता हूँ।

सेंटल जेल हजारीबाग
२५-३-१९४२

राहुल सांकृत्यायन

दर्शन-दिग्दर्शन

विषय-सूची

१. यूनानी दर्शन

प्रथम अध्याय

		पृष्ठ
	यूनानी दर्शन	३
§१	तत्त्व जिज्ञासु युनिक	४
§२	बुद्धिवाद	५
	पिथागोर	५
१	अद्वैतवाद	६
(१)	क्सेनाफन	७
(२)	परमेनिद	७
(३)	जेना (एलियातिक)	८
२	द्वैतवाद	८
(१)	हेराक्लितु	८
(२)	अनक्सागोर्	११
(३)	एम्पदाक्ल्	११
(४)	दमाक्रितु	११
३	सोफीवाद	१३
३	यूनानी दर्शनका मध्याह्न	१४
१	यथार्थवादी सुकरात	१४
२	बुद्धिवादी अफलातू	१६
३	वस्तुवादी अरस्तू	२२
(१)	तात्त्विक विचार	२४
(२)	ज्ञान	२७
§४	यूनानी दर्शनका अन्त	२९
१	एपीकुरीय भौतिकवाद	३०
	एपीकुर	३१
२	स्तोइकोंका शारीरक (ब्रह्म)-वाद	३१
	जनो	३२
३	सन्देहवाद	३४
	पिरहो	३४
	ईश्वर-खंडन	३५
४	नवीन-अफलातूनी दर्शन	३७
५	अगस्तिन	४२

२. इस्लामिक दर्शन

द्वितीय अध्याय

		पृष्ठ
§१	इस्लाम	४७
१	पैगंबर मुहम्मद	४८

	पृष्ठ
(१) जीवनी	४८
(२) नई आर्थिक व्यवस्था	५१
२ पगबरख उत्तराधिकारी	५४
३ अनयायियोंमें पहिली फूट	५५
४ इस्लामी सिद्धान्त	५६
तृतीय अध्याय	**६०**
§ १ अरस्तूके ग्रंथों का पुन प्रचार	६०
१ अरस्तूके ग्रंथोंका गति अरस्तूका पुन पठन पाठन	६०
§ २ यूनानी दार्शनिकों का प्रवास और दर्शनानुवाद	६३
१ यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास	६३
मजहब	६३
२ यूनानी दर्शन-ग्रंथोंके ईरानी तथा सुरियानी अनुवाद	६४
(१) ईरानी (पह्लवी) भाषामें अनुवाद	६५
[जर्मनवाद (ईरानी नास्तिकवाद)]	६५
(२) सुरियानी (सिरिया की भाषा) में अनुवाद	६७
(क) निसिबी (सिरिया)	६६
(ख) इरानी सीरा	६७
३ यूनानी दर्शन ग्रंथों के अरबी अनुवाद	६८
(१) अरबी-काल	७०
(२) समरकन्द बाद निसबी अनुवाद	७२
(३) अरबी अनुवाद	७३
चतुर्थ अध्याय	
§ १ इस्लामी मतभेद	७७
१ फिर्का या धर्ममीमांसकोंका जोर	७५
२ मत भेदोंका प्रारम्भ	७७
(१) जबर (पुराने मीमांसा)	७७
(२) जाब्र कर्म करनेमें स्वतन्त्र	७८
(३) ईश्वर निर्गुण	७८
(४) अल्लाहमवाद (आ लिना)	७८

	पृष्ठ
§ २ इस्लामके दार्शनिक सम्प्रदाय	७९
१ मोतजला सम्प्रदाय	७९
(१) जीव कर्म स्व तत्त्व	७९
(२) इश्वर सिफ भला इसका स्रा	७९
(३) ईश्वर निर्गुण	८०
(४) ईश्वरकी सर्वशक्ति मत्ता सीमित	८०
(५) ईश्वरीय चमत्कार गलत	८०
(६) जगत् अनादि नही सादि	८०
(७) कुरान भी अनादि नही सादि	८१
(८) इस्लामिक वाद शास्त्रके प्रवर्त्तक	८१
(९) मोतजला आचार्य	८२
(क) अल्लाफ	८२
(ख) नज्जाम	८३
(ग) जहीज	८४
(घ) मुअम्मर	८४
(ङ) अबूहाशिम वस्री	८४
२ करामी सम्प्रदाय	८५
३ अशअरी सम्प्रदाय	८५
(१) कार्यकारण नियमस इन्कार	८६
(२) कुरान ही एकमात्र प्रमाण	८७
(३) ईश्वर सर्वनियममुक्त	८७
(४) देश काल और गतिमे विच्छिन्न विन्दुवाद	८८
(५) पगम्बरका लक्षण	८९
(६) दिव्य चमत्कार	८९

पचम अध्याय

	पृष्ठ
पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (१) (शारीरक ब्रह्मवादी)	९
§ १ अजीजुद्दीन राजी	९०
(१) जीवनी	९०
(२) दार्शनिक विचार	९१
(क) जीव और शरीर	९१
(ख) पाच नित्य तत्त्व	९१
(ग) विश्वका विकास	९२
(घ) मध्यमार्गी दर्शन	९३
§ २ पवित्रसघ (=अख्वानुस्सफा)	९३
१ पूर्वगामी इब्नममून	९३
२ पवित्र-सघ	९४

पृष्ठ

(१) पवित्र-मधुरी स्थापना ९४
(२) पवित्रमधुरी प्रथा बना ९५
(३) पवित्रमधुरी सिद्धांत ९५
(क) ज्ञान प्रधान ९६
(ख) जगतकी उन्नति या नियमना-मधुरी प्रश्न मलय ९६
(ग) आठ(नौ)न्याय ९७
(घ) मानव जीव ९८
(ङ) ईश्वर (=ब्रह्म) ९८
(च) कुरानका ध्यान ९८
(४) पवित्र-मधुरी धर्म चर्या ९९
§ ३ सूफी सम्प्रदाय १००
१ सूफी शब्द
२ सूफी पथक नता १०१
३ सूफी सिद्धान्त १०२
४ सूफी योग
(१) विराग १०२
(२) एकान्त चिंतन
(३) जप
(४) मनोजय
(५) ईश्वरमें तन्मयता ,
(६) योगिप्रत्यक्ष (=मुक्ति शक्ति) ,

पृष्ठ

षष्ठ अध्याय

पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (२)

क रहस्यवाद वस्तुवाद १०५
§ १ हिन्दी (अनुवादक) १०६
१ आयती ,
२ धार्मिक विचार १०७
३ दार्शनिक विचार १०८
(१) बुद्धिवाद
(२) [illegible] विचार ,
(ग) ईश्वर ,,
(घ) जगत ,
(ग) जगत जीवन ,
(घ) मानव जीव और उसका ध्येय १०९
(२) नफ्स = विज्ञान (=बुद्धि) ,,
(क) परम विज्ञान (=ईश्वर) ,,
(ख) आपकी अन्तर्हित शक्ति ,,
(ग) जीवकी वास्तव शक्ति (=आत्मा) ,
(घ) जीवकी क्रिया ११०
(४) ज्ञानका उद्गम ११०

		पृष्ठ
(क)	ईश्वर	११०
(ख)	इन्द्रिय और मन	,
(ग)	विज्ञानवाद	१११
§ २	फाराबी	११२
१	जीवनी	,,
२	फाराबीकी कृतियाँ	११४
३	दार्शनिक विचार	११५
(१)	अफलातूं - अरस्तू समन्वय	११६
(२)	तर्क	,
(३)	सामान्य (=जाति)	
(४)	सत्त	११७
(५)	ईश्वर अद्वैत-तत्त्व	११७
(६)	अद्वैत-तत्त्वमें विश्व का विकास	११८
(७)	ज्ञानका उद्गम	११९
(८)	जीवका ईश्वरसे समागम	११९
(९)	फलित ज्योतिष और कीमियाम अविश्वास	१२०
४	आचार शास्त्र	१२१
५	राजनीतिक विचार	१२१
६	फाराबीके उत्तराधिकारी	१२३
§ ३	बू-अली मस्कविया	१२४
१	जीवनी	१२६
२	दार्शनिक विचार	१२६
३	आचार शास्त्र	१२७
(१)	पाप-पुण्य	१२७
(२)	समाजका महत्त्व	१२८
(३)	धर्म (=मजहब)	१२९
§ ४	बू अली सीना	१२९
१	जीवनी	१२९
२	कृतियाँ	१३१
३	दार्शनिक विचार	१३३
(१)	मिथ्याविश्वास विरोध	१३३
(२)	जीव प्रकृति ईश्वरवाद	१३३
(३)	ईश्वर	१३४
(४)	जीव और शरीर	१३४
(५)	हूरकी कथा	१३६
(६)	उपदेशमें अधिकारि भेद	१३७
४	अल-बेरुनी	१३८
ख	धर्मवादी दार्शनिक	१३८
§ ५	गज़ाली	१३८
१	जीवनी	१४०
२	कृतियाँ	१४९
(१)	अल्ताउल उलूम्	१५०
(क)	प्रशंसापत्र	१५०

	पृष्ठ
(१) इब्न जिब्राल	१९२
(२) दूसरे यहूदी दार्शनिक	१९२
४ मोहिदीन शासक	१९३
(१) मुहम्मद बिन तोमरत	१९३
(२) अब्दुल-मामिन्	१९५
§ २ स्पेनके दार्शनिक	१९६
१ इब्न बाजा	,,
(१) जीवनी	,,
(२) कृतियाँ	१९७
(३) दार्शनिक विचार	१९८
(क) प्रकृति जीव - ईश्वर	१९८
(a) आकृति	१९९
(b) मानवका आत्मक विकास	
(ख) ज्ञान बुद्धि-गम्य	२००
(ग) मुक्ति	२०१
(घ) 'एकान्तता उपाय	२०२
२ इब्न-तुफल	२०२
(१) जीवनी	२०३
(२) कृतियाँ	,
(३) दार्शनिक विचार	२०४
(क) बुद्धि और आत्मानुभूति	
(ख) हईका कथा	२०४
(ग) ज्ञानीकी चर्या	२०६
३ इब्न रोश्द	२०७
(१) जीवनी	
(क) सत्यके लिए यन्त्रणा	२११
(ख) मुक्ति और मत्यु	२१७
(ग) राश्दका स्वभाव	२१८
(२) कृतियाँ	२१९
(३) दार्शनिक विचार	२२४
(क) गज्जालीका खडन	,
(a) दर्शनालोचना गज्जालीकी अनधिकार चेष्टा	२२५
(b) कार्यकारण - नियम अटल	२२७
(c) धर्म दर्शन-समन्वयका ढग गलत	२२८
(ख) जगत आदि अन्त-रहित	२२९
(a) प्रकृति	२३१
(b) गति सब कुछ	२३२
(ग) जीव	,
(a) पुराने दार्शनिकोंका मत	२३३
(b) अफलातूनका मत	२३४

पृष्ठ

§ २ बुद्धिवाद (द्वैत-वाद) ३०२
१ दे-कार्त ,,
२ लाइप्निट्ज ३०४
(१) ईश्वर ३०६
(२) जीवात्मा ३०७
(३) ज्ञान ३०७

एकादश अध्याय

अठारहवीं सदी के दार्शनिक ३०९
§ १ विज्ञानवाद ३१०
१ बर्कले
२ काण्ट ३११
(१) ज्ञान ३१३
(२) निश्चय ३१४
(३) प्रत्यय ३१४
(४) सीमाकारी ३१५ ३१७
(५) वस्तु आप भीतर ३१५
(आत्मा) ३१६
§ २ सन्देहवाद ३२०
ह्यूम ,
(१) ज्ञान ३२१
(२) ज्ञान ३२२
(३) विचार
(४) कार्य-कारण
पृष्ठ
(५) ज्ञान ३२२
(६) आत्मा ३२३
(७) ईश्वर ,,
(८) धर्म ३२४
§ ३ भौतिकवाद ,,

द्वादश अध्याय

उन्नीसवीं सदी के दार्शनिक ३२७
§ १ विज्ञानवाद ३२८
१ फिख्टे ,,
(१) श्रद्धातत्त्व ३२९
(२) बुद्धिवाद ३३०
(३) आत्मा ,,
(४) ईश्वर
२ हेगेल ३३१
(१) दर्शन और उसका प्रयोजन ३३२
(२) परमतत्त्व ,,
(३) द्वन्द्वात्मक परमतत्त्व ,
(४) द्वन्द्ववाद ३३५
(५) ईश्वर
(६) आत्मा ३३६
(७) सत्य और भ्रम
(८) हेगल के दर्शन की कमजोरियाँ ३३७

पृष्ठ

३ शोपनहार ३३७
(तृष्णावाद) ३३८
§ २ द्वैतवाद ३४०
निटश्शे "
(१) दर्शन ,
(२) महान पुरुषोंकी जाति ३४१
§ ३ अज्ञेयतावाद ३४२
स्पेंसर "
(१) परमतत्त्व ३४३
(२) विकासवाद ,
(३) सामाजिक विचार "
§ ४ भौतिकवाद ३४४
१ बुख्नेर "
२ लुडविग् फ्वेरबाख "
३ कार्ल मार्क्स ३५०
(१) मार्क्सीय दर्शनका विकास ३५१
(२) दर्शन ३५४
(क) द्वंद्ववाद ३५५
(ख) विज्ञानवादकी आलोचना ३५७
(ग) भौतिकवाद और मन ३५९

त्रयोदश अध्याय

पृष्ठ

बामबी मनोवैज्ञानिक ३६१
§ १ ईश्वरवाद ३६३
१ ह्वाइटहेड "
ईश्वर ३६४
२ यूकेन ३६५
§ २ अन्-उभयवाद ३६६
१ बेर्गसां "
(१) तत्त्व ,
(२) स्थिति
(३) चेतना ३६७
(४) भौतिकतत्त्व ३६८
(५) ईश्वर
(६) दर्शन
२ बर्टरेंड रसल "
§ ३ भौतिकवाद ३६९
§ ४ द्वैतवाद ३७०
विलियम जेम्स
(१) प्रभाववाद ३७१
(२) ज्ञान ,
(३) आत्मा नहीं ३७२
(४) सृष्टिकर्त्ता नहीं
(५) द्वैतवाद ,
(६) ईश्वर ३७३

	पृष्ठ
उत्तरार्द्ध	
(भारतीय दर्शन)	
चतुर्दश अध्याय	
प्राचीन ब्राह्मण स्थान	३७७
§ १ वेद	३७८
१ आर्यों का साहित्य और काल	३७९
२ दार्शनिक विचार	३८४
(१) ईश्वर	
(२) आत्मा	३८६
(३) दर्शन	३८७
§ २ उपनिषद्	३८९
क काल	,,
ख उपनिषत्-संक्षेप	३९०
१ प्राचीनतम उपनिषदें	३९१
(१) ईश	,,
(२) छांदोग्य	३९३
(क) संवाद	,,
(ख) ज्ञान	३९४
(ग) धर्माचार	३९५
(घ) ब्रह्म	३९६
(a) दहर	
(b) भूमा	
(ङ) मुक्ति	३९७
(च) ज्ञान	३९८
(छ) नीति	,,
(b) मुक्तावस्था	
(छ) मुक्ति और परलोक	३९९
(a) आचार्य	४०१
(b) जनक	
(c) विदुषान	४०२
(d) स्वयान	४०३
(ज) श्रद्धा	४०४
(झ) वानप्रस्थाश्रम	४०५
(२) बृहदारण्यक	४०५
(क) संवाद	४०५
(ख) ब्रह्म	४०७
(ग) मुक्ति	४०८
२ द्वितीय कोटि की उपनिषदें	४१०
(१) ऐतरेय	४१०
(क) सृष्टि	
(ख) प्रज्ञान (=ब्रह्म)	४११
(२) तैत्तिरीय	४१२
(क) ब्रह्म	
(ख) मुक्तिदाता ब्रह्म	४१४
(ग) आचार्य उपदेश	,,
३ तृतीय कोटि की उपनिषदें	४१५

	पृष्ठ
(१) प्रश्न उपनिषद	४१५
(क) मिथुन (जोडा)-वाद	,,
(ख) सृष्टि	४१६
(ग) स्वप्न	,
(घ) मुक्तावस्था	४१७
(२) केन उपनिषद	,,
(३) कठ	४१८
(क) नचिकेता और यमका समागम	
(ख) ब्रह्म	४२०
(ग) आत्मा (जीव)	४२१
(घ) मुक्ति और उसके साधन	४२२
(a) सदाचार	४२२
(b) ध्यान	४२३
(४) मुडक	,,
(क) कर्मकाड विरोध	,
(ख) ब्रह्म	४२४
(ग) मुक्तिके साधन	
(a) गुरु	४२५
(b) ध्यान	,
(c) भक्ति	,,
(d) ज्ञान	४२६
(घ) व्रतवाद	,
(ङ) मुक्ति	४२७
(च) सृष्टि	,
(५) माडूक्य	४२९
(क) ओम्	,
(ख) ब्रह्म	४२९
४ चतुर्थ कालकी उपनिषदें	४३१
(१) कौषीतकि	,,
(क) ब्रह्म	,
(ख) जीव	४३२
(२) मैत्री	४३३
(क) वैराग्य	,,
(ख) आत्मा	४३४
(३) श्वेताश्वतर	,,
(क) जीव ईश्वर प्रकृति वाद	४३५
(ख) शक्तिवाद	४३७
(ग) ब्रह्म	,,
(घ) जीव	४३८
(ङ) सृष्टि	,,
(च) मुक्ति	,,
(a) योग	४३९
(b) गुरुवाद	४४०
ग उपनिषद्के प्रमुख दार्शनिक	,,
१ प्रवाहण जैवलि (दार्शनिक विचार)	४४२

जैन साहित्य

	पृष्ठ
(दर्शन)	४८८
२ अकर्मण्यतावादी म	
खलपी गोसाल	४८७
(दर्शन)	४८८
३ अक्रियावादी पूरण	
काश्यप	४८९
४ नित्यपदार्थवादी प्रक्रुध	
कात्यायन	४९०
५ अनेकान्तवादी संजय	
वेलट्ठिपुत्त	४९१
६ सर्वज्ञतावादी वर्ध	
मान महावीर	४९२
(१) शिक्षा	४९३
(क) चातुर्याम संवर	
(ख) शारीरिक कर्मोंकी	
प्रधानता	,
(ग) तीर्थंकर सर्वज्ञ	
(घ) शारीरिक तपस्या	४९४
(२) दर्शन	४९५
§ ३ गौतम बुद्ध	४९८
(क्षणिक अनात्मवादी)	
१ जीवनी	,,
२ साधारण विचार	५०१
(१) चार आर्य सत्य	५०२
(क) दुःख सत्य	,,
[पाँच उपादान स्कंध]	,
(a) रूप	५०२
(b) वेदना	५०३
(c) संज्ञा	,,
(d) संस्कार	,
(e) विज्ञान	,,
ख दुःख हेतु	,
ग दुःख विनाश	
घ दुःखविनाशका मार्ग	५०४
(क) ठीक ज्ञान	५०४
(a) ठीक दृष्टि	
(b) ठीक संकल्प	५०५
(ख) ठीक आचार	५०५
(a) ठीक वचन	,
(b) ठीक कर्म	,
(c) ठीक जीविका	,
(ग) ठीक समाधि	,
(a) ठीक प्रयत्न	,
(b) ठीक स्मृति	५०६
(c) ठीक समाधि	,,
(२) जननवाद	५०७
(३) दुःख विनाशके मार्ग	
की त्रुटियाँ	५०९
३ दार्शनिक विचार	५१०
(१) क्षणिकवाद	
(२) प्रतीत्यसमुत्पाद	५१२
(३) अनात्मवाद	५१६

	पृष्ठ
(६) अभौतिकवाद	५१८
(७) अनात्मवाद	५२०
(८) [illegible]	[illegible]
(क) [illegible]	५२८
(७) विचार [illegible]	५३१
(८) [illegible]	५३२
(९) निर्वाण	
४ बुद्धकालीन और [illegible] समाज व्यवस्था	[illegible]
§ ४ बुद्धके पूर्ववर्ती दार्शनिक	५४०
क बुद्धि	
ख [illegible]	५४३
१ सामाजिक परिस्थिति	
२ [illegible]	
[illegible]	५४५
३ [illegible]	५४६
४ दार्शनिक विचार	५४८
(१) [illegible]	
(२) कर्म या पुनर्जन्म	५५१
(३) नाम और रूप	५५५
(४) निर्वाण	

	पृष्ठ
सोलहवाँ अध्याय	
अनीश्वरवादी दर्शन	
[illegible]	५५७
क [illegible]	"
ख [illegible]	५६०
[illegible]	५६२
§ १ अनात्म अभौतिकवादी [illegible] दर्शन	"
१ [illegible]	"
२ [illegible]	"
३ [illegible]	५६३
४ [illegible]	"
§ २ अनात्म अभौतिकवादी बौद्धदर्शन	"
१ [illegible]	"
२ बौद्ध [illegible]	५६४
३ नागार्जुन का शून्यवाद	५६८
(१) [illegible]	"
(२) [illegible]	
(क) शून्यता	५६९
(ख) माध्यमिक [illegible]	

	पृष्ठ
कार्के विचार	५७२
(ग) शिक्षाए	५७५
४ योगाचार और दूसर बौद्ध-दर्शन	५७७
§ ३ आत्मवादी दर्शन	५७९
१ परमाणुवादी कणाद	,,
(क) कणादका काल	,,
(ख) यूनानी दर्शन और वैशेषिक	,
(1) परमाणुवाद	५८०
(b) सामान्य, विशेष	,
(c) द्रव्य, गुण आदि	
(ग) वैशेषिक-सूत्रका संक्षेप	५८१
(घ) धर्म और सदाचार	५८३
(ङ) दार्शनिक विचार	५८४
(क) पदार्थ	,
(a) द्रव्य	५८५
(b) गुण	,
(c) कर्म	५८६
(d) सामान्य	५८७
(e) विशेष	५८८
(f) समवाय	,,
(ख) द्रव्य	,,
(a) काल	,,
(b) दिशा	५८९
(c) आत्मा	५८९
(d) मन	,,
(ग) अन्य विषय	५९०
(a) अभाव	,,
(b) नित्यता	५९१
(c) प्रमाण	,,
(d) ज्ञान और मिथ्या ज्ञान	५९२
(e) ईश्वर	,
२ अनेकान्तवादी जैन दर्शन	५९३
(१) ज्ञान और धर्म	५९४
(२) तत्त्व	५९५
(३) पाँच अस्तिकाय	,
(क) जीव	,,
(a) संसारी	५९७
(b) मुक्त	,
(ख) धर्म	,
(ग) अधर्म	,,
(घ) पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)	५९८
(ङ) आकाश	
(४) सात तत्त्व	,
(क ख) जीव अजीव	,,
(ग) आस्रव	,,
(घ) बंध	,,

	पृष्ठ
(ङ) संवर	५९९
(a) गुप्ति	
(b) समिति	'
(च) निर्जर	
(छ) बन्ध	६००
(ज) नौ तत्त्व	
(झ) पुण्य	'
(ञ) पाप	'
(६) मुक्तिके साधन	
(क) ज्ञान	
(ख) श्रद्धा	'
(ग) चारित्र	
(घ) भावना	६०१
(७) अनीश्वरवाद	
३ शब्दवादी जैमिनि	६०२
(१) मीमांसाशास्त्रका प्रयोजन	'
(२) मीमांसा-सूत्रोंका संग्रह	६०५
(३) दार्शनिक विचार	६०६
(क) वेद स्वतः प्रमाण	६०८
(a) विधि	६१०
(b) अर्थवाद	,,
(ख) अन्य प्रमाण	६१२
(ग) शब्द	,,

	पृष्ठ
सप्तदश अध्याय	
ईश्वरवादी दर्शन	
§१ बुद्धिवादी न्यायकार अक्षपाद	६१५
१ अक्षपादकी जीवनी	,,
२ न्यायसूत्रका विषय संक्षेप	६१७
३ अक्षपादके दार्शनिक विचार	६२१
क प्रमाण	६२२
(१) प्रमाण	,,
(२) प्रमाणोंकी संख्या	६२३
(क) प्रत्यक्ष प्रमाण	६२४
(ख) अनुमान प्रमाण	६२५
(ग) उपमान प्रमाण	६२६
(घ) शब्द प्रमाण	६२७
ख कुछ प्रमेय	६२९
(१) मन	'
(२) आत्मा	६३०
(३) ईश्वर	६३१
४ अक्षपादके धार्मिक विचार	६३२
(१) परलोक और पुनर्जन्म	'
(२) कर्मफल	६३३

	पृष्ठ
(३) मुक्ति या अपवर्ग	६३३
(४) मुक्तिके साधन	६३४
(क) तत्त्वज्ञान	,
(ख) मुक्तिके दूसरे साधन	६३५
५ यूनानी दर्शनका प्रभाव	६३५
(१) अवयवी	६३७
(परमाणुवाद)	६३९
(२) काल	,,
(३) साधन-वाक्यके पाच अवयव	६४०
६ बौद्धोका खडन	६४१
(१) क्षणिकवाद खडन	६४२
(२) अभाव अहेतुक नहीं	६४३
(३) शून्यवाद खडन	६४४
(४) विज्ञानवाद-खडन	६४५
§२ योगवादी पतजलि	६४५
१ योगसूत्रोका सक्षप	६४७
२ दार्शनिक विचार	६४८
(१) जीव	,
(२) चित्त (=मन)	६४९
(३) चित्तकी वृत्तियाँ	
(क) प्रमाण	६५०
(ख) विपर्यय	,,
(ग) विकल्प	,
(घ) निद्रा	,,
(ङ) स्मृति	६५०
(४) ईश्वर	६५१
(५) भौतिक जगत (योगके तत्त्व)	६५२
	,,
(क) प्रधान	,,
(ख) परिवर्तन	६५३
(६) क्षणिक विज्ञान-वादका खडन	६५४
(७) योगका प्रयोजन	६५६
(क) हान (=दुःख)	६५७
(ख) हेय	,,
(ग) हानसे छूटना	,,
(घ) हानसे छूटनेका उपाय	,,
३ योग साधनाए	६५८
(१) यम	,
(२) नियम	,,
(३) आसन	,,
(४) प्राणायाम	,
(५) प्रत्याहार	,,
(६) धारणा	६५९
(७) ध्यान	,,
(८) समाधि	,
§३ शब्द प्रमाणक ब्रह्म-वादी बादरायण	,,
१ बादरायणका काल	,,

	पृष्ठ
२ वेदान्त-साहित्य	६६०
३ वेदान्त-सूत्र	६६२
४ वेदान्तका प्रयोजन उपनिषदोंका समन्वय	६६३
(विरोध परिहार)	६६५
(१) प्रधानको उपनिषद् मूलकारण नहीं मानता	
(२) जीव भी मूलकारण नहीं	६६६
(३) जगत और जीव ब्रह्मके शरीर	६६८
(४) उपनिषदोंमें स्पष्ट और अस्पष्ट जीव वाची शब्द भी ब्रह्मके लिए प्रयुक्त	६६९
५ बादरायणके दार्शनिक विचार	६७१
(१) ब्रह्म उपादान कारण	
(२) ब्रह्म सृष्टिकर्त्ता	६७३
(३) जगत	६७४
(४) जीव	६७५
(क ख) नित्य और चेतन	,,
(ग) अणु स्वरूप आत्मा	,,
(घ) कर्त्ता	६७६
(ङ) ब्रह्मका अंश	६७६
(च) जीव ब्रह्म नहीं है	६७७
(छ) जीवके साधन	,,
(ज) जीवकी अवस्थाएं	
(झ) कर्म	६७८
(ञ) पुनर्जन्म	,,
(५) मुक्ति	६७९
(क) मुक्तिके साधन	,,
(a) ब्रह्मविद्या	,,
(b) कर्म	६८०
(c) उपासना	६८१
(ख) मुक्तकी अन्तिम यात्रा	
(ग) मुक्तका वैभव	६८२
(६) वेद नित्य है	६८३
(७) शास्त्रपर अत्याचार	
(क) बादरायणकी दुनिया	६८४
(ख) प्रतिक्रियावादी वर्गका समर्थन	६८५
(ग) बादरायणीयोंका भी वही मत	६८७
६ दूसरे दर्शनोंका खंडन	६८८
क ऋषिप्रोक्त दर्शनोंका खंडन	६८९
(१) सांख्य-खंडन	,,

		पृष्ठ
(२)	योग-खंडन	६९०
ख	अन् ऋषि प्रोक्त दर्शन-खंडन	६९१
(क)	ईश्वरवादी दर्शन खंडन	,
(१)	पाशुपत खंडन	
(२)	पांचरात्र-खंडन	६९२
(ख)	अनीश्वरवादी दर्शन खंडन	६९४
(१)	वैशेषिक-खंडन	,
(२)	जैन दर्शन खंडन	६९६
(३)	बौद्ध-दर्शन खंडन	६९७
(क)	वैभाषिक-खंडन	,
(ख)	सौत्रान्तिक-खंडन	७०
(ग)	योगाचार-खंडन	,
(घ)	माध्यमिक-खंडन	७०१

अष्टादश अध्याय

		पृष्ठ
	भारतीय दर्शनका चरम विकास	७०२
§ १	असंग	,,
१	जीवनी	७०३
२	असंगके ग्रंथ	७०४
	योगाचार भूमि (विषय-सूची) टि० ७०५ १४	
३	दार्शनिक विचार	७१५
(१)	ज्ञेय विषय	७१६
(क)	सत्	,
(ख)	असत्	,,
(ग)	अस्तित्व	७१७
(घ)	नास्तित्व	
(२)	विज्ञानवाद	७१८
(क)	आत्म विज्ञान	,
(ख)	पांच इन्द्रिय विज्ञान	,
(a)	चक्षु विज्ञान	७१९
(b c)	श्रोत्र आदि विज्ञान	
(ग)	मन विज्ञान	७२०
	(मनकी च्युति तथा उत्पत्ति)	७२१
(a)	च्युति	,,
	(अन्तराभव)	७२२
(b)	उत्पत्ति	
(३)	अनित्यवाद और प्रतीत्य समुत्पाद	७२३
(४)	हेतु विद्या	७२४
(क)	वाद	७२५
(ख)	वाद-अधिकरण	,
(ग)	वाद अधिष्ठान (आठ साधन)	७२६
(a)	प्रतिज्ञा	,
(b)	हेतु	,
(c)	उदाहरण	,

	पृष्ठ
(d) सारूप्य	७२६
(e) वैरूप्य	७२७
(f) प्रत्यक्ष	
(g) अनुमान	७२८
(h) आप्तागम	७२९
(घ) वाद प्रकार	
(ङ) वाद निग्रह	
(च) वाद निवारण	,
(छ) वाद बहुकर बातें	
(ज) परमत-खंडन	७३०
(क) हेतुफल सद्वाद	
(ख) अभिव्यक्तिवाद	,,
(ग) भूतभविष्य सद्वाद	७३१
(घ) आत्मवाद	७३२
(ङ) शाश्वतवाद	,,
(च) पूर्वकृत हेतुवाद	७३३
(छ) ईश्वरादि कर्तृत्ववाद	
(ज) हिंसा धर्मवाद	७३४
(झ) अज्ञानान्तिकवाद	,
(ञ) अमराविक्षेपवाद	,
(ट) अकृतवाद	,
(ठ) उच्छेदवाद	
(ड) नास्तिकवाद	७३५
(ढ) अग्रवाद	,,
(ण) शुद्धिवाद	,
(त) कौतुकमंगलवाद	७३६

	पृष्ठ
४ ग्रंथ विचार	७३६
(१) स्कंध	
(क) रूप या द्रव्य	,,
(ख) वेदना-स्कंध	७३७
(ग) संज्ञा-स्कंध	,,
(घ) संस्कार-स्कंध	,,
(ङ) विज्ञान-स्कंध	,,
(२) परमाणु	,
§ २ दिङ्नाग	७३८
§ ३ धर्मकीर्त्ति	७४०
१ जीवनी	७४१
२ धर्मकीर्त्ति के ग्रंथ (प्रमाणवार्तिक)	७४२ ७४५
३ धर्मकीर्त्ति का दर्शन	७४८
(१) तत्कालीन दार्शनिक परिस्थिति	७४९
(२) तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति	७५१
(३) विज्ञानवाद	७५४
(क) विज्ञान ही एक मात्र तत्त्व	७५५
(ख) चेतना और भौतिक तत्त्व विज्ञान के ही दो रूप	,
(४) क्षणिकवाद	७५७

	पृष्ठ
(५) परमाथ सत्की व्याख्या	७५८
(६) नाश अहेतुक होता है	७५९
(७) कारण-समूहवाद	७६२
(८) प्रमाणपर विचार	७६३
(प्रमाण-संख्या)	७६४
(क) प्रत्यक्ष प्रमाण	७६५
(a) इन्द्रिय प्रत्यक्ष	
(b) मानस प्रत्यक्ष	७६६
(c) स्वसंवेदन प्रत्यक्ष	७६७
(d) योगि प्रत्यक्ष	७६८
(प्रत्यक्षाभास)	७६९
(ख) अनुमान प्रमाण	७७०
(a) अनुमानकी आवश्यकता	७७१
(b) अनुमान-लक्षण (प्रमाण दो ही)	
(c) अनुमानके भेद	७७२
(d) हेतु-धर्म	
(९) मन और शरीर	७७३
(क) एक दूसरेपर आश्रित	
(ख) मन शरीर नहीं	७७४
(ग) मनका स्वरूप	७७६
४ दूसरे दार्शनिकोंका खंडन	७७७
(१) नित्यवादियोंका सामान्य रूपसे खंडन	७७७
(क) नित्यवाद-खंडन	
(ख) आत्मवाद खंडन	७७८
(a) नित्य आत्मा नहीं	७७९
(b) नित्य आत्माका विचार मानी बुराइयोंकी जड़	७८०
(ग) ईश्वर-खंडन	७८१
(२) न्याय-वैशेषिक-खंडन	७८३
(क) द्रव्य-गुण आदिका खंडन	७८४
(ख) सामान्य-खंडन	७८६
(ग) अवयवी-खंडन	७९०
(३) सांख्यदर्शन-खंडन	७९२
(४) मीमांसा-खंडन	७९५
(क) प्रत्यभिज्ञा-खंडन	७९६
(ख) शब्दप्रमाण-खंडन	
(a) अपौरुषेयता फजूल	
(b) अपौरुषेयताकी आड़में कुछ पुरुषोंका महत्त्व बढ़ाना	७९९
(c) अपौरुषेयतासे वेदके अर्थका अनर्थ	७९९
(d) एक बात सच होनेसे सारा सच नहीं	८००

	पृष्ठ
(e) शब्दकमाप्रमाणता	८०१
(५) अनुवादखंडन	८०२
(६) नव अनेकान्तवाद खंडन	८०३

एकोनविंश अध्याय

गौडपाद और शंकर

सामाजिक परिस्थिति	८०५
§ १ गौडपाद	८०९
१ जीवनी	
२ कृतियाँ	,
३ दार्शनिक विचार	८११
§ २ शंकराचार्य	८१२
१ जीवनी	
२ दार्शनिक विचार	८१
(१) शब्द स्वतः प्रमाण	८१
(२) ब्रह्म ही एक सत्य	
(३) जीव और अविद्या	८१
(४) जगत मिथ्या	८१
(५) माया	
(६) मुक्ति	८१
(७) प्रच्छन्न बौद्ध	८१
परिशिष्ट १	८२
२	८२
३	८२
४	८३
५	८४

पूर्वार्ध

१—यूनानी दर्शन

दर्शन-दिग्दर्शन

प्रथम अध्याय

१—यूनानी दर्शन

यूनान या यवन एक प्रदेशके कारण पड़ा सारे देशका नाम है, जिस तरह कि सिन्धुसे हिन्दुस्तान और पारसस पारस्य (ईरान)। वस्तुतः यवन या यवन उन पुरियों (अथेन्स आदि)का नाम था, जो कि क्षुद्र-एसिया (आधुनिक एसियाई तुर्की) और यूरोपके बीचके समुद्रमें पड़ती थीं। इन पुरियोंके नागरिक नाविक-जीवन और व्यापारमें बहुत कुशल थे और इसके लिये वे दूर-दूर तककी सामुद्रिक और स्थलीय यात्रायें करते रहते थे। ईसापूर्व छठी-सातवीं शताब्दियोंमें इन यवनी पुरियोंकी यह सरगर्मी ही थी, जिससे बाहरी दुनियाको इनका पता लगा और उन्हींके नामपर सारा देश यवन या यूनान कहा जाने लगा।

यूनान उस वक्त व्यापारके लिये ही नहीं, शिल्प और कलाके लिये भी विख्यात था और उसके दक्ष कारीगरोंके हाथोंकी बनी चीजोंकी बहुत माँग थी। यवन व्यापारी दूसरे देशोंमें जाकर, सिर्फ सौदेका ही परिवर्तन नहीं करते थे, बल्कि विचारोंका भी दान आदान करते थे जो कि ईसा पूर्वकी तीसरी-दूसरी सदियोंके कालों आदि गुफाओंमें अंकित उनके बौद्ध मठोंके लिये दिये दानोंसे सिद्ध है। किन्तु यह पीछेकी बात है जिस समयकी बात हम कह रहे हैं, उस समय मिस्र, बाबुलकी सभ्यतायें बहुत पुरानी और सम्माननीय समझी जाती थीं। यवन सौदागरोंने इन पुरानी

इन पुराने यूनिक दार्शनिकोंमें हम एक खास बात यह देखते हैं कि वह यह प्रश्न नहीं उठाते, कि इन तत्त्वोंको किसने बनाया ? उनका प्रश्न है 'ये कैसे बने ?' भारतमें इनके समकालीन चार्वाक और बुद्धको भी किसी बनानेवाले विधाताके प्रश्नको नहीं छेड़ते देखते हैं। इन यूनिक दार्शनिकोंके लिए जीवन महाभूतसे अलग चीज न थी, जिसके लिए कि एक पृथक् चालक चेतनशक्तिकी जरूरत हो। गरजते-बादल, चलती-नदी, लहराता-समुद्र, हिलता-वृक्ष कांपती-पृथ्वी उनको निर्जीव नहीं, सजीवताको साबित करते हैं। इसीलिए भौतिक पर किसी अंतर्यामीको जानेका सवाल उन्होंने नहीं उठाया।

ये थे यूनिक दार्शनिक जिन्होंने पाश्चात्य ज्ञानके विकासमें पहिला प्रयास किया।

§ २—बुद्धिवाद

पिथागोर (५७० ५०० ई० पू०)—यूनिक दार्शनिकोंके बाद अगले पिथागोरमें हम विचारकोंको और सूक्ष्म तत्त्वोंकी ओर लगे देखते हैं। यूनिक दार्शनिक महाभूतोंके किनारे किनारे आगे बढ़ते हुए मूल-तत्त्वकी खोज कर रहे थे। अब हम पिथागोर जैसे दार्शनिकोंको किनारेसे छलांग मार कर आगे बढ़ते देखते हैं। पिथागोर भी केवल दार्शनिक न था, वह अपने समयका श्रेष्ठ गणितज्ञ था। कहते हैं वह भारत आया—या यहांके विचारोंसे प्रभावित हुआ था और यहांसे उसने पुनर्जन्मका सिद्धान्त (और शायद शारीरिक ब्रह्मको भी) लिया था। जो भी हो उपनिषद्के ऋषियोंकी भांति वह भी ठोस विश्वको छोड़कर कल्पना-जगतमें उड़ना चाहता था, यह उसके दर्शनसे स्पष्ट है। इस प्रकारके दर्शनको भारतीय परम्परामें विज्ञानवाद कहते हैं। पिथागोर मूलतत्त्वको ढूंढते हुए स्थूल व्यक्तियोंको छोड़ आकृतिकी ओर दौड़ता है। उसका कहना था महाभूत मूलतत्त्व नहीं हैं, न उनके सूक्ष्म रूप ही। मूलतत्त्व—पदार्थ—है आकृति या आकार। वीणाके तारकी लम्बाई और उसके स्वरका खास सम्बन्ध है।

एलियाके विचारक शुद्ध दार्शनिक पहलूपर ज्यादा जोर देते थे। इनका दर्शन स्थिरवाद था, अर्थात् परिवर्तन केवल स्थूल-दृष्टिसे दीखता है, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर हम स्थिर-तत्त्वों या तत्त्वोंपर ही पहुँचते हैं।

(१) क्सेनोफेन् (५७०-४८० ई० पू०)—एलियाके दार्शनिकोंमें क्सेनोफेनका देवताओंके विरुद्ध यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है— मर्त्य (मनुष्य) विश्वास करते हैं कि देवता उसी तरह अस्तित्वमें आये जैसे कि हम और देवताओंके पास भी इंद्रियाँ वाणी काया है किन्तु यदि बैल या घोड़ोंके पास हाथ होते, तो बैल देवताओंको बैलकी शक्लके बनाते घोड़े, घोड़ेकी तरह बनाते। इथोपिया (अबीसीनिया) वाले अपने देवताओंको काले और चिपटी नाकवाले बनाते हैं और थ्रेसवाले अपने देवताओंको रक्तकेश नील नेत्र वाले।[1] क्सेनोफेन ईश्वरको साकार मनुष्य जैसा माननेके बिल्कुल विरुद्ध था, तथा बहुदेववादको भी नहीं चाहता था, वह मानता था, कि 'एक महान ईश्वर है, जो काया और चिन्तन दोनोंमें मर्त्य जैसा नहीं है। वह उपनिषदके ऋषियोंकी भाँति कहता था—"सब एकमें है और एक ईश्वर है। इस वाक्यके प्रथम भागमें एकेश्वरवाद आया है और दूसरेमें ब्रह्म अद्वैत। वह अपने ब्रह्म-वादके बारेमें स्पष्ट कहता है— ईश्वर जगत है वह शुद्ध (केवल) आत्मा नहीं है, बल्कि सारी प्राणयुक्त प्रकृति (वही) है।" अर्थात् वह रामानुजसे भी ज्यादा स्पष्ट शब्दोंमें ईश्वर और जगत्की अभिन्नताको मानता था साथ ही शंकरकी भाँति प्रकृतिसे इन्कार नहीं करता था।

(२) परमेनिद् (५४० ४८० ई० पू०)—एलियाके दार्शनिकोंमें दूसरा प्रसिद्ध पुरुष परमेनिद् हुआ। न सत्से असत् हो सकता है और न असत्से सत्की उत्पत्ति कभी हो सकती, गोया इसी वाक्यकी प्रतिध्वनि हमें वैशेषिक[2] और भगवद्गीतामें मिलती है। इस तरह वह इस परिणामपर पहुँचा, कि जगत एक, अ-कृत, अविनाशी सत्य वस्तु है।

---

[1] "नासद सदुत्पत्ति"। [2] "नासतो विद्यते भाव" (गीता ३।१६)

गति या दूसरे जो परिवर्तन हमें जगत में दिखलाई देते हैं वह भ्रम है।

(३) जेनो (४९० ई० पू०)—एलियाका एक राजनीतिज्ञ दार्शनिक था। सभी एलियातिक दार्शनिकोंकी भाँति यह स्थिर अद्वैतवादी था। वह सम्भवतः प्रतिवाद गणित या द्वन्द्ववादका प्रयोग पहिले-पहिल प्रदर्शित किया था (यद्यपि उसका यह कदम स्थिरवादकी सिद्धि निमित्त था क्षणिक-वादके लिए नहीं) इसलिए उसका द्वन्द्ववादका पिता कहते हैं।

सारे एलियातिक दार्शनिक इन्द्रिय प्रत्यक्षको वास्तविक ज्ञानका साधन नहीं मानते थे उनका कहना था कि सत्यका साक्षात्कार चिन्तन—विज्ञान से होता है इन्द्रियाँ केवल भ्रम उत्पन्न करती हैं। वास्तविकता एक अद्वैत है जिसका साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा नहीं, चिन्तन-द्वारा ही किया जा सकता है।

एलियातिकोंका दर्शन स्थिर विज्ञान अद्वैतवाद है।

२—द्वैतवाद

अन्तिम एलियातिक चाहे स्वतः इस परिणामपर पहुँचे हों अथवा बाहरी (भारतीय) दृष्टान्तोंके प्रभावके कारण किन्तु अनेक पहिलेवाले थेल आदि दार्शनिकोंकी स्थिरता धारणा यह बहुत भिन्नता रखती थी इसमें सन्देह नहीं। इन अद्वैतवादियोंके विरुद्ध एक दूसरी भी विचारधारा थी, जो स्थिरवादी होते हुए भी परिवर्तनकी व्याख्या अपने ढंगसे करती थी—अर्थात् मूलतत्त्व अनेक स्थिर नित्य हैं किन्तु उनमें संयोग वियोग होता रहता है जिसके कारण हमें परिवर्तन दिखलाई पड़ता है।

(१) हेराक्लितु (५३८ ४७५ ई० पू०)—हेराक्लितुका वही समय है जो कि गौतम बुद्धका। हेराक्लितु भी बुद्धकी भाँति ही परिवर्तनवाद, क्षणिक-वादको मानता था। हेराक्लितुके ख्यालके अनुसार जगतकी सृष्टि और प्रलयके युग होते हैं। हर बार सृष्टि बनकर अन्तमें आग द्वारा उसका नाश होता है। भारतीय परम्परामें भी जल और अग्नि प्रलयका

जिक्र आता है। यद्यपि उपनिषद और उससे पहिलेके साहित्यमें उसका नाम नहीं है। बुद्धके उपदेशोंमें इसका कुछ इशारा मिलता है और पीछे वसुबन्धु आदि तो 'अग्नि-संवर्त्तनी'[1] का बड़ा जोरसे जिक्र करते हैं।

यूनिक दार्शनिकोंकी भाँति ही हेराक्लितु भी एक अनिम तत्त्व अग्निकी बात करता है, लेकिन उसका जोर परिवर्तन या परिणामवाद पर बहुत ज्यादा है। दुनिया निरन्तर बदल रही है, हर एक चीज दीप शिखाकी भाँति हर क्षण नष्ट और उत्पन्न हो रही है। चीजोंमें किसी तरहकी वास्तविक स्थिरता नहीं। स्थिरता केवल भ्रम है जो परिवर्तनकी शीघ्रता तथा सदृश-उत्पत्ति (उत्पन्न होनेवाली चीज अपने से पहिलेके समान होती है)के कारण होता है। परिवर्तन विश्वका जीवन है। इस प्रकार हेराक्लितु एलियातिकोंसे बिलकुल उलटा मत रखता था। वह अद्वैती नहीं द्वैती, स्थिरवादी नहीं परिवर्तनवादी था।

हेराक्लितुका जन्म एफेसु[2]के एक रईस घरानेमें हुआ था लेकिन वह समय ऐसा था, जब कि पुराने रईसोंकी प्रभुताको हटाकर यूनानी व्यापारी वहाँके शासक बन चुके थे। हेराक्लितुके मनमें तो दिवसा गना की आग लगी हुई थी और वह इस स्थितिको सहन नहीं कर सकता था और समयके परिवर्तनकी जबरदस्त हवाने उसे एक जबरदस्त परिवर्तन वादी दार्शनिक बना दिया। शायद, यदि रईसोंका राज्य होता, तो हेराक्लितु परिवर्तनके सत्यको स्पष्ट भी न पाता। हेराक्लितुने एक क्रान्तिकारी ज्ञानकी सृष्टि की किन्तु व्यवहारमें उसकी क्रान्ति व्यापारियोंके राज्यको उलटना भर चाहती थी। वह आजीवन रईसमिजाज रहा और जनतन्त्रताको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखता था आखिर इसी जनतन्त्रतान तो उसके अपने वर्गको सिंहासनसे खींचकर धूलिमें ला पटका था।

---

[1] अभिधर्म-कोश (वसुबन्धु)। [2] Ephesus [3] हाय! वे हमारे दिन चले गये।

रहा था। माक्रमने उसे इस सामनेसे बचाया, और दोनों परोंके बल, ठोस पृथ्वीपर ला रखा—भौतिकतत्त्व, 'आसमानी' विज्ञान (मन)के विकास नहीं है, बल्कि विज्ञान ही भौतिक-तत्त्वोंका चरम विकास है, ऊपरसे नीचे आनेकी जरूरत नहीं, बल्कि नीचेसे ऊपर जानेमें बात ज्यादा दुरुस्त उतरती है।

(२) अनक्सागोर् (५०० ४२८ ई० पू०) अनक्सागोरने द्वैतवादका और विकास किया। उसने कहा कि हराक्लितुकी भाँति, आग जैसे किसी एक तत्त्वको मूलतत्त्व या प्रधान माननेकी जरूरत नहीं। ये बीज (मूल कारण) अनेक प्रकारके हो सकते हैं और उनके मिलनेसे ही सारी चीजें बनती हैं।

(३) एम्पेदोकल् (४८३ ३० ई० पू०) अनक्सागोरके समकालीन एम्पदोक्लने मूल-तत्त्वोंकी संख्या अनिश्चित नहीं रखनी चाही, और यूनिक दार्शनिकोंकी शिक्षासे फायदा उठाकर अग्नि वायु, जल, पृथ्वी—ये चार "बीज" निश्चित कर दिये। यही चारों तरहके बीज एक दूसरेके संयोग और वियोगसे विश्व और उसकी सभी चीजोंको बनाते और बिगाड़ते रहते हैं। संयोग, वियोग कैसे संभव है, इसके लिये एम्पदोक्लने एक और कल्पना की—'जैसे शरीरमें राग, द्वेष मिलन और हटनेके कारण होते हैं उसी तरह इन बीजोंमें राग और द्वेष मौजूद हैं। एम्पदोक्लकी ख्याली उड़ानने इस सिलसिलेमें और आगे बढ़कर कहा कि—'मूल बीज ही नहीं खुद शरीरके अंग भी पहिले अलग अलग थे, और फिर एक दूसरेसे मिलकर एक शरीर बन गए। उसने यह भी कहा कि—'भिन्न भिन्न अंगोंसे मिलकर जितने प्रकारके शरीर बनते हैं उनमें सबसे योग्यतम ही बच रहते हैं बाकी नष्ट हो जाते हैं— ये विचार सेल और विकासके सिद्धान्तोंकी पूर्व झलक हैं।

(४) देमोक्रितु (४६०-३७० ई० पू०)—देमोक्रितु यूनानी द्वैतवादी दार्शनिकोंमें ही प्रधान स्थान नहीं रखता बल्कि अपने परमाणुवादके कारण पौरस्त्य पाश्चात्त्य दोनों दर्शनोंमें उसका बहुत ऊँचा स्थान है। भारतीय दर्शन में परमाणुवादका प्रवेश यूनानियोंके संपर्कसे ही हुआ

परिमाण—अर्थात् एक लंबाई, चौड़ाई मुटाई—के नहीं होते। परमाणुओंसे बने पिंडोंके आकारोंमें भेद है। परमाणुओंके आकार उनके स्थान और क्रमके कारण हैं। परमाणु-जगत्की आरम्भिक इकाइयाँ, इंट या अक्षर हैं। जैसे २, ३ का भेद आकारमें है, ३ ६ का भेद स्थितिके कारण है—अगर ३का मुँह दूसरी ओर फेर दें तो वही ६ हो जायगा ३६, ६३ का अंतर अंकोंके क्रम भेदके कारण है। परमाणु गतिशून्य तत्त्व नहीं है, बल्कि उनमें स्वाभाविक गति होती है। परमाणु निरन्तर हरकत करते रहते हैं। इस तरह हरकत करते रहनेसे उनका दूसरोंके साथ संयोग होता है और इस तरह जगत् और उसके सारे पिंड बनते हैं। किसी किसी वक्त ये पिंड आपसमें टकराते हैं, फिर कितने ही परमाणु उनमें टूट निकलते हैं। इस तरह दमोक्रितुका परमाणु सिद्धान्त पिछली शताब्दीके यांत्रिक भौतिकवादसे बहुत समानता रखता है, और विश्वके अस्तित्वको व्याख्या भौतिकतत्त्वों और गतिके द्वारा करता है। दमोक्रितु शब्द, वर्ण रस गंधकी सत्ताको व्यवहारके लिये ही मानता है नहीं तो वस्तुतः न मीठा है न कड़ुवा, न ठंढा है न गरम। वस्तुतः यहाँ है परमाणु और शून्य।' इस तरह परमाणुवादी दार्शनिक बाह्य जगत और उसकी वस्तुओंको एक भ्रम या इंद्रजालसे बढ़कर नहीं मानते।

३—सोफीवाद

कारिश और दारयौशके समय युनिस नगर जब इरानियोंके हाथमें चला गया, तो कितने ही विचारक लोग इधर-उधर चले गये यह हम बतला आये हैं। जिस तरह इस वक्त पिथागोरसके अनुयायियोंने भागकर एलियामें अपना केन्द्र बनाया, उसी तरह और विचारक भी भागे मगर उन्होंने एक जगह रहनेके बदले घुमन्तू या परिव्राजक होकर रहना पसन्द किया। इन्हें साफी[1] या ज्ञानी कहते हैं। यद्यपि इस्लामी परिभाषामें प्रसिद्ध सूफी

[1]Sophist

§ ३—यूनानी दर्शनका मध्याह्न

ईसा-पूर्व चौथी सदी यूनानी दर्शनका सुवर्ण-युग है। यों तो पहिले सुकरात अपने मौलिक उपदेशों द्वारा अपनाये तत्त्वोंमें तहलका मचाया था, किन्तु उसके अपूर्व कामको उसके शिष्य अफलातूं और प्रशिष्य अरस्तू ने पूरा किया। इस दर्शनको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है पहिला सुकरात गुरु-शिष्यका यथार्थवाद और दूसरा अरस्तूका प्रयोगवाद।

१—यथार्थवादी सुकरात (४६९—३९९ ई० पू०)

सोफिस्टोंके विज्ञान-विचार सुकरात मानता था। सोफिस्टोंकी भाँति मौखिक शिक्षा और आचार द्वारा उपदेश देना उसे भी पसन्द थे।

वस्तुतः उनके समसामयिक भी सुक्रातको एक सोफी समझते थे। सोफिस्टों की भाँति साधारण शिक्षा तथा मानव सदाचारपर वह जोर देता था और उन्हींकी तरह पुरानी रूढ़ियोंपर प्रहार करता था। लेकिन उसका प्रहार सिर्फ अभावात्मक नहीं था। वह कहता था, सच्चा ज्ञान सम्भव है क्योंकि उसके लिये ठीक तौरपर प्रयत्न किया जाय, जो बातें हमारी समझमें आती हैं या हमारे सामने आई हैं, उन्हें तत्सम्बन्धी घटनाओंपर हम परखें, इस तरह अनेक परखोंके बाद हम एक सच्चाईपर पहुँच सकते हैं। "ज्ञानके समान पवित्रतम कोई चीज नहीं है[1]" वाक्यमें गीताने सुक्रातकी ही बातको दुहराया है। 'ठीक करनेके लिये ठीक सोचना जरूरी है' सुक्रातका कथन था।

बुद्धकी भाँति सुक्रातने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, किन्तु बुद्धके शिष्योंने उनके जीवनके समयमें कंठस्थ करना शुरू किया था, जिससे हम उनके उपदेशोंको बहुत कुछ सीधे तौरपर जान सकते हैं, किन्तु सुक्रातके उपदेशोंके बारेमें वह भी सुभीता नहीं। सुक्रातका क्या जीवन-दर्शन था यह उसके आचरणसे ही मालूम हो सकता है, लेकिन उसकी व्याख्या भिन्न भिन्न लेखक भिन्न भिन्न ढंगसे करते हैं। कुछ लेखक सुक्रातकी प्रसन्न मुखता और मर्यादित जीवन-उपभोगको दिखलाकर बतलाते हैं कि वह भोगवादी[2] था। अन्तिस्थेन और दूसरे लेखक उसकी शारीरिक कष्टोंकी ओरसे बेपर्वाही तथा आवश्यकता पड़नेपर जीवन-सुखको भी छोड़नेके लिये तैयार रहनेको दिखलाकर उसे सादा जीवनका पक्षपाती बतलाते हैं।

सुक्रातको हवाई बहस पसन्द न थी। 'विश्वका स्वभाव क्या है, सृष्टि कैसे अस्तित्वमें आई या नक्षत्र जगतके भिन्न भिन्न प्रादुर्भाव किन शक्तियोंके कारण होते हैं,' इत्यादि प्रश्नोंपर बहस करनेको वह मूर्ख-क्रीड़ा कहता था।

---

[1] "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" (गीता ४।३८)

[2] Hedonist

अफलातूँका दर्शन—दर्शनमें अफलातूका प्रवेश हम पहिलेके परस्पर विरोधी दार्शनिक विचारोंके समन्वयकी ओर पाते हैं। वह सुकरातका इस बातमें सम्मत था कि ठीकतौरसे अथवा यथार्थ ज्ञान (या तत्त्व ज्ञान) सम्भव है। साथ ही वह हेराक्लितुसका रायमें भी सहमत था कि साधारण तौरसे जिन पदार्थोंका साक्षात्कार हम करते हैं वे सभी सदा बदलते रहते और बनते जाते हैं और उनके बारेमें किसी महासत्यपर नहीं पहुँचा जा सकता। वह एम्पिडोक्लिसकी भाँति एक परिवर्तनशील जगत (विज्ञान-जगत)को मानता था परमाणुवादियोंके बहुत्व (द्वैत) वादका समर्थन करते हुए कहता था कि मस्तिष्क—विज्ञान—बहुत है। इस तरह वह इस परिणामपर पहुँचा कि— ज्ञानका यथार्थ विषय सदा—परिवर्तनशील जगत—प्रवाह और उसकी चीजें नहीं हैं बल्कि उसका विषय है लाखोंतात अचल एक रूप, इन्द्रिय अगोचर पदार्थ, विज्ञान (= मन) जो कि विद्यागारके आकृतिमें मिलता-जुलता था। इस तरह विद्यागार हेराक्लितुस और सुकरात तीनोंके दार्शनिक विचारोंका समन्वय अफलातूने करना चाहा।

अफलातूके लिये इंद्रिय प्रत्यक्षका ज्ञानमें बहुत कम महत्त्व था। इंद्रिय प्रत्यक्ष वस्तुओंकी वास्तविकताको नहीं प्रकट करता वह हमें सिर्फ उनका बाहरी झाँकी कराता है—राय सच्ची भी हो सकती है झूठी भी, इसलिए सिर्फ राय कोई महत्त्व नहीं रखता वास्तविक ज्ञान बुद्धि या चिन्तनसे होता है। इंद्रियोंकी दुनिया एक घटिया-जैसी नकली वास्तविकता है वह वास्तविकताका मोटा सा अटकल भर है।

ज्ञानकी प्राप्ति दो प्रकारके चिन्तनपर निर्भर है—(१) विज्ञान[1] (=मन) में निखरे हुए विचारोंका ख्याल लाना (२) विज्ञानका जाति[2] या सामान्यके रूपमें वर्गीकरण करना। यह सामान्य विशेष भारतीय न्याय वैशेषिक दर्शनमें बहुत आता है। वैशेषिक सूत्रोंके छ

---

[1] Idea [2] Particular [3] Archtype

पदार्थोंमें सामान्य, विशेष चार-पाँचवें पदार्थ हैं और उनका उद्गम इसी यूनानी दार्शनिक अफ़लातूँसे हुआ था। अफ़लातूँ यह भी मानता था कि जो चिंतन ज्ञानका साधन है, उसे विज्ञानके रूपमें होना चाहिए बाह्यजगत्के जो प्रतिबिंब या वेदना जिसको इंद्रियाँ लाती हैं उसपर चिन्तन करके हम सत्य तक नहीं पहुँच सकते।

अफ़लातूँ कुछ पदार्थोंको स्वतःसिद्ध[1] कहता था, इनमें गणित संबंधी ज्ञान—संख्या तथा तर्क-संबंधी पदार्थ—भाव अभाव, सादृश्य, भेद, एकता, अनेकता—शामिल हैं। इनमेंसे कितने ही पदार्थोंका वर्णन वैशेषिकमें भी आता है।

ज्ञानकी परिभाषा करते हुए अफ़लातूँ कहता है—'विज्ञान और वास्तविकताका सामंजस्य ज्ञान है, वास्तविकता निर्विषय नहीं हो सकती, उसका अवश्य कोई विषय होना चाहिए और वही विषय एक-रस विज्ञान है।

भाव पदार्थके बारेमें वह कहता है—सच्चा भाव स्थिर अपरिवर्तनशील, अनादि है इसलिए वास्तविक ज्ञानके लिए हमें वस्तुओंके इसी स्थिर अपरिवर्तनशील सारको जानना चाहिए।

सामान्य, विशेष—जब हम इंद्रियोंसे प्राप्त प्रतिबिंबों या वेदनाओंसे नहीं, बल्कि उनसे परे शुद्ध विचारसे ज्ञानको प्राप्त करते हैं, तो वस्तुओंमें हमें सार्वत्रिक (सामान्य) अपरिवर्तनशील सारतत्त्वका ज्ञान होता है, और यही सच्चा ज्ञान (=तत्त्वज्ञान) है। भारतमें सामान्यके जबर्दस्त दुश्मन बौद्ध रहे हैं क्योंकि इसमें उन्हें नित्यताकी स्थापनाकी छिपी कोशिश मालूम होती थी। नैयायिक व्यक्ति, आकृति जाति तीनोंको पदार्थ[2] मानते थे। प्रत्यक्षवादी कहते थे कि सत्ता व्यक्तियोंकी ही है, दिमागसे बाहर विचार या जातिकी तरहका किसी चीजका अस्तित्व नहीं पाया जाता, अन्तस्थनने कहा था—'मैं एक अश्व (=घोड़ा) तो देखता

---

[1] A priory [2] व्यक्त्याकृतिजात्यस्तु पदार्थाः—न्यायसूत्र २।२।६७

आन्तरिक विरोध था। ऐसे विरोधोंको मार्मिक वाग्वैभवी व्याख्या द्वारा अफलातून दूर ही नहीं करना चाहता था बल्कि उसमें कुछ सदियों पहिले भारतके ऋषियोंने भी उसी अभिप्रायसे पुरुषसूक्त बनाकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्रको सिर, बाहु, जाँघ, पैरसे उपमा दे सामाजिक शान्ति कायम करनी चाही थी। दर्शन-क्षेत्रमें इस तरहकी उपमासे अफलातून विज्ञानके ऊँचे-नीचे दर्जे कायम करना चाहता है। सबसे श्रेष्ठ (=उच्चतम) विज्ञान, ईश्वर विज्ञान है जो कि बाकी सभी विज्ञानोंका स्रोत है। यह विज्ञान महान् है, इससे परे और कोई दूसरा महान विज्ञान नहीं है।

दो संसार—संसारमें दो प्रकारके तत्त्व हैं, एक विज्ञान (=भाव) दूसरा भौतिक तत्त्व। किन्तु इनमें विज्ञान ही वास्तविक तत्त्व है वही अनश्वर पदार्थ है, हर एक चीजका रूप और सार अन्तमें जाकर इसी तत्त्व (=विज्ञान) पर निर्भर है। विश्वमें वही नियमन और नियन्त्रण करता है। दूसरे भौतिक तत्त्व, मूल नहीं पाये, चमत्कारके नहीं सुप्त चेतन नहीं जड, स्वच्छा-गति नहीं अनिच्छित-गतिकी शक्तियाँ हैं, वे इच्छा बिना ही विज्ञानके दास हैं विज्ञानकी आज्ञापर नाचते हैं और किसी तरह भी हो, विज्ञानकी छाप उनपर लगती है। यही मूल स्वरूप (विज्ञान) सक्रिय कारण है भौतिक तत्त्व सहयोगी कारण है।

ईश्वर—उच्चतम विज्ञान ईश्वर (विधाता=डेमीउर्ग) है यह वह आर्य है। अफलातून विधाताकी उपमा मूर्तिकारसे देता है। विधाता मानव मूर्तिकारकी भाँति विज्ञान-जगत् (मानसिक दुनिया)में मौजूद नमूने (मूल स्वरूप, सामान्य)के अनुसार भौतिक विश्वको बनाता है। विज्ञानके अनुसार जहाँ तक ईश्वर उसके लिये सम्भव है वह एक पूर्ण विश्व बनाता है, इतनेपर भी यदि विश्वमें कुछ अपूर्णता दिखाई पड़ती है तो मूर्तिकारको दोष न देना चाहिए, क्योंकि आखिर उसे भौतिक तत्त्वोंपर काम करना है और भौतिक तत्त्व विधाताकी कृतिमें बाधा डालते हैं। पीछे आनेवाले हमारे नैयायिकोंकी भाँति विधाता (=डेमीउर्ग) जनक नहीं इंजीनियर (वास्तुशास्त्री) है। वह स्वयं उच्चतम विज्ञान है, किन्तु साथ ही भौतिक

तत्त्व भी परिवर्तनशील मौजूद है—भौतिक-जगत् और विज्ञान जगत्—यह दो दुनियाएं परिवर्तनशील मौजूद हैं। इन दोनोंमें संबंध जोड़ना—विज्ञानके रूपमें मौजूद मूल-स्वरूपों (सामान्यों)के अनुसार भौतिक तत्त्वोंको गढ़नेके लिये एक सनातन प्रयत्न भी विद्यमान रहता है। यही बाह्य और आंतर जगतकी संगति कराता है। अरस्तूका विचार 'शिव' (= अच्छा) जगत्का वह नियम उपस्थित करता है—मूल वस्तुओंके यत्न (जतन)का भी ज्ञान है और उस प्रकारका भी जिससे उनका ज्ञान होता है। इसी तरह शिव सभी वस्तु—सत्ता और तत्त्वकी हमारे ज्ञानका भी स्रोत है।

दर्शनकी विशेषता—अरस्तूका दर्शन बुद्धिवादी है, क्योंकि वह ज्ञानके लिये इंद्रिय-प्रत्यक्षपर नहीं बुद्धिपर जोर देता है। प्रत्यक्ष जगत्से अलग बुद्धिगम्य विज्ञान-जगत् उसका वास्तविक जगत है। विज्ञानवादी तो अरस्तू है ही क्योंकि विज्ञान सत्ता (=मूलस्वरूप)—ही उसके लिये एकमात्र सार है। वास्तववादी भी उसे कह सकते हैं क्योंकि बाहरी दुनियाको वह निराधार नहीं एवं वास्तविक जगत् (=विशाल जगत)का बाह्य प्रकाश समझता है। सारी दुनियाका विज्ञानवास महा विज्ञान (=ईश्वर)की सत्ताको स्वीकार कर वह ब्रह्मवादी भी है, किन्तु वह भौतिकवादी बिलकुल नहीं है, क्योंकि भौतिक तत्त्व और उससे बनी दुनियाको वह प्रधान नहीं गौण मानता है।

अरस्तूके सामाजिक राजनीतिक विचारोंके बारेमें 'मानव-समाज'में कहा जा चुका है। वह समाजमें परिवर्तन चाहता था किन्तु परिवर्तन ठोस मौजूदा समाजको लेकर नहीं बल्कि मूल-स्वरूपके आधारपर।

३—वस्तुवादी अरस्तू[1] (३८४ ३२२ ई० पू०)

अरस्तू युद्ध (४६३ ४८३ ई० पू०)में एक सौ पीछे स्तागिरामें पैदा हुआ था। उसका पिता निकोमाचु[2] सिकन्दरके बाप तथा मकदूनियाके

---

[1] कृतियाँ दे० पृष्ठ ११५, २२१ ३, २७० १ [2] Nicomachus

राजा फिलिपका राजवैद्य था। उसके बाल्य कालमें अफलातूकी ख्याति खूब फैली हुई थी। १७ वर्षकी उम्रमें (३६७ ई० पू०) अरस्तू अफलातूकी पाठशालामें दाखिल हुआ और तबतक अपने गुरुके साथ रहा, जब तक कि (बीस वर्ष बाद) अफलातू (३४७ ई० पू० में) मर नहीं गया। फिलिपको अपने लड़के सिकन्दर (३७३-३२३ ई० पू०)की शिक्षाके लिये एक योग्य शिक्षककी जरूरत थी। उसकी दृष्टि अरस्तूपर पड़ी। विश्व-विजयी सिकन्दरके निर्माणमें अरस्तूका खास हाथ था और इसका बीज ढूंढनेके लिये हमें उसके गुरु अफलातू तथा परमगुरु सुकरात तक जाना पड़ेगा। सुकरात अपने स्वतंत्र विचारोंके लिये अथेन्सके जननिर्वाचित शासकोंके कोपका भाजन बना। अफलातू अपने समयके समाजसे असन्तुष्ट था, इसलिए उसमें परिवर्तन करके एक साम्यवादी समाज कायम करना चाहता था, लेकिन इस समाजकी बुनियाद वह धरतीपर नहीं डालना चाहता था। वह उसे 'विज्ञान-जगत' में लाना चाहता था, और उसका शासन नौकिंच-पुरुषोंके हाथमें नहीं बल्कि लोकसे परे ख्याली दुनियामें उड़नेवाले दार्शनिकोंके हाथमें देना चाहता था। यदि अफलातूको पता होता कि उसके साम्यवादी समाजकी स्थापनामें एक विश्व विजेता सहायक हो सकता है तो १८वीं १९वीं सदीके युरोपियन समाजवादियों—फूर्ये (१८०९-६५) आदिकी भाँति वह भी साम्यवादी राजाकी तलाश करता। अरस्तू बीस साल तक अपने गुरुके विचारोंको सुनता रहा इस लिए उनका असर उसपर होना जरूरी था। कोई ताज्जुब नहीं यदि अफलातूका साम्यवादी राज्य अरस्तू द्वारा होकर सिकन्दरके पास विश्व राज्य या चक्रवर्ती राज्यके रूपमें पहुँचा। बुद्ध अपने साधुओंके मध्यमें पूरा आर्थिक साम्यवाद—जहाँ तक उपभोग सामग्रीका सम्बन्ध है—कायम करना चाहते थे, यदि वह संभव समझते तो शायद विस्तृत समाजमें भी उसका प्रयोग करते किन्तु बुद्धकी वस्तु-वादिता उन्हें इस तरहके तजर्बे से रोकती थी। ऐसे विचारोंको रखते भी बुद्ध, चक्रवर्तीवाद—सारे विश्वका एक धर्मराजा होना—के बड़े प्रशंसक थे। हो सकता

(विज्ञान-जगत्)की जरूरतको वह स्वीकार करता था। यूनिक दार्शनिक सिर्फ भौतिक पहलूपर जोर देते थे, पिथागोर और अफलातू मूलस्वरूप या विज्ञान ('आकृति या मूलस्वरूप)पर जोर देते थे, किन्तु अरस्तू दोनोंको अभिन्न अंग मानता था—'मूलस्वरूप (विज्ञान) भौतिक तत्त्वों में मौजूद है और भौतिक तत्त्व मूलस्वरूपों (विज्ञानों)में सामान्य (=जाति) व्यक्तियोंमें मौजूद है, इन दोनोंको अलग समझा जा सकता है किन्तु अलग नहीं किया जा सकता। अफलातूं दार्शनिकके अतिरिक्त गणितशास्त्री भी था और गणितकी काल्पनिक बिन्दु रेखा संख्या आदिकी छाप उसके दर्शनपर भी मिलती है। अरस्तू प्राणिशास्त्री भी था इसलिए विज्ञानों और भौतिक-तत्त्वोंको अलग नहीं रख सकता था। विज्ञान और भौतिक-तत्त्व, स्थिरता (एनियानिक) और परिवर्तनशीलता (हरा क्रितु)का वह समन्वय करना चाहता था। वह सभी चीजोंमें विज्ञान (=मूलस्वरूप) और भौतिक तत्त्वोंको देखता था। मूर्तिमें संगमरमर भौतिक तत्त्व है और उसके ऊपर जो आकृति लाई गई है वह विज्ञान है जो कि मूर्तिकारके दिमागमें निकला है। वनस्पति, पशु या मनुष्यमें शरीर भौतिक तत्त्व है और पोषण, वर्धना आदि विज्ञान-तत्त्व। आकृतिके बिना कोई चीज नहीं है, पृथ्वी, जल, आग और हवा भी बिना आकृतिके नहीं हैं ये भी मूल गुण—रूक्षता नमी, उष्णता सर्दी—के भिन्न भिन्न योगसे बने हैं। सारयुक्त विद्यमान संस्करणमें इन मूलगुणोंको तन्मात्रा कहकर उन्हें भूतोंका कारण कहा गया और यह अरस्तूके इसी ख्यालसे लिया गया मालूम होता है। भौतिक तत्त्व वह है जिनमें वृद्धि या विकास हो सकता है, यद्यपि यह वृद्धि या विकास एक सीमा रखता है। पत्थरका खंड किसी तरहकी मूर्ति बन सकता है किन्तु वृक्ष नहीं बन सकता। एक पौधा या अंकोला बढ़कर पीपल बन सकता है किन्तु पशु नहीं बन सकता। इस विचार धारासे अरस्तूको जाति स्थिरताके सिद्धान्तपर पहुँच गया और वह समझने लगा कि जातियोंमें परिवर्तन नहीं होता। इस धारणाने अरस्तूको प्राणिशास्त्रमें और आगे नहीं बढ़ने दिया और वह उसी-

सदा सदीके महान् प्राणशास्त्रीय आविष्कार 'जाति-परिवर्तन' तक नहीं पहुँच सका। [illegible] हुए भी एक पीढ़ीमें न सही अलग अलग पीढ़ियों में इस विकास और उनके साम्यकी ओर ध्यान दिये बिना वह नहीं रह सकता था। छोटा-छोटा प्राणि-जातियोंकी पीढ़ीमें क्रमशः आगे बढ़ती प्राणि जातियोंके उच्च उच्चतर विकासका उसने देखा। विज्ञान (=मूलस्वरूप) रहित भौतिक तत्त्वोंका विकास उतना गहरा नहीं है, जितना कि विज्ञान-युक्त तत्त्वोंका। इस विकासका उच्चतम रूप वह है जिसने आगे विकासकी गुंजाइश नहीं। अतएव जो भौतिक तत्त्वकी परिभाषामें आ नहीं सकता वह ईश्वर है। वह अपरिवर्तनशील विज्ञान मात्र नहीं ईश्वर है, जो कि अरस्तूके विचारमें विधाता (कर्ता) नहीं है क्योंकि विज्ञान और भौतिक तत्त्व समानरूप नहीं मौजूद थे। तो भी जैसा कहा है सभी वस्तुओंका विचार ईश्वरकी ओर है। दुनियाकी चाह वह है और उसकी उपस्थिति मात्रसे वस्तुएं ऊँचे विकासकी ओर अग्रसर होती हैं। वह विश्वका अचल चालक है यह उसका प्रेम ही है जो जगतको चला रहा है।

अरस्तू चार प्रकारके कारण मानता है—(१) उपादान कारण—जैसे घड़ेके लिये मिट्टी (२) मूल-स्वरूप या विधान कारण—जिन नियमोंके अनुसार कार्य (=घड़ा) बनता है (३) निमित्त कारण[1]—जिसके द्वारा उपादान कारण कार्यकी शक्ल लेता है जैसे कुम्हार आदि (४) अंतिम कारण या प्रयोजन—जिसके लिये कि कारण बना। पहिले और तीसरे कारणोंको भारतीय न्यायिकोंने ले लिया है। अरस्तूका यह भी कहना है कि हर कार्यको चारों लक्षण कारणोंकी जरूरत नहीं, कितनोंके लिये उपादान और निमित्त कारण ही काफी होते हैं।

---

[1] देखो 'विश्वकी रूपरेखा'।

[2] यह कल्पना सांख्यके पुरुषसे मिलती जुलती है, यद्यपि अनीश्वरवादी सांख्य एककी जगह अनेक पुरुष मानता है। [3] Efficient cause

(२) ज्ञान—अरस्तूका कहना था—ज्ञानकी प्राप्तिके लिये यह जरूरी है कि हम अपनी बुद्धिसे ज्यादा अपनी इन्द्रियोंपर विश्वास रक्खें और अपनी बुद्धिपर उसी वक्त विश्वास करें जब कि उसका समर्थन घटनाएं करती हों। सच्चा ज्ञान सिर्फ घटनाओंका परिचय ही नहीं बल्कि यह भी जानना है कि किन वजहों किन कारणों या स्थितियोंमें वैसा होता है। जो विद्या या दर्शन आदि या चरम कारणपर विचार करता है, उसे अरस्तू प्रथम दर्शन कहता है, आज-कल उसे ही अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। अरस्तू तर्कशास्त्रके प्रथम आचार्योंमें हैं। उसके अनुसार तर्कका काम वह तरीका बतलाना है, जिससे हम ज्ञान तक पहुँच सकें। इस तरह तर्क, दर्शन तक पहुँचनेके लिये सोपान (=सीढ़ी) है। चिन्तन या जिस प्रक्रियासे हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसका विश्लेषण तर्कका मुख्य विषय है। तर्क वस्तुतः शुद्ध चिन्तनकी विद्या है। हमारे चिन्तनका आरम्भ सदा इन्द्रिय प्रत्यक्षसे होता है। हम पहिले विशेषको जानते हैं, फिर उससे सामान्यपर पहुंचते हैं—अर्थात पहिले अधिक ज्ञातको जानते हैं, फिर उससे और अधिक ज्ञात और अधिक निश्चितको। हम पहिले अलग-अलग जगहें रसोई-घरमें, श्मशानमें (इंजनमें भी) धुएँके साथ आगको देखते हैं फिर हमारी सामान्य धारणा बनती है—जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहां वहाँ आग होती है।

अरस्तूने अपने तर्कशास्त्रके लिये दस और कहीं आठ प्रमेय[1] (ज्ञानके विषय) माने हैं—(१) वह क्या है, यानी द्रव्य (मनुष्य) (२) किनसे बना है यानी गुण, (३) वह कितना बड़ा है यानी परिमाण (३॥ हाथ) (४) क्या सम्बन्ध रखता है यानी सम्बन्ध (बृहत्तर दुगना), (५) वह कहां है दिशा या देश (सड़क पर) (६) कब होता है यानी काल, (७) किस तरह है यानी आसन (लेटा या बैठा), (८) किस तरह है यानी स्थिति (कपड़े पहिने या हथियार-बन्द)

---

[1] Category

(९) [illegible] (गुण), (१०) [illegible] निष्क्रियता (कर्म [illegible])। [illegible] द्रव्य गुण कर्म [illegible] [illegible] उसके ही द्रव्यों में है, [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible]

वायका उसके शिष्य थ्योफ्रास्तु (ई० २८७ ई० पू०) ने जारी रखा, किन्तु आगे फिर दो सहस्र शताब्दियोंके लिये वह रुक गया। डार्विनने अरस्तूकी प्राणिशास्त्रीय गवेषणाओंकी बहुत दाद दी है।

यूनानी दार्शनिकोंका ऋणी होना हमारे यहाँके कितने ही विद्वानोंको बहुत खटकता है। वह साबित करना चाहते हैं कि भारतने बिना दूसरी जातियोंकी सहायताके ही अपने सारे ज्ञान विज्ञानको विकसित कर लिया और इसीलिए जिन सिद्धान्तोंके विकासके प्रवाहकी हमारे तथा यूनानियोंके सम्पर्कसे पहिले लिखे गये भारतीय साहित्यमें गन्ध तक नहीं मिलती उसके लिये भी जबर्दस्त खींचा-तानी करते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि जब सिकन्दर भारतमें (३२३ ई० पू०) आया था तब यूनानी दर्शन कला, साहित्य आदिमें उन्नतिके शिखरपर पहुंचा हुआ था। उस समय और बादमें भी लाखों यूनानी हमारे देशमें आकर सदाके लिये यहीं रह गये और आज वह हमारे रक्त मांसमें इस तरह घुल मिल गये हैं कि उसका पता आखिर नहीं इतिहासके ज्ञानसे ही मिलता है। जिस तरह चुपचाप यूनानियोंका रुधिर मांस हमारा अभिन्न अंग बन गया, उसी तरह उनके ज्ञानका बहुत सा हिस्सा भी हमारे ज्ञानमें समा गया। गंधार मूर्तिकलामें जिस तरह यवन कलाका स्पष्ट और गुप्त मूर्ति-कलामें अ-स्पष्ट छाप देखते हैं, उसी तरह हमें यह स्वीकार करनेमें इन्कार नहीं करना चाहिए कि हमारे मठोंमें साधु भिक्षु और हमारी पाठशालाओंमें अध्यापक बनकर बड़े शिक्षित सभ्य यूनानी हमारे लिए अपने विद्वानोंका भी कोई तोहफा लाये थे।

§ ४—यूनानी दर्शनका अन्त

लगानियोंके युद्ध (३३८ ई० पू०) में यूनानने मकदूनियासे हार खाकर अपनी स्वतन्त्रता गँवाई। इसने यूनानकी आत्माको इतना चूर्ण कर दिया

---

[१] Theophrastus

[illegible] ३०० पू० तक [illegible] [illegible] [illegible]

सुखवाद और इनके सुखवादमें फर्क था तो यही कि जहाँ दूसरे परलोक—परजन्ममें वैयक्तिक सुखके चाहक थे वहाँ एपीकुरीय इसी लोक इसी जन्मके मनुष्य—व्यक्ति और समाज दोनों—को सुखी देखना चाहते थे।

एपीकुरु (३४१-२७० ई० पू०)—यूनानी भोगवादका संस्थापक एपीकुरु समोस द्वीपके अथेन्स प्रवासी माँ-बापके घरमें पैदा हुआ था। अध्ययनकालमें उसका परिचय डेमोक्रितुस दर्शन—परमाणुवादसे हुआ, जिसके आधारपर उसने अपने दर्शनका निर्माण किया और उसके प्रचारके लिये ३०६ ई० पू०में (बुद्धके निर्वाणसे पौने दो सौ वर्ष बाद) अथेन्समें अपना विद्यालय कायम कर मृत्यु (२७० ई० पू०) तक अध्ययन अध्यापन करता रहा। अपने जीवनमें ही उसके बहुतसे मित्र और अनुयायी थे, और पीछे तो उनकी संख्या और बढ़ी। उनमें अपने सुखसे सुख माननेवाले भी हो सकते हैं, जिनके कि उदाहरणको लेकर दूसरोंने एपीकुरीयवादको भी चार्वाककी भाँति ऋण कृत्वा घृतं पिबेत् माननेवाला कहकर बदनाम करना शुरू किया।

एपीकुरुका कहना था कि, यदि अपनी इन्द्रियोंपर विश्वास न करें, तो हम किसी चीजका नहीं प्राप्त कर सकते। इन्द्रियाँ कभी-कभी गलत खबर देती हैं, किंतु उन गलतियोंका पुनः-पुनः प्रयोग करके अथवा दूसरोंके तजर्बेसे दूर किया जा सकता है। इस प्रकार एपीकुरु हमारे यहाँके चार्वाक-दर्शनकी भाँति प्रत्यक्ष प्रमाणपर बहुत अधिक जोर देता था।

२—स्तोइकोंका शारीरिक(ब्रह्म)वाद

स्तोइकोंका दर्शन क्सेनोफन (५७० ४८० ई० पू०)के जगत शारीरिक-ब्रह्मवादकी ही एक शाखा थी। हाँ यह आवश्यक है कि पिथागोर स्वयं भारतीय दर्शनसे प्रभावित हुआ था और क्सेनोफन उसीका उत्तराधिकारी था इस प्रकार स्तोइकोंकी शिक्षामें भारतीय दर्शनकी छाप हो, यह कोई अचरजकी बात नहीं। ३३२ ई० पू०में सिकन्दरने मिस्रमें सिकन्दरिया नगर बसाया था, जो पीछे तीनों महाद्वीपोंका जबर्दस्त व्यापारिक

स्तोइक एपीक्यूरीयोंमें इस बातमें एकमत था कि हमारे सभी ज्ञानका आधार इन्द्रिय प्रत्यक्ष है।—हमारा ज्ञान या तो प्रत्यक्षसे आता है या जन्मसे प्राप्त साधारण विचार या ज्ञानसे। किसी बातको सच तभी मानना चाहिए, जब कि वस्तुएँ उसकी पुष्टि करती हैं। साइंस (=विद्या) सच्चे निर्णयोंका एक ऐसा सुसंगठित ज्ञान है जो एक सिद्धान्तका दूसरे सिद्धान्तसे सिद्ध होना जरूरी कर देता है।

स्तोइक उसी वस्तुको सच्ची मानते हैं, जो क्रिया करती है या जिस पर क्रिया होती है। जो क्रिया शून्य है उसकी सत्ताको वह स्वीकार नहीं करते। इसीलिए शुद्ध विज्ञान (=ईश्वर)को वह अरस्तूकी भाँति निष्क्रिय नहीं मानते। ईश्वर और जगत जब शरीर और शारीरके तौर पर अभिन्न हैं तो शरीर (=जगत्)की क्रिया शारीर (=ईश्वर)का अपनी ही क्रिया है। भौतिक तत्त्वके बिना शक्ति नहीं और शक्तिके बिना भौतिक तत्त्व नहीं मिल सकते, इसलिए भौतिक-तत्त्वको सर्वत्र शक्ति (=ईश्वर)से व्याप्त मानना चाहिए। यह ख्याल उपनिषदके 'अन्तर्यामीवाद'से कितना मिलता है, इसे हम आगे देखेंगे। स्तोइकोंका यह अंग अंगी अवयव अवयवी वाला सिद्धान्त वेदान्तके सूत्रों, उसकी बोधायन वृत्ति तथा रामानुज भाष्यमें भी पाया जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि शरीर शरीरी भाव उपनिषदमें है ही नहीं। यह भाव वहाँ था, किन्तु उस स्तोइकोंने और तर्क-सम्मत बनानेके लिये जो युक्तियाँ दीं, उनसे बादरायण बोधायन आदिने फायदा उठाया—ऐसा मालूम होता है।

क्षुद्रसे क्षुद्र वस्तुएँ भी भगवान्‌के अंग हैं, वह एक और सब है। प्रकृति, ईश्वर भाग्य भवितव्यता एक ही है। जब प्रकृति ईश्वरसे अभिन्न है तो हमारे जीवनके लिये सबसे अच्छा आदर्श प्रकृति ही हो सकती है, इसीलिए स्तोइक प्राकृतिक जीवनके पक्षपाती थे। सभी प्राणी चूँकि ईश्वर प्रकृति-अद्वैतकी ही सन्तानें या अंग हैं इसलिए स्तोइक विश्व भ्रातृभावके मानने वाले थे— सभी मनुष्य भाई भाई हैं और ईश्वर सबका पिता है।—एपिक्तेतुस कहा था।

जन दोनों अपने धर्म-सम्प्रदायका जिन (=विजेता) कहते हैं। लेकिन जहाँ तक पिर्होके विचारोंका सम्बन्ध है, वह बौद्ध सिद्धान्तोंका एकांगीन विकास मालूम होता है, जिन्हें कि हम ईसाकी दूसरी सदीके नागार्जुनमें पाते हैं। नागार्जुनका शून्यवाद पुराने वपुल्यवादियोंसे विकसित हुआ है और वपुल्यवादियोंके होनेका पता अशोकके समय तक लगता है। अशोक पिर्होकी मृत्यु (२७० ई० पू०)से एक साल बाद (२६९ ई० पू०) गद्दीपर बैठा था। इस तरह पिर्होके भारत आनेके समय वपुल्यवादी मौजूद थे। भारतसे पिर्हो एलिस् लौट गया। उसका विचार था—वस्तुओंका अपना स्वभाव क्या है इसे जानना असम्भव है। कोई भी सिद्धान्त पेश किया जाय उतनी ही मजबूत युक्ति(=प्रमाण)के साथ ठीक उससे उल्टी बात कही जा सकती है, इसलिए अच्छा यही है कि अपना अन्तिम बौद्धिक निर्णय ही न दिया जाय जीवनको इसी स्थितिमें रखना ठीक है। नागार्जुनके वर्णनमें हम इसकी समानताको देखेंगे किन्तु इसमें नागार्जुनको पिर्होका ऋणी न मानकर यही मानना अच्छा होगा कि दोनोंका ही उद्गम वही वपुल्यवाद हेतुवाद या उत्तरापथकवाद थे।

पिर्हो ज्ञानको असाध्य साबित करनेके लिए कहता है—किन्तु किसी चीजको ठीक साबित करनेके लिए या तो उसे स्वतः प्रमाण मान लेना होगा जो कि गलत तर्क है, या दूसरी चीजको प्रमाण मानकर चलना होगा जिसके लिये कि फिर प्रमाणकी जरूरत होगी। नागार्जुनने "विग्रह-व्यावर्तनी"में ठीक इन्हीं युक्तियों द्वारा प्रमाणकी प्रामाणिकताका खंडन किया है।

ईश्वर-खंडन—पिर्होके अनुयायी स्तोइक ब्रह्म (=ईश्वर)वादका खंडन करते थे। स्तोइक कहते थे—'जगतकी सृष्टिमें खास प्रयोजन मालूम होता है और वह प्रयोजन तभी हो सकता है जब कि कोई चेतनशक्ति उसे सामने रखकर संसारकी सृष्टि करे। इस तरह प्रयोजनवाद ईश्वरकी हस्तीको सिद्ध करता है। संदेहवादियोंका कहना था—'जगत्में कोई ऐसा प्रयोजन नहीं दीख पड़ता वहाँ न बुद्धिपूर्वकता दिखाई पड़ती है, और न वह शिव सुन्दर ही है। बुद्धिपूर्वकता होती तो गलती कर कर

व—हजारों लोगों का नाश कर करके—नव स्वरूपों में अध्याय। इसीलिए आनन्द कहलाता है। ऐसा, और दुनियाको शिव सुन्दर तो यों कह सकते हैं जो मन स्वप्नकी तरियाम विवरण करता है। यदि दुनियामें यह बात भी हो जाती तो भी उससे ईश्वर नहीं स्वाभाविकता ही सिद्ध होती। स्टोइक (और उदाहरणों भी) ईश्वरको विश्वात्मा मानते हैं। विरोधी अनुयायी कहते थे कि जब उसका मतलब है कि वह बनता या अनुभव करता है। जो बनता या अनुभव करता है वह परिवर्तनशील है जो परिवर्तनशील है वह शिव एवं सत्य नहीं हो सकता। यदि वह अपरिवर्तनीय एकरस है तो वह एक यन्त्रि निर्जीव पदार्थ है। और विश्वात्माको शरीरधारी माननेपर मनुष्यकी भाँति उसे परिवर्तनशील—नाशवान तो मानना ही होगा। यदि वह शिव (कल्याण) है तो वह मनुष्यकी भाँति आचारको बलोपाक बन्धन आ जाता है और यदि शिव नहीं तो घोर है और मनुष्यगण निम्नश्रेणीका है। इस प्रकार ईश्वरका विचार परस्पर विरोधी लक्षणोंसे भरा हुआ है। हमारी बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर सकती इसलिए उसका ज्ञान असम्भव है।'

विरोधके बाद उसके लौकिक सम्प्रदायका विकास हो आचार्य हुए, जिनमें मुख्य थे—अर्कसिलो (१५ २४१ ई० पू०) कार्नीड (२१० १२९ ई० पू०) अस्कालनका अन्तियोक (८८ ई०) लारिस्साका फिलो (८० ई०) क्लितोमाख (११० ई०)।

संदेहवादके अनुयायी कितने ही अच्छे-अच्छे लौकिक विद्वान् होते रहे किन्तु सभी स्टोइकोंकी भाँति आकाशविहारी थे, इनका काम ज्यादातर निषेधात्मक या ध्वंसात्मक था और सामने कोई रचनात्मक प्रोग्राम नहीं था। इसलिए इसान्यतन स्टोइकोंके साथ इन बार फिलासफरोंका भी खात्मा कर दिया।

---

[1] Arcosilaus [2] Carneodes [3] Antiochus of Ascalon
[4] Philo of Larissa [5] Clitomachus

४—नवीन-अफलातूनी दर्शन

पश्चिममें यूनानी दर्शनने अपने अन्तिम दिन नव अफलातूनी दर्शनके रूपमें देखे। यह पाश्चात्य दर्शन और पौरस्त्य योग रहस्यवाद, अध्यात्म शास्त्रका एक अजीब मिश्रण था और यवन रोमन सभ्यताके पतन और नवोदयका प्रकट करता था। यूनानी दर्शनमें हम देख चुके हैं कि अफलातूनका लोकोत्तर विज्ञानवाद धर्म और अध्यात्मविद्याके सबसे अधिक नजदीक था।

ईसा-पूर्व पहिली सदीमें रोम-साम्राज्यमें दो बड़े-बड़े शहर थे एक तो राजधानी बिजन्तिउम या आधुनिक इस्तांबुल (कुस्तुन्तुनिया) और दूसरा मिश्रका सिकन्दरिया। दोनों पूर्व और पश्चिमके वाणिज्य ही नहीं संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला सबके विनिमयके स्थान थे। बिजन्तिउम था यूरोपकी भूमिपर किन्तु उसपर पश्चिमकी अपेक्षा पूरबकी छाप ज्यादा थी। सिकन्दरियाके बारेमें कहा जाता है कि वह व्यापारका केन्द्र ही नहीं था बल्कि विद्याके लिये पश्चिमकी नालन्दा था। ईसा पूर्व पहिली सदीमें लंकाके रत्न-माल्य चैत्य (रुवनवेलि स्तूप, अनुराधपुर)के उदघाटन उत्सवमें सिकन्दरियाके बौद्ध भिक्षु धर्मरक्षितके आनेका जिक्र[1] आता है। यह यही सिकन्दरिया है सकती है और इससे मालूम होता है कि ईसापूर्व तीसरी सदीमें अशोककी सहायतासे जो भिक्षु विदेशों और यवनलोक (यूनानी साम्राज्य)में भेजे गये थे उन्होंने सिकन्दरियामें भी अपना मठ कायम किया था। धर्म व्यापारका अनुगमन करता है यह कहावत उस वक्त भी चरितार्थ थी। जहां-तहां विदेशोंमें भारतीय व्यापारी बस गये थे जिनसे उनके धर्म प्रचारकोंको उस देशके विचार तथा समाजके बारेमें जाननेका ही अधिक सुभीता न होता था, बल्कि ये व्यापारी उनके मठोंके बनाने और शरीर निर्वाहके लिये मदद देते थे। यूनानके राष्ट्रीय अधःपतन और

---

[1] महावंश २९।३९ (भदंत आनंद कौसल्यायनका हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १३९)।

निराशाके समय पूर्वीय साधुओं योगियोंका यान-स्थान, संसारकी असारता परलोककी ओर लगाता ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था, और हम देखते हैं कि हजारों निर्धन संस्कृत श्रमण और भजन 'संघ' और निर्वाण के साधनोंके लिए सिकन्दरियामें एकत्रित होने लगे थे। वहाँ वे दरिद्रता उपवास त्याग और भजनमें अपने दिन गुजारते थे। लेकिन हजारों भागनेवाले इस समुदायमें सैनिक व्यापारी, शास्त्रिक महात्मा सभी शामिल थे। यद्यपि सिकन्दरियामें अफलातूँ ही नहीं, अरस्तूका यथार्थवादी ज्ञान भी पढ़ाया-पढ़ाया जाता था किन्तु जो दुनियासे ऊब गये थे और जिन्हें सुधारका कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था वे अफलातूके विज्ञानवादको ही अपना उपास्य पसन्द करते।

पश्चिमी जगतका उस समय भारतका ही नहीं ईरानकी भी पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध था बल्कि पासका पड़ोसी होनेसे ईरानका सम्बन्ध ज्यादा नजदीकका था। ईरान दर्शनका उद्गममें हमेशा भारतका पीछे रहा। पिथागोर (५७० ५०० ई० पू०) और सिकन्दर (३५६ २३ ई० पू०)के समयसे ही भारत अपनी सम्पत्तिके लिये ही नहीं ज्ञानियों और योगियोंके लिये भी मशहूर था। इसलिए यूनानी दर्शनका नवीन अफलातूनीय दर्शनके रूपमें परिणत होनेका श्रेय भारतीय दर्शनको ही है। निराशावाद, रहस्यवाद दुःखवाद लोकोत्तरवाद वहीं उठते हैं जहाँकी भूमि वहाँके समाजके नायकोंको असन्तुष्ट कर देती है—या तो बराबरके युद्ध राज्यक्रान्ति और उनके कारण होनेवाले दुर्भिक्ष, महामारी जीवनको कड़ुवा बना देते हैं अथवा समाजके भीतरकी विषमता—गरीबी, समृद्धि भोगोंका 'चकला' नरमी बना असन्तोषकर बना देती है। सातवीं-छठवीं सदी ई० पू०में भारतमें उपनिषदोंका निराशावाद रहस्यवाद, इन्हीं परिस्थितियोंमें पैदा हुआ था और समाजको बदलनेकी जगह स्थिरता प्रदान कर भारतमें इन विचार धाराओंको भी स्थिरता प्रदान की। पीछे आने वाले बौद्ध-जैन तथा दूसरे दर्शन उसी निराशावाद और रहस्यवादके नये संस्करण हैं आखिर सामाजिक विकासके रुक जानेपर भी बौद्धिक विकास

तो भारतीयोंका कुछ होता ही रहा जिसकी वजहसे निराशावाद और रहस्यवादको भी नये रूप देनकी जरूरत पड़ी। भारतीय समाजको नया करनेमें तो सिर खपाना भी चाहा क्योंकि सदियों बीतती गई और गन्दगियाँ जमा होती रहीं—बढ़ते कूड़ेको भुलावा करनेवाले अणीवा भाँति उनका सफाया करना और मुश्किल हो गया। ऐसी विषम परिस्थितिमें बिल्लीके सामने कबूतरके आँख मूँदने या शतुमुर्गके बालूमें मुँह छिपानेकी नीति आदमीको ज्यादा पसन्द आती है। भारतीय निराशावाद रहस्यवादको अपनाकर उसके उपनिषद् जैन बौद्ध योग वेदान्त, शैव, पाँचरात्र महायान, तन्त्र-यान भक्तिमार्ग, निर्गुणमार्ग कबीरपन्थ, नानक पन्थ, सखी-समाज, ब्रह्म-समाज प्रार्थनासमाज आर्यसमाज राधा वल्लभीय, राधास्वामी आदि नये संस्करणोंको करके उसी बिल्ली कबूतर-नीतिका अनुसरण किया।

भारतकी तरहकी परिस्थितियाँ जब दूसरे देश और समाज भी आ पड़ते हैं, उस समय यही आजमूदा नुस्खा वहाँ भी काम आता है। आज युरोप, अमेरिकामें जो बौद्ध वेदान्त थ्योसोफी प्रेतविद्याकी चर्चा है, वह भी वही शुतुर्मुर्गी नीति है—समाजके परिवर्तनकी जगह नोकसे भागने का प्रयत्न है।

ईसापूर्व पहिली सदीका यवन रोमका नायक-शासक समाज भोग समृद्धिमें नाक तक डूबा, सामाजिक विषमता और गन्दगीके कारण अनिश्चित भविष्य तथा अजीर्णका शिकार था। वह भी इस परिस्थितिसे जान छुड़ाना चाहता था उसके लिये उसका स्वदेशीय नुस्खा अफलातूनका दर्शन काफी न था उसके लिए और कड़ी बोतल जरूरी थी जिसके लिए उन्होंने भारतीय रहस्यवाद निराशावादको अफलातूनी दर्शनमें मिला लिया। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष सारी दुनिया माया भ्रम, इन्द्र-जाल है मानस (विज्ञान) जगत ही सच्चा है। सत्य और मानसिक शान्ति तभी मिल सकती है जब कि मनुष्य जीवनसे अलग हो। एक लम्बे संयम-यम नियम-के साथ, इसी जन्मकी नहीं अनेक जन्मकी संसिद्धिके साथ उस अकथ

पहुंत है और जो विश्वका सृष्टिकर्ता है। भारतके वेदान्तमें भी ईश्वर (परमात्मा)को परमतत्त्व मानते हैं। यह ईश्वर या दिव्य विज्ञान ध्यान करके[1] अपने शरीरसे विश्व आत्माको पैदा करता है, जो कि विश्वका भी आत्मा है, दुनियाके अनगिनत जीवात्माओंका भी। दुनिया अब तयार हो गई। किन्तु दिव्य विज्ञानका काम इतनेसे समाप्त नहीं होता, वह लगातार आत्माओंको प्रकटकर इस देखनेकी दुनियामें भेज रहा है और जिन्होंने अपने सांसारिक कर्तव्यका पालन कर लिया है उन्हें अपनी गोदमें वापस ले रहा है।

अफलातून प्रयोग या अनुभवसे ऊपर बुद्धिको मानता था किन्तु नवीन अफलातूनी समाधिके साक्षात्कार आत्मानुभूति[2]को बुद्धिसे भी ऊपर मानते थे। प्लोतिनुसने कहा—'उस सर्व महान् (परमतत्त्व)को बुद्धिके चिन्तनसे नहीं बल्कि अचिन्तनसे बुद्धिसे पर जाकर जाना जा सकता है।

इस रहस्यवादने ईसाई धर्म और खासकर ईसाई सन्त अगस्तिन (३५४-४३० ई०) पर बहुत प्रभाव डाला। आज भी पूर्वीय इसाइ धर्म (स्लावदेशोंकी ईसाइयत)पर भारतीय नवीन अफलातूनीय दर्शनकी जबरदस्त छाप है। योग, ध्यान, वैराग्यका दौर दौरा है। पश्चिमी रोमन कथलिक चर्चको सन्त तोमस् अक्विना (१२२५-७४ ई०)ने जमीनपर लानेकी कुछ कोशिश की मगर रहस्यवादसे धर्मका पिंड छूट ही कम सकता है?

८७ ई० पू०में रोमनोंने सिकन्दरियापर अधिकार किया। उसके बाद उसका वैभव क्षीण होने लगा। आमतौरसे दर्शनकी ओर उनकी विशेष रुचि न थी तो भी कुछ रोमनोंने यूनानी दर्शनके अध्ययन अध्यापनमें सहायता की। सिसरो (१०६-४३ ई० पू०)का नाम इस बारेमें विशेषतः उल्लेखनीय है। इसके गथोंने पीछे भी यूनानी दर्शनको जीवित रखनेमें बहुत काम किया। लुक्रेशियो (९८-५५ ई० पू०)ने दमोक्रितुके परमाणुवादको हम तक पहुंचानेमें बड़ी सहायता की। स्तोइक दार्शनिक सम्राट

---

[1] "सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्"—मनु० १।८　　[2] Intuition

है। जिस समय (४६०) नाट पादरी थवफिल सिकन्दरियाके पुस्तकालयको जला रहा था, उस समय आरीलियो अगस्तिन ७ वर्षका था और यद्यपि वह अब ईसाई साधु था किंतु पहिले पढ़े दर्शनको वह भूल नहीं सकता था, इसीलिये उसने दर्शनको ईसाई धर्मकी खिदमतमें लगाना चाहा।

अगस्तिन तगस्तेर (उत्तरी अफ्रीका) में ईसाई माँ (मोनिका) और काफिर बापसे पैदा हुआ था। साधु होनेके बाद तीन साल (३८४-८६) तक वह मिलन (इतालीं) में पादरी रहा। उसने यूनानी दार्शनिकोंकी भाँति युक्तिद्वारा ईसाई धर्मका मंडन करना चाहा—ईश्वरने दुनियाको 'असत्' से नहीं पैदा किया। अपने विकासके वास्ते यह बात उसके लिए जरूरी नहीं है। ईश्वर लगातार सृष्टि करता रहता है। ऐसा न हो तो संसार छिन्न भिन्न हो जाय। संसार बिलकुल ही ईश्वरके अवलंबनपर है। संसार काल और देशमें बनाया गया—यह हम नहीं कह सकते क्योंकि जब ईश्वरने संसार बनाया उससे पहिले देश-काल नहीं थे। संसारको बनाते हुए उसने देश-कालको बनाया। तो भी ईश्वरकी सृष्टि सदा रहनेवाली सृष्टि नहीं है। संसारका आदि है, सृष्टि सान्त, परिवर्तनशील और नाशमान है। ईश्वर सर्व शक्तिमान है उसने भौतिक तत्त्वोंको भी पैदा किया।

२—इस्लामिक दर्शन

द्वितीय अध्याय

२—इस्लामिक दर्शन

पैगंबर मुहम्मद और इस्लामकी सफलता

§ १—इस्लाम

ईसाकी छठी सदी वह समय है, जब कि भारतमें एक बहुत शक्तिशाली राज्य—गुप्त साम्राज्य—खतम होकर छोटे-छोटे राज्योंमें बँटने लगा था, तो भी अन्तिम विश्वगवके लिए अभी एक सदीकी देर थी। गुप्तोंके बाद उत्तरी भारतके एक विशाल केन्द्रीकृत राज्यको पहिले मौखरियोंने और फिर अन्तमें काफी सफलताके साथ हर्षवर्द्धनने हस्तगत कर दिया था। जिस वक्त इस्लामके संस्थापक पैगंबर मुहम्मद अपने धर्मका प्रचार कर रहे थे, उस वक्त भारतमें हर्षवर्द्धनका राज्य था, और ज्ञान-नभमें धर्मकीर्त्ति जैसा एक महान नक्षत्र चमक रहा था।

छठी सदीका गरब होने तकके अरबकी भाँति ही छोटे-छोटे स्वतन्त्र कबीलोंमें बँटा हुआ था। आजकी भाँति ही उस वक्त भी भेड़-ऊँटको पालना और एक दूसरेको लूटना अरबोंकी जीविकाके 'वैध' साधन थे। हाँ, इतना अन्तर कमसे कम पिछले महायुद्ध (१९१४-१८ ई०)के बादसे जरूर है, कि इब्न-सऊदके शासनमें कुछ हद तक कबीलोंकी निरंकुशताको अरबके बहुतसे भागोंमें कम किया गया। पैगंबर मुहम्मदके समय अरबके कुछ भाग तथा लाल-सागरके उस पार अबीसीनियाका ईसाई राज्य था। उसके ऊपर मिश्र रोमनोंके हाथमें था। उत्तरमें सिरिया

(लमिश्क) और [illegible] (राजधानी विजातयम् वस्तु तुनिया, वर्तमान इस्लामबुल)के शासनमें था। [illegible] मेसोपोटामिया (इराक) और आस [illegible] सासानी (पारसी) शहंशाह शासन कर रहे थे। अरब वह ([illegible]) कबीलोंका [illegible] इलाका था। उसके पश्चिमी भागमें मक्का (मक्का) और यसरिब (मदीना)के शहर वाणिज्य-मार्गपर होनेसे [illegible] महत्त्व प्राप्त थे। यसरिबका महत्त्व तो उसके निजारत और [illegible] मौसमीके कारण था किन्तु मक्का सारे अरब जातिका महान तीर्थ था जहाँपर साल में एक बार लड़ाकू अरब भी हथियार हाथमें लेना रोककर शान्तिपूर्वक तीर्थ करने आते थे और इसी वक्त एक महीनेके लिए वहाँ व्यापारिक मेला भी लग जाता था।

१—पैगम्बर मुहम्मद

(१) जीवनी—अरबोंका सब प्रकारसे पतन कारण मक्केके बाशिन्दे पुजारियों (पादरी)का उसमें कोई आमदनी तो नहीं थी, बल्कि वह कुल और सम्पत्तिमें अरबोंमें ऊँचा स्थान रखते थे। पैगम्बर मुहम्मदका जन्म ५७० ई० में मक्केके एक पुजारी वंश—कुरैश—में हुआ। उनके माता-पिता बचपनमें मर गये और बच्चेकी परवरिशका भार दादा और चाचापर पड़ा।

मक्केके पुजारी पुजा-पत्रीके अतिरिक्त व्यापार भी किया करते थे। एक बार उनके चाचा अबूतालिब अपने व्यापारके लिए शामको जा रहे थे तो बालक मुहम्मदने ऊँटकी नकेल पकड़कर उसे चलनेका इतना जबरदस्त आग्रह किया कि उन्हें साथ ले जाना पड़ा। इस तरह होनेसे सभाजनोंमें पण्डित हो इस्लामके भावी पैगम्बरने आस-पासके देशों उत्तर और मरु-भूमियों वगैरहमें भिन्न भिन्न धार्मिक रीति रवाजोंको देखा था। जवान होनेपर व्यापार निपुणताकी बात सुनकर उनकी भावी पत्नी तथा मक्केकी एक धनाढ्य विधवा खदीजाने उन्हें अपने चाकरोंकी मुखिया बनाकर व्यापार करनेके लिए भेजा। पैगम्बर मुहम्मद आजन्म

अनपढ़ (उम्मी) रहे, यह बात विवादास्पद है।—खासकर एक बड़े व्यापारी कारवाँके सरदारके लिए तो भारी नुकसानकी बात हो सकती है। यदि ऐसा हो तो भी अनपढ़ता अब अबुद्धि नहीं होता। लेकिन मुहम्मद एक तीव्र प्रतिभाके धनी थे, इसमें सन्देह नहीं और इसी प्रतिभाके साथ पुस्तकोंसे भी जयादा वह देश-देशान्तरके यातायात तथा तरह-तरहके लोगोंके संगतिसे फायदा उठा सकते थे, और उन्होंने फायदा उठाया भी।

पैगम्बर मुहम्मदके अपने जमाने धर्म अरबोंमें मूर्तिपूजा थी, और काबाके मन्दिरमें लगभग सब जाति ३६० देवताओं और साथ ही किसी दूर तारेका अंश भाग एक कृष्ण-पाषाण (हज्र अस्वद) पूजा जाता था। पत्थरके देवता प्रकृतिका सर्वश्रेष्ठ उपज समझकर बहिनों या अमृतपुत्रोंका उपासना कर रहे थे, किन्तु पुरोहित-वर्ग अपने स्वार्थके लिए हर तरहकी बुद्धि मूलक चालाकियोंसे इसे जारी रखना चाहता था। मुहम्मद साहब उन आदमियोंमें थे, जो समाजमें रूढ़िवश माना जाता हुआ एक बातको बिना अनुभवके मानना नहीं पसन्द करते। साथ ही अपनी वाणिज्य यात्राओंमें वह एक धर्मवादियोंसे मिले जुले थे, जिनका धर्म अरबोंकी मूर्तिपूजाकी अपेक्षा ज्यादा प्रशस्त मालूम होता था। खासकर ईसाई यहूदी और अनेक मतोंकी शान्ति तथा बौद्धिक वातावरण और बहुदिवसीय मूर्तिपूजित [illegible] ज्यादा पसन्द आई थी। यह तो इसमें साबित है कि कुरानमें कहीं पैगम्बरी और इसाकी या मानवताकी आरम्भ भेज गये (रसूल) और उनकी तोराह (पुराना बाइबल) और इञ्जील (इन्जील) पुस्तक माना गया है। उनका महिमाका [illegible] दुहराया गया, और बार-बार यह बात साबित करनेका प्रयत्न किया गया है, कि उनमें एक पैगम्बर आनेका भविष्यवाणी है जो कि आप हुए [illegible] मुहम्मद अरबी हैं। लेकिन अरब धर्म मूर्तिपूजक और बहुदेवपूजक था, किन्तु साथ ही यहूदी, ईसाई तथा आस-पास के दूसरे [illegible] सम्पर्कमें आनेसे यह बात भी स्वीकार करते थे कि [illegible] (एक नहीं अल्लाह) है।

[illegible] आशंका कि इस [illegible] पर [illegible] दिखाई पड़ने वाला [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] स्वयं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (जिनका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सिर्फ आँख मूदकर स्वप्न देखनेवाला नहीं हो सकता था। वह भलीभाँति समझते थे कि जिस शान्ति, व्यापार और धर्म प्रचारमें सशस्त्र बाधाको रोकना वह चाहते हैं, वह निश्चेष्ट ईश्वर, प्रार्थना तथा हथियार रख निहत्थे बन जानेसे स्थापित नहीं हो सकती। उसके लिए एक उद्देश्यकी लेकर आदमियोंकी सुसंगठित सशस्त्र सिपाहकी जरूरत है, जो कि अपने ही सबल और सुव्यवस्थित सम्बलसे इस्लाम (=शान्ति)-स्थापनामें बाधा देनेवालोंको नष्ट या पराजित करनेमें सफल हो।

हाँ, तो मुहम्मद साहेबके विस्तृत नजरेंने उन्हें बतला दिया था, कि कबीलोंको एक विस्तृत राज्य बनाने, उस विस्तृत राज्यकी अपनी सीमा तथा शक्ति बढ़ानेके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है। पुरोहितोंके मारे मक्काके समाजमें उनके धर्मका विरोध करते हुए एक नये धर्मका पैगम्बर बनना आसान काम न था। मुहम्मद साहेब काफी आत्मसंयमी व्यक्ति थे, ईसाई साधुओंकी भाँति हराकी गुफाओंमें भी उन्होंने कितनी ही बार एकान्तवास किया था।

(२) **नई आर्थिक व्याख्या**—चाहे वह तिब्बतकी हो, अरब या हमारे सीमा प्रान्तकी सभी कबीला प्रथा रखने वाली जातियोंमें पशुपालन कृषि या वाणिज्यके अतिरिक्त लूटकी आमदनी (=माल-गनीमत) भी वैध जीविका मानी जाती रही है। माले-गनीमतको बिलकुल हराम कर देनेका मतलब था, अरबोंके पुराने भावपर ही नहीं, उनके आर्थिक आयके जरियेपर हमला करना—चाहे इस तरहकी आयसे सारे अरब-परिवारोंको फायदा न पहुँचता हो, किन्तु जूयेके पासेकी भाँति कभी अपनी किस्मतके पलटा खानेकी आशाको तो वह छोड़ नहीं सकते थे। हजरत मुहम्मद-ने 'माल-गनीमत' नाम रखते हुए भी उसे ईरान और रोमके देशविजयका "भेंटो जैसे किन्तु उससे विस्तृत अर्थमें बदलना चाहा तो भी मालूम होता है, अरब प्रायद्वीपमें यह प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ। वहाँके लोगोंने माले-गनीमतका वही पुराना अर्थ समझा और ऊपरसे उसे अल्लाहके आदेशके एन मुताबिक समझ लिया, जिसका ही परिणाम यह था कि

अरबमें बाहर अन अरबी लोग जहाँ लूट छापाके धमका हटाकर शान्ति ([illegible]) स्थापन करने लगे हुए तब समय हुए वहाँ अरबी कबीले तरह भी बन पहिलेके पुराने [illegible] आज भी करीब-करीब कायम मालूम होते हैं। जो कुछ भी हो माल-गनीमतकी नई व्याख्या—विजयसे प्राप्त होने वाली आमदनी जिसमेंसे ⅕ सरकारी खजाने (बैत उल माल) को मिलना चाहिए और बाकी योद्धाओंमें बराबर-बराबर बाँटना चाहिए—विस्तृत राज्य-स्थापन करनेकी इच्छावाले एक व्यवहार कुशल दूरदर्शी शासककी सूझ थी जिसने आर्थिक लाभकी इच्छाको जागृत रखकर पहिले अरबी रेगिस्तानके कठोर जीवन-यापन बद्दू तरीके और पीछे हर मुल्कके इस्लाम न जानने वाले समाजमें प्रचारित तथा कठोर नीतिसे इस्लामी मतमें भरती होनेकी भारी आवश्यकता पैदा किया और साथ ही बढ़ते हुए बैत-उल-माल एक [illegible] संगठित शासनकी बुनियाद रक्खी। माल-गनीमतके बाँटनेमें समानता तथा सब अरबी कबीले वाले व्यक्तियोंके भीतर भाई चारे बराबरीके स्थानमें इस्लामी समानता का जो नमूना लोगोंके सामने रखा वह बहुत अंशमें कुछ समय तक और पिछले अंशमें बहुत कुछ गया एक भारी संगठन पैदा करनेमें सफल हुआ है।

माल-गनीमतकी इस व्याख्या आर्थिक वितरणके एक नये जबरदस्त क्रान्तिकारी रूपको पैदा किया जिसने कि अल्लाहके स्वर्गीय नाम तथा अनन्तजीवनके स्वप्नसे उत्पन्न होने वाला निर्भीकतासे मिलकर दुनियामें वह उथल-पुथल की जिसे कि हम इस्लामका सजीव इतिहास कहते हैं। यह सच है कि माल-गनीमतकी यह व्याख्या कितने ही अंशोंमें लारयान (दारा) सिकन्दर चन्द्रगुप्त मौर्य ही नहीं दूसरे साधारण राजाओंके विजयोंमें भी मानी जाती थी किन्तु वह उतनी दूर तक न जाती थी। वहाँ साधारण योद्धाओंमें वितरण करते वक्त उतनी समानताका ख्याल नहीं रखा जाता था, और सबसे बढ़कर कमी तो यह थी, कि विजित जातिके साधारण निम्न लोगोंको इसमें भागीदार बनाकर कोई

मौका न था। इस्लामने विजित जातिके अधिकांश धर्मों और प्रभु-वर्गको जहाँ पामाल किया, वहाँ अपनी शरणमें आनेवाले—सामन्त पीड़ित—वर्गको विजय-लाभमें साझीदार बनानेका रास्ता बिलकुल खुला रक्खा। स्मरण रखना चाहिए, इस्लामका जिससे मुकाबिला था, वह सामन्त पुरोहितोंका शासन था, जो कि सामन्तशाही शोषण और दासताके आर्थिक ढाँचेपर आश्रित था। यह सही है कि इस्लामने इस मौलिक आर्थिक ढाँचेको बदलना अपना उद्देश्य कभी नहीं घोषित किया, किन्तु उसके मुकाबिलमें अरबमें अभ्यस्त कबीलों जैसे भ्रातृत्व और समानताका शब्द इस्तेमाल किया, जिससे कि उसने सीमित शासन वर्गके नीचेकी साधारण जनताके कितने ही भागको आकर्षित और मुक्त करनेमें सफलता पाई। यद्यपि इस्लामने कबीलेमें पिछड़े हुए सामाजिक ढाँचेसे यह बात ली थी, किन्तु परिणामतः उसने इस अर्थमें एक प्रगतिशील शक्तिका काम किया और महाँ पुराने वाम प्रभुत्व सामन्त-परिवारों और उनके स्वार्थोंको नष्टकर हर जगह नई शक्तियोंको सत्तापर आनेका मौका दिया। यह ठीक है कि यह शक्तियाँ भी आम उसी 'व्यापार-बढ़ाओ' का अख्तियार करनेवाली थीं। लोगों-लोगियोंकी मालिकी सम्पत्ति तथा युद्धमें लूटका माल बनानेके लिए अरबोंने इस्लामका दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि उस समयका सारा सभ्य संसार—चीन, भारत, ईरान, रोम—इसे अनुचित नहीं समझता था।

यहूदी और ईसाई धर्म-सम्प्रदायोंका पैगम्बर अरबी कबीलाकी दृष्टिसे गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था—यदि यह अनुचित आक्षेप न हो तो उन्होंने ध्यानसे उन्हें सुना था। और फिर आपने अपनी अवस्थामें खूब आगा-पीछा सोचकर अपनी अलग आस्थाका पंथ (इस्लाम) स्थापित किया। उनकी शैली सहज थी और सभी कुरानोंकी तरह बारम्बार अपना 'कुरान-सार' दुहराते हैं, इसलिए यहाँ सभी लिखना चाहना न बन इस पुस्तकका विषय है। पैगम्बर मुहम्मदने यही मानव 'धर्म सारांश' की अंधेरी अवस्थाको चालाकी किया, और फिर

पत्नि उनकी स्त्री खदीजा उनके धर्मका स्वीकार किया। विरोधी विरोध तो बराबर थे किन्तु उनके अनुयायी—जिनमें उनके ही भाँति सच्चाई [illegible] थे—बढ़ते ही गए। मक्केके पुजारी—[illegible]—इससे उनके जानके ग्राहक बन गए और अन्तमें उन्हें मक्का छोड़ यसिरबको गए (६२४ ई०) किया ([illegible]) पर जाते समय हुए [illegible] स्थानान्तरित किया मन [illegible] किया और मदीनतु नबी (नबीका नगर) [illegible] यसिरबका नाम ही मदीना पड़ गया। मक्का [illegible] इस्लाम एक धार्मिक सुधारका प्रचार था, किन्तु इस्लाम उनका अपने अनुयायियोंका धार्मिक सामाजिक विचारक व्यवस्थापक एवं नेता भी बना गया जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी मृत्यु समय (६३२ ई०) पश्चिमी अरबके लिए ही प्रमुख [illegible] इस्लाम [illegible] नहीं रक्खा किया बल्कि उन्होंने अपनी निरङ्कुशता [illegible] एक [illegible] स्वीकार किया और सारे अरब भाषा भाषी [illegible] भी उसके लिए आकांक्षा पैदा कर दी।

२—पैगम्बरके उत्तराधिकारी

हजरत मुहम्मद स्वयं राजतन्त्रके विरुद्ध न थे इसीलिए पहिले उन्होंने अपने पड़ोसी राजाओं—[illegible] जो शाह और रोमके हिराक्लियस—को इस्लाम कबूल करनेका न्यौता दिया था और यह उनके राज्यपर किसी तरहका हस्तक्षेप स्वीकार करके नहीं किया गया था। तो भी उन्होंने अरब और उसके बाहर इस्लामी जगतके सामने जिस राजनीतिक ढाँचेकी कल्पना रखी उसमें निरङ्कुश राजतन्त्र नहीं, सच्चे मानमें राजतन्त्रका भी गुंजाइश न होकर, छोटे-छोटे कबीलोंकी जगह अनेक-[illegible]व्यापी एक विशाल कबीलेका स्थान काम कर रहा था—इस्लाम अरब और अरब मिश्र मुल्कोंमें फैले सभी अरबी तथा अ[illegible] अरबी मुसलमान अपनेको एक कबीला समझें। पैगम्बरके जीवन भर वह खुद ईश्वरका आदेश भेजा हुआ उनका सर्दार है, किन्तु पैगम्बरकी मृत्युके बाद

सर्दारको इस बड़े इस्लामी कबीलेका विश्वास भाजन होना चाहिए। विश्वास-भाजन होनेकी कसौटी क्या है इसके बारेमें पैगम्बरने कोई साफ व्यवस्था नहीं बनाई, अथवा कबीलेके नमूनेपर जिस व्यवस्थाको बनाया जा सकता था, वही बनी-उमैया (६६१-७५० ई०)के सिंहासन तक पहुँच राज्यमें व्यवहृत नहीं की जा सकती थी। ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है, कि उनके निर्माणमें अपने उत्तराधिकारी शासक (=खलीफा)के लिये यही ख्याल हो सकता था कि वह कबीलेके सर्दारकी भाँति कबीलेके सामने अपनेको जवाबदेह मानें और कैसरों तथा शाहनशाहोंकी भाँति अपनेको निरंकुश न समझें। लेकिन यह व्यवस्था जो एक छोटे कबीलेमें सफलतापूर्वक चल ही चल सकती है अनेक प्रकारकी भाषाओं-संस्कृतियों-देशोंसे मिलकर बने इस्लामी राज्यमें चल न सकती थी और पैगम्बरके निःस्वार्थ आदर्शवादी सहकारियों—अबूबकर (६३२-३४ ई०), उमर (६३४-४४ ई०) उस्मान (६४४-५६ ई०) तथा अली (६५६-६१ ई०)की खिलाफत (उत्तराधिकारी शासन)के बीतते बीतते बिलकुल बेकार साबित हो गई। पैगम्बरके आँख मूँदनेके ३९ वर्ष बाद अमीर म्वाविया (६६१-८० ई०)के हाथमें शासनकी बागडोर गई और तबसे उसके सारे उत्तराधिकारी चाहे वह उसके अपने खान्दान—बनी उमय्या[1] (६६१-७४७ ई०)—के हों या बनी अब्बास (७४९-१०३७ ई०[2]) के शाहों और कैसरोंकी भाँति ही स्वेच्छाचारी शासक थे।

३—अनुयायियोंमें पहिली फूट

हर एक कबीलेके अलग अलग इलाहा (=खुदाओं)को हटाना

---

[1] म्वाविया (६६१-८० ई०), यजीद प्रथम (६८०-७१७), उमर द्वितीय (७१७-२० ई०), यजीद द्वि० (७२०-२४ ई०), हिशाम (७२४-४३ ई०), वलीद (७४३ ई०), यजीद तृतीय (७४३-४४), इब्राहीम म्वाविया (७४४-४७ ई०) [2] अब्बुल्-अब्बास (७४९-५४ ई०) और उसके सन्तान।

थी कि उसमें कहीं अच्छा यह है कि रोमन साम्राज्य ढाँचेको रहने दिया जाय और लोगोंको अपने शासन मानने तथा अधिकसे अधिक आदमियोंको इस्लाममें दाखिलकर उसे मजबूत करनेका प्रयत्न किया जाय। म्वाविया ने राज्यप्रणालीका स्वीकार किया।

इस्लामका जो लोग अरबियतका अभिन्न अंग समझते थे उन्हें यह बुरा लगा। जिन्होंने पैगंबरके सादे जीवनको देखा था जिन्होंने कबीलोंकी विलासशून्य, भ्रातृत्वपूर्ण समानताके जीवनको देखा था उन्हें म्वावियाकी हरकत बुरी लगी। शायद गाउनी चादर और खजूरके नीचे सोनेवाला अथवा दासको ऊँटपर चढ़ाये यरुशलिममें दाखिल होनेवाला उमर अब भी खलीफा होता, तो म्वाविया ऐसा न कर सकता किन्तु समय बदल रहा था। पैगंबरके दामाद और परम विश्वासी अनुयायी अलीको जब मालूम हुआ तो उन्होंने इसको सख्त निंदाकी इसे इस्लामपर भारी प्रहार समझ उसके खिलाफ आवाज उठाई। उनका मत था कि हमारी सल्तनत चाहे रोमपर हो या ईरानपर वह अरबी कबीलोंकी सादगी समानताका लिये होनी चाहिए। अलीकी आवाज अरण्य रोदन थी। सफल शासक म्वावियासे खलीफा उस्मानका नाराज होनेकी जरूरत न थी। म्वाविया और अलीमें स्थायी वैमनस्य हो गया किन्तु यह वैमनस्य सिर्फ दो व्यक्तियोंका वैमनस्य नहीं था बल्कि इसके पीछे पहिले तो विचारोंमें आग बनी तथा पिछली दो सामाजिक व्यवस्थाओं—सामन्तशाही एवं कबीलाशाही—का टक्कर प्रश्न था दूसरे दो सभ्यताओंकी टक्करके वक्त समझा था "दोमेंसे केवल एक का सवाल था।

अली (६५६ ६१) पैगंबरके सगे चचेरे भाई तथा एक मात्र दामाद थे। अपने गुणोंसे भी वह उनके स्नेहपात्र थे इसलिए कुछ लोगोंका ख्याल था कि पैगंबरके बाद खिलाफत उन्हींको मिलनी चाहिए थी किन्तु दूसरी शक्तियाँ और जबरदस्त थीं जिनके कारण अबूबकर उमर और उस्मानके मरनेके बाद अलीको खिलाफत मिली। दमिश्कके जबरदस्त गवर्नर म्वावियाकी उनकी आज्ञा थी किन्तु कबीलोंकी बगावट मदीनामें

बर खिलाफतका हकदार समझा था, कि अली स्वाबियोंको गवर्नरी से हटाकर बनी-उमय्या खान्दानको अपना दुश्मन बना महयुद्ध शुरू कर दे। अबाशी शासक स्वाबियोंको अधप्रकट बगावत तथा बाहरी शत्रुओंसे इस्लामके प्रभावित होनेका समय था। यद्यपि अली स्वाबियों का केन्द्र नष्ट बिगाड़ गए किन्तु स्वाबियोंको अली और उनके सन्तानसे सख्त अरुचि हो गई थी। अलीके मरनेके बाद स्वाबियोंने खिलाफतको अपने हाथमें करनेमें सफलता जरूर पाई किन्तु पैगम्बरकी एकलौती पुत्री फातमा तथा अलीके दोनों पुत्रों—हसन और हुसैन—के जीवित रहते वह पद मुश्किलसे ही मिल सकता था। आखिर लीपा-पोती करके तो खलीफाके साथ ठाठ-बाट और अपनी अकड़को मुकाबिला करके स्वाबियोंके विरुद्ध आसानीसे भड़काया जा सकता था। उसने हसनको तो उनकी बीवीके द्वारा जहर खिलाकर अपने रास्तेसे हटाया और हुसैनके खतरेको हटाने के लिए स्वाबियोंके बड़े यजीदने षड्यन्त्र किया। यजीदने अधीनता स्वीकारकर मक्केको मिटा डालनेके लिए हुसैनको बड़े आग्रहपूर्वक कूफा (यह बगदादके मुकाबिले यजीदका उस वक्त राजधानी थी) बुलाया। रास्तेमें कर्बलाके रेगिस्तानमें किस निर्दयताके साथ सपरिवार हुसैनको मारा गया वह दिल दिहला देनेवाली घटना इतिहासके हर एक विद्यार्थीको मालूम है।

हुसैनकी शहादत लासानी है। हर एक महत्त्व व्यक्तिको सहानुभूति हसन तथा उनके ६६ साथियोंके प्रति होना जरूरी है। यजीदके सरकारी खत्तेके हाथ भी जब कर्बलाके शहीदोंके सरोंसे भरे कूफामें यजीदके सामने रखे गये और नशेमें यजीदने हुसैनके सिरका दाँत हटाया तो एक बड़े मुँहसे यकायक आवाज निकल आई—'अरे! धीरे! यह पैगम्बरका नाती है। अल्लाहकी कसम मैंने खुद इन्हीं ओठोंको हजरतके मुँहसे चुम्बित होते देखा था। मानवताके न्यायालयमें हम यजीदको भारी अपराधी ठहरा सकते हैं किन्तु प्रकृति एसी मानवताकी कायल नहीं है उसका हर अगला कदम पिछलेके ध्वंसपर बढ़ता है। आखिर अली हुसैन या उसके अनुयायी विकासको सामन्त शाहीसे आगेकी ओर नहीं

बल्कि पीछे खींचकर कबीलाशाहीकी ओर ले जाना चाहते थे, जिसमें यदि सफलता होती तो इस्लाम उस कला, साहित्य, दर्शनका निर्माण न कर सकता, जिसे हमने भारत, ईरान मेसोपोटामिया तुर्की और स्पेनमें देखा, और यूनानी दर्शन द्वारा फिरसे वह युरोपमें उस पुनर्जागरणका न करा पाता, जिसने आगे चलकर वैज्ञानिक युगका अस्तित्वमें ला दुनिया की कायापलट करनेका जबरदस्त आयोजन कराया।

४–इस्लामी सिद्धान्त

कुरानी इस्लामके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त हैं—ईश्वर एक है, वह बहुत कुछ साकार सा है, और उसका मुख्य निवास इस दुनियासे बहुत दूर छः आसमानोंका पारकर सातवें आसमानपर है। वह दुनियाको सिर्फ कुन (हो) कहकर अभावसे बनाता है। प्राणियोंमें आगसे बने फरिश्ते (देवता) और मिट्टीसे बने मनुष्य सर्वश्रेष्ठ हैं। फरिश्तोंमेंसे कुछ गुमराह होकर अल्लाहके सदाके लिए दुश्मन बन गए हैं और वे मनुष्योंको गुमराह करनेकी कोशिश करते हैं, इन्हें ही शैतान कहते हैं। इनका सरदार इब्लीस है, जिसका फरिश्ता होते वक्तका नाम अज़ाज़ील था। मनुष्य दुनियामें केवल एक बार जन्म लेता है। और ईश्वर-वचन (कुरान)के द्वारा विहित (पुण्य) निषिद्ध (पाप) कर्म करके उसके फलस्वरूप अनंतकालके लिए स्वर्ग या नर्क पाता है। स्वर्गमें सुंदर प्रासाद अंगूरोंके बाग शहद शराबकी नहरें, एकसे अधिक सुन्दरियाँ (हूरें) तथा बहुतसे तरुण चाकर (गिल्मान) होते हैं। दया, सत्य भाषण, चोरी न करना आदि सर्वधर्म साधारण भले कामोंके अतिरिक्त नमाज़ रोज़ा (उपवास) दान (ज़कात) और हज (जीवनमें एक बार काबा-दर्शन) ये चार मुख्य हैं। निषिद्ध कर्मोंमें अनेक देवताओं और उनकी मूर्तियोंका पूजन, शराब पीना, हराम मांस (सुअर तथा बलमा बिना पेड़ मारे गये जानवरका मांस) खाना आदि हैं।[1]

---

[1] विस्तारके लिये देखो मेरा "कुरानसार"।

तृतीय अध्याय

यूनानी दर्शनका प्रवास और उसके अरबी अनुवाद

§ १—अरस्तूके ग्रन्थोंका पुनः प्रचार

इस्लामिक ज्ञान [illegible] अरस्तूके ज्ञान तथा उ[illegible] नव अफलातूनी (पिथागोर अफलातून [illegible]) दर्शनके पुराने विवरण और नई व्याख्या [illegible] यह हमें आगे मालूम होगा। यद्यपि अफ[illegible] (प्लाटो) तथा दूसरे यूनानी दार्शनिकोंके ग्रन्थोंके भी भाषान्तर अरबीमें हुए, किन्तु इस्लामिक [illegible] सदा अरस्तूका अनुसरण करते रहे इस लिए एक बार फिर हम पाठकोंको तूसी कृतियोंकी जीवनयात्रापर नजर डालनी पड़ती क्योंकि उसी यात्राका एक महत्त्वपूर्ण भाग इस्लामिक ज्ञानका निर्माण है।

१—अरस्तूके ग्रन्थोंकी गति

अरस्तूके मरने (२२ ई० पू०) के बाद उसकी पुस्तकें (स्वरचित तथा संगृहीत) उसके शिष्य तथा सम्बन्धी थ्योफ्रास्तु (देवभ्रात)के हाथमें आई। थ्योफ्रास्तु स्वयं ज्ञानिक और दर्शन अध्यापनमें अरस्तूका उत्तराधिकारी था इसलिए वह इन पुस्तकोंकी कदर जानता था। लेकिन २८७ ई० पू०में जब उसकी मृत्यु हुई, तो यह सारी पुस्तकें उसके शिष्य नेलुसको मिली और फिर १३३ ई० पू०के करीब तक उसीके खानदानमें रहीं। इसके बीचहीमें यह खानदान क्षुद्र एसियामें प्रवास कर

गया, और साथ ही इस ग्रन्थराशिका भी लता गया। लेकिन इस समय इन किताबोंको बहुत ही छिपा रखनेकी—धरतीमें गाड़कर रखनेकी कोशिश की गई कारण यह था कि ईसा पूर्व तीसरी दूसरी सदीके यूनानी राज बड़े ही विद्याप्रेमी थे (इसकी बानगी हम भारतके यवन-राजा मिनान्दरमें मिलगी) और पुस्तक संग्रहका उन्हें बहुत शौक था। १३३ ई० पू०में रोमनोंने यूनान शासित देशों (क्षुद्र एसिया आदि) पर अधिकार किया। इसी समय नलुमके परिवारवाले अरस्तूके ग्रन्थोंमें पुड़िया तो नहीं बाँधने लगे थे क्योंकि वह कागजपर नहीं लिखे हुए थे, और वैसा करनेमें उतना नफा भी न था, बल्कि उन्होंने उन्हें तह खोल निकालकर बाजारमें बेंचना शुरू किया। संयोगवश यह सारी ग्रन्थ राशि अथेन्स (यूनान) के एक विद्या प्रेमी अमीर अल्पीकनने खरीद लिया, और काफी समय तक वह उसके पास रही। ८६ ई० पू० में रोमन सेनापति सलरसलाने जब एथेन्स विजय किया तो उसे उस ऐतिहासिक नगरके साथ उसकी महान देन अरस्तूकी यह ग्रन्थ-राशि भी हाथ लगी जिसे कि वह रोममें उठा ले गया, और उसे अंधकारपूर्ण तहखानेमें रखनेकी जगह एक सार्वजनिक पुस्तकालयमें रख दिया। इस प्रकार दो शताब्दियोंके बाद अरस्तूकी कृतियोंको समझदार दिमागोंपर अपना असर डालनेका मौका मिला। अन्द्रानिकुस अरस्तूके लिखे लेखोंको नियमानुसार क्रम-बद्ध किया।

अरस्तूकी कृतियोंकी जो तीन पुरानी सूचियाँ आजकल उपलब्ध हैं उनमें ल्वजानि लारितुकी सूचीमें १४६ अनानिसुकी सूचीमें भी पुस्तकोंकी संख्या करीब-करीब उतनी ही है। किन्तु अन्द्रानिकुस जो सूची स्वयं अरस्तूके संग्रहको देखकर बनाई उसमें उपरोक्त दोनों सूचियोंसे कम पुस्तकें हैं। पहिले दो सूचीकारोंने अरस्तू-संवाद और लेख, कथा-पुस्तकें प्राणि वनस्पति-सम्बन्धी साधारण लेखों ऐतिहासिक, किस्सों धर्म-सम्बन्धी मामूली पुस्तकोंको भी अरस्तूकी कृतियोंमें शामिल कर दिया है, जिन्हें कि अन्द्रानिकुस अरस्तूके ग्रन्थ नहीं समझता। वस्तुतः हमारे यहाँ जैसे व्यास बुद्ध, शंकरके

जन्म २३३ ई०में शाम (सिरिया)के नायर नगरमें हुआ था, किन्तु इसने शिक्षा सिकन्दरियामें प्लोतिनुके पास पाई, और यहीं पीछे अध्यापन करने लगा। इसने अरस्तूकी पुस्तकोंपर विवरण और भाष्य लिखे। तर्कशास्त्रके विद्यार्थियोंके लिए इसने एक प्रकरण ग्रन्थ ईसागोजी लिखा, जिसे अरबोंने अरस्तूकी कृति समझा। यह ग्रंथ आज भी अरबी मदरसोंमें उसी तरह पढ़ाया जाता है, जैसे संस्कृत विद्यालयोंमें तर्क-संग्रह और मुक्तावलि।

ईसाई धर्म दूसरे सामीय एकेश्वरवादी धर्मोंकी भांति दर्शनका विरोधी था भक्तिवाद और दर्शन (बुद्धिवाद)में सभी जगह ऐसा विरोध देखा जाता है। जब ईसाइयोंके हाथमें राज शासन आया, तो उसने इस खतरेको दूर करना चाहा। किस तरह पादरी थेवफिलने ३०० ई०में सिकन्दरियाके सारे पुस्तकालयोंको जला दिया और किस तरह ४१५ ई०में ईसाइयोंने सिकन्दरियामें गणितके आचार्य हिपाशियाका बड़ी निर्दयताके साथ वध किया, इसका जिक्र हो चुका है। अन्तमें ईसाई राजा जस्तीनियनने ५२९ ई०में राजाज्ञा निकाल दर्शनका पठन-पाठन बिलकुल बन्द कर दिया।

§ २—यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास और दर्शनानुवाद

१—यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास

दर्शनद्रोही जस्तीनियनके शासनके बर्बरतासे रोमन साम्राज्यके पड़ोसमें उसका प्रतिद्वन्द्वी ईरानी साम्राज्य था, जिसने अभी किसी ईसाई या दूसरे असहिष्णु सामी धर्मको स्वीकार न किया था, उस समय ईरानका शाह शाह कबाद (४८७-९८ ई०) था।

मज्दक—कबादके समय ईरानका विख्यात दार्शनिक मज्दक मौजूद था। दर्शनमें उसके विचार भौतिकवादी थे। वह साम्यवाद और मधवाद का प्रचारक था। उसकी शिक्षा थी—सम्पत्ति व्यक्तिक नहीं सामूहिक होनी चाहिए सारे मनुष्य समान और एक परिवार-सम्मिलित होने चाहिए। संयम, श्रद्धा जीव-दया रखना मनुष्य होनेकी जवाबदेही है। मज्दककी शिक्षाका ईरानियोंमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ, और खुद कबाद भी जब

नामसे दूसरोंके बनाये गये ग्रन्थ लेकर उनके साथ जोड़ दिये गये, वही बात अरस्तूके साथ भी है।

अरस्तूकी दुनियाका विषय क्रमसे लगाकर जितने भागोंमें बाँटा गया है उनमें मुख्य यह हैं—(१) तर्क-शास्त्र (२) भौतिक-शास्त्र, (३) अति भौतिक (अध्यात्म)-शास्त्र (४) आचार (५) राजनीति। तर्कशास्त्रमें ही अलंकार आचार तथा प्राणि शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ भी शामिल हैं।

२—अरस्तूका पुनः पठन-पाठन

अरस्तूके ग्रन्थोंके पठन-पाठनमें आसानी पैदा करनेके लिए सिकन्दर अफ्रोडिसियसने विवरण लिखे। विवरण लिखते वक्त उसने अरस्तूकी असली विचारधारा लिखनेका खूब ख्याल रखा और इसमें अद्वितीय सूझमें उसे सफलता मिली।

सिकन्दरके साम्राज्यके जब टुकड़े-टुकड़े हुए तो मिश्र-सेनापति तालमी (अलेक्जेंडरके लड़कोंमें तुरसाय)के हाथ आया तबसे ४३ ई० पू० तक तालमी वंशने उसपर शासन किया और धीरे धीरे मिश्रकी राजधानी सिकन्दरिया (अलिक्सुन्दरिया, अलसन्द) व्यापार-केन्द्रके अतिरिक्त विद्या-केन्द्र होनेसे दूसरा अथेन्स बन गई। ईसाई धर्मका प्रचार जब रोममें बढ़ने लगा था उस वक्त यूनानी-दर्शनके पठन-पाठनका जबरदस्त केन्द्र सिकन्दरिया थी। इस वक्त नव अफलातूनी दर्शनका प्रचार बढ़ा यह हम पहिले बतला चुके हैं। फिलो यूदियो (ई० पू० २५ ५० ई०) सिकन्दरियाका एक भारी दर्शन अध्यापक था। इसकी तीसरी सदीमें प्लोतिनु (२०५ ७१ ई०) सिकन्दरियामें दर्शन पढ़ाता था। ये सभी दार्शनिक रहस्यवादी नव अफलातूनी दर्शनके अनुयायी थे किन्तु इनके पठन-पाठनमें अरस्तूके ग्रन्थ भी शामिल थे। पोफुर[1] (पोर्फोरियोस) भी यद्यपि दर्शनमें नव अफलातूनी था, किन्तु उसने अरस्तूके ग्रन्थोंका समझनेकी पूरी कोशिश की। इसका

---

[1] देखो फारावी, पृष्ठ ११४ ५ [2] Porphyry

जन्म २३३ ई०में शाम (सिरिया)के तायर नगरमें हुआ था किन्तु इसने शिक्षा सिकन्दरियामें प्लोतिनुके पास पाई और यहीं पीछे अध्यापन करने लगा। इसने अरस्तूकी पुस्तकोंपर विवरण और भाष्य लिखे। तत्वशास्त्रके विद्यार्थियोंके लिए इसने एक प्रकरण ग्रन्थ ईसागोजी लिखा, जिसे अरबोंने अरस्तूकी कृति समझा। यह ग्रंथ आज भी अरबी मदरसोंमें उसी तरह पढ़ाया जाता है, जैसे संस्कृत विद्यालयोंमें तर्क-संग्रह और मुक्तावलि।

ईसाई धर्म दूसरे सामीय एकेश्वरवादी धर्मोंकी भाँति दर्शनका विरोधी था भक्तिवाद और दर्शन (बुद्धिवाद)में सभी जगह ऐसा विरोध देखा जाता है। जब ईसाइयोंके हाथमें राज शासन आया, तो उसने इस खतरेको दूर करना चाहा। जिस तरह पादरी थेवफिलने ३०० ई०में सिकन्दरियाके सारे पुस्तकालयोंको जला दिया और जिस तरह ४१५ ई०में ईसाइयोंने सिकन्दरियामें गणितके आचार्य हिपाशियाको बड़ी निर्दयताके साथ वध किया, इसका जिक्र हो चुका है। अन्तमें ईसाई राजा जस्तीनियनने ५२९ ई०में राजाज्ञा निकाल दर्शनका पठन-पाठन बिलकुल बन्द कर दिया।

§ २—यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास और दर्शनानुवाद

१—यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास

दर्शनद्रोही जस्तीनियनके शासनके बर्बरतासे रोमन साम्राज्यके पड़ोसमें उसका प्रतिद्वंद्वी ईरानी साम्राज्य था, जिसने अभी किसी ईसाई या दूसरे अ-सहिष्णु सामी धर्मको स्वीकार न किया था उस समय ईरानका शाह-शाह कवद (४८७ ९८ ई०) था।

मज्दक—कवदके समय ईरानका विख्यात दार्शनिक मज्दक मौजूद था। दर्शनमें उसके विचार भौतिकवादी थे। वह साम्यवाद और संघवादका प्रचारक था। उसकी शिक्षा थी—सम्पत्ति व्यक्तिक नहीं सार्वजनिक होनी चाहिए सारे मनुष्य समान और एक परिवार-सम्मिलित होने चाहिए। संयम श्रद्धा, जीवन्या रखना मनुष्य होनेकी जवाबदेही है। मज्दककी शिक्षाका ईरानियोंमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ, और खुद कवद भी जब

मजबूर हुए, इनमें सिम्पलु और देमासिपु भी थे। इन्होंने नौशेरवाँके राज्यमें शरण ली। शरण देनेमें नौशेरवाँकी उदार हृदयताका उतना हाथ न था, जितना कि अपने प्रतिद्वंद्वी रोमन सम्राट् विरोधियोंको शरण देनेकी भावना। अपने पूर्वजोंकी भाँति नौशेरवाँका भी रोमन कैसरसे अक्सर युद्ध ठना रहता था। एक युद्धका अनिर्णयात्मक तौरपर खतम कर ५४९ ई०में उसने रोमको पराजितकर अपनी शर्तोंपर सुलह करनेमें सफलता पाई। सुलहकी शर्तोंमें एक यह भी थी कि रोमन कैसर अपने राज्यमें धार्मिक (दार्शनिक) विचारोंकी स्वतन्त्रता रहने देगा। इस संधिके अनुसार कुछ विद्वान् स्वदेश लौटनेमें सफल हुए किन्तु सिम्पल और देमासियुको लौटनेकी इजाजत न मिल सकी।

(१) ईरानी (पहलवी) भाषामें अनुवाद—नौशेरवाँने जन्दीशापूरमें एक विद्यापीठ कायम किया था जिसमें दर्शन और वैद्यककी शिक्षा खास तौरसे दी जाती थी। इस विद्यापीठमें इस समय पठन-पाठनके अतिरिक्त कितने ही यूनानी दर्शन तथा दूसरे ग्रंथों (जिनमें पौलस पर्सा द्वारा अनुवादित अरस्तूके तर्कशास्त्रका अनुवाद भी है)का पहलवीमें अनुवाद हुआ। अनुवादकोंमें कितने ही नस्तोरीय सम्प्रदायके ईसाई भी थे जो कि खुद कैसर-स्वीकृत ईसाई सम्प्रदायके कोपभाजन थे।

ज़ुर्वानवाद (ईरानी नास्तिकवाद)—यहाँ पर यह भी याद रखना चाहिए कि ईरानमें स्वतन्त्र विचारकी धारा पहिलेसे भी चली आती थी। नौशेरवाँसे पहिले यज़्दगिर्द द्वितीय (४३९-५७ ई०)के समय एक नास्तिकवाद प्रचलित था, जिसे ज़ुर्वानवाद कहते हैं। ज़ुर्वान पहलवी भाषामें काल (अरबी—दह्र) को कहते हैं। ये लोग कालको ही मूल कारण मानते थे, इसलिए इन्हें ज़ुर्वानवादी कालवादी (अरबी—दह्रिया) कहते थे। नास्तिक होते भी यह भाग्यवाद के विश्वासी थे।

(२) सुरियानी (सिरियाकी) भाषामें अनुवाद—ईसवी सनकी पहिली सदियोंमें दुनियाके व्यापारक्षेत्रमें सिरिया (शामी) लोगोंका एक खास स्थान था। जिस तरह वे ईरानी रोम भारत और चीनके व्यापारमें

पधानता रखता था उसी तरह पश्चिमी एशिया, अफ्रीका और यूरोप—पश्चिममें फ्रांस तक—का व्यापार सिरियाके हाथमें था। बल्कि मध्यकालमें सिरियाके ईसाइ इस बातके सबूत हैं, कि सिरियन सौदागर दक्षिण भारत तक दौड़ लगाते थे। व्यापारके साथ धर्म, संस्कृतिका आदान प्रदान होना स्वाभाविक और सिरियामें यही था यूनानी दर्शनके साथ था। सिरियाके विद्यालय यूनानी सभ्यताके साथ उसके दर्शनको भी मिस्रियों (मिस्र), अलियाज़ (क्षुद्र-एशियाके यूनानी नगर) में नसीबीन (जज़ीरापार) और मसोपोतामिया निसिबी (ईराक एडेसा) तक फैलाया। पश्चिमी और पूर्वी (जैकोबी) दोनों ईसाई सम्प्रदायोंकी धर्म भाषा सुरियानी (सिरियाकी भाषा) थी किन्तु उसके साथ उनके मदरसों यूनानी भाषा भी पढ़ाई जाती थी। एडेसा (मसोपोतामिया) भी ईसाइयोंका एक विद्याकेन्द्र था जिसकी बदौलत एडेसाकी भाषा (सुरियानी एक बोली) साहित्यिक भाषाके रूपमें तक पहुँच गई। उनके अध्यापकोंके नस्तोरियस विचार लेकर ४८९ ई०में एडेसाके मठ-विद्यालयको बंद कर दिया गया जिसके बाद उसे निसिबी (सिरिया)में लाया गया।

(क) निसिबी (सिरिया)—निसिबी नगर ईरानियोंके अधिकृत प्रदेशमें था, और सासानी शाहका बरदहस्त उसके ऊपर था। नस्तोरीय ईसाई सम्प्रदायके धर्मकी शिक्षाके साथ-साथ यहाँ दर्शन और वैद्यककी भी पठन-पाठन होता था। इसलिये और विद्यार्थियों और अध्यापकोंका भुकाव देखा आकर अधिक दर्शन धर्मनेताओंकी चिन्ता पड़ी, और ५९० ई०में उन्होंने नियम बनाया कि जिस कमरेमें धर्म-पाठ हो वहाँ लौकिक विद्याका पाठ नहीं होना चाहिए।

मसोपोतामियाके उस भागमें जिसमें निसिबी एडेसा तथा हरानके शहर थे, उस समय सुरियानी भाषा भाषी था। पिछले महायुद्ध (१९१४-१८ ई०)के बाद मसोपोतामियाके सुरियानी ईसाइयोंको किस तरह निर्दयतापूर्वक कत्ल आम किया गया था इसे अभी बहुतसे पाठक भूले

न होगा। आज मसोपोतामिया (इराक) सिरिया (क्षुद्र एसियाका एक भाग) मिश्र, मराकोस जो अरबी भाषा देखी जाती है वह इस्लाम और अरबके प्रसारके कारण हुआ। इस तरह ईसाकी प्राथमिक शताब्दियोंमें एदेस्सा और उसका पड़ोसी नगर ईरान भी सुरियानी भाषा-भाषी था।

मसोपोतामियाके इन विद्यापीठोंमें चौथीसे आठवीं सदी तक बहुतसे यूनानी-दर्शन तथा शास्त्रीय-ग्रंथोंका तर्जुमा होता रहा, जिनमें सर्जियस (४६६ ५३६ ई०)के अनुवाद विषय और परिमाण दोनोंके ख्यालसे बहुत पूर्ण थे। जब मसोपोतामियापर इस्लामका अधिकार हो गया, तब भी सुरियानी अनुवादका काम जारी रहा, एदेस्साके याकूब (६४० ७०८ ई०) ने अपने अनुवाद इसी समय किये थे। इन अनुवादोंमें सब जगह मूलके अनुकरण करनेकी कोशिश की गई है किन्तु यूनानी देवी-देवताओं तथा महापुरुषोंके स्थानपर ईसाई महापुरुषोंको रखा गया है। इस बातमें अरब अनुवाद और भी आगे तक गये। सुरियानी अनुवादोंमें अरस्तूके तर्कशास्त्रका ही अनुवाद ज्यादा देखा जाता है, और उस वक्तके सुरियानी विद्वान् अरस्तूको सिर्फ तर्कशास्त्री समझते थे।

इन सिरियन (सुरियानी) लोगोंने पीछे आठवीं दसवीं सदीमें बगदादके खलीफाके शासनमें यूनानी ग्रंथोंका सुरियानी अनुवादोंसे मन्दसे या स्वतन्त्र रूपसे अरबी भाषामें तर्जुमा किया। सुरियानियोंका सबसे बड़ा महत्त्व यह है, कि यूनानी अपने दर्शनको जहाँ लाकर छोड़ देते हैं वहाँसे वह उसे आगे—विचारमें नहीं कालमें—ले जाते हैं, और अरबोंको आगेकी जिम्मेवारी देकर अपने कार्यको समाप्त करते हैं।

(ख) **हरानके साबी**—जब यूनान तथा दूसरे पश्चिमी देशोंमें ईसाई धर्मके जबर्दस्त प्रचारसे यूनानी तथा दूसरे देवी-देवता भूल जा चुके थे, तब भी मसोपोतामियाके हरान नगरमें सभ्य मूर्तिपूजक मौजूद थे। जो यूनानके दार्शनिक विचारोंके साथ-साथ देवी-देवतोंमें श्रद्धा रखते थे, किन्तु सातवीं सदीके मध्यमें इस्लामिक विजयके साथ उनके देवताओं और

[illegible] थी इसलिए उनका पूजा-अर्चा [illegible] हो किन्तु [illegible] विचारकों [illegible] करना उनका आसान न था। पाद्री [illegible] शास्त्रियों [illegible] इस्लाम, [illegible] विचारों [illegible] भारी [illegible] था, जिसके लिए वे [illegible] मुसलमान उन्हें बराबर [illegible] रहे। [illegible] यूनानी [illegible] अरबी [illegible] भी [illegible] था।

३—यूनानी दर्शन-ग्रंथोंके अरबी अनुवाद (७०४—१००० ई०)

प्रथम चार अरब खलीफोंके बाद अमीर म्वाविया (६६१ ८० ई०) ने खलीफा बनकर बनी-उमैया (अरबी) एवं सामन्तशाही व्यवस्थाके [illegible] और हुकूमत [illegible] साथ बनी-उमैयाके [illegible] हम लिख कर चुके हैं। म्वाविया बनू (बनी-उमैया)की [illegible] (६५१ ७८० ई०)में [illegible] धर्मका [illegible] प्रचारक गुरुओं [illegible] कोशिश की गई किन्तु जहाँ तक राज्य व्यवस्था तथा दूसरे सांस्कृतिक जीवन-[illegible] सम्बन्ध था अरबोंने उन सभी सभ्य जातियोंसे कितना ही बातें सीखनेकी कोशिश की। जिस सम्पर्क वह [illegible] आये। विशेषकर दरबारी ठाट-बाट [illegible] उन्होंने बहुत कुछ [illegible] की। उजड़ू अरबोंकी [illegible] आलोचना तथा [illegible] कायम बचानेके लिए अमीर म्वावियाने [illegible] ही चालाकीसे राजधानीका [illegible] बदल लिया था और इस प्रकार [illegible] मन्त्रि सिर्फ एक [illegible] रह गया।

बनी उमय्याद शासनकालमें ही इस्लामी सल्तनत मध्य एशियासे उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तक फैल गई थी [illegible] आया है और एक प्रकार जहाँ तक अरब तलवारका सम्बन्ध था, यह उनकी सफलताकी चरम सीमा था। इसके बाद इस्लाम युगोंमें एशिया भारतीय सागरके बहुतसे भागोंपर फैला जरूर, किन्तु उसके फैलानेवाले अरब नहीं अन्य अरब मुसलमान थे।

पहिली तबाहमें अरबी मुसलमानोंने कबीलाशाहीके सवालको तो छोड़ दिया, किन्तु समझौता इतनेहीपर होने वाला नहीं था। जो अन्य अरब ईरानी या तामी जातियाँ इस्लामको कबूल कर चुकी थीं, वह असभ्य बद्दू नहीं बल्कि अरबोंसे बहुत ऊँचे दर्जेकी सभ्यताकी धनी थीं, इसलिए वह अरबकी तलवार तथा धर्म (इस्लाम)के सामने सर झुका सकती थीं किन्तु अपनी मानसिक तथा बौद्धिक संस्कृतिको तिलाजलि देना उनके बसकी बात न थी, क्योंकि उसका मतलब था सारी जातिमेंसे बौद्धिक योग्यताको हटाकर अज्ञता—तारुण्यसे लौटकर शैशव—में जाना। यही वजह हुई, जो बनी-उमय्याके बाद हम इस्लामी शासकोंका समझौतेमें और आगे बढ़ते देखते हैं।

म्वाविया यजीद उमर (२) कुछ शासन थे किन्तु जैसे-जैसे राजवंश पुराना होता गया, खलीफा अधिक शक्तिमें हीन होते गये, यहाँ तक कि म्वावियाके आठवें उत्तराधिकारी इब्न-म्वाविया (७४४-४७ ई०)को तलवार हाथ धोना पड़ा। जिस कूफाका शासक रहते वक्त यजीदने हुसनके खूनसे अपने हाथोंको रँगा था वहींके एक अरब-सरदार अब्दुल् अब्बास (७४९-५४ ई०)ने अपने खलीफतकी घोषणा की। खलीफाको कबीलेका विश्वासपात्र होना चाहिए यह बात तो बनी-उमय्याने ही खतम कर दी थी, और दुनियाके दूसरे राजाओंकी भाँति तलवारको अन्तिम निर्णायक मान लिया था इसलिए अब्बासकी इस हरकतकी शिकायत वह क्या कर सकते थे? अब्बासने बनी-उमय्याके शाहजादोंमेंसे जिन्हें पाया उन्हें कतल किया, यद्यपि यह कत्ल उतना हृदयनाक न था, जैसा कि कत्लेआम शहादाका, किन्तु इतिहासके पुराने पाठको कुछ अंशमें "दुहराया जरूर। इन्हीं शाहजादोंमेंसे एक—अब्दुरहमान दाखिल पश्चिमकी ओर भाग गया और स्पेन तथा मराकोमें अपने वंशके शासनको कुछ समय तक और बचा रखनेमें समर्थ हुआ।

अब्बासने सारे एसियाई इस्लामी राज्यपर अधिकार जमाया। आरम्भिक समयमें अब्बासी राजवंश (अब्बासियों)ने भी अपनी राजधानी

[illegible] रखा किन्तु अब्बासीके बद [illegible] मंसूर (७५४-७५ ई०)ने ७६२ में बगदाद नगरको बसाया, और पीछे राजधानी भी वहां बदल दी गई। अब खिलाफत एक तरहसे अरबी वातावरणसे छूटकर आ गई—"[illegible] गुरिस्तानी—वातावरण में आगई इसलिए अब्बासी खलीफाओं पर बाहरी प्रभाव ज्यादा पड़ने लगा। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आरम्भ में मुसलमानों में अरबी भाषाका ज्ञान न होने के कारण मौलवी [illegible]। पैगम्बरकी बेटी फातिमा [illegible] अलि [illegible] यज्दजिर्द [illegible] (६३४-४२ ई०)की पुत्री हुसैनबानू थी। [illegible] इस बारेमें और [illegible] था। [illegible] बात अब्बासियोंके बारेमें थी। [illegible] कि जिन खलीफाओंको अब भी अरब समझा जाता था उनमें भी अब अरब खून [illegible] था। यह और वातावरण मिलकर उनपर कितना प्रभाव डाल सकते थे यह जानना आसान है।

(१) अनुवाद-कार्य—उपरोक्त कारणोंसे बगदादके खलीफाओंको पहिले खलीफाओंसे विचारके सम्बन्धमें ज्यादा उदार होना पड़ा। उनकी सल्तनतमें उदारता समरकन्द, बलख, नीशापुर, बगदाद, कूफा, दमिश्क आदिमें बड़े बड़े विद्यापीठ कायम हुए जिनमें आरम्भमें यद्यपि कुरान और इस्लामका ही शिक्षा दी जाती थी किन्तु समयके साथ उन्हें दूसरी विद्याओं की ओर भी ध्यान देना पड़ा। मंसूर (७५४-७५) हारून (७८६-८०९ ई०) और मामून (८१३-३३ ई०) अरबी साहित्यके और विद्वान थे जिनके दरबारमें दूसरे विद्वानोंका बड़ा सम्मान होता था। वे स्वयं विद्वान थे और इनके शाहजादोंकी शिक्षा कुरान उसकी व्याख्याओं और परम्पराओं तक ही सीमित न थी बल्कि उनकी शिक्षामें यूनानी, [illegible] भारतीय ज्योतिष और गणित भी शामिल थे। गरज इस प्रकार अब्बासी खलीफाओंमें अरबके साथ-साथ बन्दुओंकी यदि कोई चीज बाकी

---

[1] यह नाम भी पारसी है जिसका संस्कृत रूप होगा भग(वद)दत्त= भगवानकी दी हुई।

रह गई थी, तो वह अरबी भाषा थी जो कि उस वक्त सारे इस्लामी सल्तनतकी राजकीय तथा सांस्कृतिक भाषा थी।

खलीफा प्रथम (६८० ७१७ ई०)के पुत्र खालिद (मृ० ७०४ ई०) को कीमिया (रसायन)का बहुत शौक था। कहा है उसीने पहिले-पहिल एक ईसाई साधु द्वारा कीमियाकी एक पुस्तकका यूनानीसे अरबी भाषामें अनुवाद कराया। मंसूर (७५४-७७५ ई०)के शासनमें वैद्यक, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञानके ग्रन्थ पहलवी या सुरियानी भाषासे अरबीमें अनुवादित हुए। इस समयके अनुवादकोंमें इब्न अल-मुकफ्फाका नाम खास तौरसे मशहूर है। मुकफ्फा स्वयं ईरानी जातिका ही न था, बल्कि ईरानी धर्मका भी अनुयायी था। इसने बिना ही यूनानी दर्शन-ग्रन्थोंके भी अनुवाद किये थे, किन्तु बहुतसे दूसरे प्राचीन अरबी अनुवादोंकी भांति वह काल-कवलित हो गये, और हम तक नहीं पहुँच सके। किन्तु उसने प्रथम दार्शनिक विचारधारा प्रवर्तित करनेमें बड़ा काम किया था, इसमें तो शक हो नहीं।

हारून और मामूनके अनुवादकोंमें कुछ संस्कृत पंडित भी थे, जिन्होंने वैद्यक और ज्योतिषके कितने ही ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता दी। इस समयके कुछ ज्ञान-अनुवादक और उनके अनुवादित ग्रन्थ निम्नप्रकार हैं—

अनुवादक	काल	अनुवादित ग्रंथ	मूलकार
याहन (याहया) बिन बितरिक	नवीं सदी	तमाउस	अफलातू
	,,	प्राणिशास्त्र	अरस्तू
,,		मनोविज्ञान	
,,	,,	तर्कशास्त्रके अंश	,,
अब्दुल्ला नईमन	८३५ ई०	सोफिस्तिक	अफलातू

[illegible]	८ [illegible] ई०	भौतिक शास्त्र	[illegible]
[illegible]		[illegible]	
[illegible]			,,
[illegible]			[illegible]

मामून (८११ ३३ई०)के समय भी अनुवादका काम जारी रहा, और उस वक्तके प्रसिद्ध अनुवादकोंमें ९—[illegible] इब्न इस्हाक (९१० ई०) हबीश इब्न-[illegible], अबूबिश मत्ता इब्न-यूनुस् [illegible] (९४० ई०) अबू जकरिया इब्न आदी [illegible] (९७४ ई०), अबू अली ईसा जूरा (१००८ ई०) [illegible] (जन्म ९४० ई०)।

(२) समकालीन बौद्ध तिब्बती अनुवाद—अनुवाद द्वारा अपनी भाषाको समृद्ध तथा अपनी जातिको सुशिक्षित बनाना हर एक उन्नतिशील सभ्य या असभ्य जातिका [illegible] जाता है। चीनने [illegible] पहिली सदीसे सातवीं सदी तक हजारों भारतीय ग्रन्थोंका चीनीमें अनुवाद बड़े भारी आयोजन और परिश्रमके साथ इसीलिए कराया था। तिब्बती लोगोंको भी अरबके बद्दुओंकी भाँति खानाबदोश अपरिष्कृति रहित असभ्य जाति थे। उन्होंकी भाँति तथा उसी समयमें स्रोङ्-चन् गनपो (६२० ६८ ई०) जैसे नेताके नेतृत्वमें उन्होंने सारे हिमालय मध्य एशिया तथा चीनके पश्चिमी तीन सूबोंको जीत एक विशाल साम्राज्य कायम किया। और एक बार तो तिब्बती घोड़ोंने गंगा गङ्गके संगमका भी पानी पिया था। अरबोंकी भाँति ही तिब्बतियोंको भी एक विस्तृत राज्य कायम कर लेने पर कबीलेवाली तरीकेको छोड़ सामन्तशाही राजनीति और संस्कृतिको अपनाना पड़ा जिसमें राजनीति तो चीनसे ली। पैगंबर मुहम्मदकी तरह स्वयं धर्मचिन्तक न होनेसे स्रोङ्-चन गम्पो चीन भारत, मध्य एशियासे

अरस्तूकी पुस्तक।

प्रचलित बौद्ध धर्मको अपनाया जिससे उन्हें सभ्यता कला धर्म, साहित्य आदिकी शिक्षा तजीसे तथा बहुत सहानुभूतिपूर्वक तो दी जरूर किन्तु साथ ही अपने दुःखवाद तथा आदर्शवादी अहिंसावादकी इतनी गहरी घूट पिलाई कि थोड़े चनके बाद (६३० ६७२ ई०)के साथ ही तिब्बती जातिका जीवन-स्रोत सूख गया। तिब्बती अरबी दोनों जातियोंने एक ही साथ दिग्विजय प्रारंभ किया था एक ही साथ दोनोंने विजित जातियोंसे सभ्यताकी शिक्षा प्राप्त की। यद्यपि अतिशीत प्रधान भूमिके वासी होनेसे तिब्बती बहुत दूर तक तो नहीं बढ़े, किन्तु साम्राज्य विस्तारके साथ वह पश्चिममें बल्तिस्तान (कश्मीर) लदाख लाहुल स्पिती नेपाल दक्खिनमें हिमालयके बहुतसे भागों, भूटान और बर्मा तक वह जरूर फैले। सबसे बड़ी समानता दोनोंमें हम यह पाते हैं, कि मंसूर हारून-मामूनका समय (७५४ ६३३ ई०) करीब-करीब वही है जो कि ठि-त्सुग-तन और ठि-स्रोङ-द-चन, ठि-दे-चन्का (७४० ८७७ ई०)का है और इसी समय अरबकी भाँति तिब्बतने भी हजारों संस्कृत ग्रंथोंका अपनी भाषामें अनुवाद कराया, इसका अधिकांश भाग अब भी सुरक्षित है। यह दोनों जातियाँ आपसमें अपरिचित न थीं, पूर्वी मध्य एसिया (वर्तमान सिन्क्याङ्) तथा गिलगितके पास दोनों राज्योंकी सीमा मिलती थी और दोनों राज्योंके बीच मित्रतापूर्ण संधि भी हुई थी यद्यपि इस संधिके कारण सीमान्त जातियों—विशेषकर ताजिकों—को भारी अनर्थ हुआ था।

(३) **अरबी अनुवाद**—यदि हम अनुवादकोंके धर्मपर विचार करते हैं तो तिब्बती और अरबी अनुवादोंमें बहुत अन्तर पाते हैं। तिब्बती भाषाके अनुवादक चाहे भारतीय हों अथवा तिब्बती सभी बौद्ध थे। यह जरूरी भी था, क्योंकि वैद्यक छन्द काव्यके कुछ ग्रंथोंके अतिरिक्त जिन ग्रंथोंका अनुवाद उन्हें करना था वह बौद्ध धर्म या दर्शनपर थे। तिब्बती अनुवाद जितने शुद्ध हैं उसका उदाहरण और भाषामें मिलना मुश्किल है। अरबी अनुवादकोंमें कुछके नाम यहाँ हैं इनमें प्रायः सभी यहूदी ईसाई या साबी धर्मके माननेवाले थे।

हाज बिन शिबाल	इसा बिन-यूनुस्	इब्राहीम हरानी
फ़म्ता बिन-लूका	साबित बिन् कर	याकूब बिन् इस्हाक़ किन्दी
मा-सर्जियस	जारिया हम्सी	हनन इब्न इस्हाक़[1]
ईसा बिन-सर्जियस्	फ़ासान सर्जिस	अयूब रहावी
हजाज बिन मत	हसीन मतरान	यूसुफ़ तबीब
बज्जा रहावी	हरान	अबू-यसुफ़ योहन्ना
अब्द यशूअ बिन-बहरीज	नदरन	बिनरोब
नस्र यशूअ बिन-बहरीज	सनान बिन साबित्	यह्या बिन बितरीक
साबरा अस्कफ		

अ-मामून मनुवाल्क अपने धर्मका बदलना नहीं चाहते थे, और उनके मरनेपर इस्लामी नामकारी इस बारेमें क्या नीति थी इसका अच्छा उदाहरण इन जिब्राईलका है। खलीफा मंसूर (७५४-७५५ ई०)ने एक बार जिब्राईलसे पूछा कि तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते, उसने उत्तर दिया—अपने बाप-दादोंके धर्ममें ही मैं मरूँगा। चाहे वह जन्नत (स्वर्ग)में हो, या दोजख (नर्क)में मैं भी वहीं उन्हींके साथ रहना चाहता हूँ। इसपर खलीफा हँस पड़े और मनुवाल्कका भारी इनाम दिया।

---

[1] ये अरबी मुसलमान थे।

चतुर्थ अध्याय

दर्शनका प्रभाव और इस्लाममें मतभेद

§ १—इस्लाममें मतभेद

कुरानकी भाषा सीधी-सादी थी। किसी बातके कहनेका उसका तरीका वही था, जिसे कि हर एक उर्दू अनपढ़ समझ सकता था। इसमें शक नहीं उसमें कितनी ही जगह तुक अनुप्रास जैसे काव्यके शब्दालंकारों का ही नहीं बल्कि उपमा आदिका भी प्रयोग हुआ है किन्तु ये प्रयोग भी उतनी ही मात्रामें हैं जिसे कि साधारण अरबी भाषाभाषी अनपढ़ व्यक्ति समझ सकते हैं। इस तरह जब तक पैगंबर-कालीन अरबोंकी बौद्धिक तह तक बात रही, तथा इस्लामी राजनीतिमें उसीका प्रभाव रहा, तब तक काम ठीकसे चलता रहा किन्तु जैसे ही इस्लामिक दुनिया अरबके प्रायद्वीपसे बाहर फैलने लगी और उससे व विचार टकराने लगे जिनका जिक्र पिछले अध्यायोंमें हो आया है उसमें इस्लाममें मतभेद होना जरूरी था।

१—फिक्ह या धर्ममीमांसकोंका जोर

पैगंबरके जीते-जी कुरान और पैगंबरकी बात हर एक प्रश्नके हल करनेके लिए काफी थी। पैगंबरके देहान्त (६३२ ई०)के बाद कुरान और पैगंबरका आचार (सुन्नत या सदाचार) प्रमाण माना जाने लगा। यद्यपि सभी हदीसों (पैगंबर-वाक्यों स्मृतियों)के संग्रह करनेकी कोशिश शुरू हुई थी तो भी पैगंबरकी मृत्युके बाद एक सदी बीतते-बीतते अक्ल (बुद्धि)ने

[illegible] का [illegible] किया और [illegible] (=बौद्ध युक्ति) और [illegible] (=[illegible] धर्मग्रन्थ) का [illegible] उन्हें [illegible]। इसके [illegible] मीमांसाकारों भाँति इन्हों [illegible] मीमांसा—[illegible]—का भी इसपर जोर था, कि [illegible] स्वयं प्रमाण [illegible] उनके [illegible] पैगम्बर [illegible] तथा [illegible] प्रमाण [illegible]। मीमांसाकारों ने नित्य [illegible][1] काम्य कर्मों की भाँति [illegible] कर्मोंका भेद निम्न प्रकार किया है—

(१) नित्य या अवश्यकरणीय कर्म जिसके न करनेपर पाप होता [illegible] नमाज।

(२) नैमित्तिक (वार्षिक) कर्म जिसे धर्मने विहित किया है, और जिसके करनेपर पुण्य होता है, किन्तु न करनेसे पाप नहीं होता।

(३) अनुमोदित कर्म जिसपर धर्म बहुत जोर नहीं देता।

(४) असम्मत कर्म जिसके करनेकी धर्म सम्मति नहीं देता, किन्तु करनेपर कर्ताको दण्डनीय नहीं ठहराता।

(५) निषिद्ध कर्म जिसे कर्मकर्ता धर्म मनाही करता है और करने पर हर हालतमें कर्ताको दण्डनीय ठहराता है।

फिरके आचार्योंमें चार बहुत मशहूर हैं—

१ इमाम अबू हनीफा (७६७ ई०) कूफा (मेसोपोटामिया) के रहने वाले थे। इनके अनुयायियोंको हनफी कहा जाता है। इनका भारतमें बहुत जोर है।

२ इमाम मालिक (७१५ ९५ ई०) मदीना निवासी थे। इनके अनुयायी मालिकी कहे जाते हैं। स्पेन और मराक्को मुसलमान पहिले सारे मालिकी थे। इमाम मालिकने पैगम्बर-वचन (हदीस) को धर्मनिर्णयमें

---

[1] जिसके न करनेसे पाप होता है, अतः अवश्यकरणीय है।

नैमित्तिक (अर्थ आवश्यक) कर्म पापादिके दूर करनेके लिये किया जाता है। [2] काम्यकर्म किसी कामनाकी पूर्तिके लिये किया जाता है, और न करनेसे कोई हर्ज नहीं।

बहुत जोरके साथ इस्तेमाल किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्वानों-ने हदीसोंका जमा करना शुरू किया, और हदीसवाला (अहल-हदीस)का एक प्रभावशाली गिरोह बन गया।

३ इमाम शाफई (७६७-८२० ई०)ने शाफई नामक तीसरे फिर्का सम्प्रदायकी नींव डाली। यह सुन्नत (सदाचार)पर ज्यादा जोर देते थे।

४ इमाम अहमद इब्न-हंबलने हंबलिया नामक तीसरे फिर्का सम्प्रदायकी नींव डाली। यह ईश्वरको साकार मानते हैं।

हनफी और शाफई दोनों मतोंमें क्यास—सादृश्य द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचना—पर ज्यादा जोर रहा है और यह साफ है कि इमाम हनीफाके इस विचारपर पहुँचोंमें (कूफा)के बौद्धिक वायुमंडलने बहुत मदद दी। शाफईने इस बातमें हनफियोंसे बहुत कुछ लिया।

कुरान, सुन्नत (पैगंबरी सदाचार) क्यासके अतिरिक्त चौथा प्रमाण बहुमत (इज्माअ)का भी माना जाने लगा। इनमें पूर्व-पूर्वका उत्तरोत्तर प्रमाण समझा गया है।

२—मतभेदों (=फित्नों)का प्रारम्भ

(१) हुलूल—मुस्लिम ऐतिहासिक इस्लामके पहिले मतभेदको इब्न-सबा (सबा-पुत्र)के नामसे संबद्ध करते हैं जो कि सातवीं सदीमें हुआ था। इब्न-सबा यहूदीसे मुसलमान हुआ था और विरोधियोंके मुकाबिलेमें हजरत अली (पैगंबरके दामाद)में भारी श्रद्धा रखता था। इसीने हुलूल (अर्थात जीव अल्लाहमें समा जाता है)का सिद्धान्त निकाला था।

(पुराने शीआ)—इब्न-सबाके बाद शीआ और दूसरे सम्प्रदाय पैदा हुए। किन्तु उस वक्त तक इनके मतभेद दार्शनिक रूप न लेकर ज्यादातर कुरान और पैगंबर-सन्तानके प्रति श्रद्धा और अश्रद्धापर निर्भर थे। शीआ लोगोंका कहना था कि पैगंबरके उत्तराधिकारी होनेका अधिकार उनकी पुत्री फातमा तथा अलीकी सन्तानको है। हाँ आगे चलकर दोश-

[illegible]

(२) जीव धर्म [illegible]—[illegible] (अवर्ग) [illegible] (मगध) [illegible] [illegible] [illegible]

एक और सिद्धान्त पैदा किया जिसके अनुसार कुरानमें जो कुछ भी कहा गया है उसके अर्थ दो प्रकारके होते हैं—एक बाहरी (जाहिरा) दूसरा बातिनी (आन्तरिक या अभ्यन्तर)। इस सिद्धान्तके अनुसार कुरानके हर वाक्यका अर्थ उसके शब्दोंसे भिन्न किया जा सकता है और इस प्रकार सारी इस्लामिक परंपराको उलटा जा सकता है। इन सिद्धान्तके माननेवाले जिन्दीक कहे जाते हैं, जिनके ही तालीमिया (शिक्षार्थी) मुलहिद, बातिनी, इस्माइली आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। आगाखानी मुसलमान इसी मतके अनुयायी हैं।

§ २—इस्लामके दार्शनिक सम्प्रदाय

आदिम इस्लाम सीधा-सादा रेगिस्तानी लोगोंका भोलाभाला विश्वास था, किन्तु आगेकी ऐतिहासिक प्रगतिने उसमें गड़बड़ी पैदा कर दी इसका जिक्र कुछ हो चुका है। मेसोपोटामियाके बसरा जैसे नगर इस तरहके मतभेदोंके लिए उर्वर स्थान थे यह बात भी पीछेके पन्नोंको पढ़नेवाले आसानीसे समझ सकते हैं।

१—मोतजला सम्प्रदाय

बसरा मोतजलाकी जन्म और कर्म भूमि थी। मोतजला इस्लामका पहिला सम्प्रदाय था जिसने दर्शनके प्रभावको अपने विचारों द्वारा व्यक्त किया। उनके विचार इस प्रकार थे—

(१) जीव कर्ममें स्वतन्त्र—जीवको परतन्त्र माननेपर उसे बुरे कर्मोंका दंड देना अन्याय है, इसीलिए अबू यूनुसकी तरह मोतजली कहते थे, कि जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र है।

(२) ईश्वर सिर्फ भलाइयोंका स्रोत—इस्लामके सीधे-सादे विश्वासमें ईश्वर सर्वशक्तिमान् और अद्वितीय है उसके अतिरिक्त कोई सर्वोपरि शक्ति नहीं है। मोतजलाकी तर्कप्रणाली थी—दुनियामें हम भलाइयाँ ही नहीं बुराइयाँ भी देखते हैं, किन्तु इन बुराइयोंका स्रोत भगवान नहीं हो सकते क्योंकि वह केवल भलाइयोंके ही स्रोत (शिव)

है। भौतिकवादका स्थान मानव ही कारण ईश्वर तक आस्तिके रूप नहीं हो सकता।

(३) ईश्वर निर्गुण—हम जिन-सफवानकी तरह मोअतजली ईश्वरको निर्गुण मानते थे—क्या आदि गुणोंका स्वामी होनेपर ईश्वरके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके सनातन अस्तित्वको स्वीकार करना पड़ेगा, जिनपर कि ईश्वर अपने क्या आदि गुण प्रकाशित करता है जिसका अर्थ होगा ईश्वरके अतिरिक्त दूसरे भी चिरन्तन सनातन पदार्थ हैं।

(४) ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता सीमित—इस्लामके आम विश्वास था कि ईश्वरकी शक्ति अगाध है। मोअतजली पूछते थे—क्या ईश्वर अन्याय कर सकता है? यदि नहीं तो इसका अर्थ है ईश्वरकी शक्तिमत्ता इतनी विस्तृत नहीं है कि वह पराक्रमोंका भी करने लगे। पुराने मोअतजली कहते थे कि ईश्वर बुरा करनेमें समर्थ होते भी शिव होनेके कारण बुरा नहीं कर सकता। पीछेवाले मोअतजली ईश्वरमें ऐसी शक्तिका ही साफ-साफ अभाव मानते थे।

(५) ईश्वरीय चमत्कार (=मोजिज़ा) गलत—और धर्मोंकी भाँति इस्लामें—और उस युगमें भी—ईश्वर और पैगम्बरोंकी इच्छानुसार अप्राकृतिक घटनाओंका घटना माना जाता है। मोअतजली चिन्तकोंका कहना था कि हर एक पदार्थ अपने स्वाभाविक गुण रखते हैं, जो कभी बदल नहीं सकते। जैसे आगका स्वाभाविक गुण गर्मी है, जो कि आगके रहते कभी नहीं बदल सकती। पैगम्बरोंकी जानियाँ जिन्हें हम मोजिज़ा समझते हैं उनका या तो कोई दूसरा अर्थ है अथवा वह प्रकृतिके उन नियमोंके अनुसार घटित हुए हैं जिनका हमें ज्ञान नहीं है और हम उन्हें अप्राकृतिक घटना कह लेते हैं।

(६) जगत् अनादि नहीं सादि—दूसरे मुसलमानोंकी भाँति मोअतजली पथवाले भी जगतको ईश्वरकी कृति मानते थे। उन्हींकी तरह ये भी जगतका अभावसे भावमें आया मानते थे। इस प्रकार इस बातमें वह अरस्तूके जगत् अनादिवादके विरोधी थे।

(७) कुरान भी अनादि नहीं सादि—सनातनी मुसलमान मोतजलियोंके जगत् सादिवादसे खुश नहीं हो सकते थे क्योंकि जिस तरह ईश्वरकृत होनेसे वह जगत्को सादि मानते थे, उसी तरह ईश्वरकृत होनेके कारण वह कुरानको भी सादि मानते थे। अल्लाहकी भाँति कुरानको अनादि माननेको मोतजली द्वैतवाद तथा मूर्ति-पूजा जैसा दुष्कर्म बतलाते थे। हम कह चुके हैं कि कर्म स्वातन्त्र्य जैसे सिद्धान्तको लेकर जहमीन उमय्या खलीफोंके खिलाफ आन्दोलन खड़ा कर दिया था। अतः उमैय्याको बेदखल कर जब अब्बासीय खलीफा बने तो उनकी सहानुभूति कर्म स्वातन्त्र्यवादियों तथा उनके उत्तराधिकारियों—मोतजलियों—के विचारोंके प्रति होनी जरूरी थी। बगदादके मोतजली खलीफा कुरानके अनादि होनेके सिद्धान्तको कुफ्र (नास्तिकता) मानते थे और इसके लिए लोगोंको राजदण्ड दिया जाता था। कुरानको सादि बतला मोतजली अल्लाहके प्रति अपनी भारी श्रद्धा दिखाते हैं। यह बात न थी, इसमें उनका अभिप्राय यह था कि कुरान भी अनित्य ग्रन्थों में है इसलिए उसकी व्याख्या करनेमें काफी स्वतन्त्रताकी गुंजाइश है और इस प्रकार पुस्तककी अपेक्षा बुद्धिका महत्त्व बढ़ाया जा सकता है। उनका मत था—ईश्वरने जब जगत और मानवको पैदा किया तो साथ ही मनुष्यमें भलाई बुराई, सच्चाई झूठाईके परखने तथा भगवान्को जाननेके लिए बुद्धि भी प्रदान की। इस प्रकार वह ग्रन्थोक्त धर्मकी अपेक्षा निसर्ग(बुद्धि) सिद्ध धर्मपर ज्यादा जोर देना चाहते थे। यह ऐसी बात थी जिसके लिए सनातनी मुसलमान मोतजलियोंको क्षमा नहीं कर सकते थे और वस्तुतः काफिर, मोतजली तथा दहरिया (जड़वादी नास्तिक) उनकी भाषामें अब भी पर्यायवाची शब्द हैं।

(८) इस्लामिक वाद-शास्त्रके प्रवर्त्तक—मोतजली यद्यपि ग्रन्थवादके पक्षपाती न थे किन्तु साथ ही वह ग्रन्थको प्रमाणकोटिसे उठाना भी नहीं चाहते थे। बुद्धिवादी दुनियामें वह अच्छी तरह समझते थे कि, अरबोंकी भोली श्रद्धासे काम नहीं चल सकता, इसलिए उन्होंने ग्रन्थ (कुरान) और बुद्धिमें समन्वय करना चाहा, लेकिन इसका आवश्यक

परिणाम यह हुआ कि उन्हें जिन ही पुराने विद्वानों इन्कार करना पड़ा और दूसरी ओर आत्मा [illegible] की जरूरत महसूस हुई। इसी [illegible] लिए उन्हें इस्लामी आदर्शवाद (इस्लामी [illegible]) की शिक्षा दी गई। जो [illegible] आरम्भिक [illegible] आधुनिक समय [illegible] भी शिक्षा दी गई है। किन्तु पीछे यह [illegible] पुराने आधुनिकों [illegible] मालूम हुए।

मोतजलियों के इस्लाम प्रति [illegible] बारे में तो सन्देह करने का यह काफी प्रमाण है कि उन्हें यूनानी दर्शन तथा अरस्तू के [illegible] मत दुश्मन थे किन्तु [illegible] बुद्धि [illegible] इस्लाम पर [illegible] थे जिसे कारण [illegible] ही और इस्लामी 'सीध रास्ते' (सिरातल मुस्तकीम) से भटक जाना पड़ता था।

(९) मोतजली आचार्य—[illegible] मामून खलीफा (७८६-८१३ ई०) दूसरी भाषाओं से अरबी में अनुवाद करने का मुख्य काम था। इन आचार्यों [illegible] बौद्धिक नव-जागृति हुई और उसी कारण इस्लाम के बारे में जो [illegible] सन्देह [illegible] उसी के [illegible] लिए मोतजली सम्प्रदाय पैदा हुआ था। मोतजलियों में [illegible] होकर जिन विद्वानों ने इस [illegible] किया था उनमें मुख्य थे—

(क) अल्लाफ अबुल् हुजैल अल्-अल्लाफ—यह मोतजलियों में सबसे बड़ा विद्वान है। इसका देहान्त नवीं सदी के मध्य में हुआ था, और इस प्रकार शंकराचार्य का समकालीन था। शंकर की ही भाँति अल्लाफ भी एक जबरदस्त वाग्चतुर विद्वान तथा पूर्णरूपेण अपने मतलब के लिए दलीलों इस्तेमाल करने की कोशिश करता था। ईश्वर अद्वैत को निर्गुण सिद्ध करने में उसकी भी कितनी ही युक्तियाँ अपने सम-सामयिक शंकर के निर्विशेषवादिमात्र—ब्रह्माद्वैत—माधव तक की भाँति थीं। अल्लाह (ईश्वर या ब्रह्म) में कोई गुण (=विशेषण) नहीं हो सकता, क्योंकि गुण दो ही तरह रह सकता है या तो वह गुणी से अलग हो या गुणी

गुण, घटनाएँ, जाति (=सामान्य) ये सब शामिल हैं। सभी नामोंमें सत्य होना जरूरी है।

२—करामी संप्रदाय

मोतजलियोंकी कुरानकी व्याख्यामें तिरकुलोंको बहुतसे श्रद्धालु मुसलमान खतरेकी चीज समझते थे। नवीं सदी इसवीमें मोतजलियोंके विरुद्ध जिन लोगोंने आवाज उठाई थी, उनमें करामी सम्प्रदाय भी था। इसके प्रवर्तक मुहम्मद बिन-करामे सीस्तान (ईरान)के रहनेवाले थे। मोतजलोंने ईश्वरको साकार (सशरीर) तथा सगुण माननेसे भी इन्कार कर दिया था, इब्न करामने उसे बिलकुल एक मनुष्य—राजा—की तरह घोषित किया। इब्न-हमियाकी भांति उसका तर्क था—जो वस्तु साकार नहीं, वह मौजूद ही नहीं हो सकती।

३—अश्अरी सम्प्रदाय

जिस वक्त मोतजलियों और करामियोंके एक दूसरेके पूर्णतया विरोधी निर्गुणवाद और साकारवाद चल रहे थे उसी वक्त एक मोतजली परिवारमें अबुल हसन अशअरी (८७८-९३५ ई०) पैदा हुआ। उसने कहा कि मोतजला जिस तरहके प्रहारोंसे इस्लामको बचाना चाहते हैं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, इसलिए कुछ हद तक हमें मोतजलोंके बुद्धिमूलक विचारोंके साथ जाना चाहिए, किन्तु कोरा बुद्धिवाद इस्लामके लिए खतरेकी चीज है इसका भी ध्यान रखना होगा। इसी तरह तरपराकी अवहेलनासे इस्लाम पर जो अविश्वास आदिका खतरा हो सकता है, उसकी ओर भी देखना जरूरी है किन्तु साथ ही बुद्धिवादके तकाजेको बिलकुल उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना भी खतरनाक होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा इस्लामके प्रति शिक्षित प्रतिभाओंका तिरस्कार। इसलिए अशअरीने कहा कि ईश्वर राजा या मनुष्य-जैसा साकार व्यक्ति नहीं है। अशअरी और उसके सम्प्रदायके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार थे—

है। वह सारे शरीरमें व्यापक है। शरीर उसका साधन (करण) है। कल्पना और भावना आत्माकी गतिका वहन है। दीन और धर्ममें किसको प्रमाण माना जाय इसमें नज्जामका उत्तर शीआ जैसा है—पिता की शरीयतें इसका निर्णय नहीं कर सकते, यथार्थवक्ता (=आप्त) इमाम ही इसके लिए प्रमाण हो सकता है। मुसलमानोंके बहुमतको वह प्रमाण नहीं मानता। उसका कहना है—सारी जमात गलत धारणा रख सकती है, जैसा कि उनका यह कहना कि दूसरे पैगंबरोंकी अपेक्षा मुहम्मद अरबोंमें यह विशेषता थी कि वह सारी दुनियाके लिए पैगंबर बनाकर भेजे गये थे, जो कि गलत है, खुदा हर पैगंबरको सारी दुनियाके लिए भेजता है।

(ग) जहीज़ (८६९ ई०)—नज्जामका शिष्य जहीज़ एक सिद्ध हस्त लेखक तथा गंभीरचेता दार्शनिक था। वह धर्म और प्रकृति नियमके समन्वयको सत्यके लिए सबसे जरूरी समझता था। हर चीजमें प्रकृतिका नियम काम कर रहा है और साथ ही हर कामोंमें कर्ता ईश्वरकी झलक है। मानवबुद्धि कर्त्ताका ज्ञान कर सकती है।

(घ) मुअम्मर—मुअम्मरका समय ९०० ई०के आसपास है। अपने पहिले मातउरियोंसे भी ज्यादा निर्गुणवाद पर उसका जोर है। ईश्वर सभी तरहके द्वैतसे सर्वथा मुक्त है, इसलिए किसी गुण विशेषणकी उसमें संभावना नहीं हो सकती। ईश्वर न अपनेको जानता है और न अपनेसे भिन्न किसी वस्तु या गुणको जानता है, क्योंकि जानना स्वीकार करने पर ज्ञाता ज्ञेय आदि अनगिनत द्वैत आ पहुंचेंगे। मुअम्मरके मतसे गति स्थिति समानता असमानता आदि केवल काल्पनिक धारणायें हैं, इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। मनुष्यकी इच्छा कोई बंधन नहीं रखती। इच्छा ही एक मात्र मनुष्यकी क्रिया है, बाकी क्रियाएँ तो शरीरसे संबंध रखती हैं।

(ङ) अबू हाशिम बल्ही (९३३ ई०)—अबू हाशिमका मत था कि सत्ता और असत्ताके बीचकी कितनी ही स्थितियाँ हैं जिनमें ईश्वरके,

सम्बन्धके ज्ञानको भी आदमीकी आत्मामें पैदा करता है।

(२) भगवद्वाणी क़ुरान(=शब्द) एकमात्र प्रमाण—हिन्दू मीमांसकोंकी भाँति अशअरी सम्प्रदायवाले भी मानते हैं कि सच्चा (=निर्भ्रान्त) ज्ञान सिर्फ शब्द प्रमाण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हाँ, अन्तर इतना जरूर है कि अशअरी मीमांसकोंकी भाँति किसी अपौरुषेय शब्द प्रमाण (=वेद)को न मानकर अल्लाहके कलाम (=भगवद्वाणी) कुरानको सर्वोपरि प्रमाण मानता है। कुरानका सहारा लिये बिना अलौकिक स्वर्ग नर्क, फरिश्ता आदि वस्तुओंको नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियाँ आमतौरसे भ्रान्ति नहीं पैदा करतीं किन्तु बुद्धि हमें गलत रास्तेपर ले जा सकती है।

(३) ईश्वर सर्वनियम-मुक्त—ईश्वर सर्वशक्तिमान कर्त्ता है। वह किसी उपादान कारणके बिना हर चीजको हर क्षण बिलकुल नई पैदा करता है, इस प्रकार वह जगत्में देख जानेवाले सारे नियमोंसे मुक्त है सारे नैतिक नियमोंकी जिम्मेवारियोंसे वह मुक्त है। शरह मुवाफिक्रमें इस सिद्धान्तकी व्याख्या करते हुए लिखा है— अल्लाहके लिए यह ठीक है, कि वह मनुष्यको इतना कष्ट दे, जो कि उसकी शक्तिसे बाहर है। अल्लाहके लिए यह ठीक है कि वह अपनी प्रजा (=सृष्टि)को सुफल या दण्ड दे चाहे उसने कोई अपराध किया हो या न किया हो। (अल्लाह) जैसा अपने सेवकोंके साथ जो चाहे करे, अल्लाहको अपने बन्दोंके भावोंके ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं। अल्लाहको भगवद्वाणी (=कुरान) द्वारा ही पहिचाना जा सकता है, बुद्धिके द्वारा नहीं।'

इस सिद्धान्तके समर्थनमें अशअरी कुरानके वाक्योंको प्रमाणके तौरपर पेश करता है। जैसे कि—

"हुवल-काहिरो फौक-इबादिही' (वह अपने बन्दोंपर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है)।

"कुल् युल्लुन मिन इन्दे ल्लाहे' (यह सब अल्लाहकी ओरसे है)।

"व मा तशाऊन इल्ला अन्यशाअल्लाह' (तुम किसी बातको न चाहोगे जब तक कि अल्लाह नहीं चाहे)।

(१) कार्य-कारण नियम (=हेतुवाद)से इन्कार—मानजलाका मत था कि वस्तुके नैसर्गिक गुण नहीं होते, इसलिए मोजजा या अप्राकृतिक चमत्कार चलता है। दानिशमंदोंका कहना था कि कार्य-कारणका नियम अटूट है बिना कारणके कार्य नहीं हो सकता, इसलिए ईश्वरको कर्ता मानने पर भी उसे कारण (=उपादान-कारण)की जरूरत होगी, और जगत्के उपादान कारण—प्रकृति—को मान लेनेपर ईश्वर अद्वैत तथा जगत्की नित्य होगा—ये दोनों इस्लामी सिद्धान्त गलत हो जायेंगे। इन दोनों दिक्कतोंसे बचाव किए अश्अरीने कार्य-कारणके नियमको ही मानने से इन्कार कर दिया। कोई चीज बिना कारणके नहीं पैदा होती, खुदाने कार्यको भी उसी तरह बिलकुल नया पैदा किया, जैसे कि उसने उससे पहिलेवाली चीजको पैदा किया था। जिसे कि हम गलतीसे कारण कहते हैं। हर वस्तु परमाणुमय है और हर परमाणु क्षणभरका मेहमान है। पहिले तथा दूसरे क्षणके परमाणुओंका आपसमें कोई संबंध नहीं, दोनोंको उनके पैदा होनेके समय भगवान बिना किसी कारणके (=अभावसे) पैदा करते हैं। अश्अरीके मतानुसार न सूरजकी गर्मी जलका भाप बनाती है, न भापसे बादल बनता है, न हवा बादलको उड़ाती है, न पानी बादलसे बरसता है। बल्कि अल्लाह एक एक बूंदको अभावसे भावके रूपमें टपकाता है, अल्लाह बिना उपादान-कारण (=भाप)के सीधे बादल बनाता है। अश्अरी सर्वशक्तिमान ईश्वरके हर क्षण कार्यकारण-संबंधहीन बिलकुल नये निर्माणका उदाहरण एक बन्दरके रूपमें उपस्थित करता है। ईश्वर आदमीको बनाता है, फिर इच्छाको बनाता है, फिर लेखन शक्तिको, फिर हाथमें गति पैदा करता है, अन्तमें कलममें गति पैदा करता है। यहाँ हर क्रियाको ईश्वर अलग अलग सीधे तौरसे बिना किसी कार्य-कारणके सम्बन्धसे करता है। कार्य-कारणके नियमके बिना ज्ञान भी संभव नहीं हो सकता, इसके उत्तरमें अश्अरी कहता है—अल्लाह हर चीजको जानता है, वह सिर्फ दुनियाकी चीजों तथा जैसी वह दिखाई पड़ती है, उन्हींको नहीं पैदा करता, बल्कि उनके

सम्बन्धके ज्ञानका भी आदमीकी आत्मामें पैदा करना है।

(२) भगवद्वाणी क़ुरान(=शब्द) एकमात्र प्रमाण—हिन्दू मीमांसकोंकी भाँति अशअरी सम्प्रदायवाले भी मानते हैं कि सच्चा (=निर्भ्रान्त) ज्ञान सिर्फ शब्द प्रमाण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, हाँ, अन्तर इतना जरूर है कि अशअरी मीमांसकोंकी भाँति किसी अपौरुषेय शब्द प्रमाण (=वेद)को न मानकर अल्लाहके कलाम (=भगवद्वाणी) कुरानको सर्वोपरि प्रमाण मानता है। कुरानका सहारा लिये बिना अलौकिक स्वर्ग, नर्क, परिस्तान आदि वस्तुओंको नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियाँ आमतौरसे भ्रान्ति नहीं पैदा करती, किन्तु बुद्धि हमें गलत रास्तेपर ले जा सकती है।

(३) ईश्वर सर्वनियम-मुक्त—ईश्वर सर्वशक्तिमान् कर्त्ता है। वह किसी उपादान कारणके बिना हर चीजको हर क्षण बिलकुल नई पैदा करता है, इस प्रकार वह जगतमें देखे जानेवाले सारे नियमोंसे मुक्त है, सारे नैतिक नियमोंकी जिम्मेवारियोंसे वह मुक्त है। शरह मुवाक़िफ़में इस सिद्धान्तकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'अल्लाहके लिए यह ठीक है, कि वह मनुष्यको इतना कष्ट दे जो कि उसकी शक्तिसे बाहर है। अल्लाहके लिए यह ठीक है कि वह अपनी प्रजा (=सृष्टि)को सुफल या दंड दे चाहे उसने कोई अपराध किया हो या न किया हो। (अल्लाह-) ताला अपने सेवकोंके साथ जो चाहे करे अल्लाहको अपने बर्तावके भावोंके ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं। अल्लाहका भगवद्वाणी (=कुरान) द्वारा ही पहिचाना जा सकता है, बुद्धिके द्वारा नहीं।

इस सिद्धान्तके समर्थनमें अशअरी कुरानके वाक्योंको प्रमाणके तौरपर पेश करता है। जैसे कि—

'हुव ल-क़ाहिरु फ़ौक़ इबादिहीं (वह अपने बंदोंपर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है)।

'कुल् कुल्लुन मिन इन्दे ल्लाहे (कह 'सब अल्लाहकी ओरसे है)।

"व मा तशाऊन इल्ला अनँय्यशाअ ल्लाह' (तुम किसी बातको न चाहोगे जब तक कि अल्लाह नहीं चाहे)।

इस तरह ईश्वरकी सीमा रहित सर्वशक्तिमत्ता अशअरियोंके प्रधान सिद्धान्तोंमें एक है।

(४) देश, काल और गतिमें विच्छिन्न-बिन्दुवाद—हेतुवादके खण्डनके प्रकरणमें बतला चुके हैं कि अशअरी न जगतमें कार्यकारण नियमको मानता और न तो जगतकी वस्तुओंको देश, काल या गतिमें किसी तरहके अविच्छिन्न प्रवाहके तौरपर मानता है। अर्थात्—एक, दो, तीन

में हम किसी तरहकी अविच्छिन्न क्रम नहीं मानते। एककी संख्या समाप्त होती दोकी संख्या अस्तित्वमें आती है—पूछा जाय एकसे दोमें संख्यातान सर्पकी भाँति सरकता हुआ पहुँचता है या मेंढ़कीकी तरह कूदता, उत्तर मिलेगा—कूदना। गति देश या दिशामें वस्तुमें होती है। हम बाणको एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुँचते देखते हैं। सवाल है यदि बाण हर वक्त किसी स्थानमें स्थित है तो वह स्थिति—गति-शून्यता—रखता है, फिर उसे गति कहना गलत होगा। अब यदि आप दृष्ट गतिको सिद्ध करना चाहते हैं, तो एक ही रास्ता है, वह यह है कि यहाँ भी साँपकी भाँति सरकनेकी जगह संख्याकी भाँति गतिको भिन्न भिन्न कुदान मानें। अकारण परमाणु एक क्षणके लिए पैदा होकर नष्ट हो जाता है, दूसरा नया अकारण परमाणु अपने देश अपने कालके लिए पैदा होता है और नष्ट होता है। पहिले परमाणु और दूसरे परमाणुके बीच शून्यता—गति शून्यता, देश शून्यता है। यही नहीं हर पहिले क्षण ('अब') और दूसरे क्षण (अब)के बीच किसी प्रकारका संबंध न होनेसे यहाँ कालिक शून्यता है—काल जो है वह 'अब' है जो 'अब' नहीं वह काल नहीं—और यहाँ दो 'अब'के बीच हम कुछ नहीं पाते जो ही कालिक शून्यता है। अशअरी मंडक-कुदान (प्लुति)के सिद्धान्तसे ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता, हेतुवाद निषेध तथा वस्तु-गति-देश-कालकी परमाणु रूपता सभीको इस प्रकार सिद्ध करता है। यहाँ यह ध्यान रखनेकी बात है कि अशअरियोंने इस मेंढ़क-कुदान विच्छिन्न प्रवाह' 'बिन्दु घटना विच्छिन्न परमाणु सन्तति को वस्तु स्थितसे उत्पन्न होनेवाली किसी गुत्थीको सुलझानेके लिए

नहीं स्वीकार किया, जो कि हम आजके मायावादमें कवलम सिद्धान्त अथवा बौद्धोंके क्षणिक अनात्मवाद और मायमाय भौतिकवादमें पाते हैं। अशअरी इससे मोजज़ा (=दिव्य चमत्कार) ईश्वरकी निरंकुशता आदिको सिद्ध करना चाहता है। ऐसे सिद्धान्तसे स्वेच्छाचारी मुसलमान शासकों को अल्लाहकी निरंकुशताके पर्देमें अपनी निरंकुशताको छिपानेका बहुत अच्छा मौका मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

(५) पैगम्बरका लक्षण—पैगम्बर (=खुदाका भेजा) कौन है इसके बारेमें मवाक़िफ़ने कहा है—"(पैगम्बर वह है) जिसे अल्लाहने कहा—मैंने तुझे भेजा, या लोगोंको मेरी ओरसे (संदेश) पहुंचा या इस तरहके (दूसरे) शब्द। इस (पैगम्बर होने)में न कोई शान है और न योग्यता (का ख्याल) है, बल्कि अल्लाह अपने मर्जीमें जिसको चाहता है उसे अपनी कृपाका पात्र (पात्र) बनाता है।

(६) दिव्य चमत्कार (=मोजज़ा)—ऐसा तो कोई भी दावा कर सकता है कि मुझे खुदाने यह कह कर भेजा है, इसीके लिए अशअरी लोग ईश्वरी प्रमाणकी भांति दिव्य चमत्कार या मोजज़ाको पैगम्बरीके सबूतके लिए जरूरी समझते हैं। मोजज़ाको सिद्ध करनेकी धुनमें इन्होंने किस तरह हेतुवादसे इन्कार किया, और खुदाके हर क्षण नये परमाणुओंके पैदा करनेकी कल्पना का इसे हम बतला चुके हैं।

---

[1] "मन क़ाला लहू असल्तोका औ बल्लग़हुम् अन्नी, व मा हुवा मिन'-ल अल्फाज़। व ला यस्तरेतो फीहे शतुन, व ला एस्तेअदादुन बलि'ल्लाहो अल्लतसो बेरहमतेही मनंय्यशाओ मिन एबादेही।"

पंचम अध्याय

पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (१)

(शारीरक ब्रह्मवादी)

§ १–अज़ीज़ुद्दीन राज़ी (९२३ या ९३२ ई०)

शारीरक ब्रह्मवाद या शिवागारा प्राकृतिक दर्शनके इस्लामिक समर्थकोंमें इमाम राज़ी और पवित्र-संघ मुख्य थे। पवित्र-संघ कई कारणोंसे बदनाम हो गया जिससे मुसलमानोंपर उसका प्रभाव उतना नहीं पड़ सका किन्तु राज़ी इस बातमें ज्यादा सौभाग्यशाली था जिसका कारण उसकी नरम दार्शनिकता थी जिसके बारेमें हम आगे कहनेवाले हैं।

(१) जीवनी—अज़ीज़ुद्दीन राज़ीका जन्म पश्चिमी ईरानके रे शहरमें हुआ था। दूसरी धार्मिक शिक्षाओंके अतिरिक्त गणित, वैद्यक और शिवागारीय दर्शनका अध्ययन उसने विशेष तौरसे किया था। वैद्यकमें तो इतना ही कहना काफी है कि वह अपने समयका सिद्धहस्त हकीम था। वाक्विद्याके प्रति उसकी अश्रद्धा थी और तर्कशास्त्रमें शायद उसने अरस्तूकी एक पुस्तकसे अधिक पढ़ा न था। सरकारी हकीमके तौरपर वह पहिले रे और पीछे बगदादके अस्पतालका प्रधान रहा। पीछे उसका मन उचट गया और दर्शनकी धुन सवार हुई। इस यात्राकालमें वह कई सामन्तोंका कृपा-पात्र रहा जिनमें ईरानी सामानी वंशी (९०० ९९९ ई०) शासक मंसूर इब्न इस्हाक भी था जिसको कि उसने अपना एक वैद्यक ग्रन्थ समर्पित किया है।

(साधारण विचार)—राज़ीके दिलमें वैद्यक विद्याके प्रति भारी श्रद्धा थी। वैद्यकशास्त्र हजारों वर्षोंके अनुभवसे तैयार हुआ, और राज़ीका कहना था कि एक छोटे जीवनमें किसी व्यक्तिके तजर्बेसे भर लिए हजारों वर्षोंके तजर्बे द्वारा संचित ज्ञान ज्यादा मूल्यवान है।

(२) दार्शनिक विचार

(क) जीव और शरीर—शरीर और जीवमें राज़ी जीवको प्रधानता देता है। जीवन (=आत्मा)-संबंधी अस्वास्थ्य शरीरपर भी बुरा प्रभाव डालता है, इसीलिए राज़ी वैद्यके लिए आत्मा (=जीव)का चिकित्सक होना भी जरूरी समझता था। तो भी वह चिकित्सा बहुतसे आत्मिक रोगोंमें असफल रहती है जिसके कारण राज़ीका झुकाव निराशावादकी ओर ज्यादा था।—दुनियामें भलाईसे बुराईका पल्ला भारी है।

कीमिया (=रसायन) शास्त्रपर राज़ीकी बहुत आस्था थी। भौतिक जगत्के मूलतत्त्वोंके एक होनेसे उसको विश्वास था, कि उनके भिन्न प्रकारके मिश्रणसे धातुमें परिवर्तन हो सकता है। रसायनके विभिन्न योगोंसे विचित्र गुणोंको उत्पन्न होते देख वह यह भी अनुमान करने लगा था कि शरीरमें स्वतः गति करनेकी शक्ति है, यह विचार महत्त्वपूर्ण जरूर था, किन्तु उसे प्रयोग द्वारा उसने और विकसित नहीं कर पाया।

(ख) पाँच नित्य तत्त्व—राज़ी पाँच तत्त्वोंको नित्य मानता था—(१) कर्त्ता (=पुरुष या ईश्वर) (२) विश्व-जीव, (३) मूल भौतिक तत्त्व (४) परमाणु-आत्मा और (५) परमाणु काल। यह पाँचों तत्त्व राज़ीके मतसे नित्य सत्ता एक साथ रहनेवाले हैं। यह पाँचों तत्त्व विश्वके निर्माणके लिए आवश्यक सामग्री हैं, इनके बिना विश्व बन नहीं सकता।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष हमें बतलाता है कि बाहरी पदार्थ—भौतिक-तत्त्व—मौजूद हैं उनके बिना इन्द्रिय किस चीजका प्रत्यक्ष करती? भिन्न भिन्न वस्तुओं (=विषयों)की स्थिति उनके स्थान या दिशाको बतलाती है।

वस्तुओंमें है। परिवर्तनका जो जो प्रकार होता है—पहिले ऐसा था, अब ऐसा है—वह हमें स्पष्ट अभिव्यक्त करता है। प्राणियोंके अस्तित्व तथा उनकी अवस्थाओंसे निष्कर्ष निकाला जाता है कि जीव भी एक पदार्थ है। जीवोंमें विकास होने बुद्धि—वह शक्ति जो पूर्णतया निश्चयपूर्वक परीक्षणकी क्षमता—है जिससे पता लगता है कि इस बुद्धिका स्रष्टा कोई चतुर कर्ता है।

(ग) विश्वका विकास—यदि राजा अपने पाँच तत्त्वोंको नित्य, सत्य एवं साथ रहनेवाला कहता है तो भी जब वह उनमेंसे एकको बनी मानता है तो इसका मतलब है कि इस नित्यताका वह कुछ हदतक त्याग मानता है। सृष्टिकी कथा वह कुछ इस तरहसे वर्णित करता है—पहिले एक शुद्ध आध्यात्मिक ज्योति बनाई गई, यही जीव (=रूह) का पहला कारण था। जीव प्रकाश स्वभाववाला शोध सार आध्यात्मिक तत्त्व है। ज्योतिस्तत्त्व या ऊर्ध्वलोक—जिसे कि जीव गिर आया है—को बुद्धि (=नफ्स) या अन्धकार ज्योतिका प्रकाश कहा जाता है। जिसका अनुगमन जब रूह करता है उसी तरह प्रकाशका अनुगमन अन्धकार (=नफ्स) करता है। इसी तरह पशुओंके जीव पैदा होते हैं जिनका कि काम है बुद्धिवान जीव (=मानव)के उपयोगमें आना।

जिस तरह सारा सारा आध्यात्मिक ज्योति अस्तित्वमें आई, उसके साथ ही साथ एक भौतिक वस्तु भी मौजूद रही यही विराट शरीर है। इसी विराट शरीरका छायासे चार स्वभाव—गर्मी, सर्दी, रूखापन और नमी उत्पन्न होता है। इन्हीं चार स्वभावोंके अन्तमें सभी आकार और पदार्थ कि—शरीर—बने हैं। इस तरह उनकी सृष्टि होनेपर भी पाँच तत्त्वोंका नित्य क्या रहा? इसका उत्तर राजी देता है—क्योंकि यह सृष्टि क्रमशः होती चली आई है, कोई समय ऐसा न था जब कि ईश्वर निष्क्रिय था। इस तरह राजी जगतकी नित्यताको स्वीकार कर इस्लामके सृष्टि वाले सिद्धान्तको खिलाफ गया था तो भी राजीके नामके साथ इमाम नाम लगाना बतलाता है कि उसके लिए लोगोंके दिलोंमें नरम स्थान था।

(घ) **मध्यमार्गी दर्शन**—राज़ीके समयसे पहिलेमें एक नास्तिक भौतिकवादी दार्शनिक चल आते थे, जो जगतका कोई कर्त्ता नहीं मानते थे। उनके विचारसे जगत् स्वतः निर्मित होनेकी अपनेमें क्षमता रखता है। दूसरी ओर ईश्वर-अद्वैत (=तौहीद) वादी मुल्ला थे, जो किसी अनादि जीव, भौतिक तत्त्व—दिशा, काल जैसे तत्त्वके अस्तित्वका अनादिकी शानमें बट्टा लगनेकी बात समझते थे। राज़ी न भौतिकवादियोंके मतको ठीक समझता था, न मुल्लोंके मतको। इसीलिए उसने बीचका रास्ता स्वीकार किया—विचारको बुद्धिसंगत बनानेके लिए ईश्वरके अतिरिक्त जीव, प्रकृति, दिशा कालकी भी जरूरत है और बुद्धियुक्त मानव जैसे जीवको प्रकट करनेके लिए कर्त्ताकी।

§ २—पवित्र-संघ (=अख़वानुस्सफ़ा)

मानजला करामी, अशअरी तीनों दर्शन द्रोही थे। किन्तु इसी समय बसरामें एक और सम्प्रदाय निकला जो कि दर्शन—विशेषकर पिथागोर-के दर्शन—के भक्त थे, और इस्लामको दर्शनके रंगमें रंगना चाहते थे। इस सम्प्रदायका नाम था अख़वानुस्सफ़ा (पवित्र-संघ पवित्र मित्र मंडली या पवित्र बिरादरी)। अख़वानुस्सफ़ा केवल धार्मिक या दार्शनिक सम्प्रदाय ही नहीं था बल्कि इसका अपना राजनीतिक प्रोग्राम था। ये लोग दर्शनको आत्मिक आनंदकी ही चीज नहीं समझते थे, बल्कि उसके द्वारा एक नये समाजका निर्माण करना चाहते थे। इसके लिए कुरानमें खींचातानी करके अपने मतलबका अर्थ निकालते थे। वह दुनियामें एक उटोपियन[1] धर्मराज्य कायम करना चाहते थे।

१ **पूर्वगामी इब्न-मैमून** (८५० ई०)—मोतजली सम्प्रदायके प्रवर्तक अलाफका दृष्टान्त नवीं सदीके मध्यमें हुआ था, इसी समयके आस-पास अब्दुल्ला इब्न मैमून पैदा हुआ था। इस्लामने ईरानियों (=अजमियों)का

[1] Utopean

मगलमान [illegible] गया था। [illegible] (=[illegible]) [illegible] मतभेद उनसे अधिकारी वाली (=प्रवक्ता) यही अजमी लोग थे। इब्न-मसूद भी इन्हीं 'फिरका पसाजों' में था। [illegible] (=[illegible])ने [illegible] समझाता करके शहरी सभ्य आधीन जातियों के निरन्तर [illegible] कम किया था। [illegible] इस दिशामें और गति दी तथा अपने आप अपना शासनको बहुत कुछ ईरानी रंगमें रंग दिया—उसका [illegible] सिद्धान्तों [illegible] नहीं दी बल्कि [illegible] राजनीतिज्ञोंका महामंत्री बनाकर शासनमें सहभागी तक बनाया। किन्तु मालूम होता है, [illegible] वे सन्तुष्ट नहीं थे। [illegible] राजनीतिज्ञ [illegible] कि इब्न मसूद नेता था अब्बासी शासनको हटाकर एक नया शासन स्थापित करना चाहता था वैसा शासन, यह हम आगे कहेंगे। उसके प्रति [illegible] इब्न मसूदको भारी षडयन्त्री सिद्धान्तहीन व्यक्ति समझते थे, किन्तु दूसरे लोग थे जो कि उसे महात्मा और ऊँचे दर्जेका दार्शनिक समझते थे। [illegible] सफल रंगका अपना साम्प्रदायिक रंग चुका था क्योंकि वह अपने धर्मको परिशुद्ध उज्वल समझते थे और इसी उज्वलताको प्राप्त करना आत्माका चरम लक्ष्य मानते थे।

(शिक्षा)—करमती लोगोंको शिक्षा थी—कर्तव्यके सामने शरीर और धनकी कोई पर्वाह मत करो। अपने संघके भाइयोंकी भलाईका सदा ध्यानमें रखो। संघके लिए आत्म-समर्पण, अपने नेताओंके प्रति पूर्णश्रद्धा तथा आज्ञापालनमें पूर्ण तत्परता—हर करमतीके लिए जरूरी फर्ज है। संघकी भलाई और नेताके आज्ञापालनमें मृत्युकी पर्वाह नहीं करनी चाहिए।

२—पवित्र संघ

(१) पवित्र संघकी स्थापना—बसरा और कूफा करमतियोंके गढ़ थे। दसवीं सदीके उत्तरार्द्धमें बसरामें एक छोटासा संघ (पवित्र-संघ) स्थापित हुआ। इस संघने अपने भीतर चार श्रेणियाँ रखी थीं।

पहिली श्रेणीमें १५ ३० वर्षके तरुण सम्मिलित थे। अपने आत्मिक विकासके लिए अपने गुरुओं (शिक्षकों)का पूर्णतया आज्ञापालन इनके लिए जरूरी था। दूसरी श्रेणीमें ३० ४० वर्षके सदस्य शामिल थे, इन्हें आध्यात्मिक शिक्षामें बाहरकी विद्याओंको भी सीखना पड़ता था। तीसरी श्रेणीमें ४० ५० वर्षके भाई थे, यह दुनियाके दिव्य कानूनके जाननेकी योग्यता पैदा करते थे, इनका दर्जा पैगम्बरोंका था। चौथी और सर्वोच्च श्रेणीमें वह लोग थे, जिनकी उम्र ५० से अधिक थी। वे सत्यका साक्षात्कार करते थे, और उनकी गणना फरिश्ता—देवताओं—दर्जेमें था, उनका स्थान प्रकृति सिद्धान्त, धर्म सबके ऊपर था। अपने इस श्रेणी विभाजनमें पवित्र-संघ इब्न मैमूनके करमती दल तथा अफलातूनके 'प्रजा-तंत्र' से प्रभावित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इसमें सन्देह है, कि वह अपने इस श्रेणी विभाजनको काफी अंशमें भी कार्यरूपमें परिणत कर सका हो।

(२) **पवित्र-संघकी ग्रन्थावली और नेता**—पवित्र संघने अपने समयके ज्ञानको पुस्तकरूपमें लेखबद्ध किया था, इसे 'रसायल अख्वानुस्सफा" (पवित्र-संघ-ग्रन्थावली) कहते हैं। इस ग्रन्थावलीमें ५१ (शायद शुरूमें ५० थे) ग्रन्थ हैं। ग्रन्थोंकी वर्णन शैलीसे पता लगता है, कि इनके लेखक अलग अलग थे और उनमें सम्पादन द्वारा भी एकता लानेकी कोशिश नहीं की गई। ग्रन्थावलीमें राजनीतिक पुटके साथ प्राकृतिक विज्ञानके आधारपर ज्ञानवादकी विवेचना की गई है। संघके नेताओं और ग्रन्थावलीके लेखकोंके बारेमें—पीछेकी पुस्तकोंमें जो कुछ मिलता है उससे उनके नाम यह हैं—

(१) मुकद्दसी या अबू-सुलेमान मुहम्मद इब्न-मुशीर अल-बस्ती,
(२) जंजानी या अबुल-हसन् अली इब्न-हारून अल् जंजानी,
(३) नह्लाजूरी या मुहम्मद इब्न-अहमद अल्-नह्लाजूरी,
(४) औफी या अल-औफी, और
(५) रिफाअ या जैद इब्न रिफाअ।

पवित्र-संघ [illegible] (अथवा [illegible] उत्तरार्धमें) पाश्चात्यमें उठता उस वक्त तक [illegible] खलीफ अथवा प्रधानता [illegible] बैठ थे और [illegible] स्वतन्त्र [illegible] था। पाश्चात्य भाँति बहुत बड़े धर्मात्मा समझदार मुस्लिम मुसलमान [illegible] भी [illegible] इज्जत करते तथा उनके पास भेजे [illegible] बड़ी [illegible] पदवियाँ [illegible] था। [illegible] पश्चिमी भागमें बुवायही [illegible] था [illegible] शीघ्र-[illegible] आया था। पवित्र संघ-[illegible] मानजाति [illegible] यूनानी दर्शनकी नींवपर अपने [illegible] तैयार किये थे [illegible] लिए यह समय [illegible] था, यह समझना आसान है।

(२) पवित्र-संघके सिद्धान्त—पवित्र-संघ अपने समयकी धार्मिक आदिशिक्षाके अनुसार [illegible] परिचित था और मानता था कि सारे इस्लाम मूसा [illegible] मुहम्मद अथवा [illegible] भगवानका दूत—पैगम्बर—माने, [illegible] धर्मका [illegible] समझाने [illegible] लिए थे [illegible] पैगम्बरोंको प्रणाम रखता था। वह कुरान, [illegible] तथा [illegible] भी [illegible] भाँति ही पवित्र [illegible] मानता था।

(क) दर्शन प्रधान—पवित्र संघका कहना था कि मजहबके विश्वास, आचार नियम साधारण बुद्धिवाले मानवोंके लिए ठीक हैं किन्तु अधिक उन्नत मस्तिष्कवाले पुरुषोंके लिए सभी दार्शनिक अन्तर्दृष्टि ही उपयुक्त हो सकता है।

(ख) जगत्की उत्पत्ति या नित्यता सम्बन्धी प्रश्न गलत—बुद्धकी भाँति पवित्र संघवाले विचारक जगत्की उत्पत्तिके सवालको

---

(१) अबी बिन-बुवायही मृ० ९३२ ई०। (२) अहमद (मुई जुद्दौला) ९३२ ९६७ ई०। (३) अहमद (आजादुद्दौला) ९६७– (४) मस्जुद्दौला

बराबर समझते थे। हम क्या हैं, यह हमारे लिए आवश्यक और लाभदायक है। 'मानव-बुद्धि जब इससे आगे बढ़ना चाहती है तो वह अपनी सीमाको पार करती है। अपनेको उन्नत करते हुए क्रमशः सब महान (तत्त्व, ब्रह्म)के शुद्ध ज्ञान तक पहुँचना आत्माका ध्येय है जिसे कि वह संसार-त्याग और सदाचरणसे ही प्राप्त कर सकता है।'

(ग) आठ (नौ) पदार्थ—पवित्र-ग्रंथने यूनानी तथा भारतीय ज्ञानिकोंकी भाँति तत्त्वोंका वर्गीकरण किया है। सबसे पहिला तत्त्व ईश्वर परमात्मा या अद्वैत तत्त्व है जिससे क्रमशः निम्न आठ तत्त्वोंका विकास हुआ है।

१ नफस[1] फआल=कर्ता विज्ञान
२ नफस फआल=अधिकरण-विज्ञान या सब विज्ञान
३ हयूला=मूल प्रकृति या मूल भौतिक तत्त्व
४ नफस आलम=जग-जीवन (मानव जीवोंका समूह)
५ जिस्म मुतलक=परम शरीर महत्तत्त्व
६ आलम अफलाक=फरिश्ते या देवलोक
७ अनासर अरबअ=(पृथ्वी जल वायु आग) ये चार भूत
८ मवालीद-सलासा=भूतोंसे उत्पन्न (धातु वनस्पति प्राणी) ये तीन प्रकारके पदार्थ

कर्ता विज्ञान, अधिकरण विज्ञान मूल प्रकृति और जग-जीवन—यह अमिश्र पदार्थ हैं। परम शरीरको लेकर आगेके चार पदार्थ मिश्रित हैं। यह मिश्रण द्रव्य और गुण (=घटना)के रूपमें होता है।

प्रथम द्रव्य है—मूल प्रकृति और आकृति। प्रथम गुण (=घटनायें) है—दिशा (देश) काल गति जिसमें प्रकाश और मात्राको भी शामिल कर लिया जा सकता है।

---

[1] नफस—यह यूनानी शब्द नोवसका अरबी रूपान्तर है, जिसका अर्थ विज्ञान या बुद्धि है।

मूल प्रकृति एक है और सारी भौतिक वस्तुएँ एकसी हैं। [illegible] की भिन्नता तथा बहुलता पाई जाती है [illegible] कारण आकृति — [illegible] भी [illegible] है। प्रकृति और आकृति दोनों विकास के बीज [illegible] वस्तुस्थितियाँ भी।

मूल प्रकृति भी परे [illegible] विज्ञान [illegible] पदार्थ सबसे प्रथम सभी [illegible] अनन्त सत्ता मूल उपादान-कारण है।

(घ) मानव-जीव—मानव जीव (=मन) [illegible] (अधिकरण विज्ञान) से पैदा हुआ है। [illegible] मानव-जीवों की समष्टि एक पथक द्रव्य माना गया [illegible] विशेष परम मानव या 'मानव-जीव' आत्मा कह सकते हैं। प्रत्येक मानव-जीव भलाई विकसित होता है, किन्तु क्रमशः विकास करते-करते वह आगे बढ़ जाता है। वस्तुतः जीव (=मन) सफेद कागजकी भाँति काम होता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरी जगतमें जिस विषयको ग्रहण करती हैं वह मस्तिष्कके अगले भागमें पहिले उपस्थित किया जाता है फिर पिछले भागमें उसका निश्चय (विश्लेषण) किया जाता है और अन्तमें मस्तिष्कके पिछले भागमें संस्कारके तौरपर उसे संचित किया जाता है। प्राणी श्रेणियोंमें सर्वश्रेष्ठ मनुष्य और पशुमें समान है। मनुष्यकी विशेषताएँ हैं—विचार (=निश्चय शक्ति) वाणी और क्रिया।

(ङ) ईश्वर (=ब्रह्म)—कर्त्ता विधाता (नफ्स-कुल्लियात) ईश्वर है। [illegible] में सारे तत्त्व निहित हैं यह बतला आये हैं। इन आठों तत्त्वोंसे ऊपर ईश्वर या परम अद्वैत (तत्त्व) है। यह परम अद्वैत (ब्रह्म) सनातन है और सब कुछ है।

(च) कुरानका स्थान—कुरानका पवित्र-ग्रंथ किस दृष्टिसे लिखा था यह उनके इस वाक्यसे मालूम होता है— हमारे पैगम्बर मुहम्मद एक ऐसी असभ्य रेगिस्तानी जातिके पास भेजे गये थे जिनको न इस लोकके सौन्दर्यका ज्ञान था और न परलोकके आध्यात्मिक स्वरूपका पता। इस कारणके लिए दिये गये कुरानका सादा भाषाका ग्रंथ अधिक सभ्य

[illegible] आध्यात्मिक पथमें [illegible] चाहिए। [illegible] उद्धरणसे स्पष्ट [illegible] कि पवित्र-संघ जरथुस्ती, ईसाई आदि धर्मोंकी ज्यादा [illegible] दिखता था। इसके साथ [illegible] यातना आदि बातें मूढ़ विश्वास हैं। उनके मतसे मूढ़ पापी जीव इसी जीवनमें [illegible] गिरे हुए [illegible]। क़यामत (=प्रलय) को वह [illegible] अर्थोंमें और [illegible] तरह [illegible] मानता [illegible]।—[illegible] जीवका अलग होना छोटी क़यामत है, दूसरी महाक़यामत [illegible] जिसमें कि सब [illegible] ब्रह्म (अद्वैत तत्त्व)में लीन [illegible] जाता [illegible]।

(छ) पवित्र संघकी धर्म-चर्या—त्याग, तपस्या आत्म-संयम [illegible] ऊपर पवित्र-संघका सबसे ज्यादा जोर था। [illegible] बिना [illegible] स्वार्थके [illegible] तथा बुद्धिसे ठीक समझकर जो कर्म किया जाता [illegible] वही [illegible] कर्म है। [illegible] विश्व नियमका अनुसरण करना संयम [illegible] धर्माचरण है। [illegible] सबसे ऊपर प्रेमका स्थान है [illegible] प्रेम जीवका [illegible] [illegible] मिलनके लिए बेकरारी है। इसी प्रेमका एक भाग वह प्रेम है, जो कि इस जीवनमें प्राणिमात्रके प्रति क्षमा सहानुभूति और स्नेह द्वारा प्रकाशित किया जाता है। प्रेम [illegible] लोकमें मानसिक सान्त्वना हृदयकी स्वतन्त्रता देता तथा प्राणिमात्रके साथ शान्ति स्थापित करता [illegible], और परलोकमें उस नित्य ज्योतिका समागम कराता है।

यद्यपि पवित्र-संघ आत्मिक जीवनपर [illegible] ज्यादा जोर देता है, और शरीरकी ओर उतना ख्याल नहीं करता [illegible] तो भी वह [illegible] बिलकुल अवहेलना करनेकी सलाह नहीं देता।— 'शरीरकी ठीकसे देखभाल करनी चाहिए [illegible] जिसमें जीवको अपनेको पूर्णतया विकसित करनेके लिए काफी समय मिले।'

आदर्श मनुष्यको होना चाहिए— 'पूर्वी ईरानियों जैसा सुजात, अरबों जैसा श्रद्धालु [illegible] (=मसोपोतामियनों) जैसा शिक्षाप्राप्त, यहूदियों जैसा गंभीर ईसाके शिष्यों जैसा सदाचारी सुरियानी साधु जैसा पवित्र भावनाला, यूनानियों जैसा अलग अलग विज्ञानों (साइंसों) में निपुण हिन्दुओं जैसा रहस्योंकी व्याख्या करनेवाला और सूफी [illegible] जैसा सन्त।"

परिव्राजक [illegible] सिद्धान्त [illegible] [illegible] [illegible]

पैगम्बरके समसामयिक इन पुरुषोंको पीछे भी इसी नामसे याद किया जाता था। पीछे पैदा होनेवाले महात्माओंको पहिले ताबईन (=अनुचर) और फिर तबअ-ताबईन (=अनु-अनुचर) कहा जाने लगा। इसके बाद जाहिद (=सदाचारी) और आबिद (=भक्त) और उसके भी पीछे सूफीका नाम आया। मुसलमान लेखकोंने सूफी शब्दको निम्न अर्थोंमें प्रयुक्त किया है—

"सूफी वह लोग हैं, जिन्होंने सब कुछ छोड़ ईश्वरको अपनाया है —(जुनून मिश्री)

जिनका जीवन-मरण सिर्फ ईश्वरपर है —(जुनैद बगदादी)

"सम्पूर्ण शुभाचरणोंसे पूर्ण सम्पूर्ण दुराचरणोंसे मुक्त —(अबूबक्र हगारी)

'जिस व्यक्तिको न दूसरा कोई पसन्द करे न वह किसीको पसन्द करे —(मंसूर हल्लाज)

जो अपने आपको बिलकुल ईश्वरके हाथमें सौंप दे —(रोयम)

'पवित्र जीवन त्याग और शुभगुण जहां इकट्ठा हों —(शहाबुद्दीन सुहरावर्दी)

ग़ज़ाली (१०५९-१११११ई०)ने सूफी शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि सूफी पंथ (=तसव्वुफ) ज्ञान और आचरण (=कर्म)के मिश्रणका नाम है। शरीअत (=कुरानोक्त)के भक्तिमार्ग और सूफी मार्गमें यही अन्तर है कि शरीअतमें ज्ञानके बाद आचरण (=कर्म) आता है सूफी मार्गके अनुसार आचरणके बाद ज्ञान।

२ सूफी पन्थके नेता—इस्लामिक सूफीवाद नव-अफलातूनी रहस्यवादी दर्शन तथा भारतीय योगका सम्मिश्रण है, यह हम बतला चुके हैं, इस तरहका पंथ शाम ईरान मिश्र सभी देशोंमें मौजूद था ऐसी हालतमें इस्लामके भीतर उसका चुपकेसे चला जाना मुश्किल नहीं है। कितने ही लोग पैगम्बरके दामाद अलीको सूफी ज्ञानका प्रथम प्रवर्तक बतलाते हैं किन्तु स्वार्थियोंके झगड़ेके समय हम देख चुके हैं कि अली इस्लाममें

[illegible] पर [illegible] पर्दा [illegible] किया जिसमें कि [illegible] एक दूसरा [illegible] न [illegible] सके। [illegible] किया [illegible] हमारा [illegible] निवेदन किया कि हमारा काम [illegible] हो गया। [illegible] कहा कि हमारा काम [illegible] हो गया। [illegible] (दाराशिकोह) [illegible] बात [illegible] नहीं [illegible] था। मालूम [illegible] कि [illegible] [illegible] शिकोह [illegible] पानिपत पर [illegible] किया था और [illegible] उठा, [illegible] [illegible] समाप्त [illegible] आया।

[illegible] (योगिराज) की [illegible] [illegible] [illegible]

षष्ठ अध्याय

पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (२)

क. रहस्यवाद-वस्तुवाद

चीनके एक राजाने बुद्धको स्वप्नमें देखा था फिर उसने बुद्धके धर्म और बौद्ध पुस्तकोंकी खोज तथा अनुवादका काम शुरू कराया। खलीफा मामून ८११ ६३ ई० के बारेमें भी कहा जाता है, कि उसने स्वप्नमें एक दिन अरस्तूको देखा, स्वप्न ही में अरस्तूने अपने दर्शनके सम्बन्धमें कुछ बात बतलाई जिससे मामून इतना प्रभावित हुआ कि दूसरे ही दिन उसने क्षुद्र एसियामें कई आदमी इसलिए भेजे कि अरस्तूकी पुस्तकोंको ढूंढकर बगदाद लाया जाये और वहां उनका अरबीमें अनुवाद किया जाये। मामूनके दर्बारमें अरस्तूकी तारीफ अक्सर होती रही होगी, और उससे प्रभावित हो मामून जैसा विद्वान तथा विद्याप्रेमी पुरुष अरस्तूको स्वप्नमें देखे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यूनानी ज्ञान ग्रन्थोंका अरबी भाषामें किस तरह अनुवाद हुआ इसके बारेमें हम पहिले बतला चुके हैं। उस अनुवाद और ज्ञान चर्चामें कैसे इस्लामिक दार्शनिक पैदा हुए और उन्होंने क्या विचार प्रकट किये अब इसके बारेमें कहना है। बगदाद ज्ञान अनुवाद तथा ज्ञान चर्चा दोनोंका केन्द्र था इसलिए पहिले इस्लामी दार्शनिकोंका पूर्वमें ही पैदा होना स्वाभाविक था। इन दार्शनिकोंमें सबसे पहिला किन्दी था इसलिए उसीसे हम अपने वर्णनका आरम्भ करते हैं।

१ अनुयोगद्वार सिद्धी (८७० ई०)

[illegible] जीवनी—[illegible] अनुसिद्धी—(सिद्धी नाम [illegible]) [illegible] नामक [illegible] था। [illegible] था किन्तु जिस परिस्थिति में [illegible] (अनुयोगद्वार) [illegible] था। [illegible] सिद्धी [illegible] था। [illegible] सिद्धी [illegible] था। [illegible] था। [illegible] था।

वाद नहीं किया बल्कि दूसरोंके अनुवादोंका संशोधन और सम्पादन भी किया था। वह ज्योतिषी और वैद्य भी था, इसलिए यह भी संभव है, कि वह दर्बारमें इस सबबसे भी रहा हो। कुछ भी हो, यह तो साफ मालूम है, कि पीछे वह अब्बासी दर्बारका कृपापात्र नहीं रहा। खलीफा मुतवक्किल (८४७-६१ ई०)ने अपने पूर्वके खलीफाओं, धार्मिक उदारताको छोड़ सनातनी मुसलमानोंका पक्ष समर्थन किया, जिससे विचार-स्वातन्त्र्यपर प्रहार होना शुरू हुआ। किन्दी भी उसका शिकार हुए बिना नहीं रह सका और बहुत समय तक उसका पुस्तकालय जब्त रहा।

किन्दीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी अपने समयका वह दर्शन तथा विद्याओंका बड़ा भारी विद्यार्थी था।—भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, गणित, वैद्यक, दर्शन—सब पर उसका अधिकार था। उसके ग्रंथ ज्यामितिपर, गणित, संगीत, ज्योतिष, भूगोल, वैद्यक और दर्शनपर हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि एक ओर तो किन्दी कीमियाको गलत कहकर उसके विश्वासियोंको निर्बुद्धि कहता, दूसरी ओर ग्रहोंके द्वारा मनुष्यके भाग्यका तय होना उसके लिए माइम था।

२ **धार्मिक विचार**—किन्दीके समय फिर धर्मान्धताका जोर बढ़ चला था और अपने विचारोंका खुल्लमखुल्ला प्रकट करना खतरेसे खाली न था इसलिए जिन धार्मिक विचारोंका किन्दीने समर्थन किया है उनमें वस्तुतः उसके अपने कितने हैं, इसके बारेमें सावधानीसे राय कायम करनेकी जरूरत है। वैसे जान पड़ता है वह मानवताके कितने ही धार्मिक विचारोंसे सहमत था। नेकी और ईश्वर भक्तपर उसका खास जोर था। उस समयके इस्लामिक विचारकोंमें यह बात भारतीय सिद्धान्त तौरपर प्रचलित था कि बुद्धि (प्रत्यक्ष अनुमान) ज्ञानके लिए काफी प्रमाण है, आप्त या शब्दप्रमाणकी उतनी आवश्यकता नहीं। किन्दीने मुतहक्किरोंका पक्ष लेकर कहा कि पैगम्बरी (=आप्त वाक्य) भी प्रमाण है और फिर बुद्धिवाद तथा शब्दवादके समन्वयकी कोशिश की। भिन्न भिन्न धर्मोंमें एक बात जो कि सबमें उसने पाई वह था नित्य अद्वैत मूल कारण का

[illegible] । [illegible] कारणका सिद्ध परामें हमारा बुद्धिजनित ज्ञान पूरी [illegible] । [illegible] कारण [illegible] ईश्वरका ठीक [illegible] ।

([illegible] दार्शनिक विचार—[illegible] प्रतिपादित प्राकृतिक [illegible] (प्रकृति [illegible] है) [illegible] । [illegible] उसका [illegible] । [illegible] विचार दार्शनिक [illegible] उपरान्त विचारधारा [illegible] ।

(१) बुद्धिवाद—[illegible] बुद्धिवादका [illegible] करना [illegible] किन्तु आप्तवाद (=पवित्रवाद) [illegible] ।

(२) तत्त्व विचार—(क) ईश्वर—[illegible] पहिले कहा जा चुका है [illegible] । [illegible] निमित्त या अनुमानका [illegible] । [illegible] निमित्त [illegible] ।—[illegible] ज्योतिष (पहिले ज्योतिष प्रोक्त) [illegible] ।

[illegible] मूलकारण है [illegible], किन्तु [illegible] । [illegible] मध्यवर्ती कारण [illegible] । [illegible] कारण [illegible] । [illegible] कारण [illegible] । किन्तु [illegible] कारणपर कोई प्रभाव नहीं रखता उदाहरणार्थ—मिट्टी [illegible] (घड़ा)का बनना (बनाना) [illegible] घड़ा बनाना है किन्तु घड़ा [illegible] मिट्टीका कुछ [illegible] ।

(ख) जगत्—ईश्वरका [illegible] जगत [illegible] प्रकृति जगत और [illegible] जगत । [illegible] या कार्यमें [illegible] प्रकृति जगत है ।

(ग) जगत्-जीवन—[illegible] (मूलकारण) और जगतके बीच जगत चलन या जग-जीवन है । इसी जग जीवन (=[illegible] आत्म)से [illegible] या देव फिर मानवजीव उत्पन्न होता है ।

(घ) मानव-जीव और उसका ध्येय—जग-जीवनमें जिस्ना मानव-जीव अपनी शान्ति और कामके लिए शरीर (=काया)में बंधा हुआ है किंतु अपने निजी स्वरूपमें वह शरीरसे बिलकुल स्वतंत्र है और इसीलिए जहाँ तक जीवके स्वरूपका संबंध है उसपर शरीरका प्रभाव नहीं पड़ता। जीव प्रकृत, अ-नश्वर पदार्थ है। वह विज्ञान (=आत्म)-लोकसे इंद्रिय लोकमें उतरा है तो भी उसमें अपनी पूर्वस्थितिके संस्कार मौजूद रहते हैं। इस लोकमें उसे चैन नहीं मिलता क्योंकि उसकी बहुतसी आकांक्षाएँ अपूर्ण रहती हैं, जिसके लिए उसे मानसिक अशान्ति सहनी पड़ती है। इस चराचरकी दुनियामें कोई चीज स्थिर नहीं है इसलिए नहीं मालूम किस वक्त हमें उनका वियोग सहना पड़े जिन्हें कि हम प्रिय समझते हैं। विज्ञानलोक (ईश्वर) ही ऐसा है जिसमें स्थिरता है। इसलिए यदि हम अपनी आकांक्षाओंकी पूर्ति और प्रियोग अविच्छेद चाहते हैं, तो हमें विज्ञानकी सनातन कृपा ईश्वरके भय प्रकृति विज्ञान और सुखकी ओर मन और शरीरको लाना होगा।

(३) नफ्स (=विज्ञान)—नफ्स यूनानी शब्द है जिसका अर्थ विज्ञान या आत्मा (=नित्य विज्ञान) है। वह यूनानी दर्शनमें एक विचारणीय विषय है। नफ्स (=अक्ल विज्ञान)के सिद्धान्तपर किन्दीने जो पहिले-पहिल प्रहार छेड़ी तो सारे इस्लामी दार्शनिक साहित्यमें उसकी चर्चाका रास्ता खुल गया। किन्दीने नफ्सके चार भेद किये हैं—

(क) प्रथम विज्ञान (=ईश्वर)—जगतमें जो कुछ सनातन सत्य आध्यात्मिक (=अभौतिक) है उसका कारण और सार परम आत्मा ईश्वर है।

(ख) जीवकी अन्तर्हित (क्षमता)—दूसरी नफ्स(=बुद्धि) है, मानव-जीवकी समझनेकी योग्यता या जीवकी वह क्षमता जहाँ तक कि जीव विकसित हो सकता है।

(ग) जीवकी कार्य क्षमता (=आदत)—मानव-जीवके वह गुण या आदत जिसे कि इच्छा होनेपर वह किसी वक्त इस्तेमाल कर सकता है।

[illegible]

(घ) जीवका क्रिया—[illegible] [illegible] [illegible] —[illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

(४) ज्ञानका [illegible]—(क) ईश्वर—[illegible] [illegible] [illegible] [

यद्यपि किन्दी जीवसे बाहर मानता है, तो भी जब वह रहस्यवादमें नीचे उतरता है तो वस्तु स्थितिको भी रद्द करना चाहता है और कहता है—हमारा ज्ञान या तो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है या चिन्तन (=मनकी क्रिया कल्पना) शक्ति द्वारा। वह स्वीकार करता है कि इन्द्रियाँ केवल व्यक्ति या भौतिक स्वरूप (=स्वलक्षण) को ही ग्रहण करती हैं सामान्य या अभौतिक आकृति उनका विषय नहीं है। यही है दिनाग धर्मकीर्तिका प्रत्यक्ष ज्ञान— प्रत्यक्ष कल्पनापोढ (=इन्द्रियसे प्राप्त कल्पना रहित)। दिनाग धर्मकीर्तिने सामान्य आकृतिको कल्पनामूलक कहकर उन्हें वस्तु सत् माननेसे इन्कार कर दिया यद्यपि उन्हें व्यवहारसत् माननेमें उज्र नहीं है, किन्तु मानवको जीवके पास और पराठ थाली रखनेवाला किन्दी कल्पना (=चिन्तन)-शक्तिसे प्राप्त मानवको वस्तु-सत् मानता है।

(ग) विज्ञानवाद—जो कुछ भी हो अन्तमें दोनों ही आँखके भले एक जगह मिल जाते हैं और वह जगह वस्तु-जगतसे दूर है।—वह है विज्ञानवादकी भूल भुलैया। विवशता और मजबूरियोंके कारण या अनजानमें योगाचारके विज्ञानवादको सुन्नमसुन्ना स्वीकार करना न चाहा हो किन्तु है वह वस्तुतः विज्ञानवादी। उसका विज्ञानवाद क्षणिक है या नित्य—इस बहसमें वह नहीं गया है किन्तु प्रथम विज्ञान (=आलय विज्ञान) के चार भेद जो उसने किये हैं और एकका दूसरेमें परिवर्तन बतलाया है उससे साफ है कि वह विज्ञानको नित्य कूटस्थ नहीं मानता। बौद्ध विज्ञानवादियों (योगाचार दर्शन)की भाँति किन्दीके रसवादको भी आलय विज्ञान (=विज्ञान-स्रोत विज्ञान-समुद्र) और प्रवृत्ति विज्ञान (=क्रिया परायण) विज्ञानमें समझना होगा। हाँ तो दोनों ही आँखके भूल, सब कुछ विज्ञान है विज्ञानके अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं। इस विज्ञानवादमें मिलते हैं और किन्दी धर्मकीर्तिसे हाथ मिलाता हुआ कहता है—इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान और विषय (विषय) एक ही है और इसी तरह मन (=कल्पना) द्वारा ज्ञात पदार्थ (धर्म) भी प्रथम विज्ञान (आलय विज्ञान) है। दोनोंमें इतना अन्तर जरूर है कि जहाँ अपने सहधर्मियों (=मुसलमानों)के

[illegible] मार्ग [illegible] विद्यार्थी [illegible] सम्मिलित [illegible] प्रचार [illegible] हो रहा था, वहाँ [illegible] (—बौद्धों) के [illegible] मार्ग [illegible] अपने [illegible] मत वस्तुवाद [illegible] विज्ञानवादी [illegible] जवानमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहा था।—और आश्चर्य नहीं [illegible] आनन्द [illegible] और प्रथम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

किन्तु अभी वहाँके सारे लोग—कमसे कम तुर्क—मुसलमान नहीं हुए थे। फाराबीकी दार्शनिक प्रतिभा और बुद्धिस्वातन्त्र्यपर विचार करते हुए हमें ढाई सौ साल पहिले उधरसे गुजर हुए चाडके वर्णनका भी ख्याल रखना होगा, जिसमें इस प्रदेशमें सैकड़ों बड़े-बड़े बौद्ध शिक्षणालयों (संघारामों) और हजारों शिक्षित भिक्षुओंका जिक्र आता है। दो पीढ़ीके नव-मुस्लिमके होनेका मतलब है फाराबीकी जन्मभूमिमें अभी बौद्ध (दार्शनिक) परम्परा कुछ न कुछ बची हुई थी। वस्तु-तटवर्ती यह एक विद्या और संस्कृतिमें समुन्नत थे, इसमें तो सन्देह ही नहीं।

फाराबीकी प्रारंभिक शिक्षा अपने पिताके घरपर ही हुई होगी, उसके बाद वह बुखारा या समरकन्द जैसे अपने देशके उस समय भी ख्यातनामा विद्यापीठोंमें पढ़ने गया या नहीं इसका पता नहीं लगता। यह भी नहीं मालूम कि किस उम्रमें वह इस्लामकी नालन्दा—बगदाद—की ओर विद्याध्ययनके लिए रवाना हुआ। किन्दी तो जरूर उस समय तक मर चुका होगा, किन्तु राजी जिन्दा था। जन्म भूमिमें बुद्धि-स्वातन्त्र्यकी कुछ हलकी हवा तो उसे लगी ही होगी बगदादमें आकर उसने योहन्ना इब्न हलान-की शिष्यता स्वीकार की। योहन्ना जैसे गैरमुस्लिम (ईसाई) विद्वान्को अध्यापक चुनना भी फाराबीके मानसिक झुकावको बतलाता है। बगदादमें कैसा विचार-स्वातन्त्र्यका वातावरण—कमसे कम मुसलमानोंकी सनातनी जमातके बाहर—था, इसका परिचय पहिले मिल चुका है। फाराबीने दर्शनके अतिरिक्त साहित्य गणित ज्योतिष, वैद्यककी शिक्षा पाई थी। उसने संगीतपर भी कलम चलाई है। फाराबीको सत्तर भाषाओंका पंडित कहा जाता है। तुर्की तो उसकी मातृभाषा ही थी, फारसी उसकी जन्म-भूमिकी हवामें फैली हुई थी अरबी इस्लामकी जबान ही थी, इस प्रकार इन तीन भाषाओंपर फाराबीका अधिकार था, इसमें तो सन्देह ही नहीं हो सकता सुरियानी इब्रानी यूनानी भाषाओंको भी वह जानता होगा।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद भी फाराबी बहुत समय तक बगदादमें रहा। नवीं सदीका अन्त होते होते बगदादके खलीफाकी राजनीतिक शक्तिका

[illegible]

[illegible]

२-फाराबीकी कृतियाँ

[illegible]

उसके द्वारा आधुनिक साइंस-युगके प्रवर्तनमें कितना हाथ है इस यहां कहनेकी जरूरत नहीं, और इसमें तो शक नहीं अरस्तूका पुनरुज्जीवित करनेमें फाराबीकी सेवाएं अमूल्य हैं। फाराबीने अरस्तूके ग्रन्थोंकी जो संख्या और क्रम निश्चित किया था, वह आज भी उसी तरह है। इसमें शक नहीं इनमेंसे कुछ—"अरस्तूका धर्मशास्त्र"—अरस्तूके नामपर दूसरोंकी बनाई पुस्तकें भी फाराबीने शामिल करली थीं। फाराबीने अरस्तूके तर्कशास्त्रके आठ[1] साइंसके आठ[2], अतिभौतिक (अध्यात्म) शास्त्र[3] आचारशास्त्र[4] राजनीति[5] आदि ग्रन्थोंपर टीका और विवरण लिखे हैं।

फाराबीने वैद्यकका भी अध्ययन किया था किन्तु उसका सारा ध्यान तर्कशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र और साइंस (भौतिकशास्त्र) पर केन्द्रित था।

३—दार्शनिक विचार

ऊपरकी पंक्तियोंके पढ़नेसे मालूम है कि फाराबीको ज्ञानका चरम पहुंचनेका जितना अवसर मिला था उतना उसने पहिले तथा उसकी

---

[1] Logic—मंतिक
1 The Categories
2 The Hermeneutics
3 The first Analytics
4 The Second Analytics
5 The Topics
6 The Sophistics
7 The Khetoric
8 The Poetics

[2] Physics—तबीआत
1 Auscultatis Physica
2 De Coelo et mundo
3 De Generatioe et Corruptione
4 The Meterology
5 The Psychology
6 De Sensu et Sensato
7 The Book of Plant
8 The Book of Animals

[3] Metaphysics [4] Ethics [5] Politics

सहायताको छोड़कर पीछे भी किसी इस्लामिक दार्शनिकको नहीं मिला था। वस्तुतः सब बगदाद इतने मिश्रित सभी दर्शनकी भूमियाँ थीं, और फाराबीने उनका पूरा फायदा उठाया था।

(१) अफलातूँ अरस्तू समन्वय—अफलातूका दर्शन अ-वस्तुवादी विज्ञानवादी है और अरस्तू अपने सारे स्वी-स्वताओं तथा विज्ञान (नफ्स) के होते भी सच्चा वस्तुवादी है। फाराबी इस फर्कको समझ रहा था, और यदि निष्पक्ष शास्त्र भक्त होता तो वह लाशापीकी कोशिश न करता किन्तु फाराबीने अपने दिलको नव अफलातूनी रहस्यवादी दर्शन को दे रखा था जब कि उसका सबल मस्तिष्क अरस्तूको छोड़नेके लिए तयार न था ऐसी हालतमें दोनोंके समन्वय करनेके सिवा दूसरा कोई चारा न था। यही नहीं इस समन्वय द्वारा वह इस्लामके लिए भी गुंजाइश रख सका जिससे वह काफिरोंकी गलि भोगनेसे भी बच सका। फाराबीके अनुसार अफलातून और अरस्तूका मतभेद बाहरी वर्णनशैलीका है दोनोंका भाव एक है दोनों उच्चतम ज्ञान होनेके इमाम (ऋषि) हैं। इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं कि फाराबीके हृदयमें जो सम्मान इन दो यूनानी दार्शनिकोंका था वह किसी दूसरेके लिए नहीं हो सकता था।

(२) तर्क—फाराबीके अनुसार तर्क सिर्फ प्रयोग (=दृष्टान्त) सिद्ध विश्लेषण या उक्ति मात्र नहीं है। ज्ञानकी प्रामाणिकता तथा व्याकरण की कितनी ही बातें भी तर्कके अन्तर्गत आती हैं। ज्ञात और सिद्ध वस्तुसे अज्ञात वस्तुको जानना—प्रमाण सिद्धान्त—तर्क है।

(३) सामान्य (=जाति)—यूनानी दर्शन और उससे ही लेकर पीछे भारतीय न्याय वैशेषिक शास्त्रमें सामान्यको एक स्वतन्त्र वस्तुसत् पदार्थ सिद्ध करनेकी बहुत चेष्टा की गई है। फाराबीने 'सागोजी'[1] पर लिखते वक्त एक जगह सामान्यके बारेमें अपनी सम्मति दी है—सिर्फ वस्तु

---

[1] पोर्फिरी (फोर्फोरियस)की पुस्तक जो गलतीसे अरस्तूकी कृति मानी गयी।

और इन्द्रिय प्रत्यक्षमें ही नहीं, बल्कि विचारमें भी हम विशेष प्राप्त होता है। इसी तरह सामान्य भी वस्तु-व्यक्तियोंमें केवल घटनावश ही नहीं रहता बल्कि मनमें भी वह एक द्रव्यके तौरपर अवस्थित है। यह ठीक है कि मन वस्तुओंमेंसे लेकर सामान्य (गायपन)को कल्पित करता है तो भी सामान्य उन वस्तु-व्यक्तियों (गाय पिंडों) के अस्तित्वमें आनेसे पहिले भी सत्ता रखता है, इसमें शक नहीं।

(४) सत्ता—सत्ता क्या है इसका उत्तर फाराबी देता है—वस्तु की सत्ता वस्तु अपने (स्वयं) ही है।

(५) ईश्वर अद्वैत-तत्त्व—ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए फाराबी सत्ताको इस्तेमाल करता है। सत्ता दो ही तरहकी हो सकती है—वह या तो आवश्यक है अथवा संभव (विद्यमान) है। जिस किसी वस्तु की सत्ता संभव (विद्यमान) है वह संभव तभी हो सकती है यदि उसका कोई कारण हो। इस तरह हर एक संभव सत्ता कारणपूर्वक होती है। किन्तु कारणकी शृंखलाको अनन्त तक नहीं बढ़ा सकते क्योंकि आखिर शृंखलाको बनानेवाली कड़ियाँ अनन्त नहीं सान्त हैं। और इस प्रकार हमारे लिए आवश्यक हो जाता है एक ऐसी सत्ताको मानना जो स्वयं कारण रहित रहते सबका कारण है जो कि अत्यन्त पूर्ण अपरिवर्तनशील, आत्मतृप्त परमशिव चेतन, परम मन (विज्ञान) है। वह प्रकृतिके सभी शिव-सुन्दर रूपोंको—जो कि उसके अपने ही रूप हैं—प्यार करता है। इस (ईश्वरकी) सत्ताके अस्तित्वको प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं प्रमाण तथा सत्य—वास्तविकताको अपने भीतर रखते हुए स्वयं भी वस्तुओंका मूल कारण है। जैसे ऐसी सत्ताका होना आवश्यक है, वैसे ही उसका एक—अद्वैत—ही होना भी आवश्यक है। दो होनेपर उसमें समानताएं, और असमानताएं दोनों होंगी, जिसके कारण एक दूसरे-की टक्करसे प्रत्येकका सरलता नष्ट हो जाएगी। परिपूर्ण सत्ताका एक होना आवश्यक है।

प्रथम सत्ता केवल एक तथा वस्तुसत है इसीको ईश्वर कहा जाता

[illegible] ।

(६) अद्वैत तत्त्वसे विश्वका विकास—[illegible] विकासका [illegible] और [illegible] [illegible]—

१ [illegible] ।

२ [illegible] (अनन्त प्रकाश) [illegible] [illegible] ।

[illegible]

तीसरा अंशमें [illegible] (रूपक) [illegible], जिस पवित्र आत्मा भी कहते [illegible]। यही [illegible] (=बुद्धि) [illegible] (=आकाश) और पृथ्वीका [illegible] ।

४ चौथा अंश जीवकी है ।

बुद्धि और जीव [illegible] अंशोंमें एकरस अपने स्वरूपमें न रहकर मनुष्योंकी संख्याके अनुसार बहुसंख्यक होता है ।

५ आकृति—[illegible] आकृति जो भौतिक तत्त्वोंसे मिलकर भिन्न भिन्न [illegible] वस्तुओंके बन [illegible] सहायक होता है ।

१ [illegible]—[illegible]।

२ मनुष्य काय—[illegible] मानव।

३ पशु (तिर्यक्)-काय—[illegible] आदि [illegible]।

४ वनस्पति-काय—[illegible] आदि साकार [illegible]।

५ धातु-काय—[illegible] आदि साकार [illegible]।

६ महा [illegible]-काय—[illegible], [illegible] आदि साकार [illegible]।

(७) ज्ञानका उद्गम—[illegible] आदि [illegible] मानव [illegible]-साध्य वस्तु [illegible]—[illegible] द्वारा—प्रदान की गई वस्तु [illegible]। जीवका [illegible] [illegible] [illegible]—वह जो [illegible] (= काया) [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु जीवको जो [illegible] [illegible] [illegible] विज्ञान (अथवा [illegible]) [illegible] [illegible] विज्ञान [illegible] मानव [illegible]। यह विज्ञान (ज्ञान) [illegible] [illegible] मौजूद है, किन्तु [illegible] [illegible] गुप्त [illegible] उसकी [illegible] अन्तर्हित [illegible]। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] (विशेष ज्ञान) और नवजीवन अन्तिम [illegible] (ज्ञान) [illegible] जिसमें [illegible] और [illegible] में [illegible] (स्वर्ग) [illegible] और [illegible] वाले [illegible]।

यह [illegible] [illegible] [illegible] —[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बुद्धि-सम्मत [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (—विशेष) में ही [illegible]। [illegible] अवस्था—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [

४—आचार-शास्त्र

फाराबी ज्ञानका उद्गम जीवन बाहर मूल विज्ञान (=ईश्वर)में मानता है, इसे बतला चुके हैं। ऐसी अवस्थामें ऐसी भी संभावना थी कि फाराबी आचार—भला-बुरा, पुण्य-पाप—के विचारको भी ऊपरसे ही आया बतलाता, किन्तु यहाँ यह बात स्मरण रहनी चाहिए कि फाराबी मूल विज्ञानसे विश्वकी उत्पत्तिको इस्लामके कुरान की भाँति अभावसे भावकी उत्पत्तिकी तरह नहीं मानता, बल्कि उसके मतसे विज्ञान सार-कारण संबंधके साथ हुआ है, यद्यपि विज्ञानसे भौतिक तत्त्वोंका आरंभ नहीं अवरोह क्रमसे है, तो भी यह अपरोक्ष रूपसे वस्तुवादी है, इसमें सन्देह नहीं। कुछ भी हो, ज्ञानके उद्गमके सिद्धान्तकी अपेक्षा आचारके उद्गमका सिद्धान्त ज्यादा बुद्धिपूर्वक है। ईश्वरवादी लोग ज्ञानको किसी वक्त मानव बुद्धिकी उपज माननेके लिए तैयार भी हो सकते हैं, किन्तु आचार—पुण्य-पाप—के विचारका स्रोत वह हमेशा ईश्वरको ही मानते हैं। फाराबी इस बारेमें बिलकुल उलटा मत रखता है, वह ज्ञानका स्रोत तो मानुषिक मानता है, किन्तु आचार विवेकको वह मानव-बुद्धिका चमत्कार है—भले-बुरेकी तमीजको नापने बुद्धिमें है। ज्ञानको फाराबी कर्म (=आचार)से ऊपर मानता है, इसलिए भी वह उसका उद्गम मनुष्यसे ऊँचा रखना चाहता है।

शुद्ध ज्ञानको फाराबी स्वातन्त्र्यकी भूमि बतलाता है, लेकिन यह शुद्ध ज्ञान ईश्वरपर निर्भर होनेसे उसीके अनुसार निश्चित है, जिसका अर्थ हुआ मानव स्वतन्त्रता भी ईश्वराधीन है—यह फाराबीका सीधा-सादा भाग्यवाद है—उसके हुक्मके बिना पत्ता तक हिलता नहीं।

५—राजनीतिक विचार

फाराबीने अफलातूँके "प्रजातन्त्र" को पढ़ा था, और उसका उसपर कुछ असर जरूर हुआ था, किन्तु वह अफलातूँ जगत—अथेन्स और उसके

प्रजातंत्र—का अपने सामने निर्विवाद [illegible] कर सकता था। उसका [illegible] सिवा दूसरे प्रकारका शासन संभव न था—[illegible] [illegible] लिए एक [illegible] (राजाके)—[illegible] उठना बहुत [illegible]। [illegible] फारावी [illegible] प्रजा [illegible] एक [illegible] राजाके [illegible] सर्वोच्च [illegible] बनाता है। [illegible] जीवन-साधनोंके लिए एक दूसरेपर अवलंबित [illegible] और मनुष्य [illegible] नैसर्गिक [illegible] अधिक [illegible] [illegible] स्वभावतः [illegible] और [illegible] [illegible] एक बहुत [illegible] एक [illegible] आधार [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] राजाके [illegible] होनेका [illegible] है। यदि राजा [illegible] [illegible] [illegible] या दुराचारी है [illegible] राज्य [illegible] होगा। [illegible] राज्य [illegible] है जिसका राजा (अफलातूं जैसा) [illegible] है। आदर्श ([illegible]) राजा दूसरे अपने [illegible] गुणवान व्यक्तियोंसे [illegible] [illegible] सहायक बनाता है।

फारावी एक और [illegible] राजाके [illegible]—यदि [illegible] है तो [illegible] था—[illegible] अधिकारको कायम रखना चाहता है किन्तु साथ ही एक [illegible] [illegible] कारण वह उसके [illegible] भी [illegible] है। [illegible] [illegible]—[illegible]—का [illegible] [illegible] था जाता [illegible] [illegible] राजापर निर्भर है। [illegible] [illegible] प्रजा [illegible] [illegible] अवस्थामें पहुँच जाती है। [illegible] सारी जिम्मेवारी राजापर पड़ती है जिसके लिए परलोकमें उसे यातना भोगनेके लिए तैयार रहना पड़ेगा। यह [illegible] कुछ विस्तृत [illegible] में—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥ —तुलसीदास

फारावीके राजनीतिक विचार व्यवहार-बुद्धिसे बिलकुल शून्य हैं [illegible] इसके कारण भी थे। एक [illegible] [illegible] वह व्यवहारके गुण को बिलकुल जानता न था यह बात नहीं हो सकती यही कहा जा सकता

, कि वह व्यवहारके जीवन दार्शनिक (व्यवहारशून्य मानसिक उड़ान के) जीवनको ज्यादा पसन्द करता था। जब हम उसके जीवनका और स्वयं है तो यह बात और साफ हो जाती है। उसका जीवन एक विचार मय सूफी या बौद्ध भिक्षुका जीवन था। उसके पास सम्पत्ति नहीं थी किन्तु मन उसका किसी राजाके बस न था। एकान्तमें उसे अपने आप अरस्तूका संसर्ग, और तज्जन्य अपार आनन्द प्राप्त होता था। अपने बाग-के फूल और चिड़ियोंके कलरव मानो बसीका पूरा कर देते थे। यद्यपि सनातनी मुसलमान फाराबीको सदा काफिर कहते थे किन्तु वह उनके ज्ञानके तलको बहुत नीचा समझता उनकी रायकी कोई कदर नहीं करता था। उसके लिए यह काफी सन्तोषकी बात था कि पारसी व्यक्ति—चाहे वह कितने ही थोड़े हों—उसकी कदर करते थे। वह उनके लिए महान् तत्त्वज्ञानी था। फाराबीका शुद्ध और सादा जीवन दूसरा सरहद मजहबी पक्षपातसे शून्य व्यक्तियोंपर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता था।

यह सब इसी बातको बतलाते हैं कि ज्ञानसे दूर हट जानेपर भी फाराबीसे तत्कालीन समाज या शासनको कोई डर न था।

६—फाराबीके उत्तराधिकारी

फाराबी जैसे एकान्तप्रिय प्रकृतिवाले विद्वानके पास शिष्योंकी भारी भीड़ जमा नहीं हो सकती थी इसीलिए उसके शिष्योंकी संख्या बहुत कम थी। अरस्तूके कितने ही ग्रन्थोंका अनुवादक अबू-जकरिया यह्या इब्न-आदी—याकूबी पंथका ईसाई—उसका शिष्य था। अनुवादक होनेके सिवा आदीमें स्वयं कोई खास बात न थी किन्तु उसका ईरानी शिष्य अबू सुलेमान मुहम्मद (इब्न-ताहिर इब्न-बहराम अल) सजिस्तानी एक ख्यात नामा पंडित था। इसकी सदीके उत्तरार्धमें सजिस्तानीकी शिष्य-मंडली में बगदादके बड़े बड़े विद्वान शामिल थे। सजिस्तानी-गुरु शिष्य मंडली के दार्शनिक पाठ और संवादके कितने ही भाग अब भी सुरक्षित हैं, जिसमें

[illegible] था [illegible] कि [illegible] स्थिरता [illegible] सभार [illegible] कितनी थी। [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] हमारे [illegible] [illegible] [illegible]

हिन्दूराज्य पवतमाना हिन्दूकुशका नाम धारण करता है।—महमूद गजनवी काबुलके हिन्दूराज्यके विजयसे ही सन्तोष नहीं करता, बल्कि इस्लामके 'कुफ्र'को बुलन्द करनेके लिए भारतपर हम्लपर हम्ला करता है। ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर यही शक्ल हमारे सामने आती है जैसा कि हमारे विद्यालयोंके इतिहासलेखक हमारे सामने उसे पेश करते हैं, किन्तु सतहसे भीतर जानेपर यह हिन्दू और इस्लामके झंडोंके झगड़ेका सवाल नहीं रह जाता—यद्यपि यह ठीक है कि उस समय उसे भी ऐसा ही समझा गया था।

प्रारंभिक इस्लामपर अरब कबीलाशाहीकी जबरदस्त छाप थी, इसका जिक्र पहले आ चुका है साथ ही हम यह भी बतला चुके हैं कि नमिश्कवी खिलाफतने उस कबीलाशाहीका पहिला शिकस्त दी और उस शाहीकी खिलाफतने उसे दफना दिया।—यह बात जहाँ तक ऊपरके शासक-वर्गका संबंध है बिलकुल ठीक है। किन्तु कबीलाशाही कुरान अब भी मुसलमानोंका मुख्य धर्मग्रन्थ था। उसकी पढ़ाईका हर मस्जिद हर मदरसेमें उसी तरह रवाज था। अरबी कबीलोंके भीतर सरदार और साधारण व्यक्तियोंको जो समानता है उसका न कुरानमें उतना स्पष्ट चित्रण था, और न उसका उदाहरण लोगोंके सामने था—बल्कि खलीफों और धनी मुसलमानोंका जो उदाहरण सामने था वह बिलकुल उलटा रूप पेश करता था। हाँ भाई-चारेकी बात कुरानमें साफ और बार बार दुहराई गई थी मस्जिदमें जुमाकी नमाजके वक्त सुल्तानोंको भी इसे दिखलाना पड़ता था। जिन शक्तियोंसे मुसलमानोंका विरोध था, उनमें इस भाई चारेका ख्याल इतना खतम हो चुका था उनका सामाजिक संगठन सदियोंसे इस तरह विशृंखलित हो चुका था कि हिन्दू झंडे या किसी दूसरे नामपर उसे जानेकी बात उस परिस्थितिमें कभी भी संभव न थी। इस्लामी झंडा यद्यपि अब विश्वव्यापी (अन्तर्राष्ट्रीय) इस्लामी कबीलेका झंडा नहीं था, तो भी वह ऐसे विचारोंको लेकर हमला कर रहा था जिससे शत्रुदेशके राजनीतिक ही नहीं सामाजिक ढाँचेको भी चोट पहुँच

[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

१—जीवनी

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। वह सुल्तान [illegible] (दमस्की?) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [

मानव जीव एक ऐसा अमिश्रित निराकार द्रव्य है जो कि अपनी सत्ता ज्ञान और क्रियाका अनुभव करता है। यह अभौतिक आत्मिक स्वभाव रखता है यह तो इसीसे सिद्ध है कि जहाँ भौतिक शरीर एक दूसरेसे अत्यन्त विरोधी आकारों—काला सफेद क ज्ञाना—मन सिर्फ एकका ग्रहण कर सकता है, वहाँ जीव (आत्मा) एक ही समय कई 'आकारों का ग्रहण करता है। यही नहीं वह इन्द्रिय-ग्राह्य तथा इन्द्रिय अग्राह्य दोनों प्रकारके "आकारों को अभौतिक स्वरूपमें ग्रहण करता है—इन्द्रियसे हम कलमकी लंबाई देखते हैं, किन्तु उसका 'आकार' सा स्मृतिमें सुरक्षित होता है वह कोई भौतिक लंबाई नहीं है। इसीसे सिद्ध है कि जीव भौतिक सीमासे बद्ध नहीं है। अतएव जीवके ज्ञान और प्रयत्न शरीरकी सीमासे बाहर तककी पहुँच रखते हैं, और अन्तिम वह इन्द्रिय-गोचर जगतकी सीमासे भी पार पहुँचते हैं। सच और झूठका ज्ञान जीवमें सहज होता है इन्द्रियाँ इस ज्ञानको नहीं प्रदान करतीं। इन्द्रियाँ अपने प्रत्यक्षके द्वारा जिन विषयोंको उपस्थित करती हैं, उनकी विवेचना और निर्धारणा करते वक्त वह अपनी उसी सहज शक्तिसे काम लेती है। 'मैं जानता हूँ' इसको जानना—'आत्म चेतना'—इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि जीव एक अभौतिक तत्त्व है।

३—आचार-शास्त्र

(१) पाप पुण्य—जैसा कि पहले कहा जा चुका है मस्कविया ज्यादा प्रसिद्ध है एक आचारशास्त्रीके तौरपर। आचार शास्त्रमें पहिला प्रश्न आता है—'शुभ (=भलाई, नेकी) क्या है?' मस्कवियाका उत्तर है—जिसके द्वारा एक इच्छावान व्यक्ति (=प्राणी) अपने उद्देश्य या स्वभावका पूर्णतासे प्राप्त करता है। नेक (=शुभ) होनेके लिए एक खास तरहकी योग्यता या रुझान होनी जरूरी है। लेकिन हम जानते हैं, हर मनुष्यमें योग्यता एकसी नहीं है। स्वभावतः नेक मनुष्य बहुत कम होते हैं। जो स्वभावतः नेक हैं, वह बुरे नहीं हो सकते, क्योंकि स्वभाव उसीको कहते हैं

जो बनता है। कितने ही स्वभावतः दुष्ट और कभी अच्छे न होने वाले मनुष्य भी हैं। जैसा मनुष्य पहिले-पहिल नेक होता है न कि वह सामाजिक वातावरण (संसर्ग) या शिक्षा-दीक्षा के कारण नेक या बद बन जाता है।

शुभ (=नेकी) दो तरहका होता है—साधारण शुभ और विशेष शुभ। इनके अतिरिक्त एक परम शुभ है जो कि सब महान सत् (=ईश्वर) और सर्व महान ज्ञानका वाहक है। सभी शुभ मिलकर इसी परम शुभ तक पहुँचना चाहता है। हर व्यक्तिको किसी विशेष शुभके करनेसे उसके भीतर आनन्द या प्रसन्नता प्रकट होती है। यह आनन्द और कुछ न। अपने ही मुख्य स्वभावका पूर्ण और निजात्म रूपमें प्राकट्य है। अपने ही अन्तस्तम अस्तित्वका पूर्ण अनुभव है।

(२) **समाजका महत्त्व**—मनुष्य उसी वक्त शुभ(नेक) और सुखी है, जब कि वह मनुष्यकी तरह आचरण करता है—सदाचार मानव महत्तायता है। मानव समाजके सभी व्यक्ति एक समान नहीं हैं इसीलिए शुभ, और आनन्द (=सुख)का स्तर सबके लिए एकसा नहीं है। यदि मनुष्य अकेला छोड़ दिया जाय तो स्वभावतः जो मनुष्य नेक है न बद उसे नेक बननेका अवसर नहीं मिलेगा इसीलिए बहुतसे मनुष्योंका इकट्ठा (=समाजमें) रहना जरूरी है और इसके लिए पहिला कर्तव्य तथा सभी शुभाचरणोंकी नींव है मानव जातिके लिए साधारण प्रेम, जिसके बिना कोई समाज कायम नहीं रह सकता। दूसरे मनुष्योंके साथ और उनके बीच ही मनुष्य अपनी कमियोंको दूर कर पूर्णता प्राप्त कर सकता है इसीलिए आचार वही हो सकता है जो कि सामाजिक आचार है। इस तरह मित्रता आत्म प्रेम (=अपने भीतर केन्द्रित प्रेम)का सीमा विस्तार नहीं बल्कि आत्म प्रेमका संकोच है यह अपनेपनकी सीमाके बाहर अपने पड़ोसी का प्रेम है। इस तरहका प्रेम या मित्रता संसार-त्यागी एकान्तवासी साधुमें संभव नहीं है यह संभव है केवल समाज या सामूहिक जीवन होने। जो एकान्तवासी योगी समझता है कि वह शुभ (=सदाचारी) जीवन बिता रहा है वह अपनेको धोखा देता है। वह धार्मिक हो सकता

है किन्तु आचारवान् हर्गिज नहीं, क्योंकि आचारवान् होनेके लिए समाज चाहिए।

(३) धर्म (=मज़हब)—धर्म या मज़हब मस्कवियाके विचारमें लोगोंको आचारकी शिक्षा देनेका तरीका है उदाहरणार्थ नमाज़ (=भगवान्‌की उपासना), और हज (=मक्केकी तीर्थयात्रा) पड़ोसी या सार्वजनिक प्रेमको बड़े पैमानेपर पैदा करनेका सुन्दर अवसर है।

साम्प्रदायिक संकीर्णताका अभाव और मानव-जीवनमें समाजका बहुत ऊँचा स्थान बतलाता है कि मस्कवियाकी दृष्टि कितनी व्यापक और गंभीर थी।

§ ४—बू-अली सीना (९८०-१०३७ ई०)

फ़ाराबी अपने शान्त अतएव निष्क्रिय स्वभावके कारण चाहे दर्शन क्षेत्रमें उतना काम न कर सका हो, जितना कि वह अपने गंभीर अध्ययन और प्रतिभाके कारण कर सकता था किन्तु वह एक महान विद्वान था इसमें सन्देह नहीं। बू अली सीनाके बारेमें तो हम कह सकते हैं कि उसके रूपमें पूर्वी इस्लामिक दर्शन उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचा। बू अली सीना मस्कवियाके (मृत्यु १०३० ई०) फिर्दौसी (९४० १०२० ई०) अलबेरूनी (९७३ १०४८)का समकालीन था, मस्कवियासे भेंट और अलबेरूनीसे उसका पत्र-व्यवहार भी हुआ था।

१—जीवनी

अबू अली अल-हुसैन (इब्न अब्दुल्ला इब्न)सीनाका जन्म ९८० ई० में बुखारेके पास अफ़शानमें हुआ था। सीनाके परिवारके लोग पीढ़ियोंसे सरकारी कर्मचारी रहते चले आए थे। उसने प्रारंभिक शिक्षा घरपर पाई। यद्यपि मध्य-एसियाके इस भागमें इस्लामको प्रभुत्व जमाए प्रायः तीन सदियाँ हो गई थीं किन्तु मालूम होता है यहाँकी सभ्य जातिके लिए जितना अरबी तलवारके सामने सिर झुकाना आसान था

[illegible] अपने [illegible] (राष्ट्रीय सभ्यता) का भुलाना [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विचार-[illegible] [illegible] न करता था [illegible] भी [illegible] था। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]—वर्तमान उच्चतम [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [

हुआ यह आज पष्ठ बतलायगा। एक बात तो निश्चित है कि अब तक चलते आए ढर्रेकी पढ़ाईसे इतनी कम आयमें मुक्त हो जाने वह दर्शनमें टीकाकार और गतानुगतिक न बने, स्वतन्त्रतासे यूनानी दर्शनका तुलनात्मक अध्ययनसे अपनी निजी शैलीका विकसित कर गया।

किसी महत्त्वाकांक्षी विद्वान्के लिए अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए इस बात जरूरी था कि वह किसी शासकका आश्रय ले। सीनाको भी यही करना पड़ा। सीना हो सकता है अपनी प्रतिभा और विद्वत्ताके कारण किसी बड़े दरबारमें रसूख हासिल कर सकता किन्तु उसमें आत्म सम्मान और स्वतन्त्रताका भाव इतना अधिक था कि वह बहुत बड़े दरबारमें टिक न सकता था। छोटे दरबारोंमें वह बहुत कुछ समानताके साथ निर्वाह कर सकता था, इसलिए उसने अपनी दौड़को वहीं तक सीमित रक्खा। वहाँ भी, एक दरबारमें यदि कोई तबियतके विरुद्ध बात हुई तो दूसरा घर देखा। उसके काम भी भिन्न भिन्न दरबारोंमें भिन्न भिन्न थे कभी वह शासनका कोई अधिकारी बना कभी अध्यापक और कभी लेखक। अन्तमें चक्कर काटते काटते हमदान (पश्चिमी ईरान)के शासक शम्सुद्दौलाका वजीर बना। शम्सुद्दौलाके मरनेके बाद उसके पुत्रने कुछ महीनोंके लिए सीनाको जेलमें डाल दिया—सीनाने खानेमें भर तो क्या उत्तराधिकारी तरफ कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जेलसे छूटनेपर वह इस्पहाँ शासक अलाउद्दौलाके दरबारमें पहुँचा। अलाउद्दौलाने जब हमदानको जीत लिया, तो अवीसीना फिर वहाँ लौट गया। यहीं १०३७ ई० में ५७ वर्षकी उम्रमें उसका देहान्त हुआ, हमदानमें आज भी उसकी समाधि मौजूद है।—हमदान (एकबतना) ईरानके प्रथम राजवंश (मद्रवंश)के संस्थापक राजा देवस (दयउक्कु, मृत्यु ६५५ ई० पू०)की राजधानी थी।

वैज्ञानिक

सीनाने अपनी कोई वैज्ञानिक प्रतिभाका कोई विवरण नहीं लिखा। उसका जो भी कोई और विवरण हमको मौजूद है,

[illegible] उनपर विचार कर स्वतन्त्र निष्कर्ष पहुँचते थे। यह जिस निष्कर्ष पर पहुँचा उसे अपने प्रमाण उपस्थित किया। उसके [illegible] प्रमाण [illegible] थे—

(१) [illegible] (जिज्ञासा) (अर्थात् अज्ञान जाननेकी इच्छा पहले [illegible] तैयार है)। (२) [illegible] (=[illegible])। (३) [illegible] (=मुक्ति)।

[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible]

सूफी निबंधोंमें बहुत ही प्रसाद गुण पाया जाता है। पद्य रचनापर उसका इतना अधिकार था कि इच्छा होनेपर उसने साइस वद्यक और तर्कका पुस्तकोंको भी पद्यमें लिखा। फारसी और अरबी दोनों भाषाओंपर उसका पूर्ण अधिकार था।

३—दार्शनिक विचार

सीना दार्शनिक और वैद्य (=हकीम) दोनों था। राइस दर्शनमें उसकी कीर्तिछटाको मंद कर दिया, तो भी वैद्यकके आचार्यके तौर बहुत पीछे तक यूरोप उसका सम्मान करता रहा।

(१) मिथ्याविश्वास विरोध—सीना अपने पहिले इस्लामिक दार्शनिकोंसे बहुत ज्यादा फलित-ज्योतिष और कीमिया—उस वक्तके दो जबरदस्त मिथ्या विश्वासों—का सख्त विरोधी था। वह उन्हें निरी मूढ़ता समझता था, यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं कि अंध मूढ़ताके साथ ही लोग उसके नामसे इन विषयोंपर ग्रंथ लिखनेसे बाज आये हों।

हाँ उसका बुद्धिवाद साइंसवालोंका बुद्धिवाद—प्रयोगसिद्ध सिद्धान्तों सत्य—नहीं बल्कि दार्शनिकोंका बुद्धिवाद था, जिसमें कि इन्द्रियोंका गलत रास्तेपर न जानेसे बचानेके लिए बुद्धिका तर्कके अस्त्रकी चतुराईसे उपयोगपर जोर दिया गया है। तर्क बुद्धिके लिए अनिवार्यतया आवश्यक है तर्ककी आवश्यकता सिर्फ उन्हींको नहीं है, जिनको दिव्यप्रेरणा मिली है। जैसे अनपढ़ उर्दूको अरबी व्याकरणकी आवश्यकता नहीं।

(२) जीव-प्रकृति-ईश्वरवाद—फाराबीकी भाँति सीना प्रकृति (मूल भौतिक तत्त्व)को ईश्वरसे उत्पन्न हुआ नहीं मानता था उसके विचारमें ईश्वर एक ऊँची हस्ती है जिसे प्रकृतिके रूपमें परिणत हुआ मानना उसे खींचकर नीचे लाना है, उसी तरह वह जीवको भी ईश्वरसे नीचे किन्तु प्रकृतिसे ऊपर तत्त्व मानता है। उसके मतसे ईश्वर जो सृष्टि करता है उसका अर्थ यही है, कि कर्त्ता (=भगवान) अनादि (अकृत) प्रकृतिको साकार रूप देता है। अरस्तू और सीनाके मतमें यही थोड़ा अन्तर है।

अरस्तू प्रकृतिके अतिरिक्त आकृतिको भी अनादि (=अकृत) मानता है। और यदि कोई कहता मतलब यह था लेता है कि वर्तमान प्रकृति और आकृतिको मिलाकर साकार जगत और उसकी वस्तुएं बनाईं। मीना प्रकृतिको तो अनादि मानता है और आकृतिको अकृत नहीं कृत (=बनाई हुई) मानता है। निश्चय ही यह सिद्धान्त सनातनी मुसलमानोंके लिए बुरा कम न था और यही समझकर ११५० ई० में उन्होंने सर्वोपरि मुसलमानोंने मीनाके ग्रन्थोंका आगमन रोका था।

(३) ईश्वर—अकृत (अनादि) प्रकृति निराकार है उस अवस्थामें जगत तथा उसकी साकार वस्तुओंका अस्तित्व नहीं हो सकता। इस नास्तित्वकी अवस्थामें जगतको साकार अस्तित्वमें परिणत करनेके लिए एक सत्ताकी जरूरत है और वही ईश्वर है। ईश्वरकी सिद्धिके लिए मीनाकी यह युक्ति अरस्तूसे भिन्न है अरस्तूका कहना है कि प्रकृति और आकृति दोनों ही अनादि (अकृत) वस्तुएं हैं उनके ही मिलनसे साकार जगत पैदा होता है इस मिलनके लिए गतिकी जरूरत है जो गति कि चिरकालसे जगतमें रही जाती है इस गतिका कोई चालक (=गतिकारक) होना चाहिए जिसको ही ईश्वर कहते हैं।

ईश्वर एक (अद्वितीय) है। उसमें बहुत से विशेषण माने जा सकते हैं किन्तु ऐसा मानते वक्त यह ख्याल रखना चाहिए कि उनकी वजहसे ईश्वर अद्वैतमें बाधा न पड़े।

(४) जीव और शरीर—यूनानी दार्शनिकों तथा उनके अनुयायी मुसलमानी दार्शनिकोंकी भाँति मीनाने भी ईश्वरसे प्रथम विज्ञान (=नफ्स) उससे द्वितीय विज्ञान आदिकी उत्पत्तिका वर्णन किया है। जिसका बहुत कुछ रूखी पुनरावृत्ति समझकर हम यहां छोड़ देते हैं। मीनाने जीवको स्थान प्रकृतिसे ऊपर रक्खा है जो कि भारतीय दर्शन (सेश्वर सांख्य) से समानता रखता है। उस समय जब कि काहिरामें अभी ही अभी महमूदने हिन्दू शासन हटाकर अपना शासन स्थापित किया था, किसी धर्मभीरु फिरके योग (सेश्वर-सांख्य) के अनुयायीसे मीनाकी मुलाकात

[illegible] न थी, अथवा अन्यथा अनुवादका [illegible] उसके [illegible] कोई भारतीय [illegible] पुस्तक [illegible] हो सकती है। [illegible] विचार [illegible] लिया था। एक बात तो स्पष्ट है कि [illegible] जीव (आत्मा)पर [illegible] नहीं [illegible] बुद्धि [illegible] । [illegible] रखने कारण [illegible] "[illegible] (=[illegible]) [illegible] भाव [illegible] ।

[illegible] और [illegible] [illegible] मानता है। सभी [illegible] भौतिक तत्वोंसे मिलकर बना है [illegible] मानव शरीर भी, उसी तरह भौतिक तत्वोंसे बना है, हां, वहां साधारण मिश्रणसे कुछ [illegible] काम लिया गया है। इस मिश्रण द्वारा मानव [illegible] मूर्ति या विकास [illegible] किया जा सकता है। किन्तु जीव इस तरह भौतिक तत्वोंसे मिश्रण नहीं [illegible] है। जीव शरीरसे अभिन्न [illegible] है [illegible] उसका शरीरसे साथ पालन [illegible] हुआ। हरएक शरीरका अपना अपना जीव उपरान्त मिलता। प्रारम्भमें ही पत्थर जीव एक अलग वस्तु है [illegible] रहते हुए सारे जीवन भर अपने व्यक्तित्व विकासको जारी रखता है।

मनुष्य [illegible] जीवकी सबसे बड़ी शक्ति है। पांच बाहरी और पांच भीतरी इन्द्रियां (=अन्तःकरण) जगतका ज्ञान विज्ञानमय जीवके पास पहुँचाता है जिसका अन्तिम ज्ञानात्मक निर्णय [illegible] जीव करता है।

---

[1] वेदान्तियोंके चार मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारकी भांति सांख्यने भी अन्तःकरणको पांच भागोंमें बांटा है जो कि मस्तिष्कके आगे, बिचले और पिछले हिस्सोंमें है, और वह है—(१) हिस्सा मुन्तरब (सम्मिलित अन्तःकरण), (२) हिस्सा सम्मुई (ज्ञानमय) प्रतिबिम्बोंका सामूहिक स्मृति, (३) इद्राक लाशऊरी ([illegible] होनेके बिना परिचय), (४) इद्राक शऊरी (होनेके साथ सम्पूर्णतः परिचय), (५) हिस्सा मखानी (उच्च परिचयकी स्मृति)।

आत्मा शक्ति या बुद्धि जीवकी शक्तियोंका परमसीमा है। पहिली बुद्धिके भीतर चिन्तनरूप छिपी क्षमता रहती है, किन्तु बाहरी भीतरी इन्द्रियों द्वारा गृहीत ज्ञानसामग्री उसकी छिपी क्षमताको प्रकट—कार्यक्षमतामें परिणत कर देती है लेकिन ऊपर आत्मशक्ति (द्वितीय नक्शा)की प्रेरणा भी शामिल रहती है वही बुद्धिका विचार प्रदान करता है। मानव जीवकी स्मृति शुद्ध निराकार रूपमें नहीं होती, क्योंकि स्मृतिके होनेके लिए पहिले साकार आधार जरूरी है।

विज्ञानमय (मानव) जीव अपनेसे नीचे (भौतिक वस्तुओं)का स्वामी है किन्तु ऊपरकी वस्तुओंका ज्ञान उस जगदात्मा (=द्वितीय नक्शा) द्वारा मिलता है। इस तरह ऊपर नीचेके ज्ञानोंका पात्र मनुष्य वास्तविक मनुष्य बनता है। यही भी सारूपण वह (मानव जीव) एक अमिश्रित अनश्वर अमर वस्तु है। जबतक मानव-जीव शरीर और जगतमें रहता है तबतक वह उनके द्वारा अधिक शिक्षित अधिक विकसित होनेका अवसर पाता है किन्तु जब शरीर मर जाता है तो जीव जगदात्माका समापा-सा हो बना रहता है। यहाँ जगदात्माका समापन—समान नहीं—तक नाना जीवोंका यथायोग्य है। दूसरे जीवोंको यह अवस्था नहीं प्राप्त होती उनका जीवन अनन्त दुःखका जीवन है। जैसे शारीरिक विकार रोगको पैदा करता है उसी तरह जीवका विकृत अवस्थाके लिए दण्ड होना जरूरी है। स्वर्ग फल भी मानव-जीवको उसी परिमाणमें मिलता है जिस परिमाणमें कि उसने अपने आत्मिक स्वास्थ्य—ज्ञान—को इस शरीरमें प्राप्त किया है। हाँ उच्चतम पदपर पहुँचनेवाले थोड़े ही होते हैं, क्योंकि सत्यके शिखरपर पहुँचनेके लिए स्थान नहीं है।

(५) हईकी कथा[1]—हमारे यहाँ जैसे 'संकल्प सूर्योदय' जैसे नाटक या कथाएँ वेदान्त या दूसरे आध्यात्मिक विषयोंको समझानेके लिए लिखी गई हैं, सोनान भी हद्र-ज्ञान-यज्ञान या प्रबुद्ध-पुत्र जीवकी कथाको

---

[1] एक हईकी कथा तुफल (देखो पृष्ठ २०४)ने भी लिखी है।

लिखकर उसी बातका अनुसरण किया है। जीवक अपनी बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंकी सहायतासे पृथिवी और स्वर्गकी बातोंको जाननेकी कोशिश करता भटक रहा है। उसे उत्साहमें तरुणोंका भान करनेवाला एक वृद्ध मिलता है। यह वृद्ध और कोई नहीं, एक ज्ञानी गुरु—दानिश—है, जो कि पथ प्रदर्शककी भाँति भटकेको रास्ता बतलाना चाहता है। वृद्धका नाम है हई, और वह जागृत (=प्रबुद्ध)का पुत्र है। भटकते मुसाफिरके सामने दो मार्ग हैं—(१) एक पश्चिमका रास्ता है जो कि सांसारिक वस्तुओं और पापकी ओर ले जाता है (२) दूसरा उगते सूर्यकी ओर ले जाता है यह है सच्चे शुद्ध आकृतियों और आत्माका मार्ग। हई मुसाफिरको उगते सूर्यकी ओर ले जानेवाले मार्गपर चलनेको कहता है। दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हुए उस दिव्य ज्ञान-वापीपर पहुँचते हैं जो चिरतारुण्यका चश्मा है जहाँ सौंदर्यकी यवनिका सौंदर्य ज्योतिका घूंघट ज्योति है जहाँ कि वह अनन्त रहस्य वास करता है।

(६) उपदेशमें अधिकारिभेद—जीव और प्रकृतिको भी ईश्वरकी भाँति ही सनातन मानना कुरानकी बातोंकी मनमानी व्याख्या करना जैसी बहुतसी बातें सीनाकी ऐसी थीं कि वह कुफ्रके फतवेके साथ जिन्दा दफना दिया जा सकता था इस खतरेको सीना समझता था। इसीलिए उसने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि सभी तरहका ज्ञान या उपदेश सबको नहीं देना चाहिए। ज्ञान प्रदान करते वक्त गुरुका काम है, कि वह अपने शिष्यकी योग्यताको देखे और जो जिस ज्ञानका अधिकारी हो उसको वही ज्ञान दे। पैगम्बर मुहम्मद अरबके खानाबदोश बद्दुओंको सभ्य बनाना चाहते थे उन्होंने देखा कि बद्दुओंको आत्मिक आनन्द आदिकी बात बतलाना "भैंसके सामने बीन बजाना होगा, इसलिए उन्होंने उनसे कहा "कयामत (=अन्तिम निर्णय)के दिन मुर्दे जिन्दा हो उठेंगे।' बद्दुओंने समझा हमारा यह प्रिय शरीर सड़नेके लिए बिछुड़नेवाला नहीं, बल्कि वह हमें फिर मिलनेवाला है और यह उनके लिए आशा और प्रसन्नताकी बात थी। इसी तरह बहिश्त (=स्वर्ग)की दूध शहदकी नहरें, अंगूरोंके बाग, हूर

(– [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible]

हो गया था। इन सल्तनतोंमें सबसे बड़ी सल्तनत जो कि एशियामें थी वह थी सलजूकी तुर्कोंकी सल्तनत। इस सल्तनतके बानी तोग्रल बेग (१०२७-६२ ई०) ने ४२९ हिज्री (१०३६ ई०)में सीस्तानकी राजधानी नूशापुर अधिकार कर लिया और धीरे धीरे सारे ईरानको विजय करके ४४७ हिज्री (१०५४ ई०)में ईराक (बगदाद वाला देश)का भी स्वामी बन गया। तोग्रलके बाद अल्प अर्सलान (१०६२-७५ ई०), फिर बाद मलिकशाह प्रथम (१०७२-९२ ई०) शासक बना। मलिकशाहके शासनमें सलजूकी-सल्तनतका भाग्य-सूर्य मध्याह्नपर पहुँचा हुआ था। मलिकशाहके राज्यकी पूर्वी सीमा जहाँ काशगरके पास चीनसे मिलती वहाँ पश्चिममें वह यरूशलिम और कुस्तुन्तुनिया तक फैली हुई थी। यही तुर्कोंके शासनका प्रारम्भ है जो कि अन्तमें तुर्कोंके तुर्कोंके शासन और खिलाफतका अग्रदूत बना।

इस्लामके इन चिरनामित मुल्कोंमें अब इस्लामकी प्रगतिशीलता खतम हो चुकी थी, अब वह दीन-दरिद्राका बंधु तथा पुराने सामन्तवर्गों तथा धनी पुरोहितोंका सहारा नहीं रह गया था। अब उसने खुद सामन्त और पुरोहित पैदा किये थे जो पहिलेसे कम खर्चीले न थे खास कर नये सामन्तों तो शौक और विलासप्रियतामें कैसरों और शहंशाहों को कान काटते थे। (गज़ालीके समकालीन सुल्तान सञ्जर सलजूकीने एक गुलाम लड़केके अप्राकृतिक प्रेममें पागल हो उसे लाखोंकी जागीर तथा सात लाख अशर्फियाँ दे दी थीं)। साधारण जोंगर चलानेवाली जनताके ऊपर इसमें क्या बीत रहा था यह गज़ालीके उस वाक्यसे पता लगता है जिसमें कि उसने सुल्तान सञ्जर (१११८-५७ ई०)से कहा था—

अफसोस मुसलमानों (=मेहनत करनेवाली साधारण जनता)की गर्दन मुसीबत और तकलीफसे टूटी जाती है और नेर घोड़ोंकी गर्दन मोटे हमेशकि बोझसे दबी जा रही है। धर्म-पुरोहितों (=मौलवियों)के बारेमें गज़ाली भी कहता है— ये (मुल्ला) लोग शैतानी सूरतमें शैतान (शैतान उल उन्स) हैं, जो कि स्वयं पथभ्रष्ट हैं और दूसरोंको पथभ्रष्ट करते

[illegible] । [illegible] धर्मोपदेशक [illegible] [illegible] [illegible] किसी कानून [illegible] [illegible] अथवा [illegible] । किन्तु मुझको कोई [illegible] आत्मा मालूम नहीं। [1]

[illegible] (—[illegible]) सुलतान और अमीरोंके बचनभोगी बन गए थे। निर्मल उनकी अज्ञान [illegible] थी। वह प्रजापर होने [illegible] अत्याचारको अपनी आँखों देखते और जीभ तक नहीं हिला सकते थे। सुलतान और अमीर इतने ज्यादा विलासी और कामुक हो गए थे। किन्तु [illegible] [illegible] नहीं कर सकते थे।

१—जीवनी

मुहम्मद (इब्न मुहम्मद इब्न मुहम्मद इब्न-मुहम्मद) गज़ालीका जन्म ४५० हिज्री (१०५९ ई०) में तूस (खुरासान) शहरके एक भाग ताहिरान में हुआ था। इनके पूर्वजोंका खानदान पेशा सूत कातना (—कोरा या तताना) था जिस अरबीमें गज़ल कहते हैं [illegible] अपने नामके साथ गज़ालीका लगाया। गज़ालीके छोटे [illegible] थे तभी उनके बापका देहान्त हो गया। गज़ालीका बाप स्वयं अनपढ़ था किन्तु उसे विद्यासे बहुत प्रेम था और चाहता था कि उसका लड़का विद्वान बने इसीलिए मरते वक्त उसने मुहम्मदको उसके छोटे भाई अहमदके साथ एक दोस्तके हवाले सौंपते हुए उनकी शिक्षाके लिए ताकीद की थी। गज़ालीका घर गरीब था। उनके बापका दोस्त भी धनी न था। इसलिए बापकी छोड़ी सम्पत्तिके खतम होते ही दोनों भाइयोंको खैरातका रोटीपर गुजारा करके अपनी पढ़ाई जारी रखनी पड़ी। शहरका पढ़ाई खतम कर गज़ालीकी आगे पढ़नेकी इच्छा हुई और उसे जर्जानमें जाकर एक बड़े विद्वान अबू-नस्र इस्माईलीकी शिष्यता स्वीकार की। उस समय पढ़नेकी यह शैली थी कि अध्यापक पाठ्य विषयपर जो बोलता जाता था विद्यार्थी उसे लिखते

---

[1] "अह्याउल उलूम"।

'अल-गज़ाली—शिब्ली नेअमानी (१९२८ ई०), पृष्ठ १९४

जाते थे। सौभाग्यसे मातबी मकीन हो जाने कि अरबोंने समरकन्दपर अधिकार किया इस्लामिक लोगोंमें कागजका रवाज हो गया था यद्यपि अभी तक नालंदाके विद्यार्थी तालपत्र और भूर्जपत्रका पट्टीपर आग नहीं बढ़े थे। गजालीने इस्माइलीसे जो पत्र उसे वह कागजपर लिखे गये थे। कुछ समय बाद जब वह अपने घरको लौट रहे थे तो रास्तेमें डाकू पड़े और गजालीके और सामानसे वह खर्रे भी लुट गए। गजालीसे रहा न गया, और उसने डाकुओंके सरदारके पास उस कागजको देनेके लिए प्रार्थना की। डाकू सरदारने हँसकर कहा— तुमने क्या खाक पढ़ा है? जब तुम्हारा यह हाल है कि एक कागज न रहा तो तुम कोरे रह गए। किन्तु कागज उसने लौटा दिए।

गजालीकी पढ़ाई काफी आगे तक बढ़ चुकी थी और अब छोटे-मोटे विद्वान उसे संतुष्ट न कर सकते थे। उस वक्त नेशापोर (ईरान) और बगदाद (इराक) दो शहर विद्याके महान केन्द्र समझे जाते थे जिनमें नेशापोरमें इमाम अब्दुल्मलिक हरमन और बगदादमें अबू इस्हाक शीराजी विद्याके दो सूर्य माने जाते थे। नेशापोर गजालीके ही प्रान्त (खुरासान)में था, इसलिए गजालीने नेशापोर जाकर हरमनकी शागिर्दी स्वीकार की।

अरबोंने ईरानपर जब (६४२ ई०) अधिकार किया था, उस वक्त भी नेशापोर एक प्रसिद्ध नगर तथा शिक्षा-संस्कृतिका केन्द्र था इसीलिए वहाँ वहकियाके नामसे जो मदरसा खोला गया था वह बहुत शीघ्रतासे उन्नति करके एक महान विद्यापीठके रूपमें परिणत हो गया और इस्लामके सबसे पुराने मदरसे निजामिया (बगदाद)का मुकाबिला कर रहा था। हरमन वहकिया तथा निजामिया (बगदाद)के विद्यार्थी रह चुके थे। अबुल-मलिक हरमन (मक्का-मदीना)में जाकर कुछ दिनों अध्यापन करते थे, इसीलिए हरमन उनके नामके साथ लग गया था। सुल्तान अलप असलन सलजूकी (१०६२-७२ ई०)का महामंत्री पीछे निजामुल-मुल्क बना। वह स्वयं विद्वान—हसन बिन-सब्बाह (किले उल्-मौतके संस्थापक) और (उमर खय्यामका सहपाठी)-तथा विद्वानोंकी इज्जत करता था।

[illegible]

[illegible] बहुत प्रतिभाशाली [illegible] था। [illegible]

[illegible] शिक्षा [illegible] और [illegible] लगा थी। [illegible] था, [illegible] [illegible] (१०८१ से १०८९ ई०) में [illegible] [illegible]। [illegible] आयु उस [illegible] थी।

[illegible] और [illegible] पूर्वि [illegible] जन्म था, [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

पर वर मान लिया, किन्तु दूसरी बातको मानना बहुत मुश्किल था इसके लिए खलीफाने गज़ालीको तुर्कान सालूक दरबारमें भेजा, और गज़ालीके व्यक्तित्व और समझाने-बुझानेका यह असर हुआ कि तुर्की सालूकने अपने आग्रहको छोड़ दिया।

१०९४ ई०में मुक्तदीके बाद मुस्तज़हर खलीफा बना। गज़ालीपर मुस्तज़हरकी खास कृपा थी। उस वक्त बातनी (=इस्माईली) पंथका जोर फिर बढ़ने लगा था बगदाद हीमें नहीं और जगहोंपर भी। ग्यारहवीं सदीमें मिश्रपर फातमी खलीफाका शासन था वह सभी बातनी थे। काहिराका गणितज्ञ दार्शनिक अबू अली महम्मद (इब्नुल-हैसम) इब्नुल रहीम (मृत्यु १०३८ ई०) बातनी था। ईरानमें इस्माईली बातनियोंका नेता हसन बिन-सब्बा (जो कि निज़ामुल्-मुल्कका सहपाठी था) ने एक स्वर्ग (किल-उल्-मौत) कायम किया था, और उसका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। गज़ालीने बातनियोंके प्रभावको कम करनेके लिए एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम खलीफाके नामपर 'मुस्तज़हरी' रखा।

बगदादकी परंपरा उसकी स्थापनाके समय (७६२ ई०)से ही ऐसी बन चुकी थी, कि वहाँ स्वतंत्र विचारोंकी लहरको दबाया नहीं जा सकता था। तीन शताब्दियोंसे वहाँ ईसाई यहूदी, पारसी मोतज़ली बातनी सुन्नी सभी शान्तिपूर्वक साधारण ही नहीं बौद्धिक जीवन बिताते आ रहे थे, यकायक खिलाफतके इस गए-गुज़रे जमानेमें मोना और हमीमकी पुस्तकोंकी होली भले ही कभी जला दी जाये किन्तु अब उस विचार-स्वातन्त्र्यकी लहरको दबाना उतना आसान न था। सनातनी इस्लामके जबरदस्त समर्थक अशअरीके अनुयायी गज़ाली पंडित जोशमें आकर भले ही मुस्तज़हरी लिख डालें अथवा मज़ालिम गज़ालिया में विरोधियोंपर बड़े-बड़े वाग्-बाण बरसा जायें किन्तु यह अवस्था देर तक नहीं रह सकती थी। गज़ालीने खुद लिखा है[1]—

---

[1] "मुनक्कज़ मिनल-ज़लाल"।

[illegible] (स्वाध्याय), [illegible] (पर्व स्वाध्याय) [illegible] (पर्वतिथि) [illegible] [illegible] [illegible]

रास्ता था, बुद्धि जहाँ न जाय वहाँ जाना। गज़ालीने बगदादके सुख एश्वर्यके जीवनको छोड़कर अपनी शारीरिक कष्ट-सहिष्णुता और त्यागका परिचय दिया, किन्तु बुद्धि अपने रास्तेपर ले जानेके लिए जो शक्ति रखती थी, वह इस त्याग और शारीरिक कष्टसे कम कठिन थी। उसमें नास्तिक बनकर 'पंडित', मूर्ख सबकी गालियाँ सहनी पड़ती। उसके नाम पर थू-थू होती। सत्य-शक्तिपर विश्वास न होनेसे वह यह भी ख्याल कर सकता था कि हमेशाके लिए दुनियाके सामने उसका मुहपर कालिख पुत जायगी और निज़ामियाके प्रधानाध्यापकीका सुख-सम्बन्ध ही नहीं छिनेगा बल्कि शरीरको सरबाजार काट खानेके लिए भी तैयार होना पड़ेगा। यदि बुद्धिके रास्तेपर पूरे दिलसे जानेका संकल्प करते तो गज़ालीको इन सबके लिए तैयार रहना पड़ता। गज़ाली न पूर्ण मूढ़ विश्वासको अपना सकते थे और न केवल बुद्धिपर ही चल सकते थे, इसलिए उन्होंने सूफियोंके रास्तेका पकड़ा, जिसमें यदि विश्वासके लिए कुछ त्याग करना पड़ता है तो उसमें कई गुना मानसिक सन्तोष, सम्मान प्रभावका ऐश्वर्य मिलता है। दिक्कत यही थी, कि बुद्धिके प्रखर तेजको रोका कैसे जाय, इसके लिए आत्म-सम्मोहन[1]की जरूरत थी, जो एक बुद्धिप्रधान व्यक्तिके लिए कच्चा लोहा जरूर था, किन्तु आ पड़नेपर आदमी आत्महत्या भी कर डालता है।

आखिर चार वर्षके बगदादके जीवनको आखिरी सलाम कह ४८८ हिजरी (१०९५ ई०)में ३८ वर्षकी उम्रमें कमरी कंधेपर रख गज़ालीने दमिश्कका रास्ता लिया। दमिश्कमें दो साल रहनेके बाद वह यरूशलेम आदि घूमते घामते हजके लिए मक्का मदीना गये। मक्कामें बहुत समय तक रहे। इसी यात्रामें उन्होंने सिकन्दरिया और काहिराको भी देखा। ४९९ हिजरी (११०६ ई०)में जब वह पैगम्बर इब्राहीमके जन्मस्थान खलीलामें थे तो उसी वक्त उन्होंने तीन बातोंकी प्रतिज्ञा ली थी—

(१) किसी बादशाहके दरबारमें न जाऊँगा।

---

[1] Selfhypnotisation

([illegible] किसी [illegible] स्वीकार न करेगा।

( ) किसी [illegible] किसी (=[illegible]) न करेगा।

[illegible] ([illegible] जो [illegible] [illegible] [illegible]

का बड़ा बेटा फ़ख़रुल मुल्क सञ्जर सलजूकीका महामन्त्री बना था। उस वक्त एक बातनियों (इस्माईलिया आगाखाँके पूर्वज हसन बिन सब्बाहके अनुयायियों)का जोर बढ़ रहा था यह बतला चुके हैं। उनके खिलाफ कलम ही नहीं बल्कि हुकूमतकी तलवार भी इस्तेमाल हुई जिसपर बातनियोंने भी अपना जबरदस्त गुप्त संगठन (=असेसिन) बनाया और ५०० हिजरी (११०७ ई०)में फ़ख़रुल-मुल्क उनकी तलवारका शिकार हुआ। सब्बाहका किल-उल-मौत ही नहीं नेशापुर भी असेसिनोंका गुप्त गढ़ बनता जा रहा था इसलिए गज़ालीने उसे छोड़ना ही पसन्द किया।

गज़ाली अब एकान्त जीवन पसन्द करते थे किन्तु उनसे ईर्ष्या रखने वालोंकी भी कमी न थी। उन्होंने गज़ालीकी किताबोंको उलट-पलटकर यह कहना शुरू किया कि गज़ाली जिन्दीकों-मुलहिदों (दो नास्तिक मतों) की शिक्षा देता है। चाहे सुल्तान सञ्जर खुद अप्राकृतिक अपराधका अपराधी हो, किन्तु वह अपना यह कर्तव्य समझता था कि इस्लामकी रक्षाके लिए गज़ाली जैसोंकी खबर ले। सञ्जरने गज़ालीको दरबारमें हाजिर होनेके लिए हुक्म दिया। गज़ाली मशहद रज़ा (=वर्तमान मशहद शहर) तक गया, और वहाँसे सुल्तानके पास पत्र लिखा —

बिस्त साल दर अय्याम सुल्तान शहीद (=मलिकशाह) रोज़गार गुज़ाश्त। व अज़ ओ व इस्पहान व बगदाद मकबूलहा याफ्त व चंद बार मियाने-सुल्तान व अमीरुल्मोमिनीन रसूल बूद दर-कारहाय-बुज़ुर्ग। व दर-उलूमे-दीन नज़ीक हफ्ताद् किताब तस्नीफ़ कर्द। पस् दुनियारा चूँकि बवद बदीद व ब-ज़ुम्लगी ब-अन्दाख्त। व मुद्दते दर-बैतुल् मुक़द्दस व मक्का क़याम कर्द। व बर्-सर मशहदे-इब्राहीम खलीलुल्लाह अह्द कर्द कि हर्गिज़ पेश-हुच् सुल्तान न रवद् व माले-हुच्-सुल्तान न गीरद, व मुनाज़िरा व तमस्सुब न कुनद्। हाफ़्ह साल बरीं वफ़ा कर्द। व

---

[1] "मकातिबात ग़ज़ाली"।

अमारत मामिनीन व यमा सुल्तानों दुआगामरा मंजूर दारतन्द। इकनू गुनीम कि अज़ मज़्मिमें आली इशारत रफ्ता अस्त बन्हाज़िर आमदन। फर्मांग बन्मश्हद आमदम् व निगन्दाश्त अहद-खलीलरा बनाकरगाह न यामदम।

जिसका भाव यह है कि आपके पिता मलिकशाहके शासनमें मैं बास साल गुजार अस्फहान (सलजूकी राजधानी) और बगदादमें (शाही) अवकाश रहा। कितना ही बार सुल्तान (सलजूकी) और खलीफा (अमीरुल्मोमनीन)के बीच बड़-बड़ कामोंके लिए दूत बनकर काम किया। धर्मकी विद्याओंको सतरके नजदीक पुस्तक लिखी मुद्दतों यरुशलम और मक्कामें वास किया। इब्राहीम अल्लाहके दोस्तके शहर-स्थानपर प्रतिज्ञा की (१) कभी किसी सुल्तानके सामने न जाना (२) किसी सुल्तानके धनको नहीं ग्रहण करना (३) शास्त्रार्थ और हठधर्मी नहीं करनी। बारह साल तक इस (प्रतिज्ञा)को पूरा किया। खलीफा तथा सारे सुल्तानान (लोग) ऐसा करनेवाले (फकीर)को माफ किया। अब सुना है कि सरकारने सामने आनेके लिए हुक्म निकाला है। हुक्म मानकर मश्हद रज़ा तक आया हूँ। खलीफ (स्थान)पर ली हुई प्रतिज्ञाके ख्यालसे लश्करगाह नहीं आया।

किन्तु गजालीकी सारी प्रार्थना व्यर्थ गई प्रतिज्ञाको तोड़कर उन्हें लश्करगाह ही में सञ्जरके दरबारमें जाना पड़ा। गजालीके जनतापर प्रभाव विद्वत्ता तथा पाछले कामोंको देखकर सञ्जरने उनका सम्मान किया। सञ्जरके दरबारके दबदबेका कहने [illegible] छाया

हा है। गजालीने अपनी सफाई देते हुए कहा— मैंने (अपनी) किताब अहयाउल् उलूमम लिखा है, कि मैं उन (हकीमों)को फिर (=अमली तौर पर) मैं दुनियामें अकेला (अद्वितीय) मानता हूँ।' खैर! गजालीने जवानीके जोशमें किसीके खिलाफ चाहे कुछ भी लिखा हो, किन्तु वह वैसी तबियत नहीं रखते थे। जमानेसे मामला शान्त हो गया।

बगदादको जब गजालीने छोड़ा था, तबसे उनकी विद्वत्ताकी कीर्ति बहुत बढ़ गई थी और खलीफा तथा बगदादके दूसरे विद्याप्रेमी हाकिम और अमीर इस बातको बहुत जरूरत महसूस करते थे कि गजाली फिर मदरसा निजामियाकी प्रधानाध्यापकी स्वीकार करें। इसके लिए खलीफाका सारे दरबारियोंके हस्ताक्षरसे गजालीके पास पत्र आया। मजरूके महामन्त्रीने बड़े जोरसे सिफारिश की किन्तु गजाली तयार न हुए और निम्न कारण बतलाते हुए माफी माँगी—(१) मेरे डेढ़ सौ विद्यार्थियोंका तमस वहाँ जाना मुश्किल है, (२) मैं पहिलेकी भाँति अब प्रधानाध्यापक नहीं हूँ, वहाँ जानेपर परलोकको कष्ट होगा, (३) मैंने शास्त्रार्थ तथा वाद विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा की है, जिससे बगदादमें बैठा नहीं जा सकता।

गजालीकी अन्तिम पुस्तक 'मुश्कात' है जिसे उन्होंने मरनेसे एक साल पहिले ५०४ हिजरी (१११११ ई०)में लिखा था। १४ जमादी द्वितीय बृहस्पतिवार ५०५ हिजरी (१९ दिसम्बर १११११ ई०)को तूसमें उनका देहान्त हुआ।

२—कृतियाँ

५०० हिजरी (११०८ ई०)के आसपास जब कि गजालीने मजरूको अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा था, उस वक्त तक वह सत्तरके करीब पुस्तकें लिख चुके थे, यह उनके ही लेखसे मालूम होता है। उसके बादके चार सालमें उनका लिखना बन्द नहीं हुआ। एक तरह बीस वर्षका आयुष्य अपने ५४वें ५५वें वर्ष तक (जब कि वह मरे)—लगातार ३४ ३५ वर्ष—उनकी लेखनी चलती रही। अल्लामा शिब्ली नअमानीने अपनी पुस्तक

अलाजाली में उनकी ७८ पुस्तकोंकी सूची दी है जिनमें कुछ तो बड़े-बड़े जिल्दोंमें हैं। उनके ग्रंथ मुख्यतः फिक्ह (=धर्म मीमांसा) तर्कशास्त्र दर्शन वाद शास्त्र (=कलाम) सूफीवाद (=ब्रह्मवाद) और आचार शास्त्रसे संबंध रखते हैं।

गज़ालीकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं—

१ अह्याउल उलूम (सूफी आचार)
जवाहरुल-कुरान (सूफी आचार)
मकासिदुल फिलासफा (=दर्शनाभिप्राय) (दर्शन)
४ मेयारुल इल्म (तर्क)
५ तहाफतुल फिलासफा (=दर्शन-खंडन) (वाद)
६ मुस्तस्फी (फिक्ह धर्ममीमांसा)

अह्याउल उलूम (=विद्या-संजीवनी) और तोहाफतुल् फिलासफा (=दर्शन-खंडन) गज़ालीकी दो सर्वश्रेष्ठ किताबें हैं जिनमें अह्याउल्उलूम को दूसरा कुरान समझा जाता है।

(१) अह्याउल् उलूम् (=विद्या संजीवनी)—गज़ालीके अह्याउल उलूम्के कुछ प्रशंसापत्र सुन लीजिए—

(क) प्रशंसापत्र—गज़ालीके समकालीन तथा हरमनके पास साथ पढ़े अबुल-ताहिर फार्सीका कहना है— अह्याउल-उलूम जैसी कोई किताब उससे पहिले नहीं लिखी गई।

इमाम नूरुद्दीन मुस्लिम (हदीस)के टीकाकारका उद्गार है— अह्याउल उलूम् कुरानके लगभग है।

शेख अबू-मुहम्मद कारजदनीने कहा है— यदि दुनियाकी सारी विद्याएं (=उलूम) मिटा दी जायं तो अह्याउल उलूम्से सबको जिन्दा कर दूंगा।

प्रसिद्ध सूफी शेख अब्दुल्ला इब्नदसका अह्याउल उलूम कंठस्थसी था।

शेख अली दमर सूफीने पचीस बार अह्याउल-उलूम्का अखंड पाठ

किया, और हर बार पोथी समाप्तिपर फ़क़ीरों और विद्यार्थियोंको भोज दिया।

कुतुब शाजली बहुत पहुँचे हुए सूफ़ी समझे जाते थे। एक दिन अह्याउल उलूमको हाथमें लिए "जानते हो यह क्या किताब है?" कह बलपूर्वक बाईसी मारकर लोग दिखला कर बोले— पहिले मैं इस किताबसे इन्कार करता था। आज रातको मुझे इमाम ग़ज़ालीने आ-हज़रत (=पैग़म्बर महम्मद)के दरबारमें पेश किया और इस अपराधकी सज़ामें मुझे कोड़े लगाए गए।'

शेख मुईउद्दीन अरबी जगद्विख्यात सूफ़ी गुज़रे हैं। वह अह्याउल उलूमको काबा (मक्का)के सामने बैठकर पढ़ा करते थे।

यह तो खैर, 'घरवालों के मुहसे अतिरंजित प्रशंसा होनेके कारण उतनी कीमत नहीं रखेगा, किन्तु पिछली सदीके प्रसिद्ध दर्शन इतिहास के लेखक जाज हेनरी लेविसका कहना है —

"अगर दसवीं (१५९६ १६५० ई०)के समयमें अह्याउल-उलूमका अनुवाद अन्य भाषामें हो चुका होता, तो लोग यही कहते कि इब्नरुशदने अह्याउल उलूमसे चुराया है।

(ग) आधार ग्रन्थ—अह्याउल उलूम या विद्याओंको सजीवित करनेवाली विद्या संजीवनी कहिए—में यद्यपि दर्शन आचार और सूफ़ी अद्वैतवाद सब मिले हुए हैं किन्तु मुख्यतः वह आचार शास्त्रका ग्रंथ है। आचारशास्त्रमें ग़ज़ालीके वक्त यूनानी ग्रंथोंके अनुवाद तथा स्वतंत्र ग्रंथ मौजूद थे, जिनमें दार्शनिक मस्कविया (मृ० १०३० ई०)की पुस्तक 'तहज़ीबुल इख़लाक' (आचार-सभ्यता)का जिक्र भी हो चुका है। सबसे पहिले अरस्तूने इस विषयपर जो पुस्तक (आचार शास्त्र) लिखी जिसपर पोर्फोरि (फार्फोरियस)ने टीका लिखी थी। हुनैन इब्न इस्हाक़ने अरस्तूकी

---

[1] History of Philosophy (G. E. Lewis 4th edition) p. 50

[illegible]

[illegible]

[illegible]

किया और हर बार पाठकी समाप्तिपर फकीरों और विद्यार्थियोंको भोज दिया।

कुतुब ग़ाज़ली बहुत पहुँचे हुए सूफी समझे जाते थे। एक दिन अह्याउल उलूमको हाथमें लिए "जानते हो यह क्या किताब है?" कह बदनपर कोड़ेकी मारका दाग दिखला कर बोले— "पहिले मैं इस किताबसे इन्कार करता था। आज रातको मुझे इमाम ग़ज़ालीने आ हजरत (=पैगम्बर मुहम्मद)के दरबारमें पेश किया और इस अपराधकी सजामें मुझे कोड़े लगाए गए।'

शेख मुहीउद्दीन अकबर जगद्विख्यात सूफी गुजरे हैं। वह अह्याउल उलूमको काबा (मक्का)के सामने बैठकर पढ़ा करते थे।

यह तो खैर 'घरवालों के मुँहसे अतिरंजित प्रशंसा होनेके कारण उतनी कीमत नहीं रखेगा किन्तु पिछली सदीके प्रसिद्ध दर्शन इतिहास के लेखक जार्ज हेनरी लेविसका कहना है'—

"अगर द-कार्त (१५९६ १६५० ई०)के समयमें अह्याउल-उलूमका अनुवाद फ्रेंच भाषामें हो चुका होता तो लोग यही कहते कि द-कार्तने अह्याउल-उलूमसे चुराया है।

(ख) आधार ग्रन्थ—अह्याउल्-उलूम् या विद्याओंको सजीवित करनेवाली विद्या सजावनी कथि—में यद्यपि दर्शन आचार और सूफी ब्रह्मवाद सब मिले हुए हैं किन्तु मुख्यतः वह आचार शास्त्रका ग्रंथ है। आचारशास्त्रमें ग़ज़ालीके वक्त यूनानी ग्रंथोंके अनुवाद तथा स्वतन्त्र ग्रंथ मौजूद थे, जिनमें दार्शनिक मस्कविया (मृ० १०३० ई०)की पुस्तक तहज़ीबुल इख़लाक़ (आचार-सभ्यता)का जिक्र भी हो चुका है। सबसे पहिले अरस्तूने इस विषयपर दो पुस्तक (आचार-शास्त्र) लिखा जिनपर पोर्फोरि (फार्फोरियस)ने टीका लिखी थी। हमने इन्हें अरस्तूकी

---

[1] History of Philosophy (G F Lewis 4th edition), p 50

मन देखा कि राग सारी दुनियापर छा गया है, और धरम (आत्मिक पारलौकिक) सदाचारके रास्ते बंद हो गए हैं। जो विद्वान् मार्ग समझाने वाले थे उनसे दुनिया खाली होती जा रही है। जो रह गए हैं वह नामके विद्वान हैं, निजी स्वार्थोंमें फँसे हुए हैं और उन्होंने सारी दुनियाको यह विश्वास दिला रखा है कि विद्या सिर्फ तीन चीजोंका नाम है, शास्त्रार्थ, कथा-उपदेश और फतवा ('व्यवस्था')। रही आखिरत (=परलोक)की विद्या वह तो संसारसे उठ गई है और लोग उसका भेद भुला चुके हैं।

इसी रोगको दूर करने या भूल भुलाई (मत) विद्याओंको सजीवन देनेके लिए गज़ालीने 'विद्यासंजीवनी' लिखनेके लिए लेखनी उठाई।

(घ) ग्रन्थकी विशेषता—शिब्ली ने 'विद्यासंजीवनी' की इन विशेषताएँ विस्तारपूर्वक लिखी हैं, उनके सारमें संक्षेपमें कहा जा सकता है—(१) ग्रंथकारने विद्वानों और साधारण पाठकों दोनोंकी समझमें आनेके ख्यालसे बहुत सीधी-सादी भाषा (अरबी)का प्रयोग किया है साथ ही उसके दार्शनिक महत्त्वको कम नहीं होने दिया है। मस्कविया की किताब 'अत्-तहारत्' को पढ़नेके लिए पहिले भाषाका दुशवार छिलकोंको फाड़ना पड़ेगा तब अंदर पहुँचनेके लिए मगज़-पच्ची करनी होगी—वह नारियलके भीतर बंद सूखी गरी है किन्तु गज़ालीकी पुस्तक पतले छिलकोंका लँगड़ा आम है। (२) इसमें अधिकारिभेद—गृहस्थ और गृहत्यागी (=अविवाहित रहनेवाले सूफी) आदि—का पूरा ख्याल रखकर उनके योग्य आचार नियमोंकी शिक्षा दी गई है। (३) उठने बैठने खाने पीने जैसे साधारण आचारोंपर भी व्यापक दृष्टिसे लिखा गया है। (४) जीव आकांक्षा आदिको सर्वथा त्यागने उपदेशसे मनुष्यकी उपयोगी शक्तियोंको कमजोर कर जो निराशावाद अरसमय्यता फैलाई जाती है, उसके खिलाफ काफी युक्तियुक्त बहस की गई है। यहाँ हम पिछली दो बातोंके कुछ नमूने पेश करते हैं—

१ **(साधारण सदाचार)**—मांसपर खाना खाना, छानना (से आटा छानना), अशान (=मांसुनका काम देनेवाला घास) और पेट भर खाना—

इन सारे बीजोंके [illegible] पुराणपंथी मुसलमान [illegible] यह [illegible] और भी मिलते थे कि [illegible] पैगम्बरके [illegible] पर [illegible] हुए [illegible] हैं। इसपर [illegible] लिखा— [illegible] (—साधन विधि चाहिए) पर खाना [illegible] [illegible] यह [illegible] कि [illegible] (— मजा) पर खाना [illegible] या हराम [illegible] क्योंकि इस तरहसे [illegible] हुक्म [illegible] (—धार्मिक पुस्तकों) में नहीं आया [illegible]। [illegible] मजपर खानेमें (कायदेकी) यह बात [illegible] कि खाना जमीनमें [illegible] ऊंचा हो जाता है और खानेमें आराम [illegible] है। [illegible] (— घास) से हाथ धोना तो अच्छी बात [illegible] क्योंकि इसमें सफाई और शुद्धता (रहता) है। खाना खाते [illegible] हाथ धोनेका हुक्म (जो [illegible] है, वह) सफाईके ख्यालसे हो है और अन्नोंमें और [illegible] सफाई है। पुराने जमानेमें (पैगम्बरके समय) यदि इसका उपयोग नहीं किया जाता था तो इसका यह वजह लगी कि उस जमानेमें उसका रिवाज न था या वह मिलता न था। या (मिथ्याविश्वासके कारण) वह हाथ धो नहीं पाते थे और उनमें हाथ पोछ लिया करते थे [illegible] इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि हाथ धोना [illegible] नहीं।

खानेके तरीकेमें कितनी ही बातें पश्चिमसे [illegible] हुए लिखा है— खाना किसी ऊंचे चौजपर रखकर खाना चाहिए। [illegible] बारी-बारी से आने चाहिएं। जूसवाला (सूप आदि) खाना पहिले आना चाहिए। यदि अधिक मेहमान आ चुके हैं और सिर्फ एक-दो बाकी हों तो खाना शुरू कर देना चाहिए। खानेके बाद मेवा या मिठाई आनी चाहिए। अनुकरणीय उदाहरणके तौरपर पेश करते हुए लिखते हैं— बात चीतके यहां यह तरीका था कि सारे खानेके नाम पर्चेपर लिखकर मेहमानोंके सामने पेश किये जाते थे।

२ उद्योगपरायणता और कर्मण्यतापर जोर—बच्चोंकी प्रारंभिक शिक्षामें सैर शारीरिक व्यायाम मर्दाना खेलोंको रखना गुजाना जरूरी समझते हैं। उन्होंने गानेका मनबहलावका बात कह उसके आवश्यकको यह कहकर साबित किया है कि पैगम्बरने खुद हब्शियोंके खेलका

ऐसा था। इसके अतिरिक्त मैं कहता हूँ कि गलकूद या मनोविनोद दिलको ताजगी देता है उससे दिमागी थकावट दूर हो जाती है। मन का यह स्वभाव है कि जब वह किसी चीजसे घबरा जाता है तो अंधा हो जाता है, इसलिए उसको आराम देना इस बातके लिए तैयार करना है कि वह फिर कामके योग्य बन जाये। जो आदमी रात दिन पढ़ा करता है उसको चाहिए कि किसी किसी समय खाली बैठे, क्योंकि काम करनेके बाद खाली बैठना और खेल-कूद करना आदमीको गम्भीर काम करनेके लिए फिर तैयार कर देता है।

इस तरह ग़ज़ाली शरीरको कमजोर रखनेके लिए गाना कसरत खेलकूदकी सिफारिश करते हुए फिर उसके वास्ते मानसिक शक्तियोंके इस्तेमालके लिए इस प्रकार जोर देते हैं—'क्रोधकी शक्तिको नष्ट करना आचारकी शिक्षा नहीं है। आचार शिक्षाका अभिप्राय यह है कि आदमीमें आत्मसम्मान और सच्चा शौर्य पैदा हो यानी न डरपोकपन आये न गुंडापन। क्रोधको बिलकुल नष्ट करना कैसे अभिप्रेत हो सकता है जब कि खुद वंदनीय पैगम्बर लोग गुस्सेसे खाली न थे। श्री-हजरत (=पैगम्बर मुहम्मद) ने स्वयं फरमाया है—मैं आदमी हूँ और मुझको भी उसी तरह गुस्सा आता है जिस तरह और आदमियोंको। श्री-हजरतकी यह हालत थी कि जब आपके सामने कोई अनुचित बात की जाती तो आपके गाल लाल हो जाते थे, हाँ यह अन्तर जरूर था कि गुस्सेकी हालतमें भी आपके मुखारविन्दसे कोई बेजा बात नहीं निकलती थी।

'सन्तोष परम सुख' पर लाठी प्रहार करते हुए ग़ज़ाली कहते हैं—जानना चाहिए कि मान एक अवस्था पैदा करता है और उस अवस्थासे काम लिया जाता है। कोई-कोई समझते हैं कि सन्तोषके यह मानी हैं कि जीविका उपार्जनके लिए न हाथ पैर हिलाए जायँ न कोई उपाय सोचा जाय, बल्कि आदमी इस तरह बेकार पड़ा रहे जिस तरह चौपड़ा जमीन पर पड़ा रहता है या माल पटरीपर रखा रहता है। लेकिन यह मूर्खोंका

[illegible] (= [illegible])में [illegible]।
[illegible] तुम [illegible] विना [illegible]
[illegible] तुम [illegible],
[illegible] तुम्हारे
[illegible] तो तुम [illegible] हो।

मठके [illegible] मठमें [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

बारमें समझता है कि कुछ आदमी स्वभावतः सदाचारी, कुछ स्वभावतः दुराचारी होते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो न स्वभावतः सदाचारी होते न दुराचारी, इसी तीसरी श्रेणीके आदमियोंके सुधार होनेकी संभावना है। मस्कवियोंने गजालीके इसी मतका स्वीकार किया यह हम कह चुके हैं। अरस्तूका मत इससे उलटा है—सदाचारी या दुराचारी होना मनुष्यमें स्वभावतः नहीं है इसमें कारण शिक्षा और वातावरण हैं। हाँ शिक्षा और वातावरणका प्रभाव सबपर समान नहीं पड़ता। गजालीने अरस्तूके मतका स्वीकार किया है। इसीलिए बच्चोंकी शिक्षापर उन्होंने खास जोर दिया है जिसके कुछ नमूने नीचे हैं—

(१) बच्चोंका निर्माण—"बच्चेमें जैसे ही विवेचनाशक्ति प्रकट होने लगे उसी वक्तसे उसकी देखभाल रखनी चाहिए। बच्चेको सबसे पहिले खानेकी इच्छा होती है इसलिए शिक्षाका आरंभ यहींसे करना चाहिए। उसको सिखलाना चाहिए कि खानेसे पहिले बिसमिल्लाह पढ़ लिया करे। दस्तरखानपर जो खाना सामने और समीप हो उसीकी ओर हाथ बढ़ाए, साथ खानेवालोंसे आगे बढ़नेकी कोशिश न करे, खाने या खानेवालोंकी तरफ नजर न जमाए। जल्द-जल्द न खाए। कौरको अच्छी तरह चबाए। हाथ और कपड़ेको खाने नजरसे न दे। उसको समझा दिया जाये कि ज्यादा खाना बुरा है। कम खाना मामूली खानेपर सन्तोष करना, (अपना खाना) दूसरोंको खिला देनेकी बड़ाईको उसके मनमें बिठला देना चाहिए।

"(बच्चोंको) सफेद कपड़ा पहननेका शौक दिलाया जाय, और समझाया जाय कि रंगीन, रंगीले जर्दोजी कपड़े पहनना औरतों और हिजड़ोंका काम है। जो लड़के इस तरहके कपड़ोंको पहिना करते हैं, उनके संगसे बचाया जाय। आरामतलबी और नाज-सुकुमारतासे घृणा दिलाई जाय।

जब बच्चा कोई अच्छा काम करे, तो प्रशंसा करके उसका दिल बढ़ाया जाय और उसे भेंट इनाम दिया जाय। यदि बुरी बात करते देखा

जाय तो बतावना देना चाहिए जिससे बुरे कामोंके करनेमें दिलेर न हो जाय। किन्तु बार-बार बतलाना नहीं चाहिए बार-बार कहनेसे बातका असर कम हो जाता है।

(और उसे सिखलाना चाहिए कि) दिनको सोना नहीं चाहिए। दिलको बन्द मजा तथा ज्यादा नरम नहीं होना चाहिए हर रोज कम से कम कुछ पढ़ना चलना और कसरत करनी चाहिए जिससे कि दिलमें अकलमन्दी और सुस्ती न आने पावे। हाथ-पांव खुले न रखे बहुत जल्दी न चले अन्दाजसे बोले खाना कलमे-शहादत किसी चीजपर अभिमान न प्रकट करे।

सभामें थूकना जम्हाई अंगड़ाई लेना नाखोंकी तरफ पीठ करके बैठना पांवपर पांव रखना ठोड़ीके नीचे हथेली रखकर बैठना—इन बातोंसे मना करना चाहिए।

बेसमझ बातोंसे—जो वह सच्ची भी हो—रोकना चाहिए। बात खुद न शुरू करना चाहिए कोई पूछे तो जवाब दे। पाठशालामें पढ़कर निकले तो उसे मौका देना चाहिए कि कोई खेल खेले क्योंकि हर वक्त पढ़ने लिखनेमें लगे रहनेसे दिल थक जाता है समझ मन्द हो जाती है तबियत उचट जाती है।

यह शिक्षाएं मस्कवियाने अपने तहजीबुल अख्लाकमें यूनानी ग्रन्थोंसे लेकर दी हैं।

(२) प्रसिद्धिके लिए दान पुण्य गलत—नाम और प्रसिद्धिका जानेवाले अमीर लोग दान धर्म करते हैं उनके बारेमें गजाली कहते हैं—

इन (धनिया अमीरों बादशाहों)में बहुतसे लोग मस्जिद मदरसे और मठ (=खानकाह) बनवाते हैं, और समझते हैं कि यह बड़े पुण्यका काम है यद्यपि जिस आमदनीसे उन्हें बनवाया जाता है वह बिलकुल नाजायज तरीकेसे हुई है। यदि आमदनी जायज भी हो तो भी उनका अभिप्राय वस्तुतः पुण्य नहीं बल्कि प्रसिद्धि और नामपाना होता है। उसी शहरमें ऐसे दुर्गतिमें पड़े आदमी हैं जिनकी सहायता करना मस्जिद बनानेसे

ज्यादा सवाबका काम है। लेकिन उसकी अपेक्षा इमारत बनवानेको बहतर समझते हैं, जिसकी वजह सिर्फ यह होती है कि इमारतसे जो चिरस्थायी प्रसिद्धि मिलती है वह गरीबोंको दानसे नहीं हो सकती।

३—तोहाफतुल्-फिलासफा (=दर्शन-खंडन)

(क) लिखनेका प्रयोजन—कितने ही मुसलमान इस पुस्तकके नाम और ग़ज़ालीकी सर्वप्रियताको देखकर यह समझनेकी गलती करते हैं कि ग़ज़ालीने सचमुच दर्शनका विध्वंस (=खंडन) कर दिया। ग़ज़ालीके अपने ही विचार दर्शन छोड़ और हैं क्या? उन्होंने कभी ख़लीफ़ाके सीधे साद इस्लामकी ओर लौटनेका नारा नहीं लगाया यद्यपि उनकी कुछ सामाजिक बातों—कबीलाशाही, भाई चारा, समानता—को वह जरूर अनुकरणीय बनाना चाहते थे। शिक्षित संस्कृत-नागरिक श्रेणीमें उस वक्त यूनानी दर्शनका बहुत सम्मान था, खुद इस्लामके भीतर पवित्र-संघ (अख़वानुस्सफ़ा) यूनानी आदि सम्प्रदाय पैदा हो गये थे जो कि अफ़लातू-अरस्तूको सूक्ष्म ज्ञानमें रसूल अरबीसे भी बड़ा समझते थे, इसलिए इस्लामके जबर्दस्त वकील ग़ज़ालीको ऐसी पुस्तक लिखना जरूरी था, जैसा कि उन्होंने स्वयं पुस्तकके भूमिकामें लिखा है—

हमारे ज़मानेमें ऐसे लोग पैदा हुए हैं, गए हैं, जिनको यह अभिमान है कि उनका लिखे-पढ़े विभाग साधारण आदमियोंसे श्रेष्ठ है। यह लोग मज़हबी आज्ञाओं और नियमोंको घृणाकी निगाहसे देखते हैं। इनका ख़्याल है कि अफ़लातू, अरस्तू आदि पुराने हकीम (=मुनि या आचार्य) मज़हबको झूठा समझते थे। चूंकि ये हकीम ज्ञान विज्ञानके प्रवर्तक और प्रतिष्ठापक थे, और बुद्धि तथा प्रतिभामें उनके जैसा कोई नहीं हुआ, इसलिए उनका धर्मको न मानना इस बातका प्रमाण है कि मज़हब (=धर्म) दरअसल झूठ और फ़ज़ूल है, उसके नियम तथा सिद्धान्त मनगढ़न्त और बनावटी हैं जो सिर्फ स्थूल दृष्टिमें सुन्दर और चित्ताकर्षक मालूम होते हैं। इसी वजहसे मैंने निश्चय किया कि (यूनानी) आचार्योंके आध्यात्मिक विषयपर

इसपर हमारे हम-वतन अल्लामा शिब्ली फ़रमाते हैं —

"इस भूमिकाके बाद इमाम (ग़ज़ाली) साहबने दर्शनके २० सिद्धान्तोंको लिया है, और उनका खंडन किया है। लेकिन अफ़सोस है कि इमाम साहबकी यह मेहनत बहुत लाभदायक नहीं हुई क्योंकि जिन सिद्धान्तोंको (उन्होंने) इस्लामके खिलाफ़ समझा है, उनमेंसे १७के बारेमें उन्होंने खुद पुस्तकके अन्तमें व्याख्या की है कि उनकी वजहसे किसीको काफ़िर नहीं बनाया जा सकता।

(ग) बीस दर्शन-सिद्धान्त गलत— दर्शन-खंडनमें ग़ज़ाली कितना सफल हुआ, इसपर अल्लामा शिब्लीकी राय आप पढ़ चुके, यहां हम यूनानी दर्शनके उन बीस सिद्धान्तोंको देते हैं (इनमेंसे बहुतसे हिन्दू दर्शनमें भी पाये जाते हैं, इसके कहनेकी जरूरत नहीं)—

	यूनानी दर्शन	ग़ज़ाली
१	जगत् अनादि	गलत
२	जगत् अनंत (=नित्य)	गलत
३	ईश्वरका जगत-कर्ता होना भ्रम मात्र	गलत
४	ईश्वरके अस्तित्व	सिद्ध नहीं कर सकते
५	ईश्वर एक	सिद्ध नहीं कर सकते
६	ईश्वरमें गुण नहीं	गलत
७	ईश्वरमें सामान्य और विशेष नहीं	गलत
८	ईश्वर लक्षण-रहित (=अलक्ष्य) सर्व व्यापक मात्र है	सिद्ध नहीं कर सकते
९	ईश्वर शरीर-रहित	सिद्ध नहीं कर सकते
१०	दार्शनिक	को नास्तिक होना पड़ता है
११	ईश्वर अपने सिवा औरको जानता है	साबित नहीं कर सकते
१२	ईश्वर अपनेको जानता है	साबित नहीं कर सकते

[1] "अल्ग़ज़ाली", पृष्ठ १०१

[illegible] प्रतिपादन [illegible] जाता। [illegible]
[illegible] ([illegible]) और [illegible] [illegible]
[illegible]। [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]। [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]

५—दार्शनिक विचार

[illegible] [illegible] [illegible] [

की गतिसे बराबर हुआ रहता है। काल और देश दोनों ही वस्तुओंके आपसी संबंधमात्र हैं—देश वस्तुओंकी उस स्थितिको प्रकट करता है जो उनके साथ साथ रहनेपर होती है, काल वस्तुओंकी उस स्थितिको बतलाता है, जो उनके एक साथ न रहनेपर (आगे-पीछे होनेसे) होती है। ये दोनों ही जगतकी वस्तुओं (=पिण्डों, इन्द्रिय विषयों) के भीतर और उनके साथ बने हैं, अथवा कहना चाहिए कि देश-काल हमारे मानस प्रतिक्रिया (मनके भीतर जिन रूपोंमें वस्तुएँ ज्ञात या याद होती हैं)के पारस्परिक संबंध हैं जिन्हें कि ईश्वरने बनाया है। इस प्रकार देश और कालमें एककी सीमितताको स्वीकार करना दूसरेकी सीमितताको नहीं करना, गलत है। दोनों ही वस्तुतः कृत और सादि हैं। और फिर सादि (देश कालमें अवस्थित) जगत् भी सादि होगा। अतएव ईश्वरके सृजन (=जगत उत्पादन)में किसी जगत अनादिता आदिकी बात नहीं, वह जगत बनानेमें सर्वथा स्वतन्त्र है।

(२) **कार्यकारणवाद और ईश्वर**—ग़ज़ालीके जगतके आदि अनादि होनेके बारेमें क्या ख्याल है यह बतला चुके, किन्तु सवाल यहीं खतम नहीं हो जाता। यदि ईश्वरको सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र—बिना कारण(मिट्टी)के कार्य (घड़ा) बनानेवाला—मानते हैं तब तो कार्य कारणका सवाल ही नहीं उठता, ईश्वर खुद हर वक्त वैसे ही बना रहा है, फिर तो इमाम अशअरीका कार्य-कारण रहित परमाणुवाद ठीक है। ग़ज़ालीके सामने यही मसीबत थी। कार्यकारणवाद माननेपर यूनानी दार्शनिकोंकी भाँति जगत्को (प्रवाह या स्वरूपसे) अनादि मानना होगा, यदि कार्य-कारण वादको न मानें तो अशअरीके 'परमाणुवाद में फँसना पड़ेगा। आइये तोहाफ़तुल् फ़िलासफ़ा से उनके शब्दोंमें इस बहसको लें—

(यूनानी) दार्शनिकोंका ख्याल है कि कार्य और कारणका जो संबंध दिखाई पड़ता है वह एक नित्य (=समवाय) संबंध है, जिसकी वजहसे यह संभव नहीं कि कारण (मिट्टी)के बिना कार्य (घड़ा) पाया जाये। सारे साइंस (=प्रयोग सिद्ध ज्ञान)का आधार इसी (कार्य कारण)वादपर है।

लेकिन ये (गज़ाली) जो इस (बात)के विरुद्ध हैं उनकी वजह यह है कि उनके मानने में पैगम्बरों की करामात (=दिव्य चमत्कार) गलत हो जाती है क्योंकि यदि यह स्वीकार कर लिया जाय, कि दुनियाकी हर चीज में 'नित्य-संबंध' पाया जाता है तो ऐसी अवस्थामें अ-प्राकृतिक घटनाएं (=करामात) असंभव हो जायेंगी और धर्मका आधार अप्राकृतिक घटनाओं (करामात या कारण बिना ईश्वरके सृष्टि करनेके सिद्धान्त) पर है। (इसीलिए हम मानते हैं कि) आग और सांचमें सूर्योदय और प्रकाशमें कोई नित्य संबंध नहीं पाया जाता बल्कि ये सारे कार्य-कारण ईश्वरकी इच्छासे (हर क्षण नये) पैदा होते हैं।[1]

दार्शनिक इसे क्या मानते हैं? इसलिए कि जलानेवाली चीज अर्थात् आग इच्छा करके नहीं जलाती, बल्कि वह अपने स्वभावसे मजबूर है कि कपड़ेको जलाये अतएव यह कैसे संभव है कि आग कपड़ेको जलाये किन्तु (किसी सिद्ध पुरुषकी आत्मा या अपनी इच्छाका रोड़े) मस्जिदको न जलावे।[2]

अब समझ लीजिए कि आगके स्वभाव और उसकी मजबूरीका ज्ञान कैसे हुआ—

साफ है कि इस प्रश्नका उत्तर सिवाय इसके और कुछ नहीं हो सकता कि आग जब कपड़ेमें लगाई जाती है तो हम सदा देखते हैं कि वह जला देती है लेकिन हम बार-बारके देखनेसे यदि कुछ मालूम होता है तो वह यह है कि आगने कपड़ेको जलाया। (इससे) यह कैसे मालूम हुआ कि आग ही जलानेका कारण है। उदाहरणको लो—सब जानते हैं कि विवाह क्रियासे मानव-बच्चेकी वृद्धि होती है, किन्तु यह तो कोई नहीं कहता कि यह क्रिया बच्चेकी उत्पत्तिका (—नित्य संबंध होसे अवश्य ही—) कारण है?[3]

---

[1] तोहाफ़तुल फ़िलासफ़ा पृष्ठ ६४ वही पृष्ठ ६५

[2] वही, पृष्ठ ६६

[3] वही, पृष्ठ ६६

इस सारी बहसमें गज़ाली कार्य-कारणवादके खिलाफ़ मोर्चा खोल एक छोटा सा सूराख करना चाहते हैं जिससे सृष्टिकर्ता, ईश्वरकी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र तथा पर्वेश्वरी करामातको सच्ची साबित कर सकें।

गज़ाली यहाँ अशअरीके 'परमाणुवाद' के बहुत पास पहुँच गए हैं। किन्तु अब फिर उनका होश आता है, और कहते हैं[1]—

कारणके कारण (ईश्वर)ने अपना कौशल दिखलानेके लिए यह ढंग स्वीकार किया है उसने कार्योंको कारणसे बाँध दिया है,[2] कार्य अवश्य कारणके बाद अस्तित्वमें आयगा, यदि कारणकी सारी शर्तें पाई जायँ। यह इस तरहके कारण हैं जिनसे कार्योंका अस्तित्व बँधा हुआ है—वह कभी उनसे अलग नहीं होता, और यह भी ईश्वरकी प्रभुता और इच्छा है। जो कुछ आसमान और जमीनमें है, वह आवश्यक क्रम और अनिवार्य नियम (=हक)के अनुसार पैदा हुआ है। जिस तरह वह पैदा हुआ और जिस क्रमसे पैदा हुआ, इसके विरुद्ध और कुछ हो ही नहीं सकता। जो चीज किसी चीजके बाद पैदा हुई वह इसी वजहसे हुई कि उसका पैदा होना इसी शर्तपर निर्भर था। जो कुछ दुनियामें है उससे बहतर या उसका पूर्णतर संभव ही नहीं था। यदि संभव था और तब भी ईश्वरने उसको रख छोड़ा, और उसको पैदा करके अपने अनुग्रहको प्रकट नहीं किया तो यह कृपासे उलटी कृपणता (=बजूसा) है, उलटा जुल्म है। यदि वैसा संभव होनेपर भी ईश्वर वैसा करनेमें समर्थ नहीं है तो इससे ईश्वरको बेचारगी साबित होती है, जो कि ईश्वरताके विरुद्ध है।"[3]

(३) ईश्वरवाद—गज़ालीका दार्शनिकोंसे जिन बीस बातोंमें मतभेद है उनमें तीन मुख्य हैं, एक "जगत्की अनादिता" जिसके बारेमें कहा जा चुका। दूसरा मतभेद स्वयं ईश्वरके अस्तित्वके संबंधमें है।

---

[1] "मुसब्बबुल-असबाब इज़्ज़ा सनतन बे रब्तिल मुसब्बबाते बिल असबाबे इज़्हारन लिल हिकमते।" [2] "अह्याउल उलूम"।

आपत्ति आती है। सजा (=दंड) सिर्फ उसी को दी जा सकती है या तो उसके लिए, जो कि ईश्वरके लिए शोभा नहीं देता अथवा सुधारनेके लिए किन्तु यह भी ठीक नहीं क्योंकि सुधारके बाद मनुष्यका फिर कार्यक्षेत्रमें उतरने (जगतमें पुनः जन्मने)का मौका कहाँ मिलता है? ईश्वरका ऐसा करना अपने लिए कोई लाभका इच्छा हो यह बात मानना तो ईश्वरकी ईश्वरतापर भारी धब्बा होगा। इस शंकाका उत्तर गज़ालीने अपनी पुस्तक मुक्तमें इस प्रकार अहंकार किया है।—जिसका भाव यह है—स्थूल जगत्में कार्यकारणका जो क्रम लगा जाता है उससे किसीको इन्कार नहीं हो सकता। संखिया खाना है मृत्युका कुसूर पैदा करता है। यह चीजें जब इस्तेमाल की जायगी तो उनका असर जरूर प्रकट होगा। अब यदि कोई आदमी संखिया खाय और मर जाए तो यह आक्षेप नहीं किया जा सकता, कि ईश्वरने क्यों उसको मार दिया या ईश्वरको उसके मार डालनेसे क्या मतलब था। मरना संखिया खानेका एक अनिवार्य परिणाम है। उसने संखिया अपनी मुर्जीसे खाई और जब खाई तो उसके परिणामका प्रकट होना अवश्यभावी था। यही बात आत्मिक जगतमें भी है। भले बुरे जितने कर्म हैं उनका अच्छा-बुरा प्रभाव जीवपर लगातार होता है। अच्छे कामोंसे जीवमें दृढ़ता आती है और बुरे कामोंसे गन्दगी। यह परिणाम किसी तरह रुक नहीं सकता। जो आदमी किसी बुरे कामको करता है उसी समय उसके जीवपर एक खास प्रभाव पड़ जाता है इसीका नाम सजा(दंड) है। मानो कि एक आदमी चोरी करता है, उस कामके करने के साथ ही उसपर भय सवार हो जाता है। वह चाहे पकड़ा जाय या नहीं दंडित हो या नहीं उसके दिलपर दाग लग चुका और यह दाग मिटाए नहीं मिट सकता। जिस तरह ईश्वरपर यह आक्षेप नहीं हो सकता कि संखिया खानेपर ईश्वरने अमुक आदमीको क्यों मार डाला उसी तरह यह आक्षेप भी नहीं हो सकता कि बुरा काम करनेके लिए, ईश्वरने दंड क्यों दिया? क्योंकि उस बुरे कामका यह अवश्यभावी परिणाम था, इस लिए वह हुए बिना नहीं रह सकता था। गज़ालीके अपने शब्द हैं—

भगवानके यथार्थ विधि निषेधोंके अनुसार न चलनेपर जो फल (=अज्ञान) होगा वह आप या बन्दा लेना नहीं है। उदाहरणार्थ जो आत्मा बातोंमें प्रमाद नहीं करेगा ईश्वर उसे सताता नहीं है, जो आत्मा खाना-पीना छोड़ देगा ईश्वर उसे भूख-प्यासकी तकलीफ देगा। पाप, पुण्यात्माका कयामत (=ईश्वरीय न्यायके दिन) की यातनाओं और सुखोंके साथ यही संबंध है। पापोंको क्या यातना दी जायगी—यह उसी तरह कहना है कि प्राणी विषसे क्यों मर जाता है और विष क्या मृत्युका कारण है।

ईश्वरने अपने धार्मिक विधि निषेधोंको जहमतमें आदमियोंको क्यों डाला, इसके उत्तरमें गजाली कहते हैं—

जिस तरह शारीरिक रोगोंके लिए चिकित्सा-शास्त्र (वैद्यक) है, उसी तरह जीवके लिये भी एक चिकित्सा शास्त्र है और पैगंबरीय पैगंबर लोग उसके वैद्य हैं। कहनेका ढंग है कि बीमार इसलिए अच्छा नहीं हुआ कि वह वैद्य(की आज्ञा)के विरुद्ध गया, इस वजहसे अच्छा हुआ कि वैद्यकी आज्ञाका पालन किया। यद्यपि रोगका बढ़ना इसलिए नहीं हुआ कि रोगी वैद्य(की आज्ञा)के विरुद्ध गया बल्कि (असली) वजह यह थी, कि उसने स्वास्थ्यके उन नियमोंका अनुसरण नहीं किया जो कि वैद्यने उसे बताए थे।

(५) जीव (=रूह)—पैगंबर मुहम्मदको भी लोगोंने जीवके बारेमें सवाल करके तंग किया था जिसपर अल्लाहने अपने पैगंबरको यह जवाब उनके लिये कहा— कह जीव मेरे रबके हुक्मसे है। जब कुरान और पैगंबर तकको इससे ज्यादा कहनेकी हिम्मत नहीं है तो गजालीका आगे कहना खतरेसे खाली नहीं होता, इसलिए बेचारेने 'अह्याउल् उलूम' में यह कहकर जान छुड़ानी चाही, कि यह उन रहस्योंमें है, जिनको

'मजनूं ब अला-रे अह्ले ही" पृष्ठ १०

'कुल अर-रूहो मिन अम्रे रब्बी"—कुरान

प्रकट करना ठीक नहीं लेकिन मजनून-मगार में उन्होंने इस चुप्पीको तोड़ना जरूरी समझा—आखिर रूहके नामसे जानना होना बहुधा-का सन्तोष भले ही दे सकता था, किन्तु फारबी और सीनाके शागिर्दोंको उससे चुप नहीं किया जा सकता था इसलिए गज़ाली रूहकी भाषामें कहते हैं— वह (जीव) द्रव्य है, शरीर नहीं। उसका संबंध बदनसे है किन्तु इस तरह कि न शरीरसे मिला न अलग न भीतर न बाहर न आधार न आधेय।

द्रव्य है—क्योंकि जीव वस्तुओंको पहिचानता है पहिचानना या पहिचान एक गुण है। गुण बिना द्रव्यके हो नहीं सकता अतएव जीवको जरूर द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा उसमें गुण नहीं रह सकता।

शरीर नहीं है क्योंकि शरीर होनेपर उसमें लंबाई चौड़ाई होगी फिर उसके अंश हो सकेंगे अंश हो सकनेपर यह हो सकता है कि एक अंशमें एक बात पाई जाय और दूसरे अंशमें उसके विरुद्ध बात जैसे लकड़ीके फट्ठेमें आधेका रंग सफेद आधेका रंग काला। और फिर यह भी संभव है कि जीवके एक भागमें राम (जिसको कि वह जीव है)का ज्ञान हो, और दूसरे भागमें उसी रामकी बेवकूफीका। ऐसी अवस्थामें जीव एक ही समयमें एक वस्तुका जानकार भी हो सकता है और गैरजानकार भी। और यह असंभव है।

न मिला न अलग न भीतर न बाहर है क्योंकि यह गुण शरीर (=पिंड)के है जब जीव शरीर ही नहीं है तो वह मिला अलग भीतर बाहर कैसे हो सकता है।

कुरान और आप्त पुरुषोंने जीव क्या है इसे बतानेसे इन्कार क्या किया इसका उत्तर गज़ाली देते हैं—दुनियामें साधारण और असाधारण दो तरहके लोग हैं। साधारण लोगोंकी तो बुद्धिमें ही जीव जैसी चीज नहीं आयगी, इसीलिए तो हूबलिया और करामिया सम्प्रदायवाले ईश्वर-को साकार मानते हैं क्योंकि उनके ख्यालमें जो चीज साकार नहीं उसका अस्तित्व नहीं हो सकता। जो व्यक्ति साधारण लोगोंकी अपेक्षा कुछ

व्यक्तिका [illegible] बिलकुल [illegible] हो नहीं हो सकता।

गजालीका मत [illegible] कि [illegible] मुझे जिन्दा हो [illegible] यह [illegible] [illegible] बिलकुल वहां पुराना [illegible] यह जरूरी नहीं।

(७) सूफीवाद—गजालीका [illegible] पर सूफीवाद [illegible] [illegible] [illegible] बारेमें पहिले भी कहा जा चुका है और उसके समकालीन बिना [illegible] [illegible] चाहते हो तो अबुल-बलाह तनूखीके शब्द सुनिए—

मैंने गजालीको देखा। निश्चय वह अत्यन्त प्रतिभाशाली, पंडित शास्त्रज्ञ है। बहुत समय तक वह अध्ययन अध्यापनमें लगा रहा किन्तु अन्तमें सब छोड़-छाड़कर सूफियोंमें जा मिला और दार्शनिकोंके विचारों तथा मन्सूर-हल्लाज (सूफी)के रहस्य (वचनों)को मजहबमें मिला दिया। फकीहों (=इस्लामिक मीमांसकों) तथा वाद शास्त्रियों (=मुतकल्लमीन्) को उसने बुरा कहना शुरू किया, और मजहबकी सीमासे निकलनेवाला भी था। उसने अह्याउल्-उलूम लिखा तो चूंकि [illegible] पूरी जानकारी नहीं थी इसलिए मुहँ के बल गिरा, और सारी किताबमें निर्बल प्रमाणवाली (मौजूअ) पैगंबर-वचनों(सुन्नतों)को उद्धृत किया।

तनूखी बेचारे रम्लू पीर थे इसलिए वह गजालीकी दूरदर्शिता, और विचार-गांभीर्यको क्यों समझने लगे उन्होंने तो इतना ही देखा कि वह उनके जैसे फकीहों और मुतकल्लमीनों (=मुल्लों)के हलवे माड़पर भारी हमला कर रहा है।

सूफीवादपर गजालीकी कितनी आस्था थी इसका पता उनके इन शब्दोंसे मालूम होता है—

जिसने तसव्वुफ (=सूफीवाद)का मजा नहीं चखा है वह पैगंबरी क्या है, इसे नहीं जान सकता पैगंबरीका नाम भले ही जान ले। सूफियोंके तरीकेके अभ्यासमें मुझको पैगंबरीकी असलियत और विशेषता प्रत्यक्षकी तरह मालूम हो गई।

"मुनक्कज मिन'ल-जलाल"।

गज़ालीके पहिले ही इस्लाममें भीतर भीतर सूफी-मत फैल चुका था यह हम बतला चुके हैं किन्तु गज़ालीने ही उसको एक सुव्यवस्थित शास्त्रका रूप दिया। गज़ालीके पहिले सूफीवादपर दो पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं—

(१) कूवतुल-कुलूब अबूतालिब मक्की।

(२) रिसाला कुशैरिया इमाम कुशैरी।

पहिले कुछ भाग कर्म-योग (शौच-संतोष आदि)पर जोर देते थे, और कितने ही समाधि-योग (=मुराक़ाबा)पर। गज़ाली पहिले शख्स थे जिन्होंने दोनोंको बड़ी खूबीके साथ मिलाया, जैसा कि इतिहासका दार्शनिक इब्न-खलदून कहता है[1]—

'गज़ालीने अह्लुल उलूमके दोनों तरीकोंको इकट्ठा कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सूफीवाद (=तसव्वुफ) भी एक शास्त्र बन गया, जो कि पहिले उपासनाका ढंग मात्र था।

सूफियोंका 'अहं ब्रह्मवाद' (अनल-हक़) शंकरके ब्रह्मवाद जैसा है। सूफी बहस नहीं करना चाहते वह जानते हैं बुद्धिको वह दर्शनसे कुंठित नहीं कर सकते इसलिए रहस्यवादका शरण लेते हैं।

"ज़ौक़ इ शराब न दारी बख़ुदा ता न चशी।

(खुदाकी क़सम! जब तक नहीं पीता तब तक वह इस प्यालेका स्वाद नहीं जान सकता।)

गज़ालीका सूफीवाद क्या था इसे हम पहिले सूफीवादके प्रकरणमें न आए हैं, इसलिए यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

(८) पैग़म्बरवाद—दार्शनिकोंका इस्लाम और सभी सामीय धर्मोंपर एक यह भी आक्षेप था कि वह इस तरहकी भोली भाली बातोंपर विश्वास करते हैं—खुदा अपनी ओरसे खास तरहके आदमियों (=पैग़म्बरों) को तथा उनके पास अपनी शिक्षा-पुस्तक भेजता है। गज़ाली पैग़म्बरीको ठीक साबित करते हुए कहते हैं—[2]

---

[1] "मुक़द्दमये-तारीख़"। [2] मुनक़्क़ज़ मिनल-ज़लाल"।

कर्मफलको ठीक सिद्ध करनेके लिए ग़ज़ालीका क्या दर्शन है यह बाय कारणवादके प्रकरणमें बतलाया जा चुका है।

(९) कुरानकी लाक्षणिक व्याख्या—मानजरा और पवित्र मक्का (=अख़वानुस्सफ़ा)के वर्णनमें बतलाया जा चुका है कि वह कुरानके कितने ही वाक्योंका शब्दार्थ छोड़ लाक्षणिक अर्थ ले अपने मतकी पुष्टि करते थे। इमाम अहमद बिन हंबल लाक्षणिक अर्थका सबसे जबरदस्त दुश्मन था। वह समझता था, कि यदि इस तरह लाक्षणिक अर्थ करनेकी आजादी दी जायगी तो अरबी इस्लामका सिर्फ कुरानके लफ़्ज़ोंको लेकर चाटना पड़ेगा लेकिन निम्नोक्त पैग़म्बर वाक्यों (=हदीसों)में उसे भी मुख्यार्थकी जगह लाक्षणिक अर्थ स्वीकार करना पड़ा—

'(काबाका) कृष्ण-पाषाण (=संग असवद) ख़ुदाका हाथ है।' 'मुसलमानोंका दिल ख़ुदाकी अँगुलियोंमें है। मुझको यमनसे ख़ुदाकी ख़ुश्बू आती है।'

सूफ़ियोंका तो लाक्षणिक अर्थके बिना काम ही नहीं चल सकता और ग़ज़ाली किस तरह बहिश्तके बाग़ो हूरो ग़िलमाँका लाक्षणिक अर्थ करते हैं इसका वर्णन किया जा चुका है।

(१०) धर्ममें अधिकारिभेद—हर एक शख़्सके लिए मज़हबकी चोटसे बचनेके लिए बाहरमें शरीअतका पालनेकी भी जरूरत है साथ ही तसव्वुफ़ (=सूफ़ीवाद)के प्रति सच्चा ईमान रखनेमें उन बहुतसी शरीअतकी पाबन्दियों और विचारोंको भीतरसे विरोध करना पड़ता है। इस भीतर कुछ बाहर कुछ की चालसे लोगोंके मनमें सन्देह हो सकता है इसीलिए अधिकारिभेदके सिद्धान्तकी कल्पना की गई। इसका कुछ ज़िक्र साधारण और असाधारण लोगोंके तौरपर क़यामतमें पुनर्ज्जीवन के प्रकरणमें आ चुका है। इस अधिकारिभेदवाले सिद्धान्तकी पुष्टिमें पैग़म्बरके दामाद तथा चौथे ख़लीफ़ा (शीआके सर्वस्व) अलीका वचन उद्धृत किया जाता है[1]—

---

[1] 'सहीह-बुख़ारी'।

---

[1] 'अह्याउल-उलूम'। [2] 'कस्नास् मुस्तश्रीम'।

[3] 'अदऊ इला-सबील रब्बि-क बि'ल हिक्मते व'ल मोअ्अ़ति'ल हसनते व जादल् हुम बि ल्-लती हिया अह्-सनो।

धर्म (=मजहब) और बुद्धिका झगड़ा खड़ा हुआ, और तर्कीके शब्दोंमें वह 'मजहबसे निकलनेवाला ही था।' किन्तु उन्होंने अपने भीतर बुद्धि और धर्ममें समन्वय (=समझौता) करनेमें सफलता पाई, उनके सूफीवाद, अधिकारिभेदवाद लाक्षणिकव्याख्यावाद, इसी तरफ किये हुए प्रयत्न हैं। ग़ज़ालीका यह प्रयत्न खतरेसे खाली न था, इसका उदाहरण तो सजरके सामने उसकी तलवीके बयानमें देख चुके हैं। ग़ज़ालीके जीवनहीमें उनकी कीर्ति इस्लामिक जगतमें दूर दूरतक फैल गई थी। किस तरह उनके शिष्य मुहम्मद (इब्न अब्दुल्लाह) तोमरतने स्पेन-मराक्कोके मुसलमानोंमें "ग़ज़ाली सम्प्रदाय" फैलाने तथा एक नये मोहिद्दीन राजवंशकी स्थापनामें सफलता पाई, इसे हम आगे बतलानेवाले हैं, किन्तु तोमरतकी सफलताके पहिले ग़ज़ालीके जीवनहीमें ५०० हिजरी (११०७ ई०) में ऐसा मौका आया, जब कि स्पेनमें खलीफा अली (इब्न-यूसुफ) बिन्-बाशकीनके हुक्मसे मरियामें ग़ज़ालीकी पुस्तकों—खासकर 'अह्याउल्-उलूम्'—को बड़े मजमेके सामने जलाया गया।

विरोधको देखते हुए भी ग़ज़ालीने तय कर लिया था, कि बुद्धि और धर्मके झगड़ेमें उनकी क्या स्थिति होनी चाहिए—

"कुछ लोगोंका ख्याल है, कि बौद्धिक विद्याओं तथा धार्मिक विद्याओं में (अटल) विरोध है, और दोनोंका मेल कराना असंभव है, किन्तु यह विचार कमसमझीके कारण पैदा होता है।"[1]

'जो आदमी बुद्धिको तिलाजलि दे सिर्फ (अंध)अनुगमनकी ओर लोगोंको बुलाता है, वह मूर्ख (=जाहिल) है, और जो आदमी केवल बुद्धि-पर भरोसा करके कुरान और हदीस (=पैगंबर-वचन)की पर्वा नहीं करता वह घमंडी है। खबरदार! तुम इनमें एक पक्षके न बनना। तुमको दोनोंका समन्वय (=जामेअ) होना चाहिए, क्योंकि बौद्धिक विद्याएं आहारकी तरह हैं, और धार्मिक विद्याएं दवाकी तरह।"[1]

---

[1] "अह्याउल-उलूम"। [1] वही।

बीच्छ विद्वानोंके प्रति उसका क्या विचार था, जिन्होंने गज़ालीको लिखनेके लिए मजबूर किया कि दर्शनके अध्ययनसे इस्लामके शान दोनों

[illegible] इस्लामकी शिक्षाका अर्थ यह समझते हैं कि [illegible] के सभी सिद्धान्तोंको धर्मके विरुद्ध साबित किया जाय। लेकिन चूँकि दर्शनका बहुत सिद्धान्त सत्य है, जो पक्के प्रमाणोंसे सिद्ध है, इसलिए जो आदमी उन प्रमाणोंसे अभिज्ञ है, वह उन सिद्धान्तोंको पक्का समझता है। इसके साथ जब उसे यह दिखाया जाता है, कि ये सिद्धान्त इस्लामके विरुद्ध हैं, तो उन सिद्धान्तोंमें सन्देह होनेकी जगह, उसे स्वयं इस्लाममें सन्देह पैदा हो जाता है। इसके कारण इन शास्त्र दोनोंने इस्लामको सख्त नुकसान पहुँचाया है।'

गज़ालीके ये विचार गज़ालीके विचारोंके मुसलमानों तथा उनकी हर बात सहनेके लिए तैयार मुल्लाओंके घोर विरोधी थे, इसे फिरसे कहनेकी जरूरत नहीं। तो भी गज़ालीका प्रयत्न सफल हुआ, इसे उसके विरोधी इब्न-तिमियाके ये शब्द बता रहे हैं —

मुसलमान और अरबोंके (मुस्लिम ?) नाम तर (=नास्तिकों)के ढंगका समझते थे। इस (तर)के प्रयोगका रवाज अबू-हामिद (गज़ाली)के समयसे हुआ उसने यूनानी तर्क शास्त्रके मन्तव्योंको अपनी पुस्तक—मुस्तस्फी—में मिला लिया।'

५—सामाजिक विचार

हो नहीं सकता था, कि गज़ालीके जैसा उर्वर मस्तिष्क अपने विचारोंको दर्शन और धर्म तक ही सीमित रखता। यहाँ उसके समाज-सम्बन्धी विचारोंपर भी कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

(१) राजतन्त्र सम्बन्धी—गज़ालीने इस्लामी साहित्यमें कबीलोंके भीतरकी सादगी, भाईचारा आदिके बहुतसे उदाहरण पढ़े थे, जब वह उनसे

---

[1] "अर् रद् अल'ल्-मलिक्"।

अपने समकालीन राजाओंके आचरणसे मिलता था या उनके दिलमें अमलोंकी आग भड़क उठा सकती थी। इसीलिए ग़ज़ालीने अपने समयके राजतंत्रपर कितनी ही बार चोटें की हैं। जैसे—

"हमारे समयमें सुल्तानोंकी जितनी आमदनी है, कुल या बहुत अधिक हराम है और क्या हराम न हो? इसलिए आमदनी तो ख़राज (=एच्छिक कर) और लड़ाई-लूट (=गनीमतके माल)का पाँचवाँ हिस्सा (यही दो) है। सो इन चीज़ोंका इस समयमें कोई अस्तित्व नहीं। सिर्फ़ जज़िया (अनिवार्य कर) रह गया है जिसे एक ज़ालिमाना ढंगसे वसूल किया जाता है कि वह उचित और हलाल नहीं रहता।'[1]

ग़ज़ालीने सुल्तानोंके पास न जानेकी शपथ ली थी, जिसे यद्यपि मंजरकी जबदस्तीके सामने झुककर एक बार तोड़नी नौबत आई, तो भी ग़ज़ाली इन सुल्तानोंसे सहयोग न रखनेको अपने ही तक सीमित न कर दूसरोंको भी वैसा ही करनेको शिक्षा देते थे[2]—

"आदमीको सुल्तानोंके दरबारमें पग-पगपर गुनाह (=पाप) करना पड़ता है। पहिली ही बात यह है, कि शाही मकान बिलकुल जबदस्तीके ज़रिए बने होते हैं, और ग़ली भूमिपर पैर रखना पाप है। दरबारमें पहुँचकर सिर झुकाना, हाथको बोसा (=चुम्बन) देना, और ज़ालिमका सम्मान करना पाप है। दरबारमें ज़रदोज़ी पर्दे, रेशमी लिबास सोनेके बर्तन आदि जितनी चीज़ें आती हैं सभी हराम हैं और इनको देखकर चुप रहना पाप है। आख़िरमें बादशाहके तन धनकी कुशल-क्षेमके लिए दुआ माँगनी पड़ती है और यह पाप है।'

इसलिए ग़ज़ालीकी सलाह है—

'आदमी इन सुल्तानों(=राजाओं)से इस तरह अलग-अलग रहे कि कभी उनका सामना न होने पाये। यही करना उचित है, क्योंकि इसीमें मंगल है। आदमीको यह विश्वास रखना फ़र्ज़ है, कि इन (=सुल्तानों)के

---

[1] "अह्याउल्-उलूम"। [2] वही।

[illegible] प्रति [illegible] रखा। आत्माको चाहिए कि न वह उनकी [illegible] या दुरुपयोग हो और न उनकी प्रशंसा करे, न उनका [illegible] और न [illegible] मर्यादियोंसे [illegible] हो।[1]

एक जगह गजालीने शिष्यके अभिमानका [illegible] क्योंकि [illegible] भी [illegible] रूप ही लेना चाहा है—

सुल्तानों (=राजाओं)का विरोध करना यदि इसमें [illegible] (=खून-खराबा) होनेका डर न हो तो (वैसा करना) अनुचित है। किन्तु अगर सिर्फ अपनी जान-माल्का खतरा हो, तो उचित ही नहीं बल्कि यह बहुत ही श्लाघनीय है। पुराने बुजुर्ग हमेशा अपना जानको खतरेमें डालकर स्वतंत्रताका परिचय देते थे और सुल्तानों तथा अमीरोंका हर [illegible] टोकते रहते थे। इस कामके लिए यदि कोई आत्मा जानसे मारा जाता था, उसे सौभाग्यशाली माना जाता था, क्योंकि वह शहीदका दर्जा पाता था।[2]

यहीं तक नहीं उनके लिखमें यह भी ख्याल काम कर रहा था, कि ऐसे राज्योंको हटाकर एक आदर्श राज्य कायम किया जाये जिसके शासन में जहाँ एक ओर बन्दू कबीलेके सरदारका शासन तथा भाषण हो, वहाँ दूसरी ओर उसमें अफलातूनी प्रजातन्त्रके नेता दानिशा अथवा शुद्ध गजाली जैसे सूफीके गुण हों। इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करने में गजाली स्वयं तो असमर्थ रहे, किन्तु उनकी सलाहसे उनके शिष्य तोमरतने उसे कार्यरूपमें परिणत किया यह हम अभी बतलानेवाले हैं।

(२) कबीलाशाही आदर्श—गजाली न व्यवहार-कुशल विचारक थे न उनकी प्रकृतिमें साहस और जोखिम उठानेकी प्रवृत्ति थी। सुल्तानों-अमीरोंके दर्बारसे वह तंग थे, एक ओर सलजूकी सुल्तान या बगदादके खलीफाके यहाँ जानेपर झुककर दोहरे शरीरसे सलाम फिर हाथपर चुम्बन देना दूसरी ओर अरबोंका पैगम्बर मुहम्मदके आनेपर भी सम्मानार्थ

---

[1] "अह्याउल्-उलूम"। [2] "अह्याउल-उलूम"।

खड़ा न होता, ग़ज़ालीके दिमागको सोचनेपर मजबूर करता था। शायद ग़ज़ाली स्वयं अमीरज़ादा या शाहज़ादा होते तो दूसरी तरहकी व्याख्या कर लिए होते, किंतु उन्हें अपने बचपनके दिन याद थे, जब कि भर्तृहरिके शब्दोंमें—

"भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित् फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहं काशंक्षया काकवत्।"

अनाथ ग़ज़ालीने कितने ही दिन भूखे और कितनी ही जाड़ेकी रातें ठिठुरते हुए बिताई होंगी। दूसरोंके लिए टुकड़ोंको खाते वक्त उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया होगा, कि उनमें कितना तिरस्कार भरा हुआ है। यद्यपि ३४ वर्षकी उम्रमें पहुँचनेपर उन्हें वह सभी साधन सुलभ थे, जिनसे कि वह भी एक अच्छे अमीरकी जिंदगी बिता सकते थे किन्तु यहां वह उसी तरह मानसिक समझौता करनेमें सफल नहीं हुए जैसे धर्मवाद और बुद्धिवादके झगड़ेमें। उन्होंने पैगंबर और उनके साथियों (सहाबा)के जीवनको पढ़ा था, उनकी सादगी, समानता उन्हें बहुत पसंद आई, और वह उसीको आदर्श मानते थे। उन्हें क्या पता था, प्रकृतिने लाखों सालके विकासके बाद मानवको कबीलेके रूपमें परिणत होनेका अवसर दिया था। अपनी बढ़ती आवश्यकता, संख्या बुद्धि और जीवन-साधनोंने जमा होकर उसे अगली सीढ़ी सामन्तवादपर जानेके लिए मजबूर किया था। कबीलाशाही प्रभुत्वको हटाकर सामन्तशाही प्रभुत्व स्थापित करनेमें हजारों वर्षों तक जो नर-संहार होता रहा, म्वाविया और अली अथवा कबीलोंका झगड़ा भी उसीका एक अंश था, किन्तु बहुत छोटा नगण्यसा अंश। इतने समयके बाद आगे बढ़े इतिहासके पहियेको पीछे हटाना प्रकृतिके लिए कितना असंभव काम था, यह ग़ज़ालीकी समझमें नहीं आ सकते थे, इसीलिए वह असंभवके संभव होनेकी (करनेकी नहीं) लालसा रखता था।

---

[1] "वैराग्यशतक"।

उनके गयाम जगह-जगह उद्धत बन्दू समाजकी निम्न घटनाएं ग्रन्थाली के राजनीतिक आदर्शका परिचय देती हैं—

१ 'एक बार अमीर म्वाविया (६६१ ८० ई०)ने लागोंकी वृत्तियाँ बन्द कर दी थी। इसपर अबू-मुस्लिम खौलानीने भर दरबारमें उठकर कहा—ए म्वाविया! यह आमदनी तेरी या तेरे बापकी कमाई नहीं है'।

२ 'अबू-मूसाकी रीति थी, कि खुत्बा(=उपदेश)के वक्त खलीफा उमर (६४२ ४४ ई०)का नाम लेकर उनके लिए दुआ करते थे। जन्दान ठीक खुत्बा देते वक्त ही खड़े होकर कहा—'तुम अबू-बकरका नाम क्यों नहीं लेते, क्या उमर अबू-बकरसे बड़ा है?' (उमरने इस बातको सुनकर) जन्दाको मदीना बुलवाया। जन्दान उमरसे पूछा—तुमका क्या हक था, कि मुझे यहाँ बुलवाते?' फिर उसने (अबू मूसाकी खुशामद वाली) सब बात ठीक-ठीक बतलाई। उमर रोने लगे, और बोले—'तुम सचपर हो, मुझसे कसूर हुआ, माफ करना'।

३ 'हारून और सफियान सोरीमें बचपनकी दोस्ती थी। जब हारून बगदादमें खलीफा (७८६ ८०९ ई०) बना तो सब लोग उसको बधाई देने आए किन्तु सफियान नहीं आया। हारूनने स्वयं सफियानसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की लेकिन उसने पर्वा न की, अन्तमें हारूनने सफियानको पत्र लिखा—

'मेरे भाई सफियान, तुमको मालूम है कि भगवान्‌ने सभी मुसलमानोंमें भाईका संबंध कायम किया है। अब भी मेरे और तुम्हारे बीच पहिलेके संबंध वैसे ही हैं, मेरे सारे दोस्त मेरी खिलाफतके लिए बधाई देने मेरे पास आए और मैंने उन्हें बहुमूल्य इनाम दिये। अफसोस है कि, आप अब तक नहीं आए। मैं खुद आता लेकिन यह खलीफाकी शानके खिलाफ है। कुछ भी हो अब अवश्य तशरीफ लाइये।'

सफियानने पत्रको न पढ़कर फेंक दिया और कहा कि मैं इसे हाथ नहीं लगाना चाहता, जिसे कि जालिम(=राजा)ने छुआ है। फिर उसी पत्रकी पीठपर यह जवाब दूसरेसे लिखवाया—

"बदा निबल सफ़ियानकी ओरसे धनपर लट्टू हारूनके नाम। मैंने पहिले ही तुझे सूचित कर दिया था, कि मेरा तुझसे कोई सबंध नहीं। तूने अपने पत्रमें स्वयं स्वीकार किया है, कि तूने मुसलमानोंके कोषागार (=बैतु'ल्-माल)के रुपयेका जरूरतके बिना अनुचित तौरसे खर्च किया। इसपर भी तुझको सन्तोष नहीं हुआ, और चाहता है, कि मैं क़यामतमें (=अन्तिम न्यायके दिन) तेरी फ़ज़ूलखर्चीकी गवाही दूँ। हारून! तुझको कल खुदाके सामने जवाब देनेके लिए तैयार रहना चाहिए। तू तख़्तपर (बैठकर) इजलास करता है, रेशमी लिबास पहिनता है। तेरे दर्वाजे-पर चौकी-पहरा रहता है। तेरे अफ़सर स्वयं शराब पीते हैं, और दूसरोंको शराब पीनेकी सजा देते हैं, खुद व्यभिचार करते हैं, और व्यभिचारियों पर रोब जारी करते हैं। खुद चोरी करते हैं, और चोरोंका हाथ काटते हैं। पहिले इन अपराधोंके लिए तुझको और तेरे अफ़सरोंको सजा मिलनी चाहिए, फिर औरोंको। अब फिर कभी मुझको पत्र न लिखना।"

"यह पत्र जब हारूनके पास पहुँचा, तो वह (आत्मग्लानिके मारे) चीख उठा, और देर तक रोता रहा।"

ग़ज़ाली एक ओर दार्शनिक उड़ानकी आजादी चाहता था, दूसरी ओर क़बीलाशाहीकी सादगी और समानता—कहाँ क़बीलाशाही और कहाँ ख्यालकी आजादी!

(३) इस्लामिक पंथोंका समन्वय—इस्लामके भीतरी सम्प्रदाया-के झगड़ोंको दूर करना ग़ज़ालीके अपने उद्देश्य था। दर्शनमें उनके जबर्दस्त विरोधी रोशन्का कहना है[1]—

"ग़ज़ालीने अपनी किताबोंमें सम्प्रदायोंमेंसे किसी खास सम्प्रदायको नहीं छूआ है। बल्कि (यह कहना चाहिए कि) वह अश्अरियोंके साथ अश्अरी, सूफ़ियोंके साथ सूफ़ी और दार्शनिकोंके साथ दार्शनिक है।"

ग़ज़ालीके वक़्त इस्लाम सिन्ध और काशगरसे लेकर मराक्को और

---

[1] "फ़स्लु'ल-मुक़ाला"।

और [illegible] (आदमी) मुसलमान है जो कलमा ('अल्लाहके सिवा दूसरा [illegible] नहीं मुहम्मद अल्लाहका भेजा हुआ है)[1] पढ़ता है और मुसलमान होनेके बाद सभी भाई भाई हैं। इन सम्प्रदायोंका जो मतभेद है उसका मूल इस्लामसे कोई सम्बन्ध नहीं, वह गौण और बाहरी बातोंसे है।

ग़ज़ालीने अपनी इस उदारतापूर्ण मुसलमानी सहनशीलतासे सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने लिखा है—

'बल्कि मैं कहता हूँ कि हमारे समयके बहुत से तुर्क तथा ईसाई सोफ़ी लोग भी भगवान्‌के कृपापात्र होंगे।'[2]

इस प्रयत्नका फल ग़ज़ालीका अपने जीवनमें ही देखनेको मिला। अशअरिया और हनबलियोंके लगभग बहुत युद्ध बंद हो गए। बग़दादकी सीमों और सुन्नियोंमें ५०२ हिजरी (११०९ ई०)में सुलह हो गई, और वह आपसी मार-काट बन्द हो गई जिससे राजधानीके मुहल्लेके मुहल्ले वीरान हो गए थे।

६—ग़ज़ालीके उत्तराधिकारी

अपनी पुस्तकोंकी भाँति ग़ज़ालीके शिष्योंकी भी भारी संख्या थी, जिनमें कितनेही इस्लामके धार्मिक इतिहासमें खास स्थान रखते हैं। पाठकोंके लिए अनावश्यक समझकर हम उनके नामोंकी सूची देना नहीं चाहते। ग़ज़ालीकी शिक्षाका महत्त्व इसीसे समझिए कि मुसलमानोंकी भारी संख्या आज भी उन्हींको अपना नेता मानती है। हाँ, उनके एक शिष्य तोमरतके बारेमें हम आगे लिखनेवाले हैं क्योंकि उसने अपने गुरुके धर्म मिश्रित राजनीतिक स्वप्नको साकार करनेमें कुछ हद तक सफलता पाई।

---

[1] "ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह"।

[2] "तफ़क़ा बनू ल-इस्लाम व'ज़ जिन्दक़ा"।

सप्तम अध्याय

स्पेनके इस्लामी दार्शनिक

§ १—स्पेनकी धार्मिक और सामाजिक अवस्था

१—उमैय्या शासक

जिस वक्त इस्लामिक अरबोंने पूर्वमें अपनी विजय-यात्रा शुरू की थी, उसी समय पश्चिमकी ओर—खासकर पड़ोसी मिश्रपर—भी उनकी नजर जानी जरूर थी। मिश्रके बाद पश्चिमकी ओर आगे बढ़ते हुए वह तुनिस् और मराको (=मराक्का) तक पहुँच गए। पैगंबरके देहान्त हुए एक सौ वर्ष भी नहीं हुए थे, जब कि ९२ हिजरी (७०६ ई०) में तारिक (इब्न जियाद) लसीन १२ हजार बबरी (=मराक्का निवासी) सेनाके साथ स्पेनपर हमला किया। स्पेनपर उस वक्त एक गॉथिक वंशका राज्य था, जो दो हजार वर्षसे शासन करता आ रहा था—जिसका अर्थ है, वह समयके अनुसार नया होनेकी क्षमता नहीं रखता था। किसानोंकी अवस्था दयनीय थी, जमींदारोंके जुल्मोंका ठिकाना न था। दासता प्रथाके कारण लोगोंकी दशा और असह्य हो रही थी—किसानों और दासोंके बच्चे पैदा होते ही जमींदारों और फौजी अफसरोंमें बांट दिये जाते थे। जनता इस जुल्मसे त्राहि त्राहि कर रही थी, जब कि तारिककी सेना अफ्रीकाके तटसे चलकर समुद्रके दूसरे तटपर उस पहाड़ीके पास उतरी जिसका नाम पीछे जबलुत्-तारिक (=तारिककी पहाड़ी) पड़ा, और जो बिगड़कर आज जिब्राल्टर बन गया है। राजा रोद्रिकने तारिकका सामना करना चाहा,

किन्तु पहिली ही मुठभेड़में उसकी ऐसी हार हुई, कि निराश हो रोद्रिक नदीमें डूब मरा। दूसरे साल अफ्रीकाके मुसलमान गवर्नर मूसा बिन-नसीर ने स्वयं एक बड़ी फौज लेकर स्पेनपर चढ़ाई की, स्पेनमें किसीकी मजाल नहीं थी, कि इस नई ताकतको रोकता। तो भी मुल्कमें थोड़ी बहुत अशान्ति धर्म और जातिके नामपर कुछ दिनों तक और जारी रही। किन्तु तीन चार सालके बाद प्रायः सारा स्पेन मुसलमानोंके हाथमें आ गया—"जायदादें मालिकोंको वापस की गई, मजहबी स्वतंत्रताकी घोषणा की गई। दूसरी जातियोंको अपने धार्मिक कानूनके अनुसार जातीय मुकदमोंके फैसलेकी इजाजत दी गई।" मूसाका बेटा अब्दुल् अजीज स्पेनका पहिला गवर्नर बनाया गया।

इसके कुछ ही समय बाद बनी उमय्याके शासनपर प्रहार हुआ। उसकी जगह अब्दुल अब्बासने अपनी सल्तनत कायम की, और उमय्या खान्दानके राजकुमारोंको चुन-चुनकर मौतके घाट उतारा। उसी समय (७५० ई०?) एक उमय्या राजकुमार अब्दुर्रहमान दाखिल भागकर स्पेन आया और उसने स्पेनको उमय्यावंशके हाथसे जानेसे रोक दिया। अब्दुर्रहमान दमिश्कके सांस्कृतिक वायुमंडलमें पला था, इसलिए उसके शासनमें स्पेनने शिक्षा और संस्कृतिमें काफी उन्नति की और पश्चिमके इस्लामिक विद्वानोंने पूर्वसे संबंध जोड़ना शुरू किया।

जब तक इस्लाम मरोको तक रहा तब तक अरबोंका संबंध वहाँके बर्बर लोगोंसे था, जो कि स्वयं बहुधासे बहुतर अवस्थामें न थे। किन्तु स्पेनमें पहुँचनेपर वहाँ स्थिति पैदा हुई जो कि बगदाद जाकर हुई थी। दोनों ही जगह उसे एक पुरानी संस्कृत जातिके संपर्कमें आनेका मौका मिला। बगदादमें अरबोंने ईरानी बाँदियोंके साथ ईरानी सभ्यतासे विवाह किया और स्पेनमें उन्होंने स्पेनिश स्त्रियोंके साथ रोमन-सभ्यताके साथ। इसका परिणाम भी वही होना था, जो कि पूर्वमें हुआ। अभी उस परिणामपर लिखनेसे पहिले ऐतिहासिक भित्तिको जरा और विशद कर देनेकी जरूरत है।

स्पेनपर उमैय्योंका राज्य ढाई सौ सालसे ज्यादा रहा। स्पेनिश उमय्योंका वैभव-सूर्य तृतीय अब्दुरहमान (९१२-६१ ई०)के शासनकालमें मध्याह्नपर पहुँचा था। इसीने पहिले पहिल खलीफाकी पदवी धारण की थी। उसके बाद उसका पुत्र हकम द्वितीय (९६१-७६ ई०)ने भी पिताके वैभवको कायम रखा। धन और विद्या दोनोंमें अब्दुरहमान और हकमका शासनकाल (९१२-७६ ई०) पश्चिमके लिए उसी तरह वैभवशाली था, जिस तरह हारून मामूनका शासनकाल (७८६-८३३ ई०) पूर्वके लिए। हाँ, यह जरूर था कि स्पेनके मुसलमानी समाजमें अपने पूर्वज या अब्बासियों द्वारा शासित समाजकी अपेक्षा विद्यानुरागके पीछे सारा समय बितानेवालोंकी अपेक्षा कमाऊ लोग ज्यादा थे। अब्दुरहमान-की प्रजामें ईसाइयोंके अतिरिक्त यहूदियोंकी संख्या भी शहरोंमें पर्याप्त थी। कैसर हर्दियनने बिजन्तीनसे देशनिकाला देकर पाँच लाख यहूदियोंको स्पेनमें बसाया था। ईसाई शासनमें उन्हें दबाकर रखनेकी कोशिश की जाती थी, किन्तु इस्लामिक राज्य कायम होनेपर उनके साथ बेहतर बर्ताव होने लगा, और इन्होंने भी देशकी बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रगतिमें भाग लेना शुरू किया। स्पेनके यहूदियोंका भी धार्मिक केन्द्र बग-दादमें था, जहाँ सर्कार-दर्बारमें भी यहूदी हकीमों और विद्वानोंका कितना मान था इसका जिक्र पहिले हो चुका है। स्पेनमें पहिलेसे भी रोमन-कैथलिक जैसे धार्मिक संकीर्णताके लिये दुःख्यात सम्प्रदायका जोर था। मुसल्मान आए तो अरब और अर्ध अरब इतनी अधिक संख्यामें आकर बस गए कि स्पेनके शहरों और गाँवोंमें अरबी भाषा आम बोल चाल हो गई। ये अरब पूर्वके साम्प्रदायिक मतभेदोंको देखकर नहीं चाहते थे कि वहाँ दूसरे सम्प्रदाय सर उठायें। उन्होंने हंबली सम्प्रदायको स्वीकार किया था, जिसमें कुरानका वही अर्थ उन्हें मंजूर था, जो कि एक साधारण बद्दू समझता है। ईसाइयों और अरबोंकी इस पक्की किलाबंदीमें यदि कोई दरार थी तो यही यहूदी थे, जिनका संबंध बगदाद जैसे 'वायु बह चौआई' वाले विचार-स्वातन्त्र्य-केन्द्रसे था। ये लोग चुपके चुपके दर्शनकी पुस्तकोंको

पढ़ने और प्रचार करते थे। इनके अतिरिक्त कितने ही प्रतिभाशाली मुसलमान भी निषिद्ध फन के खानेके लिए पूर्वकी सैर करने लगे। अब्दुर्रहमान बिन् इस्माइल ऐसे ही लोगोंमें था, जिसने पूर्वकी यात्रा की और ईरानके सभी विद्वानोंके पास रहकर दर्शनकी शिक्षा ग्रहण की। ईरान लौटकर पहिले-पहिल पवित्र-संघ (अख़वानुस्सफ़ा)-ग्रंथावलीका स्पेनमें प्रचार किया। यह ४५८ हिजरी (१०६५ ई०)में मरा था।

२—दर्शनका प्रथम प्रवेश

हकम द्वितीय स्पेनका हाकिम था। उसे विद्यासे बहुत प्रेम था, और दार्शनिकोंकी वह खास तौरसे बहुत इज़्ज़त करता था। उसे पुस्तकोंके संग्रहका बहुत शौक था। दमिश्क, बग़दाद, काहिरा, सब बुख़ारा तक उसके आदमी पुस्तकोंकी खोजमें छूटे हुए थे। उसके पुस्तकालयमें चार लाख पुस्तकें थीं। इस पुस्तकालयका प्रधान पुस्तकाध्यक्ष अल-हज़्ज़ा बयान करता है कि पुस्तकालयकी ग्रंथ सूची ४४ जिल्दों—प्रत्येक जिल्दमें बीस पृष्ठ—में लिखी गई थी। हकमको पुस्तकोंके जमा करनेका ही नहीं पढ़नेका भी बहुत शौक था पुस्तकालयकी शायद ही कोई पुस्तक हो जिसे उसने एक बार न पढ़ा हो, या जिसपर हकमने अपने हाथसे ग्रंथकारका नाम मृत्युकाल आदि न लिखा हो उसका दर्शनकी पुस्तकोंका संग्रह बहुत जबर्दस्त था।

हकमके मरने (९७६ ई०)के बाद उसका बारह सालका नाबालिग़ बेटा हिशाम द्वितीय गद्दीपर बैठा और काज़ी मंसूर इब्न अबीआमिर उसका वली मुक़र्रर हुआ। आमिरने हिशामकी माँको अपने काबूमें करके सारे पुराने अफ़सरों और दरबारियोंको हटाकर उनकी जगह अपने आदमियोंको भर दिया। और फिर हिशामको नाम मात्रका बादशाह बनाते हुए उसने अपने नामके सिक्के जारी किए, ख़ुत्बे (मस्जिदमें शुक्रके उपदेश) अपने नामसे पढ़वाने शुरू किए, देशके लोग और बाहरवाले भी आमिरको ख़लीफ़ा समझने लगे थे। आमिरने तलवारसे यह शक्ति

नहीं प्राप्त की, बल्कि यह उसकी चालबाजियोंका पारितोषिक था। इन्हीं चालबाजियोंमें एक यह भी थी कि वह अपनेको मजहबका सबसे जबरदस्त भक्त जाहिर करता था। "उसने (इसके लिए) आलिमों और फकीहों (=मीमांसकों)का एक जलसा बुलाया। एक छोटेसे भाषणमें उसने प्रश्न किया कि तुम्हारे ख्यालमें दर्शन और तर्कशास्त्रकी कौन-कौनसी पुस्तकें देशमें फैलकर भोले भाले मुसलमानोंके ईमानको खराब कर रही हैं। स्पेनके मुसलमान अपनी मजहबी हठधर्मीके लिए मशहूर ही थे, और दर्शनसे उन्हें हमेशा टकराना पड़ता था। इन लोगोंने तुरन्त प्रचारके लिए निषिद्ध पुस्तकोंकी एक लंबी सूची तैयार करके इब्न अबी-आमरके सामने रखी। आमरने उन्हें विदा कर दर्शनकी पुस्तकोंको जलानेका हुक्म दिया।"[1]

हकमका बहुमूल्य पुस्तकालय खानकी बातमें जलकर राख हो गया जो पुस्तकें उस वक्त जलनेसे बच गईं वह पीछे (१०१३ ई०) बर्बरोंके गृह युद्धमें जल गईं। हकमके शासनमें दार्शनिकोंका बहुत बड़े बड़े दर्जे मिले थे, यह कहनेकी जरूरत नहीं कि आमरने उन्हें पहिले ही दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंका। खैरियत यही थी कि आमर यहूदियोंका कत्ल आम नहीं कर सकता था, जिससे और जबतक वह स्पेन (युरोप)की भूमिपर थे, तबतक दर्शनका उच्छेद नहीं किया जा सकता था।

३—स्पेनिश् यहूदी और दर्शन

दसवीं सदीमें स्पेनकी राजधानी कार्दोवा (=कर्तवा)की आबादी दस लाखसे ज्यादा थी, और पश्चिममें उसका स्थान वही था, जो कि पूर्वमें बग-दादका। वहाँ स्पेन और मराकोके ही नहीं युरोपके नाना देशोंके गैर मुस्लिम विद्यार्थी भी विद्या पढ़ने आया करते थे—यह कहनेकी जरूरत

---

[1] "इब्न रोश्द" (मुहम्मद यूनस अंसारी फिरंगीमहली), पृष्ठ २७से उद्धृत।

था कि उस समयका सभ्य दुनियाका पश्चिमांश (पश्चिमी एशिया और यूरोप)का सांस्कृतिक भाषा अरबी थी, उसी तरह था कि प्राय सारे पूर्वार्द्ध (भारत जावा चम्पा आदि)की संस्कृत। अरबी और इब्रानी (यहूदियोंकी भाषा) बहुत नजदीकी भाषाएं हैं, इसलिए यहूदियोंका ध्यान भी खुभाता था। दर्शनके क्षेत्रमें यहूदियोंका पहिले भी हाथ था, किन्तु जब हकीम द्वितीयने अपने समयके प्रसिद्ध दार्शनिक हकीम इब्न इस्हाकको अपना कृपापात्र बनाया, तबसे उन्होंने दर्शनके झंडेको और आगे बढ़ानेकी जद्दोजहद शुरू की। इब्न-इस्हाकने जब पहिले-पहिल अरस्तूके दर्शनका प्रचार करना शुरू किया, तो यहूदी धर्माचार्योंने फतवा निकालकर मुखालफत करनी चाही, किन्तु यह बेकार गई, और ग्यारहवीं सदी पहुँचते-पहुँचते अरस्तू स्वयं यहूदियोंका अपना दार्शनिक-सा बन गया।

(१) इब्न-जिब्रोल (१०२१-७० ई०)—जिब्रोल मालागाके एक यहूदी परिवारमें पैदा हुआ था। यह स्पेनका सबसे बड़ा और मशहूर दार्शनिक था। जिब्रोलकी प्रसिद्ध दार्शनिक पुस्तक 'यनबूउल्-हयात' है। इसके दार्शनिक विचार थे—दुनियामें दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ हैं भूत (मूल प्रकृति या हयूला) और आत्मा (=विज्ञान) या "आकार"। लेकिन यह दो वस्तुएं वस्तुतः एक परमसामान्य (परमतत्त्व)के भीतर हैं, जिसे जिब्रोल सामान्यभूत (या सामान्यप्रकृति) कहता है। जिब्रोलके इस विचारको रोशन और विकसित किया है।

(२) दूसरे यहूदी दार्शनिक—जिब्रोलके बाद दूसरा बड़ा यहूदी दार्शनिक मूसा बिन-मैमून हुआ जिसका जन्म ११३५ ई०में कार्दोवामें हुआ था। यह एक प्रतिभाशाली विद्वान् था। तोमरतके उत्तराधिकारी अब्दुल्मोमिनने जब स्पेनपर अधिकार करके दर्शनके उत्पादन-क्षेत्र यहूदियोंपर गजब ढाया तथा देश निकाला देना शुरू किया, तो मूसा मिश्र चला गया, जहाँ मिश्रके सुल्तान सलाहुद्दीनने उसे अपना (राज)वैद्य बना लिया और वहीं ६०५ हिजरी (१२१२ ई०)में उसकी मृत्यु हुई।

कोई-कोई विद्वान् मूसाका रोश्दका शिष्य कहते हैं।

मूसाके बाद उसका शिष्य तथा दामाद यूसुफ बिन-यह्या एक अच्छा दार्शनिक हुआ।

स्पेनिश यहूदी दर्शनप्रेमियोंकी संख्या घटनेका जगह बढ़ना ही गई किन्तु अब राश्द-सूयके उग आनेपर वह टिमटिमाते तारे ही रह सकते थे।

४—मोहिदीन शासक

ग्यारहवीं सदीमें उमय्या शासक इस अवस्थामें पहुँच गए थे कि देशकी शक्तिको कायम रखना उनके लिए मुश्किल हो गया। फलतः सल्तनतमें छोटे-छोटे सामन्त स्वतंत्र होने लगे। वह समय नजदीक था कि पड़ोसी ईसाई शासक स्पेनकी सल्तनतको खतम कर देते इसी वक्त समुद्रके दूसरे (अफ्रीकी) तटके बर्बरोंने १०१३ ई० में हमला किया और कार्डोवाको जलाया, बर्बाद किया। इसके बाद उन्होंने मराकाश एक सल्तनत कायम की जिसे ताशकीन (मुल्सामीन) कहते हैं। अली (बिन-यूसुफ) ताशकीन (—११४७ ई०) वंशका अन्तिम बादशाह था जबकि एक दूसरे राजवंश—मोहिदीन—ने उसकी जगह ली।

(१) मुहम्मद बिन्-तोमरत (मृ० ११४७ ई०)—मोहिदीन शासनका संस्थापक मुहम्मद (इब्न अब्दुल्लाह) बिन-तोमरत मराकाशके बर्बरी कबीले मस्मूदीमें पैदा हुआ था। उसका दावा था कि हमारा वंश अलीकी सन्तानमेंसे है। इस्लाम उपलभ्य शिक्षाको समाप्त कर वह पूर्वकी ओर आया और वहां जिन विद्वानोंसे उसने शिक्षा ग्रहण की उनमें गज़ालीका प्रभाव उसपर सबसे ज्यादा पड़ा। गज़ालीके पास वह कई साल रहा, और इस समय इस्लाम और खासकर स्पेनकी इस्लामी सल्तनतकी दुरवस्थापर गुरु-चेलोंमें अक्सर चर्चा हुआ करती थी। गज़ाली भी एक धर्म राजनीतिक सल्तनतका स्वप्न देख रहे थे और इधर तोमरत भी उसी मजेका मराज़ था। इतिहास-दार्शनिक इब्न-खल्दून इस बारेमें लिखता है—

"जैसाकि मालूम है वह (तोमरत) गज़ालीसे मिला, और

उसने अपनी योजनाके बारेमें राय ली। गज़ालीने उसका समर्थन किया, क्योंकि वह ऐसा समय था जबकि इस्लाम सारी दुनियामें निर्बल हो रहा था और कोई ऐसा सुल्तान न था जो कि सारे पंथ (मुसलमानों)को संगठित कर उसे कायम रख सके। किन्तु गज़ालीने (अपनी सहमति तब प्रकट की जब कि उसने, पूछकर जान लिया कि उसके पास उतना साधन और जमात है, जिसकी सहायतासे अपनी शक्ति और रक्षाका प्रबन्ध कर सकता है।[1]

गज़ालीके आशीर्वादसे उत्साहित हो तोमरत देशको लौटते हुए मिस्रमें पहुंचा। काहिरामें उसके उत्तेजनापूर्ण व्याख्यानोंसे ऐसी अशान्ति फैली कि हुकूमतने उसे शहरसे निकाल दिया। सिकन्दरियामें चन्द दिन रहनेके बाद वह तूनिस होता मराक्को पहुँचा। तोमरत पक्का धर्मांध था उसके सामने जरासी भी कोई बात शरीअतके विरुद्ध होती दिखाई पड़ती कि वह आपेसे बाहर हो जाता। मराक्कोके बर्बर कबीलोंमें काफी वहशीयत मौजूद थी इसलिए उनके वास्ते यह आदर्श मुल्ला था इसमें सन्देह नहीं। थोड़े ही समयमें गज़ालीके शागिर्द बगदादसे पढ़कर लौटे इस महान मौलवीकी चारों ओर ख्याति फैल गई। वह बादशाह, अमीर मुल्ला सबके पीछे लट्ठ लिए पड़ा था और इसके लिए वहाँ बहुत मसाला मौजूद था। मुल्लमीन (ताशफीन) खान्दानमें एक अजब रवाज था उनकी औरतें खुले मुंह फिरती थीं किन्तु मर्द मुंहपर पर्दा डालकर चलते थे। व्यभिचार आम था, भले घरकी बहू-बेटियोंकी इज्जत फौजके लोगोंके मारे नहीं बचती थी—शहरोंमें यह सब कुछ खुल्लमखुल्ला चल रहा था। शराब खुल्लम खुल्ला बिकती थी। मामला बढ़ने देख मुल्लमीन सुल्तान अली बिन-ताशफीनने तोमरतके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिए विद्वानोंकी एक सभा बुलाई। शास्त्रार्थमें तोमरतकी जीत हुई बादशाहने उसके विचारोंको स्वीकार किया।[2]

---

[1] इब्न-खल्दून, जिल्द ५, पृष्ठ २२६ [2] स्मरण रहे यही अली बिन ताशफीन था जिसने गज़ालीकी पुस्तकोंको जलवाया था।

इसपर दर्बारवाले दुश्मन बन गए और तोमरतको भागकर अम्साम्रा नामक बर्बरी कबीलेके पास शरण लेनी पड़ी। यहाँसे उसने अपने मतका प्रचार और अनुयायियोंको सैनिक ढंगपर संगठित करना शुरू (११२१ ई०) किया। इसी समय अब्दुल्मोमिन उसका शागिर्द बना। तोमरत अपने जीवनमें अपने विचारोंके प्रचार तथा लोगोंके संठनमें ही लगा रहा उस चंद कबीलोंके संगठनमें ज्यादा सफलता नहीं हुई, किन्तु उसके मरनेके बाद उसका शागिर्द अब्दुल्-मोमिन उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने ५४० हिजरी (११४७ ई०)में मराकोपर अधिकार कर मुल्समीनकी सल्तनतको खतम कर दिया।

(२) अब्दुल् मोमिन (११४७-६३ ई०)—तोमरत अपनेको मोहिद् (अद्वैतवादी) कहता था इसलिए उसका संस्थापित शासन मोहिदी (मोहिदीन) का शासन कहा जाने लगा, और अब्दुल् मोमिन मोहिदीनका पहिला सुल्तान था। अब्दुल्मोमिन कुम्हारका लड़का था, और सिर्फ अपनी योग्यता और हिम्मतसे तोमरतके मिशनको सफल करनेमें समर्थ हुआ था। मराकोमें इस तरह उसने अपना राज्य स्थापित कर तोमरतकी शिक्षाके अनुसार हुकूमत चलानी शुरू की। इसकी खबर उस पार स्पेनमें पहुँची। स्पेनकी सल्तनत टुकड़े-टुकड़ेमें बँटी हुई थी। इन छोटे-छोटे सुल्तानोंकी विलासिता और जुल्मसे लोग तंग थे उन्होंने स्वयं एक प्रतिनिधि मंडल अब्दुल्मोमिनके पास भेजा। अब्दुल्मोमिनने उसका बहुत स्वागत किया, और आश्वासन देकर लौटाया। थोड़े ही समय बाद अब्दुल्मोमिनने स्पेनपर हमला किया और स्पेनको भी मराकोकी सल्तनतमें मिला लिया।

तोमरतने अपनेको अशअरी घोषित किया था इसलिए अब्दुल्मोमिनने भी उसे सरकारी पंथ घोषित किया लेकिन यह अशअरी पंथ गजालीकी शिक्षासे प्रभावित था, इसलिए दर्शनका अंधा दुश्मन नहीं बल्कि बुद्धिकी कदर करता था। यद्यपि उसके शासनके आरम्भिक दिनोंमें सख्तीके कारण कितने ही यहूदियों और उनके दार्शनिकोंको देश छोड़कर भागना पड़ा था, किन्तु आगे अवस्था बदली। हकम द्वितीयके बाद यह पहिला

समय था जब कि ईसाइयोंके साथ हुकूमतन सहानुभूति दिखानी शुरू की। अबूमर्वान बिन जुहर और इब्न-तुफैल उस वक्त स्पेनमें दो प्रसिद्ध दार्शनिक थे अब्दुलमोमिनने दोनोंको ऊँचे दर्जे दिये। अब्दुलमोमिन विद्याका बड़ा प्रेमी था। अब तक विद्यार्थी मस्जिदोंमें ही पढ़ा करते थे, मोमिनने मदरसोंके लिए अलग खास तरहकी इमारतें बनवाईं। उसका ख्याल था कि जो बुराइयाँ इस्लामिक आयतोंमें घुस आया करती हैं, उनके दूर करनेका उपाय शिक्षा ही है।

मोमिनके बाद (११६३ ई०) उसका पुत्र मुहम्मद ४८ दिन तक राज कर सका और नालायक समझ गद्दीसे उतार दिया गया, उसके बाद उसका भाई याकूब मन्सूर (११६३-८४) गद्दीपर बैठा, इसमें मोमिनके अनेक गुण थे जिनमें ही बदकारियाँ भी थीं जिन्हें हम शीघ्र वर्णनमें बतलायेंगे।

§ २—स्पेनके दार्शनिक

१—इब्न बाजा[1] (मृ० ११३८ ई०)

(१) जीवनी—अबू-बक्र मुहम्मद (इब्न-यहिया इब्न अल्-सायग) इब्न-बाजाका जन्म स्पेनके सरगोसा नगरमें ग्यारहवीं सदीके अन्तमें उस वक्त हुआ था, जब कि स्पेनिश सल्तनत खतम होकर स्वतन्त्र सामन्तोंमें बँटनेवाला था। स्पेनके उत्तरमें अधसभ्य लड़ाकू ईसाई सर्दारोंकी अमलदारियाँ थीं, जिनसे हर वक्त खतरा बना रहता था। देशकी साधारण जनता उसी दयनीय अवस्थामें पहुँच गई थी जो कि तारिखके आदि वक्त था। मुसलमान स्पेनके विजेता थे यह तो गजालीके ग्रंथोंका हवाला हम जान चुके हैं एसी अवस्थामें बाजा जैसे दार्शनिकका एक अजनबी दुनियामें आये जैसा [illegible] कोई ताज्जुब नहीं। बाजाकी बालकपनेका सरगोसाके [illegible] समझा जा सकता

---

[1] Avempace

दर्शन, तर्कशास्त्र गणित, ज्योतिषका पंडित था। उसने बाजाको अपना मित्र और मंत्री बनाया, जिसका फल यह हुआ कि मुल्ला (=फकीह) और मलिक उसके खिलाफ हो गए और वह ज्यादा दिन तक गवर्नर नहीं रह सका।

बाजाके जीवनके बारेमें सिर्फ इतना ही मालूम है कि सरगोसाकी पराजयके बाद १११८ ई०में वह शबिलीमें रहा जहाँ उसने अपनी कई पुस्तकें लिखीं। एक बार उसे अपने विचारोंके लिए जलकी हवा खानी पड़ी, और राश्दके आपने उसे छुड़ाया था। वहाँसे वह फेज राजदरबारमें पहुँचा और वहीं ११३८ ई०में उसका देहान्त हुआ। कहा जाता है कि बाजाके प्रतिद्वंद्वी किसी हकीमने उसे जहर देकर मरवा दिया। अपने छोटेसे जीवनसे बाजा स्वयं ऊबा हुआ था और अन्तिम शान्तिमें पहुँचनेके लिए वह अक्सर मृत्युकी कामना करता था। आर्थिक कठिनाइयाँ तो होंगी ही मगर ज्यादा अखरनेवाली बात उसके लिए थी, सहृदय विचार वाले मित्रोंका अभाव और शान्तिपूर्ण जीवनके रास्तेमें पग-पगपर उपस्थित होनेवाली कठिनाइयाँ। उस वातावरणमें बाजाको अपना दम घुटता सा मालूम होता था, और वह फाराबीकी भाँति एकान्त पसन्द करता था।

(२) कृतियाँ—बाजाने बहुत कम पुस्तकें लिखी हैं और जो लिखी भी हैं, उन्हें सुव्यवस्थित तौरसे लिखनेकी कोशिश नहीं की। उसने छोटी छोटी पुस्तकें अरस्तू तथा दूसरे दार्शनिकोंके ग्रंथोंपर संक्षिप्त व्याख्याके तौर पर लिखी हैं। बाजाकी पुस्तकोंमें 'तद्बीरु'ल-मुतवह्हिद और "हयातु'ल मोतजिल' ज्यादा दिलचस्प इस अर्थमें हैं, कि उनमें बाजाने एक राजनीतिक दृष्टिकोण पेश किया है। रोश्दने इस दृष्टिकोणके बारेमें लिखा है—इब्न'स-सायग (बाजा)ने हयातु'ल-मोतजिलमें एक ऐसा राजनीतिक दृष्टिकोण पेश किया है, जिसका संबंध उन मानव-समुदायोंसे है जो अत्यन्त शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।

---

[1] "अल् इतिसाल"।

बाजाका विचार है कि राज्य (हकूमत)का दुनियाँ आधारपर होना चाहिए। उसे स्वतंत्र एवं स्वतंत्र प्रजातन्त्रमें बदा और जजा (बाधा बाधा)का अधीन होना बेकार है। जब आदमी सदाचारपूर्ण जीवन बिताने के लिए अभ्यस्त हो जायँगे और मान-पीन तथा आमोद प्रमोदमें संयम और मितव्ययिताकी बात डाल देंगे तो जरूर ही बदाकी जरूरत नहीं रह जायगी। इसी तरह जजाका अधीन इसलिए बेकार है कि इस समाजमें व्यभिचार तथा आचारिक पतनका पता नहीं होगा फिर मुकदमा कहाँसे आयगा? और जज लोग करेंगे क्या करेंगे?

(३) दार्शनिक विचार—बाजाकी एक सदी पहिले जिन्दा हो चुका था। गजाली बाजासे सत्तरहवें साल पहिले मरे थे। पूर्वके दूसरे दार्शनिकों खासकर फाराबीका उनपर बहुत ज्यादा असर था। बाजाका रायय दिव्य प्रकाश द्वारा सत्य-साक्षात्कारके पूर्ण लाभ मात्रसे सुखी होनेकी बातसे आनन्दित हो गजाली वास्तविक तत्त्व तक नहीं पहुँच सका। दार्शनिकको एक आनन्दको भी छोड़ना होगा क्योंकि धार्मिक रहस्यवाद द्वारा जो प्रतिबिम्ब मानसपटपर प्रकट होते हैं वह सत्यका खोजने नहीं देते हैं। किसी भी तरहकी आकांक्षासे अकलुषित शुद्ध चिन्तन ही महान् ब्रह्मके दर्शनका अधिकारी बनाता है।

(क) प्रकृति-जीव-ईश्वर—बाजाके अनुसार जगतमें दो प्रकारके तत्त्व हैं—(१) एक वह जो कि गतियुक्त होता है, (२) दूसरा जो कि गति रहित है। जो गतियुक्त है, वह पिंड (=जड़) और परिच्छिन्न (=सीमित) होता है। परिच्छिन्न शरीर होनेके कारण वह स्वयं अपने भीतर सदा होती रहनी गतिका कारण नहीं हो सकता। उसकी अनन्त गतिके लिए एक ऐसा कारण चाहिए जो कि अनन्त शक्ति या नित्य-सार हो यही ब्रह्म (=नफ्स) है। पिंड (=शरीर) या प्राकृतिक (जड़) तत्त्व परन्तु गतियुक्त होता है ब्रह्म (=नफ्स) स्वयं अचल रहते, पिंड (जड़ तत्त्व)को गति प्रदान करता है, (३) जीव तत्त्व इन दोनों (जड़ ब्रह्म) तत्त्वोंके बीचकी स्थिति रखता है—उसकी गति स्वतः है। पिंड और

जीवका संबंध एक दूसरेसे कैसे होता है, इस प्रश्नको बाजा महत्त्व नहीं देता उसके लिए सबसे बड़ी समस्या है—'मानवके अन्दर जीव और ब्रह्म आपसमें कैसा संबंध रखते हैं ?

(a) "आकृति"—अफलातूकी भाँति बाजा मानता है कि जड़ (भूत) तत्त्व बिना 'आकृति' के नहीं रह सकता किन्तु 'आकृति' बिना जड़ तत्त्वके भी रह सकती है, क्योंकि ऐसा न माननेपर विश्वके परिवर्तनकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती—यह परिवर्तन वास्तविक आकृतियोंके आने और जानेसे ही संभव है। बाजाकी इस बातको समझनेके लिए एक उदाहरण लीजिए—घड़ा आकृति (मुटाई, गोलाई आदि) और भूत तत्त्व (मिट्टी) दोनोंके मिलनेसे बना है। जब मिट्टीसे आकृति नहीं जुड़ी थी, तब वहाँ घड़ा नहीं था। चिरकालसे मिट्टी पड़ी थी किन्तु घड़ा वहाँ नदारद था क्योंकि आकृति उसमें आकर नहीं मिली थी। अब आकृति आकर मिट्टीमें मिलती है मिट्टी घड़ेका रूप धारण करती है। जब यह आकृति मिट्टीको छोड़कर चली जाती है तो घड़ा नष्ट हो जाता है। पिथागोर, अफलातू अरस्तू सभी इस 'आकृति' पदार्थपर सबसे ज्यादा जोर देते हैं, और कहते हैं कि वह पिंडसे बिलकुल स्वतंत्र पदार्थ है और वही जगतके परिवर्तनका कारण है।

(b) मानवका आत्मिक विकास—इन आकृतियोंके कई दर्जे हैं सबसे निचले दर्जेमें हवला (सक्रिय प्रकृति)में पाई जानेवाली आकृतियाँ हैं, और सबसे ऊपर शुद्ध आत्मिक (ब्रह्म) आकृति। मानवका काम है सभी आत्मिक आकृतियोंका एक दूसरेके साथ साक्षात्कार (बोध) करना—पहिले सभी पिंडमय पदार्थोंकी सभी बुद्धिगम्य आकृतियोंका बोध फिर बाह्यान्तःकरणों द्वारा उपस्थापित सामग्रीसे जीवका जो स्वरूप प्रतीत होता है, उसका बोध, फिर खुद मानव विज्ञान[1] और उसके ऊपरके कर्त्ता विज्ञान

---

[1] यूनानी दर्शनका अनुसरण करते इस्लामिक दार्शनिक जीव (=रूह)से विज्ञान (=नफ्स)को अलग मानते हैं।

आत्माका [illegible] और अन्तमें ब्रह्माण्ड के शुद्ध विज्ञानका बोध। [illegible] जीवन [illegible] बाधाका विकास क्रम हुआ—

( ) प्राकृतिक आकृति

( ) जीव आकृति

( ) [illegible] आकृति

(४) क्रिया विज्ञान आकृति

(५) ब्रह्माण्ड-विज्ञान (ब्रह्म) आकृति

वैयक्तिक तथा इन्द्रिय जय भौतिक तत्त्व—जो कि विज्ञान (=ज्ञान) की क्रियाका अधिकरण है—से क्रमशः ऊपर उठते हुए मानव अमानुष दिव्य तत्त्व (ब्रह्म) तक पहुँचता है (मुक्ति प्राप्त करता)।

(ख) ज्ञान बुद्धि-गम्य—अज्ञानता मानव पर योगि प्रयत्न (=मुक्ति साधना)को मुक्तिका साधन बताया, यानी [illegible] ज्ञानात न मुक्ति (ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं) के सिद्धान्तका अनुयायी है इसीलिए दिव्यत्व तक पहुँचने (=मुक्ति)के लिए (रहस्यमय) सूफीवादको नहीं, दर्शनको पथप्रदर्शक मानता है। ज्ञान सामान्यका ज्ञान। सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है विषय या व्यक्तिके ज्ञानसे चिन्तन—कल्पना—के द्वारा किन्तु इसमें ऊपरके बोधदायक विज्ञानकी सहायताकी भी जरूरत है। इस सामान्य या अनन्त—जिसमें कि सत्ता (है") तथा प्रत्यक्ष विषय (होना) एक है—के ज्ञानसे तुलना करनेपर बाह्य वस्तुओंकी सभी मानस प्रतीतियाँ और चिन्तन भ्रमात्मक हैं। वास्तविक ज्ञान सामान्य ज्ञान है जो सिर्फ बुद्धि गम्य है। इससे पता लगा कि इन्द्रिय गम्य ज्ञानसे सदा लिप्त मजहबी और योगिक स्वप्न (ध्यान) दर्शनसे मानव विज्ञान पूर्णता (मुक्ति)को नहीं प्राप्त हो सकता उसे पूर्णता तक पहुँचनेका रास्ता एक ही है और वह है बुद्धिगम्य ज्ञान। चिन्तन सर्वश्रेष्ठ आनन्द है और उसीके लिए जो कुछ बुद्धिगम्य है, उसे जानना होता है। बुद्धिगम्य ज्ञान केवल सामान्यका ज्ञान

---

[1] आलम-अफलाक=आसमानोंकी दुनिया फरिश्ते।

है, और वही सामान्य वस्तुसत् है इन्द्रिय-गम्य व्यक्ति वस्तु सत् नहीं है इसलिए इस जीवनके बाद व्यक्तिके नाम्पर मानव विज्ञानका रहना सम्भव नहीं। मानव विज्ञान तो नहीं किंतु हो सकता है मानव-जीव (जो कि व्यक्तिका ज्ञान करता है, और उसके अस्तित्वका अपनी इच्छा और विश्वास प्रकट करता है) मृत्युके बाद ऐसे वैयक्तिक अस्तित्वको जारी रखने तथा कर्मफल पानेकी क्षमता रखता हो। लेकिन विज्ञान (=नफ्स) या जीवका बौद्धिक (इन्द्रियक नहीं) अंश सबमें एक है। यह सारी मानवताका विज्ञान —अर्थात् वह एक बुद्धि मानवताके भीतरका मन या विज्ञान ही एक मात्र नित्य सनातन तत्त्व है, और वह विज्ञान भी अपने ऊपरके कर्त्ता विज्ञानके साथ एक होकर।

बाजाके सिद्धान्तको हम फाराबीमें भी अस्पष्टरूपमें पाते हैं और बाजाके योग्य शिष्य रोश्द तो इसे इतना साफ किया कि मध्यकालीन युरोपकी दार्शनिक विचारधारामें इसे रोश्दका सिद्धान्त कहा जाता था।

(ग) मुक्ति—विज्ञान (=नफ्स)के उस चरम विकास—सामान्य विज्ञानके समागम—को बहुत कम मनुष्य प्राप्त होते हैं। अधिकांश मानव अँधेरेमें ही टटोलते रहते हैं। यह ठीक है कितनेंही आदमी ज्योति और वस्तुओंकी रंगीन दुनियाको देखते हैं किंतु उनकी संख्या बहुत ही कम है, जो कि देखे हुए सारका बोध करते हैं। वही जिन्हें कि सारका बोध होता है, अनन्त जीवनको पाते तथा स्वयंज्योति बन जाते हैं।

ज्योति बनना या मुक्त होना कैसे होता है इसके लिए बाजाका मत है—बुद्धि-पूर्वक क्रिया और अपनी बौद्धिक शक्तिका स्वतंत्र विकास ही उसका उपाय है। बुद्धि क्रिया स्वतंत्र (=बिना मजबूरीकी) क्रिया है वह ऐसी क्रिया है जिसके पीछे उद्देश्यप्राप्ति या प्रयोजनका ख्याल काम कर रहा है। उदाहरणार्थ, यदि कोई आदमी ठोकर लगनेके कारण उस पत्थरको तोड़ने लगता है तो वह छोटे बच्चे या पशुकी भाँति उद्देश्य रहित काम कर रहा है, यदि वह इसी कामको इस ख्यालसे कर रहा है कि दूसरे उससे ठोकर न खायें तो उसके कामको मानवोचित तथा बुद्धि-

पूर्वक कहा जायगा।

(घ) "एकान्तता उपाय"—बाजाका एक पुस्तकका नाम "तदबीरुल मुतवहहद" या एकान्तताका उपाय है। आत्माकी चरम उन्नतिके लिए वह एकान्तता या एकान्तचिन्तनके जीवनपर सबसे ज्यादा जोर देता है। फाराबीने इस विचारको अपनी मातृभूमि (मध्य एसिया)के बौद्ध विचारोंके ध्वंसावशेषसे लिया था और बाजाने इसे फाराबीसे लिया—और इस सारे लेन-देनमें बौद्ध दुःख (निराशा) वाद चला आया तो आश्चर्य ही क्या? एकान्तताके जीवनके पीछे समाजपर व्यक्तिकी प्रधानताकी छाप स्पष्ट है और इसीलिए बाजा एक ऐसे अ-सामाजिक समाजकी कल्पना करता है जिसमें वद्दा और जज्जा (न्यायाधीश)की जरूरत नहीं, जिसमें एक दूसरेकी स्वच्छन्तापर प्रहार किए बिना मानव कमसे कम पारस्परिक संपर्क रखते आत्माराम हो विहरें।— वह पौधोंकी भाँति खुली हवामें उगते हैं उन्हें मालीके चतुर हाथोंकी आवश्यकता नहीं वह (अज्ञानी) लोगोंके निकृष्ट भोगों और भावुकताओंसे दूर रहते हैं। वह समाज समाजके चाल-व्यवहारसे कोई सरोकार नहीं रखते। और चूँकि वह एक दूसरेके मित्र हैं इसलिए उनका जीवन पूर्णतया प्रेमपर आश्रित है। फिर सत्यस्वरूप ईश्वरके मित्रके तौरपर वह अमानुष (दिव्य) ज्ञान विज्ञानकी एकतामें विश्राम पाते हैं।

२—इब्न तुफैल[1] (मृत्यु ११८५ ई०)

अब्दुमामिन (११४७-८३)के शासनका जिक्र हम कर चुके हैं। उसके पुत्र यूसुफ (११६३-८४ ई०) और याकूब (११८४-९८ ई०)का शासन काल मोहिदीन वंशके चरम उत्कर्षका समय है। इन्हींके समय स्पेनमें फिर दर्शनका मान बढ़ा। इस वक्त दर्शनके मान बढ़नेका मतलब

---

[1] The Philosophy in Islam" (by Dr I J De Boer) pp 180 81 [2] Abubacer

था समाजमें शारीरिक श्रमसे मुक्त मनुष्योंकी अधिकता, और जिसका मतलब था गुलामी और गरीबोंके सीधेका कमकर जनतापर भारी भार और उसके बर्दाश्त करनेके लिए मजहब और परलोकवादके अफीमकी कड़ी पुड़ियाका उत्साहके साथ वितरण। यही समय भारतमें जयचन्द और 'खण्डनखण्डखाद्य' (शून्यवादी वेदान्त)के कर्ता श्रीहर्ष कविका है।

(१) **जीवनी**—अबू-बक्र मुहम्मद (इब्न-अब्दुल्मलिक) इब्न-तुफल (अल्-कसी)का जन्म गर्नाताके गाडिस[1] स्थानमें हुआ। उसका जन्म-संवत अज्ञात है। उसने अपनी जन्मभूमि हीमदान और वल्लेंसियामें अध्ययन किया। बाजा (मृत्यु ११३८ ई०) शायद उस वक्त तक मर गया था, किन्तु इसमें शक नहीं बाजाका पुस्तकालय उसके लिए गुरुका काम किया था। शिक्षा-समाप्तिके बाद तुफल गर्नाताके अमीरका लेखक हो गया। किन्तु तुफलकी योग्यता दूर तक गर्नाताकी सीमाके भीतर छिपी नहीं रह सकती थी और कुछ समय ही बाद (११६३ ई०) सुल्तान यूसुफने उसे मराक्का बुलाकर अपना वजीर और राजवैद्य नियुक्त किया। तुफल सर्कारी कामसे जो समय बचा पाता, उसे पुस्तकावलोकनमें लगाता था। उसका अध्ययन बहुत विस्तृत जरूर था, किन्तु वह उन विद्वानोंमें था, जिनका अध्ययनके फलको अपने ही तक सीमित रखनेमें आनंद आता है इसीलिए लिखनेमें उसका उत्साह नहीं था।

यूसुफके बाद याकूब (११८४-९८ ई०) सुल्तान बना, उसने भी तुफलका सम्मान बापकी तरह ही किया। इसीके शासनमें ११८५ ई०में तुफलकी मराक्कामें मृत्यु हुई।

(२) **कृतियाँ**—तुफलकी कृतियोंमें कुछ कविताएं तथा 'हई इब्न-यकज़ान' (प्रबुद्ध-पुत्र जीवक)की कथा है। 'हई'की कथा चार सौ साल पहिलेकी बू अली सीना (९८० १०३७ ई०) रचित 'हई इब्न-यकज़ान'-

---

[1] Gaudix [2] Granada

[illegible] किन्तु [illegible] उनसे अपने हैं।

(३) [illegible] विचार—(क) बुद्धि और आत्मानुभूति—[illegible] [illegible] [illegible] [

गया था अथवा अथानिज प्राणीकी तरह वहां उत्पन्न हुआ था। बचपनमें हरिनियोंने उसे दूध पिलाया, सयाना होनेपर उसे सिर्फ अपनी बुद्धिका सहारा रह गया था। उसने अपनी बुद्धिका पूरा इस्तेमाल किया और उसके द्वारा उसने शारीरिक आवश्यकताओंकी ही पूर्ति नहीं की, बल्कि निरीक्षण और मनन द्वारा उसने प्रकृति, आसमानी (=फरिश्ते) ईश्वर और स्वयं अपनी आन्तरिक सत्ताका ज्ञान प्राप्त करते हुए ७×७ (४९) वर्ष तक उस उच्चतम अवस्थाको प्राप्त हो गया है जिसे ईश्वरका सूफीवाला साक्षात्कार या समाधि अवस्था कहते हैं। जब असल वहां पहुँचा तो हईं उसी अवस्थामें था। हईको भाषा नहीं मालूम थी इसलिए पहिलेपहिले दोनोंको एक दूसरेके विचारोंके जाननेमें दिक्कत हुई, किन्तु जब वह दिक्कत दूर हो गई तो उन्होंने एक-दूसरेको अपने तजर्बे बतलाये, जिससे पता लगा कि हईका दर्शन और असलका धर्म एक ही सत्यके दो रूप हैं फर्क दोनोंमें इतना ही है कि पहिला दूसरेकी अपेक्षा कम ढँका है।

जब हईं (जीवक)को मालूम हुआ कि सामनेके द्वीपमें ऐसे लोग बसते हैं, जो अंधकार और अज्ञानमें अपना जीवन बिता रहे हैं, तो उसने निश्चित किया कि वहाँ जाकर उन्हें भी सत्यका दर्शन कराये। जब उसे उन लोगोंसे वास्ता पड़ा, तो पता लगा कि वह सत्यके शुद्ध दर्शन करनेमें असमर्थ हैं, तब उसने समझा कि पैगंबर मुहम्मदने ठीक किया जो कि उन्होंने लोगोंको पूर्ण ज्योति न प्रदान कर उसके मोटे रूपका प्रदान किया। इस तरह हार स्वीकार कर हईं अपने मित्र असलको लिये फिर अपने द्वीपमें चला गया और वहां अपनी शुद्ध दार्शनिक भावनाके साथ जीवनके अन्तिम क्षण तक भगवानकी उपासना करता रहा।

सीना और तुफ़ैल हईंके फर्क हैं दोनों ही हईं प्रबुद्ध-पुरुष या दार्शनिक हैं, किन्तु जहाँ सीनाका हईं अपने दार्शनिक ज्ञानमें दूसरेको मार्ग बतलानेमें असफल होता है वहाँ तुफ़ैलका हईं हार मानकर मुहम्मदी मार्गकी प्रशंसा करता हुआ लौट आता है। तो भी दोनोंमें एक बात जरूर एकसी है—दोनों ही ज्ञान-मार्गको श्रेष्ठ मानते हैं।

पृथ्वीके साथ उसके शरीरका संबंध बना रहना चाहिए, उसका निर्माण हुए हुआ यह शरीर चर्म। साथ ही उसका जीवन-तत्त्व उस आसमानों (=परिन्दों)से संबद्ध करता है। आसमानों (=परिन्दों)की भाँति ही उसे अपने पाल-पोसके लिए उड़ानका बल तथा अपना जीवन शुद्ध रखना चाहिए। इसी भावको सामने रखते हुए, अपने जीवनको स्वयंसे कर्मों परिणत करनेके लिए हमें अपने पाल-पोसके पोषाकों मीनार सोना तथा पानुआरी रखा करना है। अपने शरीर और कपड़ोंको शुद्ध रखनेका बहुत अधिक ध्यान रखना है और कोशिश करना है कि, आसमानी चिड़ों (बत्तों आदि)की भाँति ही अपनी हर एक शक्तिको सबकी अनुकूलताके साथ रखें।

इस तरह हमें अपनी आत्माको पृथिवी और आसमानसे ऊपर उठाते हुए शुद्ध आत्मा तक पहुँचानेमें समर्थ होना है। यही वह समाधि (=आत्म

विस्मृति)की अवस्था है जिसे किसी भी कल्पना शब्द मानसप्रतिबिंब द्वारा न जाना जा सकता है, न प्रकट किया जा सकता है।

३—इब्न[1]-रोश्द (११२६-९८ ई०)

बू-अली सीनाके रूपमें जैसे पूर्वमें दर्शन अपने उच्चतम शिखरपर पहुँचा, उसी तरह रोश्द पश्चिमी इस्लामिक दर्शनका चरम विकास है। यही नहीं रोश्दका महत्त्व मध्यकालीन युरोपीय दर्शन चक्रको गति देकर आधुनिक दर्शनके लिए क्षेत्र तैयार करनेमें साधन होनेके कारण और बढ़ जाता है।

(१) जीवनी—अबू वलीद मुहम्मद (इब्न अहमद इब्न-मुहम्मद इब्न अहमद इब्न अहमद) इब्न-रोश्दका जन्म सन ११२६ ई० (५२० हिजरी)में स्पेनके प्रसिद्ध शहर कार्दोवा (कर्तवा)में एक शिक्षित परिवारमें हुआ था। कार्दोवा उस समय विद्याका महान् केन्द्र तथा १० लाखकी आबादीकी महानगरी थी। रोश्दके खान्दानके लोग ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदोंपर रहते चले आए थे। रोश्दका दादा मुहम्मद (१०५८ ११२६ ई०) फिक्ह(=इस्लामिक मीमांसा)का भारी पंडित कार्दोवाका महाजज (काजी उल्-कुज्जात्) तथा जामा-मस्जिदका इमाम था। रोश्दका बाप अहमद (१०९८ ११६८ ई०) भी अपने बापकी तरह कार्दोवाका काजी (जज) और जामा मस्जिदका इमाम हुआ था। रोश्दका घर स्वयं एक बड़ा विद्यालय था, जहाँ उसके बाप-दादाके पास दूर-दूरके विद्यार्थी काफी संख्यामें आकर पढ़ते थे, फिर बालक रोश्दकी पढ़ाईका मा-बापने कितना अच्छा प्रबंध किया होगा इसे कहनेकी जरूरत नहीं। रोश्दने पहिले-पहिल अपने बापसे कुरान और मोता[2] पढ़कर कंठस्थ किया उसके बाद अरबी साहित्य और व्याकरण। बचपनमें रोश्दको कविता करनेका शौक हुआ था और उसने कुछ पद्य रचना भी की थी किन्तु सयाना होनेपर उसे वह नहीं जँची और कार्ल मार्क्सकी भाँति उसने अपनी कविताओंको आगके सिपुर्द कर दिया।

---

[1] Averroes [2] इमाम मालिककी लिखी फिक्हकी एक पुस्तक।

फिर अपाला (मराक्को)में। इसी तरह बार-बार सन्तानके जिलोंके दौरेमें वक्त गुजर जाता है और साथ ही साथ लिखनेका काम भी जारी रहता है जो कि यहाँ इस मानसिक अस्थिरताके कारण त्रुटिपूर्ण और अधूरा रह जाता है।[1]

राजकीय अधिकारी बननेके बाद राइस्का यही हालत रही, किन्तु राइस्ने ज्ञानप्रसारमें मीनाकी तरहका दृढ़ संकल्प और कामकी लगन पाई थी जिसका फल हम देखते हैं कि इतना बहुमूल्य होनेपर भी उसका उतना पुस्तकोंका लिखना।

११८४ ई० (५८० हिजरी)में यूसुफ मर गया, उसके बाद उसका बेटा याकूब मंसूर गद्दीपर बैठा। तामरत और उसके बाद अब्दुल्मामिन ने मालिकीनोंमें विद्याके लिए इतनी लगन पैदा कर दी थी कि शाहजादोंको पढ़नेके लिए बहुत समय और श्रम करना पड़ता था। याकूब अपने बाप और दादासे भी बढ़ चढ़कर विद्वान और विद्याप्रेमी था। साथ ही वह एक अच्छा जनरल था और उठती हुई पड़ोसी ईसाई शक्तियोंको कई बार पराजित करनेमें सफल हुआ।

याकूब अपने बापसे भी ज्यादा राइस्का सम्मान करता था और अवसर ज्ञान-चर्चाके लिए उसे अपने पास रखता था। याकूबके साथ राइस्की घनिष्ठताकी इतनी बढ़ गई थी, कि वार्तालापमें अक्सर वह उसे कहता—

"अस्मअो या अबी!" (सुनो मेरे मित्र!)

आखिरी उम्र रोश्द बादशाहसे छुट्टी ले कार्दोवामें रह लेखन अध्ययनमें बिताने लगा।

११९५ ई० (५९१ हि०)में याकूब मंसूर अपने प्रतिद्वन्द्वी अल्फोंसोंसे हमेशाके बदला लेनेके लिए कार्दोवा आया और वहाँ तीन दिन ठहरा, इस वक्त रोश्दके सम्मानको उसने चरम सीमा तक पहुँचा दिया। रोश्दके समकालीन एक काजीने इस मुलाकातका वर्णन इस प्रकार किया है—

---

[1] "इब्न रोश्द"—रेनां पृष्ठ १२

"मंसूर जब ५९१ हिजरी (११९५ ई०)में दमाम अल्फासोके ऊपर चढ़ाई करनेकी तैयारी कर रहा था उस समय उसने रोश्दको मुलाकातके लिए बुलाया। दरबारमें मुहम्मद अब्दुलवाहिदका बहुत प्रभाव था, वह मंसूरका दामाद और नदीम-खास था। इसके बदले मंसूरने अफ्रीकाकी गवर्नरी दी थी। दर्बारमें अबू-मुहम्मद अब्दुलवाहिदकी कुर्सी तीसरे नंबर पर होती थी, लेकिन उस दिन मंसूरने इब्न रोश्दको अब्दुल-वाहिदसे भी आगे बढ़ा अपनी बगलमें जगह दी, और देर तक बेतकल्लुफीसे बातें करता रहा। बाहर रोश्दके दुश्मनोंने खबर उड़ा दी कि मंसूरने उसके कत्लका हुक्म दे दिया है। विद्यार्थियोंकी भारी जमात बाहर प्रतीक्षा कर रही थी यह खबर सुनकर सब परेशान हो गये। जब थोड़ी देर बाद इब्न रोश्द बाहर आया (और अपनी हालत मालूम हुई तो) उसके दोस्तोंने इस प्रतिष्ठा और सम्मानके लिए उसे बधाई दी। लेकिन आखिरमें हकीम (रोश्द)ने खुशी प्रकट करनेकी जगह अफसोस जाहिर किया, और कहा—'यह खुशीका नहीं बल्कि रंजका मौका है, क्योंकि यकायक इस तरहकी समीपता बुरे परिणाम लायगी।'[1]

रोश्दकी बात सच निकली और उसके जीवनके अन्तिम चार साल बड़े दुःख और शोकसे पूर्ण बन गये।

(क) सत्यके लिए यन्त्रणा—११९५ से ११९७ ई० तक याकूब मंसूर लड़ाइयोंमें लगा रहा और अन्तमें दुश्मनोंको जबर्दस्त शिकस्त देनेके बाद उसने सेविलीमें देर तक रहनेका निश्चय किया। रोश्दके इतने बड़े सम्मानसे कितने ही बड़े-बड़े लोग उससे डाह करने लगे थे उधर रोश्द अपने विचारोंको प्रकट करनेमें सावधानी नहीं रखता था जिससे उनको अच्छा मौका मिला। उन्होंने रोश्दके कुछ विद्यार्थियोंको उसके विचारों को जमा करनेमें लगाया। उनका मतलब यह था, कि इस प्रकारसे रोश्द जी खोलकर सब कुछ कह डालेगा और फिर खुद उसीके वचनसे

[1] "तबकातुल्-अतिब्बा", पृष्ठ ७६

उसकी बदीनाके सबूतको एकत्रित करना मुश्किल न होगा। और हुआ भी ऐसा ही। रोश्दने अपने शागिर्दोंसे वह बातें कह डाली जो कि मुल्लोंके उस धर्मान्ध-युगमें नहीं कहनी चाहिए थीं। दुश्मनोंको और क्या चाहिए था। उन्होंने रोश्दके पूरे व्याख्यानको खूब नमक मिर्च लगाकर सुल्तानके पास पहुँचा दिया। सबूतके लिए सौ गवाह पेश कर दिये गए। यूसुफ चाहे कितना ही दर्शनानुरागी हो, उसे अपने समकालीन जयचन्दकी प्रजा न मिली थी जिसके सामने खुल्लम खुल्ला श्रीहर्ष न्यायके ऋषि गौतमको गोतम[1] (=महाबल) कहकर निर्द्वन्द्व घूमते फिरते, और दर्बारमें ताम्बूलद्वय और आसन (कुर्सी?) प्राप्त करते। मंसूर यदि अब रोश्दका पक्ष करता तो उसे प्रजा और सेनाको दुश्मन बनाना पड़ता।

गवाहोंने गवाही दी। रोश्दके हायके लेख पेश किये गये, जिनमेंसे एक में रोश्दने बादशाहको अमीरुल मोमिनीन या सुल्तान न कह 'बर्बरों'के सर्दार (मलिकुल्-बर्बर)के मामूली नामसे याद किया था। दूसरे लेखमें रोश्दने पुत्र (=जाहरा) तारेको यूनानियोंकी भांति सम्मान प्रकट करते हुए देवी कहा था। पहिली बातके लिए अब्दुल्ला उमूलीने रोश्दकी ओरसे बहस की जिसका नतीजा यह हुआ कि वह भी धर लिया गया। सभी गवाहियों सबूतोंसे यह साबित किया गया कि रोश्द बदीन नास्तिक है। यूसुफ मजबूर था। उसने रोश्दको अपने शिष्यों और अनुयायियोंके साथ सार्वजनिक सभामें आनेका हुक्म दिया जिसके लिए कार्दोवाकी जामा मस्जिदको चुना गया। बादशाह अपने दर्बारियोंके साथ वहाँ पहुँचा। इस भारी जल्सेकी कारवाईका वर्णन मन्सारीने इस प्रकार किया है—

'मन्सूरकी मजलिसमें इब्न रोश्दका दर्शन टीका और व्याख्याके साथ पढ़ा गया। कुछ डाह करनेवालोंने उसमें नमक मिर्च भी मिला दी थी। चूंकि सारा दर्शन बदीनी (=नास्तिकता) से भरा था इसलिए आवश्यक था कि इस्लामकी रक्षा की जाय। खलीफा(यूसुफ)ने सारी जनताको

---

[1] नैषधीयचरित"।

एक दर्बारमें जमा किया, जिसका स्थान पहिलेहीसे जामा मस्जिद निश्चित था। (इस जलसेमें) यह बतलाना था कि इब्न-रोश्द पथभ्रष्ट और धिक्कारका पात्र हो गया है। इब्न रोश्दके साथ काजी अब अब्दुल्ला मन्सूरी भी इसी अपराधमें धर गये थे—उनके बातलीपमें भी आज वक्त बदीनी जाहिर हुई थी। कार्डोवाकी जामा मस्जिदमें दोनों अपराधी उपस्थित किये गए। अबू अली हज्जाजने खड़े होकर घोषित किया कि इब्न रोश्द नास्तिक (=मुलहिद) और बदीन होगया है।[1]

हज्जाजके व्याख्यानके बाद सुल्तानने खुद इब्न रोश्दको इस अभिप्रायसे बुलाया कि वह जबाबदेही करे और पूछा कि क्या ये लेख तुम्हारे हैं? यह अजब नाटक था। क्या याकूब मन्सूर जानता नहीं था कि रोश्दके दार्शनिक विचार क्या हैं। क्या वर्षों उसके साथ बतबल्लुफाना दर्शन चर्चामें रोश्दके विचार उससे छिपे हुए थे? वह जानते हुए भी लोगोंको अपनी धर्मप्राणता दिखलाने तथा अपनी राजनीतिक स्थितिको सर्वप्रियता द्वारा दृढ़ करनेके ख्यालसे यह अभिनय कर रहा था। अच्छा होता यदि इस वक्त रोश्द भी सुकरातके रास्तेको स्वीकार किये होते किन्तु रोश्दका नागरिक समाज अथन्सके नागरिक समाजसे बहुत निम्न श्रेणीका था, वह उसके साथ अधिक बर्बरतापनमें पेश आता? साथ ही रोश्द सब कुछ खोकर भी जितने दिन और जीता उतना ही दर्शन और विचार-स्वातन्त्र्यके लिए अच्छा था। इसके अतिरिक्त रोश्दको अपने शिष्यों—अनुयायियों—मित्रोंका भी ख्याल करना जरूरी था। यह सब सोच रोश्दने भी उसी तरह अपने लेखोंसे इन्कार कर दिया, जिस तरह मसूरने उनके पूर्वपरिचयसे इन्कारका नाटक किया था। जवाब सुनकर मसूरने उन लेखोंके लिखने वालेको धिक्कार (लानत) कहा, और उपस्थित जनमण्डलीने 'आमीन' (एवमस्तु) कहा। इब्न रोश्दका अपराध सारी जनताके सामने साबित हो गया उसमें शक शुबहाकी गुंजाइश न थी। यदि सुल्तान बीचमें न होता

---

[1] 'इब्न रोश्द व फिलसफा"—बहु'ल जोन्।

तो साथ ही अनमंत्रीन गुस्साम आकर [illegible] बाटियों साथ डाला [illegible]। लेकिन बादशाहने रायके लिए इस [illegible] किया [illegible] कि वह किसी अलग व्यापार भेज दिया जाय।

[illegible] विरुद्ध [illegible] यह भी कहा था कि [illegible] आ अरबी [illegible] आकर आबाद हुए। [illegible] उनमें [illegible] [illegible] न। [illegible] और यदि उनका [illegible] तो बना [illegible] (यहूदी) [illegible]। [illegible] यह भी [illegible] कि [illegible] (=अलसान्ता) में भेज दिया जाये क्योंकि यह बना [illegible] (यहूदियों) की [illegible] है और उनके [illegible] दूसरी जातियों साथ नहीं रहते।

[illegible] दुनिया और मुसलमान एवं अर्मेनि उनके खिलाफ जो [illegible] प्रचार करते लोगोंने धर्मान्धताको उत्तेजित कर दिया था, उस इस फैसलेके बाद भय उनका बढ़ गया था। [illegible] यदि यहूदी बस्तीमें भेज दिया गया तो यह उनके लिए अच्छा ही हुआ। लोग मुल्लाओं बातमें आकर कुछ और रह बढ़ते। इसका ध्यान उन्हें शान्त करने तथा अपनेको मन्त्र भाजन न बनानेके लिए मन्सूरने एक खास सरकारी विभाग कायम किया जिसका काम था दर्शन और तत्त्वशास्त्रकी पुस्तकोंको एकत्रित कर उन्हें जलाना, तथा उन विद्यालयोंके पढ़नेवालोंको कड़ी-कड़ी सजाएँ दिलवाना। इसी समय मन्सूरने लोगोंको शान्त करनेके लिए एक फरमान (=घोषणा) लिखकर सारे मुल्कमें प्रकाशित कराया। इस सारे फरमानको अलमारीने अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है और उसके सारको इस प्रकार लिखा है[1]— पुराने जमानेमें कुछ लोग ऐसे थे जो मिथ्याविश्वासका अनुगमन करते और हर बातमें उन्हें सीधे सवाल उठाया करते थे, तो भी आम लोग उनकी बुद्धिकी प्रखरता पर लट्टू हो गए थे। इन लोगोंने अपने विचारोंके अनुसार ऐसी पुस्तकें लिखीं जो कि शरीअत (इस्लामी धर्मग्रन्थों)में

कार्डोवाके पास एक गाँव। "इब्न रोश्द", पृष्ठ ७३ ७६

[1] वहीं, टिप्पणी पृष्ठ ७६

उतनी ही दूर था जितना पूरब पश्चिम दूर है। हमारे समयमें भी कुछ लोगोंने इन्हीं नास्तिकों (=मुल्हिदों) की पैरवी की और उन्हींके मतके अनुसार किताबें लिखीं। यह पुस्तक देखनेमें कुरानकी आयतों (=वाक्यावलियों) से अधिक अलंकृत है, लेकिन भीतरमें कुफ्र (=नास्तिकता) और जिन्दीक (=धर्मविरोधी एक मत) है। जब हमें (सुल्तान मंसूर)को उनके धोखा-फरेबका हाल मालूम हुआ तो हमने उनको दरबारसे निकाल दिया, और उनकी किताबें जलवा दीं, क्योंकि हम शरीअत और मुसलमानोंको इन नास्तिकोंके फरेबसे दूर रखना चाहते हैं। या खुदा! इन नास्तिकों और उनके दोस्तोंको तबाह और बर्बाद कर। (फिर लोगोंको हुक्म दिया है कि) इन नास्तिकोंकी संगतसे वैसे ही परहेज करो जैसे विषसे करते हो। यदि कहीं उनकी कोई पुस्तक पाओ तो उसे आगमें झोंक दो, क्योंकि कुफ्रकी सजा आग है।"

तर्क और दर्शनके प्रति शिक्षित मुसलमानोंका उस वक्त क्या रुख था, यह विद्वान इब्न-जुह्र—जिसे कि मंसूरने पुस्तकोंके जलानेका इन्चार्ज बनाया था—की इस हरकतसे पता लगेगा। दो विद्यार्थी जुह्रसे वैद्यक पढ़ रहे थे। एक दिन उनके पास कोई किताब देख जुह्रने उसे लेकर गौर किया तो मालूम हुआ, मंतिक (=तर्क)की किताब है। जुह्र गुस्सेमें पागल हो नंगे पैर उनके पीछे मारनेके लिए दौड़ा। उन विद्यार्थियोंने फिर जुह्रके पास जाना छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने आकर उस्तादसे कसूरकी माफी माँगी और कहा कि वस्तुतः वह पुस्तक हमारी न थी एक दोस्तसे हमने जबरदस्ती छीनी और गलतीसे हमारे पास रह गई थी। जुह्रने कसूर माफ कर दिया, और नसीहत दी, कि कुरान कंठस्थ करो फिक्ह (=मीमांसा) और हदीस (=पैगंबर-वचन) पढ़ो। जब उन्होंने उसे समाप्त कर लिया, तो उसने स्वयं अपने पुस्तकालयसे फोर्फोरि (=फोर्फोरियस)की पुस्तक ईसागोजीको लाकर कहा कि फिक्ह और हदीसके बाद अब इसको पढ़नेका समय है। तर्क और दर्शनमें पाण्डित्य प्राप्त करो, किंतु इससे पहिले इसका पढ़ना तुम्हारे लिए हर्गिज़ उचित न था। इब्न-जुह्र यद्यपि बाहरसे तर्क-दर्शनकी पुस्तकोंको

[illegible] था, किन्तु [illegible] अध्ययन लगा रहता था। [illegible] उठाकर उसे [illegible] करना था। [illegible] एक [illegible] हो गया कि [illegible] हजारों [illegible]। [illegible] हुआ कि [illegible] जाये। [illegible] गया और [illegible] मार दिये गये। [illegible] आग भड़का दी थी। [illegible] था, कि यह [illegible] हो सकती, किन्तु [illegible] बलि [illegible] गई थी। यह [illegible] था, कि मुल्लाओं [illegible] उत्तेजित कर [illegible]। इसलिए [illegible] निश्चय किया।

जिस [illegible] निर्वासित किया गया था, उसी [illegible] दूसरे [illegible]—[illegible] उंगली, [illegible] कबीर, [illegible]—को भी निर्वासित किया गया था। इस बार मुल्लाओं [illegible] कबिरों बनाए था, [illegible] ही [illegible] है।

यहूदी [illegible] पहिले [illegible] थे इसलिए [illegible] यहूदियों [illegible] उस [illegible] अवस्थामें देखा, तो उसे [illegible] बटोरने लिए तैयार थे। आखिर [illegible] एक छोटा गाँव था जहाँके [illegible] उस [illegible] भी [illegible] समझते थे। उनके इस सम्मानकी कीमत और बढ़ जाती है जब हम जानते हैं कि उन्हें यह मालूम न था कि लूसीनियाका यह [illegible] भविष्यमें सारी विद्या और प्रकाशकी दुनियाका पूज्य देवता बनने जा रहा है और उस दुनियाके निर्माणकी बुनियादमें उनके विचार और अपमानकी ईंटें भी पड़ेंगी।

[illegible] के ऊपर होनेवाले अत्याचारोंके बारेमें कितनी ही बातें मशहूर

है। एक बार वह लूसीनियाके फ्रास भाग गया। गुलाम पकड़वाकर उसे मस्जिदके दर्वाजेपर खड़ा करवाया, और यह सजा दी कि जो मस्जिदके भीतर दाखिल हो या बाहर निकले उनपर थूका जाय। एक अपमानका वर्णन स्वयं रोश्दने लिखा है—"सबसे अधिक दुःख मुझे उस वक्त हुआ था जब कि एक बार मैं और मेरा बेटा अब्दुल्ला कार्दोवाकी जामा मस्जिदमें नमाज पढ़नेके लिए गये, लेकिन न पढ़ सके। वहाँ गुड़ान हल्ला मचाया, और हम दोनोंको मस्जिदसे निकाल दिया गया।

रोश्दको लूसीनियामें निर्वासित कर एक तरहसे सख्त नजरबन्दीमें रखा गया था, कोई दूसरी जगहका आदमी उससे मिलने नहीं पाता था।

(ख) मुक्ति और मृत्यु—दो साल (११९७-९८ ई०) तक रोश्द उस बुढ़ापेमें अपनी दार्शनिक प्रतिभाके लिए उस शारीरिक और मानसिक यातनाको सहता रहा। मंसूर समझ रहा था कि उसने अपने समयके लोगोंके सामने ही नहीं इतिहासके सामने कितना भारी पाप किया है, किन्तु रोश्दके बदले स्वयं बलिवेदीपर चढ़नेकी उसकी हिम्मत न थी। अब मंसूर अपने पड़ोसी ईसाई राजाओंकी अंतिम पराजय करके जहाँ उधरसे निश्चिन्त था वहाँ उसका प्रभाव अपनी प्रजापर एक भारी विजयके तौर पर हो गया था, उधर मुल्लोंका जादू भी जनताके सिरसे कम हो गया था। मंसूरके इशारेसे या खुद ही सेविली (अश्बीलिया)के कुछ सम्भ्रान्त लोगोंने गवाही दी कि रोश्दपर झूठा बेबुनियाद इल्जाम लगाया गया था। इसपर मंसूरने इस शर्तपर छोड़नेका हुक्म दिया कि रोश्द जामा-मस्जिदके दर्वाजेपर खड़ा होकर लोगोंके सामने तोबा करे। रोश्द जामा मस्जिदके दर्वाजेपर तब तक नंगे सिर खड़ा रखा गया, जब तक लोग नमाज पढ़ते रहे, (और खुदा शान्तचित्तसे उस नमाजको सुनता भी रहा[1])। इसके बाद वह कार्दोवामें बड़ी गरीबीकी जिन्दगी बिताने लगा।

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेनाँ द्वारा एक पुराने लेखक अबू मुहम्मद अब्दुल कबीर अंसारी से उद्धृत), पृष्ठ १६

मन्सूरकी आत्मा अभी भी उसे कोस रही थी इसलिए वह रोश्दके साथ कुछ और उपकार करनेका रास्ता ढूँढ रहा था। इसी बीच मराकोके काजी (जज)को उसके जुर्मके लिए बर्खास्त करना पड़ा। मन्सूरने तुरन्त उसकी जगह रोश्दको मुकर्रर किया। इसीका पुस्तकोंके ध्वंसका हुक्म भी वापिस लिया गया, और जो दूसरे दार्शनिक निर्वासित किये गए थे, उनको बुलाकर कितनोंको बड़े-बड़े दर्जे दिये गए।

रोश्द एक साल और जीवित रहा और अन्तमें १० दिसम्बर ११९८ ई० को मराकोमें उसका देहान्त हुआ। उसके शवको कार्दोवामें सादर खान्दानी कब्रस्तान मकबरा अब्बासमें दफन किया गया।

तेईस दिन बाद (२ जनवरी ११९९ ई०)को मन्सूर भी मर गया, और साथही अपने नामपर हमलोंके लिए एक काला धब्बा छोड़ गया। वह समय जल्द आया जब स्पेनकी भूमिसे मन्सूरके खान्दानका शासन ही नहीं बल्कि इस्लाम भी खतम हो गया किन्तु रोश्दकी आवाज सारे यूरोपमें गूंजने लगी।

(ग) रोश्दका स्वभाव—रोश्दके स्वभावके बारेमें इतिहास-लेखक वाजीका कहना है—

इब्न रोश्दकी राय बहुत मजबूत होती थी। वह जैसा ही जबरदस्त प्रतिभाका धनी था वैसाही दिलका मजबूत था। उसके संकल्प बहुत पक्के होते थे, और वह कष्टोंसे कभी भय नहीं खाता था।[1]

रोश्द गंभीरताकी मूर्ति था। ज्यादा बोलना उसके स्वभावमें न था। अभिमान उसे छू नहीं गया था। किसीको बुरा भला कहना उसे पसंद न था। धन और पदका न उसे अभिमान था और न लोभ। वह अपने गुजारेपर खर्च न करता था। दूसरोंकी सहायता करनेमें उसे बहुत आनन्द आता था। चापलूसीसे उसे सख्त घृणा थी। उसकी विशालहृदयता मित्रों ही तक नहीं शत्रुओं तकके लिए खुली हुई थी। वह कहा करता

---

[1] तब्कातुल अतिब्बा", पृष्ठ ७६

था—'यदि हमने दोस्तोंको दिया, तो वह काम किया, जो कि हमारी अपनी रुचिके अनुकूल है। उपकार और दया उसे कहते हैं, जिसमें उन शत्रुओंतकको शामिल किया जाय जिनकी हमारी तबियत पसंद नहीं करती'।[1]

"दया उसमें इतनी थी कि यद्यपि वर्षों वह काज़ी (जज) रहा, किन्तु कभी किसीको मृत्यु-दंड नहीं दिया। यदि कोई ऐसा मौका आता, तो स्वयं न्यायासनको छोड़ दूसरेको अपना स्थानापन्न बना देता। अपने शहर कार्दोवामें उसका वैसा ही प्रेम था, जैसा कि यूनानी दार्शनिकोंका अथेन्समें। एक बार मंसूरके दरबारमें जुह्र और रोश्दमें अपने अपने शहरों सेविली और कार्दोवाके संबंधमें बहस छिड़ गई। रोश्दने कहा—सेविलामें जब कोई विद्वान् मर जाता है तो उसके ग्रंथ-संग्रहको बचनेके लिए कार्दोवा लाना पड़ता है, क्योंकि सेविलीमें इन चीजोंकी पूछ करनेवाले नहीं हैं। हाँ, जब कार्दोवाका कोई गायनाचार्य मर जाता है, तो उसके वाद्य-यंत्र सेविलामें बिकनेके लिए जाते हैं, क्योंकि कार्दोवामें इन चीजोंकी माँग नहीं है'।

पुस्तक पढ़नेका रोश्दको बहुत शौक था। इब्नुल् अबारका कहना है कि रातके वक्त भी उसके हाथमें किताब नहीं छूटती थी। सारी-सारी रात वह किताब पढ़ा करता था। अपनी उम्रमें सिर्फ दो रातें उसने किताब पढ़े बिना बिताईं, एक शादीकी रात, दूसरी वह रात जब कि उसके बापकी मृत्यु हुई।[2]

(२) कृतियाँ—भिन्न भिन्न विषयोंपर रोश्दकी लिखी हुई पुस्तकोंकी संख्या साठसे ऊपर है। इब्नुल् अबारके कथनानुसार वह दस हजार पृष्ठोंके करीब है। मौलवी मुहम्मद यूनस् अन्सारी (फिरंगीमहली)ने अपनी पुस्तक इब्न रोश्द में (जो कि मेरे इस प्रकरणका मुख्य आधार है) भिन्न भिन्न विषयोंपर रोश्दकी पुस्तकोंकी विस्तृत सूची दी है। मैं यहाँ[3] सिर्फ

---

[1] "आगाज़ो अंजाम", पृष्ठ २२२ 'नफ़्हुत्तीब', पृष्ठ २१६
[2] "अल् दीबाजुल् मज़हब", पृष्ठ २८४ इब्न रोश्द', पृष्ठ ११९ ३०

पुस्तकों का गणना दी है।

(१) दर्शन	२८
(२) तर्क	२०
(३) विद्या	८
(४) कलाम (धर्म) शास्त्र	९
(५) नक्षत्र-गणित	४
(६) व्याकरण (भाषा)	२
	९८

राजा अपना सभी पुस्तकें अरबाम किया था। किन्तु उनमें कितनी ही अरबी मूल नष्ट हो चुके हैं, और उनके इब्रानी या लातीनी अनुवाद ही मौजूद हैं।

इब्न रोश्द ने कहा लिखा है कि किस तरह तुर्क ने उसे दर्शन की पुस्तकों के लिखने की आज्ञा दी—'एक दिन इब्न-तुफैल ने मुझे बुलाया। जब मैं गया तो उसने कहा कि आज अमीरुल मोमिनीन (यूसुफ) अफसोस करते थे कि अरस्तू का दर्शन बहुत गंभीर है, और (अरबी-) अनुवादकों ने अच्छा अनुवाद नहीं किया है। यदि कोई आदमी तैयार होता और उनका संक्षेप करके सुबोध बना देता। मैं तो यह काम नहीं कर सकता, मेरी उम्र अब नब्बे है और अमीरुल मोमिनीन की तबीयत भी ठीक नहीं। तुम तैयार हो जाओ, तो कुछ मुश्किल नहीं, तुम इस काम को अच्छी तरह कर भी सकते हो। मैंने इब्न-तुफैल को वचन दे दिया, और उसी दिन अरस्तू की किताबों की व्याख्या-टीकायें लिखनी शुरू कीं।'[1]

राश्द की दर्शन-संबंधी पुस्तकों को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है—

(१) अरस्तू तथा कुछ और यूनानी दार्शनिकों की पुस्तकों की टीकायें या विवरण।

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेनाँ), पृष्ठ ११

(२) अरस्तूका पक्ष ले सीना और फाराबीका खंडन।

(३) दर्शनका पक्ष ले गजाली आदि वाद-शास्त्रियोंका खंडन।

रोश्दने अरस्तूके ग्रंथोंकी तीन प्रकारकी टीकायें की हैं—

(१) विस्तृत व्याख्या टीका—इनमें हर मूल शब्दको उद्धृत कर व्याख्या की गई है।

(२) मध्यम व्याख्या—इनमें वाक्यके प्रथम शब्दको उद्धृतकर व्याख्या की गई है।

(३) संक्षिप्त ग्रंथ—इनमें वाक्यको बिलकुल लिये बिना ही वह भाव को समझाता है।

अरस्तूके कुछ ग्रंथोंकी निम्न व्याख्याएं रोश्दने निम्न साल और स्थानोंमें समाप्त की—

सन्	नाम पुस्तक	स्थान
११७१ ई०	अस्समाअ-वल्-आलम[1] (व्याख्या)	सेविली
११७४ ई०	सनाअत-वल्-शअर[2] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
	मावाद'त-तबीआत[3] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
११७६ ई०	अखलाक[4] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
११८६ ई०	तबीआत[5] (विस्तृत व्याख्या)	सेविली

इनके अतिरिक्त उसकी निम्न पुस्तकोंकी समाप्तिके समय और स्थान मालूम है—

११७८ ई०	जवाहरुल्-कौन	मराको
११७९ ई०	कश्फ-मनाहजुल अदला	सेविली

---

[1] De Coelo et mundo (देवात्मा और जगत्)

[2] Rhetoric (भाषण-शास्त्र) Poetics (काव्य-शास्त्र)

[3] Metaphysics (अध्यात्म या अतिभौतिक-शास्त्र)

[4] Ethics (आचार-शास्त्र)

[5] Physics (साइंस या भौतिक शास्त्र)

११६३ ई० अब [illegible] (व्याख्या) [illegible]

११६४ ई० [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अरस्तूके [illegible] पुस्तकोंपर [illegible] [illegible] व्याख्याएँ [illegible] [illegible] [illegible]

रोश्दके दार्शनिक विचारोंको जानने के लिए उसके दर्शन-संबंधी 'संक्षेप (तल्ख़ीस) फ़ाराबी, तथा सीनापर आक्षेप और वाद शास्त्रके खंडन देखने लायक हैं, जो बदक़िस्मतीसे किसी जीवित भाषामें बहुतही कम छपे हुए हैं।[1]

रोश्दकी किसी पुस्तककी विशेष तौरसे विवेचना यहां संभव नहीं है

४–नफ़्स, ५–मा बाद तबइयात।

संक्षेप—६–खतावत्, ७–शेअ्र ८–तौलीद-व-इन्हलाल, ९–आसार-अल्इया, १०–अख़्लाक़, ११–हिस्स-व-महसूस, १२–हैवान, १३–तव-ल्लुद हैवान।

इनमें १,६,७, मन्तिक (=तर्कशास्त्र) की आठ पुस्तकोंमें से हैं। २,३, ४,८,९,११,१३–तब-इयात (=भौतिकशास्त्र) की आठ पुस्तकोंमेंसे, ५वीं पुस्तक अतिभौतिकशास्त्र है, और १०वीं आचार-शास्त्र।

[1] संक्षेपोंमें—

१–तल्ख़ीस-मंतकियात (तर्कशास्त्र संक्षेप)
२–तल्ख़ीस-तबइयात (भौतिशास्त्र-संक्षेप)
३–तल्ख़ीस-मा बाद-तबइयात (अतिभौतिकशास्त्र-संक्षेप)
४–तल्ख़ीस्-अख़्लाक़ (आचारशास्त्र-संक्षेप)
५–शरह्-जम्हूरियत (प्रजातंत्रकी व्याख्या)

वादशास्त्रियोंके खंडन—

१–तोहाफ़तुल्-तोहाफ़तुल फ़िलासफ़ा (दर्शन-खंडन-खंडन) यह प्रधान तथा ग़ज़ालीके तोहाफ़तुल-तोहाफ़त (दर्शन-खंडन) का खंडन है।

२–फ़स्लुल मुक़ाल।

३–कश्फ़ुल अदला।

अरस्तूके तर्कको ग़लत समझनेके लिए फ़ाराबीके विरुद्ध रोश्दने तीन पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें "तल्ख़ीस-मोक़ालात फ़ाराबी फ़िलमन्तिक़" मुख्य है। सीनाकी पुस्तक "शफ़ा"की ब्रह्म विद्या (इल्मुल-इलाही) पर आक्षेप किया है।

[illegible] हम उन [illegible] पारम्परा [illegible] चाहते, जिनके बारे में [illegible] और [illegible] तथा [illegible] का झगड़ा था—

(क) गजालाका खंडन—[illegible] ठीक [illegible], जो कि था [illegible]। [illegible] (संस्कृत [illegible] आहार या [illegible] [illegible])। और [illegible] नाम भी उनके [illegible] (स्थान-[illegible]) [illegible] (खंडन [illegible])। खंडन-[illegible] और खंडन-[illegible] में नाम सादृश्य बहुत [illegible]। किन्तु [illegible] प्रतिपाद्य विषयों एवं मनोभावों [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] था कि [illegible] युग [illegible] जिसमें [illegible] बड़े [illegible] [illegible]। [illegible] खंडन का [illegible]' और उन [illegible] तथा [illegible] के [illegible] [illegible] स्थापित करना चाहता है। उसका [illegible] गजालीके द्विविधात्मक [illegible] का खंडनकर [illegible] —जो कि

---

[1] दुरावाप इव धर्मकीर्तेः पन्थाः, तदवावहितेन भाव्यम्"—खंडन खंड [illegible]।

धर्मनीतिके वादके बहुत नजदीक है—की स्थापना करना चाहता था। अर्थात् पूर्व और पश्चिमके इन महान दार्शनिकोंमें एक (श्रीहर्ष) वस्तुवादको हटाकर अ-वस्तुवाद (विज्ञानवाद, शून्यवाद) कायम करना चाहता था, दूसरा (रोश्द) अवस्तुवाद (सूफी ब्रह्मवाद)को हटाकर वस्तुवादकी स्थापना कर रहा था। और दोनोंके प्रयत्नोंका आगे हम परिणाम क्या देखते हैं? श्रीहर्षकी परंपरा ब्रह्मवादके मायाजालमें उलझकर भारतके मोहग्रस्त समाजको पैदा करती है, और रोश्दकी परम्परा पुनर्जागरणके संघर्षमें भाग लेकर नवीन युरोपके उत्पादनमें सफल होती है। भारतमें यदि गज़ाली और श्रीहर्ष परंपरा संघर्षमय रही, तो उसके कार्य-कारण संबंध भी दिखाई पड़ते हैं।

(a) दर्शनालोचना गज़ालीकी अनधिकार चेष्टा—एक बार अपनी स्मृतिको ताजा करनेके लिए इस्लामिक वाद शास्त्र(=कलाम)पर नजर दौड़ानी चाहिए। मोतजलाने "वाद" को अपनाया, फिर अबुल्-हसन अश्अरीने बस्रामें इसी हथियारको लेकर मोतजलापर प्रहार करना शुरू किया। अशअरीके अनुयायी अबूबक्र बाकलानीने बादमें थोड़ी दर्शनकी पुट देनी चाही, जिसमें गज़ालीके गुरु इमाम हर्मैनने अपनी प्रतिभाका ही सहारा नहीं दिया, बल्कि गज़ाली जैसे शागिर्दको तैयार करके दे दिया। गज़ालीने सूफीवाद, दर्शनवाद, कुरानवाद, बुद्धिवाद, अ-बुद्धिवाद, नबीशाही, जनतंत्रवाद क्या क्या नहीं मिलाकर एक चूचूका मुरब्बा "वाद" (कलाम)के नामपर तैयार किया, जिसका नमूना हम देख चुके हैं। गज़ालीके "दर्शन-खंडन"के खंडनमें उसे जैसेही नामपर रोश्दका 'दर्शन-खंडन-खंडन" लिखना बतलाता है, कि रोश्दको गज़ालीका चूचूका मुरब्बा पसंद नहीं आया। रोश्द अपनी पुस्तक "कश्फुल् अदला"में गज़ालीके इस चूचूके मुरब्बेके बारेमें लिखता है—

इस्लाममें सबसे पहिले बाहरी (मतवाला)ने फसाद (झगड़ा मतभेद)

---

[1] पृष्ठ ७२

पैदा किया फिर मातरुदान, फिर अश्अरियान, फिर सूफियान और सबसे अन्तमें गज़ालीन। पहिले उस (ग़ज़ाली)ने "मक़ासिदुल् फ़िलासफ़ा" (दर्शनाभिप्राय) एक पुस्तक लिखा। जिसमें (यूनानी) आचार्योंके मतको सोचकर बिना घटाये बढ़ाये नक़ल कर दिया। उसके बाद "तोहाफ़तुल फ़िलासफ़ा (दर्शन-खंडन) लिखा, जिसमें तीन सिद्धान्तोंके बारमें दार्शनिकोंको काफ़िर बनाया। उसके बाद 'जवाहिरुल-क़ुरान' में ग़ज़ालीने स्पष्ट बतलाया कि ताहाफ़तुल फ़िलासफ़ा (दर्शन-खंडन) केवल लड़ाई भिड़ाई (=जदल)की किताब है और मेरे वास्तविक विचार "मख़्नून-ये-अज़ीम गैर-अहलेही" में हैं। इसके बाद ग़ज़ालीने 'मिश्कातुल-अन्वार' एक किताब लिखी, जिसमें ज्ञानियोंके मतकी व्याख्या करके यह साबित किया कि सभी ज्ञानी असली सत्यसे अपरिचित हैं इसमें अपवाद सिर्फ वह है, जो कि महान सिर्जनहारके संबंधके दार्शनिक सिद्धान्तोंको ठीक मानते हैं। यह कहनेके बाद भी कितनी ही जगह ग़ज़ालीने यह बतलाया है कि ब्रह्म ज्ञान (=इल्म-इलाही) केवल चिन्तन और मननका नाम है, और इसी लिए 'मुनक़्क़ज़ मिनल-ज़लाल' में (अरस्तू आदि) आचार्योंपर ताना कसा है और फिर स्वयं ही यह साबित किया है, कि ज्ञान एकान्तवास तथा चिन्तनसे प्राप्त होता है। सारांश यह कि ग़ज़ालीके विचार इतने विभिन्न और अस्थिर हैं कि उनके असली विचारोंका जानना मुश्किल है।"

ग़ज़ालीने ताहाफ़तुल् फ़िलासफ़ा'की भूमिकामें[1] अपने ज़मानेके दार्शनिकोंको जो फटकारा है और उनके २० सिद्धान्तोंका खंडन किया है उसके उत्तरमें रोश्द 'खंडन-खंडन' में लिखता है—

'(दार्शनिकोंके) इन सिद्धान्तोंकी जाँच सिर्फ वही आदमी कर सकता है जिसने दर्शनकी किताबोंका ध्यानपूर्वक पढ़ा है (ग़ज़ाली सीनाके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता था), ग़ज़ाली जो यह आक्षेप करता है, इसके दो कारण हो सकते हैं—या तो वह सब बातोंको जानता है, और फिर आक्षेप करता

---

[1]देखो पृष्ठ १६१ [2]'तोहाफ़तुत-तोहाफ़त' पृष्ठ ३४

हैं, और यह दुष्टताका काम है, या वह अनभिज्ञ है, तो भी आक्षेप करता है, और यह मूर्खोंको ही शोभा देता है। लेकिन गज़ालीमें दोनों बातें नहीं मालूम होती। मालूम यह होता है, कि बुद्धिके अभिमानने उसे इस पुस्तकको लिखनेके लिए मजबूर किया। आश्चर्य नहीं यदि उसकी मंशा इस तरह लोगोंमें प्रिय होनेकी रही हो।"

(b) कार्य-कारण-नियम अटल—गज़ालीने प्रकृतिमें कार्य-कारण नियमको माननेसे यह कहकर इन्कार कर दिया कि वैसा मान लेनेपर "करामात (=अकलके खिलाफ अप्राकृतिक घटनाएँ) गलत हो जावेंगी, और धर्मकी बुनियाद करामातपर ही है।"

इसके उत्तरमें रोश्द कहता है—

'जो आदमी कार्य-कारण नियमसे इन्कार करता है, उसको यह माननेकी भी जरूरत नहीं कि हर एक कार्य किसी न किसी कर्तासे होता है। बाकी यह बात दूसरी है, कि संसारी तौरसे जिन कारणोंको हम देखते हैं, वह काफी ख्याल न किए जायें, किन्तु इससे कार्य-कारण नियम (=इल्लियत) पर असर नहीं पड़ता[1]। असल सवाल यह है कि चूंकि कुछ ऐसी चीजें भी हैं जिनके कारण या सबबका पता नहीं लगता, इसलिए क्या एकदम कार्य-कारण नियमसे ही इन्कार कर दिया जाये। लेकिन यह बिलकुल गलत बात है। हमारा काम यह है, कि अनुभूत (वस्तु)से अन्-अनुभूत (अज्ञात)की खोज करें, न कि यह कि (एक वस्तुके) अन् अनुभूत होनेकी वजहसे जो अनुभूत (ज्ञात है) उससे भी इन्कार कर दें।

आखिर ज्ञानका प्रयोजन क्या है? सिर्फ यही कि अस्तित्व रखनेवाले (पदार्थों)के कारणोंका पता लगावें। लेकिन जब कारणोंहीसे बिल्कुल इन्कार कर दिया गया तो अब बाकी क्या रहा? तर्कशास्त्रमें यह बात प्रमाण-कोटिमें पहुँच गई है कि हर कार्यका एक कारण होता है, फिर यदि कारण और हेतुसे ही इन्कार कर दिया गया, तो इसका नतीजा या

---

[1] "तोहाफतुल् फिलासफा, पृष्ठ ६४

तो यह होगा कि कोई वस्तु मालूम (=ज्ञात) न रहेगा, या यह कि किसीको पक्का मालूम (=ज्ञात) न (मानता) होगा और सभी ज्ञात (वस्तुओं)का बाल्तिल रहना पड़ेगा। इस तरह [illegible] (सत्ता) [illegible] दुनियामें रह न जायगा।'

[illegible] "में [illegible] विस्तार [illegible] [illegible] पड़ता है—

यदि [illegible] कारण (नियम)से [illegible] इन्कार कर दिया जाय अर्थात् यह मान लिया जाय कि जगत्का वर्तमान (कार्य-कारण) स्थिति किसी दूसरी स्थिति [illegible] [illegible] और जगत्में कोई अटल [illegible] नहीं है तो किसी (=[illegible])के लिए (=[illegible])के लिए क्या बाकी रह जायगा? [illegible] तो [illegible] इसका है कि सारा जगत् [illegible] और [illegible] अनुसरण कर। लेकिन जब मनुष्यके साथ [illegible] संयोजक हर [illegible] किये जा सकते हैं—अर्थात् [illegible] ज्ञानका [illegible], [illegible] विषयका [illegible], [illegible] विषयका [illegible] कोई [illegible] नहीं है, तो मनुष्यके [illegible] ईश्वरकी कारीगरी या [illegible] कौशल [illegible] बाकी रहेगा। [illegible] वर्तमान नियम [illegible] जाय—यानी जो चीज पश्चिमकी ओर गति कर रही है वह पूर्वकी ओर, और जो पूर्वकी ओर गति कर रही है वह पश्चिमकी ओर गति करने लगे, आग ऊपर उठनेकी जगह नीचे उतरने लगे, मिट्टी नीचे उतरनेकी जगह ऊपर [illegible] लगे तो फिर क्या (ईश्वरकी) कारीगरी और [illegible] झूठा न हो जायगा।'

(c) धर्म दर्शन समन्वयका ढंग गलत—ग़ज़ाली भी बुद्धि और धर्म अथवा दर्शन और धर्मका समन्वय (समझौता) करानेके पक्षपाती हैं और रोश्द भी, किन्तु दोनोंमें भारी अन्तर यह है। 'इब्न रोश्द मजहबको विद्या (=ज्ञान)के मातहत समझता है और ग़ज़ाली विद्याको मजहबके मातहत। रोश्द लिखता है'— [illegible] कोई बात प्रमाण (=बुर्हान)से

---

[1] 'तोहाफतु'त तोहाफत', पृष्ठ १२२ [2] पृष्ठ ४१

[3] 'फस्लु ल्-मुकाल', पृष्ठ ८

सिद्ध हो गई, तो मजहब (की बात)में जरूर नई व्याख्या (=तावील) करनी होगी।'

(ख) जगत् आदि-अन्त-रहित—अरस्तू तथा दूसरे यूनानी दार्शनिक जगत्को अभावसे उत्पन्न नहीं बल्कि अनादिकालसे चला आता, तथा अनन्तकाल तक चला जानेवाला मानते थे, गज़ाली और इस्लामका इसपर एतराज़ था। राश्दने इस विषयको साफ करते हुए अपने ग्रंथ "अतिभौतिक शास्त्र-मक्षप"[1]में लिखा है—

"जगत्की उत्पत्तिके सिद्धान्तपर दार्शनिकोंके दो परस्पर विरोधी मत हैं। (१) एक पक्ष उत्पत्तिसे इन्कार करता है, और विकास नियमको माननेवाला है, और (२) दूसरा पक्ष विकाससे इन्कार करता है और उत्पत्ति होनेको मानता है। विकासवादियोंका मत है, कि उत्पत्ति इसके सिवा और कुछ नहीं है कि बिखरे हुए परमाणु इकट्ठे हो मिश्रित रूप स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी अवस्थामें निमित्तकारण (ईश्वर)का कार्य सिर्फ इतना ही होगा कि भौतिक परमाणुओंको शकल देकर उनके भीतर पारस्परिक भेद पैदा करे। इसका अर्थ यह हुआ कि ऐसी अवस्थामें कर्त्ता उत्पादक (=स्रष्टा) नहीं रहा, बल्कि उसका दर्जा गिर गया, और वह केवल चालकके दर्जेपर रह गया।

"इसके विरुद्ध उत्पत्ति या सृष्टिके पक्षपाती मानते हैं, कि उत्पादकने भूत (=प्रकृति)की जरूरत रखे बिना जगत्को उत्पन्न किया। हमारे (इस्लामिक)वाद-शास्त्री (मुतकल्लमीन, गज़ाली आदि) और ईसाई दार्शनिक इसी मतको मानते हैं।

इन दोनों मतोंके अतिरिक्त भी कुछ मत हैं, जिनमें कम या अधिक इन दो विचारोंमेंसे किसी एक विचारकी झलक पाई जाती है। उदाहरणार्थ (१) इब्न-सीना यद्यपि विकासवादियोंसे इस बातमें सहमत है, कि (जगत्-उत्पत्ति) केवल भूत(=प्रकृति)के शकल-सूरत पकड़नेका नाम है,

---

[1] "तलख़ीस मा बाद-तबइयात", अध्याय १, ४

नहिं सूरा (=आकृति)का उत्पत्तिके प्रकारपर यह अरस्तूके मत मे रखता है। अरस्तू कहता है कि प्रकृति(=माद्दा) और आकृति दोनों अनुत्पन्न (=नित्य) हैं लेकिन इन्हें माना प्रकृतिका अनुत्पन्न तथा आकृतिको उत्पन्न (=अनित्य) मानता है इसलिए उसने जगत् उत्पादकका नाम आकृति कारक शक्ति रखा है। इस प्रकार इस (माना)के मतके अनुसार प्रकृति केवल (काय)अधिकरण'का नाम है—उत्पत्ति या कार्यकी सामर्थ्य' (स्वा) उसमें बिल्कुल नहीं है। (२) उसके विरुद्ध देमाक्रितुस' और पाराबीका मत है कि यह अवस्थाओंमें स्वयं प्रकृति भी (जन्) उत्पत्तिका काम कर सकती है। (३) तीसरा मत अरस्तूका है। उसी माना सम्मत यह है—स्रष्टा (=उत्पादक) नहीं प्रकृतिका स्रष्टा है और नहीं आकृतिका बल्कि इन (प्रकृति आकृति)दोनोंसे मिलकर जो चीजें बनती हैं, उनका स्रष्टा है।—अर्थात् प्रकृति में गति पैदाकर उसकी आकृति—धारण—का यहाँ तक बन देता है कि जो अन्तर्हित शक्तिकी अवस्थामें होती है, वह काय-गत (=काय अवस्था)में आ जाती है। स्रष्टाका काय बस इतना ही है। इस तरह उत्पत्तिकी क्रियाका यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिको गति देकर अन्तर्हित, अ प्रकट) शक्ति(की अवस्था)से कार्य(के रूप)में ले आना।—अर्थात् सृष्टि वस्तुका गति क्रिया है। किन्तु, गति गर्मीके बिना नहीं पैदा हो सकती। यही कारण है कि जल—और पृथिवी—मण्डलमें जो गर्मी छिपी (=निहित) है उसीसे रंग रंगके वनस्पतियों और प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है। नजरके ये सारे काय नियम—क्रम—के साथ होते हैं जिसको देखकर यह ख्याल होता है कि कोई पूर्णबुद्धि इसका पथ प्रदर्शन कर रही है, यद्यपि दिमागका इसके बारेमें किसी इन्द्रिय या मानसिक-ज्ञानका पता नहीं। इस बातका अर्थ यह हुआ, कि अरस्तूके मतमें जगत्-स्रष्टा

---

[1] इन्फ्राल। [2] सलाहियत्। [3] सामस्तियुस् (नौशेरवांकालीन)।

प्रकृति यहाँ सांख्यकी प्रकृतिके अर्थमें नहीं बल्कि मूल भौतिकतत्त्व के अर्थमें प्रयुक्त है।

आकृति—शक्ल—का उत्पादक नहीं है, और हम उसको उनका उत्पादक मानें, तो यह भी मानना पड़ेगा, कि वस्तुका होना अ-वस्तुसे (अभावसे भावका) होना हो गया।

'इब्न-सीनाकी गलती यह है, कि वह आकृतियोंको उत्पन्न मानता है, और हमारे (इस्लामिक) वादशास्त्रियोंकी गलती यह है, कि वह वस्तुको अ-वस्तु (=अ भाव)से हुई मानते हैं। इसी गलत सिद्धान्त—वस्तुका अ-वस्तुसे होना—को स्वीकार कर हमारे वादशास्त्रियोंने जगत-स्रष्टाको एक ऐसा पूर्ण (सर्वतन्त्र) स्वतन्त्र कर्त्ता मान लिया है, जो कि एक ही समयमें परस्पर-विरोधी वस्तुओंको पैदा किया करता है। इस मतके अनुसार न आग जलाती है, और न पानीमें तरलता और आर्द्रता (=स्नेह)का सामर्थ्य है। (जगतमें) जितनी वस्तुएं हैं वह अपनी-अपनी क्रियाके लिए जगत्-स्रष्टाके हस्तक्षेपपर आश्रित हैं। यही नहीं, इन लोगोंका ख्याल है, कि मनुष्य जब एक ढेला ऊपर फेंकता है तो इस क्रियाको उसके अंग—अवयव स्वयं नहीं करते, बल्कि जगत्-स्रष्टा उसका प्रवर्त्तक और गतिकारक होता है। इस प्रकार इन लोगोंने मनुष्यकी क्रिया-शक्तिकी जड़ही काट डाली।'

इसी तत्वको अन्यत्र समझाते हुए रोश्द लिखता है[1]—

(a) प्रकृति—'(जगत-)उत्पत्ति केवल गतिका नाम है, किन्तु गतिके लिए एक गतिवालका होना जरूरी है। यह गतिवाला जब केवल (अन्तर्हित) क्षमता या योग्यताकी अवस्थामें है, तो इसीका नाम मूल भूत (प्रकृति) है, जिसपर हर तरहकी आकृतियाँ पिन्हाई जा सकती हैं, यद्यपि वह अपने निजी रूप (=स्वभाव)में हर प्रकारकी आकृतियां—शक्लों—से सर्वथा रहित रहता है। उसका कोई तर्कसम्मत लक्षण नहीं किया जा सकता, वह केवल क्षमता—योग्यता—का नाम है। यही वजह है, जगत् पुरातन—अनादि—है, क्योंकि जगत्की सारी वस्तुएं अस्तित्वमें आनेसे पहिले क्षमता—योग्यता—की अवस्थामें थीं, अ-वस्तु (=अ भाव)-

[1] "तलखीस् तबइयात" (भौतिक शास्त्र संक्षेप)।

से वस्तु (=भाव) का होना असंभव है।

'प्रकृति सर्वथा अनुत्पन्न (=अनादि) और अनश्वर (=न नाश होने लायक) है, दुनियामें पदार्थोंका न अन्त होनेवाला क्रम जारी है। जो वस्तु (अन्तर्हित) क्षमता या योग्यताकी अवस्थामें होती है, वह क्रिया अवस्थामें जरूर आती है अन्यथा दुनियामें बाज चीजोंको बत्तकि बिना ही रह जाना पड़ेगा। गतिके पहिले स्थिति या स्थितिके पहिले गति नहीं होती, बल्कि गति स्वयं आदि अन्त रहित है। उसका कर्त्ता स्थिति (=गति शून्यता) नहीं है बल्कि गतिके कारण स्वयं एक दूसरेके कारण होते हैं।

(b) गति सब कुछ—जगतका अस्तित्व भी गतिहीसे कायम है। हमारे शरीरके अन्दर जो तरह-तरहके परिवर्तन होते हैं उन्हींसे हम इस दुनियाका अंदाजा लगाते हैं यही परिवर्तन गतिके भिन्न भिन्न प्रकार हैं। यदि जगत् एक निर्जीव यन्त्रकी भांति स्थिर (=गति शून्य) हो जाय, तो हमारे दिमाग से दुनियाका ख्याल भी निकल जायगा। स्वप्नावस्थामें हम दुनियाका अन्दाजा अपने दिमाग और ख्यालकी गतियोंसे करते हैं। और जब हम मधुर स्वप्नमें बेखबर (=सुषुप्त) रहते हैं, उस समय दुनियाका ख्याल भी हमारे दिलसे निकल जाता है। सारांश यह है कि यह गतिहीका चमत्कार है जो कि आरम्भ और अन्तके विचार हमारे दिमागमें पैदा होते हैं। यदि गतिका अस्तित्व न होता, तो जगतमें उत्पत्तिका जो यह लगातार प्रवाह जारी है उसका अस्तित्व भी न होता, अर्थात् दुनियामें कोई चीज मौजूद नहीं हो सकती।[1]

(ग) जीव—नफ्स[2] या विज्ञानका सिद्धान्त अरस्तूके लिए जितना महत्त्वपूर्ण है राज़के लिए वह उससे भी ज्यादा है, क्योंकि उसने इसके ऊपर अपने एक विज्ञानता[3]के सिद्धान्तको स्थापित किया है। लेकिन जिस तरह जगतके समझनेके लिए प्रकृति (=मूल तत्त्व) और गति एवं

---

[1] "तलखीस-तब इयात" (भौतिक शास्त्र-संक्षेप)।

[2] यूनानी नवस (Nous)=अक्ल। [3] "वहदत् अक्ल।"

गतिका स्रोत ईश्वर जानना जरूरी है, उसी तरह ईश्वर कर्त्ता-नफस या कर्त्ता विज्ञान[1] जो कि नफ्सा (- विज्ञाना)का नफ्स (विज्ञान) और सभी नफ्सोंके उद्गम तक पहुँचनेके पहिले प्रकृति और ईश्वर (=नफ्स)के बीचके तत्त्व जीव (रूह)के बारमें जानना जरूरी है।

(a) पुराने दार्शनिकोंका मत—पुराने यूनानी दार्शनिक जीवके बारेमें दो तरहके विचार रखते थे, एक वह जो कि जीवको भूत (=प्रकृति)-से अलग नहीं समझते थे जैसे एम्पदोक्ल (४८३-३० ई० पू०), एपीकुरु (३४१-२७० ई० पू०)। और दूसरे दोनोंको अलग अलग मानते थे, इनमें मुख्य हैं अनक्सागोर (५००–४२८ ई० पू०) अफलातून (४२७–३७० ई० पू०)। पुराने यूनानी दार्शनिक इस बातपर एकमत थे, कि जीवमें ज्ञान और स्वतः गति यह दो बातें अवश्य पाई जाती हैं। अखीमनक मतमें जीव सदा गतिशील तथा आदि अन्तहीन (=नित्य) पदार्थ है। क्षणिकवादी हेराक्लितु (५३५-४२५ ई० पू०)के मतमें जीव सार (भौतिक) तत्त्वोंसे श्रेष्ठ और सूक्ष्म है, इसीलिए वह हर तरहकी परिवर्तनशील चीजोंको जान सकता है। देवजन (४२१–३२२ ई० पू०) जीवके मूल तत्त्वको वायुका सा मानता है, जीव स्वयं उसकी दृष्टिमें सूक्ष्म तथा ज्ञानकी शक्ति रखता है। परमाणुवादी दमोक्रितु (४६०-३७० ई० पू०)के मतमें जीव कभी न स्थिर होनेवाली सतत गतिशील, तथा दुनियाकी दूसरी चीजोंको गति देनेवाला तत्त्व है, भौतिकवादी एम्पदोक्ल (४८३ ४३० ई० पू०) के मतमें जीव दूसरी मिश्रित वस्तुओंकी भाँति चार महाभूतोंसे बना है। आपसमें मत भेद जरूर है, किन्तु सिर्फ पिथागोर[2] (५७० ५०० ई० पू०) और जेनो[3] (४९० ४३० ई० पू०)को छोड़ सुक्रात (४६९ ३९९ ई०

[1] नफस फआल=Active Reason

[2] संख्या ब्रह्मके सिद्धान्तमें जीवको भी शामिलकर उसे अ भौतिक संख्या-तत्त्व मानता था।

[3] वह जीवको संख्या जैसी एक अ भौतिक वस्तु मानता था।

पू०)से पहिलेवाले सारे यूनानी दार्शनिक जीव और भूत (=प्रकृति) को अलग अलग तत्त्व नहीं समझते।

(b) अफलातूँका मत—अफलातूँने इस बातपर ज़ोर दिया कि जीव और भूत अलग अलग तत्त्व हैं। मानव शरीरके भीतरके जीव उसके मतमें तीन प्रकारके हैं—(१) विज्ञानीय जीव[1] जो कि मनुष्यके मस्तिष्कमें भीतर गुप्त गतिमान रहता है, (२) दूसरा पार्थिव जीव हृदयमें रहता है, और नश्वर है। इससे आत्माको क्रोध और वीरताकी प्राप्ति होती है। (३) पार्थिव जीवसे भी नीचे प्राकृतिक (=वानस्पतिक) जीव है क्षुधा पिपासा, मानुषिक कामना आदिका उद्गम यही है। वानस्पतिक (=प्राकृतिक) और पार्थिव जीव आमतौरसे आत्मिक जीवके आधीन काम करते हैं, किन्तु कभी-कभी वे मनमानी करने लगते हैं, तब अक्ल (=विज्ञान) बेचारी असमर्थ हो जाती है, और आत्माके काम अबुद्धि-पूर्वक बढ़ जाते हैं।

(c) अरस्तूका मत—अरस्तू जीवके बारेमें अपने गुरु अफलातूँके इस मत (भूतसे जीवका एक भिन्न द्रव्य होना)से सहमत नहीं है। अरस्तूका पुराने दार्शनिकोंपर यह आक्षेप है कि वह जीवका ऐसा लक्षण नहीं बतलाते जो कि वानस्पतिक (प्राकृतिक) पार्थिव, और आत्मिक तीनों प्रकारके जीवोंपर एकसा लागू हो।[2] अरस्तू अपना लक्षण करते हुए कहता है कि भूत (=प्रकृति) क्रियाका आधार[3] (=क्रिया अधिकरण) मात्र है, और जीव केवल क्रिया या आकृति[4] है। भूत और जीव अथवा प्रकृति और आकृति परस्पर-संबद्ध तथा एक दूसरेके पूरक हैं इन दोनोंके योगको ही प्राकृतिक (=भौतिक) पिंड[5] कहा जाता है। अभाव या अंधकारमें पड़ी प्रकृति (=भूत)को जीव (=आकृति) प्रकाशमें लाता है, दूसरी ओर

---

[1] रूहे-अक्ली। [2] "प्राणिशास्त्र", अध्याय २

[3] इन्फ़आल Receptive [4] Form सूरत।

[5] Physical body जिस्म-तबई।

वानस्पतिक और पार्थिव जीवकी विरादरीसे निकालकर उसे नातिक-विज्ञान नामसे जाना चाहता है। वह जीवन ही नातिक विज्ञान[1] है।

नातिक-विज्ञान—विज्ञानीय जीव या नातिक विज्ञान नीचके तत्वों (प्रकृति आकृति)से श्रेष्ठ है, और वही सभी चीजोंका नाता[2] है—मानो नातिक विज्ञान ऊपरसे नीचकी दुनियामें खास उद्देश्यसे भेजा जाता है। उसका इस दुनियाकी (प्राकृतिक या आकृतिक) व्यक्तियोंसे कोई अपनापन नहीं। वह अवयवको नहीं अवयवी, सामान्य तथा आकृतिका ज्ञान रखता है। इसीके द्वारा मनुष्य इन्द्रियोंकी दुनियाके पर ज्ञान-गम्य दुनियाका जाननेमें समर्थ होता है। किन्तु ज्ञान-गम्य दुनियाका ठीक-ठीक पता अतिमानुष विज्ञानों (=ऊपरकी नफ्सों)का ही होता है अतः नातिक विज्ञान एक दर्पण है जिसके द्वारा मनुष्य ऊपरकी विज्ञानीय दुनियाके प्रतिबिंबको देख सकता है।

इन्द्रिय विज्ञान—नातिक-विज्ञान अवयवका ज्ञान नहीं करता, वह अति मानुष विज्ञानों[3]की भाँति केवल अवयवी, आकृति या सामान्यका ज्ञान करता है, यह कह आए हैं। इसलिए अवयव या व्यक्तिके ज्ञानके लिए अरस्तूने एक और विज्ञानकी कल्पना की है, जिसका नाम इन्द्रिय विज्ञान है। आगको छूकर गर्मीका ज्ञान इन्द्रिय विज्ञानका काम है। इन्द्रिय विज्ञानोंका कार्यक्षेत्र निश्चित है शरीरमें उनका सीमित स्थान है, नातिक-विज्ञान न तो अवयव या शरीरके किसी भागमें समाया हुआ है, न शरीरके भीतर एक जगह सीमित होकर बैठा है, न उसके लिए बाह्य विषयोंकी पाबन्दी है, और न उसकी क्रियाके लिए देश-काल या कमी-बेशीकी। वह भौतिक वस्तुओंपर बिलकुल आश्रय नहीं करता।

नातिक-विज्ञान—जीव और शरीरके पारस्परिक संबंध तथा शरीरके उत्पत्ति विनाशके साथ जीवके उत्पत्ति विनाशकी बात कह आए हैं किंतु नातिक विज्ञान जैसा कि अभी बतलाया गया, शरीरसे बिलकुल अलग है

---

[1] नफ्स-नातिक़ा, या रूहे अक्ली नतक़=Noetic(यूनानी)=ज्ञान।
[2] मुद्रिक। [3] अजसामे अलूइया।

जिस तरह अपनी क्रियाके आरंभ करनेमें वह शरीरपर अवलंबित नहीं, उसी तरह शरीरके नष्ट हो जानेपर भी उसमें परिवर्तन नहीं होता, वह नित्य सनातन है।

नातिक विज्ञानके अरस्तूने दो भेद बतलाए हैं—क्रिया विज्ञान, और अधिकरण विज्ञान[1], क्रिया विज्ञान वस्तुओंको ज्ञात—मालूम—होने योग्य बनाता है, यह अतिमानुष विज्ञानोंका नातिक-विज्ञान है, जिसके भागीदारोंमें मानव जाति भी है। अधिकरण विज्ञान ज्ञात (वस्तुओं)से प्रभावित हो उनके प्रतिबिंबको अपने भीतर ग्रहण करता है, यह मानव व्यक्तियोंका विज्ञान है, पहिलेका गुण क्रिया और प्रभाव है, दूसरेका गुण है प्रभावित होना। ये दोनों ही तत्त्व मौजूद रहते हैं किंतु अधिकरण विज्ञानका प्रकाश=प्राकट्य क्रिया विज्ञानके बाद होता है। क्रिया विज्ञान अधिकरण विज्ञानसे श्रेष्ठ है, क्योंकि क्रिया विज्ञान शुद्ध विज्ञानीय शक्ति[2] है, किन्तु अधिकरण विज्ञान चूंकि उससे प्रभावित होता है इसलिए उसमें पिंड (=शरीर)का भी मेल है[3]। अरस्तूके नफ्स (=विज्ञान)-संबंधी विचारोंका संक्षेप है—

(१) क्रिया विज्ञान और अधिकरण विज्ञान एक नहीं भिन्न भिन्न हैं।
(२) क्रिया विज्ञान नित्य और अधिकरण विज्ञान नश्वर है।
(३) क्रिया विज्ञान मानव व्यक्तियोंसे भिन्न है।
(४) क्रिया विज्ञान आत्माके भीतर भी है।

अरस्तू-टीकाकार सिकन्दर अफ्रदिसियुस् और देमासियुस (५४९ ई०) दोनों अरस्तूसे भिन्न विचार रखते हैं। वह क्रिया विज्ञानको मानवसे बिलकुल अलग मानते हैं क्रिया विज्ञानको देमासियुस भदक विज्ञान कहता है, और उसीको सिकन्दर कारण-कारण कहता है।

---

[1] नफ्स-फेअली Active reason [2] नफ्स-इन्फआली, Material or Receptive Nous (Reason)
[3] अक्ली क़ूवत्। [4] The Anine प्राणि-शास्त्र (किताबुल हयात)।

(घ) रोशन्का विज्ञान (=नफ्स) वाद—ऊपरके विवरणसे मस्लूब निम्न विचार हमें मालूम है। तत्व मुख्यतः तीन है—प्रकृति जीव (=आकृति) और विज्ञान (=नफ्स)। जीवके वह तीन भेद मानता है। जिसमें मानुष (=विज्ञानीय) जीवका विज्ञानकी तरफ खींचना चाहता है। विज्ञान (=नफ्स)के वह तीन भेद मानता है—क्रिया-विज्ञान और अधिकरण विज्ञान।

लेकिन राजके वर्णनमें नफ्स(=विज्ञान)के पांच भेद मिलते हैं—(१) प्राकृतिक विज्ञान[1] या भूतानुगत विज्ञान (२) अभ्यस्त विज्ञान[2], (३) जाता विज्ञान[3], (४) अधिकरण विज्ञान और (५) क्रिया विज्ञान।

मिस्टर और अरब लेखक प्राकृतिक-विज्ञान और अधिकरण विज्ञानको एक समझते हैं किन्तु राजे कभी-कभी प्राकृतिक-विज्ञानको क्रिया विज्ञान आत्माके अर्थमें लेता है और उसे अनादि अनुत्पन्न मानता है, और वहां उसे भिन्न मानता है। इमासियुस् अभ्यस्त विज्ञान और जाता विज्ञानको एक मानता है क्योंकि अक्ल(=विज्ञान)को अक्ल ही पैदा कर सकती है माद्दा (=प्रकृति) अक्ल (=विज्ञान)को नहीं पैदा कर सकता अतएव सारे ज्ञान रखनेवाली वस्तुएं सिर्फ क्रिया विज्ञानसे ही उत्पन्न हैं। इस बातको और पुष्टि करते हुए वह कहता है—यद्यपि सभी अक्ल(=नफ्स या विज्ञान) अक्ल-फआल (कर्ता विज्ञान)से उत्पन्न है, लेकिन जाननेकी शक्ति हर व्यक्तिमें उसकी अभ्यासमें प्राप्त ज्ञान-योग्यताके अनुसार होती है, इस लिए जाता विज्ञान और अभ्यस्त विज्ञानमें अन्तर नहीं रहा, अर्थात जाता विज्ञान भी वही है जो कि अभ्यास प्राप्त होता है। इमासियुसके इस मतके विरुद्ध राजे अभ्यस्त विज्ञानमें दोनों बातें मानता है—एक ओर उसे वह ईश्वर (=कर्ता विज्ञान) का कार्य बतलाता है और इस प्रकार उसे अनादि और अनश्वर मानता है और दूसरी ओर उसे आदमीके अभ्यासका परिणाम कहता है, जिससे वह उत्पन्न तथा नश्वर है।

---

[1]अक्ल हैवलानी। [2]अक्ल-मुस्तफाद। [3]अक्ल मुद्रिक। [4]अक्ले-फआल।

नाम अलग अलग रखते हुए भी अरस्तू तथा उसके दूसरे टीकाकारोंकी भाँति रोश्द वस्तुतः नफ्सा (=अक्ला, विज्ञाता) के भेदको न मानकर नफ्सकी एकताका स्वीकार करता है। वह कहता है—यह ठीक है कि चूंकि विज्ञान (=नफ्स) अनेक भिन्न भिन्न आकार प्रकारोंका स्वीकार करनेकी शक्ति रखता है, इसलिए जहाँ तक उसके अपने स्वरूपका संबंध है उसे आकार प्रकार से रहित होना चाहिए—अर्थात् अपने असली स्वरूपमें विज्ञान (=नफ्स) ज्ञान-योग्यताका नाम है। लेकिन यह कहनेका कोई अर्थ नहीं कि सिर्फ योग्यताके अस्तित्वका स्वीकार कर मनुष्यमें क्रिया विज्ञानके होनेसे इन्कार कर दिया जाय। और जब हम मनुष्यमें क्रिया विज्ञानको मानते हैं तो यह भी मानना पड़ेगा, कि विज्ञान[1] अपने स्वरूपमें किसी विशेष आकार प्रकार के साथ मूर्तिमान् हो गया—'क्रिया सिर्फ (अ प्रकट, अन्तर्हित) योग्यताके प्रकाशका नाम है", वह किसी विशेष आकार-प्रकारके साथ मूर्तिमान् होनेका नाम नहीं है। अतएव यह कहनेके लिए कोई कारण नहीं मालूम होता, कि आध्यात्मिक या (आन्तरिक) संभवनीयता या योग्यताको तो स्वीकार किया जाये, किन्तु बाह्य क्रियावत्ता या प्रकाशको स्वीकार न किया जाय। ऐसी अवस्थामें, ज्ञान या प्रतीतिका अर्थ सिर्फ ज्ञान योग्यता नहीं, बल्कि ज्ञान घटना है। जबतक आध्यात्मिक या अधिकरण-संबंधी और बाह्य या क्रिया-संबंधी विज्ञानोंके पारस्परिक प्रभाव—अर्थात् शक्तिमत्ता और क्रियावत्ता—एकत्रित न होंगे तबतक ज्ञान अस्तित्वमें आ नहीं सकता। यह ठीक है, कि अधिकरण विज्ञान में अनेकता या बहुसंख्यकता है, और वह मानव शरीरकी भाँति नश्वर है, तथा क्रिया विज्ञान अपने उद्गमके ख्यालसे मनुष्यसे अलग और अनश्वर है।

दोनों (क्रिया और अधिकरण) विज्ञानोंमें उपरोक्त भेद रहते भी दोनोंका एकत्रित होनेका न तो यह अर्थ है, कि क्रिया विज्ञान व्यक्तियोंकी अनेकताके कारण अनेक हो जाये, और न इसका यह अर्थ है कि व्यक्तियोंकी

---

[1] Nous (नफ्स), अक्ल। [2] अक्ल-इ-फअ्आली।

अनवता खतम हो जाय, और वह क्रिया विज्ञानकी एकतामें विलीन हो जायें। इसका अर्थ सिर्फ यही है, कि क्रिया विज्ञानके (अनादि सनातन) अंशमें मानवता बाँट दी गई है—अर्थात क्रिया और अधिकरण विज्ञानोंके एकत्रित होनेका सिर्फ यह अर्थ है कि मनुष्यके मस्तिष्ककी बनावट जिस तरह एक-सी योग्यताओंका प्रदर्शिका है उसमें मानवजातिका क्रिया विज्ञानके अंशोंका मिश्रण होता रहता है। ये अंश अपने स्वरूपमें अ-नश्वर और चिरस्थायी हैं। इनका अस्तित्व मानव व्यक्तियोंके साथ बँधा नहीं है। बल्कि, यदि कभी मानव-व्यक्तिका अस्तित्व न रह जाय, उस अवस्थामें भी इनका काम इसी तरह जारी रहता है जिस तरह मानव व्यक्तियोंके भीतर। इस असंभव कल्पनाकी भी आवश्यकता नहीं। सारा विश्व परम विज्ञान[1]के प्रकाशमान कणोंसे प्रकाशित है। प्राणी, वनस्पति, धातु और भूमिके भीतर-बाहरके भाग—सभी जगह इसी परम विज्ञानका शासन चल रहा है। परम विज्ञान जैसे इन सब जगहोंमें प्रकाशमान है, वैसे ही मनुष्यमें भी क्योंकि मनुष्य भी उसी प्रकाशमान विश्वका एक अंश है। जिस तरह मानवता सारे मनुष्योंमें एक ही है, उसी तरह सारे मनुष्योंमें एक विज्ञान भी पाया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि व्यक्ति-संख्या भेदसे शून्य तथा विश्व शासक परम विज्ञान जब क्रियापनका वस्त्र पहनता है तो भिन्न भिन्न किस्मोंमें प्रकाशित होता है—कहीं वह प्राणीमें प्रकाशित होता है कभी वनस्पतियोंमें[2] और कहीं मनुष्यमें, इसीलिए व्यक्ति स्वरूप नश्वर है किन्तु मानवता विज्ञान[3] चिरन्तन तथा अनश्वर है, क्योंकि वह उस विज्ञानका एक अंश है।

उपरोक्त कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि क्रिया विज्ञान और मानवता विज्ञान दोनोंके अनादि स्रोतपर मानवता कभी नष्ट न होगी—मानवमें ज्ञान (=साइन्स साइंस आदि)का प्रवाह सदा होता रहेगा।

(ङ) सभी विज्ञानोंका परमविज्ञानमें समागम—रोशनके कह

---

[1] अक्ल-मुत्लक़। [2] अफ़लाक। [3] नफ़से इन्सानियत।

पाँच विज्ञानोंका[1] नाम हम बता चुके हैं। रोश्द उनका नामोल्लेख करते हुए कहता है कि (१) प्राकृतिक विज्ञानका[2] अस्तित्व मनुष्यके पैदा होनेके साथ होता है, उस वक्त यह सिर्फ ज्ञानेन्द्रियोंका योग्यता या सम्भावनाके रूपमें रहता है। आयुके बढ़नेके साथ (अन्तर्हित) योग्यता क्रियाका रूप लेती है, और इस विकासका अन्त (२) अभ्यस्त विज्ञानका[3] प्राप्तिमें होता है जो कि मानव जीवनकी चरम सीमा है। लेकिन अभ्यस्त विज्ञान विज्ञानका चरम-स्थान नहीं है। हाँ, प्रकृतिसे लिए रहा उसका जो विकास हो सकता है, उसका चरम विकास यह मानव है। उसके आगे प्राकृतिक जगतसे ऊपर उठना यह शुद्ध विज्ञान जगतकी ओर बढ़ना है जितना यह विज्ञान जगतके करीब पहुँचता जाता है, उतना ही उसका विज्ञान जगतमें समाविष्ट होता जाता है। इस अवस्थामें पहुँचकर विज्ञान हर प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान स्वयं प्राप्त कर लेता है। अर्थात् ज्ञाता विज्ञानकी[4] अवस्थामें पहुँच जाता है। यही वह अवस्था है, जहाँ मन्तुमके भेद उठ जाते हैं, और मनुष्य कर्त्ता विज्ञान (=ईश्वर)का पद प्राप्त कर लेता है। चूँकि कर्त्ता विज्ञानके अन्दर सब तरहकी वस्तुएँ मौजूद हैं, इसलिए मनुष्य भी मूर्त्तिमान् "सब सच्चिद ब्रह्म"[5] बन जाता है।

[कर्त्ता (परम) विज्ञान ही सब कुछ]—अरस्तू कहता है— ज्ञान ही विज्ञानका स्वरूप है, और ज्ञान भी मामूली इन्द्रिय-विषयोंका नहीं बल्कि सनातन गुण रखनेवाली चीजों—विज्ञानमय (=विज्ञान-जगत)—का। तब स्पष्ट है कि नफ्सोंका नफ्स (=विज्ञानोंका विज्ञान) अर्थात कर्त्ता विज्ञान (ईश्वर)का स्वरूप जानने सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। ईश्वरमें जीवन है और उसका जीवन केवल ज्ञान क्रिया होनेका नाम है। कर्त्ता-विज्ञान सनातन शिव और केवल मंगल (-मय) है, और ज्ञानसे बढ़कर कोई शिवता (=अच्छाई) नहीं हो सकती। ("नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह

---

[1] अक्ल। [2] अक्ल हेवलानी। [3] अक्ल-मुस्तफाद। [4] अक्ले-मुद्रिक। [5] अक्ल-फआल। [5] "हमा-ओ स्त" (सब वह है)।

विद्यते) अतः ईश्वर इस शिवताका स्रोत है। किन्तु उसके ज्ञानमें विज्ञाता और विज्ञेयका भेद नहीं क्योंकि वहाँ उसके स्वरूपके सिवा और कोई चीज मौजूद भी नहीं है और है भी तो उसके अन्दर। अतएव वह (=कर्त्ता विज्ञान ईश्वर) यदि अपनेसे भिन्न चीजका ज्ञान भी करे, तो भी अपने स्वरूपके ज्ञानके सिवा और हो नहीं सकता। इस तरह वह स्वयं ही ज्ञाता और ज्ञेय होता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि उसका ज्ञान, ज्ञानके ज्ञानका नाम है क्योंकि उस अवस्थामें ज्ञान ज्ञेय और ज्ञातामें कोई भी भेद नहीं है—जो ज्ञान है वही ज्ञाता है, जो ज्ञाता है वही ज्ञेय है, और इसके अतिरिक्त सारी चीज नास्ति है।[1]

सादि आचारशास्त्रके संक्षेपमें फिर अपने विज्ञानाद्वैतवादपर लिखता है[2]—

'ज्ञान—प्रतीति—के अतिरिक्त और जितनी शिवताएँ (=अच्छाइयाँ) हैं, उनमेंसे कोई भी स्वतः वाञ्छनीय नहीं होती, और न किसीसे आयुमें वृद्धि होती है। वह सबकी सब नश्वर है किंतु यह शिवता (ज्ञान) अनश्वर है सबकी सब दूसरोंकी वाञ्छा पूरी करती हैं किंतु यह (ज्ञान) स्वयं अपनी वाञ्छा है उसका छोड़ किसी वाञ्छाका अस्तित्व नहीं। लेकिन मुश्किल यह है, कि ज्ञानका उच्चतम पद मनुष्यकी पहुँचसे बाहर है—मनुष्य सिरसे पैरतक भौतिकतासे घिरा हुआ है वह मानवताकी चहारदीवारीके भीतर रहते उन पदों तक किसी तरह पहुँच नहीं सकता। हाँ उसके भीतर ईश्वर (=कर्त्ता विज्ञान)की ज्योति जग रही है यदि वह उसकी ओर बढ़नेकी कोशिश करे—मानवताकी पोशाक (=आवरण)को उतारकर—अपने अपनेपन (=मपन)को नष्ट कर दे तो निस्सन्देह केवल शिवकी प्राप्ति उसे हो सकती है। लोग कहते हैं कि मनुष्यको मनुष्यकी तरह जीवन-यापन करना चाहिए, चूँकि वह स्वयं भौतिक है, इसलिए भौतिकतासे ही उसे नाता रखना

---

[1] "मावाद-तबइयात", पृष्ठ २५५

[2] "तल्खीस किताबे-अख़लाक", पृष्ठ २९६

चाहिए। लेकिन यह ठीक नहीं है। हर जातिका शिवता (=अच्छाई) सिर्फ उसी चीजमें होती है, जिसमें उसके आतदम वृद्धि होती हो, और जो उसके अनुकूल हो। अतएव मनुष्यकी शिवता यह नहीं है कि वह कीड़ा-मकोड़ोंकी तरह (प्रवाहमें) बह जाय। उसके भीतर तो ईश्वरकी ज्योति जगमगा रही है, वह उसकी ओर क्या न ख्याल करे और ईश्वरसे वास्तविक समागम क्या न प्राप्त करे—यही तो वास्तविक शिवता[1] और उसका अमर जीवन है। "उस पदकी क्या प्रशंसा की जाय? वह आश्चर्यमय पद है, जहाँपर पहुँचकर बुद्धि आत्मविभोर हो जाती है, लेखनी आनन्दातिरेकमें रुक जाती है, जिह्वा स्खलित होने लगती है और शब्द अर्थोंके पर्दोंमें छिप जाते हैं। जबान उसके स्वरूपको किस तरह कहे और लेखनी चलना चाहे तो भी किस तरह चले?[2]

(च) परमविज्ञानकी प्राप्तिका उपाय—यद्यपि ऊपरके उद्धरण-की भाषा और कुछ-कुछ आशयसे भी—आदमीको भ्रम हो सकता है, कि राश्द सूफीवादके योग ध्यानको कर्त्ता विज्ञान (=ईश्वर)के समागमके लिए जरूरी समझता होगा, किन्तु ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि उसका परमविज्ञान समागम ज्ञानकी प्राप्तिपर है। इस्लामिक दार्शनिकोंमें राश्द सबसे ज्यादा सूफीवादका विरोधी है। वह योग ध्यान, ब्रह्मलीनता को बिलकुल झूठी बात कहता है। मनुष्यकी शिवता उसी योग्यताको विकसित करनेमें है, जिसे लेकर वह पैदा हुआ, और वह है ज्ञानकी योग्यता। आदमीको उसी वक्त शिवता प्राप्त होती है जब वह इस योग्यताको उन्नत कर पदार्थोंकी वास्तविकताके तह तक पहुँच जाता है। सूफियोंका आचार उपदेश बिल्कुल असत्य और बेकार है। मनुष्यके पैदा होनेका प्रयोजन यह है, कि इन्द्रिय जगत्पर विज्ञान-जगत्का रंग चढ़ाये। बस इसी एक उद्देश्यके प्राप्त हो जानेपर मनुष्यको स्वर्ग मिल जाता है, चाहे उसका कोई भी मजहब क्यों न हो। 'दार्शनिकोंका असली मजहब है

---

[1] सआदत्। [2] फना फिल्लाही।

विचार अतिशयता अभ्यास, क्योंकि इन्हींका सर्वश्रेष्ठ उपाय [illegible] कि उसकी शक्ति—कार्यशक्ति—का आत्मिक ज्ञान प्राप्त किया जाय यह ईश्वरके परिचय करने जैसा है। यही एक धर्म है, बिना ईश्वर गुप्त होता है। सच्चा बुरा धर्म वे करते हैं, जो कि ईश्वरकी अत्यन्त ही श्रेष्ठ उपासना करनेवालेको कोटिमें रहते तथा परमात्मा करते हैं।[1]

(छ) मनुष्य परिस्थितिका दास—मनुष्य काम करनेमें स्वतन्त्र है या परतन्त्र दूसरे विद्वान् ने दार्शनिकोंकी भाँति [illegible] ने इस प्रश्नपर कलम उठाई है। इसपर कुछ कहना पहिले समझना जरूरी है, क्योंकि कर्म करनेमें पहिले संकल्प होता है। अथवा संकल्प स्वयं ही एक कर्म—मानसकर्म— है।

(अ) संकल्प—संकल्पके कारण [illegible]—संकल्प मनुष्यकी एक आत्मिक (=मानसिक) अवस्था है जिसका उद्देश्य यह है कि मनुष्य कार्य करे। संकल्प मनुष्यके [illegible] उसके भीतरका [illegible] होती यदि उसकी उत्पत्ति बिना [illegible] कारणोंपर निर्भर है। यही नहीं कि इन कारणोंसे हमारे संकल्पमें दृढ़ता पैदा होती है, बल्कि हमारे संकल्पकी कायमी और सामान्य [illegible] कारणोंपर निर्भर है। संकल्प राग या द्वेष इन [illegible] मानसिक अवस्थाओंका है जो कि बाहर किसी लाभदायक या हानिकारक वस्तुके अस्तित्व या ख्यालसे हमारे भीतर पैदा होती है। इससे यह स्पष्ट है कि एक हद तक संकल्पका अस्तित्व बाहरी कारणों ही पर निर्भर है—जब कोई सुन्दर वस्तु हमारी आँखके सामने आती है, अवश्य ही हमारा आकर्षण उसकी ओर होता है, जब कोई असुन्दर या भयावह वस्तुपर हमारी निगाह पड़ती है, तो उससे विराग होता है। मानो इसी राग-द्वेष या आकर्षण विराग वाली अवस्थाका नाम संकल्प है। जब तक हमारे मनको उकसानेवाली कोई बात सामने नहीं आती उस वक्त तक संकल्प भी अस्तित्वमें नहीं आता, यह स्पष्ट है।

---

[1] History of Philosophy (G L Lewis) Vol I

(b) सकल्पोत्पादक बाहरी कारण—(१) बाहरी कारण सकल्प के उत्पादक होते है, यह तो बतलाया, किन्तु यह भी ख्याल रखना है कि इन बाहरी कारणोंका अस्तित्व भी क्रम रहित—व्यवस्था शून्य—नहीं होता, बल्कि ये स्वय बाहरवाले अपने कारणोंके आधीन होते है। इस प्रकार हमारे भीतर सकल्पका आना क्रम शून्य तथा बे-समय नही होता बल्कि (२) कारणोंके क्रम (=परम्परा)की भाति सकल्पोंकी भी एक क्रमबद्ध शृखला होती है। जिसकी प्रत्येक कडी कारणोंकी शृखलाकी भाति बाहरी कडीसे मिली होती है। इसके अतिरिक्त (३) स्वय हमारी शारीरिक व्यवस्था—जिसपर कि बहुत हद तक हमारे सकल्प निर्भर करते है—भी एक खास व्यवस्थाके आधीन है। ये तीनो कार्य-कारण शृखलामें एक दूसरेसे जकडी हुई है। इन तीनो शृखलाओंके सभी अग या कडियाँ मनुष्यकी अक्लकी पहुँचसे बाहर है। हमारे शरीरकी व्यवस्थामें जो परिवर्तन होते है, वे सभी हमारे ज्ञान या अधिकारसे बाहर है। इसी तरह बाहरी जगत्की जो क्रियाए या प्रभाव हमारे मानसिक जीवनपर काम करते है, वह असख्य होनेके अतिरिक्त हमारे ज्ञान या अधिकारसे बाहर रहते, हमपर काम करते है। इस तरह इन बाहरी क्रियाओं या प्रभावोंमेंसे अधिकाशको सचित करना क्या उनका ज्ञान प्राप्त करना भी मनुष्यकी शक्तिसे बाहरकी बात है। यही वजह है कि मनुष्य परिस्थितिके सामने लाचार और बेबस है। वह चाहता कुछ है और होता कुछ है।

(४) सामाजिक विचार—हम देख चुके है, कि रोश्द जहाँ विज्ञान (=नफ्स)को लेता है तो ज्ञानकी हलकीसी चिनगारीको भी परम विज्ञानमें आई बतलाकर सबको विज्ञानमय बतलाता है। साथ ही प्रकृति (=भूत) से न वह इन्कार करता है, और न उसे विज्ञानका विकार या माया बतलाता है बल्कि परिस्थितिवादमें तो विज्ञान-ज्योतिसे युक्त मानवको वह जिस प्रकार प्रकृतिसे लाचार बतलाता है उससे तो अपने क्षेत्रमें प्रकृति उसके लिए विज्ञानसे कम स्वतत्र नही है। इन्हीं दो तरहके विचारोंको लेकर उसके समर्थकोंका विज्ञानवादी और भौतिकवादी दो दलोंमें

बँट जाना बिल्कुल स्वाभाविक था। यदि रोश्दको विज्ञानवाद भी पसन्द था तो इसमें तो शक नहीं कि वह गजाली आदिके सूफीवाद या शंकर आदिके अद्वैत-ब्रह्मवादकी तरहका नहीं था जिसमें जगत ब्रह्मसे कल्पित सिर्फ माया या अध्यास मात्र है। लेकिन रोश्दके सामाजिक विचारोंकी जो बानगी हम दे जा रहे हैं उससे जान पड़ता है कि भौतिकवाद और व्यवहारवादपर ही उसका जोर ज्यादा था।

(क) समाजका पक्षपाती—समाजके सामने व्यक्तिको रोश्द कितना कम महत्त्व देता था यह उसके इस विचारसे साफ हो जाता है—मानवजातिकी अवस्था वनस्पतिकी भाँति है। जिस तरह किसान हर साल बेकार तथा निष्फल वृक्षों और पौधोंको जड़से उखाड़ फेंकते हैं, और सिर्फ उन्हीं वृक्षोंको रहने देते हैं जिनसे फल लेनेकी आशा होती है, उसी तरह यह बहुत आवश्यक है कि बड़े-बड़े नगरोंकी जन-गणना कराई जाय और उन व्यक्तियोंका कतल कर दिया जाये जो बेकार जीवन बिताते हैं और कोई ऐसा पेशा या काम नहीं करते जिनसे जीवन-यापन हो सके। सफाई और स्वास्थ्य रक्षाके नियमानुसार नगरोंका बसाना सरकारका कर्त्तव्य है और यह तबतक संभव नहीं है जबतक कि काम करनेमें असमर्थ लूले लँगड़े और बेकार आदमियोंसे शहरोंको पाक न कर दिया जाय[1]।

रोश्दने अरस्तूके राजनीति शास्त्र के अभावमें अफलातूके प्रजातंत्र पर विवरण लिखा था और इस बारेमें अफलातूनके सिद्धान्तोंसे बहुत हद तक सहमत था। नगरको फजूलके आदमियोंसे पाक करना अफलातूनके दुर्बल बच्चोंको मरनेके लिए छोड़ देनेका अनुकरण है। स्वास्थ्य रक्षा, आनुवंशिकता और सन्तान नियंत्रण द्वारा, बिना कतल किये भी, अगली पीढ़ियोंको कितना बहुतर बनाया जा सकता है, इसे रोश्दने नहीं समझा। तो भी उस वक्तके ज्ञानकी अवस्थामें यह क्षम्य हो सकता है किन्तु उनके

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेना, २४७) अंसारी द्वारा उद्धृत, पृष्ठ २६२

लिए क्या कहा जाय, जो कि आज कल आमके द्वारा "हीन" जातियोंका संहार कर 'उच्च' जातिका विस्तार करना चाहते हैं।

रोश्द मूर्ख शासकों और धर्मान्ध मुल्लोंके सख्त खिलाफ था। मुल्लोंको वह विचार-स्वातंत्र्यका दुश्मन होनेसे मानवताका दुश्मन मानता था। अपने समयके शासकों और मुल्लाओंका उसे बड़ा तल्ख तजर्बा था, और हकीमकी (हस्तलिखित) चार लाख पुस्तकोंकी लाइब्रेरीकी होली उसे भूलनेवाली न थी। इस तरह दुनियामें अधर देखते हुए भी वह फाराबी या बाजाकी भांति वैयक्तिक जीवन या एकान्ततांका पक्षपाती न था। समाजमें उसका विश्वास था। वह कहता था कि वैयक्तिक जीवन न किसी कलाका निर्माण कर सकता है न विज्ञानका। वह ज्यादासे ज्यादा यही कर सकता है, कि समाजकी पहिलकी अर्जित निधिमें गुजारा कर और जहाँ-तहाँ नाममात्रका सुधार भी कर सके। समाजमें रहना तथा अपनी शक्तिके अनुसार सारे समाजकी भलाईके लिए कुछ करना हर एक आदमीका फर्ज होना चाहिए। इसीलिए वह स्त्रियोंकी स्वतंत्रता चाहता है। मजहबवालोंकी भाँति सदाचार नियमको वह 'आसमानसे टपका' नहीं मानता था, बल्कि उसे बुद्धिकी उपज समझता था न कि वैयक्तिक स्वार्थके लिए वैयक्तिक बुद्धिकी उपज। राष्ट्र या समाजकी भलाई उसके लिए सदाचारकी कसौटी थी। धर्मके महत्त्वको भी वह सामाजिक उपयोगिताके ख्यालसे स्वीकार करता था। आमतौरसे दर्शनसे भिन्न और उलटी राय रखनेके कारण धर्मकी असत्यतापर रोश्दका विश्वास था किन्तु अफ्लातूँके भिन्न-भिन्न धातुओंसे बने आदमियोंकी श्रेणियाँ होने का प्रोपेगंडा द्वारा हृदयांकित करनेकी भांति मजहबको भी वह प्रोपेगंडाकी मशीन समझता था, और उस मशीनको इस्तेमाल करनेमें उसे इन्कार नहीं था, यदि वह अपने आचार नियमों द्वारा समाजकी बेहतरी कर सके।

(ख) स्त्री-स्वतन्त्रतावादी—मुस्लिम शासकोंके यहाँ स्त्रियाँ मुह

---

[1] देखो "मानव-समाज" पृष्ठ १२०।

[illegible] घूमती थी और [illegible] मुहल्ले [illegible] थे, [illegible] इसका [illegible] न [illegible] कि वह [illegible] उस पार [illegible] [illegible] जा सकती है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि मुसलमान रानियों और राजकुमारियों [illegible] स्वातंत्र्य—जो कि वास्तविक स्वातंत्र्य है—नहीं अधिकारिणी थीं और फिर यह राज्य सिर्फ राजवंश तक सीमित था। [illegible] स्त्रियाँ स्वतंत्रता चाहती थीं [illegible] इसमें समाजका कल्याण समझती थीं। यह भी स्मरण रहना चाहिए, कि इस बातमें अफगानी भी इतना उदार नहीं था।

राज्यकी रायमें स्त्री और पुरुषकी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियोंमें कोई मौलिक भेद नहीं है भेद यदि कहीं मिलता तो वह कुछ कमी-बेशी का था। कला, विद्या, युद्ध-कौशलमें जिस तरह पुरुष दक्षता प्राप्त करते हैं, उसी तरह स्त्रियाँ भी प्राप्त कर सकती हैं पुरुषोंके कथन योग्य मिलाकर वह सेनापतिकी हर तरहसे सेवा कर सकती है। यही नहीं कितनी ही विद्याएँ—कलाएँ—तो स्त्रियोंके ही लिए प्रकृतिने आरंभ सुरक्षित है,—उदाहरणार्थ संतानकी व्यवस्था और चरम विकास सभी हो सकता है, जब कि स्त्रियाँ उसमें हस्तक्षेपक हैं। युद्धमें स्त्रियोंकी दक्षता कोई काल्पनिक बात नहीं है। अफगानी कितनी ही बहादुर स्त्रियोंकी रण चातुरीके बहुत अधिक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें स्त्रियाँ युद्ध-कलामें सिपाही और अफसरके कर्तव्यका बड़ा सफलतासे पूरा किया। इसी तरह इसके भी कितने ही उदाहरण हैं जब कि शासन-यंत्र स्त्रीके हाथमें रहा, और राज्य प्रबंध ठीकसे चलता रहा। स्त्रियोंके लिए स्थापित की गई आजकलकी व्यवस्था बहुत बुरी है इसके कारण स्त्रियोंको अवसर नहीं मिलता, कि वह अपनी योग्यताको दिखला सकें। आजकी व्यवस्थाने तो कर दिया है कि स्त्रियोंका कर्तव्य सिर्फ यही है, कि संतान बढ़ावें, और बच्चोंका पालन-पोषण करें। लेकिन इसीका परिणाम है, जो कि एक हद तक उनकी छिपी हुई स्वाभाविक शक्ति लुप्त होती चली जा रही है। यही वजह है कि हमारे देश (=स्पेन) में सभी स्त्रियाँ बहुत कम दिखलाई

पड़ती है, जो किसी बातमें भी समाजमें विशेष स्थान रखती हो। उनका जीवन वनस्पतियोंका जीवन है, खेतीकी भाँति वह अपने पतियोंकी सम्पत्ति है। हमारे देश(=स्पेन)में जो दरिद्रता दिन पर दिन बढ़ रही है, उसका भी कारण स्त्रियोंकी यही दुरवस्था है। चूंकि हमारे देशमें स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे अधिक है, और स्त्रियाँ अपने दिनोंका अधिकतर बेकार गुजारती हैं, इसलिए वह अपने श्रमसे परिवारकी सम्पत्तिको बढ़ानेकी जगह मर्दोंपर भार होकर जिन्दगी बसर करती है।

राश्दके ये विचार बतलाते हैं, कि क्यों वह युरोपीय समाजमें तूफान लाने तथा उसे एक नई दिशाकी ओर धक्का देनेमें सफल हुआ।

४–यहूदी दार्शनिक

क–इब्न-मैमून (११३५–१२०८ ई०)

यद्यपि इब्न-मसून मुसलमान घरमें नहीं, बल्कि इब्न जिब्रोलकी भाँति यहूदी घरमें पैदा हुआ था, तो भी इस्लामिक दर्शन या दार्शनिकोंसे हमारा अभिप्राय यहाँ पुरानी दर्शनसे नहीं है बल्कि ऐसी विचारधारासे है, जो अरबसे निकले उस क्षीण स्रोतमें दूसरी नई-पुरानी विचार धाराओंके मिलनेसे बनी। इसीलिए हमने जिब्रोल—जो कि स्पेनिश इस्लामिक दर्शनधाराका आरम्भ था—के बारेमें पहिले लिखा, और अब इब्न-मसूनके बारेमें लिखते हैं, जिसके साथ यह धारा प्रायः बिलकुल खतम हो जाती है।

(१) जीवनी—मूसा इब्न-मैमूनका जन्म स्पेनके शहर कार्दोवामें ११३५ ई० में हुआ था। बचपनसे ही वह बहुत तेज बुद्धि रखता था, और जब वह अभी बिलकुल तरुण था तभी उसने बाबुल और यरूशिलमकी तालमूदों[1]पर विवरण लिखे जिसकी वजहसे यहूदियोंमें उसका बहुत

---

[1] यहूदियोंके धर्म ग्रंथ जो बाइबलसे निचले दर्जेके समझे जाते हैं, और जिन्हें उनके धर्माचार्योंने यरूशिलम या बाबुलके प्रवासमें बनाया।

सम्मान होने लगा। मामूनने दर्शन लिखना पढ़ा, इसमें मतभेद है। कुछ लोग उसे रोशदका शिष्य कहते हैं, और वह अपने दार्शनिक विचारोंमें रोशदका अनुगामी था इसमें सन्देह नहीं है लेकिन वह स्वयं अपनी पुस्तक 'तहाफुत' में सिर्फ इतना ही लिखता है, कि उसने इस ग्रन्थके एक शिष्यसे दर्शन पढ़ा। मोहिदीनके प्रथम शासक अबुल्मामिन (११४७-६३ ई०) के शासनारम्भमें यहूदियोंकी जो बुरी अवस्था हुई थी उससे समय मामून मिश्र भाग गया। पीछे वह मिश्रके नये शासक तथा शीयोंके ध्वंसक सलाहुद्दीन अयूबीका राजवैद्य बना। मिश्रमें आनेपर उसे रोशदके ग्रन्थोंको पढ़नेका शौक हुआ। ११८१ ई० में वह अपने योग्य शिष्य यूसुफ इब्न-यह्याको लिखता है— मैं अरस्तूपर लिखी इब्न रोशदकी सारी व्याख्याओंको एकत्रित कर चुका हूँ सिर्फ 'हिस्स व महसूस' (=इन्द्रियके ज्ञान और ज्ञेय)की पुस्तक अभी नहीं मिली। वस्तुतः इब्न रोशदके विचार बहुत ही न्याय-सम्मत होते हैं इसलिए मुझे उसके विचार बहुत पसन्द हैं, किन्तु अफसोस है कि समयाभावसे मैं उसकी पुस्तकोंका अध्ययन नहीं कर सका हूँ।

मामूनने ही सबसे पहिले रोशदके महत्त्वको समझा, और उसकी बदौलत यहूदी विद्वानोंने उसके दर्शनके अध्ययन-अध्यापनका काम ही अपने हाथमें नहीं लिया बल्कि उन्होंने इब्रानी और लातीनी अनुवादोंसे यूरोपकी अगली विचार धाराके बनानेका भारी काम किया।

मामूनका देहान्त ६०५ हिजरी (=सन १२०८ ई०) में हुआ।

(२) **दार्शनिक विचार**—रोशदने जिस तरह दर्शनके बुद्धि प्रधान हथियारसे इस्लामके मजहबी वाद शास्त्रियोंकी खबर ली, मामूनने वही काम यहूदी वाद शास्त्रियोंके साथ किया। रोशदकी 'तहाफुत्-तहाफुत' (=खंडन-खंडन)की भाँति ही उसकी पुस्तक 'दलाला' ने यहूदी धर्मवादियों पर प्रहारका काम किया। यहूदियोंके कितने ही सिद्धान्त इस्लामकी तरहके थे, और उनके खंडनमें मामूनने रोशदकी तरह ही मर्मभेदी लिखाई, बल्कि ईश्वरके बारेमें तो वह रोशदसे भी आगे गया और उसने कहा कि ईश्वरके बारेमें हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि वह "यह नहीं" है ऐसा

नहीं है"। यह बतलाना तो हमारी सामर्थ्यके बाहर है, कि उसमें अमुक अमुक गुण है, क्योंकि यदि हम ईश्वरके गुणोंको साफ तौरसे बतला सकें, तो वह संसारकी चीज जैसा हो जायगा। वह यहां तक कहता है, कि ईश्वरको 'असंग अद्वैत' (=वहदहू-लाशरीक) भी नहीं कह सकते, क्योंकि अद्वैत भी एक गुण है। यद्यपि मैमून "जगत्की अनादिता" को स्वयं नहीं मानता था, किन्तु ऐसा माननेवालको वह नास्तिक कहनेके लिए तैयार न था।

विज्ञान (=नफ्स)के सिद्धान्तमें मैमूनका रोश्दसे मतभेद था। वह मानता था, कि प्राकृतिक विज्ञान[1], अभ्यस्त विज्ञान[2]से ज्ञान प्राप्त करता है और अभ्यस्त विज्ञान कर्ता विज्ञान[3] (=ईश्वर)से। विद्या (=दर्शन)को वह भी रोश्दकी भाँति ही बहुत महत्त्व देता था—मनुष्यकी चरमोन्नति उसकी विद्यासंबंधी उन्नतिपर निर्भर है, और यही ईश्वरकी सच्ची उपासना है।[4] विद्याके द्वारा ही आदमी अपने जीवनको उन्नत कर सकता है, किन्तु, इस साधनका उपयोग सबके लिए आसान नहीं, इसलिए मूर्खों और अविद्वानोंकी शिक्षाके लिए ईश्वर पैगंबरोंको भेजता है।

ख—यूसुफ इब्न-यह्या (११९१ ई०)

जीवनी—यूसुफ इब्न-यह्या मराकोका रहनेवाला यहूदी था। यहूदियोंके निर्वासनके जमानेमें वह भी मिश्र चला आया, और मूसा इब्न मैमूनसे उसने दर्शनका अध्ययन किया। यूसुफ भी अपने गुरुकी भाँति ही रोश्दके दर्शनका बड़ा भक्त था। रोश्दके प्रति अपनी भक्तिको उसने एक पत्रमें प्रकट किया है, जिसे उसने अपने गुरु मैमूनको लिखा था—

"मैंने आपकी प्रिय पुत्री सुरयाको ब्याह-संदेश दिया। उसने

---

[1] अक्ल-माद्दी। [2] अक्ल-मुस्तफाद। [3] अक्ल-फअ्आल।

[4] मैमूनसे दो सदी पहिले ब्राह्मण नैयायिक उदयनाचार्य (९८४ ई०) ने भी "उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता" (कुसुमांजलि) कहा था।

तीन शर्तोंके साथ मुझ गरीबकी प्रार्थना स्वीकार की—(१) स्त्रीधन (=मेहर) तुरंत जगह मैं अपने दिलका उसके हाथ बेच डालूँ, (२) शपथ पूर्वक सच्चा प्रेम करनेकी प्रतिज्ञा करें (३) वह पाक्षी कुमारियोंकी तरह मुझे आलिंगन करना पसंद करे। मैंने विवाहके बाद तीनों शर्तें पूरी करनेकी उससे प्रार्थना की। बिना किसी उज्रके वह राजी हो गई। अब हम दोनों पारस्परिक प्रेमके आनन्द लूट रहे हैं। ब्याह दो गवाहोंकी उपस्थितिमें हुआ था एक स्वयं आप—मूसा इब्न मैमून—थे, और दूसरे थे इब्न रोश्द।'

सारे पत्रको यूसुफने आलंकारिक भाषामें लिखा है। सुल्या वस्तुतः मैमूनकी कोई औरस पुत्री नहीं थी बल्कि मैमून द्वारा प्रदत्त दर्शन विद्याको ही वह उसकी प्रिय पुत्री कह रहा है, और इस पाणिग्रहण के करनेमें रोश्दका भी हाथ वह स्वीकार करता है।

यूसुफ जब हलब (=अलप्पो सीरिया)में रहता था तो उसकी जमाल उद्दीन कुफ्तीसे बहुत दोस्ती थी। जमालुद्दीन लिखता है—'एक दिन मैंने यूसुफसे कहा—यदि यह सच है कि मरनेके बाद जीवको इस दुनियाकी खबर मिलती रहती है तो आओ हम दोनों प्रतिज्ञा करें कि हममेंसे जो कोई पहिले मरे वह स्वप्नमें आकर दूसरेसे मृत्युके बादकी हालतकी सूचना दे।

इसके थोड़े ही समय बाद यूसुफ मर गया। अब मुझको फिक्र पड़ी, कि यूसुफ स्वप्नमें आये और मुझे परलोककी बात बतलाये। प्रतीक्षा करते-करते दो वर्ष बीत गए। अन्तमें एक रात उसके दर्शनका सौभाग्य हुआ। मैंने देखा कि वह एक मस्जिदके आंगनमें बैठा हुआ है, उसकी पोशाक उजली है। उसे देखते ही मैंने पुरानी प्रतिज्ञाकी याद दिलाई। पहिले वह मुस्कराया और मेरी ओरसे उसने मुंहको दूसरी ओर फेर लिया। लेकिन मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी। लाचार हो कहने लगा—अवयवी (=पूर्ण ब्रह्म) अवयवमें समा गया और अवयव (=शरीर परमाणु) अवयव ही में रह गया।'[1]

---

[1] "अखबारुल-हुकमा कुफ्ती", पृष्ठ २५८

[illegible] और विश्वका ईश्वरके प्रतिनिधि सामन्तोंके [illegible] पुष्टि [illegible] था भी ईसाइयोंमें दूसरेके [illegible] (धर्म-युद्ध) [illegible] गया था। युद्ध [illegible] धर्म राजनीति और [illegible] तक [illegible] भी सामाजिक जीवनके अभिन्न अंग [illegible] इसलिए [illegible] जो युद्ध भी करता है उसके पीछे [illegible] धर्मको रंग करता है यह [illegible] माना जाता। इस्लाम [illegible] धर्मसे पैदा हुआ था किन्तु वह सामन्तशाही प्रभावसे [illegible] बल्कि बहुत हद तक प्रभावित था जहाँ तक उसके धर्मका संबंध था, हाँ प्रारंभमें आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे उसकी बहुत कुछ [illegible] थी। हर [illegible] ईश्वर धर्म तथा जातीयताके साथ इतना संबद्ध होता है कि उसे दूसरे [illegible] नहीं जा सकता है। इस्लाम इस बारेमें एक गैर-[illegible] धर्म था, उसका ईश्वर और धर्म सिर्फ कुरैशके बराबर ही नहीं सिर्फ अरब भाषा भाषी [illegible] हो गए थे बल्कि दुनियाके सभी लोगोंके लिए था। इस तरह धर्मके गैर [illegible] होने भी युद्धादि और राजनीतिमें उसने [illegible] का अनुसरण करता था। राज्य (=शासन)-नीतिमें किस तरह स्वाधिकार [illegible]—जिन [illegible] ही लोग जनतन्त्रका समर्थनकी भारी गलती करते हैं—का [illegible] दिया, इसका हम जिक्र कर चुके हैं। लेकिन युद्धनीतिमें [illegible] मतभेदको इस्लामने नहीं छोड़ा—जहाँ और माल गनीमत (=लूटका धन) का औचित्य उसने निश्चित [illegible]। अरब कबीले [illegible] सार्वजनिक नियमोंके अनुसार जिहाद और गनीमतको ठीक समझते थे, किन्तु इस्लाम जिस सामन्तशाही धर्मका प्रचार कर रहा था उसमें ज्यादा विशाल दृष्टिकी जरूरत थी जिसे कि ईसाई या बौद्ध जैसे दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय धर्मोंने स्वीकार किया था। इस्लामको [illegible] बनानेके लिए इतिहासने भी मजबूर किया था। पैगंबर मुहम्मद अपनी पैगंबरीके आरंभिक (मक्कावाले) वर्षोंमें इस्लामके लिए जो नीति स्वीकार की थी, वह बहुत कुछ ईसाइयत जैसी युक्ति और प्रेमके साथ धर्मको समझानेकी थी किन्तु जब कुरैशके जुल्मसे बचनेके लिए वह भागकर मदीना आये

और वहाँ भी वही खतरा ज्यादा जोरके साथ दिखलाई देने लगा, तो उन्हें तलवार उठानी पड़ी। हर तलवारके पीछे कोई नारा जरूर होना चाहिए, वहाँके लोग कबीलशाही नारेको ही समझते थे—जो कि जिहाद और माल गनीमतका नारा हो सकता था—पैगम्बरको भी वही नारा स्वीकार करना पड़ा। और जब एक बार इस नारेपर अल्लाहकी मुहर लग गई, तो हर दिल और कानमें उसे स्वीकार करनेसे कौन रोक सकता है? इस्लाम अरबसे बाहर गया, साथ ही इस 'जिहाद' (रक्षात्मक ही नहीं धन जमा करनेके लिए भी आक्रमणात्मक युद्ध)के नारेको भी लेता गया। इस्लामका नेतृत्व अरबी कबीलों तथा अरबी सामन्तोंके हाथसे निकलकर गैर अरब लोगोंके हाथमें चला गया तो भी उन्होंने इस नारेको अपने मतलबके लिए इस्तेमाल किया।

यह भी पीछे कहा जा चुका है कि इस्लामने एक छोटेसे कबीलेसे बढ़ते बढ़ते अनेक जाति-व्यापी 'विश्व कबीला" बनानेका आदर्श अपने सामने रखा था। कबीला होनेके लिए एक धर्म एक भाषा, एक जाति एक संस्कृति, एक देश (भौगोलिक स्थिति) होनेकी जरूरत है। इस्लामने इस स्थितिके पूरा करनेकी भी कोशिश की। आज मरोक्को, त्रिपोली, मिश्र, सीरिया, मेसोपोटामियामें (पहिले स्पेन और सिसलीमें भी) जो अरबी भाषा बोली जाती है, वह बहुत कुछ उसी एक भाषा बनानेका नतीजा है। अरबी भाषामें ही नमाज पढ़नेकी सुन्नी भी उसी मनोभावको बतलाती है। ईरान, शाम, तुर्किस्तान (मध्य एसिया) आदि देशोंकी जातीय संस्कृतियों तथा साहित्योंको एक ओरसे नेस्त-नाबूद करनेका प्रयत्न भी एक कबीला-स्थापनाका फल था। प्रारम्भिक अरब मुस्लिम विजेता बड़ी ईमानदारीके साथ इस्लामके इस आदर्शको पूरा करना चाहते थे। उनको क्या मालूम था, कि जिस कामको वह करना चाहते हैं, उसमें उनका मुकाबिला वर्तमान पीढ़ीकी कुछ जातियाँ ही नहीं कर रही हैं बल्कि उनकी पीठपर प्रकृति भी है, जो सामन्तवादी जगतको कबीलाशाही जगत्में बदल देनेके लिए इजाजत नहीं दे सकती। आखिर भयंकर नरसंहार और कुर्बानियोंके बाद भी एक कबीला (=जन) नहीं बन सका।

हाँ सामन्तशाही युगके निवासियोंके लिए 'जहाद' का नारा अजब-सा लगा। वे लोग लड़ाइयाँ न लड़ते हों यह बात नहीं थी, किन्तु वह लड़ाइयाँ राजाओंके नेतृत्वमें राजनीतिक लाभके लिए होती थीं। उनमें ईश्वरकी सहायता या वरदान भी माँगा जाता था, लेकिन लड़नेवाले दोनों फरीक दिलसे समझते थे, कि ईश्वर इसमें तटस्थ है। जो धार्मिक थे वह यह भी मानते थे कि जिधर न्याय है ईश्वर उधर ही पलड़ा भारी करना चाहता। यह समझना उनके लिए मुश्किल था कि वह जो लड़ाई लड़ रहे हैं वह ईश्वरकी लड़ाई है। इस्लामिक जहादियोंने जिस तरह अपने झंडेको दूर-दूर तक गाड़नेमें सफलता पाई, इसका यहाँ कहनेकी जरूरत नहीं। यहाँ हमें सिर्फ इतना बतलाना है कि इस्लामी जहादके मुकाबिलमें यूरोपकी जातियोंको भी उसीकी नकलपर ईसाई जहाद (=सलीबी जंग)[1] लड़ने पड़े। ये ईसाई जहादसे भी कितने अधिक भयंकर थे, यह इसीसे पता लगता है, कि जहाँ मुस्लिम स्पेनमें कितने ही स्पेनिश ईसाई परिवार बँच गये थे वहाँ ईसाई स्पेनमें कोई भी पहिलेका मुसलमान नहीं रह गया।

इस्लामके इस युगके एक दार्शनिकका हम यहाँ जिक्र करते हैं।

(१) जीवनी—इब्न-खल्दूनका जन्म १३३२ ई०में उत्तरी अफ्रीकाके तूनिस नगरमें हुआ था। उसका परिवार पहिले सेविली (स्पेन)का रहनेवाला था। इस प्रकार हम उसे प्रवासी स्पेनिश मुसलमान कह सकते हैं। तूनिसमें ही उसने शिक्षा पाई। उसका दर्शनाध्यापक एक ऐसा व्यक्ति था जिसने पूर्वमें भी शिक्षा पाई थी, और इस प्रकार उसके शिष्यको सेविली, तूनिस और पूर्वकी शिक्षाओंसे लाभ उठानेका मौका मिला।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद खल्दून कभी किसी दरबारमें नौकरी करता और कभी देशाटन सैर करता रहा। वह कितनी ही बार भिन्न भिन्न सुल्तानोंकी ओरसे अफ्रीका और स्पेनमें राजदूत भी रहा। राजदूत बनकर

---

[1] Crusade

कुछ समय वह 'क्रूर पीटरके दरबारमें सेविलामें भी रहा। उस वक्त पूर्वजोंकी जन्मनगरी इस्लामिक स्पेनके गौरव—सेविली—को उस तरह ईसाइयोंके हाथमें देखकर उसके दिलपर कैसा असर हुआ होगा, उसकी वजहसे उसके दिमागको जो सोचना पड़ा था, उसी सोचनेका फल हम उसके इतिहास-दर्शनमें पाते हैं। तैमूरका शासन उस वक्त मध्य एसियासे भूमध्य-सागरके पूर्वी तट तक था और दमिश्क भी उसकी एक राजधानी थी। खल्दून दमिश्कमें तैमूर (मंगोल, थि-मुर=लोहा)के दर्बारमें राजदूत बनकर भी कितने ही समय तक रहा था। १४०६ ई० में काहिरा (मिश्र)में खल्दूनका देहान्त हुआ।

(२) दार्शनिक विचार (क) प्रयोगवाद—इस्लामिक दर्शनके इतिहासके बारमें हमने अबतक देखा है, कि अश्अरीकी तरह कुछ लोग तो दर्शन या तर्कका इस्तेमाल करके सिर्फ यही साबित करना चाहते थे कि दर्शन गलत है, बुद्धि, ज्ञान प्राप्तिके लिए टूटी नैया है। गज़ालीकी भांति कुछका कहना था कि दर्शनकी नैया कुछ ही दूर तक हमारा साथ दे सकती है, उसके आगे योग ध्यान ही हमें पहुँचा सकता है। सीना और रोश्द जैसे इन दोनों तरीकोंको झूठ और बेकार कह कर बुद्धिको अपना सारथी बना दर्शनको ही एक मात्र पथ मानते थे। खल्दून, सीना और रोश्दके करीब जरूर था, किन्तु उसने जगत् और उसकी वस्तुओंको बहुत बारीकीसे देखा था, और उस बारीक दृष्टिने उसे वस्तु-जगतके बारमें विश्वास दिला दिया था, कि सत्य तक पहुँचनेके लिए यहाँ तुम्हें बहुतर साधन मिलेंगे। उसका कहना था—दार्शनिक समझते हैं कि वह सब कुछ जानते हैं, किंतु विश्व इतना महान् है, कि उस सारेको समझना दार्शनिककी शक्तिसे बाहर है। विश्वमें इतनी हस्तियाँ और वस्तुएं हैं वह इतनी अनगिनित हैं, जिनका जानना मनुष्यके लिए कभी संभव न होगा। तर्कसे जिस निष्कर्षपर हम पहुँचते हैं, वह कितनी ही बार व्यवहार या प्रयोग—वस्तुस्थिति—से मेल नहीं खाता। इससे साफ है, कि केवल तर्कके उपयोगसे सत्य तक पहुँचनेकी आशा दुराशा मात्र है। इसलिए साइन्सवेत्ताका काम है प्रयोगसे प्राप्त अनुभवके सहारे

सत्य [illegible] प्रयोग करें। और [illegible] भी उस लिए अपने प्रयोग, अनुभव और निरीक्षण पर गंभीर नहीं करना चाहिए बल्कि पीढ़ियों [illegible] जातियों [illegible] इस [illegible] भी [illegible] नहीं चाहिए। [illegible] प्रयोगों [illegible]—आदमी इस सिद्धान्तों किसी [illegible] तौरों [illegible] पुष्टि [illegible] इस [illegible] नहीं।

(ग) ज्ञान प्राप्तिका उपाय तर्क नहीं—सन्दूर जीवनी [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] यह भी कि उसमें यह शक्ति [illegible] है, वह अपने [illegible] मनन और व्याख्या कर सकता है। जिस वक्त वह इस तरह मननमें लगा रहता है उसी वक्त [illegible] विचार [illegible] बिजलीकी तरह [illegible] उठता है और हम अन्तर्दृष्टि—[illegible]—[illegible]—[illegible] जाते हैं। इस प्रकार [illegible] अन्तर्दृष्टिको [illegible] भाषा (प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण आदि)में [illegible] किया जा सकता है। इसमें यह [illegible] है कि तर्क [illegible] उत्पन्न नहीं करता वह सिर्फ उस [illegible] प्रकट करता है जिसे हमें मालूम करने [illegible] पड़ना चाहिए था वह बतलाता है कि [illegible] हम [illegible] पहुँचा है। तर्कका एक फायदा यह भी है कि वह हमें हमारी भूल बतलाता है [illegible] सीधा करता और उन ठीक तौरसे सोचनेमें सहायक होता है।

सन्दूर [illegible] युद्धमें प्रयोगको प्रधान और तर्कको सहायक मानता है फिर उसने इस बातका [illegible] था कि वह कामिया और [illegible] ज्योतिषके मिथ्या विश्वासमें मुक्त [illegible]।

(ग) इतिहास साइंस—सन्दूरका सबसे महत्त्वपूर्ण विचार है, इतिहासका [illegible] भीतर घुसकर उसके मौलिक नियमों—इतिहास-दर्शन या इतिहास-साइंस—को पकड़ना। सन्दूरने मनो इतिहासको साइंस या दर्शनका एक भाग कहना चाहिए। इतिहासकारका काम है घटनाओंका संग्रह करना और उनमें कार्य कारण सम्बन्धको ढूँढना। इन कामको गंभीर आलोचनात्मक दृष्टिके साथ बिल्कुल निष्पक्षपाती होकर करना चाहिए। हर समय हमें इस सिद्धान्तको सामने रखना चाहिए कि कारण जैसा कार्य

(अ-स्थाया-वास घुमन्तू), स्थायी-वास पशुपालक और कृषिजीवी। आहारकी माँग युद्ध लूट और संघर्ष पैदा करती है और मनुष्य ऐसे एक राजाकी अधीनताको स्वीकार करते हैं, जो कि वहाँ उनका नेतृत्व करे। वह सैनिक नेता अपना राजवंश स्थापित करता है, जिसके लिए नगर—राजधानी—की जरूरत पड़ती है। नगरमें श्रम विभाग और पारस्परिक सहयोग स्थापित होता है, जिससे वह अधिक सम्पत्तिमान् तथा समृद्ध होता है। किन्तु यही समृद्धि नागरिकोंको विलासिता और निठल्लेपनमें गिराती है। श्रमने सभ्यताको प्रथमावस्थामें सम्पत्ति और समृद्धि पैदा की किन्तु सभ्यताकी उच्चतम अवस्थामें मनुष्य दूसरे आदमियोंसे अपने लिए श्रम करवा सकता है, और अक्सर बदलेमें बिना कुछ दिये। आगे समाज और खासकर समृद्धिशाली वर्गकी आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं जिसके कारण बोझ और बढ़ता तथा असह्य होता जाता है। समृद्धिशाली धनी वर्गका एक ओर विलासिताके कारण फजूलखर्च होता है और दूसरी ओर उसपर बोझ बढ़ता है इस प्रकार वह अधिक और अधिक दरिद्र होता जाता है, साथ ही अस्वाभाविक जीवन बितानेके कारण उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गिरता जाता है। खल्दून स्वयं सेविला निवासिन इसी गिरे हुए वर्गमें पैदा हुआ था इसलिए वह सिर्फ इसी संस्कृत प्रभुवर्गकी दुरवस्थापर आँसू बहाता है, उसे अपने आसपासके दासों और कर्मियोंके पशुसे बदतर जीवनकी ओर नजर डालनेकी फुरसत न थी। नागरिक जीवन उसके पुराने सैनिक रीति रवाज अधिक सम्भ्रान्त रूप धारण कर अपनी उपयोगिता खो बैठते हैं, और लोग शत्रुके आक्रमणसे अपनी रक्षा नहीं कर सकते। एक समाज या एक धर्मसे सबद्ध होनेके कारण जो सामूहिक शक्ति और इरादा पहिले मौजूद था, वह जाता रहता है, और लोग ज्यादा स्वार्थी तथा अधार्मिक हो जाते हैं। भीतर ही भीतर सारा समाज खोखला बन जाता है उसी वक्त रेगिस्तानसे कोई प्रबल घुमक्कड़ या सभ्यतामें अधिक प्रगति न रखनेवाली किन्तु सामूहिक जीवनमें दृढ़ जंगली प्रायः जाति उठकर स्वर्ण नागरिकोंपर टूट पड़ती है। एक नया शासन कायम होता है और

शन शन विजयी जाति पुरानी सभ्यताकी भौतिक तथा बौद्धिक सम्पत्ति-का अपहारी है, और फिर वही इतिहास दुहराया जाता है। यह उतार-चढाव जैसे परिवारमें देखा जाता है, वैसे ही राजवंश या बड़े समाजमें भी पाया जाता है और तीनसे छः पीढ़ीमें उनका इतिहास समाप्त हो जाता है—पहिली पीढ़ी अधिकार स्थापित करती है, दूसरी पीढ़ी उसे कायम रखती है, और शायद तीसरी या कुछ और पीढ़ियाँ भी उसे सँभाल रहती हैं, और फिर अन्त आ पहुँचता है। यही सभी सभ्यताओंका जीवन चक्र है।

जर्मन विद्वान अगस्ट मूलरका कहना है खल्दूनका यह नियम ग्यारहवीसे पन्द्रहवी सदी तकके स्पेन मराको दक्षिणी अफ्रीका और सिसलीके इतिहासपर लागू होता है, और उन्हींके अध्ययनसे खल्दून इस निष्कर्षपर पहुँचा मालूम होता है।

खल्दून पहिला ऐतिहासिक है, जिसने इतिहासकी व्याख्या ईश्वर या प्राकृतिक उपद्रवोंके आधारपर न करके उसकी आन्तरिक भौतिक सामग्रीसे करनेका प्रयत्न किया, और उनके भीतर पाये जानेवाले नियमों—इतिहास दर्शन—तक पहुँचनेकी कोशिश की। खल्दून अपने ऐतिहासिक लेखोंमें इतिहासकी कारण शृंखला तक पहुँचनेके लिए जाति जलवायु आहार-उत्पादन आदि सभीकी स्थितिपर बारीकीसे विचार करता है, और फिर सभ्यताके जीवन प्रवाहमें वह अपने सिद्धान्तकी पुष्टि होते देखता है। हर जगह अप्राकृतिक नहीं प्राकृतिक, दैवी—लोकोत्तर—नहीं, लौकिक कारणोंको ढूढ़नेमें वह चरम सीमा तक जाता है। कारण शृंखलाका जहाँसे आगे पता नहीं लगता, वहाँ हमें चरम कारण या ईश्वरको स्वीकार करना पड़ता है। गोया खल्दून इस तरह इतिहासकी कारण शृंखलामें ईश्वरके लानेका मतलब अज्ञता स्वीकार करना समझता है। अपने अज्ञानसे आगाह होना भी एक प्रकारका ज्ञान है, किन्तु जहाँ तक हो सकता है, हमें ज्ञानको पानेकी कोशिश करनी चाहिए। खल्दून अपने कामके बारेमें समझता है कि उसने सिर्फ मुख्य मुख्य समस्याओंका संकेत किया है और इतिहास-साइंसकी

प्रक्रिया तथा विषयके बारमे सुझाव भर पेश किये है। लेकिन वह आशा करता है कि उसके बाद आनेवाले लोग इस ओर आगे बढायेंगे।

इब्न-खल्दूनकी आशा पूर्ण हुई, किन्तु इस्लामके भीतर नहीं वहाँ जैसे उसका (अपने विचारोंका) कोई पूर्वगामी नहीं था वैसे ही उसका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं मिला।[1]

---

[1] The Philosophy in Islam (by G T J De Boer), pp 200 208

अनुवादका दौर शुरू होता है। यूनानी दर्शन आधारपर अरबोंने जो दर्शन प्रणाली खड़ी किया था, वह उनका दुनियाके दर्शन अनुरागियोंके सामने रखा था और इसमें भाग लेनेवाले थे वे प्रवासी यहूदी। यहूदी लेखक इस्लामिक स्पेनमें रहे तथा अरबी उनकी मातृभाषा बनी हुई थी इसलिए अनुवादकी जरूरत न थी। किन्तु जब वह दूसरे देशोंमें चले गए और वहाँ अरबीकी जगह दूसरी भाषाको उन्हें द्वितीय भाषाके तौर पर अपनाना पड़ा तो अरबी भाषा (अरबी भाषा क्या अरबी लिपि) को भी द्वितीय भाषाके तौरपर जारी रखना उनके लिए मुश्किल था। स्थानीय भाषाएं उतनी उन्नत न थीं, इसलिए उन्होंने जहाँ अरबीकी पुस्तकों को इब्रानी लिपिमें उतार डाला, वहाँ उन्हें इब्रानीमें अनुवादित करना भी शुरू किया। इन अनुवादित ग्रन्थोंकी कृतियाँ बहुत ज्यादा थीं।

(१) प्रथम इब्रानी अनुवाद युग—इब्रानी अनुवादके कार्यका शुरू करनेवालोंमें इब्न-तबून सालेहका नाम होता है। ये लोग इस्लामिक स्पेनसे आकर प्रोवेन्स (उत्तरी स्पेन)में बस गये थे। इस सालेहका पुत्र पुरुष इब्न-तबून दर्शन, प्राणिशास्त्र और कीमियाका एक बड़ा पंडित था। इस सालेहका सबसे पहिला अनुवाद समुयल इब्न-तबून था, जिसने 'दार्शनिकोंके सिद्धान्त' के नामसे एक पुस्तक लिखा जो कि इब्न सालेहके ग्रन्थोंसे शब्दशः ली गई थी। इसी समय तलीदोला[1] (स्पेन)के एक यहूदी धर्माचार्य यहूदा बिन्-सलामान 'तिब्बुल् हिकमा' (१२७४ ई०) लिखा। यहूदा जर्मन राजा फ्रेडरिक द्वितीय (१२४० ई०) के दरबारमें अरबी ग्रन्थोंके अनुवादका काम करता था।

समुयेलके बाद मूसा बिन्-तबूनने 'भौतिक-शास्त्र'[2] की अधिकतर पुस्तकोंका इब्रानीमें अनुवाद किया। समुयलके समकालीन इब्न-यसुफ बिन फाखोरा (जन्म १२२६ ई०) तथा जसन बिन्-सुलमानने भी अनुवाद किये। जसन समुयेलका सबधी भी था, इसने इब्रानीमें बहुत ज्यादा अनुवाद किये।

---

[1] "आराउ'ल्-हुकमा"। [2] सूला ? [3] "तब्-इयात"।

फ्रडरिकके दरबारमें एक मशहूर यहूदी अनुवादक याकूब बिन्-मरियम् अबी शम्शून था, इसने फ्रडरिककी आज्ञा (१२३२ ई०)से रोश्दकी बहुतसी पुस्तकोंका अनुवाद किया, जिनमें निम्न मुख्य हैं—

तर्कशास्त्र (मन्तकियात)-व्याख्या (१२३२ ई० नपल्समें)
तर्क-संक्षेप (तल्खीस-मन्तिक)
तल्खीस-मुहस्सती (१२३१ नपल्समें)

इनके अतिरिक्त निम्न अनुवादकोंके कुछ अनुवाद इस प्रकार हैं—

सुलेमान बिन्-यूसुफ	मुक़ाला फि स-समाअ व आलम्	(१२५९ ई०)
जकरिया बिन् इस्हाक	भौतिक शास्त्र-टीका	(१२८४ ई०)
	अति भौतिक शास्त्र-टीका	(१२८४ ई०)
	देवात्मा-जगत-टीका	(१२८४ ई०)
याकूब बिन-मशीर	तर्क-संक्षेप	(१२९८ ई०)
	प्राणिशास्त्र	(१३०० ई०)

(२) द्वितीय इब्रानी अनुवाद-युग—चौदहवीं सदीसे इब्रानी अनुवादोंका दूसरा युग आरम्भ होता है। पहिले अनुवादकी भाषा उतनी मँजी हुई नहीं थी और न उसमें ग्रंथकारके भावोंका उतना ख्याल रखा गया था। ये अनुवाद गोया फारावीके पहिलेके अरबी अनुवादों जैसे थे, लेकिन नये अनुवाद भाषा भाव दोनोंकी दृष्टिसे बेहतर थे। इन अनुवादकोंमें सबसे पहिला है कालोनीम् बिन्-कालोनीम् बिन्-मीर[1] (जन्म १२८७ ई०) है। उसने निम्न पुस्तकोंके अनुवाद किये —

---

[1] समाअ-व आलम। [2] हवानात।

[3] यह लातीनी भी जानता था, इसने रोश्दके "खंडन-खंडन"का लातीनी भाषामें अनुवाद (१३२८ ई०) किया था।

[4] Topics Sophistics, the Second Analytics, Physics, Mytaphysics, De Coelo et Mundo, De Generatione et Corruptione Meteorology

तापिक (तर्क)	अरस्तू	१३१४ ई०
सोफिस्ता (तर्क)	'	"
अनालोतिक द्वितीय (तर्क)		"
भौतिक शास्त्र		१३१७
अतिभौतिक शास्त्र		
देवात्मा और जगत (भौतिक शास्त्र)		
कान-व फसाद (भौतिक शास्त्र)		
मुकाला फिल माइयात (भौतिक शास्त्र)		"

इसके अतिरिक्त निम्न अनुवादकों भी इस युगमें इब्रानी अनुवाद[1] किये—

अनुवादक	ग्रंथ	ग्रंथकर्ता	अनुवाद-काल
कालानीम बिन दाऊद	खंडन-खंडन	रोश्द	
अबी समुयल बिन-यह्या	आचार शास्त्र	अरस्तू	१३२१
	प्रजातंत्र-व्याख्या	रोश्द	"
थ्योदोर	तापिक	अरस्तू	१३३७
	खितावत	अरस्तू	'
	आचार शास्त्र	अरस्तू	

इसी तरीके निम्न अनुवादक और हुए जिन्होंने करीब सारे ही रोश्द दर्शनको इब्रानीमें कर डाला—

इब्न इस्हाक	यह्या बिन-याकूब
यह्या बिन-ममून	सुलमान बिन-मूसा अल-गोरी
मूसा बिन-तावूरा	
मूसा बिन-सुलमान	

---

[1] पुस्तक-नामोंके लिए देखो पृष्ठ ११५, २२१ २३ भी।
[2] तोहाफतु तोहाफत्"। [3] Rhetoric (=भाषण शास्त्र)

(क) ल्योन् अफ्रीकी—इसी चौदहवीं सदी हीम लावी बिन-जसन—जिसे ल्योन् अफ्रीकी भी कहते हैं—ने रोश्दके दर्शनके अध्ययनाध्यापनके सुभीतेके लिए वही काम किया है, जो कि रोश्दने अरस्तूके लिए किया था। ल्योन्ने रोश्दके ग्रंथोंकी व्याख्याएं और संक्षेप लिखे। उनका एक समय इतना प्रचार हुआ था कि लोग रोश्दके ग्रंथोंको भी भूल गए। ल्योन् भूत(=प्रकृति)को अनुत्पन्न नित्य पदार्थ मानता था। वह पैगम्बरीको मानवी शक्तियोंका ही एक भेद समझता था।

ल्योन् अफ्रीकीके ग्रंथोंने यहूदी विद्वानोंमें रोश्दका इतना प्रचार बढ़ाया कि अरस्तूकी पुस्तकोंको कोई पढ़ना न चाहता था। इसी कालमें मूसा नारबोनीन भी रोश्दकी बहुतसी व्याख्याएं और संक्षेप लिखी।

(ख) अहरन् बिन्-इलियास्—अब तक यहूदियोंमें मजहबी लोग दर्शनसे दूर-दूर रहा करते थे, और वह सिर्फ स्वतंत्र विचार रखनेवाले धर्मोपदेशकोंकी चीज समझा जाता था, किंतु चौदहवीं सदीके अंतमें एक प्रसिद्ध यहूदी दार्शनिक अहरन बिन इलियास पैदा हुआ। इसने 'जीवन-वृक्ष'[1] के नामसे एक पुस्तक लिखी जिसमें रोश्दके दर्शनका जबर्दस्त समर्थन किया जिससे उसका प्रचार बहुत ज्यादा बढ़ा।

यहूदी विद्वान् इलियास् मदीजू पेदुआ (इतालीं) विश्वविद्यालयमें अन्तिम प्रोफेसर था। इसने भी रोश्दपर कई पुस्तकें लिखीं।

सोलहवीं सदी पहुँचते-पहुँचते रोश्दके दर्शनके प्रभावसे विचार स्वातन्त्र्यका इतना प्रचार हो गया कि यहूदी धर्माचार्योंको धर्मके खतम होनेका डर होने लगा। उन्होंने दर्शनका जबर्दस्त विरोध शुरू किया और दर्शनके खिलाफ मुसलमान धर्माचार्योंके इस्तेमाल किये हुए हथियारोंका इस्तेमाल करना चाहा। इसी अभिप्रायसे अबी-मूसा अल्-मशीनान १५३८ ई० में गजालीकी पुस्तक 'तोहाफतुल फिलासफा' (=दर्शन-खंडन) का इब्रानी अनुवाद प्रकाशित किया। अफलातूनके दर्शनको धर्मके ज्यादा

---

[1] "शज्रुल-हयात"।

अनुकूल देखकर उन्होंने अरस्तूकी जगह उसका प्रचार शुरू किया। अब हम बेकन (१५६१ १६२६), हॉब्स (१५८८ १६७९ ई०) और देकार्त (१५९६ १६५० ई०) के जमानेके साथ दर्शनके आधुनिक युगमें पहुँच जाते हैं, जिसमें अन्तिम यहूदी दार्शनिक स्पिनोज़ा (१६३२ ७७ ई०) हुआ जिसने यहूदियोंके पुराने दर्शन और देकार्तके सिद्धान्तोंको मिलाकर आधुनिक यूरोपके दर्शनकी बुनियाद रखी, और तबसे दर्शन धर्मसे स्वतन्त्र हो गया।

स्पिनोजापर इस्राएली (८५० ९५० ई० के बीच) सादिया (८९२ ९४२ ई०), बाकिया (१००० १०५० ई०) इब्न-जब्रोल (१०२० ७० ई०), ममून (११३५ १२०४ ई०), मरमूना (१२८८ १३०४ ई०) और क्रस्का (१३४० १४१० ई०) के ग्रंथोंका बहुत असर पड़ा था।

२—ईसाई (लातीनी)

ईसाई जहादों (=सलीबी युद्धों) का जिक्र पहिले हो चुका है। तेरहवीं सदीमें ये युद्ध स्पेन हीमें नहीं हो रहे थे, बल्कि उस वक्त सारे यूरोपके ईसाई सामन्त मिलकर यरोशलिम और दूसरे फिलस्तीनी ईसाई तीर्थ स्थानोंके लौटानेके बहानेसे लड़ाइयाँ लड़ रहे थे। इन लड़ाइयोंमें भाग लेनेके लिए साधारण लोगोंसे ज्यादा उत्साह यूरोपीय सामन्तोंमें दिखाते थे। कितनी ही बार तो एक सामन्त दूसरे सामन्त या राजासे अपने प्रभाव और प्रभुत्वको बढ़ानेके लिए युद्धमें सबसे आगे रहना चाहता था।

(१) फ्रेडरिक द्वितीय (१२४० ई०)—जर्मन राजा फ्रेडरिक द्वितीय सलीबी युद्धोंके बड़े बहादुरोंमेंसे था। जब यूरोपीय ईसाइयोंने यरोशलिमपर छठा हमला किया, तो फ्रेडरिक उसमें शामिल था। धर्मके बारेमें उसकी सम्मति बहुत अच्छी न थी तो भी अपने ही कथनानुसार, वह उसमें इसलिए शामिल हुआ कि अपने मूर्ख सिपाहियों और जनतापर प्रभुत्व बढ़ाये। —इस बातमें वह हिटलरका मार्ग-दर्शक था। फ्रेडरिककी प्रारम्भिक जिन्दगीका काफी भाग सिसलीमें बीता था। सिसली द्वीप सदियोंतक अरबोंके हाथमें रहनेसे अरबी संस्कृतिका केन्द्र बन गया था। फ्रेडरिकका

अरब विद्वानोंसे बहुत मेल-जोल था और वह अरबी भाषाको बहुत अच्छी तरहसे बोल सकता था। अरबी सभ्यताका वह इतना प्रेमी हो गया था कि उसने भी हरम (=रनिवास) और ख्वाजा-सरा (=हिजड़ा दरोगा) कायम किये थे। ईसाइयतके बारेमें उसकी राय थी—"चर्चकी नींव दरिद्रावस्थामें रखी गई थी, इसीलिए आरम्भिक युगमें सन्तोंसे ईसाई दुनिया खाली न रहती थी लेकिन अब धन जमा करनेकी इच्छाने चर्च और धर्माचार्योंके दिलको गंदगीसे भर दिया है।' वह खुल्लमखुल्ला ईसाई धर्मका उपहास करता था, जिससे नाराज होकर पादरियोंने उसे शैतानका नाम दे रखा था। पोप इन्नोसेंत चतुर्थकी प्रेरणासे ल्यान्समें एक धर्म-परिषद् (कौंसिल) बैठी जिसने फ्रेडरिकको ईसाई विरादरीसे छांट दिया।

जिस वक्त सलीबी युद्ध चल रहा था उस वक्त भी फ्रेडरिकका दार्शनिक कथा-संवाद जारी रहता था। मुसलमान विद्वान बराबर उसके दरबारमें रहते थे। मिश्रके सुल्तान मलाह्-उद्दीनसे उसकी व्यक्तिगत मित्रता थी, जो उन युद्धके दिनोंमें भी वैसी ही बनी हुई थी और दोनों ओरसे भेंट-उपायन आते-जाते रहते थे।

युद्धसे लौटनेके बाद उसने खुल्लमखुल्ला दर्शन तथा दूसरी विद्याओंका प्रचार शुरू किया सिसलीमें पुस्तकालय स्थापित किये, अरस्तू तालमी, और रोश्दके ग्रंथोंको अनुवाद करनेके लिए यहूदी विद्वानोंको नियुक्त किया। पिपरसमें एक युनिवर्सिटीकी नींव रखी और सलर्नोके विद्यापीठका संरक्षक बना। उसने विद्या प्रचारके लिए दूर-दूरसे अरबीदाँ विद्वानोंको एकत्रित किया। तबून स्पान्दानवाल अनुवादक इसीके दरबारसे संबंध रखते थे। फ्रेडरिक स्वयं विद्वान् था और विद्या तथा संस्कृतिमें सिरमौर उस समयकी अरबी दुनियाको उसने नजदीकसे देखा था, इसलिए वह चाहता था कि अपने लोगोंको भी वैसा ही बनाये। आक्सफोर्डके एक पुस्तकालयमें 'मसायल सक्लिया' नामक एक अरबी हस्तलिखित पुस्तक है जिसके बारेमें कहा जाता है कि फ्रेडरिकने स्वयं उसे लिखा था, लेकिन वस्तुतः वह पुस्तक दक्षिणी स्पेनके एक सूफी दार्शनिक इब्न-सबईनकी कृति है जिसे उसने १२४० ई०

में फ्रेडरिकके चार दार्शनिक प्रश्नों—जिन्हें कि उसने इस्लामिक दुनियाके दूसरे प्रसिद्ध विद्वानोंके पास भी भेजे थे—के उत्तरमें लिखा था। इस वक्त दक्षिणी स्पेनपर मुसलमान रशीदका हुकूमत थी। इस हुकूमतमें उस वक्त विचार स्वातन्त्र्यकी क्या हालत थी यह सर्वनेके इस वाक्यसे पता लगता है— हमारे लिए इन विषयोंपर कलम उठाना बहुत खतरेका काम है। यदि मुल्लाओंको खबर हो जाय कि मैंने इस विषयपर कलम उठाई है तो वह मेरे दुश्मन बन जायेंगे और इस वक्त मैं दुश्मनोंके हमलोंसे बच न सकूंगा।"[1]

चालीस साल तक फ्रेडरिकने चर्चके विरोधके होते हुए भी यूरोपको विद्याके प्रकाशसे प्रकाशित करनेकी कोशिश जारी रखी। जब वह मरा तो पोप इन्नोसेंटने सिसलीके पादरियोंके सामने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा —'आसमान और जमीनके लिए यह खुशीकी घड़ी है, क्योंकि जिस तूफानमें मानव जगत फँस गया था उससे ईसाई जगतको अन्तिम बार मुक्ति मिली। लेकिन फ्रेडरिकके बाद जो परिवर्तन यूरोपमें दिखाई पड़ा उसने पोपकी रायको गलत साबित किया।

(२) अनुवादक—विन्-सीरके खंडन-मंडन के लातीनी अनुवाद (१३२८ ई०) के बारेमें हम कह चुके हैं, किन्तु इसके पहिले ही से अरबी ग्रंथोंके लातीनी अनुवाद शुरू हो गए थे। फ्रेडरिकका दरबारी मीकाल स्कोत तलतला (स्पेन) का निवासी था इसने अपने शहरके एक यहूदी विद्वानकी मदद्से कई पुस्तकोंका लातीनी भाषामें अनुवाद किया जिनमें कुछ हैं—

समाअ-व आलम् शरह (टीका)	रोन्द	१२३० ई०
मुकाला फिल् रूह (टीका)	रोन्द	
मुकाला कौन-व-फसाद	रोन्द	
जौहरुल-कौन		

[1] "आसारुल अदहार", पृष्ठ २४१

राजर बेकन (१२१४ ९२ ई०) के अनुसार स्कोत अरबी भाषा बहुत कम जानता था और उसने दूसरोंकी सहायतासे ही अनुवाद किये थे। कुछ भी हो स्कोत पहिला आदमी है जिसने ईसाई दुनियाके सामने पहिले-पहिल रोश्दके दर्शनको, उस वक्तकी चर्चकी भाषा लातीनीमें पेश किया। राजर बेकन खुद अरबी जानता था उसने रोश्दके दर्शनको अपने देश इंगलण्ड में फैलानेके लिए क्या किया, यह हम आगे कहेंगे।

फ्रेडरिकके दर्बारके दूसरे विद्वान हरमनने निम्न दर्शन ग्रंथोंका लातीनी-में अनुवाद किया—

भाषण[1]-टीका	फाराबी	१२५६ (तलेतला[2])
अलंकार[3]-संक्षेप	रोश्द	१२५६ (तलेतला)
आचार[4]-संक्षेप	रोश्द	१२४० ई० (तलेतला)

तेरहवीं सदीके अन्त होते होते तक रोश्दके सभी दार्शनिक ग्रंथोंका लातीनी भाषामें अनुवाद हो गया था।

---

[1] Rhetoric [2] Toledo [3] Rhetoric [4] Ethics

नवम अध्याय

यूरोपमें दर्शन-संघर्ष

सन् अगस्तिन (४ ४० ई०) के दान प्रसंग बारेमें हम पहिले कह चुके हैं, किन्तु अगस्तिनका प्रेम अगस्तिन तक ही रह गया। उनके बाद यद्यपि ईसाई धर्म यूरोपमें बड़े जोरसे फैला, किन्तु ईसाई साधु या तो लोगोंको अपनी जातीयतापर विश्वास करते मठोंका दान-पुण्य करनेका उपदेश देते और छाड़-चड़ महन्त बन मौज लूट रहे थे, अथवा कोई-कोई सब छोड़ एकान्तवासी बन ध्यान भक्तिमें लगे हुए थे—विद्याका दीपक एक तरहसे बुझ चुका था।

§ १ स्कोलास्तिक

आठवीं सदीमें जब शालमान (=चार्लस) यूरोपका महान राजा हुआ तो उसने यह हालत देखी। साथ ही उसने यह खतरा भी देखा कि बाहरसे देख-सुनकर आये लोगोंके द्वारा धर्मपर संदेहकी दृष्टि डालनेकी ओर प्रवृत्ति भी चुपके-चुपके बढ़ रही है। शालमानने इसके प्रतीकारके लिए मूर्ख-उजड्ड साधुओंसे भरे ईसाई मठोंमें पढ़े लिखे साधुओंको बैठा बच्चोंकी शिक्षाका प्रबंध किया, और नये-नये मठ भी कायम किये। इन पाठशालाओंमें सिर्फ धर्म ही की शिक्षा नहीं दी जाती थी बल्कि, त्रैमासिक अंकगणित ज्योतिष संगीत, साहित्य व्याकरण तर्क—इन "सात उदार कलाओं" की भी पढ़ाई होती थी। बढ़ते हुए बुद्धिवादको कुंठित कर धर्मका अनुसरण करनेके ही लिए वहाँ तर्ककी पढ़ाई होती थी। शालमानका यह प्रयत्न उसी वक्त हो रहा था जब कि भारतके नालंदाकी कीर्ति सारी दुनियामें

फली हुई थी, और उसमें भी शालमानकी भाँति ही राजाओं और सामन्तोंने दिल खोलकर गाँव और धन दे रखे थे। नालंदाके अतिरिक्त और भी विद्यापीठ तथा "गुरुकुल" थे जिनमें विद्या, विशेषकर दर्शनकी चर्चा होती थी। हमारे यहाँ हीकी तरह शालमान द्वारा स्थापित विद्यापीठोंमें भी ग्रंथोंको कंठस्थ तथा शास्त्रार्थ करना—विद्याध्ययनका मुख्य अंग था। यहाँ यह कहनेकी जरूरत नहीं कि भारतके इतने बड़े शिक्षा प्रयत्न क्या निष्फल हुए, और वह क्या फिर अंधकारकी कालरात्रिमें चला गया—वस्तुतः भारतमें उस वक्त भी शिक्षाको सार्वजनिक करनेका प्रयत्न नहीं हुआ और न बाद ही, विद्या प्रचार थोड़ेसे लोगों—शासकों और धर्माचार्यों—में ही सीमित रहा।

शालमानके मरनेके बाद यद्यपि उसके स्थापित मठों, विद्यापीठोंमें शिथिलता आ गई, तो भी ईसाई यूरोपकी छातीपर—स्पेनमें—इस्लाम काला साँप बनकर लोट रहा था, वह सिर्फ तलवारके बल पर ही अपने प्रभुत्वका विस्तार नहीं कर रहा था, बल्कि पुराने यूनान और पूरबके पुराने ज्ञान भंडारको अपनी देनके साथ यूरोपके ज्ञान पिपासुओंमें वितरित कर रहा था। ऐसी अवस्थामें ईसाई-धर्म अच्छी तरह समझता था कि उसकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि वह भी अपनी मदद्के लिए विद्याके हथियारको अपनावे।

शालमानके इन मठीय विद्यालयोंको स्कोल (=स्कूल, पीठ) कहा जाता था, और इनमें धर्म और दर्शन पढ़ानेवाले अध्यापकोंको स्कोलास्तिक आचार्य[1] कहा जाता था। पीछे धर्मकी रक्षाके समर्थकके तौरपर जिस मिश्रित दर्शन (वाद-शास्त्र)को उन्होंने विकसित किया, उसका नाम भी स्कोलास्तिक दर्शन पड़ गया। इस वाद-दर्शनका विकास ईसाई धर्माचार्यों के उस प्रयत्नके असफल होनेका पक्का प्रमाण था जो कि बुद्धिवाद और दर्शनकी ओर बढ़ती हुई रुचिको दबानेके लिए वह पशुबलसे गला घोटकर

[1] Doctors Scholastic

कर रहे थे। इस नये प्रयत्नसे उन्हें इतनी आशातीत सफलता हुई कि जिस समय (बारहवीं सदीके अन्तमें) नालन्दा, उज्जयिनी, विक्रमशिला, जगद्दला आदिके महान विद्यापीठ भारतमें आगकी नजर किये जा रहे थे उसी समय यूरोपमें आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज पेरिस सालेर्नो बोलोना, सभी जातियों तथा मठोंके विश्वविद्यालय कायम किये जा रहे थे।

दार्शनिक विद्वानोंमें जान स्काट्स एरिगेना (८१०-७७ ई०), सन्त अन्सेल्म (१०६३-११०९ ई०), रोसेलिन[1] (१०४१-११२१ ई०) अबेलार्ड (१०७९-११४२ ई०) ज्यादा प्रसिद्ध हैं।

१ जान स्काट्स एरिगेना[2] (८१० ७७ ई०)

एरिगेना इंगलैण्डमें पैदा हुआ था और स्कोटिश प्रान्तके पहिले फलामें था। उसे अरस्तूका वस्तुवादी दर्शन पसन्द था। उस वक्त यूनानी दार्शनिकोंके ग्रंथ सिर्फ एसियाई भाषाओंमें ही मिलते थे, लेकिन एरिगेना अरबी भाषासे बिलकुल अनभिज्ञ था। संभव है सुरियानी भाषा पढ़ने या सुरियानी ईसाई विद्वानोंकी संगतिका उसे अवसर मिला हो।

एरिगेनाके मुख्य सिद्धान्त थे, अद्वैत विज्ञानवाद और जगतकी अनादिता। यह दोनों ही सिद्धान्त ईसाई धर्मके विरुद्ध थे इसे यहाँ बतला देनी आवश्यकता है। एरिगेना अपनी पुस्तक 'जगत्की वास्तविकता' में अपने सिद्धान्तके बारेमें लिखता है— जगतके अस्तित्वमें आनेसे पहिले सभी चीजें पूर्ण विज्ञानके भीतर मौजूद थीं, जहाँसे निकल निकलकर उन्होंने अलग अलग रूप धारण किये लेकिन जब ये रूप नष्ट हो जायेंगे तो वे फिर उसी पूर्ण विज्ञानमें जाकर मिल जायेंगी जहाँसे कि वह निकली थीं। इसमें सन्देह नहीं यह वसुबन्धु (४०० ई०) की विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' (त्रिंशतिका) की इस कारिकाका भावार्थ है—

("आलय विज्ञान रूपी समुद्रसे) वीचि तरंगकी तरह उन (जगतकी

---

[1] Ro cellinus [2] जान अपक्षीना।

चीजों) की उत्पत्ति कही गई है।"[1]

एरिगेनाका पूर्ण विज्ञान योगाचार (विज्ञानवाद) का आलय विज्ञान है, जिसमें क्षणिकताके अटल नियमके अनुसार नाश उत्पाद वीची-तरंगकी तरह होता रहता है। एरिगेनासे पहिले यह सिद्धान्त यूरोपके लिए अज्ञात था। हमने देखा है, पीछे रोशेन भी इसी विज्ञानवादको अपनी व्याख्याके साथ लिया है। धर्मांधता युगके दूसरे दार्शनिकोंकी भाँति एरिगेना भी धर्म और दर्शनका समन्वय करना चाहता था।

२ अमोरी और दाविद

एरिगेनाके विचार-बीज पश्चिमी यूरोपके मस्तिष्कमें पड़ जरूर गये, किन्तु उनका असर जल्दी दिखाई नहीं दिया। दसवीं सदीमें अमोरी और उसका शागिर्द दाविद द-दीनान्तो प्रसिद्ध दार्शनिक हुए। अमोरीके सिद्धान्त जिब्रोल (१०२१-७० ई०) से मिलते हैं जो कि अभी तक पैदा न हुआ था। दाविद जगतकी उत्पत्ति मूल हवला[2] (=प्रकृति)से मानता है। हेवला स्वयं शक्ल-सूरतसे रहित है, यह एरिगेनाके पूर्ण विज्ञानका ही शब्दान्तरसे व्याख्यान है, यद्यपि मूल प्रकृतिके रूपमें वह बाह्यार्थवाद—प्राकृतिक (=वास्तविक) दुनियाके बहुत करीब आ जाता है।

३ रोसेलिन् (१०५१-११२१ ई०)

दाविद और अमोरीके दर्शनने बाह्यार्थवाद (=प्राकृतिक जगतकी वास्तविकता)की ओर कदम बढ़ाया था। स्कोलास्तिक डाक्टर रोसेलिनने उसके विरुद्ध नाम (=अ रूप) वाद[3] पर जोर दिया और कहा कि एक प्रकारकी सभी व्यक्तियोंमें जो समानताएं (=सामान्य) पाई जाती हैं उनका अस्तित्व उन व्यक्तियोंसे बाहर नहीं है।

---

[1] "वीची-तरंग-न्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्त्तिता।"—त्रिंशिका (वसुबंधु)
[2] Hyla [3] Nominalism

§ २ इस्लामिक दर्शन और ईसाई चर्च

रोश्दके ग्रंथोंका पठन-पाठन तथा पीछे उनके अनुवादोंकी प्रगतिके बारेमें हम बतला चुके हैं। यह हो नहीं सकता था कि एरिगेना, अमारी आदिके प्रयत्नके कारण पहिलेहीसे वान रखने वाले ईसाई धर्मके क्षेत्रपर उसका असर न पड़ता।

१ फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय

रोश्दके दर्शनका सबसे ज्यादा प्रभाव ईसाइयोंके फ्रांसिस्कन सम्प्रदायपर पड़ा। इस सम्प्रदायके संस्थापक—उस वक्त काफिर और पाखंडी—फ्रांसिस्न तेरहवीं सदीमें विलासितामें सरतक डूब पोप और उसके महन्तोंके विरुद्ध बगावतका झंडा खड़ा किया था। फ्रांसिसका जन्म असिसी (इतली)में १२१६ ई० में हुआ था। उसने विद्या पढ़नेकेलिए तीव्र प्रतिभा ही नहीं पाई थी, बल्कि आसपासके दीन-हीनोंकी व्यथा समझने लायक हृदय भी पाया था। 'सादा आचार और उच्च विचार'—उसका आदर्श था। महन्तोंकी शान-शौकत और दुराचारसे वह समझ रहा था कि ईसाई धर्म रसातलको जानेवाला है, इसलिए उसने गरीबीकी जिन्दगी बितानेवाले शिक्षित साधुओंका एक गिरोह बनाया जिसे ही पीछे फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय कहा जाने लगा। फ्रांसिस जैसे विद्वान्का ऐसी गरीबीकी जिन्दगी बिताते देख लोगोंका उधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था—खासकर उस वक्तके विचार-संघर्षके समयमें—और थोड़े ही समयमें फ्रांसिसके साथियोंकी संख्या पांच हजार तक पहुँच गई।

(१) अलेकजेंडर हेस—अलेकजेंडर हेस (तेरहवीं सदी) फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका साधु था। इसने पेरिसमें शिक्षा पाई थी। हेसने अरस्तूके अति भौतिक-शास्त्र[1]पर विवरण लिखा था। अपने विवरणमें उसने सोना और

---

[1] Metaphysics

गजालीके मतोंको बड़े सम्मानके साथ उद्धृत किया है, किन्तु उसी संबंधके रोश्द-के विचारोंके उद्धृत नहीं करनेसे पता लगता है कि वह उनसे परिचित न था।

(२) राजर बैकन (१२१४-९२ ई०)—(क) जीवनी—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका गढ़ था और वहाँ रोश्दके दर्शनका बहुत सम्मान था। राजर बेकन नालन्दा विक्रमशिलाके ध्वंस (१२०० ई०) के बाद ही सालके बाद इंगलण्डमें पैदा हुआ था। उसने पहिले आक्सफोर्ड में शिक्षा पाई थी, पीछे पेरिसमें जाकर डाक्टरकी उपाधि प्राप्त की। वह लातीनी तो जानता ही था, साथ ही अरबी और यूनानीसे भी परिचित था। इन भाषाओंका जानना—खासकर अरबीका जानना—उस वक्तके विद्याभ्यासीके लिए बहुत जरूरी था। पेरिसमें लौटनेपर वह साधु (फ्रांसिस्कन) बना। यद्यपि उसके विचार मध्यकालीनतासे मुक्त न थे तो भी उसने वेध, प्रयोग तथा परीक्षणके तरीकोंपर ज्यादा जोर दिया पुस्तकों तथा शब्दप्रमाणपर निर्भर रहने को ज्ञानके लिए बाधक बतलाया। वह स्वयं यंत्र और रसायन शास्त्रकी खोजमें समय लगाता था, जिसके लिए स्वार्थी पादरियोंने लोगोंमें मशहूर कर दिया कि वह जादूगर है। जादूगरीके अपराधमें उस वक्त यूरोपमें लाखों स्त्री-पुरुष जलाये जाते थे। खैर, राजर उनसे तो बच गया, किन्तु उसके स्वतंत्र विचारोंको देखकर पादरी जल बहुत रहे थे, और जब इसकी खबर रोममें पोपको पहुँची तो उसने भी इसके बारेमें कुछ करनेकी कोशिश की, किन्तु वह तबतक सफल नहीं हुआ जबतक कि १२७८ ई० में फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका एक महंथ जरोम डी-एसल राजरका दुश्मन नहीं बन गया। राजर बैकन नास्तिकता और जादूगरीके अपराधमें जलमें डाल दिया गया। उसके दोस्तोंकी कोशिशसे वह जलसे मुक्त हुआ और १२९२ ई० में आक्सफोर्डमें मरा। पादरियोंने उसकी पुस्तकोंको आगमें जला दिया, इसलिए रॉजर बैकनकी कृतियोंसे लोगोंको ज्यादा फायदा नहीं हो सका।

(ख) दार्शनिक विचार—सीना और रोश्दके दार्शनिक विचारोंसे रॉजर बहुत प्रभावित था। एक जगह वह लिखता है—

इब्न-सीना पहला आदमी था, जिसने अरस्तूके दर्शनको दुनियामें प्रकाशित किया, लेकिन सबसे बड़ा दार्शनिक इब्न रोश्द है, जो इब्न-सीनाके अवसर मात्रमें पकड़ करता है। इब्न रोश्दका स्थान एक समय तक उपेक्षित रहा, किन्तु अब (तेरहवीं सदीमें) दुनियाके पराय करीब सब दार्शनिक उसका लोहा मानते हैं। कारण यही है, कि अरस्तूके दर्शनकी उसने ठीक व्याख्या की है। यद्यपि कहीं कहीं वह उसके विचारोंपर कटाक्ष भी करता है, किन्तु सिद्धान्तमें उसके विचारोंकी सत्यता उसे स्वीकृत है।

राजर दूसरे फ़ाबिरनाकी भाँति रास्तेका समर्थक था, और वह कर्त्ता विज्ञान[1]को जीवसे अलग एक स्वतन्त्र सत्ता मानता तथा उसका नाम ईश्वर बतलाता था[2]—

कर्त्ता विज्ञान एक रूपमें ईश्वर है, और एक रूपमें परिणाम(=दैवी रूपमें)के तौरपर। (दार्शनिकोंका सम्प्रदायवाला कहते हैं कि) कर्त्ता विज्ञान नाविक-विज्ञान[3] (=जीव)की एक अवस्थाका नाम है, लेकिन यह ख्याल ठीक नहीं जान पड़ता। मनुष्यका नाविक विज्ञान स्वयं ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ है, जबतक कि दैवी साधन उसके सहायक न हों। और वह सहायक किस तरह होते हैं? कर्त्ता विज्ञानके द्वारा, जो कि मनुष्य तथा ईश्वरके बीच सम्बन्ध पैदा करनेवाला, और मनुष्यसे अलग स्वतन्त्र सत्तावान् एक अभौतिक द्रव्य है।

(३) दून् स्कातस्—राजर बेकनके बाद अरबी दर्शनका समर्थक दून् स्कातस् था। पहिले स्कातस् अविसेनाका अनुयायी था किन्तु पीछे अविसेनाके इस बातसे असहमत हो गया, कि ईश्वरका मनुष्यके कर्मोंपर कोई अधिकार नहीं। अविसेना और स्कातसके इस विवादकी प्रतिध्वनि आज

---

[1] अक्ल-फ़आल (Creative Reason)

[2] Ibn Roshd (Renan), pp 154 155

[3] Nautic nouse

स्कोलास्तिक दर्शनमें मिलती है। तामसके विरुद्ध स्कातस्की यह भी राय थी, कि मूलभूत (=प्रकृति) अनादि है आकृतिके उत्पन्न होनेसे प्रकृतिका उत्पन्न होना जरूरी नहीं है, क्योंकि प्रकृति आकृतिके बिना भी पाई जाती है। ईश्वरका सृष्टिकरनेका यही मतलब है, कि प्रकृतिको आकृतिकी पोशाक पहना दे। स्कातस् रोश्दके अद्वैत विज्ञानको माननेसे ही इन्कार नहीं करता था, बल्कि इस सिद्धान्तके प्रारम्भको मनुष्यताकी सीमाके भीतर रखना नहीं चाहता था। स्कातसने ही पहिले पहिल रोश्दको उसके अद्वैतवादके कारण घोर नास्तिक घोषित किया, जिसको लेकर पीछे यूरोपमें रोश्दकी पगवरीके अन्दर नास्तिकोंका गिरोह कायम हो गया।

२—दोमिनिकन्-सम्प्रदाय

जिस तरह ईसाइयोंका फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय रोश्द और इस्लामिक दर्शनका जबर्दस्त समर्थक था, उसी तरह दोमिनिकन सम्प्रदाय उसका जबर्दस्त विरोधी था। इस सम्प्रदायका संस्थापक सन्त दोमिनिक ११७० में पैदा हुआ था, और १२२१ ई० में मरा—गोया वह भारतके अन्तिम बौद्ध संघराज तथा विक्रमशिलाके प्रधानाचार्य शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) का समकालीन था। फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय रोश्दके दर्शनका जबर्दस्त विरोधी था, यह बतला चुके हैं।

(१) अल्बर्तस् मग्नस् (११९३-१२८० ई०)—अल्बर्तस् मग्नस् उसी समय पैदा हुआ था, जब कि दिल्लीपर अभी हालमें तुर्की झंडा फहराने लगा था। वह उसी साल (१२२१ ई०) दोमिनिकन सम्प्रदायमें साधु बना, जिस साल कि सन्त दोमिनिक मरा था, और फिर बालान् (फ्रांस) विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर हुआ। अरबी दार्शनिकोंके खंडनमें इसने कितनी ही पुस्तकें लिखी थीं, तो भी वह इब्न-सीनाका प्रशंसक, और रोश्दका दूषक था। रोश्दका विरोधी तथा अरस्तूका जबर्दस्त समर्थक तामस अक्विना इसीका शिष्य था। अल्बर्तसने स्वयं भी रॉजर बेकन और दन स्कातसके रोश्द-समर्थक विचारोंका खंडन किया तो भी

वह ज्यादा एकान्तप्रिय था, और उसके बाद उसके शिष्य अविनाश पूरा किया।

(२) तामस् अक्विना (१२२५-७४ ई०) (क) जीवनी—तामस् अक्विना इतालीय एक पुराने सामन्त घराने में १२२५ ई० में (जिस साल कि नेपाल लिच्छवि आन्दोलन खत्म होकर अपना जन्मभूमि कश्मीरमें शाक्य श्रीभद्रका शरीर छोड़ा) पैदा हुआ था। उसकी शिक्षा बेनेडिक्टी और नेपल्स में हुई, मगर अन्तमें वह अल्बर्तस् मग्नस्की विद्याका प्रसिद्ध गुरु, कोलोन् विश्वविद्यालयमें अल्बर्तसके शिष्यों में सम्मिलित हो गया। विद्या समाप्त करके बाद पेरिस विश्वविद्यालयमें धर्म, न्याय और तत्त्वशास्त्रका प्रोफेसर नियुक्त हुआ। १२७२ ई० में जब पोप ग्रेगरी दशम रोमन[1] और यूनानी[2] चर्चमें मेल करानेके लिए एक परिषद् बुलाई थी, तो तामस् अक्विनास एक पुस्तक लिखकर परिषद्के सामने रखी थी जिसमें यूनानी चर्चके दोष बतलाये थे। मेल तो नहीं हो सका, किन्तु इस पुस्तकके कारण अक्विनाका नाम बहुत मशहूर होगया। परिषद्के दो वर्ष बाद (१२७४ ई०) अक्विनाका देहान्त हो गया।

(ख) दार्शनिक विचार—अक्विना अपने समयमें शास्त्र विरोधी दामिनिकन विचारोंका अगुआ था। धर्ममें वह कितना कट्टर था, यहीं तो इससे मालूम है, कि राजालोगोंकी भाँति निर्दयहृदयता दिखाते हुए सारे ईसाई सम्प्रदायोंको मिलानेके काममें पोप ग्रेगरीके प्रयत्नके असफल होनेसे जिसे सबसे खुशी हुई वह अक्विना था। फासिस्को यद्यपि रोजरके दर्शनके समर्थक थे किन्तु इसलिए नहीं कि वह प्रगतिशील विचारोंका वाहक है, बल्कि इसलिए कि वह वस्तुवादसे ज्यादा अद्वैत विज्ञानवाद[3]का समर्थक है। इसके विरुद्ध रोजरका विरोधी

---

[1] रोमन कथलिक (रोमवाले उदारवादी)

[2] ग्रीक अर्थोडक्स (यूनानवाले सनातनी), जिसके अनुयायी पूर्वी यूरोपके स्लाव (रूस आदि) देशोंमें ज्यादा रहे हैं। [3] बहुदत्-अवस्त।

अविसेना अपने गुरु अल्बतस्की भाँति वस्तुवादका समर्थक था। अविसेनाका गुरु अल्बतस् मग्नस् पहिला आदमी था जिसने अरस्तूके वस्तुवादी दर्शनकी ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। मध्यकालकी गाढ निद्रासे यूरोपको जगानेमें चंगेजके हमलेने मदद पहुँचाई। चंगेजकी तलवारके साथ बारूद, कागज, कुतुबनुमा आदि व्यवहारकी बड़ी सहायक चीजोंने पहुँचकर भी इस प्रत्यक्ष दुनियाका मूल्य बढ़ा दिया था इस प्रकार अविसेना का इस ओर झुकाव सिर्फ आकस्मिक घटना न थी।

जान लविस् अविसेनाके बारेमें लिखता है[1]— उसने बिखरे हुए भिन्न भिन्न विचारोंको एकत्रित कर एक सम्बद्ध पूर्ण शरीरके रूपमें संगठित किया और फिरसे आविष्कृत और प्रतिष्ठापित हुए अरस्तूके बौद्धिक दर्शनसे जोड़ दिया। (इस प्रकार) उसने जो सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक रचना की वह चार सौ वर्षों तक युरोपीय सभ्यताका आधार रही और तीन सौ साल तक यूरोपके अधिक भाग तथा लातीनी अमेरिकामें एक जबर्दस्त—यद्यपि पतनोन्मुख—शक्ति बनी रही।

"(अविसेना द्वारा किया गया) ईसाई दर्शनका नया संस्करण अधिक सजीव, अधिक आशावादी, अधिक दुनियावी, अधिक रचनात्मक था।

यह अरस्तूका पुनरुज्जीवन था।

अविसेना और मग्नस्की नई विचारधाराके प्रवाहित करनेमें कम कठिनाई नहीं हुई। पुराने ढर्रेके ईसाई विद्वान् अरस्तूके वस्तुवादी दर्शनको इस प्रकार स्वागत धर्मके लिए खतरेकी चीज समझते थे। लेकिन भौतिक परिस्थिति नये विचारोंके अनुकूल थी, इसलिए अविसेनाकी जीत हुई। अविसेनाका प्रधान ग्रंथ सुम्मा थेवलोगी[2] एक विश्वकोष है। अविसेनाका दर्शन अब भी रोमन कथलिक सम्प्रदायका सर्वमान्य दर्शन है।

(a) मन—अविसेना सारे ज्ञानकी बुनियाद तजर्बे (=अनुभव)को

---

[1] Introduction to Philosophy by John Lewis, p 35

[2] Summa Theologies=ब्रह्मविद्या-संक्षेप।

बतलाता था— सभी चीजें जो बुद्धिमें हैं, वह (सभी) इन्द्रियोंमें भी।' मन इन्द्रियोंसे पांच रोशनदानोंसे रोशन है। कोई चीज स्वयं बुरी नहीं है बल्कि चीजोंके आधार बुरे होते हैं। इस प्रकार अक्विनास इन्द्रियों, शरीरको बदनाम, और साधारण मनुष्यके अनुभवोंको तुच्छ या हेय नहीं, बल्कि बड़े महत्वकी चीज समझता था।

(b) शरीर—मनुष्यको तभी हम जान सकते हैं जब कि हम सारे मनुष्यत्वको ऊपर विचार करें। बिना शरीरके मनुष्य, मनुष्य नहीं है, उसी तरह जैसे कि मनके बिना वह मनुष्य नहीं। मनुष्य मनुष्य तभी है, जब मन और शरीरका योग हो।

भौतिक तत्त्व अ-भूत कच्चे पदार्थ हैं जिनसे कि सारी चीजें बनी हैं। वही भौतिक तत्व भिन्न भिन्न वास्तविकताओंके रूपमें संगठित किये जा सकते हैं, जीवन चिन्तनवाला मानव इन्हीं वास्तविकताओंमेंसे एक है। भौतिक सत्वकी विशेषता यह है कि वह नये परिवर्तन, नये संगठन, नये गुणोंको अस्तित्वमें ला सकते हैं। अक्विनास यहां अनजान मार्क्सीय भौतिकवादकी ओर बढ़ गया है। यदि गुणात्मक परिवर्तन हो सकता है, तो भौतिक तत्व चेतनाको भी पैदा कर सकते हैं।

मनुष्यको अपना या अपनी चेतनाका ज्ञान पीछे होता है। वह क्या है, इसे भी पीछे जानता है। सबसे पहिले मनुष्य (अपनी इन्द्रियोंसे) वस्तुको देखता है और यह जानता है कि मैं "देख रहा हूँ" जिसका अर्थ है कि वह कोई चीज देख रहा है। यहां 'है' मौजूद है, और मन बाहरी वस्तुके सिर्फ संस्कारको नहीं बल्कि उसकी सत्ताको पूरी तौरपर जानता है। अपने या अपनी चेतनाके बारेमें मनुष्यका ज्ञान इसके बाद और इसके आधार पर होता है इसलिए बाहरी वस्तुओंसे इन्कार करना ज्ञानके आधारसे इन्कार करना है।

(c) द्वैतवाद—अक्विनासकी दुनिया दो भागोंमें विभक्त है—(१) रोज-बरोज हम जिस जगतको इन्द्रियोंसे देख रहे हैं, (२) और उसके भीतर बसनेवाला मूलरूप (विज्ञान)। शुद्धतम और सर्वश्रेष्ठ विज्ञान ईश्वर

है—यही अरस्तूका दर्शन है। ईश्वरके अतिरिक्त जितने ही विशेष विज्ञान हैं, जिन्हें जीव कहा जाता है, और जो देव (=फरिश्ते), मानुष, आदिकी आत्माओंके रूपमें छोटे-बड़े दर्जोंमें बँटे हैं। इन विज्ञानोंमें देवों, मनुष्योंके अतिरिक्त वह आत्माएं भी शामिल हैं, जो नक्षत्रोंका संचालन करती हैं।

अविचनाकी सबसे बड़ी कोशिश थी धर्म और दर्शनके समन्वय करनेकी। उसका कहना था, दर्शन और धर्म दोनोंके लिए अपना अपना अलग क्षेत्र है, उन्हें एक दूसरेके काममें बाधा नहीं डालनी चाहिए। अगस्तिन् (रोश भी) सारे ज्ञानको भगवानके प्रकाशकी देन मानता था किन्तु अविचना इन्द्रिय प्रत्यक्षके महत्त्वको स्वीकार करता था।

अविचना नवीन अरस्तू-दर्शनके हिमायती दामिनिकन साधु-सम्प्रदायसे संबंध रखता था। फ्रांसिस्कन साधु उसका विरोध करते थे। उनके विद्वान् दन स्कातस् (१२६५-१३०८) और ओकमूवासी विलियम (म० १३४९ ई०) इस बातके विरोधी थे कि धर्म और दर्शनमें समन्वय किया जाये। दर्शन और पदार्थ ज्ञानके लिए एक बात सच्ची हो सकती है किन्तु वही बात धर्मके अनुसार असत्य हो सकती है। सत्यका साक्षात्कार इन्द्रियों और अनुभवसे नहीं, बल्कि आत्मासे होता है। शिव (=अच्छा) सत्यसे ऊपर है और शिव वही है, जिसके लिए भगवान्का वैसा आदेश है। मनुष्यका कर्तव्य है, भगवानकी आज्ञाका पालन करना। बुरे समझे जाने वाले कर्म भी अच्छे हो जाते हैं, यदि वह भगवान्की सेवाके लिए हों। चर्च या धर्म-सम्प्रदायके द्वारा ही हमें भगवान्का आदेश मिलता है, इसलिए धर्मके हिमायतियोंका कहना था कि चर्च और उसका अध्यक्ष पोप पृथ्वीपर वही अधिकार रखते हैं जो कि भगवान् ईसामसीह विश्वपर।

(३) रेमोंद मार्तिनी—अविचनाके बाद रेमोंद मार्तिनी दोमिनिकनोंकी ओरसे विज्ञवाद और रोश्दके विरोधका आरंभ हुआ। इसने अपने काममें ग़ज़ालीकी पुस्तकोंसे मदद ली यद्यपि ग़ज़ाली स्वयं सूफी अद्वैतवादी था, किन्तु उसके चूँचूके मुरब्बेमें क्या नहीं था? मार्तिनी इस अन्दाज़में सचके बहुत करीब था, कि रोश्दने अपने अद्वैत विज्ञान

(वहदत अक्ल)-वादका अरस्तूसे तथा अफलातूंसे लिया है।

(४) रेमोंद लिली—(१२२४ १३१५ ई०)—इस्लामी जहादोंके जवावमें प्रारंभ हुई ईसाई जहादोंकी बात हम कह चुके हैं। बारहवीं-तेरहवीं सदियोंमें जहाँ बाहरी दुनियामें ये जहाद चल रहे थे, वहाँ भीतरी दुनियामें भी विचारात्मक जहाद चल रहे थे, जिसे कि लाखों स्त्री-पुरुषोंको नास्तिक और जादूगर होनेके इल्जाममें जलाये जानेके रूपमें देखते हैं। [हमें इसके लिए युरोपवालोंको ताना देनेका हक नहीं है क्योंकि बाण (६०० ई०) की तीव्र आलोचनासे लेकर वेंटिक (१८३५ ई०)के सती कानून तकमें धर्मके नामपर पागल करके जिन्दा जलाई जानेवाली स्त्रियोंकी तादाद गिनी जाय तो वह उससे कई गुना ज्यादा होती है]—कभी रोंजर बेकनकी पुस्तकोंके जलाये जानेके रूपमें और कहीं दोमिनिकन और फ्रांसिस्कनके वाद विवादके रूपमें। रेमोंद लिली एसे ही समयमें इतालीके एक समृद्ध परिवारमें पैदा हुआ था। पहिले तो उसका जीवन बहुत विलासिता पूर्ण रहा, किन्तु यकायक उसने अपनेको सुधारा, और उसे धुन सवार हो गई कि इस्लामको दुनियासे नेस्तनाबूद करना चाहिए। वह युरोपके सारे ईसाइयोंको सलीबी लड़ाइयोंमें शामिल देखना चाहता था। इसके लिए उसने १२८७ ई०में पोप नेनारियसके दरबारमें पहुँचकर अपने विचार रखे—इस्लामको खतम करनेके लिए एक भारी सेना तैयार की जाय, इस्लामी देशोंमें काम करने लायक विद्वानोंको तैयार करनेके लिए विश्व विद्यालय कायम किये जायें, और राश्दकी पुस्तकोंको धर्म विरोधी घोषित कर दिया जाय। वहाँ सफल न होनेपर उसने फ्रांस इतालीं स्विट्जरलैंड आदिमें इसके लिए दौरा किया। १३११ ई०में ईसाइयोंकी एक बड़ी सभा वीना (आस्ट्रिया)में हुई, वहाँ भी वह पहुँचा किन्तु वहाँ भी असफल रहा। इसी निराशामें वह १३१५ ई०में मर भी गया। रेमोंद विद्वान था, उसने रोश्द और दूसरे दार्शनिकोंकी पुस्तकोंको पढ़ा था और कुछ लिखा भी था इसलिए उसके इस्लाम विरोधी विचार-बाज धरतीमें पड़े हुए समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

§ ३–इस्लामिक दर्शन और विश्वविद्यालय

१. पेरिस और सोरबोन्

फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका कार्यक्षेत्र अपने गढ आक्सफोर्ड इंग्लैंड भर हीमें सीमित था। पश्चिमी यूरोपमें इस्लामिक दर्शनका प्रचारकेन्द्र पेरिस था। पेरिसमें एक बड़ा सुभीता यह भी था कि यहाँ स्पेनसे प्रवासित उन यहूदियोंकी एक काफी संख्या रहती थी, जिन्होंने रोश्द तथा दूसरे दार्शनिकोंके ग्रंथोंको अरबीसे अनुवाद करनेमें बहुत काम किया था। रोश्द-दर्शनके समर्थकों और विरोधियोंके यहां भी दो गिरोह थे। सोरबोन् विश्वविद्यालय रोश्द विरोधियोंका गढ था और पास ही पेरिस विश्व विद्यालय समर्थकोंका। पेरिसके कला (आर्ट) विभागका प्रधानाध्यापक सीजेर ब्राबेंत (मृ० १२८४ ई०) रोश्दका जबर्दस्त हामी था। अपने इन विचारोंके लिए धर्म विरोधी होनेके अपराधमें उसे जल भुन लिया गया, और ओर्बीतो[1]के जलमें उसकी मृत्यु हुई। अब भी पेरिसमें उसकी दी हुई अरबीकी दार्शनिक पुस्तकोंकी काफी संख्या है।

पेरिस विश्वविद्यालयके विरुद्ध सोरबोन् धर्मवादियोंका गढ था—और शायद इसीलिए आज भी वह भाग (जो कि अब पेरिस नगरके भीतर आगया है) लातीनी मुहल्ला कहा जाता है। सोरबोनपर पोपकी विशेष कृपा होना ही चाहिए और उसी परिमाणमें पेरिस पर कोप। सोरबोन् वालोंकी कोशिशसे पोपने पेरिस विश्वविद्यालयके नाम १२१७ ई० में फर्मान निकाला कि ऐसे शास्त्रार्थ न किये जायें, जिनमें फसादका डर हो। वस्तुतः यह फर्मान अरबी दर्शन संबंधी वाद विवादको रोकनेका एक बहाना मात्र था। पीछे पोपने भी इस तरहके फर्मान जारी करके अरबी दर्शनके अध्ययन-अध्यापनको ही धर्म विरुद्ध ठहरा दिया। १२६९ ई० में सोरबोनवालोंकी

---

[1] Orbieto

कांशिशस एक धर्म-परिषद् बुलाई गई जिसने निम्न सिद्धान्तोंके माननेवालोंपर नास्तिकताका फतवा दे दिया—

(१) सभी आदमियोंमें एक ही विज्ञान है,
(२) जगत अनादि है,
(३) मनुष्यका वंश किसी बाबा आदम तक खतम नहीं हो जाता,
(४) जीव शरीरके साथ नष्ट हो जाता है,
(५) ईश्वर व्यक्तियोंका ज्ञान नहीं रखता
(६) बंदों(=आदमियों)के कर्मपर ईश्वरका कोई अधिकार नहीं,
(७) ईश्वर नश्वर वस्तुका निर्माण नहीं बना सकता।

यह सब कुछ होनेपर भी पेरिस विश्वविद्यालयमें इस्लामिक दर्शनका अध्ययन बंद नहीं हुआ।

२ पेदुआ विश्वविद्यालय

यूरोपमें सिसली द्वीप और स्पेन इस्लामिक शासन-केन्द्र थे, इसलिए इनके ही रास्ते इस्लामिक विचारों (दर्शन)का भी यूरोपमें पहुँचना स्वाभाविक था। सिसली द्वीप इतालीके दक्षिणमें है यहाँसे ही वे विचार इतालीमें पहुँच उनके स्पेनसे फ्रांस जानेकी बात हो चुकी है। इतालीमें भी पेदुआके विद्यापीठने इस्लामिक ज्ञानके अध्ययन द्वारा अपनी कीर्तिका सार यूरोपमें फैला दिया।—खासकर राश्दके दर्शनके अध्ययनकेलिए तो यह विश्वविद्यालय सदियों तक प्रसिद्ध रहा। यहाँ राश्दपर कितने ही विवरण और टीकायें लिखी गईं। तेरहवीं सदीसे राश्दके दर्शनके अन्तिम आचार्य दे क्रिमोनी (मृत्यु १६३१ ई०) तक यहाँ इस्लामिक दर्शन पढ़ाया जाता रहा। यहाँके इस्लामिक दर्शनके प्रोफेसरोंमें निम्नका नाम बहुत प्रसिद्ध है—

पीतर-द-बानो
जीन दे-जांदून
फ्रा अरबानो

पाल दी-वनिस—(मृत्यु १४२९ ई०)
गाइतनो—(मृत्यु १४६५ ई०)
इलियास् मदीजू—(१४७७ ई०)
बरोना
ज्वाबाला—(१५६४ ८९ ई०)
पदसिया
सीजर क्रिमोनी—(मृ० १६३१ ई०)

सोलहवीं सदीमें इब्न रोश्दकी पुस्तकोंके नये लातीनी अनुवाद हुए, इस काममें पदुआका खास हाथ रहा। इन अनुवादकोंमें पेदुआका प्रोफसर वेरोना भी था, जिसने कुछ पुस्तकोंका अनुवाद सीधे यूनानीसे किया था। पदेसियोंके व्याख्यानोंके कितने ही पुराने नोट अब भी पदुआके पुस्तकालयमें मौजूद हैं।

[क्रिमोनी]—ज्वाबीलाका शागिर्द सीजर क्रिमोनी इस्लामिक दर्शनका अन्तिम ही नहीं, बल्कि वह बहुत योग्य प्रोफसर भी था। इसके लकचरोंके भी कितने ही नोट उत्तरी इतालीके अनेक पुस्तकालयोंमें मिलते हैं। ज्वाबीलाकी भाँति इसका भी मत था, कि ग्रह नक्षत्रोंकी गतिके सिवा ईश्वरके अस्तित्वका कोई सबूत नहीं। रोश्दकी भाँति यह भी मानता था, कि ईश्वरका सिर्फ अपना ज्ञान है, उसे व्यक्तियोंका ज्ञान नहीं है। मनुष्यमें सोचनेकी शक्ति कर्ता विज्ञानसे आती है। यह ऐसे विचार थे, जिन्हें ईसाई धर्म नास्तिकता कहता था। क्रिमोनी उनसे बचनेकी कोशिश करता था, इसका उदाहरण लीजिए—[1] इस पुस्तकमें मैं यह कहना नहीं चाहता, कि जीवके बारेमें हमारा क्या विश्वास होना चाहिए। यहाँ मैं सिर्फ यह बतलाना चाहता हूँ, कि जीवके बारेमें अरस्तूके क्या विचार थे। यह स्मरण रहे कि इनकी आलोचना मेरा काम नहीं है, इस कामको सन्त तामस् आदिने अच्छी तरह पूरा किया है।' लेकिन इसपर भी

[1] रोश्दके "किताबुन्'नफस"की व्याख्याकी भूमिका।

§ ४ इस्लामिक दर्शनका यूरोपमें अन्त

दर्शन स्वाधीन किस तरह रोशनी दिखाता मनुष्यतामें गिरी हुई [illegible] लाया, यह हम कह चुके हैं। इसकी वजहसे राज्य जहाँ सामिल अवमें [illegible] नाम हुआ वहाँ हर तरहकी स्वाधीनता चाहनेवाले लोग—[illegible] बुद्धि स्वातन्त्र्यवादी—राज्यके झण्डे नीचे एक होने लगे और [illegible] जगह-जगह दल बनने लगे। इन्हीं दलोंमेंसे एक उन लोगोंका था

जिन्होंने अपना नाम "स्वतन्त्रताके पुत्र" रखा था। ये लोग विश्वको ही ईश्वर मानते थे, और विश्वकी चीजोंको उसका अंश। ईसाई चर्चके न्यायालयोंसे इनको आगमें जलानेकी सजा होती थी और ये लोग खुशी-खुशी आगमें गिरकर जान दे देते थे। 'स्वतन्त्रताके पुत्रों' में बहुत सी स्त्रियां भी शामिल थीं, उन्होंने भी अग्निपरीक्षा पास की।

पादरी लोग इस अधार्मिकताके जिम्मेवार फ्रेडरिक और इब्नरोश्दको ठहराते थे। तो भी इस विरोधसे रोश्दके दर्शन—अथवा पुराने दर्शन—का कुछ नहीं बिगड़ा।

चौदहवीं सदीमें तुर्कोंने बेजन्तीनके ईसाई राज्यपर आक्रमण कर अधिकार जमाना शुरू किया। हर ऐसे युद्ध—राजनीतिक अशांति—में लोगोंका तितर बितर होना जरूरी है। कुस्तुन्तुनिया (आजका इस्तांबूल) का नाम उस वक्त बजन्तीन था, और प्राचीन रोमन सल्तनतके उत्तराधिकारी होनेसे उसका जहाँ सम्मान ज्यादा था, वहाँ वह विद्या और संस्कृतिका एक बड़ा केन्द्र भी था। ईसाई धर्मके दो सम्प्रदायों—उत्तर (=कथलिक) और सनातनी (=आर्थोडाक्स)—में सनातनी चर्चका पत्रियार्क (=महापितर या धर्मराज) यहीं रहता था। जिस तरह कथलिक चर्चकी धर्मभाषा लातीनी थी, उसी तरह पूर्वी सनातनी चर्चकी धर्मभाषा यूनानी थी। तुर्कोंके इस आक्रमणके समय वहाँसे भागनेवालोंमें कितने ही यूनानी साहित्यके पंडित भी थे। वे बहुमूल्य प्राचीन यूनानी पुस्तकोंके साथ पूरब भागकर इतालीय आ बसे। इन पुस्तकोंको देखकर वहाँके पंडितोंकी आँखें खुल गईं, यदि जैसे मानो तिब्बती चीनी अनुवादोंके सहारे पढ़ने रहनेवाले भारतीय विद्वानोंके हाथमें असंगकी 'योगचर्या भूमि'[1], वसुबंधुकी 'वादविधि' दिग्नागका प्रमाणसमुच्चय, धर्मकीर्तिका 'प्रमाणवार्त्तिक'[2] और "प्रमाणविनिश्चय' मूल संस्कृतमें मिल

[1] मूल संस्कृत पुस्तक मुझे तिब्बतमें मिली है।

[2] तिब्बत और नेपालमें मिली, और इसे मैंने सम्पादित भी कर दिया है।

जावें। अब लोगोंको क्या जरूरत था, कि वे मूल यूनानी पुस्तकको छोड़ यूनानी न जाननेवाले लेखकोंकी टीकाओं और सहायकी मददसे उन्हें पढ़नेकी कोशिश करें।

पिदारक (१३०४-७४ ई०)—रोमके लिये (१२२४-१३१५)ने इस्लामका उखाड़ फेंकनेकी बहुत कोशिश की थी, किन्तु वह उसमें सफल नहीं हुआ, तो भी उसकी वसीयतके एक हिस्से—यूरोपसे इस्लामिक दर्शनके अध्ययनाध्यापनको खतम करने—की पूर्तिके लिए तस्केनीमें पिदारकका जन्म हुआ। बापने उसे वकील बनाना चाहा था किन्तु उसका उसमें दिल नहीं लगा, और अन्तमें वह पेदुआमें आगया। पिदारक लातीनी और यूनानी भाषाओंका पंडित था दर्शन और आचार शास्त्रपर उसकी पुस्तकें आज भी मौजूद हैं। जहादवाद ने यूरोपके दिमागपर कितना जहरीला असर किया था यह पिदारकके इस विचारसे मालूम होगा अरबोंने कला और विद्याकी कोई सेवा न की, उन्होंने यूनानी संस्कृति और कलाकी कुछ बातोंका कायम जरूर रखा। पिदारक कहता था कि जब यूनानी संस्कृति और विद्याकी मूल वस्तुएं हमें प्राप्त हो गई हैं, तो हमें अरबोंकी जूठी पत्तल चाटनेसे क्या मतलब। अरबोंसे उसे कितनी चिढ़ थी, यह उसके एक पत्रसे पता लगेगा, जिसे उसने अपने एक मित्रको लिखा था— मैं तुमसे इस कृपाकी आशा रखता हूँ कि तुम अरबोंको इस तरह भुला दोगे, जैसे संसारमें उनका अस्तित्व कभी था ही नहीं। मुझे इस जातिकी जातिसे घृणा है। यह भलीभांति याद रखें कि यूनानने दार्शनिक वैद्य, कवि और वक्ता पैदा किये। दुनियाकी वह कौनसी विद्या है, जिसपर यूनानी विद्वानोंकी पुस्तकें न मौजूद हों। लेकिन अरबोंके पास क्या है?—सिर्फ दूसरोंकी बची खुची पूंजी। मैं उनके यहांके वैद्यों, दार्शनिकों कवियोंसे भली प्रकार परिचित हूँ और यह मेरा विश्वास है, कि अरब कौमसे कभी भलाईकी उम्मीद नहीं की जा सकती। तुम ही बताओ, यूनानी भाषाके वक्ता डेमस्थनीजके बाद सिसरो यूनानी कवि होमरके बाद वर्जिल यूनानी ऐतिहासिक हेरोडोटसके बाद लीवी लेखक जन्म दुनियामें कहाँ

हुआ ? हमारी जातिके काम काज बातोंमें दुनियाकी सभी जातियोंके कारनामोंसे बढ़ चढ़कर है। यह क्या बेवकूफी है, कि अपनेको अरबोंसे भी हीन समझते हो। यह क्या पागलपन है, कि अपने कारनामोंको भुलाकर अरबोंकी स्तुति—प्रशंसा—के नशेमें डूब गये हो। इतालीकी बुद्धि और प्रतिभा ! क्या तू कभी गाढ निद्रासे नहीं जागेगी ?"

पिंटारकके बाद 'इतालीकी प्रतिभा" जगी, और यूनानी दर्शनके विद्वानोंने—जो कि पूरबसे भाग भागकर आये थे—जगह-जगह ऐसे विद्यालय स्थापित किये, जिनमें यूनानी साहित्य और दर्शनकी शिक्षा सीधे यूनानी पुस्तकोंसे दी जाती थी। आरम्भके यूनानी अध्यापकोंमें गाज़ा (मृ० १४७८ ई०) जाज दे त्रेपरबिंद (मृत्यु १४८४ ई०) जाज स्कोलारियस् ज्यादा प्रसिद्ध हैं।

४ नवम्बर सन् १४९७ ई० की तारीख पेदुआ और इतालीके इतिहासमें अपना 'खास" महत्त्व रखती है। इसी दिन प्रोफसर ल्युनियसने पदुआके विश्वविद्यालय भवनमें अरस्तूके दर्शनको उस भाषा द्वारा पढाया, जिसमें नौ सौ साल पहिले खुद अरस्तू अथेन्समें पढाया करता था। प्राचीनता-पंथियोंको गर्व हुआ कि उन्होंने कालकी सुईको पीछे लौटा दिया, किन्तु वह उनके बसकी बात नहीं थी, इसे इतिहासने आगे साबित किया।

४ नवम्बर १४९७ ई०के बाद भी रोश्दका पठन-पाठन पदुआमें भी जारी रहा यह बतला चुके हैं। सत्रहवीं सदीमें जसुइत-पंथियोंने रोश्दपर भी हमला शुरू किया, किन्तु सबसे जबदस्त हमला जो चुपचाप हो रहा था, वह था साइंसकी ओरसे, गेलेलियोकी दुरबीन न्यूटनके गुरुत्वाकर्षण और भापके इंजनके रूपमें।

३ यूरोपीय दर्शन

३. यूरोपीय दर्शन

दशम अध्याय

सत्रहवीं सदीके दार्शनिक

(विचार-स्वातन्त्र्यका प्रवाह)

[ल्योनार्दो दा विन्ची (१४५१-१५१९)]—नवीन यूरोपके स्वतन्त्र विचारक और कलाकारका एक नमूना था दा विन्ची, जिसकी कला (चित्र) में ही नहीं, लेखोंमें भी नवयुगकी ध्वनि थी किन्तु वह अपने ग्रंथोंको उस वक्त प्रकाशित कर पोप और धर्माचार्योंके कोपका भाजन नहीं बनना चाहता था, इसलिए उसके वैज्ञानिक ग्रन्थ उस वक्त प्रकाशमें नहीं आये।

१४५५ ई०में छापेका आविष्कार ज्ञानके प्रचारमें बड़ा सहायक साबित हुआ, निश्चय ही छापके बिना पुस्तकों द्वारा ज्ञानका प्रचार उतनी शीघ्रतासे न होता, जितना कि वह हुआ। पोप-पुरोहित परिश्रमसे देरमें लिखी दो चार कापियोंको जलवा सकते, किन्तु छापेने सकड़ों हजारों कापियोंको तयार कर उनके प्रयत्नको बहुत हद तक असफल कर दिया।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदियां हमारे यहां सन्तों और सूफियोंको पैदा कर दुनियाकी तुच्छता—अतएव दुनियाकी समस्याओंके भुलाने—का प्रचार कर रही थीं, लेकिन इसी समय यूरोपमें बुद्धिको धर्म और रूढ़ियोंसे स्वतन्त्र करनेका प्रयत्न बहुत जोखिम उठाकर हो रहा था। लारेंजो वाला (१४०८-५७ ई०) ने खुलकर शब्दोंके धनी धर्म-रूढ़िके हिमायती दार्शनिकोंपर प्रहार किया। उसका कहना था, शब्दोंके दिमागी तर्कको छोड़ो और सत्यकी खोजकेलिए वस्तुओंके पास जाओ। कोलम्बस (१४४७-१५०६),

वास्को-दा-गामा (१४९९ १५२४) ने अमेरिका और भारतके रास्ते पाये। परासेलसस (१४९३ १५४१) और फान् हेल्माट (१५७७ १६४४) ने पुस्तक पढ़ना गुलामीका छोड़ प्रकृतिके अध्ययनपर जोर दिया। उस वक्तके विश्वविद्यालय धर्मकी मुट्ठीमें थे, और साइंस-संबंधी गवेषणाके लिए वहाँ कोई स्थान न था, इसीलिए साइंसकी खोजके लिए स्वतंत्र संस्थाएँ स्थापित करनी पड़ी। लेलसिया (१५७७-१६०४) ने इसी गवेषणाओंके लिए नेपल्समें पहिला रसायनशाला खोली। १५४३ में वेसालियस् (१५१५ ६४ ई०) ने शरीरशास्त्रपर साइंस सम्मत ढंगसे पहिला पुस्तक लिखी, इसमें उसने बल्लाको जगह हरेकतरह शरीर देखकर निर्णयकी कोशिश की। धर्म बहुत परेशानीमें पड़ा हुआ था, वह मनुष्यके इरसे साइंसकी प्रगतिको रोकना चाहता था। १५३३ ई०में सर्वेतस और १६०० ई०में ब्रूनोको आगमें जलाकर साइंसके शहीद बनाये गये। यह वह समय था जब कि भारतमें अकबर उदारतापूर्वक साइंसवेत्ताओंके खूनके प्यासे इन ईसाई पुरोहितों और दूसरे धर्मियोंके साथ समानताका बर्ताव करते हुए सबकी धार्मिक शिक्षाओंको सुनता तथा एक नये धर्म द्वारा उनका समन्वय करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ था। सोलहवीं सदीके पीछे विरोधी प्रयोग हिमायती विद्वानोंमें मोन्ताञ्[1] (१५६१ १६२६) तथा सांचेज़ ग्राह (१५४६ १६०१) के साशज[2] (१५६२ १६३२) के नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं।

पन्द्रहवीं सदीके विचार-स्वातन्त्र्य और सोलहवीं सदीके भौगोलिक खगोलिक आविष्कारोंने कूप मंडूकताके दूर करनेमें बहुत मदद की, और इस प्रकार सत्रहवीं सदीके यूरोपमें कुछ खुली हवा सी आने लगी थी। इस वक्तके दार्शनिकोंकी विचारधारा दो प्रकारकी देखी जाती है। (१) कुछका कहना था, कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष, और तजर्बा (प्रयोग) ही ज्ञानका एक मात्र आधार है इन्हें प्रयोगवादी कहते हैं। बेकन हाब्स, लाक, बर्कले, ह्यूम प्रयोगवादी दार्शनिक थे (२) दूसरे दार्शनिक ज्ञानको इन्द्रिय या

[1] Montaigne [2] Sanchez

प्रयोग-गम्य नहीं बुद्धिगम्य मानते थे। इन्हें बुद्धिवादी कहा जाता है दे-कार्त, स्पिनोजा, लाइब्निट्ज़ इस प्रकारके दार्शनिक थे।

§ १—प्रयोगवाद[1]

प्रयोगवाद प्रयोग या तजर्बेको ज्ञानका साधन बतलाता है, किन्तु प्रयोगके जरिये जिस सच्चाईको वह सिद्ध करता है वह केवल भौतिक तत्त्व, केवल विज्ञानतत्त्व—अर्थात अद्वैत भी हो सकता है—अथवा भौतिक और विज्ञान दोनों तत्त्वोंको माननेवाला द्वैतवाद भी। हॉब्स, टोलण्ड, अद्वैती भौतिकवादी थे, स्पिनोज़ा अद्वैती विज्ञानवादी और बेकन दे कार्त लीब्निट्ज़ द्वैतवादी थे।

१. अद्वैत-भौतिकवाद

(१) हॉब्स (१५८८-१६७९ ई०)—टामस हाब्सने अध्ययन आक्सफोर्डमें किया। पेरिसमें उसका परिचय देकार्तसे हुआ। जो देश उद्योग धंधे और पूँजीवादका बानी बनने जा रहा था, यह ज़रूरी था कि उसका नवर स्वतन्त्र विचारकोंमें भी पहिला हो इसलिए सत्रहवीं सदीके आरंभमें बेकन (१५६१-१६२६) का विचार-स्वातन्त्र्यका प्रचार और मध्ययुगीनताका विरोध करना, तथा हाब्स, लॉक जैसे दार्शनिकोंका उसे आगे बढ़ाना, कोई आकस्मिक घटना न थी। बेकन दार्शनिक विचारोंमें प्रगतिशील था, किन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि दार्शनिक प्रगतिशीलता राजनीतिमें भी वही स्थान रखे। जब इंगलैंडमें सामन्तवादके खिलाफ ग्रामवलके नेतृत्वमें जनताने क्रान्तिका झंडा उठाया तो हाब्स क्रान्ति-विरोधियोंके दलमें था। ३० जनवरी १६४९ को शाहजहाँके समकालीन राजा चार्लसको गिरफ्तार कर जनताने सामन्तवादियोंपर विजय पाई। हॉब्स जैसे कितने ही व्यक्ति उससे संतुष्ट नहीं हुए। नवम्बर १६५१ में हॉब्स फ्रांस भाग गया, लेकिन उसे यह समझनेमें देर न लगी, कि

[1] Empiricism

गुजरा जमाना नहीं लौट सकता और उसी साल लौटकर उसने अधिनायक आलिवर क्रामवेल (१५९९-१६५८) से समझौता कर लिया।

हॉब्स लोकतंत्रवादका विरोधी था। उसके अनुसार दर्शन कारणोंसे कार्य और कार्योंसे कारणके ज्ञानका बतलाता है। हम इन्द्रियोंके साक्षात्कार द्वारा वस्तुका ज्ञान (सिद्धान्त) प्राप्त कर सकते हैं या इस प्रकारके सिद्धान्तसे वस्तुके ज्ञानको भी पा सकते हैं।

दर्शन गति और क्रियाका विज्ञान है। ये गति ज्ञान प्राकृतिक पिंडोंके भी हो सकते हैं, राजनीतिक पिंडोंके भी। मनुष्यका स्वभाव, मानसिक जगत्, राज्य प्राकृतिक घटनाएं उन्हीं गतियोंके परिणाम हैं।

ज्ञानका उद्गम इन्द्रियोंका वेदन (=प्रत्यक्ष) है, और वेदना मस्तिष्क या किसी इसी तरहके आभ्यन्तरिक तत्त्वमें गतिके सिवा और कुछ नहीं है। जिसे हम मन कहते हैं, वह मस्तिष्क या सिरके भीतर मौजूद इसी तरहके किसी प्रकारके भौतिक पदार्थकी गतिमात्र है। विचार या प्रतिक्रिया, मस्तिष्क और हृदयकी गतियां—अर्थात् भौतिक पदार्थोंकी गतियां—हैं। भौतिक तत्त्व और गति ये मूलतत्त्व हैं, वे जगत्की हर एक वस्तु—जड़ चेतन सभी—का व्याख्या करनेके लिए पर्याप्त हैं।

हॉब्सने ईश्वरके अस्तित्वका साफ तौरसे इन्कार नहीं किया उसका कहना था कि मनुष्य 'ईश्वरके बारेमें कुछ नहीं जान सकता।'

अच्छा बुरा—पाप पुण्य—हॉब्सके लिए सापेक्ष बातें हैं कोई परमार्थतः न अच्छा है न परमार्थतः बुरा।

हॉब्स अरस्तूकी भांति मनुष्यको सामाजिक प्राणी नहीं बल्कि 'मानव भेड़िया' कहता था। मनुष्य हमेशा धन मान, प्रभुता, या शक्तिकी प्रतियोगितामें रहता है उसका झुकाव अधिकके लाभ तथा द्वेष और युद्धकी ओर होता है। जब उसके रास्तेमें दूसरा प्रतियोगी आता है, तो फिर उसे मार डालने अधीन बना लेने, या भगा देनेकी कोशिश करता है।

(२) टोलैंड (१६७०-१७२१ ई०)—हॉब्सकी भांति उसका देशभाई टोलैंड भी भौतिकवादका हामी, तथा बर्कलेके विज्ञानवादका विरोधी

था। भौतिक तत्त्व गतिशून्य नहीं बल्कि सक्रिय द्रव्य या शक्ति है। भौतिक तत्त्व शक्ति है, और गति, जीवन, मन सब इसी शक्तिकी क्रियाएं हैं। चिन्तन उसी तरह मस्तिष्ककी क्रिया है, जिस तरह स्वाद जिह्वाका।

२—अद्वैत विज्ञानवाद

स्पिनोज़ा (१६३२-७७ ई०)—बारूच ने स्पिनोज़ा हालैंडमें एक धनी यहूदी परिवारमें पैदा हुआ था। उसने पहिले इब्रानी साहित्यका अध्ययन किया पीछे फ्रेंच दार्शनिक द-कार्तके ग्रंथोंको पढ़कर उसकी प्रवृत्ति स्वतन्त्र दार्शनिक चिन्तनकी ओर हुई। उसके धर्मविरोधी विचारोंसे उसके सधर्मी नाराज हो गये और उन्होंने १६३६ ई० में उसे अपने धर्म मन्दिरसे निकाल बाहर किया जिससे स्पिनोज़ाको अम्स्टडम् छोड़नेपर बाध्य होना पड़ा। जहाँ-तहाँ धक्के खाते अन्तमें १६६९ में (औरंगजेबके शासनारम्भ कालमें) वह हागमें जाकर बस गया, जहाँ उसकी जीविकाका जरिया चश्मेके पत्थरोंको घिसना था। शताब्दियों तक स्पिनोज़ाको नास्तिक समझा जाता था, और ईसाई यहूदी दोनों उससे घृणा करनेमें होड़ लगाये हुए थे।

स्पिनोज़ा पहिला दार्शनिक था, जिसने मध्यकालीन लोकोत्तरवाद तथा धर्म रूढ़िवादका साफ शब्दोंमें खंडन करते हुए बुद्धिवाद और प्रकृतिवादका जबर्दस्त समर्थन किया हर तरहके शास्त्र या धर्मग्रंथके प्रमाणसे बुद्धि ज्यादा विश्वसनीय प्रमाण है। धर्मग्रंथोंको भी सच्चा साबित होनेके लिए उसी तरह बुद्धिकी कसौटीपर ठीक उतरना होगा जिस तरह कि दूसरे ऐतिहासिक लेखों या ग्रंथोंको करना पड़ता है। बुद्धिका काम है यह जानना कि भिन्न भिन्न वस्तुओंमें आपसका क्या संबंध है। प्राकृतिक घटनाएं परस्पर संबद्ध हैं। यदि उनकी व्याख्याकेलिए प्रकृतिसे परेकी किसी लोकोत्तर चीजको लाते हैं तो वस्तुओंका वह आन्तरिक संबंध विच्छिन्न हो जाता है, और सत्य तक पहुँचनेकेलिए जो एक जरिया हमारे पास था, उसे ही हम खो देते हैं। इस तरह बुद्धिवाद और प्रकृतिवाद (=भौतिकवादी प्रयोगवाद) दोनोंका हम स्पिनोज़ाके दर्शनमें समिश्रण पाते हैं।

लेकिन स्पिनोज़ा प्रकृति (=भौतिक) वाद और हॉब्सके भौतिकवादमें अन्तर है। हॉब्स शुद्ध भौतिकवादी था। वह सबकी व्याख्या भौतिक तत्त्वों और उनकी शक्ति या गतिसे करता था किन्तु इसके विरुद्ध स्पिनोज़ा स्पिनोज़ा था अद्वैतवादी अद्वैतिवादी भाँति "यह सब ईश्वर (=ब्रह्म) है और ईश्वर (=ब्रह्म) यह है।" इस तरह उसका जोर भौतिकतत्त्व पर नहीं बल्कि आध्यात्मतत्त्वपर था।

(परमतत्त्व)—एक सान्त वस्तु अपनी सत्ताके लिए दूसरे अनन्त तत्त्वपर निर्भर है और इन आधारभूत तत्त्वोंमेंसे भी प्रत्येक दूसरे अनन्त तत्त्वोंपर निर्भर है। इस तरह एकका आधार दूसरा, दूसरेका आधार तीसरा मानते जानेपर हम किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सकते। कोई ऐसा तत्त्व होना चाहिए, जो स्वयंसिद्ध, स्वयं अपना आधार हो जो सभी आधेयों, घटनाओंका अवलम्ब है। लेकिन, ऐसे स्वतः सिद्ध तत्त्वके ढूँढ़नेके लिए हमें प्रकृतिसे परे किसी सत्ताकी जरूरत नहीं। प्रकृति या सृष्टि स्वयं इस काम तथा ईश्वरकी आवश्यकताको पूरा करती है। इस तरह प्रकृति या ईश्वर स्वयं सर्वमय, अनन्त और पूर्ण है इसके परे कुछ नहीं है न कोई लोकोत्तर तत्त्व है। प्रकृति भी गतिशून्य नहीं बल्कि सक्रिय परिवर्तनशील है—सभी तरहकी शक्तियाँ वहाँ हैं। हर एक अनन्त शक्ति, ईश्वरका गुण है। मनुष्य इन गुणोंमेंसे सिर्फ दो गुणोंको जानता है—विस्तार (=परिमाण) और चिन्तन और यही दोनों हैं भौतिक और मानसिक शक्तियाँ। सभी भौतिक पिंड और भौतिक घटनाएँ विस्तार-गुणकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं और सभी मन तथा मानसिक अनुभव चिन्तन गुणकी। चूँकि, विस्तार और चिन्तन दोनों एक परमतत्त्वके गुण हैं—इसलिए भौतिक मानसिक पदार्थोंके संबंधमें कोई कठिनाई नहीं है। जितनी सान्त स्थितियाँ हमें दृष्टिगोचर होती हैं वह भ्रम या माया नहीं बल्कि वास्तविक है—उस वक्त जब कि वह घटित हो रही है, और उस वक्त भी जब कि वह लुप्त होती है तब भी उसका अत्यंताभाव नहीं होता, क्योंकि वह एक परमतत्त्व मौजूद रहता है, जिसमें कि अनेक बदलते और फिर बदलते रहते हैं।

३. द्वैतवाद

लॉक (१६३२-१७०४ ई०)—जॉन लॉकने आक्सफोर्डमें दर्शन प्राकृतिक विज्ञान और चिकित्साका अध्ययन किया था। बहुत सालों तक (१६६६-८३ ई०) इंगलैंडके एक रईस (अर्ल शाफ्टसबरी) का सेक्रेटरी रहा।

प्रयोग या अनुभवसे परे कोई स्वतः सिद्ध वस्तु है, लॉक इससे इन्कारी था। हमारा ज्ञान हमारे विचारोंसे पर नहीं पहुँच सकता। ज्ञान तभी सच हो सकता है, जब कि हमारे विचारोंको वस्तुओंकी सत्यता स्वीकार करती हो—अर्थात् विचार प्रयोगके विरुद्ध न जाते हों।

(१) तत्त्व—मानसिक और भौतिक तत्त्व—प्रत्यक्ष सिद्ध और अप्रत्यक्ष सिद्ध—दो पदार्थ तो हैं ही, इनके अतिरिक्त एक तीसरा आत्मतत्त्व ईश्वर है। अपनी प्राकृतिक योग्यताका ठीक तौरसे उपयोग करके हमें ईश्वरका ज्ञान हो सकता है।

अपने कामोंके बुरे होनेके बारेमें हमारी जो राय है—जो कि हमारे सीखे आचारज्ञानसे तयार होती है—इसीको आत्माकी पुकार कहा जाता है, वह इससे अधिक कुछ नहीं है। आचार नियम स्वयंभू (=स्वतः उत्पन्न) नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्हें न स्वयंभू देखा जाता है, और न सर्वत्र एक समान पाया जाता है। ईश्वर-संबंधी विचार भी स्वयंभू नहीं है। यदि ऐसा होता तो कितनी ही जातियोंको ईश्वरके ज्ञानसे वंचित अथवा उसके जाननेके लिए उत्सुक न देखा जाता। इसी प्रकार आग, सूर्य, गर्मीके ज्ञान भी सीखनेसे आते हैं, स्वयंभू नहीं हैं।

(२) मन—मन पहिले-पहिल साफ सलेट जैसा होता है, उसमें न कोई विचार होते हैं, न कोई छाप या प्रतिबिंब (=वासना)। ज्ञानकी सामग्री हम अनुभव (=प्रयोग) द्वारा प्राप्त होती है, अनुभवके ऊपर हमारे ज्ञानकी इमारत खड़ी है।

---

[1] Innate

लाक कहता है कारण वह चीज है, जो किसी दूसरी चीजका बनाता है और काय वह है जिसका आरम्भ किसी दूसरी चीजसे है।

इन्द्रियोंसे प्राप्त वेदना या उसपर होनेवाला विचार ही हम देश-काल-विस्तार भेद-अभेद आचार तथा दूसरी बातोंके संबंधका ज्ञान देते हैं यही हमारे ज्ञानकी सामग्रीको प्रस्तुत करते हैं।

लाक चाहता था, कि दर्शनको कोरी दिमागी उड़ानसे बचाकर प्रकृतिके अध्ययनमें लगाया जाये। जिज्ञासा करने प्रश्नोंके हल ढूँढ़नेसे पहिले हमें अपनी योग्यताका निरीक्षण करना चाहिए, और देखना चाहिए किस ओर कितने विषयको हमारी बुद्धि समझ सकती है। "अपनी योग्यतासे परेकी जिज्ञासाएं अनेक नये प्रश्न कितने ही विवाद खड़े कर देती हैं, जिससे हमारे संदेह ही बढ़ते हैं।

§ २—बुद्धिवाद (द्वैतवाद)

वैसे तो स्पिनोजाके अद्वैती विज्ञानवादको भी बुद्धिवादमें गिना जा सकता है, क्योंकि विज्ञानवाद भौतिक जगत्की सत्ताको महत्त्व नहीं देता, किन्तु स्पिनोजाके दर्शनमें विज्ञानवाद और भौतिकवादका कुछ इतना सम्मिश्रण है, तथा प्रकृतिकी वास्तविकतापर उसका इतना जोर है, कि उसे केवल विज्ञानवादमें नहीं गिना जा सकता। बाकी सत्रहवीं सदीके प्रमुख बुद्धिवादी दार्शनिक देकार्त और लाइबनिट्ज हैं, जो दोनों ही द्वैतवादी भी हैं।

१—देकार्त (१५९६-१६५० ई०)

रने देकार्तका जन्म फ्रांसके एक रईस परिवारमें हुआ था। दार्शनिकके अतिरिक्त वह कितनी ही पुरानी भाषाओंका पंडित तथा प्रथम श्रेणीका गणितज्ञ था उसकी ज्यामिति आज भी कार्तेसीय ज्यामितिके नामसे मशहूर है।

यूरोपके पुनर्जागरण कालके कितने ही और विद्वानोंकी भाँति देकार्त भी अपने समयके ज्ञानकी अवस्थासे असन्तुष्ट था। सिर्फ गणित एक विद्या

थी, जिसकी अवस्थाको वह सन्तापजनक समझता था और उसका कारण उसका आशय वह नपी-तुली नियमबद्ध प्रक्रियाका देना था। उसने गणित-के ढंगका दर्शनमें भी इस्तेमाल करना चाहा। सन्त अगस्तिनकी भांति उसने भी "बाकायदा संदेहसे सोचना आरंभ किया—मैं दुनियाकी हर चीजको संदिग्ध समझ सकता हूँ, लेकिन अपने 'होने' के बारेमें सन्देह नहीं कर सकता 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।" इसे सच इसलिए मानना पड़ता है, क्योंकि यह "स्पष्ट और असंदिग्ध है। इस तरह हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं, 'जिसे हम अत्यन्त स्पष्ट और असंदिग्ध पाते हैं, वह सच है।' इस तरहके स्पष्ट और असंदिग्ध अतएव सच विचार हैं—ईश्वर रेखा गणितके स्वयसिद्ध, और 'नहींसे कुछ नहीं पैदा हो सकता' की तरहके अनादि सत्य। यद्यपि द-कातने स्पष्ट और असंदिग्ध विचार होनेसे ईश्वरको स्वयसिद्ध मान लिया था किन्तु हवाका रुख इतना प्रतिकूल था कि ईश्वरकी सिद्धिकेलिए अलग भी उसे प्रयत्न करना पड़ा। दृश्य जगत्-के भी 'स्पष्ट और असंदिग्ध' अंशको उसने सत्य कहा। जगत् ईश्वरने बनाया है, और अपनी स्थितिको जारी रखनेकेलिए वह बिलकुल ईश्वरपर निर्भर है। ईश्वरनिर्मित जगतके दो भाग हैं—काया या विस्तारयुक्त पदार्थ और मन या सोचनेवाला पदार्थ। आत्मा और शरीरको वह अक्विनास की भाँति अभिन्न नहीं, बल्कि अगस्तिनकी भाँति सर्वथा भिन्न—एक दूसरेसे बिलकुल अलग-अलग—कहता था। यह भगवान्की दिव्य सहायता है, जिससे कि आत्मा शरीरकी गतिको उत्पन्न नहीं, बल्कि संचालित कर सकता है। द-कात इस प्रकार लोकोत्तरवादी तथा अगस्तिनकी भांति ईसाई धर्मका एक जबर्दस्त सहायक था। शरीर और आत्माका आपसमें कोई संबंध नहीं इस धारणाने द-कातको यह माननेके लिए भी मजबूर किया, कि जब दोनोंमेंसे किसी एकमें कोई परिवर्तन होता है तो भगवान बीचमें दखल देकर दूसरेमें भी वही परिवर्तन पैदा कर देता है।

अंग्रेज दार्शनिक हाब्स द-कातका समकालीन तथा परिचित था, किन्तु दोनोंके विचारोंमें हम जमीन आसमानका अंतर देखते हैं। द-कात पूरा

लोकोत्तरवाद [illegible] इसीपर वह ज्ञानको लोकोत्तरवाला मानता था किन्तु [illegible] लोकोत्तरवादके विरुद्ध [illegible] हुए समस्याओं [illegible] में ढूंढनेका प्रयत्न किया था। [illegible] ज्ञानके [illegible] बहुत प्रयत्न उसने, विचार और चिन्तन [illegible] और [illegible] भी उसने ज्ञानसे लिया किन्तु [illegible] दर्शनमें [illegible] यंत्रवादकी [illegible] यह समझता था इसीलिए [illegible] द्वैतवादका [illegible] उसे। प्रकृति ईश्वर [illegible] या विज्ञानवादका [illegible] रहस्यवादी [illegible] की कोशिश की।

[illegible] अनुसार ज्ञान [illegible] मनुष्य [illegible] जान सकता है, वह ज्ञान तथा अपने जीवनके आचरण अथवा स्वास्थ्यका रक्षा और सभी कलाओं (=विद्याओं) के आविष्कारक पूर्ण ज्ञानका। इस तरह [illegible] परिभाषामें [illegible] लौकिक लोकोत्तर सारे ही [illegible] और [illegible] (=अविसंवादि) ज्ञान [illegible]।

ईश्वरके [illegible] बारेमें [illegible] कहना है—भगवान [illegible] शुरूमें गति और विश्रामके साथ भौतिक तत्त्वों (=प्रकृति) को पैदा किया। प्रकृतिमें जो गति उसने उस वक्त पैदा की उसे उसी मात्रामें जारी रखनेके लिए उसकी सहायताकी अब भी जरूरत है इस प्रकार ईश्वरको सदा सक्रिय रहना पड़ता है।

आत्मा या सोचनेवाली वस्तु उसे कहते हैं जो सन्देह करने, समझने, ग्रहण-समर्थन-अस्वीकार इच्छा प्रतिषेध करनेकी क्षमता रखती है।

गंभीर विचारक होते हुए भी [illegible] मध्ययुगीन मानसिक बंधनोंसे अपनेको आजाद नहीं कर सका था और अपने दर्शनको सक्रिय रखनेके लिए भी वह धर्मशास्त्रियोंका कोरभाजक नहीं बनना चाहता था। स्वयं [illegible] के अपने वर्गका भी स्वार्थ इसीमें था कि धर्म और उसके साथ प्राचीन समाजकी व्यवस्थाको न छेड़ा जाये।

२ लाइब्निट्ज (१६४६-१७१६ ई०)

गोटफ्रीड विल्हेल्म लाइब्निट्ज लीपज़िग (जर्मनी) में एक मध्यवित्तक परिवारमें पैदा हुआ था। विश्वविद्यालयमें वह कानून दर्शन और गणित

का विद्यार्थी रहा।

दर्शन—लाइपनिट्ज आत्म कणवाद[1]का प्रवर्तक था। उसके दर्शनमें भौतिक पदार्थ—और अवकाश भी—वस्तु सत्य[2] नहीं है मन जिन्हें अनुभव करता है उसके ये सिर्फ दिखाव मात्र है। आत्मकण (=मन, विज्ञान) ही एकमात्र वस्तु सत्य है। सभी आत्मकण विकासमें एकसे नहीं है। कुछका विकास अत्यन्त अल्प है, वह सुप्तमें है। कुछका विकास इनसे कुछ ऊँचा है वह स्वप्न अवस्थाकी चेतना जैसे है। कुछका विकास बहुत ऊँचा है, वह पूरी जागृत चेतना जैसे है। और इन सबसे ऊँचा चरम विकास ईश्वरका है। उसकी चेतना अत्यंत गंभीर अत्यंत पूर्ण, और अत्यंत सक्रिय है। आत्मकणोंकी संख्या अनन्त और उनके विकासके दर्जे भी अनन्त है—उनमें इतनी भिन्नता है, कि कोई दो आत्मकण एकसे नहीं है। इस प्रकार लाइपनिट्ज द्वैती विज्ञानवादको मानता है।

प्रत्येक आत्मकण अपनी सत्ता और गुणके लिए दूसरे आत्मकणका मुहताज नहीं है एक आत्मकण दूसरेको प्रभावित नहीं कर सकता। लेकिन सर्वोच्च आत्मकण ईश्वर इस नियमका अपवाद है—उसने एक तरह अपनेमेंसे इन आत्मकणोंको पैदा किया। आत्मकण अपनी क्रियाओंके संबंधमें जो आपसमें सहयोग करते दीख पड़ते हैं, वह 'पहिलेसे स्थापित समन्वय'[3]के कारण है— भगवान्‌ने उन्हें इस तरह बनाया है, जिसमें वह एक दूसरेसे सहयोग करें।

देकार्तका यह विचार कि ईश्वरने भौतिक तत्त्वोंमें गति एक निश्चित मात्रामें—घड़ीकी कुंजीकी भाँति—भर रखी है, लाइपनिट्जको पसंद न था, यद्यपि धर्म, ईश्वर, द्वैतवाद आदिका जहाँ तक संबंध था वह उससे सहमत था। लाइपनिट्जका कहना था—पिंड चलते हैं, पिंड विश्राम करते हैं—जिसका अर्थ है गति आती है, और नष्ट भी होती है। यह (संसार-) प्रवाहका सिद्धान्त—अर्थात प्रकृतिमें मेढक-कूदान नहीं सम प्रवाह है—के

---

[1] Monadism [2] Objective reality [3] Harmony

खिलाफ जाता है। संसारमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जो क्रिया नहीं करता। जो क्रिया नहीं करता वह है ही नहीं। लाइप्निट्ज़ने इस कथन द्वारा अपने हजार वर्ष पहिले बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्तिकी बातको दुहराया। "अर्थ क्रियासमर्थ है वही ठीक सत्य है।"[1]

लाइपनिट्ज़ विस्तारको नहीं बल्कि शक्तिको शरीरका वास्तविक गुण कहता है। बिना शक्तिके विस्तार नहीं हो सकता, अतएव शक्ति मुख्य गुण है।

अवकाश या देश[2] सापेक्ष पदार्थ है, उसकी परमार्थ सत्ता नहीं है। वस्तुएं जिसमें स्थित हैं वह देश है, और वह वस्तुओंके नाशके साथ नष्ट हो जाता है। शक्तियाँ देशपर निर्भर नहीं हैं, किन्तु देश अपनी सत्ताके लिए शक्तियोंपर अवश्य निर्भर है। इसलिए वस्तुओं (=आत्मकणों)के बीचमें तथा उनसे पर देश नहीं हो सकता, जहाँ शक्तियाँ खतम होती हैं, वहाँ देश भी खतम होता है। देशकी यह कल्पना आइन्स्टाइनके सापेक्षतावाद[3] के बहुत समीप है।

(१) ईश्वर—लाइपनिट्ज़के अनुसार दर्शन भगवान् तक पहुँचाता है, क्योंकि दर्शन भौतिक और यांत्रिक सिद्धान्तोंकी व्याख्या करना चाहता है, उसकी उस व्याख्याके बिना चरम कारण भगवान्को हम मान ही नहीं सकते। भगवान स्वनिर्मित गौण या उपादान-कारणों द्वारा सभी चीज़ोंको बनाता है। भगवानने दुनिया कोई अच्छी तो नहीं बनाई है—इसका जवाब लाइपनिट्ज़ देता है—भई! दुनियाको भगवान्ने उतना अच्छा बनाया है, जितना अच्छा कि वह बनाई जा सकती थी—इसमें जितना संभव हो सकता है उतना वैचित्र्य और पारस्परिक समन्वय है। यह ठीक है कि यह पूर्ण नहीं है, इसमें दोष है। किन्तु, भगवान सीमित रूपमें कैसे अपने स्वभावको व्यक्त कर सकता था? दोष (=बुराइयाँ) भी अनावश्यक नहीं है। चित्रमें जैसे काली

---

[1] "अर्थक्रियासमर्थं यत् तदत्र परमार्थ सत्"—प्रमाणवार्त्तिक।
[2] Space [3] देखो "विश्वकी रूपरेखा" में सापेक्षतावाद

जमीनकी आवश्यकता होती है उसी तरह अच्छाइयों (=शिव)को व्यक्त करनेकेलिए बुराइयोंकी भी जरूरत है। यहां समाजके अत्याचार उत्पीडनके समर्थनके लिए लाइप्निटज कैसी कायरतापूर्ण युक्ति दे रहा है!! यदि अपनी अच्छाइयोंका दिखलानेकेलिए ईश्वरने चंद व्यक्तियोंको अपना कृपापात्र और ९० सैकड़ोंको पीड़ित, दुखी नारकीय बना रखा है तो ऐसे भगवानसे 'त्राहि माम्।

(२) जीवात्मा—जीव अगणित आत्मकणोंमें एक है—यह बतला चुके हैं। आत्माको लाइप्निटज अचेतन एकरस मानता है।— आत्मा मोम नहीं है, जो कि उसपर ठप्पा (=वासना) मारा जा सके। जो आत्माको ऐसा मानते हैं वह आत्माको भौतिक पदार्थ बना देते हैं।' आत्माके भीतर भाव (सत्ता), द्रव्य, एकता समानता कारण, प्रत्यक्ष कार्यकारण, ज्ञान परिमाण—यह सारे ज्ञान मौजूद हैं। इनकेलिए आत्मा इन्द्रियोंका मुहताज नहीं है।

(३) ज्ञान—बुद्धिसंगत ज्ञान तभी संभव है जब हम कुछ सिद्धान्तोंको स्वयंभू सिद्ध मान लें जिसमें कि उनके आधारपर अपनी युक्तियोंको इस्तेमाल किया जा सके। समानता (=सादृश्य) और विरोध इन्हीं स्वयंभू सिद्धान्तोंमें हैं। शुद्ध चिन्तनके क्षेत्रमें सच्चाईकी कसौटी यही समानता और विरोध है। प्रयोग (=तजर्बे)के क्षेत्रमें सच्चाईकी कसौटी पर्याप्त युक्ति ही स्वयंभू सिद्धान्त है। दर्शनका मुख्य काम ज्ञानके मौलिक सिद्धान्तों—जोकि साथ ही सत्यताके भी मौलिक सिद्धान्त या पूर्वनिश्चय हैं—का आविष्कार करना है।

हाब्स और देकार्त दोनों बिलकुल एक दूसरेके विरोधीवादी—प्रकृतिवाद और नास्तिकवाद—को मानते थे। स्पिनोजाका दिल देकार्तके साथ था, दिमाग हॉब्सके साथ, जिससे वह देकार्तकी मदद नहीं कर सका, और उसका दर्शन नास्तिकता और भौतिकवादकेलिए रास्ता साफ करनेका काम देने लगा। लाइपनिटज चाहता था, कि दर्शनको बुद्धिसंगत बनानेके लिए मध्य-युगीनतामें कुछ आगे जरूर बढ़ना चाहिए किन्तु इतना नहीं

कि स्पिनोज़ाकी भाँति लोग उसे भौतिकवादी कहने लगें। साथ ही ईश्वर आत्मा सृष्टि आदिके धार्मिक विचारोंको भी वह अपने दर्शनमें जगह देना चाहता जिसमें कि सभ्य समाज उसे एक प्रतिष्ठित दार्शनिक समझे। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित हो स्पिनोज़ाके समन्वय—प्रकृति ईश्वर अद्वैत तत्त्व—को न माना, उसने आत्मकण सिद्धान्त निकाला, जिसमें स्पिनोज़ाका विज्ञानवाद भी था और देकार्तका द्वैतवाद, ईश्वरवाद भी।

एकादश अध्याय

अठारहवीं सदीके दार्शनिक

न्यूटन (१६४२-१७२७ ई०) के सत्रहवीं सदीके आविष्कार गुरुत्वाकर्षण (१६४७ ई०) और विश्वकी यांत्रिक व्याख्यान सत्रहवीं सदी और आगेकी दार्शनिक विचार धारापर प्रभाव डाला। अठारहवीं सदीमें हर्शल (१७३८-१८२२ ई०) ने न्यूटनके यांत्रिक सिद्धान्तके अनुसार शनिकी कक्षामें और पर वरुण[1] ग्रह तथा शनिके दो उपग्रहोंका (१७८९ ई०) आविष्कार किया। इसके अतिरिक्त उसने एक दूसरेके गिर्द घूमनेवाले ८०० युग्म (=जुड़वें) तारे खोज निकाले जिससे यह भी सिद्ध हो गया कि न्यूटनका यांत्रिक सिद्धान्त सौरमंडलके आगे भी लागू है। शताब्दीके अन्त (१७९९ ई०) में लाप्लासने अपनी पुस्तक खगोलीय यंत्र[2] लिखकर उक्त सिद्धान्तकी और पुष्टि की। इधर भौतिक साइंस[3]ने भी ताप, ध्वनि, चुम्बक, बिजलीकी खोजोंमें नई बातोंका आविष्कार किया। रम्फोर्डने सिद्ध किया कि ताप भी गतिका एक भेद है। हाक्सबीने १७०५ ई० में प्रयोग करके, पहिले-पहिल बतलाया, कि ध्वनि हवापर निर्भर है, हवा न होनेपर ध्वनि नहीं पैदा हो सकती।

रसायन शास्त्रमें प्रीस्टली (१७३३-१८०४ ई०) और शील (१७४२-८६ ई०)ने एक दूसरेसे स्वतंत्र रूपसे आक्सीजनका आविष्कार किया। कवेंडिश (१७३१-१८१०)ने आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलाकर साबित किया कि पानी दो गैसोंसे मिलकर बना है।

---

[1]Uranus [2]Celestial Mechanics [3]Physics

इसी शताब्दीमें हटन (१७२६ ९७ ई०) ने अपना पुस्तक पृथिवी सिद्धान्त[1] लिखकर भूगर्भ शास्त्रकी नींव डाली और जार (१७४६ १८६३ ई०) ने पत्थरके टीलेका आविष्कारकर प्रागैतिहासिक रहस्यमय नया तरीका चिकित्साशास्त्रमें प्रारम्भ किया।

अठारहवीं सदीमें साइंसकी जो प्रगति हमने देखी है वह तो हो ही सकता था कि उसका प्रभाव दार्शनिक न पड़ता। इसीलिए हम अठारहवीं सदीके दार्शनिकोंका सिर हमेशा ऊँचा नहीं पाते, बल्कि सत्रहवीं सदी ही नहीं विज्ञानवादी बर्कले और काण्टको भी प्रयोगकी पूरी सहायता लेते हुए अपने काल्पनिकवादका समर्थन करना चाहता है।

§ १. विज्ञानवाद

अठारहवीं सदीके प्रमुख विज्ञानवादी दार्शनिक बर्कले और काण्ट हैं।

१—बर्कले (१६८५ १७५३ ई०)

जार्ज बर्कलेका जन्म आयरलैण्डमें हुआ था, और शिक्षा डब्लिनके ट्रिनिटी कालेजमें। १७३४ ई०में वह कोलोनका लाट-पादरी बना।

बर्कलेके दर्शनका मुख्य प्रयोजन किसी नये तत्त्वका अन्वेषण नहीं था। उसका मुख्य मतलब थी भौतिकवाद और अनीश्वरवादसे ईसाई धर्मकी रक्षा करना। इस प्रकार वह अठारहवीं सदीका अगस्तिन और सामिल अथवा ईसाईयोंका आविर्भाव था। हालमें भौतिकवादी दर्शन तथा विचार-स्वातन्त्र्य संबंध दूसरी शिक्षाएं धीरे धीरे शिक्षित बुद्धिमान् दिमागोंपर असर कर ईसाइयतके लिए खतरा पैदा कर रही थीं। सत्रहवीं और अठारहवीं सदीमें भी जिस तरहकी प्रगति साइंसमें हो रही थी उससे धर्मका पक्ष और निर्बल होता जा रहा था, तथा यह साबित हो रहा था कि प्रकृति और उसके अपने नियम हर बौद्धिक समस्याको हलकर

[1] Theory of the Earth

लिए पर्याप्त है। यद्यपि इस लहरको रोकनेकेलिए दे-कार्त, स्पिनोज़ा और लाइबनिट्ज़के दर्शन भी सहायक हो सकते थे, किन्तु भौतिक-तत्त्वोंके अस्तित्वको वे किसी न किसी रूपमें स्वीकार करते थे। बिशप् (=लाट-पादरी) बर्कलने भौतिकतत्त्वोंके अस्तित्वको ही अपने दर्शन-द्वारा मिटा देना चाहा—न भौतिकतत्त्व रहेंगे, न भौतिकवादी सर उठायेंगे।

बर्कलका कहना था मुख्य या गौण गुणोंके संबंधमें जो हमारे विचार या वेदनाएं हैं वह किसी वास्तविक बाह्यतत्त्वकी प्रतिकृति या प्रतिबिंब नहीं है, वह सिर्फ मानसिक वेदनाएं हैं और इससे अधिक कुछ नहीं है। विचार विचारोंसे ही सादृश्य रख सकते हैं भौतिक पदार्थों और उनके गुणों—गोल, पीला, कड़वा आदि—से इन अभौतिक विचारों या मानस प्रति-बिंबोंका कोई सादृश्य नहीं हो सकता। इसलिए भौतिक पिंडोंके अस्तित्वको माननेकेलिए कोई प्रमाण नहीं। ज्ञानका विषय हमारे विचार हैं उनके पर या बाहर कोई भौतिकतत्त्व ज्ञानका वास्तविक विषय नहीं है। "मनसे बाहर चाहे वह स्वर्गकी सुगंध मंडली हो अथवा पृथिवीके सामान हो, मन (=विज्ञान)को छोड़ वहां कोई दूसरा द्रव्य नहीं (मानसिक) ग्रहण ही उनकी सत्ताका बतलाता है। जब उन्हें कोई मनुष्य नहीं जान रहा है, तो या तो वे हैं ही नहीं, अथवा वे किसी अविनाशी आत्माके मनमें हैं। भौतिक पिंड अपने गुणानुसार नियमित प्रभाव (आग, ठंडक) पैदा करते हैं, यदि भौतिक तत्त्व नहीं हैं, तो सिर्फ विचारसे यह कैसे होता है?—बर्कलेका उत्तर था कि यह 'प्रकृतिके विधानोंके द्वारा स्वेच्छासे बनाए उस संबंध'का यह परिणाम है जिसे उसने भिन्न भिन्न विचारोंके बीच कायम किया है। बर्कलके अनुसार सत्यके तत्त्व हैं भगवान, उसके बनाए आत्मा, और भिन्न-भिन्न विचार जो उसकी आज्ञानुसार विशेष अवस्थाओंमें पैदा होते हैं।

२. कान्ट (१७२४-१८०४ ई०)

इम्मानुयल कान्ट कोइनिक्सबर्ग (जर्मनी)में एक साधारण कारी-गरके घर पैदा हुआ था। उसका बाल्य धार्मिक वातावरणमें बीता था।

[illegible] और [illegible] था।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] में [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible]

है। रूसो, वोलतेरसे भी आगे गया, और उसने कला और विज्ञानको भी शौकीनी और कामचोरपनकी उपज बतलाया, और कहा कि आचारिक पतनके यही कारण हैं। "स्वभावसे सभी मनुष्य समान हैं। यह हमारा समाज है, जिसने वैयक्तिक सम्पत्तिकी प्रथा चला उन्हें अ-समान बना दिया—और आज हम उसमें स्वामी-दास, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, पा रहे हैं। एक बड़ा रईस बरन दोंलूबाग (१७१२-७८ ई०) कह रहा था—"आत्मा कोई चीज नहीं है, चिन्तन मस्तिष्ककी क्रिया है, भौतिकतत्त्व ही एकमात्र अमर वस्तु है।

ऐसी परिस्थितिमें काण्ट समझता था, कि यूरोपके मुक्त होते विचारोंको ईसाइयतकी तंग चहारदीवारीके अन्दर बन्द नहीं किया जा सकता, इसलिए चहारदीवारीको कुछ बढ़ाना चाहिए, और ईश्वर कर्मस्वातन्त्र्य तथा आत्माके अमरत्व—धर्मके इन मौलिक सिद्धान्तोंकी रक्षा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इन्हींको लेकर काण्टने अपने प्रखर तर्कके तान-बान बुनकर एक जबर्दस्त जाल तयार किया। उसने कहा तजर्बेपर निर्भर मानव-बुद्धि बहुत दूर तक जा सकती है, इसमें शक नहीं, किन्तु उसकी गति अनन्त तक नहीं हो सकती। उसकी दौड़की भी सीमा है। ईश्वर, परलोक या परजीवन मानवके तजर्बेकी सीमासे बाहरकी—सीमापारीय—चीजें हैं इसलिए उनके बारेमें कोई तर्क वितर्क नहीं किया जा सकता, तर्कसे न उनका खंडन ही किया जा सकता है, न उन्हें सिद्ध ही किया जा सकता है। उन्हें श्रद्धाका माना जा सकता है—सैद्धान्तिक तौरसे यह श्रद्धा भले ही कमजोर मालूम होती है, मगर व्यवहारमूलक होनेसे वह काफी प्रबल है।—अर्थात ईश्वर, तथा परजन्मके विश्वास समाज और व्यक्तिमें शान्ति और संयमका प्रचार करते हैं जो कि इनके माननेके लिए काफी कारण है।

(१) ज्ञान—वास्तविक ज्ञान वह है, जो कि सार्वत्रिक, तथा आवश्यक हो। इन्द्रियाँ हमारे ज्ञानके लिए मसाला जमा करती हैं, और मन अपने स्वभावके अनुकूल तरीकेसे उन्हें क्रमबद्ध करता है। इसीलिए जो ज्ञान हमें मिलता है वह वस्तुएं—अपने—भीतर जैसी हैं वैसा नहीं होता,

Goudlet also believes in it.

प्राय सारा जीवन उसने अपने जन्मनगर और उसके पड़ोस हीमें बिताया और इस प्रकार देशभ्रमणके सम्बन्धमें वह एक पूरा घूमन्तू था।

हॉब्स स्पिनोज़ा दर्शन, लाइब्निट्ज़के दर्शनमें या तो भौतिक तत्त्वोंको ही मूल तत्त्व होनेपर जोर दिया गया था, अथवा प्रकृतिकी उपेक्षा करके चिन्तन (=चेतना)को ही एकमात्र परमतत्त्व कहा गया। बाद्के समय तक चिन्तनका विकास और उसके प्रति निष्ठाका सम्मान इतना बढ़ गया था कि वह उसकी अवहेलना करके सिर्फ विज्ञानवादपर सारा जोर नहीं खर्च कर सकता था—यद्यपि घूमफिरकर उसे भी वहीं पहुँचना था—और भौतिकवादका तो वह पूर्ण विरोधी था ही। ह्यूमकी भाँति इन दोनों वादोंपर सन्देह करनेको ही वह अपना वाद बनाना पसन्द नहीं करता था। उसके दर्शनका मुख्य लक्ष्य था—ह्यूमके सन्देहवाद और पुरानी दार्शनिक रूढ़ियोंको सीमित करना तथा सबसे बढ़कर वह भौतिकवाद अनीश्वरवादको नष्ट करना चाहता था। अपनेको बुद्धिवादी साबित करनेके लिए वह भाग्यवाद भावुकतावाद मिथ्या विश्वासका भी विरोधी था। बाद्के वक्त यूरोपका विचारशील समाज मध्ययुगीन मानस-बन्धनोंसे ही मुक्त नहीं हो गया था बल्कि उसने मध्ययुगके आर्थिक ढाँचे—सामन्तवाद—को भी दो प्रमुख देश इंग्लैंड (१४९५ १६००) और फ्रांस (१७८९)से विदा कर पूँजीवादकी ओर जोरसे कदम उठाया था। इंग्लैंडमें अंग्रेजी सामन्तवादकी निरंकुशता चार्लस प्रथमके साथ ही १६४९ में खतम कर दी गई थी। वहाँ सवाल सिर्फ एक मुकुटके धूलमें लोटनेका नहीं था, बल्कि मुकुटके साथ ही सनातन मर्यादाओंके प्रति लोगोंकी आस्था उठने लगी थी। अठारहवीं सदीमें अब फ्रांसकी बारी था। सामन्तवाद और उसके पिट्ठू धर्मसे दबते-दबते लोग ऊब गए थे। उनके इस भावको व्यक्त करनेके लिए फ्रांसमें वोल्तेर (१६९४ १७७८) और रूसो (१७१२ ७८ ई०) जैसे जबर्दस्त लेखक पैदा किये। वोल्तेर धर्मको अज्ञान और धोखेकी उपज कहता था। उसके मतमें मजहब होशियार पुरोहितोंका जाल है, जिन्होंने कि मनुष्यकी मूर्खता और पक्षपातको इस्तेमालकर इस तरह उनपर शासनका एक नया तरीका निकाला

देश, काल—मनकी बनावट ही ऐसी है, कि वहाँ कोई वैसी वस्तु न होने पर भी देश और कालका प्रत्यक्ष करता है—वह वस्तुओंका ही देश और कालमें (अर्थात् देश-कालके साथ) प्रत्यक्ष नहीं करता, बल्कि खुद देश-कालका स्वतंत्र वस्तुके तौर पर प्रत्यक्ष करता है। हमारी आन्तरिक मानस क्रिया कालकी सीमाके भीतर अर्थात् एकके बाद दूसरा करके होती है और बाहरी इंद्रिय भान देशकी सीमाके भीतर होता है, अर्थात् हम उन्हीं चीजोंका प्रत्यक्ष कर सकते हैं, जिनका कि हमारी इंद्रियोंसे संबंध है। देश और काल वस्तु-सत्य अर्थात् बिना दूसरेकी सहायताके खुद अपनी सत्ताके धनी नहीं हैं, और नहीं वस्तुओंके गुण या संबंध ही हैं। वे तरीके या प्रकार जिनसे कि हमारी इंद्रियाँ विषयोंका ग्रहण करती हैं, इंद्रियोंके स्वरूप या क्रियाएँ हैं। देश और काल आत्मानुभूतिसे ही जाने जाते हैं, वे बाहरी इंद्रियोंके विषय नहीं हैं—इसका मतलब है कि यदि आत्मानुभूति या देश कालके प्रत्यक्षीकरणकी शक्ति रखनेवाले सत्त्व जगतमें न होते तो निश्चय ही जगत हमारे लिए देश-कालवाला न रह जाता। बिना देशके हम वस्तुका ध्यान भी नहीं कर सकते, और न बिना वस्तुके हम देशका ख्याल कर सकते, इसलिए वस्तुओं या बाहरी दुनिया-संबंधी विचारके लिए देशका होना जरूरी है। कालके बारेमें भी यही बात है।

(४) सीमापारी—इस प्रकार देश-काल इंद्रियोंसे संबंध नहीं रखते वह अनुभव (=तजर्बे)की चीज नहीं है, बल्कि उनकी सीमासे परे—सीमापारी[1]—चीजें हैं। सीमापारी होते इंद्रिय अगोचर होते भी वस्तुओंके नातेसे वह चीजें कितना नित्य संबंध रखती हैं, यह अगला आए है।

(५) वस्तु-अपने भीतर[2]—बाहरी जगतका संबंध—सन्निकर्ष—इंद्रियोंसे होता है, इंद्रियाँ उनकी सूचना मनको देती हैं, मन उनकी व्याख्या स्वच्छापूर्वक शुरू करता है। इंद्रियोंका सन्निकर्ष वस्तुओंके बाहरी दिखावेसे होता है। फिर मन वस्तुके बारेमें जो व्याख्या करता है

---

[1] Transcental [2] Thing in-itself, Ding-an sich

बल्कि विचारोंके क्रम-संबंधी सार्वदेशिक और आवश्यक नियमके तौरपर होता है। गोया वस्तुएं अपने भीतर क्या हैं इसे हम नहीं जान सकते—यह है कांटका संदेहवाद। साथ ही हमारे ज्ञानमें जो कुछ आता है वह तजर्बे या प्रयोगसे आता है—यहां वह प्रयोगवादी सा मालूम होता है। लेकिन, मन बाहरी बातोंकी कोई पर्वाह न करके, अपने तजर्बोंपर चिंतन करता है और उन्हें अपने स्वभावके अनुसार ग्रहण करता है—यह बाह्यार्थसे असंबद्ध मनका अपना निर्णय बुद्धिवाद है। प्रयोगवाद, संशयवाद और बुद्धिवाद तीनोंका शिष्य अपने मतलबके लिए कान्टने इस्तेमाल किया है और इसका मतलब विचारको बड़ी सीमाबंदीके पर ज्ञानमें रोकना है।

(२) निश्चय—ज्ञान सदा निश्चयके रूपमें प्रकट होता है—हम ज्ञानमें चाहे किसी बातकी स्वीकृति (=विधि) करते हैं, या निषेध करते हैं। तो भी प्रत्येक निश्चय ज्ञान नहीं है। जो निश्चय सार्वदेशिक और आवश्यक नहीं है वह साइंस-सम्मत नहीं हो सकता। यदि उस निश्चयका कोई अपवाद भी है तो वह सार्वदेशिक नहीं रहेगा, यदि कोई विरोधी भी आ सकता है तो वह आवश्यक नहीं।

(३) प्रत्यक्ष—किसी वस्तुके प्रत्यक्ष करनेकेलिए जरूरी है कि वहां भौतिक तत्त्व या उसके भीतर जो कुछ भरा (वेदना) और आकार (=रंग, शब्द, भार) हो। इन्हें बुद्धि एक ढांचे—या देश-कालके चौखटे—में क्रम बद्ध करती है तब हम किसी वस्तुका प्रत्यक्ष होता है। आत्मा (=मन) सिर्फ वेदनाओंको प्राप्त करता है वह सीधे पदार्थों (=विषयों) तक नहीं पहुँच सकता, और न विषय सीधे मन (=आत्मा) तक पहुँच सकते। फिर अपनी एक विशेष शक्ति—आत्मानुभूति[1]—द्वारा उन्हें वह प्रत्यक्ष करता है। तब वह अपनेसे बाहर रंग और बालमें रंगको देखता है शब्दको सुनता है।

---

[1] Intuition

बुद्धि समझमें पर जाता है, और इन्द्रिय अगोचर ज्ञान—जिस ज्ञानको कि कोई प्रत्यक्ष विषय नहीं है जो शुद्ध बोध रूप है—को उपलब्ध करना चाहती है। मन या बुद्धिका साधारण क्रियाको समझ कहते हैं। वह हमारे तजर्बे—विषय-साक्षात्कारों—को समान रूपमें तथा नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार एक दूसरेके साथ सम्बन्ध कराती है, और इस प्रकार हमें निश्चय प्रदान करती है।

निश्चय—समझ जिन निश्चयोंको हमारे सामने प्रस्तुत करती है, काटने उनके बारह भेद गिनाये हैं—

(१) **सामान्य निश्चय**—जैसे सारी धातुएं तत्त्व हैं।

(२) **विशेष निश्चय**—जैसे कुछ वृक्ष आम हैं।

(३) **एकत्व निश्चय**—जैसे अकबर भारतका सम्राट था। इन तीन निश्चयोंमें चीज गुण विभाग-योग, बहुत्व, एकत्व—के रूपमें देखी जाती है।

(४) **स्वीकारात्मक निश्चय**—जैसे गर्मी एक प्रकारकी गति है।

(५) **नकारात्मक निश्चय**—जैसे मनमें विस्तार परिमाण नहीं है।

(६) **असीम निश्चय**—जैसे मन अ विस्तृत है। इन तीन निश्चयोंमें वास्तविकता (भाव) अभाव और सीमाके रूपमें गुण विभाग दिखाई देते हैं।

(७) **स्पष्ट निश्चय**—जैसे देह भारी है।

(८) **आशंसात्मक निश्चय**—जैसे यदि हवा गर्म रही तो तापमान बढ़ेगा।

(९) **विकल्पात्मक०**—जैसे द्रव्य या तो ठोस होते हैं या तरल, या गैसीय। ये तीनों निश्चय सम्बन्धों—नित्य (समवाय या अयुतसिद्ध)-सम्बन्ध, आधार (और संयोग)-सम्बन्ध, कार्यकारण-सम्बन्ध समुदाय (सक्रिय निष्क्रियके आपसी)-सम्बन्ध—को बतलाते हैं।

(१०) **सन्देहात्मक निश्चय**—जैसे 'हो सकता है यह जहर हो।

(११) **आग्रहात्मक निश्चय**—'यह जहर है।

(१२) **सुपरीक्षित निश्चय**—हर एक कार्यका कोई कारण होता है।

वह इसी निराकारी गुणवाला बनकर होता है। इसलिए वस्तु-ज्ञान भीतर बना है यह बात इन्द्रिय या उनकेका विषय नहीं है यह इन्द्रिय का सामने पड़ता—"इन्द्रिय-सीमा-वाली—"। प्रत्यक्ष या जो वस्तुओं का आभास हमें मिलता है वह उनके संबंधका ज्ञान होता है, लेकिन वस्तु-ज्ञान भीतर बना है, इसे न तो आभास कहा जा सकता है, न संबंध। वस्तु-ज्ञान भीतर (=वस्तु-सार) अनन्य है, उसे इन्द्रिय नहीं जान सकती। हो, उसके बारे में वह दूसरा तरह से सोच सकता है, वह है प्रत्यक्षिक आत्मानुभूति जो इन्द्रियों से यह कहती है—तुम्हारे जानने की सीमा यहीं तक है इससे आगे जानने का तुम्हें अधिकार नहीं।

(आत्मा)—हम आत्मा का ज्ञान—या साक्षात्कार नहीं कर सकते किन्तु उसे अस्तित्वधारी मान लिया जा सकता है। हम इसपर चिन्तन कर सकते हैं—यह सम्भव ही नहीं है कि एक स्वयंज्ञाता विचारों का स्मृतिक स्वरूप जोड़नेवाला तत्व आत्मा न हो। किन्तु इस आत्मा को और इन्द्रियों को सहायता हम नहीं जान सकते, क्योंकि वह सीमा-वाली, इन्द्रिय अगोचर है।

इस तरह सीमावाली वस्तुओं का होना भी संभव है। वस्तु अपने आधार या वस्तुसार[1] भी इसी तरह अनन्य हैं किन्तु वह है जरूर, अन्यथा इन्द्रिय तथा विषयों संबंधन जो बनता होता है, वह निराधार होता—आधार वाली जगत् या वस्तुओं जिस आभास का ज्ञान हम होता है, उसके पीछे कोई वस्तुसार जरूर है जो कि मनन पदार्थ है, जो हमारी इन्द्रियों को प्रभावित करता है, और हमारे ज्ञानके लिए विषय प्रस्तुत करता है। इस आधार वस्तु अपने भीतर (वस्तुसार) के बिना यह झाँकी ही नहीं मिलती जिसकी बुनियादपर कि हमारा सारा ज्ञान खड़ा है।

काट बुद्धि और समझके बीच फरक करता है।—समझ वह है जो कि इन्द्रिय द्वारा लाई सामग्री—वस्तु—पर आधारित है। लेकिन

---

[1] Nomena

बुद्धि समझने पर जाती है और इन्द्रिय अगोचर ज्ञान—जिस ज्ञानका कि कोई प्रत्यक्ष विषय नहीं है जो शुद्ध बोध रूप है—को उपलब्ध करना चाहती है। मन या बुद्धिकी साधारण क्रियाको समझ कहते हैं। वह हमारे तजर्बे—विषय-साक्षात्कारों—को समान रूपसे तथा नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार एक दूसरेके साथ संबंध कराती है और इस प्रकार हमें निश्चय प्रदान करती है।

निश्चय—समझ जिन निश्चयोंको हमारे सामने प्रस्तुत करती है कान्टने उनके बारह भेद गिनाये हैं—

(१) सामान्य निश्चय—जैसे सारी धातुएं तत्त्व हैं।

(२) विशेष निश्चय—जैसे कुछ वृक्ष आम हैं।

(३) एकत्व निश्चय—जैसे अकबर भारतका सम्राट् था। इन तीन निश्चयोंमें चीज गुण विभाग-योग, बहुत्व, एकत्व—के रूपमें देखी जाती है।

(४) स्वीकारात्मक निश्चय—जैसे गर्मी एक प्रकारकी गति है।

(५) नकारात्मक निश्चय—जैसे मनमें विस्तार परिमाण नहीं है।

(६) असीम निश्चय—जैसे मन अविस्तृत है। इन तीन निश्चयोंमें वास्तविकता (भाव), अभाव और सीमाके रूपमें गुण विभाग दिखाई देते हैं।

(७) स्पष्ट निश्चय—जैसे देह भारी है।

(८) आशंसात्मक निश्चय—जैसे यदि हवा गर्म रही तो तापमान बढ़ेगा।

(९) विकल्पात्मक०—जैसे द्रव्य या तो ठोस होते हैं या तरल, या गैसीय। ये तीनों निश्चय त्रिधा—नित्य (समवाय या अयुतसिद्ध)-संबंध, आधार (और संयोग)-संबंध कार्यकारण-संबंध, समुदाय (सक्रिय निष्क्रियके आपसी)-संबंध—को बतलाते हैं।

(१०) सन्देहात्मक निश्चय—जैसे हो सकता है यह जहर हो।

(११) आग्रहात्मक निश्चय—'यह जहर है।'

(१२) सुपरीक्षित निश्चय—हरएक कार्यका कोई कारण होता है।

[illegible] — [illegible]

[illegible] इन्द्रिय-[illegible] [illegible] ही है, इन्द्रिय-[illegible] (माया-[illegible])में [illegible]।

वस्तुमात्र (वस्तु-[illegible]) [illegible] आत्मा, [illegible], ईश्वर यदि हमारी समझ [illegible] नहीं [illegible] तो उनका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। उनके अस्तित्वका [illegible] बुद्धि [illegible] [illegible] [illegible]

"अभी नहीं, अपनी कसम ! अभी एक पीछे आनेवाली चीजका अभिनय करना है। दुःखान्त नाटकके बाद प्रहसन आ रहा है।'

"अब तक इम्मानुयेल काट एक गंभीर निठुर दार्शनिकके तौरपर सामने आया था। उसने स्वर्ग(-दुर्ग)को ताककर सारी सेनाको तलवारके घाट उतार दिया। विश्वका शासक (ईश्वर) वहाँ अपने खूनमें ही तर रहा है। वहाँ दयाका नाम नहीं रहा। वहीं हानत पितृतुल्य शिक्षा और आजके कष्टोंकेलिए भविष्यमें मिलनेवाले सुफलकी है। आत्माकी अमरता अपनी आखिरी साँस गिन रही है ! उसके कठोर मृत्युकी यन्त्रणा ध्वनित हो रही है ! और बूढ़ा भगवानदास पास खड़ा है, उसका छाता उसकी बाँहमें है। वह एक शोकपूर्ण दर्शक है—व्यथा जनित पसीनेसे उसकी भौंएं भीगी हैं, उसके गालोंपर अश्रुबिन्दु टपक रहे हैं।

"तब इम्मानुयेल काटका दिल पसीजता है, और अपनेको दार्शनिकोंमें महान दार्शनिक ही नहीं बल्कि मनुष्योंमें भगवानुष प्रकट करनेकेलिए वह आधी भलमनसाहतसे और आधा व्यंगके तौरपर सोचता है—

"बूढ़े भगवानदासकेलिए एक देवताकी जरूरत है नहीं तो बेचारा सुखी नहीं रह सकेगा, और वस्तुतः लोगोंको इस दुनियामें सुखी रहना चाहिए। व्यावहारिक साधारण बुद्धिका यह तकाजा है।

'अच्छी बात ऐसा ही हो क्या पर्वाह ! व्यावहारिक बुद्धिको किसी ईश्वर या और किसीके अस्तित्वकी स्वीकृति दे दो।'

परिणामस्वरूप काट सैद्धान्तिक और व्यावहारिक बुद्धिके भेदपर तर्क वितर्क करता है, और व्यावहारिक बुद्धिकी सहायतासे उसी देवता (=ईश्वर)को फिर जिला देता है जिसे कि सैद्धान्तिक बुद्धिने लाशके रूपमें परिणत कर दिया था।'

"'शुद्ध बुद्धि' के लिखनेके बाद 'व्यावहारिक बुद्धि' लिखकर काटने जो लीपापोती करनी चाही, हाइनने यहाँ उसका सुन्दर खाका खींचा है।

---

[1] (Germany, Heine, works, Vol V)

§ २ सन्देहवाद

ह्यूम (१७११-७६ ई०)—डविड ह्यूम एडिनबर्ग (स्काटलैंड)में, कान्टसे १३ साल पहिले पैदा हुआ था। इसने कानूनका अध्ययन किया था। पहिले जेनरल सन्टक्लेर फिर लार्ड हर्टफोर्डका सेक्रेटरी रहा, और अन्तमें १७६७ ई०में इंगलैंडका अण्डर-सेक्रेटरी (=उपमंत्री) रहा। इस प्रकार ह्यूम शासक वर्गका सदस्य ही नहीं, बल्कि एक शासक तथा सम्पत्तिवाली श्रेणीसे संबंध रखता था। मध्यम तथा उच्चवर्गीय शिक्षित लेखक सदा यह दिखलाना चाहते हैं कि वह वर्ग और वर्गस्वार्थसे बहुत ऊपर उठे हुए हैं लेकिन कोई भी आँख रखनेवाला इस धोकेमें नहीं आ सकता। अक्सर जान-बूझकर—कभी कभी अनजान भी—लेखक अपनी चेष्टाओंसे उस स्वार्थकी पुष्टि करते हैं जिससे उनकी दाल रोटी चलती है। हम विशुद्ध बकलको देख चुके हैं कि किस तरह बुद्धिकी आँखमें धूल झोंक, प्रत्यक्ष—अनुमानगम्य—बुद्धिगम्य—भौतिक तत्त्वोंसे इन्कारकर उसने लेख चौर आकर्षक विज्ञानतत्त्वका समर्थन किया। और जब लोग वस्तु-सत्यको छोड़ इस ख्याली विज्ञानको एक मात्र तत्त्व मानकर आँख मूँद झूमने लगे, तो फिर ईश्वर धर्म आत्मा फिरिश्तोंको चुपकेसे सामने ला बठाया। कान्टको बकलकी यह चेष्टा कुछ बोगी तथा गँवारूपन लिये हुए मालूम हुई। उसने उसे और ऊपरी तलपर उठाया। भौतिक तत्त्व साधारण बुद्धि (=समझ) गम्य हैं उनकी सत्ता भी आंशिक सत्य हो सकती है, किन्तु असली तत्त्व वस्तु अपने भीतर (=वस्तुसार) है जिसकी सत्ता शुद्ध बुद्धिसे सिद्ध होती है। समझ द्वारा ज्ञेय वस्तुओंसे कहीं अधिक सत्य है, शुद्ध-बुद्धिगम्य वस्तुसार। तर्क तजर्बे समझ साधारण बुद्धिके क्षेत्रकी सीमा निर्धारित कर उनकी गतिका रोड़ कांटेन समझमें परे एक सुरक्षित क्षेत्र तयार किया और इस प्रशान्त, झगड़े झंझट रहित स्थानमें लेजाकर ईश्वर आत्मा धर्म आचार (व्यक्तिगत सम्पत्ति बड़ा सामाजिक व्यवस्था) को बठा दिया। यह था कान्टकी अप्रतिम प्रतिभाका चमत्कार।

आइये अब हम इंगलण्डके टोरी शासक (अण्डर-सेक्रेटरी) ह्यूमको भी देखें। बान्टमें पहिलेके साइंसजन्य विचार-स्वातंत्र्यके प्रवाहसे पुरानी नीतिकी रक्षा करनेके लिए पहिलेके दार्शनिकोंके प्रयत्नको उसने देखा था, और यह भी देखा था, कि वस्तु-जगत और उससे प्राप्त सच्चाइयाँ इतनी प्रबल हैं, कि उनका सामना उन हथियारोंसे नहीं किया जा सकता, जिनसे द-कार्त, लाइब-निट्ज, बर्कलेने किया था। भौतिक तत्त्वोंको गलत साबित करनेमें ह्यूम् सहमत था, किन्तु इसे वह फजूलकी जवाबदेही समझता था, कि सामने देखी जानेवाली वस्तुको तो इंकार कर दिया जाय, और इंद्रिय अनुभवसे परे किसी चीज—विज्ञान—को सिद्ध करनेकी जिम्मेवारी ली जाय। ह्यूम पूंजीवादी युगके राजनीतिज्ञोंका एक अच्छा पथप्रदर्शक था। उसने कहा—भौतिकतत्त्वोंको सिद्ध मत होने दो, विज्ञानको सिद्ध करके जिस ईश्वर या धर्मको लाना चाहते हो, वह समाजके ढाँचेको क्रान्तिकी लपटसे बचानेके लिए जरूरी है, किन्तु उनका नाम लेते ही लोग हमारी नवनीतनीतिपर शक करने लगेंगे, इसलिए अपनेको और सच्चा साबित करनेके लिए उनपर भी दो चोट लगा देनी चाहिए और इस प्रकार अपनेको दोनोंसे ऊपर रखकर मध्यस्थ बना देना चाहिए। यदि एक बार हम भौतिक तत्त्वोंके अस्तित्वमें सन्देह पैदा कर दें और बाहरी प्रकाशको रोक दें, तो फिर अँधेरेमें पड़ा जनसमुद्र किस्मतपर बैठ रहेगा। और फिर इस सन्देहवादसे हमारी हानि ही क्या है—उससे न हमारे क्लाइव झूठे हो सकते हैं और न मास्वन रोबी या शम्पन ही।

अब जरा इस मध्यस्थ, दूधका दूध पानीका पानी करनेवाले राज-मंत्रीकी दार्शनिक उड़ानको देखिए।

(१) दर्शन—हम जो कुछ जान सकते हैं वह है हमारी अपनी मानसिक छाप—संस्कार। हमें यह अधिकार नहीं है कि भौतिक या अभौतिक तत्त्वोंकी वास्तविकता सिद्ध करें। हम उतनेहीको जान सकते हैं, जितनेको कि इंद्रियाँ और मन ग्रहण करते हैं, और इस क्षेत्रमें भी सम्भावनामात्रके बारेमें हम कह सकते हैं। इस अनुभव (=प्रत्यक्ष, अनुमान) से बढ़कर ज्ञान प्राप्त करनेका हमारे पास कोई साधन नहीं है।

(२) स्पर्श—हमारे पाँचों ज्ञान सामग्री बाहरी (वस्तु द्वारा प्राप्त) और भीतरी वस्तुओंके स्पर्श[1]—छापों—से प्राप्त होती है। जब हम इसका अनुभव प्यार, नफरत, इच्छा या संकल्प करते हैं, यानी हमारी सभी वासनाएँ, आसक्तियाँ और मनोभाव जब आत्मामें पहिले-पहिल प्रकट होते हैं तो हमारे सबसे सजीव साक्षात्कार स्पर्श ही है। बाहरी स्पर्श या वासनाएँ आत्माके भीतर अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। भीतरी स्पर्श अधिकतर हमारे विचारोंसे प्राप्त है अर्थात् एक स्पर्श हमारी इन्द्रियों पर चोट करता है और हम सर्दी-गर्मी सुख-दुख अनुभव करते हैं।

(३) विचार—स्पर्शोंके बाद ज्ञानमें संबंध रखनेवाली दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज विचार[2] है। हमारे विचार बिलकुल ही भिन्न भिन्न असंबद्ध संयोग या मिले पदार्थ नहीं हैं। एक दूसरेसे मिलते जुलते इनमें एक खास दर्जे तक नियम और व्यवस्थाका पालन करती पाती है। यह एक तरहकी एकताके सूत्रमें बद्ध होते पाये हैं जिन्हें कि हम विचार-संबंध कहते हैं।

(४) कार्य-कारण—कार्य कारणसे एक बिलकुल ही अलग चीज है, कारणका हम कार्यमें हर्गिज नहीं पा सकते। कार्य-कारणके संबंधका ज्ञान हमें निरीक्षण और अनुभवसे होता है। कार्य-कारणका संबंध यही है कि एकके बाद दूसरा आता है—कार्य नियत-पूर्ववर्ति कारण, कारण नियत पश्चाद्-वर्ति कार्य—हम यहाँ एक घटनाके बाद दूसरीको होते देखते हैं।

(५) ज्ञान—हम सिर्फ प्रत्यक्ष (साक्षात्) मात्र करते हैं, हम इससे अधिक किसी चीजका पूर्ण ज्ञान रखते हैं, यह गलत है। जो प्रत्यक्ष है, वही वह वस्तु नहीं है जिसकी कि एक तेज झाँकी हमें उस रूपमें मिलती है। वस्तुकी सिर्फ बाहरी सतह और उसका भी एक भाग मात्रका प्रत्यक्ष होता है। दार्शनिक विचार या आत्मानुभूतिसे और अधिक ज्ञान संभव, इसकी कोई आशा नहीं, क्योंकि दार्शनिक निश्चय और कुछ नहीं, सिर्फ नियमित तथा शोधित साधारण जीवनका प्रतिबिंब मात्र है। इस तरह

---

[1]Impressions [2]Ideas

हमारा ज्ञान सतही—ऊपर-ऊपरका है, और उसमें किसी चीजकी वास्तविकता स्थापित नहीं की जा सकती।

(६) आत्मा—'जब मैं खूब नजदीकसे उस चीजपर विचार करता हूँ, जिसे कि मैं अपनी आत्मा कहता हूँ, तो वहाँ सदा एक या दूसरी तरहका प्रत्यक्ष (=अनुभव) सामने आता है। वहाँ कभी मैं अपनी आत्माको नहीं पकड़ पाता।' आत्मापर भीतरसे चिन्तन करनेपर वहाँ मिलता है—गर्मी-सर्दी, प्रकाश अंधकार, राग-द्वेष, सुख-पीड़ाका अनुभव। इन्हें छोड़ वहाँ शुद्ध अनुभव कभी नहीं मिलता। इस प्रकार आत्माको साबित नहीं किया जा सकता।

(७) ईश्वर—जब ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, तो उसके होनेका प्रमाण क्या है? उसके गुण आदि। किन्तु ईश्वरके स्वभाव गुण, आज्ञा और भविष्य योजनाके संबंधमें कुछ भी कहनेके लिए हमारे पास कोई भी साधन नहीं है। घड़ेसे कुम्हार—अर्थात कार्यसे कारण—के अनुमानसे हम ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकते। जब हम एक घरको देखते हैं, तो पक्की तौरसे इस निश्चयपर पहुँचते हैं, कि इसका कोई बनानेवाला मिस्त्री या कारीगर था। क्योंकि हमने सदा मकान-जातिके कार्योंको कारीगर-जातिके कारणों द्वारा बनाये जाते देखा है। किन्तु विश्व-जातिके कार्योंको ईश्वर-जातिके कारणों द्वारा बनते हमने कभी नहीं देखा इसलिए यहाँ घर और कारीगरके दृष्टान्तसे ईश्वरको नहीं सिद्ध कर सकते। आखिर अनुमानमें, जिस जातीय कार्यको जिस जातीय कारणसे उत्पन्न होना देखा गया, उसी जातिके भीतर ही रहना पड़ता है। ईश्वर पूर्ण अचल, अनन्त है, ये ऐसे गुण हैं, जिन्हें निरन्तर परिवर्तनशील—क्षण क्षण पैदा होने तथा मरनेवाला—मन नहीं जान सकता, जब एक मन दूसरे क्षण रहता ही नहीं तो नया आनेवाला मन कैसे जान सकता है, कि ईश्वरका अमुक गुण पहिले भी मौजूद था। मनुष्य अपने परिमित ज्ञानसे ईश्वरका अनुमान कर ही नहीं सकता, यदि उसके अज्ञानसे, अनुमान करनेका आग्रह किया जाय, तो फिर यह दर्शन नहीं हुआ।

विशेष स्वभावका ईश्वरके स्वभावका अनुमान बहुत घाटेका सौदा रहेगा। कार्यके गुणके अनुसार ही हम कारणके गुणका अनुमान कर सकते हैं। कार्य-जगत् अनन्त नहीं सान्त, अनादि नहीं सादि है, इसलिए ईश्वरको भी सान्त और सादि मानना पड़ेगा। जगत् पूर्ण नहीं अपूर्ण, क्रूरता संघर्ष, विषमतासे भरा हुआ है, और यह भी तब जब कि ईश्वरका अनन्तकालसे अभ्यास करते हुए बहुत जगत्के बनानेका मौका मिला था। ऐसे जगत्का कारण ईश्वर तो और अपूर्ण क्रूर, संघर्ष विषमताप्रेमी होगा।

मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक सीमित अवस्थाओंके कारण सदाचार, दुराचारका भी उसपर साफ असर नहीं पड़ सकता, आखिर वह ईश्वर होनेको है।

(८) धर्म—अटकलबाजी, कुतूहल या गम्भीरता शुद्ध प्रेम भी धर्म और ईश्वर विश्वासको पैदा करता है किन्तु इसके मुख्य आधार हैं—सुखके लिए भारी चिन्ता, भविष्यकी तकलीफोंका भय, बलवती जबरदस्त इच्छा पाने भोगने और दूसरी आवश्यक चीजोंकी भूख।

ह्यूम यद्यपि बर्कले कान्ट जैसोंके तर्कोंपर भी काफी प्रहार किया है, और दर्शनको धर्मका चाकर बननेसे रोकना चाहा, किन्तु दूसरी तरफ ज्ञानको असम्भव मानकर उसने कोई भावात्मक स्थान नहीं पेश किया। दर्शनका प्रयोजन सन्देह मात्र पैदा करना नहीं होना चाहिए, क्योंकि जीवनके हरेक सन्देहसे गुजारा नहीं है।[1]

§ ३—भौतिकवाद

अठारहवीं सदीमें भौतिकवादी विचारों तथा सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी ख्याल जोर पकड़ रहे थे, इसे हम कह चुके हैं। इस शताब्दीमें

---

[1] साधु शान्तिनाथ भी अपने "Critical Examination of the philosophy of Religion" (2 vols.)में ह्यूमका ही अनुसरण करते हैं।

भौतिकवादी दार्शनिक भी काफी हुए थे, जिनमें प्रमुख थे—हटली (१७०४ ५७ ई०), ला मत्री (१७०६ ५१) हल्वेशिया (१७१५ ७१), दा अलम्बर (१७१७ ८३), द होलबाख (१७२३ ८९), दीदरो (१७३१ ८४), प्रीस्टली (१७३३ १८०४), कबानी (१७५७ १८०८)।

भौतिकवादका समर्थन सिर्फ दार्शनिकोंके प्रयत्नपर ही निर्भर नहीं था, बल्कि सारा साइंस—साइंसदानोंके व्यक्तिगत विचार चाहे कुछ भी हों—भौतिकवादी प्रवृत्ति रखता था इसीलिए यह अकेला अस्त्र दार्शनिकोंके हजारों दिमागी तर्कोंको काटनेके लिए पर्याप्त था। इसीलिए अठारहवीं सदीकी भौतिकवादी प्रगति उसपर निर्भर नहीं है कि उसके दार्शनिकोंकी संख्या कितनी है, या वह कितने शिक्षितोंको प्रिय हुआ।

हटली मनोविज्ञानको शरीरका एक अंश मानता था। दे-कार्त यद्यपि द्वैतवादी ईश्वर विश्वासी कट्टर कथलिक ईसाई था लेकिन उसके दर्शनने अनजाने फ्रांसमें भौतिकवादी विचारोंके फैलानेमें सहायता की। दे-कार्तका मत था कि निम्न श्रेणीके प्राणी चलते फिरते यंत्र भर हैं, यदि प्राणीके सभी अंग ठीक जगहपर लगे हों, तो बिना आत्माके सिर्फ इंद्रियों द्वारा उत्पादित उत्तेजनासे भी शरीर चलने फिरने लगेगा। इसीको लेकर ला-मेत्री और दूसरे फ्रेंच भौतिकवादियोंने आत्माको अनावश्यक साबित किया, और कहा कि सभी सजीव वस्तुएं भौतिक तत्वोंसे बने चलते फिरते स्वयं वह यंत्र हैं। ला मेत्रीने कहा—जब दूसरे प्राणी, दार्शनिक दे-कार्तके मतसे बिना आत्माके भी चल फिर सोच-समझ सकते हैं, तो मनुष्यमें ही आत्माकी क्या जरूरत है? सभी प्राणी एक ही विकासके नियमोंका अनुसरण करते हैं, अंतर है तो उनके विकासके दर्जेमें। कबानीके ग्रन्थ फ्रांसमें भौतिकवादके प्रचारमें सहायक हुए थे। उसकी कितनी ही कहावतें बहुत मशहूर हैं। "शरीर और आत्मा एक ही चीज है।' 'मनुष्य ज्ञानतंतुओंका गट्ठा है।' "पित्ता जिस तरह रस प्रस्राव करता है वैसे ही दिमाग विचारोंका प्रस्राव करता है। भौतिक तत्वोंके नियम मानसिक आचारिक घटनाओंपर भी लागू हैं।

नीतिवादियों पर एक आक्षेप किया जाता था, कि उनके अनुसार ईश्वर परलोक व धर्म होने से दुनियां दुराचार करने लगेगी, सब स्वार्थांध हो दूसरों का धन-सम्पत्ति लूटने में नहीं हिचकिचायेंगे। किन्तु, अठारहवीं सदी में इसका जवाब नीतिवादियों ने आचार-विचार से दे दिया। ये नीतिवादी सबसे ज्यादा व्यक्ति की उन्नति और सामाजिक कल्याण के विरोधी व्यक्तिवाद और समाज कल्याणवाद पर जोर देते थे। इस्वीपियस ने कहा था—"प्रकृति आत्म-स्वार्थ आचारता से अधिक दृढ़ बनाई जा सकती है"।

द्वादश अध्याय

उन्नीसवी सदीके दार्शनिक

अठारहवी सदी साइसका प्रारंभिक काल था, लेकिन उन्नीसवी सदी उसके विकासके विस्तार और गति दोनोंमें ही पहिलेसे तुलना न रखती थी। अब साइस पर्वतका आरंभिक चश्मा नहीं बल्कि एक महानदी बन गया था। अब उस दर्शनकी पर्वाह नहीं थी, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिए दर्शनको साइसकी सहायता आवश्यक थी, और इस सहायताको बिना उसकी मर्जीके लेनेसे दर्शनने परहेज नहीं किया।

उन्नीसवी सदीमें ज्योतिष शास्त्रने ग्रहों-उपग्रहोंकी छान-बीन ही नहीं पूरी की बल्कि सूर्यकी दूरी ज्यादा शुद्धतासे मालूम की। स्पेक्ट्रस्कोप (वर्ण रश्मि-दर्शक-यंत्र)की मददसे सूर्य, तारोंके भीतर मौजूद भौतिक तत्त्वों, उनके ताप घनत्व आदि तथा दूरी मालूम हुई और तारोंके बारेमें चले आते कितने ही भ्रम और मिथ्याविश्वास दूर हो गए।

गणितके क्षेत्रमें लोबाचस्की रीमान आदिने अपलेनिसे अलग तथा अधिक शुद्ध ज्यामितिका आविष्कार किया।

भौतिक साइसमें यूल, हेल्महोलटज केलविन एडिंग्टनने नये आविष्कार किये। बनानिकोने सिर्फ परमाणुओंकी ही छानबीन नहीं की बल्कि [illegible] परमाणुओंको भी तोड़कर एलेक्ट्रनपर पहुँच गया।[1] बिजलीमें [illegible], बल्कि शताब्दीके अन्त तक सड़कों और घरोंमें बिजली प्रकाशित [illegible]।

रसायन शास्त्रमें परमाणुओंकी नाप-तोल होने लगी [illegible]

---

[1] देखो "विश्वकी रूपरेखा"।

का बटवारा बना परमाणु-तत्त्वके भार आदिका पता लगाया गया। १८२८ ई०में वाहरन सिर्फ प्राणियोंमें मिलनेवाले तत्त्व उरियाको रसायनशालामें कृत्रिम रूपसे बनाकर सिद्ध कर दिया, कि भौतिक नियम प्राणि अप्राणि दोनों जगतमें एकसे लागू हैं। शताब्दीके आरंभमें ३० के करीब मूल रसायन तत्त्व ज्ञात थे, किन्तु अन्तमें उनकी संख्या ८० तक पहुँच गई।

प्राणिशास्त्रमें अनुवीक्षणसे देखे जानेवाले बक्टीरिया और दूसरे कीटाणुओंका खोज उनके गुण आदिने विज्ञानके ज्ञान-क्षेत्रको ही नहीं बढ़ाया बल्कि पास्तोरकी इन खोजोंने घाव आदिकी चिकित्सा तथा टीनबंद खाद्यपदार्थोंकी तयारीमें बड़ी सहायता पहुंचाई। डेवीने बेहोशीकी दवा निकालकर चिकित्सकके लिए आपरेशन आसान बना दिया। शताब्दीके मध्यमें डार्विनके जीवन विकासके सिद्धान्तने विचारोंमें भारी क्रान्ति पैदा की, और जड़-चेतनकी सीमाओंको बहुत नजदीक कर दिया।

इस तरह उन्नीसवीं सदीने विश्व-संबंधी मनुष्यके ज्ञानमें भारी परिवर्तन किया जिससे भौतिकवादको जहाँ एक ओर भारी सहायता मिली, वहाँ दार्शनिकों की दिक्कतें बढ़ गईं। इसी तरह फिख्टे, हेगल शोपनहार जैसे विज्ञानवादियोंने भौतिकतत्त्वोंसे भी पर विज्ञानतत्त्वपर पहुँचनेकी कोशिश की। शेलिङ् नीट्शेने द्वैतवादी बुद्धिवादका आश्रय ले भौतिकवादकी बातको रखना चाहा। स्पेन्सरने हूमूके मिशनको सँभाला और अपने अज्ञेयतावाद द्वारा समाजके आर्थिक-सांस्कृतिक ढाँचेको बरकरार रखनेकी कोशिश की। लेकिन इसी शताब्दीको मार्क्स जैसे प्रखर दार्शनिकको पैदा करनेका सौभाग्य है जिसने साइंससे अपने दर्शनको सुव्यवस्थित किया, और उसके द्वारा दर्शनको समाजके बदलनेका साधन बनाया।

§ १—विज्ञानवाद

१—फिख्टे (१७६५-१८१४ ई०)

योहन गाटलीप् फिख्टे सेक्सनी (जर्मनी)में एक गरीब जुलाहेके घर पैदा हुआ था।

परमतत्त्व—कान्टने बहुत प्रयत्नसे वस्तुसार (वस्तु अपने भीतर)को समझकी सीमाके पार बुद्धि अगम्य वस्तु साबित किया था। फिख्टेने कहा, कि वस्तुसार भी मनसे परकी चीज नहीं, बल्कि मन हीकी उपज है। सारे तजर्बे तथा मनके सिर्फ आकार ही नहीं 'परम आत्मा'[1]से उत्पन्न हुए हैं, बल्कि उत्पत्तिमें वयक्तिक मनने भी भाग लिया है। "परम आत्माने अपनेको ज्ञाता (=आत्मा) और ज्ञेय (=विषय)के रूपमें विभक्त किया क्योंकि आत्माके आचारिक विकासके लिए ऐसे बाधा डालनेवाले पदार्थोंकी जरूरत है, जिनको कि आत्मा अपने आचारिक प्रयत्नसे पार कर। इन्हीं कारणोंसे परम आत्माको अनेक आत्माओंमें भी विभक्त होना पड़ता है यदि ऐसा न हो तो उन्हें अपने-अपने कर्त्तव्योंको पूरा करनेका अवसर नहीं मिलेगा। आत्माओंके अनेक होनेपर भी वह उस एक आचारिक विधानके प्रकाश है, जिसे कि परम-आत्मा या ईश्वर कहते हैं। फिख्टेका परमतत्त्व स्थिर नहीं, बल्कि सजीव, प्रवाह है।

ईश्वरको ठोक-पीटकर, हर एक दार्शनिक, अपने मनका बनाना चाहता है, लेकिन सबका प्रयत्न है इस विचारको खतरेसे बचाना।

(१) श्रद्धातत्त्व—कान्टने आचारिक विधि—यह आचार तुम्हें जरूर करना होगा—के बारेमें कहा कि उसपर विश्वास करनेसे हम संशयवाद, भौतिकवाद और नियतिवाद[2]से बचते हैं। चूंकि हम आचारिक विधानपर विश्वास रखते हैं, इसलिए हम उसे जानते हैं। यह आचारिक सच्चाई है, जो हमको आजाद बनाती है, और हमारे स्वातन्त्र्यको सिद्ध करती है। कान्ट और फिख्टेके इस दर्शनके अनुसार हम ज्ञानकी पर्वाह न कर विश्वासपर दृढ़ हो अपनी स्वतन्त्रता पाते हैं—विश्वास करने न करनेमें जो हमें आजादी है! यदि हम दो तीन हजार वर्ष पहिले चंद आदमियों द्वारा अपने स्वार्थ और स्वार्थरक्षाके लिए बनाये गये आचारिक नियमोंको नहीं मानते तो अपनी आजादी खो डालते हैं।।

---

[1] Absolute Self [2] Determinism

और हमारी आस्थाओं सबसे बड़ी दुनिया सम्प्रदायों, नीतियों हैं आदि आस्थाओं एकमात्र सत्य विश्वास (= श्रद्धा) पर पुनर्स्थापित करने हेतु बुद्धि और तर्कों का प्रयोग सर्वथा अनावश्यक किया जाता है।[1] अन्तर्ज्ञान परम्परागत ज्ञान तथा मानव तथा महान ज्ञानियों बल्कि उन सभी भूतपूर्व द्वारा परम्परा द्वारा स्थापित हैं। और जहाँ अन्तर्ज्ञान ठीक पुष्टि और उसके तर्कों को लेकर कि वास्तविक अर्थ मतलब में काम आते हुए।

(२) बुद्धिवाद—मध्यकालीन युगमें विशुद्ध ज्ञान, और प्रमाण (=तर्क) का स्वीकारकर प्रयोग लाना तथा उपयोगी मार्ग बना सकता था, इसीलिए इसी विशेषता परिभाषाएँ, मानसिक मार्ग साधनों साधन (=विज्ञानपरक पर) है। प्रयोग और बुद्धिवाद का पहिले मार्ग पिछड़ कर चला है—यदि इसे तर्कों सामंजस्य नहीं रखता तो वह अवश्य भूला है, क्योंकि इसका काम है अनुभव पूर्ण (रूप) का विज्ञान पर रखना और बुद्धि की आवश्यक विधा द्वारा उसकी व्याख्या करना। जो परम आत्मा एकमात्र परमार्थ तत्त्व मान और 'आचारिक' विश्वास (=श्रद्धा) को आजीवन एकमात्र पथ समझ उसके मुँह तर्कों और अक्लकी यह निर्माण निर्माण बेकार नहीं है।

(३) आत्मा—आत्मा परम आत्मासे निकला है, यह बतला आये हैं। आत्मा परम आत्मा का विचार प्रादुर्भूत है। आत्मा की सीमाएँ हैं। विचारमें वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष, और मननमें पर नहीं जा सकता, और व्यवहारमें वह (परम आत्मा) विश्व प्रयोजनमें पर नहीं जा सकता।

(४) ईश्वर—ईश्वर एकमात्र परम-तत्त्व या परम आत्मा है यह बतला आये हैं। आचारिक विधानपर बाटकी भाँति विशुद्धता विनता और था यह भी कहा जा चुका है। आचारिक विधानके ढाँचेको कायम रखनेके लिए एक विश्व प्रयोजन या ईश्वरकी जरूरत है। सच मुच ही आचारिक विधान—जो कि सत्ताधारी वर्गके स्वार्थ मत्र है—का समर्थन बुद्धि और प्रयोगसे नहीं हो सकता उसके लिए ईश्वरका अवलंब

चाहिए। फिक्ट और स्पष्ट करते हुए यह भी कहता है कि आचारिक विधानके लिए धार्मिक विश्वासकी भी जरूरत है। संसार भरमें विद्यमान आचारिक विधान (=धर्म नियम) और उसके विधानके विपाकपर विश्वास के बिना आचारिक विधान ठहर नहीं सकते। अन्तरात्माकी आवाज़ सभी विश्वासों और सच्चाइयोंकी कसौटी है। वह अभ्रान्त है। अन्तरात्माकी आवाज़ हमारे भीतर भगवानकी आवाज़ है। आध्यात्मिक जगत और हमारे बीच ईश्वर बिचवई है और वह अन्तरात्माकी आवाज़के रूपमें अपना सन्देश भेजता है।

२—हेगेल् (१७७०-१८३१ ई०)

जार्ज विल्हेल्म फ्रीड्रिख हेगल् स्टट्गार्ट (जर्मनी)में पैदा हुआ था। टुबिंगन् विश्वविद्यालयमें उसने धर्मशास्त्र और दर्शनका अध्ययन किया। पहिले जेनामें दर्शनका प्रोफेसर हुआ, फिर १८०६-८ ई० तक बम्बर्गमें एक समाचारपत्रका सम्पादक रहा। उसके बाद फिर अध्यापनका काम शुरू किया, और पहिले हाइडलबर्ग फिर बर्लिनमें प्रोफेसर रहा। ६१ वर्षकी उम्रमें हैजेसे उसकी मृत्यु हुई।

[विकास]—आधुनिक युगमें जो अभौतिकवादी दर्शनका नया प्रवाह आरम्भ हुआ हेगेलके दर्शनके रूपमें वह चरमसीमाको पहुँचा। उसके दर्शनके विकासमें अफलातू अरस्तू स्पिनोज़ा काण्टका खास हाथ है। काण्टसे उसने लिया कि मन (=विज्ञान) सारे विश्वका निर्माता है। हमारे वैयक्तिक मन (=विज्ञान)विश्व मनके अंश हैं। वही विश्व-मन हमारे द्वारा विश्वको अस्तित्वमें लानेके लिए मनन (=अभिध्यान) करता है। स्पिनोज़ासे उसने यह लिया कि आत्मिक और भौतिक तत्त्व उसी एक अनादि तत्त्वके दो रूप हैं। अफलातूके दर्शनसे लिया—(१) विज्ञान सामान्य विज्ञान (आचारिक)मूल्य और यह कि पूर्णताका जगत ही एक मात्र वास्तविक जगत है। इन्द्रियोंका जगत् उसी सीमा-धारी आत्मिक जगतकी उपज है, (२) भौतिक जगत आत्मिक जगत (=परमतत्त्व)के स्वेच्छापूर्वक सीमित करनेका परिणाम है,

अर्थात् उन आदि मूल तत्त्व उच्च स्थान प्राप्त करता है। साथ ही इस विकास वाला पहलू साथ साथ हमेशा। परन्तु आदि विरासत भी मिली है, पाया विकास हर तरह कम और ऊँचे विरासतों और उसी में जा रहा है। इसका आदि मूल वही है, वहीं द्वन्द्वात्मक विकास।

(१) दर्शन और उसका प्रयोजन—हेगेल के अनुसार दर्शन का काम है प्रकृति और इतिहास द्वारा सारे जगत् का जाना यह है, वैसा जानना, उसके भीतरी हेतु का अध्ययन करना और समझना—सिर्फ बाहरी घटनाओं तथा संयोगों उत्पन्न कर पाना ही नहीं, बल्कि प्रकृति के भीतर जो अनादि और सनातनी व्यवस्था है उसको भी। जगत् का अनुसार कुछ अंध है संसारी घटनाएँ बुद्धिपूर्वक हैं। ग्रह-उपग्रह-संगठन बुद्धिसंगत नियमों के अन्दर है प्राणिशरीर संरचना अर्थपूर्ण और बुद्धिसंगत है। चूँकि मनुष्य विकसित अपने समय के भीतर बुद्धिसंगत है इसलिए उसका चिन्तन या ज्ञानकी प्रक्रियाको भी हम बुद्धिसंगत घटनाओं के रूपमें पाते हैं। चूँकि दर्शनका संबंध प्रकृतिका गंभीरतासे अध्ययन करना है, इसीलिए प्रकृतिके साथ दर्शनका विकास उच्च-से-उच्चतर पाया जा रहा है।

(२) परमतत्त्व—हेगेल ने कांट के अज्ञात वस्तुसार (वस्तु अपने भीतर) या परमात्मतत्त्वको मानसे इन्कार कर दिया, और उसकी जगह बतलाया कि मन (=विज्ञान) और भौतिक प्रकृति ही परमतत्त्व है। प्रकृति किसी अज्ञात परम (आत्म) तत्त्वका बाहरी आभास या छिलका नहीं बल्कि वह स्वयं परमतत्त्व है। मन और भौतिक तत्त्व भी अलग अलग चीज नहीं, बल्कि परमतत्त्वके आत्मप्रकाशके एक ही प्रवाहके दो अभिन्न अंग हैं। मनके लिए एक भौतिक जगत्की जरूरत है जिसपर कि वह अपना प्रभाव डाल सके किन्तु भौतिक जगत् भी मनोमय है। 'वास्तविक मनोमय' है, और मनोमय वास्तविक है।

(३) द्वन्द्वात्मक परमतत्त्व—परमतत्त्व भौतिक और मानस जगतसे

---

[1] Dialectical evolution [2] Rational

अभिन्न हैं, इसे हेगल् बहुत व्यापक अर्थमें इस्तेमाल करता है। परमतत्त्व स्थिर नहीं गतिशील, चल है।—जगत् क्षण क्षण बदल रहा है, विचार बुद्धि, समझ या सच्चा ज्ञान सक्रिय प्रवाहित घटना, विकासकी धारा है। विकास नीचेसे ऊपरकी ओर हो रहा है, कोई चीज—सजीव या निर्जीव निम्न दर्जे या ऊँचे दर्जेके जन्तु—अभी अविकसित विशेषताशून्य सम-स्वरूप रहती है, वह उस अवस्थासे विकसित विशेषतायुक्त हो विभक्त होती है, और कितने ही भिन्न भिन्न आकारोंको ग्रहण करती है। गर्भ, अणुगुच्छक आदिके विकासमें इसे हम देख चुके हैं।[1] ये भिन्न भिन्न आकार जहाँ पहिली अविकसित अवस्थामें अभिन्न=विशेषता रहित थे अब वह एक दूसरेसे स्वरूप और स्थितिमें ही भिन्न नहीं रखते, बल्कि वह एक दूसरेके विरोधी हैं। इन विरोधियोंका अपने विरोधी गुणों और क्रियाओंके कारण आपसमें द्वन्द्व चल रहा है तो भी उस पूर्णमें वह एक है जिसके कि वह अवयव हैं।—अर्थात वास्तविकता अपने भीतर द्वन्द्व या विरोधी अवयवोंका स्वागत करती है। ऊपरकी ओर विकास करना वस्तुओंकी अपनी आन्तरिक रुचि का परिणाम है। इस तरह विकास निम्न स्थितिका प्रयोजन अर्थ और सत्य है। निम्नमें जो छिपा, अस्पष्ट होता है, उच्च अवस्थामें वह प्रकट स्पष्ट हो जाता है। विकासकी धारा अपनी हर एक अवस्थामें पहिलेकी अपनी सारी अवस्थाओंको लिये रहती है तथा सभी आनेवाली अवस्थाओंकी झाँकी देती है। जगत अपनी प्रत्येक स्थितिमें पहिलेकी उपज तथा भविष्य-द्वाणी भी है। उच्च अवस्थामें पहुँचनेपर निचली अवस्था अभावप्राप्त[2] (=प्रतिषिद्ध) बन जाती है—अर्थात इस वक्त वह वही नहीं रहती जो कि पहिले थी, तो भी पिछली अवस्था उच्च अवस्थाके रूपमें सुरक्षित है वह ऊपर पहुँचाई गई है। यह पहुँचाना—निम्नसे ऊपरकी ओर बढ़ना, एक दूसरी विरोधी अवस्थामें पहुँचा देता है। दो रास्ते एक जगहसे फूटते हैं, किन्तु आगे चलकर उनकी दिशा एक दूसरेसे विरोधी बन जाती

[1] देखो मेरी "विश्वकी रूपरेखा"। [2] Negated

है। पानीकी गति उसे बर्फ बना गतिसे उत्पन्न (कठोर, स्थिर, ज्यों का त्यों) रूपमें बदल देता है। पहिली अवस्थासे उसकी बिलकुल विरोधी अवस्थामें बदल जाना इस तरह द्वन्द्वात्मक घटना रहता है।

[द्वन्द्वात्मकता]—द्वन्द्व विरोध सभी सरहके जीवन और गतिका जड़ है। हर एक वस्तु द्वन्द्व है। द्वन्द्व या विरोधका सिद्धान्त संसारपर शासन कर रहा है। हरएक वस्तु बदलती और बदलकर पहिलेके विरुद्ध अवस्थामें परिणत होना चाहती है। चीजोंके भीतर कुछ और बनने, अपनेको तोड़ने तथा बदलनेकी चाह भरी है। द्वन्द्व (=विरोध) यदि न होता, तो जगतमें न जीवन होता न गति न वृद्धि और सभी चीजें मुर्दा और स्थिर होतीं। लेकिन प्रकृतिका काम विरोध (=द्वन्द्व) तक ही खतम नहीं हो जाता प्रकृति उसपर काबू पाना चाहती है वस्तु अपने विरोधी रूपमें परिणत जरूर हो जाती है लेकिन गति बन्द नहीं हो जाती, वह आगे जारी रहती है और आगे भी विरोधोंको दबाया और उनका समन्वय किया जाता है इस प्रकार विरोधी एक पूर्ण शरीरके अवयव बन जाते हैं। विरोधी, एक दूसरेसे जहाँ तक संबंध है, आपसमें विरोधी हैं किन्तु जहाँ तक उसे अपने एक पूर्ण शरीरसे संबंध है, वे परस्पर विरोधी नहीं हैं। वहाँ तो यही परस्परविरोधी मिलकर एक पूर्ण शरीर को बनाते हैं।

विश्व निरन्तर होते विकासोंका प्रवाह है यही उसके लक्ष्य या प्रयोजन है यही विश्व-बुद्धिके प्रयोजन है। परमात्मतत्त्व[1] वस्तुतः विश्वके विकासका परिणाम है। लेकिन यह परिणाम जितना है उतना सम्पूर्ण नहीं है। सच्चा सम्पूर्ण है परिणाम (परमात्मतत्त्व) और उसके साथ विकासका सारा प्रवाह—वस्तुएँ अपने प्रयोजनके साथ खतम नहीं होतीं, बल्कि वह जो बन जाती है उसीमें समाप्त होती है। इसीलिए द्वन्द्वका लक्ष्य परिणाम नहीं बल्कि उसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि कैसे एक परिणाम दूसरे

[1] Absolute

परिणामसे पैदा होता है कि उसका दूसरा प्रकट होना अवश्यभावी है।

वास्तविकता (परमतत्त्व) मनसे कल्पित एक निराकार ख्याल नहीं, बल्कि चलता बहता प्रवाह, एक द्वन्द्वात्मक सन्तान है। उसे हमारे निराकार ख्याल पूरा तौरसे नहीं व्यक्त कर सकते। निराकार ख्याल एक अंश और उत्पन्न छाट अलगे ही बारम बनाते हैं। वास्तविकता इस क्षण यह है, दूसरे क्षण वह है, इस अर्थमें वह अभावों विरोधों द्वन्द्वोंसे भरी हुई है पौधा अंकुरित होता है फूलता है सूखता और फिर मर जाता है, मनुष्य बच्चा होता फिर तरुण जीर्ण वृद्ध हो मर जाता है।

(४) द्वन्द्ववाद—वस्तु आगे बढ़ते-बढ़ते अपनेसे उलटे विरोधी रूपमें बदल जाती है। सपूर्ण (=अवयवी) परस्पर विरोधी अवयवोंका योग है यह हम कह चुके। दो विरोधियोंका समागम कैसे होता है, इसे हेगलने इस प्रकार समझाया है।—हमारे सामने एक चीज आती है, फिर उसका विरोधी दूसरी चीज आ मौजूद होती है। इन दोनोंका द्वन्द्व चलता है, फिर दोनोंका समन्वय हम एक तीसरी चीजसे करते हैं। इनमें पहिली बात वाद है, दूसरी प्रतिवाद और तीसरी संवाद। उदाहरणार्थ—पर्मेनिदेने कहा मूल तत्त्व स्थिर नित्य है यह हुआ वाद। हेराक्लितुसने कहा कि वह निरन्तर परिवर्तनशील है, यह हुआ प्रतिवाद। परमाणुवादियोंने कहा, यह न तो स्थिर ही है न परिवर्तनशील ही, बल्कि दोनों है यह हुआ संवाद।

(५) ईश्वर—हेगलका दर्शन स्पिनोजासे अधिक क्रान्तिकारी है, किन्तु ईश्वरका मोह उसे स्पिनोजासे ज्यादा है। ईश्वर सिद्ध करनेके लिए बड़ी भूमिका बाँधते हुए वह कहता है—विश्व एक पागल प्रवाह, बिल्कुल ही अर्थहीन बे-लगामसी घटना नहीं है, बल्कि इसमें नियमबद्ध विकास और प्रगति देखी जाती है। हम वास्तविकताका आभास और सार बाह्य और अन्तर द्रव्य और गुण शक्ति और उसके प्राकट्य सान्त और अनन्त मन (=विज्ञान) और भौतिक तत्त्व, लोक और ईश्वरमें विभक्त करना चाहते हैं, किन्तु इससे हम झूठे भेद और मनमानी दिमागी कल्पनाके सिवाय कुछ

है। पानीकी गति उसे बर्फ बना गतिसे उलट (कठोर, स्थिर, ज्यादा विस्तृत) रूपमें बदल देती है। पहिली अवस्थासे उसकी बिलकुल विरोधी अवस्थामें बदल जाना इसे हेगल द्वन्द्वात्मक घटना कहता है।

[द्वन्द्वात्मकता]—द्वन्द्व विरोध सभी तरहके जीवन और गतिकी जड़ है। हर एक वस्तु द्वन्द्व है। द्वन्द्व या विरोधका सिद्धान्त संसारपर शासन कर रहा है। हरएक वस्तु बदलना और बदलकर पहिलेसे विरुद्ध अवस्थामें परिणत होना चाहती है। वजहकि भीतर कुछ और बनने अपनपनसे बढ़ने तथा बदलनेकी चाह भरी है। द्वन्द्व (=विरोध) यदि न होता, तो जगतमें न जीवन होता न गति न वृद्धि और सभी चीजें मुर्दा और स्थिर होती। लेकिन, प्रकृतिका काम विरोध (=द्वन्द्व) तक ही खतम नहीं हो जाता प्रकृति उसपर काबू पाना चाहती है वस्तु अपने विरोधी रूपमें परिणत जरूर हो जाती है लेकिन गति वहीं रुक नहीं जाती, वह आगे जारी रहती है, और आगे भी विरोधोंको दबाया और उनका समन्वय किया जाता है इस प्रकार विरोधी एक पूर्ण शरीरके अवयव बन जाते हैं। विरोधी एक दूसरेसे जरूर तक संबद्ध हैं आपसमें विरोधी हैं किन्तु जहाँ तक उसे अपने एक पूर्ण शरीरसे संबद्ध हैं वे परस्पर विरोधी नहीं हैं। वहाँ तो यही परस्परविरोधी मिलकर एक पूर्ण शरीर को बनाते हैं।

विश्व निरन्तर होने विकासका प्रवाह है यही उसके लक्ष्य या प्रयोजन है यही विश्व-बुद्धिके प्रयोजन है। परमात्मतत्त्व[1] वस्तुतः विश्वके विकास का परिणाम है। लेकिन यह परिणाम जितना है, उतना सम्पूर्ण नहीं है। सच्चा सम्पूर्ण है परिणाम (परमात्मतत्त्व) और उसके साथ विकासका सारा प्रवाह—वस्तुएँ अपने प्रयोजनके साथ खतम नहीं होतीं, बल्कि वह जो बन जाती है उसीमें समाप्त होती है। इसीलिए दर्शनका लक्ष्य परिणाम नहीं बल्कि उसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि कैसे एक परिणाम दूसरे

---

[1] Absolute

आगे पाये जानेवाले सत्यका यह सार है कि पीछे पार किये सारे भ्रमोंका सत्य—वह लक्ष्य जिसकी कि खोजमें वह भ्रममें फिर रहा था—होवे। इसीलिए परमतत्त्व—निम्न और सापेक्ष सत्यके रूपमें ही मौजूद है। अनन्त सिर्फ सान्तके सत्यके तौरपर ही पाया जाता है। सत्य पूर्ण तभी हो सकता है, जब कि अपूर्ण द्वारा की जानेवाली खोजको पूरा करता हो।

(८) हेगेल्के दर्शनकी कमजोरियाँ—(१) हेगेल्का दर्शन विश्वको परमविज्ञान[1]के रूपमें मानता है। इस तरह बर्कलेका विज्ञानवाद और हेगेल्के दर्शनका भाव एक ही है। दोनों मन शुद्ध चेतनाको भौतिक, तत्त्वोंसे पहिले मानते हैं।

(२) हेगेल यद्यपि विश्वमें परिवर्तन, प्रवाहकी बात करता है, किन्तु वास्तविक परिवर्तनको वह एक तरहसे इन्कार करता है। जो भविष्यमें होनेवाला है, वह पहिले हीसे मौजूद है, यह इसी बात को प्रकट करता है, और विश्वको भाग्यचक्रमें बँधा एक निरीह वस्तु बना देता है। परमतत्त्वकी एकतामें विश्वकी विचित्रताओंको वह खपा देना चाहता है, और इस तरह भिन्न-भिन्न वस्तुओंवाले जगत्के व्यक्तित्वको एक मूलतत्त्वसे बढ़कर 'कुछ नहीं' कह, परिवर्तन तथा विकासके सारे महत्त्वको खतम कर देता है।

(३) हेगेल् कहता है, कि सभी सत्ताओंकी एकताएं, सभी बुराईसी जान पड़ती बातें वस्तुतः अच्छी (=शिव) हैं। ऊँचे दृष्टिकोणसे वह बुराइयोंको उचित ठहराना चाहता है, और बुराइयोंको भ्रम कहकर उनसे ऊपर उठना चाहता है। दर्शनमें उसका यह औचित्य व्यवहारमें बहुत खतरनाक है, इसके द्वारा राजनीतिक, सामाजिक अत्याचार, वैषम्य सभीको उचित ठहराया जा सकता है।

३—शोपन्हार (१७८८ १८६० ई०)—अर्थर शोपन्हार डन्जिग्में एक धनी बैंकरके घरमें पैदा हुआ था। उसकी माँ एक प्रसिद्ध उपन्यास-

[1] Idea

लखिया थी। गाटिंगन (१८०६-१९ ई०) और बर्लिन (१८११-१३ ई०) के विश्वविद्यालयोंमें उसने दर्शन, विज्ञान और संस्कृत-साहित्यका अध्ययन किया। फिर ही गाना तक जहाँ-तहाँ ठोकरें खानेके बाद बर्लिन विश्वविद्यालयमें उस अध्यापकी मिली जहाँसे १८३१में उसका अवकाश ग्रहण किया, और फिर मान-नदीतटवर्ती फ्रांकफर्ट शहरमें बस गया।

[तृष्णावाद[1]]—वास्तवका दर्शन वस्तु-अपने भीतर (वस्तु-सार)के लिए घूमता है, मानवहारका दर्शन तृष्णा-सबके-भीतर (सर्वव्यापी तृष्णा) के लिए घूमता है। वस्तुएँ या इच्छाएँ कोई वैयक्तिक नहीं हैं, व्यक्ति केवल भ्रम है। तृष्णासे परे कोई वस्तु अपने आधार नहीं है। तृष्णा ही कालातीत, देशातीत मूलतत्त्व और कारण विहीन विश्व है। वही मेरे भीतर उत्तेजना, पशुबुद्धि, उद्यम इच्छा मुखके रूपमें प्रकट होती है। प्रकृतिके एक अंशके तौरपर उसके आभासके तौरपर मैं अपनेपनसे आगाह हो जाता हूँ—मैं अपनेको विस्तारयुक्त प्राणिशरीर समझने लगता हूँ। वस्तुतः यही तृष्णा मेरी आत्मा है, शरीर भी उसी तृष्णाका आभास है।

जब मैं अपने भीतरकी ओर देखता हूँ, तो मुझे वही तृष्णा (मानकी तृष्णा, खानेकी तृष्णा, जीनेकी तृष्णा, न जानेकी तृष्णा) दिखाई पड़ती है। जब मैं बाहरकी ओर देखता हूँ तो उसी अपनी तृष्णाको शरीरके तौरपर देखता हूँ। दूसरे शरीर भी मेरे शरीरकी ही भाँति तृष्णाके प्राकट्य हैं। पत्थरमें तृष्णा अंधी शक्तिके तौरपर प्रकट होती है, मनुष्यमें वह चेतनायुक्त बन जाती है। चुम्बककी सुई सदा उत्तरकी ओर घूमती है पिंड गिरनेपर सदा नीचेकी ओर लंबाकार गिरता है। एक तत्त्वको जब दूसरेसे प्रभावित किया जाता है तो स्फटिक बनता है। यह सब बतलाते हैं, कि प्रकृतिमें सर्वत्र तृष्णाकी जातिकी ही शक्तियाँ काम कर रही हैं। वनस्पति जगत्में भी अनजाने इसी तरहकी उत्तेजना या प्रयत्न दीखते हैं—वृक्ष प्रकाशकी तृष्णा रखता है और ऊपरकी ओर जानेका प्रयत्न करता है। वह नमीकी

---

[1] Will देखो पृष्ठ ५०३-४

भी तृष्णा रखता है, जिसके लिए अपनी जड़ोंको धरतीकी ओर फैलाता है। तृष्णा या आन्तरिक उत्तेजना प्राणियोंकी वृद्धि और सभी क्रियाओंको संचालित करती है। हिंस्र पशु अपने शिकारको निगलनेकी चाह (=तृष्णा) रखता है, जिससे तदुपयोगी दाँत नख और नस-पेशियाँ उसके शरीरमें निकल आती हैं। तृष्णा अपनी जरूरतका पूरा करने लायक शरीरको बनाती है, प्रहार करनेकी चाह सींग जमाती है। जीवनकी तृष्णा ही जीवनका मूल आधार है।

जड़-चेतन, धातु-मनुष्यमें प्रकट होनेवाली यह आधारभूत तृष्णा न मनुष्य है और न कोई ज्ञानी ईश्वर। वह एक अंधी चेतनारहित शक्ति है, जो कि अस्तित्वकी चाह (=तृष्णा) रखती है। वह न देशसे सीमित है, न कालसे, किन्तु व्यक्तियोंमें देश-कालसे परिसीमित हो प्रकट होती है।

होनेकी तृष्णा, जीनेकी तृष्णा, दुनियाके सारे संघर्षों, दुःख और बुराइयोंकी जड़ है। तृष्णा स्वभावसे ही बुरी है, उसको कभी तृप्त नहीं किया जा सकता। निरन्तर युद्ध और संघर्षकी यह दुनिया है, जिसमें भिन्न भिन्न प्रकारकी बने रहनेकी अंधी तृष्णाएं एक दूसरेके साथ लड़ रही हैं, यह दुनिया जिसमें छोटी मछलियां बड़ी मछलियों द्वारा खाई जा रही हैं। यह अच्छी नहीं, बुरी दुनिया, बल्कि जितना संभव हो सकता है, उतनी बुरी दुनिया है। जीवन अंधी चाहसे अधिक और कुछ नहीं है। जबतक उसकी तृप्ति नहीं होती, तबतक पीड़ा होती है, और जब उसकी तृप्ति कर दी जाती है, तो दूसरी पीड़ाकारक तृष्णा पैदा हो जाती है। तृष्णाओंको कभी सदाके लिए सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हर एक फूलमें काँटे हैं। इस दुःखसे बचनेका एक ही रास्ता है, वह है तृष्णाका पूर्णतया त्याग (प्रहाण), और इसके लिए त्याग और तपस्याका जीवन चाहिए।

शोपनहारके दर्शनपर बौद्ध दर्शन[1]का बहुत प्रभाव पड़ा है। उसके दर्शनमें तृष्णाकी व्याख्या, और प्राधान्य उसी तरहसे पाया जाता है, जैसा

---

[1] देखो आगे "बुद्ध दर्शन" पृष्ठ ५१५,५१७

दुनियाको हटाकर झूठी दुनियाको गद्दीपर बिठाया गया। सच्चाईको खोजकर प्राप्त किया जाता है उसे गढ़ा-बनाया नहीं जाता। किन्तु, दार्शनिकोंने अपना कर्त्तव्य—सत्यको ढूंढ़ना छोड़, उसे गढ़ना शुरू किया।

(२) महान् पुरुषोंकी जाति—निटज्शे कान्ट, हेगल आदिके दर्शनको कितना गलत बतलाता था, यह मालूम हो चुका। वह वास्तविकतावादी था किन्तु इस दर्शनका बहुत ही खतरनाक उपयोग करता था। प्रभुता पानके लिए ज्ञान एक हथियार है, जिसे प्रभुता पानकी तृष्णा इस्तेमाल करती है। तृष्णा या संकल्प विश्वासपर आश्रित होता है। विश्वास झूठा है या सच्चा इसे हमें नहीं देखना चाहिए, हम देखते हैं कि वह सार्थक है या निरर्थक, उपयोगी है या अनुपयोगी। प्रभुताका प्रेम निटज्शेके लिए सर्वोच्च उद्देश्य है, और महान पुरुष पैदा करना सर्वोच्च आदर्श है—एक महान् पुरुष नहीं महान पुरुषोंकी जाति, एक ऊँचे दर्जेकी जाति वीरोंकी जाति। निटज्शेके इसी दर्शनके अनुसार आज हिटलर जर्मनोंको महान पुरुषोंकी जाति बना रहा है, ऐसी जाति बना रहा है जो दुनियाको विजय करे दुनियापर शासन करे और विश्वास रखे, कि वह शासन तथा विजय करनेके लिए पैदा हुई है। इसके लिए जो भी किया जाय निटज्शे उसे उचित ठहराता है। युद्ध, पीड़ा आपत्ति निर्बलोंपर प्रहार करना अनुचित नहीं है। इसीलिए शान्तिसे युद्ध बेहतर है—बल्कि शान्तिको तो मृत्युका पूर्वलक्षण समझना चाहिए। हम इस दुनियामें अपने सुख और दर्पके लिए नहीं हैं। हमारे जीवनका और कोई अर्थ नहीं सिवाय इसके कि हम एक अंगुल भी पीछे न हटें, या तो अपनेको ऊपर उठायें या खतम हो जायें। दया बहुत बुरी चीज है यह उस आदमीके लिए भी बुरी है जो इसे करके अपने लक्ष्यसे विचलित होता है, और उसके लिए भी जो कि दूसरेकी दया लेकर अपनेको दूसरोंकी नजरोंमें गिराता है। दया निर्बल और बलवान दोनोंको कमजोर करती है, यह जातिके जीवन रसको चूस लेती है।

जर्मन रईस व्यक्तियोंको अधिक सुभीता होना चाहिए क्योंकि साधारण निम्न श्रेणीके आदमियोंसे उनके कर्त्तव्य ज्यादा और भारी हैं।

सर्वश्रेष्ठ आदमियोंको ही शासनका अधिकार होना चाहिए और सर्वश्रेष्ठ आदमी वही है, जो स्थान-स्थान पर हो, युद्ध खतरेमें पड़ने तथा दूसरों पर उसे डालनेके लिए हर वक्त तैयार हो। आजके हिटलर, मोसोलिनी आदि इसी तरहके सर्वश्रेष्ठ आदमी हैं।

निट्शे जनतन्त्रता, समाजवाद, साम्यवाद, अराजकवाद सबको फजूल और असम्भव बतलाता है। वह कहता है कि यह जीवन जिस सिद्धान्त—योग्यतमका बचे रहना—पर कायम है। जो उसके बरखिलाफ हैं वे आदमीके विरोधी हैं। वे सबल व्यक्तियोंके विकासमें बाधा डालते हैं। 'आज हमारे लिए सबसे बड़ा खतरा है यही समानताकी हवा—शान्ति, सुख, दया आत्मत्याग, जगत्से घृणा, जनानापन, युद्धविरोध, समाजवाद, साम्यवाद, समानता, धर्म, दान और साहस सभी जीवन सिद्धान्तके विरोधी हैं, इसलिए उनसे कोई संबंध नहीं रखना चाहिए।

निट्शे कहता है महान् पुरुष उसी तरह दूसरोंको परास्त कर आगे बढ़ जायगा जैसे कि मानुषसे बनमानुषका।

§ ३—अज्ञेयतावाद

स्पेन्सर (१८२० १९०३ ई०)—हर्बर्ट स्पेन्सर डर्बी (इंगलण्ड)में एक मध्यमश्रेणीके परिवारमें पैदा हुआ था।

दर्शन—स्पेन्सर मानवज्ञानको इन्द्रियोंकी दुनिया तक ही सीमित रखना चाहता है, किन्तु इस दुनियाके पीछे एक अज्ञेय दुनिया है, इसे वह स्वीकार करता है। उसका कहना है—हम ज्ञात और सीमित वस्तुको ही जान सकते हैं, परमतत्त्व, आदिकारण, अनन्तको जानना हमारी शक्तिसे बाहर है। ज्ञान सापेक्ष होता है, और परमतत्त्वको किसीसे तुलना या भेद करके बतलाया नहीं जा सकता। चूँकि हम परमतत्त्वके बारेमें कोई ज्ञान नहीं पैदा कर सकते इसलिए उसकी सत्तासे इंकार करना भी ठीक नहीं है। विज्ञान और धर्म दोनों इस बातपर एकमत हो सकते हैं कि सभी दृश्य जगतके पीछे एक सत्ता परमतत्त्व है। शक्तियाँ दो प्रकारकी होती हैं—वह शक्ति

जिससे प्रकृति हमें अपनी सत्ताका परिचय देती है, वह शक्ति जिसमें वह काम करता हुआ दिखाई पड़ता है—अर्थात् सत्ता और क्रियाकी परिचायक शक्तियां।

(१) परमतत्त्व या अज्ञेय अपनेको दो परस्पर विरोधी बड़े समुदायोंमें प्रकाशित करता है वह है अन्तर और बाह्य, आत्मा और अनात्मा, मन और भौतिक तत्त्व।

(२) विकासवाद—हमारा ज्ञान परमतत्त्वके भीतरी (मन) और बाहरी (जड़) प्रदेशतक ही सीमित है। दार्शनिकोंका काम है, कि उनमें जो साधारण प्रवृत्ति है सभी चीजोंका जो मार्वदेशिक नियम है, उसे ढूंढ निकाले। यही नियम है विकासका नियम। विकासके प्रवाहमें हम भिन्न भिन्न रूप देखते हैं—(१) एकीकरण[1], जैसे कि बादलों बालुओंके टीले, शरीर या समाजके निर्माणमें देखते हैं (२) विभाजन[2] या पिंडका उसकी परिस्थितिसे अलग कर, एक अलग भाग बनाना, तथा उसे एक संगठित पिंडका इस तरह अवयव बनाना जिसमें अवयव अलग होते भी एक दूसरेसे संबद्ध हों। विकास और विनाशमें अन्तर है। विनाशमें विभाजन होता है किन्तु संबद्धता नहीं। विकास भौतिक तत्त्वोंका एकीकरण और गतिका वितरण है, इसके विरुद्ध विनाश गतिको हजम करता और भौतिक तत्त्वोंका नितर बितर करता है।

जीवन है, बाहरी संबंधोंके साथ भीतरी संबंधका बराबर समन्वय स्थापित करते रहना। अत्यन्त पूर्ण जीवन वह है जिसमें बाहरी संबंधोंके साथ भीतरी संबंधोंका पूर्ण समन्वय हो।

(३) सामाजिक विचार—स्पेन्सरके अनुसार बड़े ही निम्न श्रेणी की सामाजिक अवस्थामें ही सर्वशक्तिमान् समाजवादी राज्य स्वीकार किया जा सकता है। जब समाजका अधिक ऊँचा विकास हो जाता है तो इस तरहके राज्यकी जरूरत नहीं रहती, बल्कि वह प्रगतिमें बाधा

---

[1] Concentration [2] Differentiation

[illegible] है। राजका काम है भीतर शान्ति रखना और बाहरके आक्रमणसे बचाना। जब समाजवादी राज्य इससे आगे बढ़ता तथा मनुष्यके आर्थिक सामाजिक बातोंमें दखल देता है तो वह न्यायका खून करता है और विकासमें आगे बढ़ व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रतापर प्रहार करता है। स्पेंसर समाजवादके सख्त खिलाफ था और कहता था—यह आ रहा है किन्तु जातिके लिए यह भारी दुर्भाग्यकी बात होगी, और बहुत दिन टिकेगा भी नहीं।

§ ४—भौतिकवाद

उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भ विज्ञानवादियोंका बड़ा जोर रहा किन्तु मेथ्, यूरे हक्सलेनूट्ज, टेन आदि वैज्ञानिकोंका ज्ञान भौतिकवादको अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत प्रोत्साहित किया।

१—बुख्नेर् (१८२४-९९)का ग्रंथ शक्ति और भौतिक तत्व भौतिकवादका एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। उसका सिद्धान्त है कि सभी शक्तियाँ गति हैं, और सभी चीजें गति और भौतिक तत्वके योगसे बनती हैं। गति और भौतिक तत्वको हम अलग समझ सकते हैं किन्तु अलग कर नहीं सकते। आत्मा या मन कोई चीज नहीं। जीवन विशेष परिस्थितिमें भौतिक-तत्वोंसे ही पैदा हो जाता है। मनकी क्रिया "बाहरसे आई उत्तेजनासे मस्तिष्कके पीले मज्जाके सेलोंकी गति है।

मालेशोट (१८२२-९३ ई०) फागुट (१८१७-९७ ई०), वुखनर (१८१९-७३ ई०) इस सदीके भौतिकवादी दार्शनिक थे। विरोधी भी इस बातको कबूल करते हैं कि इस सदीके सभी भौतिकवादी दार्शनिक और साहसवेत्ता मानवता और मानव प्रगतिके जबरदस्त हामी थे।

२—लुड्विग् फ्योरबाख (१८०४-७२ ई०)

कान्टने अपनी 'शुद्ध बुद्धि' या सद्धान्तिक तर्कसे किस प्रकार धर्म रूढ़ि, ईश्वरके चीथड़े चीथड़े उड़ा दिये, किन्तु अन्तमें भलमानुष बननेके

सार' बतलाया गया है। भूमिकामें मनुष्य और धर्मके मुख्य स्वभावोंकी विवेचना की गई है। मनुष्यका मुख्य स्वभाव उसकी आत्मा जातिका चेतना मानव-स्वभाव है। यह चेतना विकास है, इसका अर्थ उसके मानुष भाव और संवेदनामें लगाना है।

तो जिसके कारण वह मनुष्य करता है वह मानव स्वभाव क्या है अथवा मनुष्यकी खास मानवता उसकी विशेषता क्या है? बुद्धि, इच्छा, स्नेह।

"मनुष्यके अस्तित्वके आधार, उसके मनुष्य होनेके तौरपर उसकी सर्वोच्च शक्तियाँ हैं—समझना (बुद्धिकी क्रिया), इच्छा करना और प्रेम। मनुष्य है समझने, प्रेम करने और इच्छा करनेवाला।

सिर्फ यही सच्चा, पूर्ण और दिव्य है जो कि अपने लिए अस्तित्व रखता है। किन्तु एसा ही तो प्रेम है, एसी ही तो बुद्धि है, एसी ही तो इच्छा है। वैयक्तिक मानवमें मनुष्यके भीतर यह त्रिविधता—बुद्धि प्रेम इच्छा—का समागम है। बुद्धि प्रेम इच्छा एसी शक्तियाँ नहीं हैं जिनपर मनुष्यका अधिकार है। उनके बिना मनुष्य कुछ नहीं है। वह जो कुछ है वह उनका ही बनाया है। यही उसके स्वभावकी बुनियाद है। वह न उन्हें (स्वामीके तौरपर) रखता है, न उन्हें एसी सजीव निश्चायक नियामक शक्तियाँ—दिव्य परम शक्तियाँ—बनाता है जिनके कि प्रतिरोधक वह सिलाप जा सके।'

फरदवाखने बतलाया—'मनुष्यके लिए परमतत्त्व (श्रेष्ठतम वस्तु) उसका अपना स्वभाव है। मनोभावसे जिस दिव्य स्वभावका पता लगता है वह वस्तुतः और कुछ नहीं। वह है खुद अपने प्रति आनन्दविभोर हो प्रसन्नताकी भावना, अपने ही भीतरकी आनन्दमयता।' उसने धर्मके सारके बारेमें कहा—जहाँ 'इन्द्रियोंके प्रत्यक्षमें विषय (=वस्तु)-संबंधी चेतनाको अपनी (आत्माकी) चेतनामें पेश किया जा सकता है, धर्ममें

---

[1] The Essence of Christianity, p. 32

विषय-चेतना और आत्म-चेतना एक बना दी जाती है।" वस्तुतः मनुष्यकी आत्मचेतनाको एक स्वतन्त्र अस्तित्वके तौरपर आसमानपर चढ़ाना, धर्म है। इसी तरह उसे पूजाकी वस्तु बनाया जाता है। फ्वेरबाखने इसे साफ करते हुए कहा—

'जिसी मनुष्यके जैसे विचार, जैसी प्रवृत्तियाँ होती हैं वैसा ही उसका ईश्वर होता है। जितने मूल्यका मनुष्य होता है, उतना ही उसका ईश्वर होता है, उससे अधिक नहीं। ईश्वर-संबंधी चेतना (=चिन्तन) आत्म (अपनी)-चेतना है, ईश्वर-संबंधी ज्ञान (उसका) आत्म (=अपना) ज्ञान है। उसके ईश्वरसे तू उस मनुष्यको जानता है और उस मनुष्यसे उसके ईश्वरको, दोनों (मनुष्य और उसका ईश्वर) एक हैं।'[1]

त्रिव्यतत्व मानवीय है इसकी आलोचना करनेके बाद वह फिर कहता है—

'धर्म (=मजहब)-संबंधी विकास विशेषपर इस तरह पाया जाता है कि मनुष्य ईश्वरको अधिकाधिक परिमित करता है, और अधिकाधिक अपनेपर लगाता है। ईश्वरीय वाणीके संबंधमें यह बात खास तौरसे स्पष्ट है। पीछेके युग या संस्कृत जनोंके लिए जो बात प्रकृति या बुद्धिसे मिली होती है, वही बात पहिलेके युग या असंस्कृत जनोंको ईश्वर प्रेरित (मालूम होती) थी।

'इस्राइलियों (=यहूदी धर्मानुयायियों)के अनुसार ईसाई रूढ़िग्रस्त विचारवाला (=धर्मकी पाबंदीसे मुक्त) है। बातोंमें इस तरह परिवर्तन होता है। जो कल तक धर्म (=मजहब) था, आज वह वैसा नहीं रह गया है, जो आज नास्तिकवाद[2] है, कल वही धर्म होगा।"[3]

धर्मका वास्तविक सार क्या है, इसके बारेमें उसका कहना है—

'धर्म मनुष्यको अपने आपसे अलग कराता है, (इसके कारण) वह (मनुष्य) अपने सामने तथा अपने प्रतिवादीके तौरपर ईश्वरको ला रखता

---

[1] Ibid, p 12 [2] Athe sm [3] वहीं, pp 31-32

है। ईश्वर वह है जो कि मनुष्य नहीं है—मनुष्य वह है, जो कि ईश्वर नहीं है।

ईश्वर और मनुष्य दो विरोधी छोर हैं। ईश्वर पूर्णतया भावरूप वास्तविकताओंका योग है। मनुष्य पूर्णतया अभावरूप, सभी अभावोंका योग है।

परन्तु धर्ममें मनुष्य अपने निजी अन्तर्हित स्वभावपर ध्यान करता है। इसलिए यह दिखलाना होगा, कि यह प्रतिवाद, यह ईश्वर और मनुष्य का विभाजन—जिसे लेकर कि धर्म (अपना काम) शुरू करता है—मनुष्यका उसके अपने स्वभावसे विभाजन करता है।[1]

अपने ग्रंथके दूसरे भागमें फ़ेरबाख धर्मके झूठ (अर्थात मज़हबी) सारपर विवेचन करते हुए कहा है—

धर्मके लिए संपूर्ण वास्तविक मनुष्य, प्रकृतिका वह भाग है, जोकि व्यावहारिक है जोकि निश्चय करता है, जो कि समझ-बूझकर (स्वीकार किये) लक्ष्योंके अनुसार काम करता है जो कि जगतको उसके अपने भीतर नहीं सोचता बल्कि सोचता है उन्हीं लक्ष्यों या आकांक्षाओंके संबंधसे। इसका परिणाम यह होता है कि जो कुछ व्यावहारिक चेतनाके पीछे छिपा रखा गया है तो भी जो सिद्धान्तका आवश्यक विषय है उसे मनुष्य और प्रकृतिके बाहर एक खास वैयक्तिक सत्ताके भीतर ले जाता है।—यहाँ सिद्धान्त बहुत मौलिक और व्यापक अर्थमें लिया गया है, जिसमें वास्तविक (जगत-संबंधी) चिन्तन और अनुभव (=प्रयोग)के सिद्धान्त, तथा बुद्धि (=तर्क) और साइंसके (सिद्धान्त) शामिल हैं।[2]

इसी कारणसे फ़ेरबाख जोर देता है कि हम ईसाइयत (=धर्म)से ऊपर उठें। धर्म झूठ तौरसे मनुष्य और उसकी आवश्यक सत्ताके बीचके संबंधको उलट देता है और मनुष्यको खुद मानवीय स्वभावके सारको पूजने उसपर विश्वास करनेके लिए परामर्श देता है। ऐसी प्रवृत्तिका विरोध

---

[1] वहीं p 33 [2] वहीं p 187

करते हुए फ्वेरबाख बतलाता है कि मनुष्यकी उच्चतम सत्ता उसका ईश्वर वह स्वयं है।' "धर्मका आदि, मध्य और अन्त मानव है।' यहाँ फ्वेरबाख धर्मको एक खास अर्थमें प्रयुक्त करता है—मानवता धर्म। वह फिर कहता है—

"धर्म आत्म-चेतनाका प्रथम स्वरूप है। धर्म पवित्र (चीज) है, क्योंकि वह प्राथमिक चेतनाकी कथाएं है। किन्तु जो चीज धर्मम प्रथम स्थान रखती है—अर्थात् ईश्वर— वह खुद और सत्यके अनुसार दूसरे (दर्जेकी) है क्योंकि वह वस्तुरूपमें सोचा गया मनुष्यका स्वभाव मात्र है और जो चीज धर्मके लिए दूसरे दर्जेकी है—अर्थात मानव—उसे प्रथम बनाना और घोषित करना होगा। मानवके लिए प्रेम शाखा-स्थानीय प्रेम नहीं होना चाहिए उसे मूलस्थानीय होना चाहिए। यदि मानवीय स्वभाव मानवके लिए श्रेष्ठतम स्वभाव है तो व्यवहारतः, मनुष्यके प्रति मनुष्यके प्रेमको भी उच्चतम और प्रथम नियम बनाना चाहिए। मनुष्य मनुष्यके लिए ईश्वर है, यह महान् व्यावहारिक सिद्धान्त है यह धुरी है जिसपर कि जगतका इतिहास चक्कर काटता है।'[1]

इस उद्धरणसे मालूम होता है, कि फ्वेरबाख यद्यपि धर्मकी कड़ी दार्शनिक आलोचना करता है, किन्तु साथ ही आजके नास्तिकवादको कलका धर्म भी देखना चाहता है। वह भौतिकवादको धर्मके सिंहासनपर बैठाना चाहता था।— मानव और पशुके बीचका वास्तविक भेद धर्मका आधार है। पशुओंमें धर्म नहीं है।[2]—यह भी इसी बातको बतलाता है।

फ्वेरबाख यद्यपि धर्म शब्दको खारिज नहीं करना चाहता था, किन्तु उसके विचार धर्म विरोधी तथा भौतिकवादके समर्थक थे—खासकर धर्मके दुर्गके भीतर पहुँचकर वह वैसा ही काम करना चाहते थे। भला यह धर्म तथा सत्ताधारियोंके पिट्ठुओंको कब पसन्द आ सकता था? प्रोफेसर

---

[1] वहीं, pp 270 71 [2] वहीं, p 1

डूरिंग फ्यरबाखके खिलाफ कलम चलाई थी, जिसका कि उत्तर १८८८ ई० में एन्गेल्सने अपने ग्रंथ 'लुडविग फ्यरबाख' में दिया।

३—मार्क्स् (१८१८-८३ ई०)

कार्ल मार्क्सका जन्म राइनलैण्डके ट्रेवज नगरमें हुआ था। उसने बोन, बर्लिन और जेनाके विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा पाई। जेनामें उसने "डेमोक्रिटु और एपीक्युरुके प्राकृतिक दर्शन" पर निबंध लिखा था, जिसपर उसे पी एच० डी० (दर्शनाचार्य)की उपाधि मिली। मार्क्स् भौतिकवादी बननेसे पहिले हेगेलके दर्शनका अनुयायी था। राजनीतिक, सामाजिक विचार उसके शुरू होसे उग्र थे, इसलिए जर्मनीका कोई विश्वविद्यालय उसे अध्यापक क्यों रखने लगा। मार्क्सने पत्रकारिताको अपनाया और २४ सालकी उम्रमें "राइनिश् जाइटुङ्ग" पत्रका संपादक बना। किन्तु प्रुशियन सरकार उसे बहुत खतरनाक समझती थी जिसके कारण दश छोड़कर मार्क्सको विदेशोंमें मारा मारा फिरना पड़ा। पहिले वह पेरिसमें रहा, फिर ब्रुसेल्स (बेल्जियम)में। वहांकी सरकारने भी प्रुशियाके नाराज होनेके डरसे मार्क्सको चले जानेको कहा और अन्तमें मार्क्स् १८४९ में लंदन चला गया। उसने बाकी जीवन वहीं बिताया।[1]

मार्क्स् दर्शनका विद्यार्थी विश्वविद्यालय हाल था, और खुद भी एक प्रथम श्रेणीका दार्शनिक था, किन्तु उसके सामाजिक और राजनीतिक विचार इतने उग्र अद्वितीय और दृढ़ थे, कि उसका नाम जितना एक समाजशास्त्र अर्थनीति और राजनीतिके महान् विचारकके तौरपर मशहूर है उतना दार्शनिकके तौरपर नहीं। इसमें एक कारण और भी है। कलाकी भाँति दर्शन भी बैठे-ठाले सम्पत्तिशालियोंके मनोरंजनका विषय है। वह जिस तरहका दर्शन चाहते हैं, मार्क्सका दर्शन वैसा नहीं है फिर मार्क्सको वह क्या दार्शनिकोंमें गिनने लगे ?

---

[1] विशेषके लिए देखो मेरा "मानव समाज।" ४०९–१०

मार्क्सके दर्शनके बारमें हम खास तौरसे 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' लिखने जा रहे हैं, इसलिए यहां दुहरानेकी जरूरत नहीं है।

(१) मार्क्सीय दर्शनका विकास—आधुनिक युगके अभौतिकवादी यूरोपीय दर्शनोंका चरम विकास हेगलके दर्शनके रूपमें हुआ, और सारे मानव इतिहासके भौतिकवादी वस्तुवादी दर्शनोंका चरम विकास मार्क्सके दर्शनमें।

प्राचीन यूनानके यूनिक दार्शनिक भौतिक तत्त्वको सभी वस्तुओंका मूल, और चेतनाके लिए भी पर्याप्त समझते थे, इसीलिए उन्हें भूतात्मवादी[1] कहा जाता था। स्तोइक भी भौतिक तत्त्वसे इन्कार नहीं करते थे किन्तु भौतिकवादका ज्यादा विकास दमोक्रितु और एपीकुरुने किया, जिनपर कि मार्क्सने विश्वविद्यालयके लिए अपना निबंध लिखा था। रोमके लुक्रेशियस्ने अपने समयमें भौतिकवादका झंडा नीचे गिरने नहीं दिया। मध्य युगमें विचार-स्वातंत्र्यके लिए जैसे गुंजाइश नहीं थी, उसी तरह भौतिकवादके लिए भी अवकाश नहीं था। मध्ययुगसे बाहर निकलते ही हम यूरोपमें बारुच स्पिनोजाको देखते हैं, जो है तो विज्ञानवादी, किन्तु उसके विचार ज्यादातर यूनानी भूतात्मवादियोंकी तरहके हैं। इंगलण्डमें टामस् हाब्स (१५८८-१६७९)ने भौतिकवादको जगाया। अठारहवीं सदीमें फ्रेंच क्रान्ति (१७९२ ई०)के पहिले जो विचार-स्वातंत्र्यकी बाढ़ आई थी उसने दीदेरो, हेल्वेशिया, दालबाश्[2] लामेत्री, जैसे भौतिकवादी दार्शनिक पैदा किये। उन्नीसवीं सदीमें लुडविग फ्वेरबाखने भौतिकवादपर कलम उठाई थी। फ्वेरबाखका प्रभाव मार्क्सपर भी पड़ा था। मार्क्सने हेगलकी द्वन्द्वात्मक प्रक्रियासे मिलाकर भौतिकवादी दर्शनको पूर्णरूप हमारे सामने पेश किया, और साथ ही दर्शनको कल्पनाक्षेत्रमें बौद्धिक व्यायाम करनेवाला न बना उसका प्रयोग समाजशास्त्रमें किया।

---

[1] Hylozoist हुलो=हेयला, भूत, जोए=जीवन, आत्मा।

[2] इसका मुख्य ग्रंथ Systems de la Nature १७७० में प्रकाशित हुआ।

विज्ञानवादी धारा समाजशास्त्रमें घुस और सम्प्रदाय छोड़ और कुछ नहीं है। यह समाजकी व्यवस्थामें किसी सरकार दर्शन स्थान जगह ईश्वर परमात्मा भगवान विश्वास, श्रद्धा इनकी निशानी ही सकती है। लेकिन मार्क्सवाद इनके विचार इससे बिल्कुल उलट है। मानव जातिका नीति ही मानव समाज—उसका आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था—प्रकृतिका उपज है। वह प्रकृतिके अधीन है और तभी तक अपना अस्तित्व कायम रख सकता है जबतक प्रकृति उसकी आवश्यकताओंको पूरा करता है। भौतिक उपज—खाना, कपड़ा आदि—तथा उस उपजके साधनोंपर ही मानव-समाज कायम है।

'महान सामाजिक संस्कृति' भव्य विचार 'दिव्य चिन्तन'—चाहे कैसे ही बड़े-बड़े शब्दोंका इस्तेमाल क्यों न किए हो वह सभी भौतिक उपजका परिणाम है।

ना कुछ लेना नाव भजनमें ना कुछ लेना पानी में।
कह कबीर सुनो भाई संतो जो लेना सो राटी में॥'

अथवा—

भूखे भजन न होय गोपाला। लेत आपनी कंठी माला॥

इनके लिए अवसर कब आया? जब कि प्रकृतिपर मनुष्यकी शक्ति ज्यादा बढ़ी मनुष्यके श्रमकी उपजमें वृद्धि हुई उसका सारा समय खाने पहननेकी चीजोंके संग्रहमें ही नहीं लगकर कुछ बचने लगा तथा बढ़-चढ़ व्यक्तिके लिए दूसरे भी काम करनेको तैयार हुए। जब इस तरह आदमी कामसे मुक्त रहता है, उसी समय वह सोचने, तर्क वितर्क करने योजना बनाने भव्य संस्कृति 'दिव्य ज्ञान' पैदा करनेमें समर्थ हो सकता है। और जगहोंकी भाँति समाजमें भी भौतिक तत्व या प्रकृतिही मनकी माँ है, मन प्रकृतिका जनक नहीं।

भौतिकवाद 'मानस-जीवन' की विशेषताओंकी व्याख्या जितना अच्छी तरह कर सकता है विज्ञानवाद वैसा नहीं कर सकता, क्योंकि विज्ञानवाद समझता है, कि विचार या विज्ञानका पृथिवी और उसकी वस्तुओंसे कोई

संबंध नहीं है, वह अपने भीतरसे उत्पन्न होता है। हेगल अपने 'दर्शन-इतिहास' में कैसी ऊल-जलूल व्याख्या करता है—'यह अच्छा (=शिव), यह बाप इश्वर है। ईश्वर जगत्पर शासन करता है। उसके संस्कारका स्वरूप, उसकी योजनाकी पूर्ति विश्व इतिहास है। बूढ़े ईश्वरने एक ही साथ बाबा आदम बीबी हौआ, अथवा ऋषि-मुनि, वेश्याएं हत्यारे, बाढ़ी, पैदा किये, साथ ही भूख और दरिद्रता आतंक और ताड़ीको पापियों के दंडके लिए पैदा किया। उन्हें खुद उस तरहका पैदा किया गया है, कि वह उन पापोंको करें, और फिर न्यायका नाटक किया जाये और उन्हें दंड दिया जाये, क्या मजाक है!! और वह भी एक दिनका नहीं अनादि अनन्त कालतक यह प्रहसन-लीला चलती रहेगी। यह है ईश्वर, जिसे कि विज्ञानवादी दार्शनिक फाटकसे नहीं खिड़कीके रास्ते द्रविड़ प्राणायाम द्वारा हमारे सामने रखना चाहते हैं।

यूनानी दार्शनिक पर्मेनिदेस—एलियातिकोंके नेता—की शिक्षा थी, कि हर एक चीज अचल अनादि, अनन्त, एकरस अपरिवर्तनशील अविभाज्य, अविनाशी है। जेनो (३३६-२४६ ई० पू०) ने बाणके दृष्टान्तको देकर सिद्ध करना चाहा, कि बाण हर क्षण किसी न किसी स्थानपर स्थित है, इसलिए उसकी गति भ्रमके सिवा कुछ नहीं है। इस प्रकार जिसके चलनेको लोग आँखोंसे साफ देखते हैं, उसने उससे भी इन्कार कर स्थिरवादको दृढ़ करना चाहा। इसके विरुद्ध हराक्लितुसने हम यह कहते देख चुके हैं, कि संसारमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो गतिशील न हो। 'हर एक चीज बह रही है, कोई चीज खड़ी नहीं है ("पान्त रेह')। उसी नदीमें हम दो बार नहीं उतर सकते, क्योंकि दूसरी बार उतरते वक्त वह दूसरी ही नदी होगी। उसके साथी क्रातिलुसने कहा, "उसी नदीमें दो बार उतरना असंभव है क्योंकि नदी लगातार बदल रही है।" परमाणुवादी दमोक्रितुसने गति—यानी परमाणुओंकी गति—को सभी वस्तुओंका आधार बतलाया। हेगलने गति तथा भवति (=अ-वर्तमानका वर्तमान होना) का समर्थन किया।

(२) दर्शन—गति, परिणमनवाद [illegible] आधार है [illegible] इस गतिमान और [illegible] मानव [illegible] का। [illegible] जगत—निर्जीव वस्तुओं और समाजका [illegible] दृष्टिकोण [illegible] जाता है [illegible] मानना—स्थिरवाद [illegible] और [illegible] गतिवाद (द्वन्द्वात्मक [illegible])। प्रकृति [illegible] है, इस जगत [illegible] गया [illegible]। [illegible] जिन [illegible] समय [illegible] और स्थिर समझा जाता था आज [illegible] है। [illegible] प्रति [illegible] [illegible]। [illegible] और [illegible], और उनमें भी सबसे [illegible] परमाणु [illegible] बदलते तथा [illegible] दूसरी [illegible] और [illegible] [illegible]। पुराने, परमाणु आज नहीं है [illegible] कि उन [illegible] ईश्वरने [illegible] बनाया था। आजके प्राणी [illegible] विकास द्वारा [illegible] आज [illegible]। आज कहाँ पता है [illegible] पृथिवी [illegible] ऊँचे तथा एक पूरी [illegible] बराबर [illegible]। [illegible] पहिले यह पृथिवी जिनकी थी आज [illegible] कोई [illegible] न रह गया। उस समय न [illegible] पता था, न [illegible] उस [illegible] जंगलोंमें हिरन भेड़ बकरी, गाय या [illegible] था। बाकी नर-वानर और गर तो बहुत पीछे [illegible]। [illegible] सृष्टि [illegible] इन्हें बनानेमें असमर्थ था। आज मनुष्य प्रयोग करके इस लायक हो गया है, कि वह [illegible] अनेक [illegible], [illegible] पैदा कर उनकी नस्लको जारी रख सकता है।

इस प्रकार [illegible] कोई [illegible] नहीं है कि विश्वमें कोई स्थिर वस्तु नहीं है। मैं जिस [illegible] चौकी बनाकर इस वक्त लिख रहा हूँ वह भी क्षण

देखो "विश्वकी रूपरेखा।"

क्षण बदल रही है किन्तु बदलना जिन परमाणुओं एलकट्रोनके रूपमें हो रहा है उन्हें हम आँखोंसे देख नहीं सकते। यदि हमारी आँखोंकी ताकत करोड़गुना होती है तो हम अपनी इस छोटीसी चौकी को उड़ते हुए सूक्ष्म कणोंका समूह मात्र देखते। ये कण बहुत धीरे-धीरे, और अलग अलग समय चौकी की सीमा पार करते हैं, इसीलिए चौकीको जीर्ण शीर्ण होकर टूटने-में अभी देर लगेगी, शायद तबतक यहां दवलीम रहकर लिखनेकी मुझे जरूरत नहीं रहेगी।

निरन्तर गतिशील भौतिकतत्त्व इस विश्वके मूल उपादान हैं। किसी बाह्य दृश्यको देखते वक्त हमको बाहरी दिखलावटी स्थिरताको नहीं देखना चाहिए हम उसे उसके भीतरकी अवस्थामें देखना चाहिए। फिर हमें पता लग जायगा, कि गतिवाद विश्वका अपना दर्शन है। गतिवादको ही द्वन्द्ववाद भी कहते हैं।

(क) द्वन्द्ववाद[1]—हराक्लितु और हेगल—और बुद्धको भी न लीजिये—गतिवाद, अनित्यतावाद, क्षणिकवादके आचार्य थे, दर्शनकी व्याख्या करते वक्त वे द्वन्द्ववादपर पहुँचे। हराक्लितुने कहा— विरोधिता (=द्वन्द्व) सभी सुखोंकी माँ है।' हेगलने कहा 'विरोध वह शक्ति है, जो कि चीजोंको चालित करती है।' विरोध क्या है? पहिलीकी स्थितिमें गड़बड़ी पैदा करना। इसे द्वन्द्ववाद इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस वादमें परिवर्तनका कारण वस्तुओं, सामाजिक संस्थाओंमें पारस्परिक विरोध या द्वन्द्वको मानते हैं। हेगलने द्वन्द्ववादको सिर्फ विचारोंके क्षेत्र तक ही सीमित रखा किन्तु मार्क्सने इसे समाज और, उसकी संस्थाओं तथा दूसरी जगहोंमें भी एकसा लागू बतलाया। वाद प्रतिवाद संवादका दृष्टान्त हम दे चुके हैं।[2] द्वन्द्व-वादके इन अवयवोंका उपयोग प्राणिविकासमें देखिए लंकाशायरमें सफेद रंगके तेलचट्टे जमे फतिंगे थे। वहाँ मिल खड़ी हो जाती है, जिनके धुएँसे धरती, वृक्ष, मकान सभी काले रंगके हो जाते हैं। जितने तेलचट्टे अब भी

---

[1] Dialect c [2] देखो "वैज्ञानिक भौतिकवाद" पृष्ठ १४

मार्क्सवादका कहना है आप किसी चीजको जानते हैं, तो उसमें विचार जरूर शामिल रहता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप लाल और आँच मात्र को जानते हैं। जानना होना तो असंभव हो जायगा, यदि वस्तुकी सत्ता से आप इन्कार करते हैं। जिस वक्त आप जानते अस्तित्वको स्वीकार करते हैं उसी वक्त ज्ञाता और ज्ञेयको भी स्वीकार कर लेते हैं, बिना जानने वाले और जाने जानेवाली चीजके जानना कैसा? बिना उसके मतलब हम ख्यालमात्रसे विश्वके अस्तित्वके जाननेवाले नहीं होते, फिर यह अर्थ कैसे होता है कि आप सिर्फ अपने विचारोंके ही जाननेवाले हैं। इन्द्रिय और विषयका जब सन्निकर्ष (=योग) होता है, तो पहिले-पहिल हमें वस्तुका अस्तित्वमात्र ज्ञान होता है—प्रत्यक्षका निर्विकल्प और सविकल्पक भी कल्पना अपोढ (=कल्पनासे रहित) माना है। लाल रंग और आँच तो पीछेकी कल्पना है, जिसे वस्तुके प्रत्यक्षमें गिनना ही नहीं चाहिए प्रत्यक्ष—सार जानेका जनक—हम पहिले-पहिल वस्तुके अस्तित्वका ज्ञान कराता है। यह ठीक है कि हम विषयको पूर्णतया नहीं जानते उसके बारेमें सब कुछ नहीं जानते, लेकिन उसके अस्तित्वको अच्छी तरह जानते हैं इसमें तो शककी गुंजाइश नहीं। इन्द्रिय-साक्षात्कार हमें यों ही वस्तुके बारेमें बतलाता है और जो बतलाता है वह सापेक्ष होता है। विज्ञानवादमें यदि कोई सचाई हो सकती है तो यही सापेक्षता है जो कि सभी ज्ञानोंपर लागू है।

प्रकृति बाह्य पदार्थके तौरपर मौजूद है यह निश्चित है। लेकिन वह पूर्णरूपेण क्या है, यह उसका रहस्य है, जिसका खोलना उसके स्वभावमें नहीं है। हमें वह परिस्थितियोंको बतलाती है उन परिस्थितियोंके रूपमें हम प्रकृतिको देखते हैं। सभी प्रत्यक्ष विशेष या वैयक्तिक प्रत्यक्ष हैं जो कि खास परिस्थितियोंमें होता है। शुद्ध प्रत्यक्ष—विशेष विषय और परिस्थिति से रहित—कभी नहीं होता। हम सदा वस्तुओंके विशेष रूपको ही प्रत्यक्ष करते हैं। हम सीधी छड़ीको पानीमें खड़ा करनेपर वक्र (टेढ़ी मेढ़ी) छड़ी या लाल प्रकाशमें प्रकाशित देखते हैं। यह वक्रता, छोटापन

और लाली सिर्फ छड़ीका रूप नहीं है, बल्कि उस परिस्थितिमें दर्शी गई छड़ीके रूप है।

अतएव ज्ञान वास्तविकताका आभास है किन्तु आभासमात्र नहीं है। वह दृष्टिकोण और ज्ञानके प्रयोजन—इसलिए ऐतिहासिक विकासकी खास अवस्था—से बिल्कुल सापेक्ष है, देश-कालकी परिस्थितिको हटा कर वस्तुका ज्ञान नहीं हो सकता। 'प्रकृतिका ज्ञान होता ही नहीं", और यह सदा सापेक्ष ही होता है इसमें उतना ही अन्तर है जितना 'हां" और नहीं में। मार्क्सवाद सापेक्ष ज्ञानको बिल्कुल सम्भव मानता है जिससे माइसकी गवेषणाओंका समर्थन होता है, विज्ञानवाद वस्तुकी सत्तासे ही इन्कार करके ज्ञानको असम्भव बना देता है, जिससे माइसको भी वह त्याज्य ठहराता है।

(ग) भौतिक वाद और मन—जब हम विज्ञानवादके गन्धर्व-नगरसे नीचे उतरकर जरा वास्तविक जगतमें आते हैं तो फिर क्या देखते हैं—भौतिक तत्त्व, प्राकृतिक जगत् मनकी उपज नहीं है, बल्कि भौतिक तत्त्वकी उपज मन है। पृथिवी प्रायः दो अरब वर्ष पुरानी है। जीव कुछ करोड़ वर्ष पुराने, लेकिन उन जीवोंके पास 'जगत् बनानेवाला' मन नहीं था। मनुष्यकी उत्पत्ति ज्यादासे ज्यादा १० लाख वर्ष तक ले जाई जा सकती है, किन्तु जावा, चीन या नेअन्डर्थल मानवके पास भी ऐसा मन नहीं था जो 'विश्व' को बनाता। विश्व बनानेवाला' मन सिर्फ पिछले ढाई हजार वर्षसे दार्शनिकोंकी चिन्तनमें पैदा हुआ। गाया दो अरब वर्षमें कुछ लाख वर्ष पहिले तक किसी तरहके मनका पता नहीं था और इस सारे समयमें भौतिक तत्त्व मौजूद थे। फिर इस हालके बच्चे मनको भौतिक तत्त्वोंका जनक कहना क्या बड़को बापका बाप बनाना नहीं है? मूल भौतिकतत्त्वोंसे परमाणु अणु अणु-गुच्छक, फिर आरम्भिक निर्जीव क्षुद्र पिंड तथा जीव अजीवके बीचके विरस[1] और बक्टीरिया जैसे एक सलवाले अत्यन्त सूक्ष्म सत्त्व बने। एक सलवाले

[1] Virus

प्राणियों में [illegible] विकास हो गया [illegible] रहित, [illegible] जीव, यहाँ तक कि कुछ लोग यह [illegible] मनुष्य का मौजूद हुआ। यह [illegible] सिद्धांत यह भी बतलाता, कि आरम्भ में मन था, उसने सोचा कि [illegible] हो जाय, और उसका [illegible] जगत [illegible] जाता। [illegible] तथा [illegible] विकास सिद्धान्त [illegible] कि भौतिक [illegible] प्राणों से पहिले मौजूद थे प्राणी [illegible] परिस्थितियों [illegible]। मन प्राणों [illegible] भी विकास [illegible] उत्पन्न हुआ [illegible]। इस प्रकार [illegible] कि मन भौतिक तत्वों [illegible]।

उपज होने का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि मन भौतिक तत्व है। भौतिक तत्व मन [illegible] जिस परिस्थितियों में [illegible] विरोध (=द्वंद्व) [illegible] [illegible] परिवर्तन—गुणात्मक परिवर्तन—[illegible]। गुणात्मक-परिवर्तन हो जाने [illegible] [illegible] नहीं कह सकते क्योंकि गुणात्मक-परिवर्तन एक [illegible] वस्तु हमारे सामने उपस्थित करता है। मन इसी तरह भौतिक तत्वों के गुणात्मक-परिवर्तन है। यह भौतिक तत्वों से पैदा हुआ किन्तु भौतिक तत्व नहीं है।

त्रयोदश अध्याय

बीसवीं सदीके दार्शनिक

बीसवीं सदीमें साइंसकी प्रगति और भी तेज हुई। मनुष्य हवामें उसी तरह बेधड़क उड़ने लगा है जिस तरह अबतक वह समुद्रमें 'तैर' रहा था। उसके कानकी शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह हजारों मीलों दूरके शब्दों—संदेश, गाना—को सुनता है। उसकी आंखकी ज्योति इतनी बढ़ रही है, कि हजारों मील दूरके दृश्य भी उसके सामने आने लगे हैं, यद्यपि इसमें अभी और विज्ञानकी जरूरत है। पिछली शताब्दीने जिन शक्लों और स्वरोंको अचल पत्थरकी मूर्ति तथा गुफाकी प्रतिध्वनिकी भांति हमारे पास पहुँचाया था अब हम उन्हें अपने सामने सजीव-से चलते फिरते, बोलते-गाते देखते हैं। अभी हम इसे प्रतिचित्र और प्रतिध्वनिके रूपमें देख रहे हैं लेकिन उस समयका भी आरंभ हो गया है जिसमें आमतौरसे रक्त-मांसके रूपको सीधे अपने सामने सजीवता प्रदान करते देखेंगे। यह सभी बातें कुछ शताब्दियों पहिले दैवी चमत्कार, अमानुषिक सिद्धियां समझी जाती थीं।

मनुष्यका एक ज्ञान-क्षेत्र है, और एक अज्ञान-क्षेत्र। उसका अज्ञानक्षेत्र जब बहुत ज्यादा था तब ईश्वर, धर्मकी बहुत गुंजाइश थी। अज्ञान-क्षेत्रके खंडोंको जब ज्ञानने छीनकर अपना क्षेत्र बनाना चाहा, तो अज्ञान-क्षेत्रके वासियों—धर्म और ईश्वरकी स्थिति खतरेमें पड़ गई। उस वक्त अज्ञान-राज्यकी हिमायतकेलिए "दर्शन"का खास तौरसे जन्म हुआ। उसका मुख्य काम था, खुली आंखोंमें धूल झोंकना—सामने बिल्कुल उल्टा जो बात दर्शनने सातवीं-छठी सदीमें अपने जन्मके समयकी थी, वही उसने अब

§१—ईश्वरवाद

१—ह्वाइटहेड (जन्म १८६१ ई०)

ए० एन्० ह्वाइटहेड् इंगलैंडके मध्यम श्रेणीके एक धर्म विश्वासी गणितज्ञ हैं।

दर्शन—ह्वाइटहेडको इस बातका बहुत क्षोभ है कि प्रत्यक्ष करनेमें इतनी समृद्ध प्रकृति 'शब्दहीन गंधहीन, वर्णहीन व्यर्थ ही निरन्तर दौड़ते रहनेवाला भौतिकतत्त्व' बना दी गई। ह्वाइटहेड अपने दर्शन—शरीरवाद—द्वारा प्रकृतिको इस अर्थ पतनसे बचाना चाहता है। उसका दर्शन कार्य-गुणों—शब्द, गंध, वर्ण आदि—को ही नहीं बल्कि मनुष्यके कला आचार, धर्म संबंधी जीवनसे संबंध रखनेवाली बातोंका समर्थन करना चाहता है, साथ ही अपनेको विज्ञानका समर्थक भी जतलाना चाहता है। हमारे तजर्बे (=अनुभव) सदा साकार घटनाओंके होते हैं। यह घटनाएं अलग अलग नहीं बल्कि एक शरीरके अनेक अवयवोंकी भांति हैं। शरीर अपने स्वभावसे सारे अवयव तत्त्व या घटनाओंको प्रभावित करता है। ह्वाइटहेड् यहाँ शरीरको जिस अर्थमें प्रयुक्त करता है वह सारे वस्तु-सत्य—वास्तविकता—का बोधक है और वह सिर्फ चेतन प्राणी शरीर तक ही सीमित नहीं है। सारी प्रकृतिका यही मूल स्वरूप है। ह्वाइटहेडके अनुसार भौतिकशास्त्र अतिसूक्ष्म "शरीर" (एलेक्ट्रन परमाणु आदि)का अध्ययन करता है, और प्राणिशास्त्र बड़े शरीरका। ह्वाइटहेड प्राणी अप्राणीके ही नहीं मन और कायाके भेदको भी नहीं मानता। मन शरीरका ही एक खास घटना प्रबंध है और उसका प्रयोजन है उच्च क्रियाओंका संपादन करना। भौतिकशास्त्रकी आधुनिक प्रगतिको लेते हुए ह्वाइटहेड मन या कायाको वस्तु नहीं घटनाओं—बदलती हुई वास्तविकता—को विश्वका सूक्ष्मतम अवयव या इकाई मानता है। इकाइयां और उनके पारस्परिक संबंधका योग विश्व है। बड़ी घटनाएं छोटी घटनाओंकी अवयवी

सर्वत्र उपस्थित अनुभव—की जरूरत है।

यह आत्मिक जीवन ईश्वर है। धर्म मानव जीवनको आत्मिक जीवनके उच्च शिखरपर ले जाता है उसके बिना मनुष्यका अस्तित्व खोखला मात्र रहा है। यूरुन्न इस प्रकार भौतिकवादके प्रभावको हटाकर धर्म तथा ईश्वर और धर्मका हस्तामलक देना चाहा।

§ २—अन्-उभयवाद

१ बेर्गसाँ (१८५९-१९४१ ई०)

फ्रेंच दार्शनिक था। हार्न (१९४० ई०) में जर्मनी द्वारा फ्रांसके पराजित होनेके बाद उसकी मृत्यु हुई।

बर्गसाका कहना है कि प्रकृति और प्राकृतिक नियमोंका इन्कार किये बिना विश्वकी आध्यात्मिकताको सिद्ध किया जाय। इसके दर्शनकी विशेषता है परिवर्तन (=क्षणिकता) क्रिया, स्वतन्त्रता सर्जनात्मक विकास[1], स्थिति,[2] आत्मानुभूति। बर्गसाके दर्शनको आमतौरसे 'परिवर्तनका दर्शन" या "सर्जनात्मक विकास' कहते हैं।

(१) तत्त्व—बर्गसाके अनुसार असली तत्त्व न भौतिक है, न मन (=विज्ञान) बल्कि इन दोनोंसे भिन्न=अन् उभय तत्त्व है, जिससे ही भौतिक तत्त्व तथा मन दोनों उपजते हैं। यह मूल तत्त्व सदा परिवर्तनशील घटना प्रवाह गहराता जीवन सदा नये रूपकी ओर बढ़ रहा जीवन है।

(२) स्थिति—बेर्गसा स्थिति को मानता है किन्तु स्थिरताकी स्थिति को नहीं बल्कि प्रवाहकी स्थितिको। स्थिति अतीतकी लगातार प्रगति है जो कि भविष्यके रूपमें बदल रहा है और जैसे जैसे वह आगे बढ़ रही है वैसे ही-वैसे उसका आकार विशाल होता जा रहा है।' इस प्रकार बेर्गसाँ

---

[1] Creative evolution [2] Duration

यहाँ खामखाह "स्थिति" शब्दको घसीट रहा है, क्योंकि स्थिति परिवर्तनसे बिल्कुल उलटी चीज है। वह और कहता है— 'हमने अपने अत्यन्त बाल्यसे जो कुछ अनुभव किया है, सोचा और चाहा है वह यहाँ हमारे वर्तमान के ऊपर झुक रहा है और वर्तमान जिसमें तुरन्त मिलनेवाला है। जन्मसे लेकर—नहीं बल्कि जन्मसे भी पहिलेसे क्योंकि अनुवंशिकता भी हमारे साथ है—जो कुछ जीवनमें हमने किया है, उस इतिहासके सारके अतिरिक्त हम और हमारा स्वभाव और है ही क्या? इसमें सन्देह नहीं कि हम अपने भूतके बहुत छोटे भागको भोग सकते हैं किन्तु हमारी चाह, संकल्प, क्रिया अपने सारे भूतको लेकर होती है।' बर्गसा इसे स्थिति कहता है। यह सारे अतीतका वर्तमानमें सारांशपूर्ण है। स्थितिके कारण सिर्फ वास्तविक और निरन्तर परिवर्तन ही नहीं होता, बल्कि प्रत्येक नया परिवर्तन, कुछ ताजगी कुछ नवीनता लिए होता है। इसीलिए इसे सृजनात्मक विकास कहते हैं। आध्यात्मिकता (=आत्मतत्त्व) इसी प्रकारकी स्मृतिको कहते हैं वह इस प्रकारकी निरन्तर क्रिया है जिसमें कि अतीत वर्तमानमें व्याप्त है। कभी-कभी इस क्रियामें शिथिलता हो जाती है जिससे भौतिक तत्त्व या प्रकृति पैदा होती है। चेतना (=विज्ञान) बाह्यता की अपेक्षाके बिना व्यापकको कहते हैं और प्रकृति बिना व्यापककी बाह्यताको कहते हैं।

जीवनके विकासकी तीन भिन्न भिन्न तथा स्वतन्त्र दिशायें हैं— वानस्पतिक पशुबुद्धिक बुद्धिक जो कि क्रमशः वनस्पति पशु और मनुष्यमें पाई जाती हैं।

(३) **चेतना**—चेतना या आत्मिकताको बर्गसा स्मृतिसे संबद्ध मानता है प्रत्यक्षीकरणसे नहीं। चेतना मस्तिष्ककी क्रिया नहीं बल्कि मस्तिष्कका वह औजारके तौरपर इस्तेमाल करता है। 'कोट और खूँटी, जिसपर कि वह टँगा है दोनोंका घनिष्ट संबंध है क्योंकि यदि खूँटीको उखाड़ दें तो कोट गिर जायगा, किन्तु इससे क्या यह हम कह सकते हैं कि खूँटीकी शक्ल जैसी होती है वैसी ही कोटकी शक्ल होती है?'

रहेगा। दार्शनिकके लिए जरूरी है, कि वह संख्या भाषामें अपने विचार प्रकट करे, जिसमें उसकी गिनती रात दिन दोनोंमें हो सके। रसलके दर्शनको वह खुद "तार्किक परमाणुवाद', 'अनुभयवादी अद्वैतवाद' 'द्वैतवाद', वस्तुवाद' कहता है।

रसल कहीं कहीं हमारे सारे अनुभवोंका विश्लेषण प्रकृतिके मूलतत्त्व परमाणुओंके रूपमें करता है। दर्शन साइंसका अनुयायी हो सकता है, साइंसकी जगह लेनेका उसको अधिकार नहीं है। वस्तुओं, घटनाओंका बहुत्व विज्ञान और व्यवहार-बुद्धि दोनोंसे सिद्ध है इसलिए दर्शनको उनसे इंकारी नहीं होना चाहिए। किन्तु इसका मूल क्या है, इसपर विचार करते हुए रसल कहता है—विज्ञानवादका सारे बाहरी बहुत्वको मानसिक कहना ठीक नहीं क्योंकि यह साइंसका अपलाप है। साथही भौतिकवादके भी वह विरुद्ध है। मूलतत्त्व तरंग—शक्ति या केवल किरण प्रसरण[1] नहीं है। मूलतत्त्व न विज्ञान है, न भौतिक तत्त्व, वह दोनोंसे अलग "अन् उभयतत्त्व' है, लेकिन अनुभयतत्त्व" एक नहीं घटनाओंकी एक किस्म है। या तत्त्वोंकी एक जाति है। "जगत अनेक शायद परिसंख्यात, या असंख्य तत्त्वोंका समूह है। ये तत्त्व एक दूसरेके साथ विभिन्न संबंध रखते हैं, और शायद उनके गुणोंमें भी भेद है। इन तत्त्वोंमेंसे प्रत्येकको घटना कहा जा सकता है।'

रसलके अनुसार 'दर्शन जीवनके लक्ष्यको निश्चित नहीं कर सकता, किन्तु वह दुराग्रहों, संकीर्ण दृष्टिके अनर्थोंसे हमें बचा सकता है।'

§ ३ भौतिकवाद

बीसवीं सदीका समाजवाद जैसे मार्क्सका समाजवाद है, वैसे ही बीसवीं सदीका भौतिकवाद मार्क्सीय भौतिकवाद है। मार्क्सवादके कहनेसे यह नहीं समझना चाहिए कि वह स्थिर और अचल एकरस

---

[1] Radiation

है। विकास मार्क्सवादका मूल सूत्र है इसलिए मार्क्सवादीय भौतिक दर्शन का भी विकास हुआ है। मार्क्सवाद भौतिक दर्शनके बारेमें हम आगे अपने वैज्ञानिक भौतिकवाद में सविस्तार लिखने जा रहे हैं। इसलिए उसे यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

§४–द्वैतवाद

बीसवीं सदीमें नई-नई वैज्ञानिक खोजोंने प्रतिष्ठा और प्रभावको और बढ़ा दिया इसीलिए केवल बुद्धिवादी दार्शनिकोंकी जगह आज प्रयोग-वादियोंका प्रधानता ज्यादा है।

विलियम् जेम्स (१८४२-१९१० ई०)—विलियम् जेम्सका जन्म अमेरिकाके मध्यमवर्गीय परिवारमें हुआ था। दर्शन और मनोविज्ञानका वह प्रोफेसर रहा। जिस तरह बुद्धके तृष्णावाद(=क्षय)वादने शोषणहारक दर्शनको प्रभावित किया उसी तरह बुद्धके अनात्मवादी मनोविज्ञानने जेम्स पर प्रभाव डाला था।

जेम्सका भौतिकवादी तथा विज्ञानवादी दोनों प्रकारके अद्वैतवाद पसन्द न थे। भौतिक अद्वैतवादके विरुद्ध उसका कहना था कि यदि सभी चीज—मनुष्य भी—आदिम नीहारिकाओं या अतिसूक्ष्म तत्त्वोंकी उपज मात्र है, तो मनुष्यका आचारिक जिम्मेवारी(=दायित्व), कर्म-स्वातन्त्र्य, व्यक्तिगत प्रयत्न और महत्त्वाकांक्षाएं बेकार हैं। यह स्पष्ट है कि भौतिकवादका विरोध करते वक्त उसके सामने सिर्फ यान्त्रिक भौतिकवाद था। वैज्ञानिक भौतिक वाद जिस प्रकार गुणात्मक परिवर्तन द्वारा बिल्कुल नवीन वस्तुके उत्पादनको मानता है और परिस्थितिके अनुसार बदलती किन्तु और भी बढ़ती जिम्मे वारियोंका अनान और भयके आधारपर नहीं बल्कि और भी ऊँचे तलपर—ज्ञानके प्रकाशमें—मनुष्य होनेका नाता मानता है और उसके लिए बड़ीसे बड़ी कुर्बानी करनेके लिए आदमीको तैयार करता है इससे स्पष्ट है, कि वह 'आचारिक जिम्मेवारियों की उपेक्षा नहीं करता, किन्तु आचा रिक जिम्मेवारियों से यदि जेम्सका अभिप्राय पुराने आर्थिक स्वार्थों और

उसपर आश्रित समाजके ढाँचेको कायम रखनेमे मतलब है, तो निश्चय ही वह इस तरहकी जिम्मेवारीको उठानेकेलिए तयार नही है। शायद, जेम्सको यदि पिछला महायुद्ध—और खासकर वर्त्तमान युद्ध—देखनेका मौका मिला होता, तो वह अच्छी तरह समझ लेता कि सामाजिक स्वार्थकी अवहेलना करते अंधी व्यक्तिक लिप्सा—जिसे कम-स्वातन्त्र्य, प्रयत्न महत्त्वाकांक्षा आदि जो भी नाम दिया जावे—मानवको कितना नीचे ले जा सकती है।

(१) प्रभाववाद[1]—जेम्सके दिलमें साइंसके प्रयत्नों उसकी गवेषणाओं और सच्चाइयोंके प्रति बहुत सम्मान था, इसलिए वह कोरे मस्तिष्ककी कल्पनाओं या विज्ञानवादको महत्त्व नहीं दे सकता था। उसका कहना था किसी वाद, विश्वास या सिद्धान्तकी सच्चाईकी कसौटी वह प्रभाव या व्यावहारिक परिणाम जो हमपर या जगतपर पड़ता दिखाई पड़ता है। प्रभावपर जोर देनेके ही कारण जेम्सके दर्शनको प्रभाववाद[1] भी कहते हैं।

(२) ज्ञान—ज्ञान एक साधन है, वह जीवनकेलिए है, जीवन ज्ञानकेलिए नहीं है। सच्चा ज्ञान या विचार वह है जिसे हम हजम कर सकें, यथार्थ साबित कर सकें, और जिसकी परीक्षा कर सकें।

यह कहना ठीक नहीं है कि जो कुछ बुद्धिपूर्वक है, वह वस्तु-सत् है। जो कुछ प्रयोग या अनुभवमें सिद्ध है, वह वस्तु-सत् है। अनुभवमें हम सिर्फ उसी अनुभवको लेना चाहिए, जो कि कल्पनासे मिश्रित नहीं किया[2] गया जो शुद्धता और मौलिक निर्दोषितासे युक्त है। वस्तु-सत् वह शुद्ध अनुभव है जो मनुष्यकी कल्पनासे बिल्कुल स्वतंत्र है, उसकी व्याख्या बहुत मुश्किल है। यह वह वस्तु है, जो कि अभी-अभी अनुभवमें घुस रही है किन्तु अभी उसका नामकरण नहीं हुआ है अथवा यह अनुभवमें कल्पनारहित[2] ऐसी आदिम उपस्थिति है, जिसके बारेमें अभी कोई श्रद्धा

---

[1] Pragmatism

[2] "कल्पना अपोढ"—दिङ्नाग और धर्मकीर्ति।

यह हमारी चेतना-संबंधी गुत्थियोंको सुलझा नहीं सकता, बल्कि बुराइयों (=पाप)के संबंधकी एक नई समस्या सा खड़ा करता है—अद्वैत शुद्धतत्त्वमें आखिर जीवनकी अशुद्धताएं, शुद्ध अद्वैत विश्वमें विषमताएं—यूरताएं कहांसे आ पड़ी ? अद्वैतवाद इस प्रश्नके हल करनेमें असमर्थ है, कि कूटस्थ एकरस अद्वैत तत्त्वमें परिवर्तन क्या होता है। सबसे भारी दोष अद्वैतवादमें है, उसका भाग्यवादी (=नियतिवादी) होना—वह एक है, उसकी एक इच्छा है वह एकरस है इसलिए उसकी इच्छा—भविष्य—नियत है। इसके विरुद्ध द्वैतवाद प्रत्यक्षसिद्ध घटनाके प्रवाहकी सत्ताको स्वीकार करता है उसकी तथता (=जैसा-है-वैसेपन)का समर्थक है और कार्य-कारण संबंध(=परिवर्तन)या इच्छा-स्वातंत्र्य (=कर्म-स्वातंत्र्य)की पूर्णतया संगत व्याख्या करता है—द्वैतवादमें परिवर्तन नवीनताके लिए स्थान है।

(६) ईश्वर—जेम्स भी उन्नीसवीं सदीके कितने ही उन दार्शनिकों, अधिकारारूढ़-वर्गसे भयभीत दार्शनिकोंमें है, जो एक वक्त सत्यसे प्रेरित होकर बहुत आगे बढ़ जाते हैं, फिर पीछे छूट गये अपने सहकर्मियोंकी उठती अंगुलियोंको देखकर किन्तु, परन्तु करने लगते हैं। जेम्सने कांटके वस्तु अपने भीतर स्पेन्सरके अज्ञेय हेगलके तत्त्वको इंकार करनेमें तो पहिले साहस दिखलाया, किन्तु फिर भय खाने लगा कि कहीं सभ्य" समाज उसे नास्तिक अनीश्वरवादी न समझ ले। इसलिए उसने कहना शुरू किया—ईश्वर विश्वका एक अंग है वह सहानुभूति रखनेवाला शक्तिशाली मददगार है तथा महान सहचर है। वह हमारे ही स्वभावका एक चेतन, आचार-परायण व्यक्तित्वयुक्त सत्ता है, उसके साथ हमारा समागम हो सकता है, जैसा कि कुछ अनुभव(यकायक भगवानसे वार्तालाप, या श्रद्धासे रोगमुक्ति) सिद्ध करते हैं।—तो भी यह ईश्वरवादी मान्यताएं पूर्णतया सिद्ध नहीं की जा सकतीं लेकिन यही बात किसी दर्शनके बारेमें भी कही जा सकती है।—किसी दर्शनको पूर्णतया सिद्ध नहीं किया जा सकता, प्रत्येक दर्शन श्रद्धा करनेकी चाहपर निर्भर है। श्रद्धाका सार

उत्तरार्ध

४—भारतीय दर्शन

४ भारतीय दर्शन

चतुर्दश अध्याय

प्राचीन ब्राह्मण-दर्शन (१०००–६०० ई० पू०)

हम बतला चुके हैं कि दर्शन मानव मस्तिष्कके बहुत पीछेकी उपज है। यूरोपमें दर्शनका आरंभ छठी सदी ईसा पूर्वमें होता है। भारतीय दर्शनका आरंभ-समय भी करीब-करीब यही है, यद्यपि उसकी स्वप्न चेतना वेदके सबसे पिछले मंत्रोंमें मिलती है जो ईसा पूर्व दसवीं सदीके के आस पास बनते रहे।

प्राकृतिक मानव जब अपने अज्ञान एवं भयका कारण तथा महारा ढूँढने लगा, तो वह देवताओं और धर्म तक पहुँचा। जब सीधे-सादे धर्म-देवता-संबंधी विश्वास उसकी विकसित बुद्धिको सन्तुष्ट करनेमें असमर्थ होने लगे तो उसकी उड़ान दर्शनकी ओर हुई। प्राकृतिक मानवकी यात्राके आरंभसे धर्म तक पहुँचनेमें भी लाखों वर्ष लगे थे, जिससे मालूम होता है कि मनुष्यकी सहज बुद्धि प्रकृतिके साथ-साथ रहना ज्यादा पसन्द करती है। शायद धर्म और दर्शनको उतनी सफलता न हुई होती, यदि मानव [illegible] अपने स्वार्थोंके कारण वर्गोंमें विभक्त न हुआ होता। वर्ग-स्वार्थका [illegible] परिवर्तनशीलता द्वारा परिचालित सामाजिक परिवर्तनमें [illegible] रहता है, इसलिए उसकी कोशिश होती है कि परिवर्तित [illegible] को अक्षुण्ण रखे। इन्हीं कारणोंसे पितृसत्ताक समाजने [illegible] याद रक्खी और प्राकृतिक शक्तियों एवं मृत-जीवित [illegible] उठाकर उसे व्यक्तिगत देवताओं और भूतोंके रूपमें [illegible]

गया, आज वह चार हजार वर्ष तककी पुरानी बेवकूफियोंका एक अच्छा म्यूजियम है, जब कि यूनानी समाज परिस्थितिके अनुसार बदलता रहा—आज जहाँ नव्य शिक्षित भारतीय भी वेद और उपनिषदके ऋषियोंका ही अनन्तकाल तकके लिए दार्शनिक तत्त्वोंको सोचकर पहिलसे रख देनेवाला समझता है वहाँ आधुनिक यूरोपीय विद्वान अफलातू और अरस्तूको दर्शनकी प्रथम और महत्त्वपूर्ण ईंटें रखनेवाले समझते हुए भी आजकी दर्शन विचार-धाराके सामने उनकी विचारधाराको आरंभिक ही समझता है।

प्राचीन सिन्धु उपत्यकाकी सभ्यताका परिचय वर्तमान शताब्दीके द्वितीयपादके आरम्भसे होने लगा है जब कि मोहनजो-डरो और हड़प्पाकी खुदाइयोंमें उस समयके नगरों और नागरिक जीवनके अवशेष हमारे सामने आये। लेकिन जो सामग्री हमें वहाँ मिली है उससे यही मालूम होता है, कि मेसोपोतामियाकी पुरानी सभ्य जातियोंकी भाँति सिन्धुवासी भी सामन्तशाही समाजके नागरिक जीवनको बिता रहे थे। वह कृषि, शिल्प, वाणिज्यके अभ्यस्त व्यवसायी थे। ताम्र और पित्तलयुगमें रहते भी उन्होंने काफी उन्नति की थी। उनका एक सागोपांग धर्म था एक तरहकी चित्र लिपि थी। यद्यपि चित्र लिपिमें जो मुद्राएं और दूसरी लेख-सामग्री मिली है अभी वह पढ़ी नहीं जा चुकी है लेकिन दूसरी परीक्षाओंसे मालूम होता है कि सिन्धु-सभ्यता असुर और काल्दी सभ्यताकी समसामयिक ही नहीं, बल्कि उनकी भगिनी-सभ्यता थी और उसी तरहके धर्मका ख्याल उसमें था। वहाँ लिंग तथा दूसरे देव चिह्न या देव-मूर्तियाँ पूजी जाती थीं, किन्तु जहाँतक दर्शनका संबंध है, इसके बारेमें इतना ही कहा जा सकता है कि सिन्धु-सभ्यतामें उसका पता नहीं मिलता। यदि वह होता तो आर्योंको दर्शनका विकास शुरूसे करनेकी जरूरत न होती।

१. आर्योंका साहित्य और काल

आर्योंका प्राचीन साहित्य वेद, जैमिनि (३०० ई०)के अनुसार मंत्र और ब्राह्मण दो भागोंमें विभक्त है। मंत्रोंके संग्रहको संहिता कहते हैं।

ऋग् यजु साम अथर्वकी अपनी अपनी मंत्रसंहिताएं हैं, जो शाखाओं के अनुसार एकसे अधिक रूप भी मिलती हैं। बहुत काल तक—बुद्ध (४६२-४८३ ई० पू०)के पीछे तक—ब्राह्मण (और दूसरे धर्मवाले भी) अपने ग्रंथोंको लिखकर नहीं कंठस्थ करके रखते थे, और इसमें शक नहीं, उन्होंने जितने परिश्रमसे वेदों छन्द व्याकरण उच्चारण और स्वरको कंठस्थ करके सुरक्षित रखा, वह असाधारण बात है। तो भी इसका मतलब यह नहीं कि आज भी मंत्र उसी रूपमें शुद्धसे शुद्ध छपी पोथीमें भी मौजूद हैं। यदि ऐसा होता तो एक ही शुक्ल यजुर्वेद संहिताके माध्यन्दिन और काण्व शाखाके मंत्रोंमें पाठभेद न होता। आर्योंके विचारों, सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आरंभिक अवस्थाकेलिए जो लिखित सामग्री मिलती है वह मंत्र(=संहिता), ब्राह्मण आरण्यक तीन भागोंमें विभक्त है। वैदिक साहित्य तथा कर्मकाण्डके संरक्षक ब्राह्मणोंके तत् तत् मतभेदोंके कारण अलग अलग संप्रदाय हो गये थे, इन्हींको शाखा कहा जाता है। हर एक शाखाकी अपनी अपनी अलग संहिता ब्राह्मण और आरण्यक थे, जैसे (कृष्ण) यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाकी तैत्तिरीय संहिता तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक। आज बहुतसी शाखाओंके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक लुप्त हो चुके हैं।

वेदोंमें सबसे पुरानी ऋग्वेद मंत्र-संहिता है। ऋग्वेदके मंत्रकर्ता ऋषियोंमें सबसे पुराने विश्वामित्र, वशिष्ठ भारद्वाज गोतम(=दीर्घतमा), अत्रि आदि हैं। इनमें कितने ही विश्वामित्र वशिष्ठकी भाँति हैं समसामयिक परस्पर और कुछमें एक दो पीढ़ियोंका अंतर है। अंगिराके पौत्र तथा बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजका समय[1] १५०० ई० पू० है। भारद्वाज उत्तर-पंचाल (=वर्तमान रुहेलखण्ड)के राजा दिवोदासके पुरोहित थे। विश्वामित्र दक्षिण-पंचाल (=आगरा कमिश्नरीका अधिक भाग)से संबद्ध थे। वशिष्ठका संबंध कुरु (=मेरठ और अम्बाला कमिश्नरियोंके अधिक भाग) राजके

---

[1] देखिए मेरा "साकृत्यायन-वंश।"

पुरोहित थे। सारा ऋग्वेद छः सात पीढ़ियोंके ऋषियोंकी कृति है, जैसा कि बृहस्पतिके इस वंशसे पता लगेगा—

(अंगिरा)
|
बृहस्पति (१५२० ई० पू०)
|
भरद्वाज (१५०० ई० पू०)
|
(विदथी)
|
नर (१४६० ई० पू०)
|
(संकृति १४४० ई० पू०)
|
गौरवीति (१४२० ई० पू०) (रन्तिदेव)

इनमें बृहस्पति, भारद्वाज, नर और गौरवीति ऋग्वेदके ऋषि हैं। बृहस्पतिसे गौरवीति (=साकृत्यायनोंके एक प्रवर पुरुष) तक छः पीढ़ियाँ होती हैं। मैंने अन्यत्र[1] भारद्वाजका काल १५०० ई० पू० दिखलाया है, और पीढ़ीके लिए २० वर्षका औसत लेनेपर बृहस्पति (१५२० ई० पू०)से गौरवीतिके समय (१४२० ई० पू०)के अंदर ही ऋषियोंने अपनी रचनाएँ की। ऋषियोंकी परम्पराओंपर नजर करनेपर हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि ऋग्वेदका सबसे अधिक भाग इसी समय बना है। ब्राह्मणों और आरण्यकोंके बननेका समय इससे पीछे सातवीं और छठी सदी ईसा पूर्व तक चला आता है। प्राचीन उपनिषदोंमें सिर्फ एक (ईश) मंत्र-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद)का भाग (अन्तिम चालीसवाँ) अध्याय है, बाकी सारा ब्राह्मणोंके भाग हैं या आरण्यकोंके।

---

[1] देखिए मेरा "साकृत्यायनवंश।"

[illegible] प्रयागतीर्थ कहा, उत्तर-दक्षिण-पंचाल देश अर्थात आजकलके पश्चिमी युक्त प्रान्तमें था जो कि आर्योंके भारतमें आगमनके बाद तीसरा उतरा है—पहिला बसेरा मंजिल काबुल और स्वात नदियोंकी उपत्यकाओं (अफगानिस्तान)में था दूसरा सप्त सिंधु (पंजाब)में, और यह तीसरा बसेरा पश्चिमी युक्त प्रान्त या यमुना-गंगा रामगंगाकी मैदानी उर्वर उपत्यकाओंमें। इतना कहनेसे यह भी मालूम हो जायगा कि क्यों प्रयाग और सरस्वती (घाघर)के बीचका प्रदेश बहुत पुनीत, अधिकांश तीर्थोंका क्षेत्र तथा आर्यावर्त कहा गया।

वैदिक आर्योंके समाजके विकासके बारेमें जो कुछ मिलता है, उससे जान पड़ता है कि आर्यावर्त में बस जानेके समय तक आर्योंमें कुरु पांचाल जैसे प्रभुताशाली सामन्तवादी राज्य कायम हो चुके थे कृषि, ऊनी वस्त्र, तथा व्यापार खूब चल रहा था। तो भी पशुपालन—विशेषकर गोपालन, जो कि मांस दूध हल चलाना तीनोंके लिए बहुत उपयोगी था—उनकी आर्थिक उपजका सबसे बड़ा जरिया था। चाहे सुवास्तु और सप्तसिंधुके समय—जो कि इससे तीन चार सौ पहिले बीत चुका था—की ध्वनियाँ वहाँ कहाँ-कहाँ भले ही मिल जाय किन्तु उनपर कुछ ज्यादा रोशनी नहीं डालता। इस समयके साहित्यसे यही पता लगता है, कि आर्यावर्तमें बसनेकी आरंभिक अवस्थामें उनके भीतर 'वर्ण' या जातियाँ बनने जरूर लगी थीं, किन्तु अभी वह तरल या अस्थिर अवस्थामें था। अधिक शुद्ध रक्तवाले आर्य ब्राह्मण या क्षत्रिय थे। केवल विश्वामित्र ही राज-पुत्र (=क्षत्रिय) होते ऋषि नहीं हो गए, बल्कि ब्राह्मण भरद्वाजके पौत्र सुहोत्र और सुनहोत्रकी अगली सारी सन्तान क्रमशः कुरु और पंचालके क्षत्रिय शासक थी। भरद्वाजके प्रपौत्र संकृतिका पुत्र रन्तिदेव भी राजा और क्षत्रिय था। इस प्रकार इस समय (=कुरु-पंचालकालमें) जहाँ तक ब्राह्मण क्षत्रियों—शासकों तथा पुरोहितों—का संबंध है, वर्ण-व्यवस्था कर्म पर निर्भर थी। ब्राह्मण क्षत्रिय हो सकता था और क्षत्रिय ब्राह्मण हो सकता था। आगे जिस वक्त राजाओंका संरक्षकतामें पुस्तैनी पुरोहित—ब्राह्मण—तथा

ब्राह्मणोंके विधानके अनुसार क्षत्रिय आनुवंशिक योद्धा और शासक बनते जा रहे थे, उस वक्त भी सप्तसिन्धु तथा काबुल-स्वातमें ब्राह्मणादि भेद नहीं कायम हुआ। पूरबमें भी मल्ल-वज्जी आदि प्रजातन्त्रोंमें भी यही हालत थी, यह हम अन्यत्र[1] बतला चुके हैं। इसी पुरोहित शाहीके कारण इन देशोंके आर्योंको—जो रक्तमें आर्यावर्त्त"के ब्राह्मण-क्षत्रियों (=आर्यों)से कहीं अधिक शुद्ध थे—व्रात्य (=पतित) कहा जाता था। किन्तु यह 'क्रियाके लोप या ब्राह्मणके अदानसे नहीं था, बल्कि वहाँ वह अपने साथ नाई पुरानी व्यवस्थापर ज्यादा आरूढ रहना चाहते थे। आर्योंके सामन्तवादके चरम विकासकी उपज ब्राह्मणादि भेदको मानना नहीं चाहते थे।

ऋग्वेदके आर्यावर्त्त (१५०० १००० ई० पू०)में, जैसा कि मैं अभी कह चुका कृषि और गोपालन जीविकोपार्जनके प्रधान साधन थे। युक्त प्रान्त अभी घने जंगलोंसे ढँका था, इसलिए उसके वास्ते वहाँ बहुत सुभीता भी था। उस वक्तके आर्योंका खाद्य रोटी, चावल दूध, घी दही, मांस—जिसमें गोमांस (बछड़ेका मांस प्रियतम)—बहुप्रचलित खाद्य थे, मांस पकाया और भुना दोनों तरहका होता था। अभी मसाले और छौंक-बघारका बहुत जोर न था। गर्मागर्म सूप (मांसका रस) जो कि हिन्दी-युरोपीय जातिके एक जगह रहनेके समयका प्रधान पेय था वह अब भी वैसा ही था।[2] सोम(=भांग)का रस हिन्दी ईरानी कालसे उनके प्रिय पानोंमें था वह अब भी मौजूद था। पानके साथ नृत्य उनके मनोरंजनका एक प्रिय विषय था। देशवासी लोहार(=ताम्रकार), बढ़ई(=रथकार), कुम्हार अपने व्यवसायको करते थे। सूत (ऊनी) कातना और बुनना

---

[1] "वोल्गासे गंगा" पृष्ठ २१६-१८। [2] संकृतिके पुत्र दानी रन्तिदेवके दो सौ रसोइये प्रतिदिन दो हजारसे अधिक गायोंके मांसको पका कर भी, अतिथियोंसे विनयपूर्वक कहते थे—"सूपं भूयिष्ठमन्नीध्व नाद्य मांसं यथा पुरा।" महाभारत, द्रोण-पर्व ६७।१७,१८। शान्ति-पर्व २९।२८

[illegible] हुए [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [

वह निरंकुश राजा बन जाते हैं—निरंकुश जहां तक कि दूसरे व्यक्ति या का संबंध है, धार्मिक, सामाजिक, नियमों में भी उन्हें निरंकुश कर देना तो न ब्राह्मणोंको पसंद होता न प्रभु वर्गको। प्रजाके अधिकार जब बहुत कम रह गए, और राजा सर्वेसर्वा बन गया उसी समय (६०० ५०० ई० पू०) "देव" राजाका पर्यायवाची शब्द बना।

देवावलीकी ओर अग्रसर होनेपर एक तो हम इस ख्यालको फलते देखते हैं, कि ब्राह्मण एकही (उस देवताको) अग्नि यम सूर्य कहते हैं।[1] दूसरी ओर एकाधिकारको प्रकट करनेवाले प्रजापति, वरुण जैसे देवताओंको आगे आते देखते हैं। ब्रह्म (नपुंसकलिंग) व्यापार प्रधान कालके उपनिषदोंमें चलकर यद्यपि देवताओंका देवता एक अद्वितीय निराकार शक्ति बन जाता है किंतु जहां ऋग्वेदका ब्रह्मा (पुंलिंग) एक साधारण सा देवता है वहां ब्रह्म (नपुंसक) का अर्थ भोजन भोजनदान सामगीत, अद्भुत शक्तिवाला मंत्र, यज्ञपूर्ति, गान-दक्षिणा, होता (पुरोहित) का मंत्रपाठ महान् आदि मिलता है। प्रजापति ऋग्वेदके अन्तिमकालमें पहुँचकर महान एकदेवता सर्वेश्वर बन जाता है उसके क्रम विकास पर भी यदि हम गौर करें, तो वह पहिले प्रजाओंका स्वामी एक विशेषण मात्र है। ऋग्वेदकी अन्तिम रचना दशम मंडलमें प्रजापतिके बारेमें कहा गया है[2]—

"हिरण्य-गर्भ (सुनहरे गर्भवाला) पहिले था वह भूतका अकेला स्वामी मौजूद था।'

'वह पृथिवी और इस आकाशको धारण करता था, उस (प्रजापति) देवको हम हवि प्रदान करते हैं।"

वरुण तो भूतलके शक्तिशाली सामन्त राजाका एक पूरा प्रतीक था। और उसकेलिए यहां तक कहा गया—

---

[1] "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।"

ऋ० १।१६४।४६

[2] ऋग् १०।१२

'दो (आत्मी) मिलकर जो आपसमें मंत्रणा करते हैं, उसे तीसरा राजा वरुण जानता है।

(२) आत्मा—वैदिक ऋषि विश्वास रखते थे कि आत्मा (=मन) शरीरसे अलग भी अपना अस्तित्व रखता है। ऋग्वेदके एक मंत्र[1]में कहा गया है कि वह वृक्ष, वनस्पति, आन्तरिक्ष सूर्य आदिसे हमारे पास चली आये। वैदिक ऋषि विश्वास करते थे कि इस लोकके परे भी दूसरा लोक है, जहाँ मरनेके बाद सुकर्मी पुरुष जाता है, और आनन्द भोगता है। नीचे पातालमें नरक या अन्धकारमय लोक है, जहाँ अधर्मी जाते हैं। ऋग्वेदमें मन, आत्मा और असु जीवके वाचक शब्द हैं लेकिन आत्मा वहाँ आम तौरसे प्राणवायु या शरीरकेलिए प्रयुक्त हुआ है। वैदिक कालके ऋषि पुनर्जन्मसे परिचित न थे। शायद उनकी सामाजिक विषमताओंके इतने जबर्दस्त समालोचक नहीं पैदा हुए थे जो कहते कि दुनियाकी यह विषमता—गरीबी-अमीरी दासता-स्वामिता, जिससे चंदेको छोड़कर बाकी सभी दुःखकी चक्कीमें पिस रहे हैं—सख्त सामाजिक अन्याय है, और उसका समाधान कभी न दिखाईदेनेवाले परलोकसे नहीं किया जा सकता। जब इस तरहके समालोचक पैदा हो गए, तब उपनिषत्-कालके धार्मिकताओंको पुनर्जन्मकी कल्पना करनी पड़ी—यहाँकी सामाजिक विषमता भी वस्तुतः उन्हीं जीवोंको लौटकर अपने कियेको भोगनेकेलिए है। जिस सामाजिक विषमताको लेकर समाजके प्रभुओं और शोषकोंके बारेमें यह प्रश्न उठा था, पुनर्जन्मसे उसी विषमताके द्वारा उसका समाधान—बड़े ही चतुर दिमागका आविष्कार था, इसमें संदेह नहीं।

ऋग्वेदके बारेमें जो यहाँ कहा गया, वह बहुत कुछ साम और यजुर्वेद पर भी लागू है। ७५ मंत्रोंको छोड़ सामके सभी मंत्र ऋग्वेदसे लेकर यज्ञोंमें गानेकेलिए एकत्रित कर दिये गए हैं। (शुक्ल) यजुर्वेद संहिताके भी बहुतसे मंत्र ऋग्वेदसे लिये गए हैं, और कितने ही नये मंत्र भी हैं।

---

[1] ऋग्वेद १०।५८

यजुर्वेद यज्ञ या कर्मकाण्डका मंत्र है, और इसीलिए इसके मंत्रोंको भिन्न-भिन्न यज्ञोंमें उनके प्रयोगके क्रमसे संगृहीत किया गया है। अथर्ववेद सबसे पीछेका वेद है। बुद्धके वक्त (५६३-४८३ ई०) तक वेद तीन ही माने जाते थे। सुपठित पंडित ब्राह्मणको उस वक्त 'तीनों वेदोंका पारगत'[1] कहा जाता था। अथर्ववेद 'मारन-मोहन-उच्चाटन' जैसे तंत्र-मंत्रका वेद है।

(३) दर्शन—इस प्रकार जिसे हम दर्शन कहते हैं वह वैदिक कालमें दिखलाई नहीं पड़ता। वैदिक ऋषि धर्म और देववादमें विश्वास रखते हैं। यज्ञों दान द्वारा अब और मरनेके बाद भी वह सुखी रहना चाहते थे। इस विश्वकी तहमें क्या है? इस चलनेके पीछे क्या कोई अचल शक्ति है? यह विश्व प्रारंभमें कैसा था? इन विचारोंका धुंधला सा आभास मात्र हमें ऋग्वेदके नासदीय सूक्त[2] और यजुर्वेदके अन्तिम अध्याय[3]में मिलता है। नासदीय सूक्तमें है—

उस समय न सत् (=होना) था न असत्।
न अन्तरिक्ष था न उसके परे व्योम था।
किसने सबको ढाँपा था? और कहाँ? और किसके द्वारा रक्षित?
क्या वहाँ पानी अथाह था? ॥१॥
तब न मृत्यु था न अमर मौजूद,
रात और दिनमें वहाँ भेद न था।
वहाँ वह एकाकी स्वायत्तधी शक्तिसे श्वसित था,
उसके अतिरिक्त न कोई था उसके ऊपर ॥२॥
अंधकार वहाँ आदिम अँधेरेमें छिपा था,
विश्व भेदशून्य जल था।
वह जो शून्य और खालीमें छिपा पड़ा है।

---

[1] "तिण्णं वेदानं पारगू"। [2] ऋग् १०।१२९
[3] यजु अध्याय ४० (ईश उपनिषद्)।

क्या एक (अपनी) शक्तिसे विकसित था ॥३॥
तब सबसे पहिली बार भावना उत्पन्न हुई
जो कि अपने भीतर सारा प्रारम्भिक बीज थी।
और तपस्यासे आग हुए सबमें
अन्तमें साथ साथ सबका सार पाया ॥४॥

× × ×

वह मूल स्रोत जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ,
और क्या वह बनाया गया या अबना था,
(इस) को जानता या नहीं जानता जो कि उच्चतम द्योतोंमें
शासन करता है वो सर्वज्ञ स्वामी है। ॥७॥

यहाँ हम उन प्रश्नोंको उठते हुए देखते हैं जिनके उत्तर आगे चलकर दर्शनका बुनियाद कायम करते हैं। विश्व पहिले क्या था?—इसका उत्तर किसीने सत् अर्थात् वह शाश्वत सत्ता जो मौजूद रही—दिया। किसीने कहा कि वह असत्—नहीं मौजूद अर्थात् सृष्टिसे पहिले कुछ नहीं था। इस सत्के ऋषिने पहिले वादके प्रतिवादका प्रतिवाद (प्रतिषेध) करके—"नहीं सत् था नहीं असत्"—द्वारा अपना संवादका पथ किया। उसने उस विश्वसे पहिलेकी शून्य अवस्थामें भी एक सत्तारूपी कल्पनाको जो कि उस मृत शून्य जगतमें भी सजीव थी। आरम्भमें 'विश्व भेद-शून्य जल था', यह उपनिषद्के 'यह जल ही पहिले था'[1] का मूल है। ऋषिका इस जिज्ञासा और उत्तरसे पता लगता है, कि विश्वका मूल ढूंढते हुए, वह कभी तो प्रकृतिके साथ चलना चाहता है, और थलूकी भाँति, किन्तु उसमें कुछ सन्तोष पूर्व जलको सबका मूल मानता है। दूसरी ओर प्रकृतिका तट छोड़ वह शून्यमें छलाँग मार एक रहस्यमयी शक्तिकी कल्पना करता है, जो कि उस शून्य और स्वतीमें बैठी है। अन्तमें रहस्यका और गूढ़ बनाते हुए विश्वके सर्वज्ञ शासकके ऊपर विश्वके कृत या अकृत होने तथा उसके

---

[1] "आप एव इदमग्र आसुः" बृहदारण्यक ५।५।१

बारमें जानने न जाननेका भार रखकर चुप हो जाता है। इस लंबी छलांगमें साहस भी है, साथ ही कुछ दूरकी उड़ानके बाद अकावटसे फिर घोसलेकी ओर लौटना भी देखा जाता है। जो यही बतलाते हैं कि कवि (=ऋषि) अभी ठोस पृथ्वीका बिल्कुल छोड़नेकी हिम्मत नहीं रखता।

ईश उपनिषद् यद्यपि संहिता (यजुर्वेद)का भाग है तो भी वह काल और विचार दोनोंसे उपनिषद-युगका भाग है, इसलिए उसके बारेमें हम आगे लिखेंगे।

§ २—उपनिषद् (७००-१०० ई० पू०)

क—काल

वैसे तो निर्णयसागर प्रेस (बंबई)ने ११२ उपनिषद छापी है, किन्तु यह बढ़ती संख्या पीछेके हिन्दू धार्मिक पंथोंके अपनेको बदोक्त साबित करनेकी धुनका उपज है। इनमें निम्न तरहकी हम असली उपनिषदोंमें गिन सकते हैं और उन्हें कालक्रमसे निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है—१ प्राचीनतम उपनिषदें (७०० ई० पू०)—

(१) ईश (२) छांदोग्य (३) बृहदारण्यक।

२ द्वितीयकालकी उपनिषद (६०० ५०० ई० पू०)—

(१) ऐतरेय (२) तैत्तिरीय।

३ तृतीयकालकी उपनिषद (५००-४०० ई० पू०)—

(१) प्रश्न (२) केन, (३) कठ (४) मुंडक (५) माण्डूक्य।

४ चतुर्थकालकी उपनिषद (२०० १०० ई० पू०)—

(१) कौषीतकि, (२) मैत्री (३) श्वेताश्वतर।

जैमिनि वेदके मंत्र और ब्राह्मण दो भाग बतलाये हैं यह हम कह चुके हैं। मंत्र सबसे प्राचीन भाग है यह भी बतलाया जा चुका है। ब्राह्मणोंका मुख्य काम है, मंत्रोंकी व्याख्या करना उनमें निहित या उनके पोषक आख्यानोंका वर्णन करना, यज्ञके विधि विधान तथा उसमें मंत्रोंके प्रयोगको बतलाना। ब्राह्मणोंके ही परिशिष्ट आरण्यक हैं, जैसे (शुक्ल)

यजुर्वेदके शतपथ (=सौ रास्तोंवाले) ब्राह्मणका अन्तिम भाग बृहदारण्यक उपनिषद् एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। लेकिन सभी आरण्यक उपनिषद् नहीं हैं, हाँ, किन्हीं किन्हीं आरण्यकोंके अन्तिम भागमें उपनिषद् मिलती है—जैसे ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय आरण्यकका और तैत्तिरीय उपनिषद् तैत्तिरीय आरण्यकके अन्तिम भाग हैं। ईश उपनिषद्, यजुर्वेद संहिता (मंत्र)के अन्तमें आती है, दूसरी उपनिषदें प्रायः किसी न किसी ब्राह्मण या आरण्यकके अन्तमें आती हैं और ब्राह्मण खुद जैमिनिके अनुसार वेदके अन्तमें आते हैं, आरण्यक ब्राह्मणके अन्तमें आते हैं, यह बतला चुके हैं। इन्हीं कारणोंसे उपनिषदोंको पीछे वेदान्त (=वेदका अन्त, अन्तिम भाग) कहा जाने लगा।

उपनिषद् शब्दका अर्थ है पास बैठकर गुरुद्वारा अधिकारी शिष्यको बतलाया जानेवाला रहस्य। ईशको छोड़ देनेपर सबसे पुरानी उपनिषदें छान्दोग्य और बृहदारण्यक गद्यमें हैं, पीछेकी उपनिषदें केवल पद्य या गद्यमिश्रित पद्यमें हैं।

ख—उपनिषद्-संक्षेप

उपनिषदोंके ज्ञात और अज्ञात दार्शनिकोंके आपसमें विचार भिन्नता रखते हैं। उनमें कुछ आरुणि और उसके शिष्य याज्ञवल्क्यकी भाँति एक तरहके अद्वैत विज्ञानवादपर जोर देते हैं, दूसरे द्वैतवादपर जोर देते हैं तीसरे शरीरके रूपमें ब्रह्म और जगत्की अद्वैतताको स्वीकार करते हैं। उपनिषद् इन दार्शनिकोंके विचारोंके उनकी शिष्य-परंपरा और शाखा परंपरा द्वारा अपूर्ण रूपसे याद करके रखे गये संग्रह हैं, किन्तु इस संग्रहमें न दार्शनिकोंकी प्रधानता है न द्वैत या अद्वैतकी बल्कि किसी वेदकी शाखामें जो अच्छे अच्छे दार्शनिक हुए उनके विचारोंको वहाँ एक जगह जमाकर दिया गया। ऐसा होना जरूरी भी था, क्योंकि प्रत्येक ब्राह्मणको अपनी शाखाके मंत्र ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् (, कल्प, व्याकरण)का पढ़ना (=स्वाध्याय) परम कर्तव्य माना जाता था।

उपनिषदके मुख्य विषय ह लोक, ब्रह्म, आत्मा (=जीव,) पुनर्जन्म, मुक्ति—जिनके बारम हम आग कहेंग। यहा हम मुख्य उपनिषदोंका सक्षेपमें परिचय देना चाहत ह।

१ प्राचीनतम उपनिषदें (७०० ई० पू०)

(१) ईश-उपनिषद्—ईश उपनिषद यजुर्वेद-संहिताका अन्तिम (चालीसवाँ) अध्याय ह, यह बतला आय ह। यह अठारह पद्याका एक छोटा सा सग्रह ह। चूकि इसका प्रथम पद्य (मत्र) शुरू हाता ह "ईशावास्य"से इसलिए इसका नाम ही ईश या ईशावास्य उपनिषद पड गया। इसमें वर्णित विषय ह इश्वरकी सर्वव्यापकता, काय करनकी अनिवार्यता, व्यवहार ज्ञान (अविद्या)से परमार्थ ज्ञान (=ब्रह्म विद्या)की प्रधानता, ज्ञान और कर्मका समन्वय। प्रथम मत्र बतलाता ह—

'यह सब जो कुछ जगतीमें जगत ह, वह इशसे व्याप्त ह, अत त्यागके साथ भोग करना चाहिए। दूसरके धनका लोभ मत करो।'

वयक्तिक सम्पत्तिका ख्याल उस वक्त तक इतना पवित्र और दृढ हो चुका था, साथ ही धनी-गरीब कमकर-कामचारकी विषमता, इतनी बढ चुकी थी कि उपनिषद-कर्ता अपन पाठकके मनमें तीन बाताको बठा देना चाहता ह—(१) ईश सब जगह बसा हुआ है, इसलिए किसी 'बुर' कामके करते वक्त तुम्हें इसका ध्यान और ईशसे भय खाना चाहिए, (२) भोग करो, यह कहना बतलाता ह कि अभी वराग्य बिना नकेलके ऊँटकी भाँति नहीं छूट पडा था जीवनकी वास्तविकता और उसके लिए जरूरी भाग सामग्री अभी हय नही समझी गई थी। हा वयक्तिक सम्पत्तिके ख्यालमें भी यह जरूरी था कि निर्धन कमकर वग भाग करों का अथ स्वच्छद-भोगवाद न समझ ल इसलिए उनपर नियत्रण करनके लिए त्यागपर भी जोर दिया गया। और (३) मतमें मत्रकर्ताने वयक्तिक सम्पत्तिकी पवित्रताकी रक्षाके लिए कहा—'दूसरके धनका लोभ मत करो।' उस कालके वग-युक्त (शोषक-शोषित निठल्ले-कमकर) समाजकेलिए इस

[illegible] था यद्यपि व्यक्तिगत सुखके लिए इसका अर्थ कुछ [illegible] था क्योंकि यहाँ त्यागके साथ भोगका बल उठाई गई था। [illegible] उसके लिए बहुत दूर तक [illegible] करनेकी गुंजाइश [illegible] है। [illegible] व्यक्ति [illegible] तथा दूसरोंके [illegible] न [illegible] इसकी [illegible] समर्थ है वहाँ भय [illegible] परस्परके लिए जहाँ [illegible] भी असमर्थ है। आजका [illegible] भाँति उस [illegible] वर्गसमाजके शासन यंत्र (=राज्य)का प्रधान कर्तव्य था [illegible]—शासन और [illegible]—की रक्षा करना। मंत्रवर्ती अपना प्रधान और अन्तिम निशाना राज्यके [illegible] मजबूत करना था। [illegible] था आजतक भी [illegible] दर्शनीय [illegible] (जिन्हें [illegible] जाकर [illegible] बना-बनाया जाता था) और [illegible] रहने भी [illegible] मुहताज [illegible] और भी ध्यान देना चाहिए था। ऐसा होनेपर [illegible]— [illegible] जो कुछ है वह ईशकी देन सबके लिए समान है इसलिए मिलकर भोग करो [illegible] उस धनमें लोभ मत करो।[1]

उपनिषद्-काल आरम्भ तक आर्योंके [illegible] वर्ग—शासक, पुरोहित वर्ग—में भोग और विलास प्रधान जीवन उस सीमा तक पहुँच गया था, जहाँ समाजका भीतरी नियमन अन्दर अन्दर कुछ उत्पीड़ित वर्गके मूक रोष और शोषकोंकी अपने अपने लाभकी पूर्तिके लिए निरन्तर होते पारस्परिक कलह शोषक धनिक वर्गको भी सुखकी नींद सोने नहीं देते और हर जगह शंका एवं भय उठते रहते हैं। इसका परिणाम होता है, निराशावाद और अकर्मण्यता। राज्य और धर्म द्वारा शासन करनेवाले वर्गको अकर्मण्यतासे हटानेके लिए दूसरे मन्त्रमें कहा गया है—

'यहाँ काम करते ही हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखो।

---

[1] ईशावास्य इदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

(वस) यही और दूसरा (रास्ता) तुम्हारे लिए नहीं नरम धर्म नहीं लिप्त होना। उपनिषद्कार स्वयं यज्ञोंके व्यर्थके लम्बे चौड़े विधि-विधानके विरुद्ध एक नई धारा निकालनेवाले थे[1]—"यज्ञोंके ये कमजोर बेड़े हैं। इसे उत्तम मान जो अभिनन्दन करते हैं, वे मूढ़ फिर फिर बुढ़ापे और मृत्युके शिकार बनते हैं। अविद्याके भीतर स्वयं वर्तमान (अपनेको) धीर और पंडित माननेवाले मूढ़ (उसी तरह) भटकते हैं जैसे अंधे द्वारा लिये जाये जाते अंधे। इष्ट (=यज्ञ) और पूर्त (=परार्थ किए जानेवाले कूप तालाब) निर्माण आदि कर्मको सर्वोत्तम मानते हुए (उससे) दूसरेको (जो) अ-मूढ़ अच्छा नहीं समझते वे स्वर्गके ऊपर सुकर्मोंको अनुभव कर इस हीनतर लोकमें प्रवेश करते हैं।

उपनिषदकी प्रतिक्रियासे कर्मकाण्डके त्यागकी जो हवा उठी, उसके कारण नवयुवक कहीं हाथ-पैर ढीला कर मैदान न छोड़ भागें, इसीलिए कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीते रहनेकी इच्छा करनेका उपदेश दिया गया।

(२) छान्दोग्य उपनिषद् (७०० ई० पू०), (क) संक्षेप—छान्दोग्य और बृहदारण्यक न सिर्फ आकार हीमें बड़ी उपनिषद हैं, बल्कि काल और प्रथम प्रयासमें भी बहुत महत्त्व रखती हैं। छान्दोग्यके प्रधान दार्शनिक उद्दालक आरुणि (गौतम)का स्थान यदि सुकरातका है तो उनके शिष्य याज्ञवल्क्य वाजसेनेय उपनिषदका अफलातूं हैं। हम इन दोनों उपनिषदोंके इन दोनों दार्शनिकों तथा कुछ दूसरोंपर भी आगे लिखेंगे, तो भी इन उपनिषदोंके बारेमें यहाँ कुछ संक्षेपमें कह देना जरूरी है।

बृहदारण्यककी भाँति छान्दोग्य पुरानी और संधिकालीन उपनिषद् है, इसीलिए कर्मकाण्ड-प्रशंसासे इसने छोड़ा नहीं है। बल्कि पहिले दूसरे अध्याय तो उपनिषद नहीं ब्राह्मणका भाग होने लायक हैं। उपनिषदके सामवेदी होनेसे सामगान और ओम्की महिमा इन अध्यायोंमें गाई गई है।

हैं, प्रथम अध्यायके अंतमें दाल रोटीके लिए "हावु" "हावु" (=सामगान का अलाप) करनेवाले पुरोहितोंका एक दिलचस्प मजाक किया गया है। एक दाल्भ्य—जिसका दूसरा नाम ग्लाव मैत्रेय भी था—कोई ऋषि था। वह वेदपाठके लिए किसी एकांत स्थानमें रह रहा था। उस समय एक सफेद कुत्ता वहां प्रकट हुआ। फिर कुछ और कुत्ते आगये और उन्होंने सफेद कुत्तेसे कहा कि हम भूखे हैं, तुम गाओ, शायद इससे हमें कुछ भोजन मिल जाय। सफेद कुत्तेने दूसरे दिन आनेके लिए कहा। दाल्भ्यने कुत्तोंकी बात सुनी थी। वह भी सफेद कुत्तेके सामगानको सुननेके लिए उत्सुक था। दूसरे दिन उसने देखा कि कुत्ते आगे पीछे एक का पूंछ दूसरेके मुंहमें लिए बैठकर गा रहे थे—"हिं! ओम् खाओ ओम् पीयें, ओम्, देव हमें भोजन दें। हे अन्न देव! हमारे लिए अन्न लाओ, हमारे लिए इसे लाओ, ओम्।" इस मजाकमें सामगायकके पटके लिए यज्ञके वक्त एकके पीछे एक दूसरे अंगोंका वस्त्र पकड़े हुए पुरोहितोंके साम-गायनकी नकल उतारी गई है।

तीसरे अध्यायमें आदित्य (=सूर्य)को देव मधु बतलाया गया है। चौथे अध्यायमें रैक्व सत्यकाम जाबाल और सत्यकामके शिष्य उपकोसल की कथा और उपदेश है। पांचवें अध्यायमें जवनि और अश्वपति कैकेय (राजा)के दर्शन हैं। छठे अध्यायमें उपनिषदके प्रधान ऋषि आरुणिकी शिक्षा है और यह अध्याय सारे छांदोग्यका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। शतपथ ब्राह्मणसे पता लगता है कि आरुणि बहुत प्रसिद्ध ऋषि तथा याज्ञवल्क्यके गुरु थे। सातवें अध्यायमें सनत्कुमारके पास जाकर नारदके ब्रह्मज्ञान सीखनेकी बात है। आठवें तथा अंतिम अध्यायमें आत्माके साक्षात्कारकी युक्ति बतलाई गई है।

(ग) ज्ञान—छांदोग्य कर्मकांडसे नाता तोड़नेकी बात नहीं करता, बल्कि उसे ज्ञानकांडसे पुष्ट करना चाहता है जैसा कि इस उद्धरणसे मालूम होगा[1]—

---

[1] छांदोग्य ५।१९ २४

"प्राणके लिए स्वाहा। व्यान अपान, समान, उदानके लिए स्वाहा। जो इसके ज्ञानके बिना अग्निहोम करता है वह अंगारोंको छोड़ मानो भस्ममें ही होम करता है। जो इसे ऐसा जानकर अग्निहोत्र करता है उसके सभी पाप (=बुराइयाँ) उसी तरह दूर हो जाते हैं जैसे सरकंडेका धूआँ आगमें डालनेपर। इसलिए इस ज्ञानवाला चाहे चाँडालका जूठ ही क्यों न ले, वह वैश्वानर आत्मा (=ब्रह्म)में आहुति देता होता है।"

'विद्या और अविद्या तो भिन्न भिन्न हैं। (किन्तु) जिस (कर्म)को (आदमी) विद्या (=ज्ञान)के साथ श्रद्धा और उपनिषदके साथ करता है, वह ज्यादा मजबूत होता है।'

मनुष्यकी प्रतिभा एक नये क्षेत्रमें उड़ रही थी जिसके चमत्कारको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे थे। लोगोंको आश्चर्य-चकित होनेको ये दार्शनिक कम नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए चाहते थे कि इसका ज्ञान कमसे कम आदमियों तक सीमित रहे। इसीलिए कहा गया है—

'इस ब्रह्मको पिता या तो ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश करे या प्रिय शिष्यको। किसी दूसरेको (हर्गिज) नहीं चाहे (वह) इसे जल-सहित धनसे पूर्ण इस (पृथ्वी)को ही क्यों न दे देवे 'यही उससे बढ़कर है, यही उससे बढ़कर है।'

(ग) धर्माचार—छान्दोग्यके समयमें दुराचार किसे कहते थे, इसका पता निम्न पद्यसे लगता है—

'सोनेका चोर शराब पीने वाला, गुरु-पत्नीके साथ व्यभिचार करने वाला और ब्रह्महत्या करनेवाला ये चार और इनके साथ (संसर्ग या) आचरण करनेवाले पतित होते हैं।'[2]

सदाचार तीन प्रकारके बतलाये गये हैं—[3]

धर्मके तीन स्कन्ध (=वर्ग) हैं—यज्ञ, अध्ययन (=वेदपाठ) और दान। यह पहिला तप ही दूसरा (स्कन्ध है), ब्रह्मचर्य (रख) आचार्य-

कुटुम्ब बसना—आकाशके कुटुम्बमें अवकाश अन्यत्र छोड़ कर (रहना)। ये सभी पुण्य लोक (सत्) लोक हैं। (जो) ब्रह्मको जिसने, वह अमरत्व (मुक्ति) को प्राप्त होता है।

(घ) ब्रह्म—ब्रह्मको आकाश चिह्नों या प्रतीकोंमें उपासना करनेका बात छान्दोग्यमें कहा जाता है। इनके बारेमें सन्देह उठ सकता है कि यह ब्रह्मकी उपासना है या किन प्रतीकों—आदित्य, आकाश आदिकी उपासना करने—को कहा गया है। यहाँ अलग अलग दर्शाया है। और उसी रूपमें उनकी उपासना करनेको कहा गया है। बादरायणने अपने ब्रह्म सूत्रमें वाक्य भागको इसकी सफाईमें खर्च किया है, यह हम आगे देखेंगे। इन उपासनाओंमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

(a) दहर—हृदयके गुहा (=दहर) आकाशमें ब्रह्मकी उपासना करनेके लिए कहा गया है—[1]

इस ब्रह्मपुर (=शरीर)में जो दहर (=गुहा) पुण्डरीक (=कमल) गृह है। इसके भीतर (एक) दहर आकाश है, उसके भीतर जो है, उसका अन्वेषण करना चाहिए उसकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जितना यह (बाहरी) आकाश है उतना ही हृदयके भीतरका आकाश है। दोनों द्यु (नक्षत्र)-लोक और पृथ्वी उसीके भीतर एकत्रित हैं—दोनों अग्नि और वायु दोनों सूर्य और चन्द्रमा, दोनों बिजली-तारे और इस विश्वका जो कुछ यहाँ है तथा जो नहीं, वह सब इसमें एकत्रित है।

(b) भूमा—सुखकी कामना हर एक मनुष्यमें होती है। कैसे सुखको ही प्राप्त करनेका प्रलोभन दे भारी (भूमा)-सुखकी ओर खींचते हुए कहा—

जब सुख पाता है तब (उसके लिए प्रयत्न) करता है। अ-सुखको प्राप्तकर नहीं करता सुखको ही पाकर करता है। सुखकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जो कि भूमा (=बहुत) है वह सुख है थोड़ेमें सुख नहीं होता।

---

[1] छां० ८।१।१ ३

भूमाकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जहा (=ब्रह्मम) न दूसरेको देखता, न दूसरेको सुनता न दूसरका विजानन करता (जानता) वह भूमा ह। जहा दूसरको देखता, सुनता, विजानन करता ह वह अल्प ह। जो भूमा ह वह अमत ह, जा अल्प है वह मत्य (=नाशमान)। ह भगवन! वह (=भूमा) किसम स्थित ह। 'अपनी महिमाम या (अपनी) महिमामें नही।' गाय घाड हाथी-सान, दास भार्या खत घरका यहाँ (लाग) महिमा कहते ह। म एसा नही कह रहा हूँ। वही (=भूमा ब्रह्म) नीच वही ऊपर वही पश्चिम, वही पूरब वही दक्षिण वही उत्तरम ह वही यह भव ह। वह (=ज्ञानी) इस प्रकार दखत इस प्रकार मनन करत और इस प्रकार विजानन करते आत्माके साथ रति रखनवाला, आत्माके साथ क्रीडा और आत्माके साथ जोडीदारी रखनेवाला आत्मानन्द स्वराड (=अपना राजा) होता ह वह इच्छानुसार सार लाकोम विचरण कर सकता ह।[1]

इसी भाँति आकाश, आदित्य[2], प्राण वैश्वानरआत्मा, सेतु[3], ज्योति[4] आदिका भी प्रतीक मानकर ब्रह्मोपासनाकी शिक्षा दी गई ह।

(ङ) सृष्टि—विश्वके पीछे कोई अदभुत शक्ति काम कर रही ह और वह अपनको बिलकुल छिपाए हुए नही ह बल्कि विश्वकी हर एक क्रिया उसके कारण दृष्टिगोचर हो रही ह उसी तरह जस कि शरीरमें जीवकी क्रिया देखी जाती ह लकिन वस्तुओंके बनन बिगडनसे मानवके मनमे यह भी ख्याल पदा हान लगा कि इस सृष्टिका कोई आरम्भ भी है और आरम्भ ह ता उसके पहिल कुछ था भी या बिलकुल कुछ नहा था। इसका उत्तर इस तरह दिया गया ह[5]—

हे सोम्य (प्रिय)! यह पहिल एक अद्वितीय सद (=भावरूप) ही था। उसीको कोई कहते ह—'यह पहिल एक अद्वितीय असद् (=अभाव

---

[1] छां० ७।२२-२५ यही १।९।१, ७।१२।१
[2] वहीं ३।१९।१-३ [3] वहीं १।११।५, [4] वहीं ५।१८।१,
[5] वहीं ८।४।१-२ वहीं ३।१३ वहीं ६।२।१-४

[illegible]) ही था। इसलिए अन्नसे सत् उत्पन्न हुआ। लेकिन सोम्य! कैसे ऐसा हो सकता है—'कैसे असत्से सत् उत्पन्न होगा।' सोम्य! यह पहिले एक अद्वितीय सत् ही था। उसने ईक्षण (=इच्छा) किया—मैं बहुत हो प्रकट होऊँ। उसने तेज (=अग्नि)को सिरजा। उस तेजने ईक्षण किया [illegible] उसने जलको सिरजा [illegible] जलने अन्नको सिरजा।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि (१) यहाँ उद्दालक असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं मानता अर्थात् वह एक तरहका सत्कार्यवादी है, (२) भौतिक तत्त्वोंमें अग्नि या मृतात्त्व तेज (=अग्नि) है।

(च) मन (१) भौतिक—मन आत्माके अलग और भौतिक वस्तु है, इसी ख्यालसे यहाँ हम मनका अध्ययन करते हैं—[1]

"खाया हुआ अन्न तीन तरहका बनता (=परिणत होता) है। उसका जो स्थूल धातु (=तत्त्व) है वह पुरीष (=गोबरमात्र) बनता है, जो बिचला वह मांस और जो अतिसूक्ष्म वह मन (बनता है)। सोम्य! मन अन्नमय है। सोम्य! दहीका मथनेपर जो सूक्ष्म (अंश है) वह ऊपर उठ आता है वह मक्खन (=सर्पि) बनता है। इसी तरह सोम्य! खाये जाते अन्नका जो सूक्ष्म अंश है वह ऊपर उठ आता है, वह मन बनता है।

(b) सुप्तावस्था—इन आत्मिक विचारोंके लिए गाढ़ निद्रा और स्वप्नकी अवस्थायें बहुत बड़ा रहस्य ही नहीं रखती थीं, बल्कि इनसे उनके आत्मा-परमात्मा संबंधी विचारोंकी पुष्टि होती जान पड़ती थी। इसीलिए बृहदारण्यकमें कहा गया—

'जब वह सुषुप्त (=गाढ़ निद्रामें सोया) होता है तब (पुरुष) कुछ नहीं महसूस (=वेदन) करता। हृदयसे पुरीतत[1]की ओर जानेवाली

---

[1] छां० ६।५।६ [2] बृह० २।१।१९

[1] पुरीतत हृदयके पास अथवा पृष्ठ दंडमें अवस्थित किसी चक्र को कहते थे, जहाँ स्वप्न और गाढ़ निद्रामें जीव चला जाता है।

७२ हजार हिता नामवाली नाड़ियाँ हैं। उनके द्वारा (वहाँ) पहुँचकर पुरीततमें वह सोता है, जैसे कुमार (बच्चा) या महाराजा या महा ब्राह्मण आनन्दकी पराकाष्ठाको पहुँच सोये, वैसे ही यह सोता है।"

इसी बातको छान्दोग्यने इन शब्दोंमें कहा है—[1]

"जहाँ यह सुप्त अच्छी तरह प्रसन्न हो स्वप्नको नहीं जानता, उस वक्त इन्हीं (=हिता नाड़ियों)में वह सोया होता है।"

इसीके बारेमें[2]—

"उद्दालक आरुणिने (अपने) पुत्र श्वेतकेतुको कहा—स्वप्नके भीतर (की बातको) समझो।" जैसे सूतसे बँधा पक्षी दिशा दिशामें उड़कर दूसरी जगह स्थान न पा, बंधन(-स्थान)का ही आश्रय लेता है। इसी तरह सोम्य! वह मन दिशा दिशामें उड़कर दूसरी जगह स्थान न पा प्राणका ही आश्रय लेता है। सोम्य! मनका बंधन प्राण है।"

सुषुप्ति (=गाढ़ निद्रा)में आदमी स्वप्न भी नहीं देखता, इस अवस्थाको आरुणि ब्रह्मके साथ समागम मानते हैं।[3]

"जब यह पुरुष सोता है (=स्वपिति) उस समय सोम्य! वह सत् (=ब्रह्म)के साथ मिला रहता है। 'स्व अपीति (=अपनेको मिला) होता है, इसीलिए इसे स्वपिति कहते हैं।

जब हम रोज इस तरह ब्रह्म मिलन कर रहे हैं, किन्तु इसका ज्ञान और लाभ(=मुक्ति) हम क्यों नहीं मिलती इसके बारेमें कहा है—[4]

"जैसे धनका ज्ञान न रखनेवाले छिपी हुई सुवर्ण निधिके ऊपर ऊपर चलते भी उसे नहीं पाते, इसी तरह यह सारी प्रजा (=प्राणी) रोज रोज जाकर भी इस ब्रह्मलोकको नहीं प्राप्त करती, क्योंकि वह अनृत(=अ-सत्य, अज्ञान)से ढँकी हुई है।"

(छ) मुक्ति और परलोक—इन प्रारंभिक दार्शनिकोंमें जो अद्वैत-वादी भी हैं उन्हें भी उन अर्थोंमें हम अद्वैती नहीं ले सकते, जिनमें कि

---

[1] छा० ८।६।३, [2] वहीं ६।८।१,२ [3] वहीं ६।८।१ [4] वहीं ८।३।२

[illegible] था। [illegible] भाँति पश्चिमी और पार्थिव [illegible] अपनाने [illegible] तैयार नहीं। दूसरे धर्मके विरुद्ध अभी इतने स्वतंत्र विचार नहीं उठ खड़े हुए थे कि वह साथ किसी [illegible] अथवा अभी मनुष्यका [illegible] विकसित नहीं हुआ था कि [illegible] उत्पन्न हुए वह [illegible] रास्ता [illegible]। निम्न उद्धरणमें मुक्तिका [illegible] प्रकार बतलाया गया है, जब वहाँ मुक्त आत्मा और ब्रह्मका भेद बिल्कुल नहीं रहता—

जैसे शाम्य! मधुमक्खियाँ मधु बनाती हैं, नाना प्रकारके वृक्षोंके रसोंको संचय कर एक रसको बनाती हैं। जैसे वहाँ वह (मधु आपसमें) पृथक नहीं पाती—मैं अमुक वृक्षका रस हूँ, मैं अमुक वृक्षका रस हूँ, एसे ही शाम्य! यह सारी प्रजा सत्में प्राप्त हो नहीं जानती—'हमें सत्को प्राप्त किया'।[1]

यहाँ सुषुप्तिकी अवस्थाका सुंदर मधुर दृष्टान्तसे [illegible] बतलानेकी कोशिश की गई है किन्तु [illegible] अभिप्राय आत्माकी अपने समानता तथा ब्रह्मका शुद्ध शरीर होना ही अभिप्रेत मालूम होता है। जैसा कि निम्न उद्धरण बतलाता है—

जो यहाँ आत्माको न जानकर प्रयाण करते (=मरते) हैं उनका सारे लोकोंमें स्वेच्छापूर्वक विचरण नहीं होता। जो यहाँ आत्माको जानकर प्रयाण करते हैं उनका सारे लोकोंमें स्वेच्छापूर्वक विचरण होता है।[2]

मुक्त पुरुषका सारे स्वेच्छापूर्वक विचरण यही बतलाता है कि यहाँ विचारकको मुक्तिमें अपने अस्तित्वका खोना अभिप्रेत नहीं है। छान्दोग्यमें इसे और साफ करते हुए कहा है[3]—

'जिस जिस बात(=अन्त)की वह कामनावाला होता है, जिस जिसकी कामना करता है, संकल्पमात्रसे ही (वह) उसके पास उपस्थित

---

[1] छां० ६।६।१०, [2] वहीं ८।१।६ [3] वहीं ८।२।१०

होता है, वह उसे प्राप्त कर महान् होता है।'

ब्रह्म-ज्ञान प्राप्तकर जीवित रहते मुक्तावस्थामें—

'जैसे कमलके पत्तेमें पानी नहीं लगता इसी तरह ऐसे ज्ञानीको पाप कर्म नहीं लगता।'

पापकर्म नहीं लगता' यह वाक्य सदाचारकेलिए घातक भी हो सकता है क्योंकि इसका अर्थ 'वह पापकर्म नहीं कर सकता नहीं है।

मुक्तके पाप क्षीण हो जाते हैं इसके बारेमें और भी कहा है[1]—

घोड़ा जैसे रोयेंको (झाड़ दे), ऐसे ही पापोंको झाड़कर चंद्र जैसे राहुके मुखसे छूटा हो शरीरको झाड़कर कृतार्थ (हो), वैसे ही मैं ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ।

(a) **आचार्य**—मुक्तिकी प्राप्तिमें ज्ञानकी अनिवार्यता है, ज्ञानके लिए आचार्य जरूरी है। इसी अभिप्रायको इस वाक्यमें कहा गया है[2]—

"जैसे सोम्य! एक पुरुषको गंधार (देश)से आँख बाँध लाकर उसे जहाँ बहुत जन हों उस स्थानमें छोड़ दें। जैसे वह वहाँ पूरब पश्चिम ऊपर उत्तर चिल्लाये—'आँख बाँध लाया आँख बाँध (मुझे) छोड़ दिया।' जैसे उसकी पट्टी खोलकर (कोई) कहे—'इस दिशामें गंधार है, इस दिशाको जा।' वह (एक) गाँवसे (दूसरे) गाँवको पूछता पंडित मेधावी (पुरुष) गंधारमें ही पहुँच जाय। उसी तरह यहाँ आचार्यवाला पुरुष (ब्रह्मको) जानता है। उसकी उतनी ही देर है जब तक विमोक्ष नहीं होता, फिर तो (वह ब्रह्मको) प्राप्त होगा।

(b) **पुनर्जन्म**—भारतीय प्राचीन साहित्यमें छांदोग्य ही ने सबसे पहिले पुनर्जन्म (=परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी कर्मानुसार प्राणी जन्म लेता है)की बात कही। शायद उस वक्त प्रथम प्रचारकोंने यह न सोचा हो कि जिस सिद्धान्तका वह प्रचार कर रहे हैं वह आगे कितना खतरनाक साबित होगा, और वह परिस्थितिके अनुसार बदलनेकी क्षमता रखनेवाली

---

[1] छा० ८।१३।१ [2] छा० ६।१४।१-२

[illegible] कहिकर [illegible] प्रमाणुक नहीं [illegible] पानी [illegible] [illegible]। [illegible] किसी दूसरे [illegible] आदि [illegible] जा [illegible] भागना, [illegible] [illegible] पीछे [illegible] दूसरी [illegible] [illegible]। [illegible]

कि यहाँ सामाजिक विषमताएं जो सुखमय जीवनका [illegible] कर रखा है उसके लिए [illegible] उथल-पुथल लाने की कोशिश न करो। इसी लोभ आकर फिर जनमना (=पुनर्जन्म) का पीछा [illegible] और [illegible] बीज है। [illegible] यह नहीं है कि आजके दुःखोंको भूल जाओ, बल्कि साथ ही यह भी बतलाया गया है कि यहाँकी सामाजिक विषमताएं न्याय्य हैं, क्योंकि तुम्हारी ही पिछले जन्मकी तपस्याओं (=दुःख अत्याचारपूर्ण कर्मों)के कारण संसार ऐसा बना है। इस विषमतामें बिना तुम अपने आजके कष्टोंका पारिमार्जन नहीं पा सकते। पुनर्जन्मके संबंधमें यह सब पुरातन वाक्य है[1]—

सो जो यहाँ रमणीय(=भद्र)आचरण वाले हैं, यह जरूरी है कि वह रमणीय योनि—ब्राह्मण-योनि या क्षत्रिय-योनि या वैश्य-योनि—को प्राप्त हों। और जो कुर(=आचार वाले)हैं यह जरूरी है कि वह कुर योनि—कुत्ता-योनि सूकर-योनि, या चाण्डाल-योनिको प्राप्त हों।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको यहाँ मनुष्य-योनिके अन्तर्गत न मानकर उन्हें स्वतंत्र योनिका दर्जा दिया है क्योंकि मनुष्य-योनि माननेपर समानताका सवाल उठ सकता था। पुरुष सूक्तके एक ही शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंकी बातको भी यहाँ भुला दिया गया क्योंकि यद्यपि वह कल्पना भी सामाजिक अत्याचारपर पर्दा डालनेके लिए ही गढ़ी गई थी तो भी वह उतनी दूर तक नहीं जाती थी। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको स्वतंत्र योनिका दर्जा इसीलिए दिया गया, जिसमें सम्पत्तिके स्वामी इन तीनों वर्णोंकी वैयक्तिक सम्पत्ति और प्रभुताको धर्म (=कर्म-फल)द्वारा न्याय्य बतलाया जाय और वैयक्तिक सम्पत्तिके संरक्षक राज्यके हाथको धर्म द्वारा दृढ़ किया जाये।

---

[1] छां० ५।१०।७

(c) पितृयान—मरनेके बाद सुकर्मी जन अपने कर्मोंका फल भोगने के लिए लोकान्तरमें जाते हैं, इसे यहाँ पितृयान (=पितरोंका मार्ग) कहा गया है। उसपर जानेका तरीका इस प्रकार है—

'जो ये ग्राममें (रहते) इष्ट आपूर्त (=यज्ञ, परोपकारक कर्म), दानका सेवन करते हैं। वह (मरने वक्त) धूमको प्राप्त होते हैं। धूएँसे रात, रातसे अपर (=कृष्ण) पक्ष, अपर पक्षसे छ दक्षिणायन मासोंको प्राप्त होते हैं। मासोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको, आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। वहाँ (=चन्द्रलोकमें) संपात (=मियाद)के अनुसार निवासकर फिर उसी रास्तेसे लौटते हैं—जैसे कि (चन्द्रमासे) इस आकाशको, आकाशसे वायुको, वायु हो धूम होता है, धूम हो बादल होता है, बादल हो मेघ होता है, मेघ हो बरसता है। (तब) वे (लौट जीव) धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल-उड़द हो पैदा होते हैं, जो जो अन्न खाता है, जो वीर्य सेचन करता है, वह फिरसे ही होता है।'[1]

यहाँ चन्द्रलोकमें सुख भोगना फिर लौटकर पहिले उद्धृत वाक्यके अनुसार 'ब्राह्मण-योनि, क्षत्रिय-योनि' में जन्म लेना पितृयान है।

(d) देवयान—मुक्त पुरुष जिस रास्तेसे अंतिम यात्रा करते हैं, उसे देवयान या देवताओंका पथ कहते हैं। पुराने वैदिक ऋषियोंको कितना आश्चर्य होता यदि वह सुनते कि देवयान वह है, जो कि उनको इन्द्र आदि देवताओंकी ओर नहीं ले जाता। देवयानवाला यात्री[2]—"किरणोंको प्राप्त होते हैं। किरणसे दिन, दिनसे भरते (=शुक्ल) पक्ष, भरते पक्षसे जो छ उत्तरायणके मास हैं, उन्हें (उन) मासोंसे संवत्सर, संवत्सरसे आदित्य, आदित्यसे चन्द्रमा, चन्द्रमासे विद्युतको (प्राप्त होते हैं।) फिर अ-मानव पुरुष इन (देवयान-यात्रियों)को ब्रह्मके पास पहुँचाता है। यही देवपथ[3] ब्रह्मपथ है, इससे जानेवाले इस मानवकी लौटानेमें नहीं लौटते, नहीं लौटते।"

---

[1] छां० ५।१०।१ ६ [2] छां० ४।१५।५ ६ [3] आगे (छां० ५।१०।१ २में) इसे देवयान ("एष देवयान पन्था") कहा है।

(ञ) अद्वैत—मुक्ति और उसके रास्तेका जो वर्णन यहाँ किया गया है उससे स्पष्ट है, कि छांदोग्यके ऋषि जीवात्मा और ब्रह्मके भेदको पूर्णतया मिटानेको तैयार नहीं थे, तो भी यह बहुत दूर तक इस दिशामें जाते थे। यह इससे भी स्पष्ट है, कि शंकरने जिन चार उपनिषद् वाक्योंका अद्वैतका जबरदस्त प्रतिपादक समझा, जिन्हें "महावाक्य" कहा गया, उनमें दो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"[1] (=यह सब ब्रह्म ही है) और 'तत्त्वमसि'[2] (=यह तू है) छांदोग्य-उपनिषद्के हैं।

(झ) लोक विश्वास—यदि कर्मकांडमें लोगोंका विश्वास हटता जा रहा था जब छांदोग्य ऋषि राजा जवलि, और ब्राह्मण आरुणिने नया रास्ता निकाला। उन्होंने पुनर्जन्म जैसे विश्वासोंको गढ़कर दान कर्मकर, आदि पीड़ित जनताकी बंधन शृंखलाकी कड़ियोंको और भी मजबूत किया। भारतके बहुतसे आजकलके विचारक भी जान या अनजान उन्हीं कड़ियोंको मजबूत करनेके लिए जवलि आरुणि याज्ञवल्क्यकी दुहाई देते हैं—दानपथ के प्रथम पथिककी प्रशंसाके तौरपर नहीं बल्कि उन्हें सर्वज्ञ जैसा बनाकर। वह कितने सर्वज्ञ थे, यह तो राहुके मुखमें चन्द्रमाके घुसने (=चंद्रग्रहण), तथा सूर्यलोकसे भी पर चन्द्रलोकके होनेकी बात ही से स्पष्ट है। इन विचारकोंकी नजरमें भौतिक सारसका यह नहीं भूलसी मालूम होनेवाली गणनियाँ 'सर्वज्ञता' पर कोई असर नहीं डालती। कसौटीपर कसकर देखने लायक ज्ञानमें नहीं गणती कोई भले ही करे, किन्तु ब्रह्मज्ञानपर उसका निशाना अचूक लगता। यह तो यही साबित करता है कि ब्रह्मज्ञानके लिए अतिसाधारण बुद्धिसे भी काम चल सकता है।

चोरी या बुरे कर्मकी सजा देनेकेलिए जब गवाही नहीं मिल सकती थी, तो उसके साबित करनेके लिए दिव्य (शपथ) करनेका रवाज बहुतसे मुल्कोंमें अभी बहुत पीछे तक रहा है। आरुणिके वक्तमें यह अतिप्रचलित प्रथा थी, जैसा कि यह वाक्य बतलाता है[3]—

---

[1] छां० ३।१४।१ [2] छां० ६।८।७ [3] छान्दोग्य ६।१६।१ २

'सोम्य ! एक पुरुषको हाथ पकड़ कर लाते हैं— चुराया है, सो इसके लिए परशु (=फरसे)का तपाओ।' अगर वह (पुरुष) उस (चोरी)का कर्त्ता होता है, (तो) उससे ही अपनेको झूठा करता है, वह झूठ दाववाला झूठसे अपनेको गोपित कर तपे परशुको पकड़ता है, वह जलता है, तब (चोरीके लिए) मारा जाता है। और यदि वह उस (चोरी)का अ-कर्त्ता होता है, तो उससे ही अपनेको सच कहता है, वह सच्च दाववाला सचसे अपनेको गोपित कर तपे परशुको पकड़ता है वह नहीं जलता, तब छोड़ दिया जाता है।

कोई समय था जब कि "दिव्य' के फेरेमें फँसाकर हजारों आदमी निरपराध जानसे मार जाते थे, किन्तु, आज कोई इमानदार इसकेलिए तैयार नहीं होगा। यदि दिव्य सचमुच दिव्य था, तो सबसे जबर्दस्त चोरों—जो यह कामचोर तथा सपत्तिके स्वामी— 'ब्राह्मण, क्षत्रिय-वैश्य-योनियाँ हैं—के परखनमें उसने क्या नहीं करामात दिखलाई ?

छांदोग्यके अन्य प्रधान ऋषियोंके विचारोंपर हम आगे लिखेंगे।

(३) बृहदारण्यक (६०० ई० पू०)

(क) संक्षेप—बृहदारण्यक शुक्ल-यजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणका अन्तिम भाग तथा एक आरण्यक है। उपनिषदोंके सबसे बड़े दार्शनिक याज्ञवल्क्यके विचार इसीमें मिलते हैं इसलिए उपनिषत्-साहित्यमें इसका स्थान बहुत ऊँचा है। याज्ञवल्क्यके बारेमें हम अलग लिखने-वाले हैं, तो भी सारे उपनिषदोंके परिचयकेलिए संक्षेपमें यहाँ कुछ कहना जरूरी है। बृहदारण्यकमें छै अध्याय हैं जिनमें द्वितीय तृतीय और चतुर्थ दार्शनिक महत्त्वके हैं। बाकीमें शतपथ ब्राह्मणकी फेंकाड़ी धारा बह रही है। पहिले अध्यायमें यज्ञीय अश्वकी उपमासे सृष्टिपुरुषका वर्णन है फिर मृत्यु सिद्धान्तका। दूसरे अध्यायमें तत्त्वज्ञानी काशिराज अजातशत्रु और अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्यका संवाद है, जिसमें गार्ग्यका अभिमान चूर होता है, और वह क्षत्रियके चरणोंमें ब्रह्मज्ञान सीखनेकी इच्छा प्रकट करता है। दध्यञ्च् आथर्वणके विचार भी इसी अध्यायमें हैं। तीसरे

अध्यायमें याज्ञवल्क्यके दर्शन होते हैं। वह जनकके दरबारमें दूसरे दार्शनिकोंसे शास्त्रार्थ कर रहे हैं। चौथे अध्यायमें याज्ञवल्क्यका जनकको उपदेश है। पाँचवें अध्यायमें धर्म आचार तथा दूसरी कितनी ही बातोंका जिक्र है। छठे अध्यायमें याज्ञवल्क्यके गुरु (आरुणि)के गुरु प्रवाहण जैवलिके बारेमें कहा गया है। इसी अध्यायमें अच्छी सन्तानके लिए साँड, बैल आदिके मांस खानेकी गर्भिणीको हिदायत दी गई है जो बतलाता है कि अभी ब्राह्मण क्षत्रिय गोमांसको अपना प्रिय खाद्य मानते थे।

जिस तरह आजके हिन्दू दार्शनिक अपने विचारोंकी सच्चाईकेलिए उपनिषद्की दुहाई देते हैं उसी तरह बृहदारण्यक उपनिषद चाहता है, कि वेदोंका झंडा ऊँचा रहे। इसीलिए अपनी पुष्टिकेलिए कहता है[1]—

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वांगिरस इतिहास पुराण विद्या, उपनिषद श्लोक सूत्र, अनुव्याख्यान इस महान् भूत (=ब्रह्म)का श्वास है, इसीसे यह सारा निश्वसित है।

इतना होनेपर भी वेद और ब्राह्मणोंके यज्ञादिमें लोगोंकी श्रद्धा उठती जा रही थी इसमें तो शक ही नहीं। इस तरहके विचार-स्वातन्त्र्यको खतरनाक न बनने देनेके प्रयत्नमें पुरोहित (=ब्राह्मण) जातिकी अपेक्षा शासक (=क्षत्रिय) जातिका हाथ काफी था इसीलिए छान्दोग्यने कहा[2]—

'चूँकि तुमसे पहिले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इसीलिए सारे लोकोंमें (ब्राह्मणोंका नहीं बल्कि सिर्फ) क्षत्र (=क्षत्रिय)का ही शासन हुआ।

इसमें कौन सन्देह कर सकता है कि राजनीति—खासकर वंशस्वार्थवाली राजनीति—को चलानेके लिए पुरोहितोंसे ज्यादा पैनी बुद्धि चाहिए। लेकिन समाजमें ब्राह्मणकी सबसे अधिक सम्माननीय अवस्थाको बृहदारण्यक समझता था। इसीलिए विद्याभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य जब उशीनर

---

[1] बृ० २।४।१० [2] छा० ५।३।७

जगत ब्रह्मका एक रूप है। पिथागोरस और दूसरे जगत्‌को ब्रह्मका शरीर माननेवाले दार्शनिकोंकी भाँति यहाँ भी जगत्‌को ब्रह्मका एक रूप कहा गया और फिर[1]—

ब्रह्मके दो ही रूप हैं—मूर्त (=साकार) और अमूर्त (=निराकार) मर्त्य (=नाशमान) और अमृत (=अविनाशी)।[2]

पुराने धर्म विश्वासी ईश्वरको संसारमें पाये जानेवाले भले पुरुषोंके गुणों—कृपा, क्षमा आदिसे—युक्त, भावात्मक गुणोंवाला मानते थे किन्तु अब श्रद्धासे भाग बचकर विकसित बुद्धिके राज्यमें लोग घुस चुके थे, इसलिए उनको समझाने या अपने वादको तर्कसंगत बनाने एवं पक्षमें न आनेकेलिए, ब्रह्मको अभावात्मक गुणोंवाला कहना ज्यादा उपयोगी था। इसीलिए बृहदारण्यकमें हम पाते हैं —

"(वह) न स्थूल न सूक्ष्म (=अणु), न ह्रस्व, न दीर्घ, न लाल, न छाया न तम न संग रस-गंधवाला, न आँख-कान-वाणी-मन प्राण-मुखवाला, न आन्तरिक न बाहरी, न वह किसीको खाता है, न उसे कोई खाता है।"

ब्रह्मके गुणोंका अन्त नहीं—'नेति नेति'[3] इस तरहका विशेषण भी ब्रह्मकेलिए पहिले-पहिल इसी वक्त दिया गया है।

(ग) **सृष्टि**—ऋग्वेदके नासदीय सूक्तकी कल्पनाको जारी रखते हुए बृहदारण्यक कहता है —

यह कुछ भी पहिले न था, मृत्यु (=जीवन शून्यता), भूखसे यह ढँका हुआ था। भूख (=अशनाया) मृत्यु है। सो उसने मनमें किया—'मैं आत्मावाला (=सशरीर) होऊँ।' उसने अर्चा (=चाह) किया। उसके अर्चनपर जल पैदा हुआ। जो जलका सार था, वह बढ़ा हुआ। वह पृथिवी हुई। उस (=पृथिवी)में श्रान्त हो (=थक) गया। श्रान्त तप्त उस (ब्रह्म)का जो तेज (-रूपी) रस बना (वही) अग्नि (हुआ)।[4]

---

[1] बृह० २।३।१ [2] बृह० ३।८।८ [3] बृह० २।३।६
[4] बृह० १।२।१ २

यूनानी दार्शनिक थल (६४० ५५० इ० पू०) की भाति यहा भी भौतिक तत्त्वोमें सबसे प्रथम जलको माना गया ह, पृथिवीका नबर दूसरा और आगका तीसरा ह ।

दूसरी जगह सृष्टिका वर्णन इन शब्दोमें किया गया ह[1]—

"आत्माही यह पहिल पुरुष जसा था । उसने नजर दौडाकर अपनेसे भिन्न (किसी)को नही देखा । (उसने) म हूँ (सोह) यह पहिले कहा। इसीलिए अह' नामवाला हुआ । इसीलिए आज भी बुलानेपर (=म) अह पहले कहकर पीछे दूसरा नाम बोला जाता ह । वह डरा । इसीलिए (आज भी) अकेला (आदमी) डरता ह । 'उसने दूसरकी चाह की।'

उसने (अपने) इसी ही आत्मा (=शरीर)का दो भाग किया, उससे पति और पत्नी हुए ।

और भी[2]—

'ब्रह्मही यह पहिले था, उसने अपनको जाना—म ब्रह्म हूँ उससे वह सब हुआ । तब देवताओमसे जो-जो जागा, वह ही वह हुआ । वस ही ऋषियो और मनुष्योमेंसे भी जो एसा जानता ह—म ब्रह्म हूँ (=अह ब्रह्मास्मि), वह यह सब होता ह । और जो दूसरे देवताकी उपासना करता है—'वह दूसरा, म दूसरा हूँ वह नहीं जानता वह देवताओके पशु जसा ह ।'

आत्मा (=ब्रह्म)से कस जगत होता ह, इसकी उपमा देते हुए कहा है[3]—

"जसे आगसे छोटी चिंगारियाँ (=विस्फुलिंग) निकलती ह, इसी तरह इस आत्मा (=विश्वात्मा ब्रह्म)से सारे प्राण (=जीव), सारे लोक सारे देव सारे भूत निकलते ह ।'

बृहदारण्यकके और दार्शनिक विचारकके बारेमें हम आगे याज्ञवल्क्य, आदिके प्रकरणमें कहेंगे ।

---

[1]बृह० १।४।१ ४ [2]बृह० १।४।१० [3]वहीं २।१।२०

२ द्वितीय कालकी उपनिषदें (६००-५०० ई० पू०)

ईश उपनिषद् संहिताका एक भाग है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक, ब्राह्मणके भाग हैं यही तीन सबसे पुरानी उपनिषद हैं, यह हम बतला आए हैं। आगेकी आरण्यकोंवाली ऐतरेय और तैत्तिरीय उपनिषदोंने एक कदम और आगे बढ़कर मध्यकालीन उपनिषदोंसे कुछ और स्पष्ट भाषामें ज्ञानका समर्थन और कर्मकाण्डका अवहेलना शुरू की।

(१) ऐतरेय-उपनिषद्

ऐतरेय-उपनिषद् ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकका एक भाग है। ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यक दोनोंके रचयिता महिदास ऐतरेय थे। इस उपनिषदके तीन भाग हैं। पहिले भागमें सृष्टिका ब्रह्मन कर्म बताया, इसे बतलाया गया है। दूसरे भागमें तीन जन्मोंका वर्णन है जो शायद पुनर्जन्मके प्रतिपादक अति प्राचीनतम वाक्योंमें है। अन्तिम भागमें प्रज्ञानवादका प्रतिपादन है।

(क) सृष्टि—विश्वकी सृष्टि कैसे हुई। इसके बारेमें महिदास ऐतरेयका कहना है[1]—

यह आत्मा अकेला ही पहिले प्राणित (=जीवित) था, और दूसरा कुछ भी नहीं था। उसने ईक्षण किया (=मनमें विचारा)—'लोकोंको सिरजूं। उसने इन लोकों—जल किरणों को सिरजा। उसने ईक्षण किया कि ये लोकपालोंको सिरजे। उसने पानीसे ही पुरुषको उठाकर कम्पित किया उसे तपाया। तप्त करनेपर उसका मुख उसी तरह फूट निकला जैसे कि अंडा। (फिर) मुखसे वाणी वाणीसे आग नाकसे नथने फूट निकले, नथुनोंसे प्राण, प्राणसे वायु। आँखें फूट निकलीं। आँखोंसे चक्षु (इन्द्रिय) चक्षुसे आदित्य (=सूर्य)। दोनों कान फूट निकले। कानोंसे श्रोत्र (=इन्द्रिय)। श्रोत्रसे दिशाएं। त्वक्

---

[1] ऐतरेय १।१ ३

(=चमड़ा) फूट निकला। चमड़ेसे रोम रोमोंसे ओषधि-वनस्पतियाँ। हृदय फूट निकला। हृदयसे मन, मनसे चन्द्रमा। नाभि फूट निकली। नाभिसे अपान(=वायु), अपानसे मृत्यु। शिश्न (=जननेन्द्रिय) फूट निकला। शिश्नसे वीर्य वीर्यसे जल। (फिर) उस (पुरुष)के साथ भूख प्यास लगा दी।'

सृष्टिकी यह एक बहुत पुरानी कल्पना है जिसे कि वर्णनकी भाषा ही बतला रही है। उपनिषत्कार एक ही वाक्यमें शरीर तथा उसकी इन्द्रियाँ, एवं विश्वके पदार्थोंकी भी रचना बतलाना चाहता है।—पानीसे मानुष शरीर और उसमें क्रमशः मुख आदिका फूट निकलना। किन्तु अभी ऋषि भौतिक विश्वसे पूर्णतया इन्कार नहीं करना चाहता इसीलिए क्रम विकासका आश्रय लेता है। उसे कुन फ-यकून (=होजा बस होगया) कहनेकी हिम्मत न थी।

(ख) प्रज्ञान (=ब्रह्म)—ज्ञान या चेतनाको ऋषिने यहाँ प्रज्ञान कहा है जैसा कि उसके इस वचनसे मालूम होता है[1]—

सं ज्ञान, आ ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति (=धैर्य), मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु (=प्राण), काम (=कामना), वश ये सभी प्रज्ञानके नाम हैं।

फिर चराचर जगतको प्रज्ञानमय बतलाते हुए कहता है—

'यह (प्रज्ञान ही) ब्रह्म है। यह इन्द्र (यही) ये पाँच महाभूत अण्डज जारुज स्वेदज और उद्भिज, घोड़े, गाय, पुरुष हाथी, जो कुछ चलने और उड़नेवाले प्राणी हैं जो स्थावर हैं, वह सब प्रज्ञानेत्र है प्रज्ञानमें प्रतिष्ठित है। लोक (भी) प्रज्ञानेत्र है प्रज्ञा (सबकी) प्रतिष्ठा (=आधार) है। प्रज्ञान ब्रह्म है।

प्रज्ञान या चेतनाको ऋषि सर्वत्र उसी तरह देख रहा है लेकिन जगत्के पदार्थोंसे इन्कार करके प्रज्ञानको इस प्रकार देखना अभी नहीं हो रहा है,

---

[1] ऐतरेय ३।२

बल्कि जगतके भीतरकी क्रियाओं और हलचलको देखकर वह अपने समकालीन यूनानी दार्शनिकोंकी भाँति विश्वको सजीव समझकर वैसा कह रहा है।

(२) तैत्तिरीय उपनिषद्

तैत्तिरीय उपनिषद् कृष्ण-यजुर्वेदके तैत्तिरीय आरण्यकका एक भाग है। इसके तीन अध्याय हैं, जिनमें ब्रह्म सृष्टि आनन्दकी-सीमा, आचार्यका शिष्यकेलिए उपदेश आदिका वर्णन है।

(क) ब्रह्म—ब्रह्मके बारेमें संदेह करनेवालेको तैत्तिरीय कहता है—

'ब्रह्म अ-सत् है' ऐसा जो समझता है, वह अपने भी असत् ही होता है। ब्रह्म सत् है जो समझता है उसे सन्त कहते हैं।'[1]

ब्रह्मकी उपासनाके बारेमें कहता है—

वह (ब्रह्म) प्रतिष्ठा है ऐसे (जो) उपासना करे वह प्रतिष्ठावाला होता है। 'वह महत् है' ऐसे जो उपासना करे तो महान् होता है। 'वह मन है' ऐसे उपासना करे तो वह मानवान् होता है। वह परिमरह यदि ऐसे उपासना करे तो द्वेष रखनेवाले शत्रु उससे दूर ही मर जाते हैं।"

इस प्रकार तैत्तिरीयकी ब्रह्म-उपासना अभी राग-द्वेषसे बहुत ऊँचे नहीं उठी है, और वह शत्रु-संहारका भी साधन हो सकती है। ब्रह्मकी उपासना और उसके फलके बारेमें और भी कहा है—

वह जो यह हृदयके भीतर आकाश है। उसके अन्दर यह मनोमय अमृत हिरण्मय(=सुनहला) पुरुष है। तालुके भी भीतरकी ओर जो यह स्तन सा(=क्षुद्र घंटिका) लटक रहा है। वह इन्द्र(=आत्मा)की योनि (=मूल स्थान) है। (जो ऐसी उपासना करता है) वह स्वराज्य पाता है मनके पतिको पाता है। उससे (यह) वाक्-पति, चक्षु-पति, श्रोत्र-पति विज्ञान-पति होता है। ब्रह्म आकाश-शरीरवाला है।"[2]

ब्रह्मका अन्तस्तम तत्त्व आनन्दमय आत्मा बतलाते हुए कहा है[3]—

---

[1]तै० २।६ [2]तै० १।६।१ २ [3]वहीं २।२ ५

"इस अन्न रसमय आत्मा (शरीर)से भिन्न आन्तरिक आत्मा प्राणमय है, उससे यह (शरीर) पूर्ण है, और वह यह (=प्राणमय शरीर) पुरुष जैसा ही है। उस इस प्राणमयसे भिन्न मनोमय है, उससे यह पूर्ण है। वह यह (=मनोमय शरीर) पुरुष जैसा ही है। उस मनोमयसे भिन्न विज्ञानमय(=जीवात्मा) है। उससे यह पूर्ण है। उस विज्ञानमयसे भिन्न आनन्दमय(=ब्रह्म) आत्मा है। उससे यह पूर्ण है। वह यह(=विज्ञानमय आत्मा) पुरुष जैसा ही है।"

यहाँ आत्मा शब्द शरीरसे ब्रह्मतकका वाचक है। आत्माका मूल अर्थ शरीर अभी भी चला आता था।—अध्यात्मसे 'शरीरके भीतर' यह अर्थ पुराने उपनिषदोंमें पाया जाता है किन्तु धीरे धीरे आत्मा शब्द शरीरका प्रतियोगी, उससे अलग तत्त्वका वाचक, बन जाता है। आनन्दमय शब्द ब्रह्मका वाचक है इसे सिद्ध करनेकेलिए बादरायणने सूत्र लिखा 'आनन्दमयोऽभ्यासात्'[1](=आनन्दमय ब्रह्मवाचक है क्योंकि वह जिस तरह दुहराया गया है उससे वही अर्थ लिया जा सकता है)।

आनन्द ब्रह्मके बारेमें एक कल्पित आख्यायिकाका सहारा ले उपनिषकार कहता है—[2]

'भृगु वारुणि(=वरुण-पुत्र) (अपने) पिता वरुणके पास गया (और बोला)—भगवन्! (मुझे) ब्रह्म सिखलायें। उस (वरुणने) यह कहा। । 'जिससे यह भूत उत्पन्न होते (=जन्मते) हैं, जिससे उत्पन्न हो जीवित रहते हैं जिसके पास जाते (जिसके) भीतर समाते हैं। उसकी जिज्ञासा करो वह ब्रह्म है।" उस(=भृगु)ने तप किया। तप करके अन्न ब्रह्म है यह जाना। 'अन्नसे ही यह भूत जन्मते हैं, जन्म ले अन्नसे जीवित

---

[1] वेदान्त-सूत्र १।१। तत्तिरीय ३।१ ६

[2] "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" (=अब यहाँसे ब्रह्मकी जिज्ञासा आरम्भ करते हैं), "जन्माद्यस्य यतः" (इस विश्वके जन्म आदि जिससे होते हैं), वेदान्तके प्रथम और द्वितीय सूत्र इसी उपनिषद-वाक्यपर अवलम्बित हैं।

रहते हैं अन्नमय जाते भीतर घुसते हैं। इसे जानकर फिर (अपने) पिता वरुणके पास गया— भगवन्! ब्रह्म सिखायें। उसको (वरुणने) कहा— तपसे ब्रह्मकी जिज्ञासा करो तप ब्रह्म है। उसने तप करके विज्ञान ब्रह्म है यह जाना। तप करके आनन्द ब्रह्म है यह जाना।

भिन्न भिन्न स्थानोंमें अवस्थित होते भी ब्रह्म एक है इसके बारेमें कहा है—

वह जो कि यह पुरुषमें और जो वह आदित्यमें है, वह एक है।[1]

ब्रह्म मन वचनका विषय नहीं है—

(जहाँ) बिना पहुँचे जिससे मनके साथ वचन लौट आते हैं, वही ब्रह्म है।[2]

(ग) सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म—ब्रह्मसे विश्वके जन्मादि होते हैं इसका एक उद्धरण दे आए हैं। तैत्तिरीयके एक वचनके अनुसार पहिले विश्व अ-सत् (=सत्ताहीन कुछ नहीं) था जैसे कि—

'असत् ही यह पहिले था। उससे सत् पैदा हुआ। उसने अपनेको स्वयं बनाया। इसीलिए उसे (=विश्वको) सु-कृत (अच्छा बनाया गया) कहते हैं।

ब्रह्मने सृष्टि कैसे बनाई?—

उसने कामना की 'बहुत होऊँ जन्माऊँ। उसने तप किया। उसने तप करके यह जो कुछ है, इस सब (जगत्)को सिरजा। उसको सिरजकर फिर उसमें प्रविष्ट हो गया। उसमें प्रविष्टकर सत् और त्यत् (=वह) हो गया, व्याख्या और अव्याख्यात, निलयन (=छिपनेकी जगह) और अ-निलयन विज्ञान और अ-विज्ञान (अ-चेतन) सत्य और अ-नृत (=अ-सत्य) हो गया।'

(घ) आचार्य उपदेश—आचार्यसे शिष्यकेलिए अन्तिम उपदेश तैत्तिरीयने इन शब्दोंमें लिखाया है—

---

[1] तै० २।८ [2] वहीं २।७ [3] वहीं २।६

वेद पढ़ाकर आचार्य मानेवाली (=शिष्य)को अनुशासन(=उपदेश) देता है—सत्य बोल धर्माचरण कर, स्वाध्यायमें प्रमाद न करना। आचार्यके लिए प्रिय धन (=गुरु दक्षिणाके तौर पर) लाकर प्रजा-तन्तु (=सन्तान परंपरा)को न तोड़ना। देवों पितरोंके कामम प्रमाद न करना। माता को देव मानना पिताको देव मानना आचार्यको देव मानना, अतिथिको देव मानना। जो हमारे निर्दोष कर्म हैं, उन्हींको सेवन करना दूसरोंको नहीं।'

३—तृतीय कालकी उपनिषदें (५००-४०० ई० पू०)

(१) प्रश्न-उपनिषद्

जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट होता है, यह छै ऋषियोंके पिप्पलादके पास पूछे प्रश्नोंके उत्तरोंका संग्रह है।

प्रश्नमें निम्न बात बतलाई गई है[1]—

(क) मिथुन(=जोड़ा)वाद—"भगवन! यह प्रजाएं कहाँसे पैदा हुई?"

'उसको (पिप्पलादने उत्तर दिया—प्रजापति प्रजा (पैदा करने)की इच्छावाला (हुआ) उसने तप किया। उसने तप करके 'यह मेरे लिए बहुतसी प्रजाओंको बनायेंगे (इस ख्यालसे) मिथुन (=जोड़े)को उत्पन्न किया—रयि (=धन, भूत) और प्राण (=जीवन)को। आदित्य प्राण है चन्द्रमा रयि होता है। संवत्सर प्रजापति है उसके दक्षिण और उत्तर दो अयन हैं। जो पितृयान (के छै मास) है, वही रयि है। मास प्रजापति है, उसका कृष्णपक्ष रयि है शुक्ल (=पक्ष) प्राण है। दिन रात प्रजापति है, उसका दिन प्राण है, रात रयि है।'

इस प्रकार प्रश्न उपनिषदका प्रधान ऋषि पिप्पलाद विश्वको दो दो (=मिथुन) तत्त्वोंमें विभक्त कर उसे द्वैतमय मानता है, यद्यपि रयि और

---

[1] प्र० १।३-१३

प्राण दोनों मिलकर प्रजापतिके रूपमें एक हो जाते हैं।

(ख) सृष्टि—एक प्रश्न है[1]—

भगवन्! प्रजाओं (=सृष्टि)का कितने देव धारण करते हैं? कौनसे देव प्रकाशित करते हैं, कौन उनमें सर्वश्रेष्ठ है?' उसको उस (=पिप्पलाद ऋषि)ने बतलाया—(प्रजाको धारण करनेवाला) यह आकाश देव है, वायु अग्नि जल पृथिवी, वाणी मन नेत्र और श्रोत्र (देव) हैं। वह प्रकाश करके कहते हैं 'हम इस बाण (=शरीर) को रोककर धारण करते हैं। उनमें सर्वश्रेष्ठ (देव) प्राणने कहा—'मत मूर्खता करो मैं ही अपनेको पाँच प्रकारसे विभक्तकर इस बाणको रोककर धारण करता हूँ। उन्होंने विश्वास नहीं किया। वह अभिमानसे निकलने लगा। उस (=प्राण)के निकलते ही दूसरे सारे ही प्राण (=इन्द्रिय) निकल आते हैं उसके ठहरनेपर सभी ठहरते हैं। जैसे (शहदकी) सारी मक्खियाँ मधुकरराजा (=रानी मक्खी)के निकलने पर निकलने लगती हैं उसके ठहरनेपर सभी ठहरती हैं। वाणी, मन चक्षु श्रोत्र ने प्राणकी स्तुति की—यही तप रहा अग्नि है यह सूर्य पर्जन्य (=वृष्टि-देवता) मघवा (=इन्द्र) यही वायु है, यही पृथिवी रयि देव है जो कुछ कि सत् असत् और अमृत है। (हे प्राण!) जो तेरे शरीर या वचनमें स्थित है, जो श्रोत्र या नेत्र में (स्थित है) जो मनमें फैला हुआ है, उसे शान्त कर, (और शरीरसे) मत निकल।

इस प्रकार पिप्पलादने प्राण (=जीवन या विज्ञान)को सर्वश्रेष्ठ माना, और रयि (या भौतिक तत्त्व)को द्वितीय या गौण स्थान दिया।

(ग) स्वप्न—स्वप्न अवस्था पिप्पलादके लिए एक बहुत ही रहस्य पूर्ण अवस्था थी। वह समझता था कि वह परम पुरुष या ब्रह्मके मिलनका समय है। इसके बारेमें गार्ग्यके प्रश्नका उत्तर देते हुए पिप्पलादने कहा[2]—

---

[1] प्रश्न २।१–१२ [2] प्रश्न ४।२

"जैसे गार्ग्य ! अस्त होते सूर्यके तेजोमंडलमें सारी किरणें एकत्रित होती हैं, (सूर्यके) उदय होते वक्त वह फिर फैलती हैं, इसी तरह (स्वप्नमें) वह सब (इन्द्रियाँ) उस परमदेव मनमें एक होती हैं। इसी लिए तब यह पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, (उसकेलिए) 'सो रहा है' इतना ही कहते हैं।"

"वह जब तेजसे अभिभूत (=मद्धिम पड़ा) होता है, तब यह देव स्वप्नोंको नहीं देखता, तब यह इस शरीरमें सुखी होता है।"[1]

"मन यजमान है, अभीष्ट फल उदान है। यह (उदान) इस यजमानको रोज रोज (सुप्तावस्थामें) ब्रह्मके पास पहुँचाता है।"[2]

"यहाँ सुप्तावस्थामें यह देव (अपनी) महिमाको अनुभव करता है और देखे-हुएके पीछे देखता है, सुने सुनेके पीछे सुनता है देखे और न देखे, सुने और न सुने अनुभव किये और न अनुभव किये, सत और असत, सबको देखता है, सबको देखता है।

(घ) मुक्तावस्था—मुक्तावस्थाके बारेमें इस उपनिषद्का कहना है[3]—

"जैसे कि नदियाँ समुद्रमें जा अस्त हो जाती हैं उनका नाम और रूप छूट जाता है, समुद्र' बस यही कहा जाता है, इसी तरह पुरुष (ब्रह्म)को प्राप्त हो इस परिद्रष्टाके यह सोलह कला अस्त हो जाती हैं। उनके नाम-रूप छूट जाते हैं, उसे 'पुरुष' बस यही कहा जाता है। वही यह कला-रहित अमृत है।"

असत्य भाषणके बारेमें कहा है—"जो झूठ बोलता है, वह जड़से सूख जाता है।"[4]

(२) केन-उपनिषद्

ईशकी भाँति केन-उपनिषद भी "केन' से शुरू होता है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा। केनके चार खंडोंमें पहिले दो पद्यमें हैं, और अन्तिम दो

---

[1] प्रश्न ४।६ [2] प्रश्न ४।४ [3] प्रश्न ६।५ [4] प्रश्न ६।१

गद्यमें। पद्य-खण्डमें आत्माको शरीरसे अलग तथा इन्द्रियोंका प्रेरक होना सिद्ध किया गया है और बतलाया गया है कि वही चरम सत्य तथा पूजनीय है। उपसंहारमें (रहस्यवाणी भाषामें) कहा है[1] "जो जानते हैं वह वस्तुतः नहीं जानते, जो नहीं जानते वही उसे जानते हैं।" आत्माको सिद्ध करते हुए केनने कहा है—

'जो श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन वचनका वचन और प्राणका प्राण, आँखकी आँख है (ऐसा समझनेवाले) धीर अत्यन्त मुक्त हो इस लोकसे जाकर अमर हो जाते हैं।'

ब्रह्म छोड़ दूसरेकी उपासना नहीं करनी चाहिए—

'जो वाणीसे नहीं बोला जाता जिससे वाणी बोली जाती है, उसीको तू ब्रह्म जान, उसे नहीं जिसे कि (लोग) उपासते हैं।

'जो मनसे मनन नहीं किया जाता जिससे मन जाना गया कहते हैं, उसीको तू ब्रह्म जान,

'जो प्राणसे प्राणन करता है जिससे प्राण प्राणित किया जाता है, उसीको तू ब्रह्म जान०'।

केनके गद्य भागमें जगतके पीछे छिपी अपरिमेय शक्तिको बतलाया गया है।

(३) कठ उपनिषद्

(क) नचिकेता-यम-समागम—कठ-शाखाके अन्तर्गत होनेसे इस उपनिषद्का नाम कठ पड़ा है। यह पद्यमय है। भगवद्गीताने इस उपनिषद्से बहुत लिया है, और 'उपनिषद्रूपी गायसे कृष्णने अर्जुनके लिए गीतामृत दूधका दोहन किया' यह कहावत कठके संबंधसे है। नचिकेता और यमकी प्रसिद्ध कथा इसी उपनिषदमें है। नचिकेताका पिता अपनी सारी सम्पत्तिका दान कर रहा था, जिसमें उसकी अत्यन्त बूढ़ी

---

[1] "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥" केन २।३

गायें भी थी। नचिकेता इन गायोंको दानके अयोग्य समझता था, इसलिए उसने सोचा[1]—

"पानी पीना तृण खाना दूध दूहना जिन (गायों)का खतम हो चुका है उनका देनेवाला (=दाता) आनन्दरहित लोकमें जाता है।'

नचिकेताकी समझमें यह नहीं आया कि सर्वस्व-दानमें यह निरर्थक वस्तुएं भी शामिल हो सकती हैं। यदि सर्वस्व शब्दका अर्थ शब्दशः लिया जाये तो फिर मैं भी उसमें शामिल हूँ। इसपर नचिकेताने पितासे पूछा—"मुझे किसे देते हो?' पुत्रको प्रश्न दुहराते देख गुस्सा हो पिताने कहा—"तुझे मृत्युको देता हूँ।' नचिकेता मृत्युके देवता (=यम)के पास गया। यम कहीं बाहर दौरेपर गया हुआ था। उसके परिवारने अतिथिको खाने पीनेके लिए बहुत आग्रह किया, किन्तु, नचिकेताने यमसे मिले बिना कुछ भी खानेसे इन्कार कर दिया। तीसरे दिन यमने अतिथिको इस प्रकार भूखे प्यासे घरपर बैठा देखकर एक सद्गृहस्थकी भांति खिन्न हुआ, और नचिकेताको तीन वर मांगनेकेलिए कहा। इन वरोंमें तीसरा सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसे नचिकेताने इस प्रकार मांगा था[2]—

'जो यह मरे मनुष्यके बारेमें सन्देह है। कोई कहता है "है" कोई कहता है 'यह (=जीव) नहीं है।' तुम ऐसा उपदेश दो कि मैं इसे जानूं। वरोंमें यह तीसरा वर है।"

यम— इस विषयमें देवोंने पहिले भी सन्देह किया था। यह सूक्ष्म धर्म (=बात) जाननेमें सुकर नहीं है। नचिकेता! दूसरा वर मांगो, मत आग्रह करो, इसे छोड़ दो।'

नचिकेता—"देवोंने इसमें सन्देह किया था, हे मृत्यु! जिसे तुम 'जाननेमें सुकर नहीं' कहते। तुम्हारे जैसा इसका बतलानेवाला दूसरा नहीं मिल सकता, इसके समान कोई दूसरा वर नहीं।'

यम— मर्त्यलोकमें जो जो काम (=भोग) दुर्लभ है, उन सभी

---

[1] कठ १।१।३ [2] कठ १।१।२०-

कामोंको स्वेच्छासे माँगो। रथ वाद्योंके साथ मनुष्योंके लिए अलभ्य यह रमणियाँ हैं। नचिकेता! मेरी दी हुई इन (=रमणियों)के साथ मौज करो—मरणके संबंधमें मुझसे मत प्रश्न पूछो।'

नचिकेता—"कल इनका अभाव (होनेवाला है)। हे अन्तक! मर्त्य (=मरणधर्मा मनुष्य)की इन्द्रियोंका तेज जीर्ण होता है। बल्कि सारा जीवन ही थोड़ा है। ये घोड़े तुम्हारे ही रहें नृत्य-गीत तुम्हारे ही (पास) रहें। जिस महान परलोकके विषयमें (लोग) संदेह करते हैं हे मृत्यु! हमें उसके विषयमें बतलाओ। जो यह अतिगहन वर है, उससे दूसरा नचिकेता नहीं माँगता।'

इसपर यमने नचिकेताको उपदेश देना स्वीकार किया।

(ख) ब्रह्म—ब्रह्मका वर्णन कठ-उपनिषदमें कई जगह आया है। एक जगह उसे पुरुष कहा गया है[1]—

इन्द्रियोंसे परे (=ऊपर) अर्थ (=विषय) है, अर्थोंसे परे मन, मनसे पर बुद्धि, बुद्धिसे परे महान् आत्मा (=महत् तत्त्व) है। महान्से परे परम अव्यक्त (=मूल प्रकृति), अव्यक्तसे पर पुरुष है। पुरुषसे परे कुछ नहीं वही पराकाष्ठा है, वही (परा) गति है।

फिर कहा है[2]—

ऊपर मूल रखनेवाला, नीचे शाखा वाला यह अश्वत्थ (वृक्ष) सनातन है। वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, उसीको अमृत कहा जाता है, उसीमें सारे लोक आश्रित हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। यही वह (ब्रह्म) है।'

और[3]— अणुसे अत्यन्त अणु महान्से अत्यन्त महान् (वह) आत्मा इस जन्तुकी गुहा(=हृदय),में छिपा हुआ है।

और भी—

---

[1] कठ १।३।१०-११ [2] कठ २।६।१ [3] कठ १।२।२०
[4] कठ २।५।१५

"वहाँ सूर्य नहीं प्रकाशता न चाँद तारे, न यह बिजलियाँ प्रकाशती, (फिर) यह आग कहाँसे प्रकाशेगी। उसी (=ब्रह्म) के प्रकाशित होनेपर सब पीछेसे प्रकाशते हैं, उसीकी प्रभासे यह सब प्रकाशता है।

और भी[1]—

'जैसे एक आग भुवनमें प्रविष्ट हो रूप रूपमें प्रतिरूप होती है, उसी तरह सारे भूतोंका एक अन्तरात्मा है, जो रूप रूपमें प्रतिरूप तथा बाहर भी है।"

सर्वव्यापक होते भी ब्रह्म निर्लेप रहता है[2]—

'जैसे सारे लोककी आँख (=सूर्य) आँख-संबंधी बाहरी दोषोंसे लिप्त नहीं होता वैसे ही सारे भूतोंका एक अन्तरात्मा (=ब्रह्म) लोकके बाहरी दुखोंसे लिप्त नहीं होता। ब्रह्मकी रहस्यमयी सत्ताके प्रतिपादनमें रहस्यमयी भाषाका प्रचुर प्रयोग पहिलेपहिल कठ-उपनिषदमें किया गया है। जैसे[3]—

'जो सुननेकेलिए भी बहुतोंको प्राप्य नहीं है। सुनते हुए भी बहुतेरे जिसे नहीं जानते। उसका वक्ता आश्चर्य (-मय) है उसको प्राप्त करनेवाला कुशल (=चतुर) है कुशल द्वारा उपदिष्ट ज्ञाता आश्चर्य (पुरुष) है।'

अथवा—

'बैठा हुआ दूर पहुँचता है, लेटा सर्वत्र जाता है। मेरे बिना उस मद अमद देवको कौन जान सकता है?"

(ग) आत्मा (=जीव)—जीवात्माका वर्णन जिस प्रकार कठ उपनिषद्ने किया है, उससे उसका झुकाव आत्मा और ब्रह्मकी एकता (=अद्वैत)की ओर नहीं जान पड़ता। आत्मा शरीरसे भिन्न है इसे इस श्लोकमें बतलाया गया है जिसे भगवद्गीताने भी अनुवादित किया है[4]—

"(वह) ज्ञानी न जन्मता है न मरता है, न यह कहींसे (आया) न कोई हुआ। यह अजन्मा नित्य, शाश्वत, पुराण है। शरीरके हत होनेपर

---

[1] कठ २।५।९ [2] कठ २।५।११ [3] कठ १।२७
[4] कठ १।२।२१ [5] कठ १।२।१८

वश नहीं हन होता

हन्ता यदि हननको मानता है, हत यदि हत (=मारित) मानता है, तो वे दोनों भाव रहित हैं न यह मारता है न मारा जाता है।"[1]

कठने रथके दृष्टान्तसे आत्माको सिद्ध करना चाहा[2]—

'आत्माको रथी जानो और शरीरको रथ मात्र। इन्द्रियोंको घोड़े कहते हैं (और) मनको पकड़नेकी रास। बुद्धिको सारथी जानो ।"

(घ) मुक्ति और उसके साधन—मुक्ति—दुःखसे छूटना और ब्रह्मको प्राप्त करना—उपनिषदोंका लक्ष्य है। कठ मानवको मुक्तिके लिए प्रेरित करते हुए कहता है[3]—

उठो जागो, वरोंको पाकर जानो। कवि (=ऋषि) लोग उस दुर्गम पथको छुरेकी तीक्ष्ण धार (की तरह) पार होनेमें कठिन बतलाते हैं।

तर्क, पठन या बुद्धिसे उसे नहीं पाया जा सकता—

'यह आत्मा प्रवचन (पठन-पाठन)से मिलनेवाला नहीं है, नहीं बुद्धि या बहुश्रुत होनेसे।'

दूसरेके बिना बतलाए यहाँ गति नहीं है। सूक्ष्माकार होनेसे वह अत्यन्त अणु और तर्कका अविषय है। यह मति (=ज्ञान) तर्कसे नहीं मिलनेवाली है। हे प्रिय! दूसरेके बतलाने ही पर (यह) जाननेमें सुकर है।[4]

(ङ) सदाचार—ब्रह्मकी प्राप्तिकेलिए कठ ज्ञान और ध्यानको ही प्रधान साधन मानता है तो भी सदाचारकी वह अवहेलना नहीं देखना चाहता। जैसे कि[5]—

'दुराचारसे जो विरत नहीं जो शान्त और एकाग्रचित्त नहीं, अथवा जो शान्त मानस नहीं, वह प्रज्ञानसे इसे नहीं पा सकता।"

तो भी मुक्तिकेलिए कठका बहुत जोर ज्ञानपर है—

---

[1] कठ १।२।१९ [2] कठ [3] कठ १।३।१४
[4] कठ १।२।२२ [5] वहीं १।२।८ ९ [6] वहीं १।२।२४

सारे भूतों (=प्राणियों)के अन्दर छिपा हुआ यह आत्मा नहीं प्रकाशता। किन्तु वह तो सूक्ष्मदर्शियों द्वारा सूक्ष्म तीव्र बुद्धिसे देखा जाता है।[1]

(b) ध्यान—ब्रह्म-प्राप्ति या मुक्तिके लिए ज्ञान-दृष्टि आवश्यक है, किन्तु साथ ही ज्ञान-दर्शनकेलिए ध्यान या एकाग्रता भी आवश्यक है—

'स्वयंभू (=विधाता)ने बाहरकी ओर छिद्र (=इन्द्रियाँ) खोदी है। इसलिए मनुष्य बाहरकी ओर देखते हैं, शरीरके भीतर(=अन्तरात्मा) नहीं। कोई-कोई धीर (हैं जो कि) आँखोंको मूदकर अमरपदकी इच्छासे भीतर आत्माको देखते हैं।'[2]

(ब्रह्म) न आँखसे ग्रहण किया जाता है, न वचनसे, न दूसरे देवों, तपस्या या कर्मसे। ज्ञानकी शुद्धतासे (जो) मन विशुद्ध (हो गया है वह), ध्यान करते हुए उस निष्कल (ब्रह्म)का दर्शन करता है।[3]

(४) मुंडक उपनिषद्

मुंडकका अर्थ है मुंडे शिरवाला यानी महत्यागी परिव्राजक, भिक्षु या संन्यासी, जो कि आजकी भाँति उस समय भी मुंड शिर रहा करते थे। बुद्धके समय ऐसे मुंडक बहुत थे, स्वयं बुद्ध और उनके भिक्षु मुंडक थे। मुंडक उपनिषद्में पहिली बार हमें बुद्धकालीन घुमन्त परिव्राजकोंके विचार मालूम होते हैं। यहाँ प्राचीन परंपरामें एक नई परंपरा आरम्भ होती दीख पड़ती है।

(क) कर्मकांड-विरोध—ब्राह्मणोंके याज्ञिक कर्मकांडसे मुंडकका खास चिढ़ मालूम होती है, जो कि निम्न उद्धरणसे मालूम होगा—

'यज्ञ-रूपी ये बेड़े (या घरनइयाँ) कमजोर हैं। जो मूढ़ इसे अच्छा (कह) कर अभिनंदन करते हैं, वे फिर फिर बुढ़ापे और मृत्युको प्राप्त होते हैं। अविद्या (=अज्ञान)के भीतर वर्तमान अपनेको धीर

---

[1]वहीं १।३।१२ [2]वहीं २।४।१ [3]वहीं ३।१।८ [4]मुंड १।२।७ ११

(और) पण्डित समझनेवाले व मूढ़ अंध द्वारा लिवाये जाते अंधोंकी भांति दुःख पाते भटकते हैं। अविद्याके भीतर बहुतरके वर्तमान 'हम कृतार्थ हैं' ऐसा अभिमान करते हैं। (ये) बालक ये कर्मों (=कर्मकाण्डपरायण) रागके कारण नहीं समझते हैं, उसीसे (ये) आतुर लोग (पुण्य) लोकसे क्षीण हुए (नीचे) गिरते हैं। तप और श्रद्धाके साथ भिक्षाटन करते हुए, जो शान्त विद्वान अरण्यमें वास करते हैं। वह निष्पाप हो सूर्यके रास्ते (वहाँ) जाते हैं, जहाँ कि वह अमृत, अक्षय आत्मपुरुष है।"

जिस वेद और वैदिक कर्मकाण्डी विद्याके लिए पुराहितोंको अभिमान था, उसे मुण्डक निम्न स्थान देता है—

"'दो विद्याएं जाननेकी हैं' यह ब्रह्मवेत्ता बतलाते हैं। (वह) है, परा और अपरा (=छोटी)। उनमें अपरा है—'ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद' शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त, छन्द ज्योतिष। परा (विद्या) वह है, जिससे उस अक्षर (=अविनाशी) का जाना जाता है।[1]

(ख) ब्रह्म—ब्रह्मके स्वरूपके बारेमें कहता है—

'यही अमृत ब्रह्म आगे है, ब्रह्म पीछे ब्रह्म दक्षिण और उत्तरमें। ऊपर नीचे यह ब्रह्म ही फैला हुआ है सर्वश्रेष्ठ (ब्रह्म ही) यह सब है।[2]

"यह सब पुरुष ही है। गुहा (=हृदय) में छिपे इसे जो जानता है। वह अविद्याकी ग्रंथिको काटता है।"

'वह बहुत दिव्य अचिन्त्य रूप, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर (ब्रह्म) प्रकाशता है। दूरसे (वह) बहुत दूर है और देखनेवालोंका यहीं गुहा (=हृदय) में छिपा वह पास ही में है।"

(ग) मुक्तिके साधन—कर्मकाण्ड—यज्ञ-दान-वेदाध्ययन आदि—को मुण्डक हीन दृष्टिसे देखता है यह बतला चुके हैं उसकी जगह मुण्डक दूसरे साधनोंको बतलाता है।[3]

---

[1] मुण्डक १।१।४ ५ [2] मुण्डक २।२।११ [3] २।१।१०
[4] मुण्डक ३।१।७ [5] मुण्डक ३।१।५

"यह आत्मा सत्य, तप, ब्रह्मचर्यसे सदा प्राप्य है। शरीरके भीतर (वह) शुभ्र ज्योतिर्मय है, जिसका दोषरहित यति देखते हैं।"

"यह आत्मा बलहीन द्वारा नहीं प्राप्य है और नहीं प्रमाद या लिंगहीन तपसे ही (प्राप्य है)।

शायद लिंगसे यहां मुंडको (=परिव्राजको)के विशेष शरीरचिह्न अभिप्रेत हैं। कठ, प्रश्नकी भांति मुंडक भी उन उपनिषदोंमें है, जो उस समयमें बनी जब कि ब्राह्मणोंके कर्मकांडपर भारी प्रहार हो चुका था।

(a) **गुरु**—मुंडक गुरुकी प्रधानताको भी स्वीकारता है, इससे पहिले दूसरी शिक्षाओंकी तरह ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा देनेवाला भी आचार्य या उपाध्यायके तौरपर एक आचार्य था। अब गुरुको वह स्थान दिया गया, जो कि तत्कालीन अवैदिक बौद्ध, जैन आदि धर्मोंमें अपने शास्ता और तीर्थंकरको दिया जाता था। मुण्डकने कहा—

"कर्मसे चुने गए लोकोंकी परीक्षा करनेके बाद ब्राह्मणको निर्वेद (=वैराग्य) होना चाहिए कि अ-कृत (=ब्रह्मत्व) कृत (कर्मों)से नहीं (प्राप्त होता)। उस (ब्रह्म) जाननेकेलिए समिधा हाथमें ले (शिष्य बननेके वास्ते) श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास हीम जाये।"

(b) **ध्यान**—ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए मनकी तन्मयता आवश्यक है[1]—

उपनिषद्के महास्त्र धनुषको लेकर उपासनासे तेज किये शरको चढाये तन्मय हुए चित्तसे खींचकर हे सोम्य! उसी अ-क्षर (=अ-विनाशी)को लक्ष्य समझ। प्रणव (=ओम्) धनुष है, आत्मा शर ब्रह्म वह लक्ष्य कहा जाता है। (उसे) प्रमाद (=गफलत)-रहित हो वधना चाहिए शरकी भांति तन्मय होना चाहिए।

(c) **भक्ति**—वैदिक कालके ऋषि, और ज्ञान-युगके आरंभिक ऋषि आरुणि, याज्ञवल्क्य आदि भी देवताओंकी स्तुति करते थे, उनसे अभिलषित भोग-वस्तुएं भी मांगते थे, किन्तु यह सब होता था आत्म-सम्मानपूर्वक।

---

[1] मुंडक १।२।१२ [2] मुंडक २।२।३ ४

पर स्थापित था था, क्योंकि शास्त्रज्ञान पढ़कर जानकर भी आप अपने जन्म तथा शिक्षा-दीक्षा-कालीन मान्यताओं को छोड़ नहीं सके थे, इसलिए वेदान्तीय मत भी अपनी समानता या निकटता तक दिखाना चाहते थे। किन्तु अब अवस्था बदल गई थी। आप जिस तरह सूर्यमें निश्चित हो जाते थे उसी तरह उनके विचारोंपर भी वेदान्तका प्रभाव पड़ने जा रहा था। इसलिए अब आत्मसमर्पणका स्थान राजनीतिक शत्रुकी भाँति धार्मिक क्षेत्रमें भी ज्वाला जाने लगा था। मुण्डकोपनिषद्की कारिका समझ और गद्य लिया[1]—

'जिसका ही यह (ब्रह्म) चुनता (=वरण) करता है, उसको ही प्राप्य है उसीके लिए यह अपना तनु खोलता है।

(d) ज्ञान—अन्य उपनिषदोंकी भाँति यहाँ भी (ब्रह्म) ज्ञानगम्य जान लिया गया है—

"उसी आत्माको जानो दूसरी बातें छोड़ो यह (ही) अमृत (=मुक्ति)का सेतु है। उसके विज्ञान (=ज्ञान)से धीर (पुरुष) (उसे) चारों ओर देखता है जो कि आनन्दरूप अमृत, प्रकाशमान है।"

जब देखनेवाला (जीव) चमकीले रंगवाले कर्ता ईश, ब्रह्मयोनि पुरुषको देखता है तब वह (विद्वान्) पुण्य पापको फेंककर निरञ्जन परम समानताको प्राप्त होता है।"

यहाँ याद रखना चाहिए कि ज्ञानको ब्रह्मप्राप्तिका साधन मानते हुए, मुण्डक मुक्त जीवको ब्रह्मसे अभिन्न होनेकी बात नहीं कहकर परम समानता की बात कह रहा है।

(घ) द्वैतवाद—ऊपरके उद्धरणसे मालूम हो गया कि मुण्डकके मतमें मुक्तिका मतलब ब्रह्मकी परम समानता मात्र है, जिससे यह समझना आसान है कि वह अद्वैत नहीं द्वैतका हामी है। इस बातमें सन्देहकी कोई गुञ्जाइश नहीं रह जाती, जब हम उसके निम्न उद्धरणोंको देखते हैं[2]—

---

[1]मुण्डक ३।२।३ [2]मुण्डक २।२।५ ७ [3]मुण्डक ३।१।३ मुण्डक ३।१ २

"दो सहयोगी सखा पक्षी (=जीवात्मा और परमात्मा) एक वृक्षको आलिंगन कर रहे हैं। उनमेंसे एक फल (=कर्मभोग)को चखता है, दूसरा न खाते हुए चारों ओर प्रकाशता है। (उस) एक वृक्ष (=प्रकृति)में निमग्न पुरुष परवश मूढ हो शोक करता है। दूसरे ईशको जब वह (अपना) साथी (तथा) उसकी महिमाको देखता है, तो शोक रहित हो जाता है।

(ङ) मुक्ति—मुण्डकके अनुसार—प्रकृति (=वृक्ष), जीव ईश्वर और मुक्तिका आभास तो कुछ ऊपर मिल चुका, यदि उसे और स्पष्ट करना है तो निम्न उद्धरणोंको लीजिए—

जैसे नदियाँ बहती हुई नाम रूप छोड़ समुद्रमें अस्त हो जाती हैं, वैसे ही विद्वान (=ज्ञानी) नाम-रूपसे मुक्त हो दिव्य परात्पर (=अति परम) पुरुषको प्राप्त होता है।"

"इस (=ब्रह्म)को प्राप्तकर ऋषि ज्ञानतृप्त कृतकृत्य, वीतराग (और) प्रशान्त (हो जाते हैं)। वे धीर आत्म-संयमी सर्वव्यापी (=ब्रह्म)को चारों ओर पाकर सब (=ब्रह्म)में ही प्रवेश करते हैं।"[1]

"वेदान्तके विज्ञानसे अर्थ जिन्हें सुनिश्चित हो गया, संन्यास-योगसे जो यति शुद्ध मन वाले हैं, वे सब सबसे अन्तकालमें ब्रह्म-लोकोंमें परम-अमृत (बन) सब ओरसे मुक्त होते हैं।"[2]

उपनिषद या ज्ञानकाण्डकेलिए यहाँ वेदान्त शब्द आ गया, जो इस तरहका पहिला प्रयोग है।

(च) सृष्टि—ब्रह्मने किस तरह विश्वकी सृष्टि की, इसके बारेमें मुण्डकका कहना है—

(वह है) दिव्य अ-मूर्त (=निराकार) पुरुष, बाहर भीतर (बसने वाला) अ-जन्मा। प्राण रहित मन रहित शुद्ध अ-क्षर (प्रकृति)के परेसे परे है। उससे प्राण, मन और सारी इन्द्रियाँ पैदा होती हैं। आकाश, वायु ज्योति

---

[1] मुण्डक ३।२।८ [2] वहीं ३।२।५ [3] वहीं ३।२।६

(=अग्नि) जल विश्वको धारण करनेवाली पृथिवी। उससे बहुत प्रकारके देव पैदा हुए। साध्य (=निम्नकोटिके देव) मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण अपान धान जौ तप और श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य, विधि (=कर्मका विधान)। इससे (ही) समुद्र और गिरि। सब रूपके सिन्धु (=नदियाँ) इसीसे बहते हैं। इसीसे सारी औषधियाँ, और रस पैदा होते हैं।[1]

और—

जैसे मकड़ी सृजती है और समेट लेती है, जैसे पृथिवीमें औषधियाँ (=वनस्पति) पैदा होती हैं जैसे विद्यमान पुरुषसे केश रोम (पैदा होते हैं) उसी तरह अक्षर (=अविनाशी)से विश्व पैदा होता है।[2]

और—

"इसलिए यह सत्य है कि जैसे सुदीप्त अग्निसे समान रूपवाली हजारों चिनगारियाँ पैदा होती हैं, उसी तरह अक्षर (=अविनाशी)से हे साम्य! नाना प्रकारके भाव (=हस्तियाँ) पैदा होते हैं।"[3]

इस प्रकार मुण्डकके अनुसार ब्रह्म (=अक्षर) जगतका निमित्त और उपादान कारण दोनों है, वह ब्रह्म और जगत्में शरीर शरीरी जैसा संबंध मानता है तभी तो जहाँ सत्ता बतलाते वक्त वह जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनोंके अस्तित्वको स्वीकार करता है वहाँ सृष्टिके उत्पादनमें प्रकृतिको अलग नहीं बतलाता। मकड़ी आदिका दृष्टान्त इसी बातको सिद्ध करता है।

बुद्धके समय परिव्राजकके नामसे प्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदाय इसी मुण्डकका था। पाली सूत्रके अनुसार इनका मत था कि मरनेके बाद आत्मा अरोग एकान्त सुखी होता है।[4]

पोट्ठपाद, वच्छ-गोत्त जैसे अनेक परिव्राजक बुद्धके प्रति श्रद्धा रखते थे और उनके सर्वश्रेष्ठ दो शिष्य सारिपुत्र और मोद्गल्यायन पहिले परिव्राजक

---

[1] मुण्डक २।१।२ ९ [2] वहीं १।१।७ [3] वहीं २।१।१
[4] पोट्ठपाद-सुत्त (दीघनिकाय, १।९)

सम्प्रदायके थ। मुडकोंमें ब्राह्मणोंकी चिढ थी, यह अम्बष्टके बुद्धके सामने "मुडक, श्रमण, वाले वधु (ब्रह्म)के परको सन्तान" कहकर बुरा-भला कहने से भी पता लगता है।[1] सुन्दरिका भारद्वाजका बुद्धको 'मुडक' कहकर तिरस्कार करना भी उसी भावको पुष्ट करता है।[2] मज्झिम-निकायमें परिव्राजकोंके सिद्धान्तके बारमें कितनी ही और बातें मिलती हैं, जो इस उपनिषदके अनुकूल पडती हैं। परिव्राजक कर्मकाण्ड विरोधी भी थे।

(५) माण्डूक्य-उपनिषद्

इसके प्रतिपाद्य विषयमें ओम्‌को सामान्य दार्शनिक तलपर उठाने की कोशिश की गई है, और दूसरी बात है, चेतनाकी चार अवस्थाओं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय——का विवेचन। इसका एक और महत्व यह है कि 'प्रच्छन्न बौद्ध' शंकरके परम गुरु तथा बौद्ध गौडपादने माण्डूक्यपर कारिका लिखकर पहिले पहिल बौद्ध विज्ञानवादसे कितनी ही बातोंको ले—और कुछको स्पष्ट स्वीकार करते भी—आगे आनेवाले शंकरके अद्वैत वेदान्तका बीजारोपण किया।

(क) ओम्—"भूत, वर्तमान, भविष्यत सब ओंकार ही है। जो कुछ त्रिकालसे परे है, वह भी ओंकार ही है।"[3]

(ख) ब्रह्म—ओंकारको ब्रह्मसे मिलाते आगे कहा है—[4]

'सब कुछ यह ब्रह्म है। यह आत्मा (=जीव) ब्रह्म है। वह यह आत्मा चार पादवाला है। (१) जागरित अवस्थावाला, बाहरका ज्ञान रखने वाला, सात अंगों (=इन्द्रियों) उन्नीस मुखोंवाला, वैश्वानर (नामका) प्रथम पाद है, (जिसका) भोजन स्थूल है। (२) स्वप्न अवस्था वाला

---

[1] वहीं २।१ (देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ २११)।

[2] संयुत्तनिकाय ७।१।९ (बुद्धचर्या पृष्ठ ३७९)

[3] माण्डूक्य १ [4] माण्डूक्य २ १२

[illegible] (=ज्ञानी ब्रह्म) और [illegible] (=जीव) दोनों अजन्मा हैं, जिनमें [illegible] (दूसरा) अज्ञान (=अज्ञानी) है। एक अजा (=जन्मरहित प्रकृति है जो कि) नाना (=नाना) के नानारूप पदार्थों युक्त है। [illegible] (=ब्रह्म) अनन्त, सर्वव्यापक, कर्ता है। तीनों का संकर ही ब्रह्म है। क्षर (=नाशमान) प्रधान (=प्रकृति) है, अमृत अक्षर (=अविनाशी) [illegible]। क्षर और (जीव) आत्मा (दोनों) पर एक देव (=ईश्वर) शासन करता है। [illegible] (जीव) आत्मामें स्थित वह (=ब्रह्म) जानने योग्य है। [illegible] भी जानने योग्य [illegible] है। भोक्ता (=जीव) भोग्य (=प्रकृति) प्रेरिता (=ब्रह्म) को जानना यह सारा त्रिविध ब्रह्म कहा गया।[1]

[illegible]-[illegible]-वाली एक [illegible] बहुत-सी प्रजाओं को सृजन करती एक अजा (=प्रकृति) में एक अज (=जीव) भोग करते हुए आसक्त है, (किन्तु) इस भुक्त भोगा वाली (प्रकृति) को दूसरा (=ब्रह्म) छोड़ता है। दो सहचारी सखा पक्षी (=जीव ईश्वर) एक वृक्षको आलिङ्गन कर रहे हैं। उनमें से एक फलको चखता है, दूसरा न खाते हुए चारों ओर प्रकाशता है। मायी (=मायावाला ईश्वर) इस विश्वको सृजता है, उसमें दूसरा मायामें बँधा हुआ है। प्रकृतिको माया जानो, और महेश्वरको मायी।[2]

'नित्यों (बहुतसे जीवों) के बीच (एक) नित्य, चेतनोंके बीच एक चेतन जो (कि) बहुतोंकी कामनाओंको (पूरा) करता है। प्रधान और क्षेत्रज्ञ (जीव) का स्वामी गुणोंका ईश संसारसे मोक्ष, स्थिति बन्धनका (जो) हेतु है।[3]

श्वेताश्वतरका भगवद्गीतासे तुलना करनेपर साफ जाहिर होता है, कि गीताके कर्त्ताके सामने यह उपनिषद् मौजूद ही नहीं था, बल्कि इस प्रथम प्रयाससे उसने लाभ उठाया रचनाके ढंग को लिया

---

[1]श्वे० १।९ १२ [2]श्वे० ४।५ १० [3]श्वे० ६।१।३ १६
मिलाओ भगवद्गीता, अध्याय १२, १३ १५

तथा बनाम न रख वासुदेव कृष्णके नाम उस थापन द्वारा बड़ी चतुराई दिखलाई। जान पड़ता है उसका अभिप्राय था शैवोंके मुकाबिलमें वैष्णवों का भी एक जबरदस्त ग्रंथ—गीतोपनिषत्—तयार करना। यद्यपि ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दीके आस-पास समाप्त होनेवाले श्वेताश्वतरमें चार-पांच सदियां पिछड़कर आनेमें उसने देरी जरूर की किंतु गीताकी जन प्रियता बतलाती है कि गीताकार अपने उद्देश्यमें सफल जरूर हुआ और उत्तरी भारतमें पुराने वैष्णवोंको प्रधानता दिलाने में सफल हुआ।

(ख) **शैववाद**—श्वेताश्वतरके तत्ववादमें ईश्वर या ब्रह्मको शिव, रुद्र या महेश्वर—हिंदुओंके तीन प्रधान देवताओंमेंसे एक—कह लिया गया है।

एक ही रुद्र है जो कि इन लोकोंपर अपनी ईशानी (=प्रभुताओं) से शासन करता है।"[1]

'मायाको प्रकृति जानो, मायीको महेश्वर।'[2]

सारे भूतों (प्राणियों) में छिपे शिवको जानकर (जीव) सारे फंदोंसे मुक्त होता है।'[3]

(ग) **ब्रह्म**—ब्रह्मसे इस शैव-उपनिषत्का अर्थ उसके इष्टदेवता शिव से है। ब्रह्मके रूपके वर्णनमें यहाँ भी पुराने उपनिषदोंका आश्रय लिया गया है, यद्यपि वह कितनी ही जगह ज्यादा स्पष्ट है। उदाहरणार्थ—

"जिस (=ब्रह्म)से न पर न उरे कुछ भी है, न जिससे सूक्ष्मतम या महत्तम कोई है। द्युलोकमें वृक्षकी भांति निश्चल (वह) एक खड़ा है उस पुरुषसे यह सब (जगत्) पूर्ण है।"[4]

'जिससे यह सारा (विश्व) नित्य ही ढँका है जो कालका काल, गुणी और सर्ववेत्ता है उसीसे संचालित कर्म (=क्रिया) यहाँ पृथिवी, जल, तेज, वायुका उद्घाटन (=सृजन) करता है। वह ईश्वरोंका परम-महेश्वर देवताओंका परम-देवता पतियों (=पशुपतियों)का परम

---

[1] श्वे० ३।२ [2] श्वे० ६।१० [3] श्वे० ४।१६
[4] श्वे० ३।९ [5] श्वे० ६।२–१८

(पति) है। पूज्य भुवनेश्वर (उस) देवको हम जानें। उसका कार्य और कारण (कोई) नहीं है न कोई उसके समान या अधिक है। जो ब्रह्मका पत्ति बनाता है और जो उन वदोंको देता है।"

(घ) जीवात्मा—जीवात्माका वर्णन अनेकवादमें कर चुके हैं। लेकिन श्वेताश्वतर जीवात्माको ईश्वरसे अलग करनेपर तुला हुआ है। तो भी पुरानी उपनिषदोंके ब्रह्म अद्वैतवादको वह इन्कार करनेकी हिम्मत नहीं कर सकता था इसलिए 'त्रय ब्रह्ममेतत्'[1] (=तीन यह ब्रह्म है), त्रिविध ब्रह्ममेतत्[2] में जीव ईश्वर प्रकृति—तीनोंको—ब्रह्म कहकर संगति करनी चाही है। जीवमें कोई लिंग भेद नहीं—

'न वह स्त्री है न पुरुष, और न वह नपुंसक ही है। जिस जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी-उसीके साथ जोड़ा जाता है।'[3]

जीव अत्यन्त सूक्ष्म है और उसका परिमाण है—

बालकी नोकके सौवें हिस्सेका और सौ (हिस्सा) किया जावे, तो इस भागको जीव(के समान) जानना चाहिए।'[4]

(ङ) सृष्टि—सृष्टिकेलिए श्वेताश्वतरने भी मकड़ीका दृष्टान्त लिया, किन्तु और उपनिषदोंकी भांति ब्रह्मके उपादान कारण होनेका सन्देह न हो इसे साफ करते हुए—

जिसे एक देव मकड़ीकी भांति प्रधान (=प्रकृति)से उत्पन्न तन्तुओं द्वारा स्वभावसे (विश्वको) आच्छादित करता है।'[5]

(च) मुक्ति—मुक्तिके लिए श्वेताश्वतरका जोर ज्ञानपर है, यद्यपि "मैं मुमुक्षु उस स्वयंकी शरण लेता हूँ।"—वाक्यसे भगवद्गीताके लिए शरणागति धर्म (=प्रपत्ति)का रास्ता भी खोल रखा है। शरणागति जो भागवत (=वैष्णव)के पंचरात्र आगमकी भाँति शायद तत्कालीन शैव-आगमोंमें भी रही है। वैसे भी अनेकवादी ईश्वरवाद शरणागति-धर्मकी

---

[1] श्वेता० १।९ [2] श्वे० १।१२ [3] श्वे० ५।१०
श्वे० ५।९। [5] श्वे० ६।१० [6] श्वे० ६।१८

हो और न जाता है। तो भी अभी मत सोचकर सारे धर्मोंको छोड़ अकेले मेरी शरणमें आ, मैं तुझे सारे पापोंसे मुक्त कराऊँगा।[1] बहुत दूर था इसीलिए—

त्वको जानकर सारे फंदोंसे छूट जाता है।[2]

जब मनुष्य चमड़ेकी भाँति आकाशको लपेट सकेंगे तभी देवको बिना जाने दुःखका अन्त होगा।[3]

( ) योग—योगका वेदमें नाम नहीं है। पुरानी उपनिषदोंमें भी योगमें जो अर्थ आज हम लेते हैं उसका पता नहीं है। श्वेताश्वतरमें हमें स्पष्ट योगका वर्णन पाते हैं। उसके पहिले इसका वर्णन बुद्धके उपदेशोंमें भी मिलता है। जिस सांख्य योगका समन्वय पीछे भगवद्गीतामें किया गया, उसकी नींव पहिले-पहिल श्वेताश्वतर ही ने डाली थी। पुरुष, प्रकृति ही नहीं कपिल ऋषि तकको उसने जिला दिया हाँ निरीश्वर सांख्यको सेश्वर बना कर। इस बातका इस्तेमाल भगवद्गीताने भी बहुत सफाईके साथ किया और सेश्वर सांख्य तथा योग को एक कहकर घोषित किया—[4] 'मूर्ख ही सांख्य और योग को अलग अलग बतलाते हैं।

श्वेताश्वतरका योग विधिको गीताने भी लिया है।—

तीन जगहें शरीरको समान उन्नत स्थापित कर हृदयमें मनमें इन्द्रियोंको रोककर ब्रह्मरूपी नाव से विद्वान (=ज्ञानी) सभी भयावह धाराको पार करे। चेष्टामें तत्पर हो प्राणोंको रोके उनके क्षीण होनेपर नासिकासे श्वास ले। दुष्ट घोड़ेवाले यानकी भाँति इस मनको विद्वान बिना गाफिल हुए धारण करे। समतल पवित्र ककड़ी आग-बालुका रहित, शब्द जलाशय आदि द्वारा मनको अनुकूल—किन्तु आँखको न खोचनेवाले गुहा-सुन-सान स्थानमें (योगका) प्रयोग करे। योगमें ब्रह्मको अभिव्यक्ति करानेवाले ये रूप पहिले आते हैं—कुहरा, धूम सूर्य अग्नि वायु जुगनू

---

[1] भगवद्गीता [2] श्वे० १।८, २।१५, ४।१६ [3] श्वे० ६।२०
[4] भगवद्गीता—"सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।"

[illegible] विचार और चिन्तन। [illegible] योग-गुणोंके [illegible] हो जानेपर उस योगाग्निमय शरीरवाले योगीको न रोग, न बुढ़ापा न मृत्यु होती। (शरीरमें) हलकापन, आरोग्य, निर्लोभता, रंगमें स्वच्छता, स्वरमें मधुरता, अच्छी गंध, मल-मूत्र कम होना। पहिली अवस्थामें (दीखते)।

[illegible] भाँति (एक) युक्त हो जब आत्मा-तत्त्व ब्रह्म-तत्त्वको देखता है (तब) सारे तत्त्वोंसे विशुद्ध अजन्मा ध्रुव (=नित्य) स्वयं जान सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है।[1]

(ब) गुरुवाद—मुक्तिकी प्राप्तिके लिए ज्ञान और योग जैसे आवश्यक हैं वैसे ही गुरु भी अनिवार्य है—गुरुका उपनिषदों और बाद आचार्योंकी भाँति अध्यापनविधान करनेवाले गुरु नहीं, बल्कि ऐसे गुरु जो कि दिखाते दूसरे नवरत्न हैं—

'जिसकी देवमें परम भक्ति है, वैसी ही देवमें जैसी ही गुरुमें (भी भक्ति है), उसी महात्माके सामने परमार्थ (=परमार्थतत्त्व) प्रकाशित होता है।'[2]

ग उपनिषदोंके प्रमुख दार्शनिक

जिन उपनिषदोंका हम जिक्र कर आए हैं उनमें छान्दोग्य बृहदारण्यक कौषीतकि, मैत्रीमें ही ऐतिहासिक नाम मिलते हैं। उनमें भी जिन ऋषियोंके नाम आते हैं उनमें और पवाहण जैवलि उद्दालक आरुणि याज्ञवल्क्य, सत्यकाम जाबाल ही वह व्यक्ति हैं जिनके बारेमें कहा जा सकता है कि उपनिषदोंके दर्शनकी मौलिक कल्पनामें इनका विशेष हाथ था। आरण्यकालमें भी कुरु-पञ्चाल (=मेरठ आगरा रुहेलखंडकी कमिश्नरियाँ) वैदिक आर्योंका प्रधान कर्मक्षेत्र था। यहाँ भरद्वाजके यजमान राजा दिवोदासका समृद्धशाली शासन था। यहीं उसके पुत्र सुदासका पहिले वसिष्ठ और पीछे विश्वामित्रको पुरोहित बना अनेक याग कराये, और पश्चिमके दस राज्योंको पराजित कर पंजाबमें भी सतलज-व्यास तक अपना राज्य

---

[1] श्वे० २।८ १५ [2] श्वे० ६।२३

फैलाया। उपनिषदकालमें वेदकी इसी भूमिका हम फिर नये विचारक पैदा करते देखते हैं। उद्दालक आरुणि कुरु पंचालका ब्राह्मण था यह शतपथ ब्राह्मण[1] मालूम होता है। जनकका जिस परिषद्में विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके याज्ञवल्क्यने विजय प्राप्त की थी उसमें मुख्यतः कुरु पंचालके विद्वान् मौजूद थे। याज्ञवल्क्यके समयसे दो शताब्दी बाद बुद्धके समयमें भी इसी भूमिमें उन्होंने 'महासतिपट्ठानसुत्त' और 'महानिदानसुत्त' जैसे दार्शनिक उपदेश दिये थे जिसका कारण बतलाते हुए अट्ठकथाकार कहते हैं— कुरु देश-वासी देशके अनुकूल ऋतुआदि-युक्त होनेसे हमेशा स्वस्थ शरीर स्वस्थ चित्त होते हैं। चित्त और शरीरके स्वस्थ होनेसे प्रज्ञा बलयुक्त हो गंभीर कथाको ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं। भगवान (=बुद्ध)ने कुरु-देश वासी परिषद्को ही गंभीर देशनाका उपदेश किया। (इस देशमें) राम और यमकर नौकर-चाकर भी स्मृति प्रस्थान (=ध्यानयोग) संबंधी कथाहीको कहते हैं। पनघट और सूत कातनेके स्थान आदिमें भी व्यर्थकी बात नहीं होती। यदि कोई स्त्री— अम्म! तू किस स्मृति प्रस्थानकी भावना करती है? पूछनेपर कोई नहीं बोलती है तो उसको धिक्कारती है — धिक्कार तेरी जिन्दगीको, तू जीती भी मुर्देके समान है।

त्रिपिटककी यह अट्ठकथाएं ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें भारतसे सिंहल गई परंपराके आधारपर इसवी चौथी सदीमें लेखबद्ध हुई थीं।

उपनिषदके दार्शनिक विकासको दिखलानेके लिए यहाँ हम उपनिषदके कुछ प्रधान दार्शनिकोंके विचारोंको देते हैं।

---

[1] शत० १।४।१२

[2] बृह० ३।१।१ "तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुः।"

[3] दीघनिकाय २।१, २।२२

[4] दीघनिकाय अट्ठकथा—"महासतिपट्ठानसुत्त" (देखो मेरा "बुद्धचर्या", पृष्ठ ११८)

अन्तिम दर्शन सामराजाको हवन करते हैं, उस आहुतिसे क्या होता है।

इसी तरह आगे भी बतलाया। इस सारे उपदेशको कोष्ठक-विषय रूप पर इस प्रकार होगा—

अग्नि	समिधा	धूम	किरण	अंगार	शिखा	आहुति	फल
१ (न होत) लोक	आदित्य	रश्मि	दिन	चन्द्रमा	नक्षत्र	श्रद्धा	सोम
२ पर्जन्य	वायु	अभ्र	विद्युत्	अशनि	ह्रादुनि	सोम	वर्षा
३ पृथिवी	संवत्सर	आकाश	रात्रि	दिशा	अन्तर्दिशा	वर्षा	अन्न
४ पुरुष	वाणी	प्राण	जिह्वा	चक्षु	श्रोत्र	अन्न	वीर्य
५ स्त्री	उपस्थ	प्रसाद्वार	योनि	अन्तःप्रदेश	मैथुनसुख	वीर्य	गर्भ

'इस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें जल पुरुषनामवाला (=पुरुष कहा जाने वाला) होता है। भिल्लामें लिपटा वह गर्भ दस या नौ मासके बाद (उदरमें) लेकर जन्मता है। जन्म ले आयु भर जीता है। मरनेपर अग्नियाँ ही उसे यहाँसे वहाँ ले जाती हैं जहाँसे (आकर) कि वह (यहाँ) पैदा हुआ था।

आगे ब्रह्मविद्याके जाननेवाले साधकके लिए, देवयानका रास्ता प्राप्त होता है यह बतलाया गया है।

छान्दोग्यके इसी सवालको बृहदारण्यकने भी दुहराया है। हाँ जबकि आरुणिका जिन मानुष वित्तोंके देनेका प्रलोभन दिया, उनकी यहाँ गणना भी की गई है—हाथी, सोना, गाय घोड़े, प्रवर दासियाँ परिधान (=वस्त्र)। यह विद्या आरुणिसे पहिले किसी ब्राह्मणमें नहीं रही पर यहाँ भी जोड़ दिया गया। पञ्चाहुति फिर देवयान पितृयाण और पितृयाणसे लौटकर फिर इस लोकमें छान्दोग्यके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि योनियों और बृहदारण्यकके अनुसार कीट पतंग आदिमें भी जन्म लेना। यह खूब स्मरण रखनेकी बात है कि पुनर्जन्मका सिद्धान्त ब्राह्मणोंका नहीं

क्षत्रिया (=शासक) का गढ़ा हुआ है और तब इसके भीतर छिपा रहस्य आसानीसे समझमें आ सकता है।

२—उद्दालक आरुणि गौतम (६५० ई० पू०)

आरुणि शतपथके अनुसार कुरु-पंचालके ब्राह्मण थे।[1] पंचालराज प्रवाहण जैवलिके पास देर तक शिष्य रहे। इन्होंने उनसे पंचाग्नि विद्या एवं यान पितृयाण (=पुनर्जन्म) तत्त्व की शिक्षा ग्रहण की थी, इसे हम अभी बतला चुके हैं। आगेके उद्धरणसे यह भी मालूम होगा, कि इन्होंने राजा अश्वपति कैकय तथा (राजा?) चित्र गार्ग्यायणिसे भी दर्शनकी शिक्षा ग्रहण की थी। बृहदारण्यकके अनुसार याज्ञवल्क्य आरुणिके शिष्य थे किन्तु साथ ही जनककी परिषदमें उद्दालक आरुणिका याज्ञवल्क्यके साथ शास्त्रार्थ होना[2] प्रमाण पाठ है यह हम बतला चुके हैं। इस तरह आरुणि की शिष्य-परंपरा है—(क)

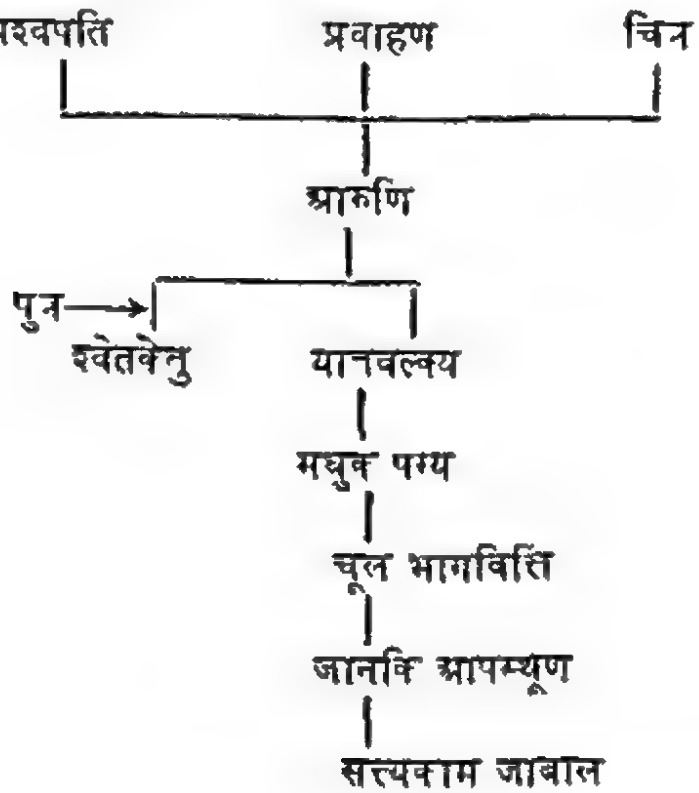

[1] शतपथ १।४।१२ [2] बृह० ६।३।७ [3] बृह० ३।७।१

(ख) और याज्ञवल्क्यके समकालीन प्रतिद्वंद्वी, साथी या शिष्य हैं[1]—

१ याज्ञवल्क्य २ जनक वैदेह, ३ जारत्कारव आर्त्तभाग ४ भुज्यु लाह्यायनि ५ उषस्ति चाक्रायण ६ कहोल कौषीतकेय ७ गार्गी वाचक्नवी ८ विदग्ध शाकल्य

(ग) जनक वैदेह साथ बात करनेवालोंमें हम निम्न नाम पाते हैं[2]—

९ जित्वा शैलिनि, १० उदङ्क शौल्बायन, ११ बकु दाल्भ्य, १२ गर्दभीविपीत भारद्वाज १३ सत्यकाम जाबाल।

इन तीनों सूचियोंके मिलानसे सत्यकाम जाबाल और उद्दालक आरुणिके संबंधोंमें गड़बड़ी मालूम होती है—(क)में उद्दालक आरुणि (श्वेतकेतुका पिता) याज्ञवल्क्यके गुरु हैं लेकिन (ख)में वह जनककी सभामें उनके प्रतिद्वंद्वी। इसी तरह (क)में सत्यकाम जाबाल याज्ञवल्क्यकी शिष्य-परंपरामें पाँचवें हैं किन्तु (ग)में वह जनक विदेहके उपस्थित रह चुके हैं। वंशावली की अपेक्षा संवादके समय कहा गया संबंध यदि अधिक शुद्ध मान लिया जाये तो मानना पड़ेगा कि सत्यकाम जाबाल याज्ञवल्क्यकी शिष्य-परंपरामें नहीं बल्कि समकालीन थे। यद्यपि दोनों उद्दालक आरुणियोंके गौतम होनेसे वहाँ दो व्यक्तियोंकी कल्पना स्वाभाविक नहीं मालूम होती, साथ ही आरुणिके सर्वप्रथम क्षत्रियसे पंचाग्नि विद्या देवयान पितृयाणकी शिक्षा पानेवाले प्रथम ब्राह्मण होनेसे आरुणिका याज्ञवल्क्यका गुरु होना ज्यादा स्वाभाविक मालूम होता है और यहाँ संवादमें आरुणिको याज्ञवल्क्यका प्रतिद्वंद्वी बतलाया गया है। लेकिन जब हम संवादोंकी संख्या और क्रमको देखते हैं, तो मालूम होता है कि परिषदमें सभी प्रतिद्वंद्वियोंके संवाद एक जगह आये हैं, सिर्फ गार्गी वाचक्नवी ही वहाँ एक ऐसी प्रतिद्वंद्वी है जिसके संवाद दो बार आये हैं और दोनों संवादोंके बीच आरुणिका संवाद मिलता है। यद्यपि इसमें भीतर रहे ब्रह्मके संचालन (=अन्तर्यामिता)की महत्त्वपूर्ण बात है,

---

[1] बृह० ३।१–७ [2] बृह० ४।१

इसलिए उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती तो भी आरुणिको बीचमें डालकर गार्गीके सवालका दो टुकड़ोंमें बाँटनेका कोई कारण नहीं मालूम होता। आखिर क्या वजह जब सभी वक्ता एक-एक बार बोलते हैं तो गार्गी दो बार बोलने गई। फिर पतंचल काप्यकी भार्यापर आये भतका जिक्र भुज्युने[1] पहिले अपने नामसे कहा है अब उसी आरुणि भी दुहरा रहा है, यह भी हमारे सन्देहको पुष्ट करता है और एक बार गार्गीके चुप हो जानेपर निगृहीत व्यक्तिका फिर बोलना उस वक्तकी वाद-प्रथाके भी विरुद्ध था। इस तरह आरुणिका याज्ञवल्क्यका गुरु होना ही ठीक मालूम होता है।

दार्शनिक विचार—

(१) **आरुणि जैवलिकी शिष्यतामें**—आरुणिको पञ्चालराज जैवलिने पञ्चम आहुति तथा देवयान पितृयानका उपदेश दिया था इसका जिक्र हम कर चुके हैं। छान्दोग्यमें एक जगह और आरुणिका आचार्य नहीं शिष्यके तौरपर जिक्र आया है—

'प्राचीनशाल औपमन्यव सत्ययज्ञ पौलुषि इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय जन शार्कराक्ष्य, बुडिल आश्वतराश्विं—इन हमशालों (=प्रतापी) महाश्रोत्रियों (=महाविद्वानों) ने एकत्रित हो विचार किया—'क्या आत्मा है, क्या ब्रह्म है। उन्होंने सोचा—भगवानो! यह उद्दालक आरुणि इस वक्त वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है उसके पास (चलो) हम चलें।' वह उसके पास गये। उसने (=आरुणिने) सोचा (=सम्पादन किया)—ये महाशाल महाश्रोत्रिय मुझसे प्रश्न करेंगे उन्हें सब नहीं समझा सकूँगा। अच्छा! मैं दूसरेका (नाम) बतलाऊँ। (और) उनसे कहा—भगवानो! यह अश्वपति कैकेय इस वक्त इस वैश्वानर आत्माका अध्ययन करता है, (चलो) उसीके पास हम चलें। वे उसके पास गये। आनेपर उसने उनकी पूजा (=सम्मान) की। (फिर) उसने सवेरे (उनसे) कहा—

---

[1] बृह० ३।३।१ [2] छां० ५।११

न मर देश (जनपद) में चोर है, न कंजूस न शराबी, न अग्निहोत्र न करने वाला, न अविद्वान न स्वैरी है, (फिर) स्वैरिणी (=व्यभिचारिणी) कहाँ ? मैं यज्ञ कर रहा हूँ, जितना एक-एक ऋत्विजको धन दूँगा उतना (आप) भगवानको भी दूँगा। बसो भगवानो !'

उन्होंने कहा— जिस प्रयोजनसे मनुष्य चले, उसीको कहे। वैश्वानर आत्माको तुम इस वक्त अध्ययन कर रहे हो, उसे ही हम बतलाओ।

उसने कहा— सवेरे आपलोगोंको बतलाऊँगा।'

वे (शिष्यता-सूचक) समिधा हाथमें लिए पूर्वाह्णमें (उसके) पास गये। उसने उनका उपनयन किये (=शिष्यता स्वीकार कराये) बिना कहा—

औपमन्यव ! तू किस आत्माकी उपासना कर रहा है ?'

'द्यौ (=नभमंडल)की भगवन् राजन् !

वह सुन्दर तेजवाला वैश्वानर आत्मा है जिसकी तू उपासना करता है इसलिए तेरे कुलमें सुत (=सन्तान) प्र-सुत, आ-सुत दिखाई देते हैं तू अन्न भोजन करता है प्रियको देखता है। जो इस इस वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है, उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता है। यह आत्माका शिर है। शिर तेरा गिर जाता यदि तू मेरे पास न आया होता।'

'तब सत्ययज्ञ पौलुषिसे बोला— प्राचीनयोग्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है ?'

'आदित्यकी ही भगवन् राजन् !

'यही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है जिसकी तू उपासना करता है। इसलिए तेरे कुलमें विश्वरूप दिखलाई देते हैं—ऊपरसे ढँका खचरीका रथ दीखा, निष्क (=अशर्फी) तू अन्न खाता यह आत्माका नेत्र है। अन्धा हो जाता यदि तू मेरे पास न आया होता।

'तब इन्द्रद्युम्न भाल्लवेयसे बोला— वैयाघ्रपद्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है ?

वायुकी ही भगवन् राजन् !

'यही पथग् वर्त्म (=अलग रास्तेवाला) वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तेरे पास अलग (अलगसे) बलियां आती हैं, अलग (अलग) रथकी पंक्तियाँ अनुगमन करती हैं ।

"तब जन शाकराक्ष्यसे पूछा—'तू किस ?'

आकाशकी ही भगवन् राजन् !

'यही बहुल वैश्वानर आत्मा है । इसलिए तू प्रजा (=सन्तान) और धनसे बहुबल है ।'

'तब बुडिल आश्वतराश्विसे बोला—वैयाघ्रपद्य ! ?

जलकी ही !'

'यही रयि वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तू रयिमान (=धनी) पुष्टिमान है ।'

'तब उद्दालक आरुणिसे बोला—'गौतम ?'

पृथिवीकी ही भगवन् राजन !'

यही प्रतिष्ठा वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तू प्रजा और पशुओंसे प्रतिष्ठित है ।'

'(फिर) उन (सब)से बोला—तुम सब वैश्वानर आत्माका पृथक्की तरह जानते अन्न खाते हो । इस वैश्वानर आत्माका सिर ही सुतेजा है चक्षु विश्वरूप है प्राण पृथग्वर्त्मा है ।'"

यहाँ इस संवादमें आरुणिने अपनेको पृथिवीको वैश्वानर आत्मा (=जगत् शरीरी आत्मा)के तौरपर अध्ययन करनेवाला बतलाया गया है, और अश्वपतिने उसे एकाग्रिक कहा ।

(२) आरुणि गार्ग्यायणिकी शिष्यतामें—आरुणि मालूम होता है क्षत्रियोंसे दार्शनिक ज्ञान संग्रह करनेमें ब्राह्मणोंके एक जबर्दस्त प्रतिनिधि थे । उनकी पंचालराज जैवलि कैकयराज[1] अश्वपतिके पास ज्ञान

[1] झेलम और सिन्धुके बीचके हिमालयके निचले भागपर अवस्थित राजौरीके पासका प्रदेश ।

सामनकी बात कही जा चुका। कौषीतकि उपनिषद्[1]से यह भी पता लगता है, कि उन्होंने चित्र गार्ग्यायणिके पास भी ज्ञान प्राप्त किया था।—

चित्र गार्ग्यायणिने यज्ञ करा आरुणिको (ऋत्विक) चुना। उसने (अपने) पुत्र श्वेतकेतुसे कहा—'तू यज्ञ करा।'

गार्ग्यायणिके प्रश्नोंका उत्तर न दे सकनेके कारण श्वेतकेतु घर लौटकर पितासे कहा। तब आरुणि शिष्य बनकर ज्ञान सीखनेके लिए समिधा हाथमें लिये गार्ग्यायणिके पास गया। गार्ग्यायणिने पितयान, पुनर्जन्म, देवयानका उपदेश दिया, जो कि जबालिके उपदेशकी भद्दी आवृत्ति मात्र है।

(३) आरुणिका याज्ञवल्क्यसे संवाद गलत—बृहदारण्यकमें आप आरुणि-याज्ञवल्क्य संवादकी असंगतिके बारेमें हम बतला चुके हैं। वहां आरुणिके मुंहसे यह कहलाया गया है[2]—

(एक बार) हम मद्र[3]में पतंचल काप्यके घर यज्ञ (-विद्या)का अध्ययन करते निवास करते थे। उसकी भार्याको गंधर्व (=देवता)ने पकड़ा था। उस (=गंधर्व)से पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—कबंध आथर्वण। उस (=गंधर्व)ने यानिकों और पतञ्चल काप्यसे पूछा—'काप्य! क्या तुम वह सूत्र (धागा) मालूम है जिसमें यह लोक, परलोक सारे भूत गुंथे हुए हैं। पतञ्चलने कहा—'भगवन्! मैं उसे नहीं जानता।'

शायद आरुणिका मद्रमें पतञ्चलके पास कर्मकाण्डका अध्ययन सही हो और यानिक (=वन्दि) गुरु भी दर्शनसे बिलकुल कोरे रहते थे, यह भी ठीक हो।

इन उद्धरणोंसे यह पता लगता है, कि आरुणि प्रथम ब्राह्मण दार्शनिक था। इससे पहिले दर्शन चिन्तन शासक (=क्षत्रिय) वर्ग करता था

---

[1]कौ० १।१ [2]बृह० ३।७।१ [3]स्यालकोट, गुजरांवाला आदि जिले।

जिसमें कितने ही उस समयके राजा भी शामिल थे। राजा दार्शनिक होते भी यज्ञ करना, ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना छोड़ते नहीं थे—जैसा कि अश्वपति और गार्ग्यायणिके दृष्टान्तसे स्पष्ट है। आरुणिने पञ्चमाहुति (=देवयान पितृयान), तथा वैश्वानर आत्माका ज्ञान अपने क्षत्रिय गुरुओंसे सीखा था, किन्तु उसका अपना दर्शन वही था, जिसे कि उसने अपने पुत्र श्वेतकेतुको 'तत्त्वमसि'—या ब्रह्म-जगत अभेदवाद—द्वारा बतलाया।

(४) आरुणिका श्वेतकेतुको उपदेश—श्वेतकेतु आरुणेय आरुणिका पुत्र था, दोनों पिता-पुत्रोंका संवाद हमें छान्दोग्य[1]में मिलता है—

"श्वेतकेतु आरुणेय था। उसे पिताने कहा—

'श्वेतकेतु! ब्रह्मचर्य वास कर। सोम्य! हमारे कुलका (व्यक्ति) अपठित रह ब्रह्मबन्धु (=ब्राह्मणका भाई मात्र)की तरह नहीं रहता।"

'बारहवें वर्षमें उपनयन (ब्रह्मचर्य आरंभ) कर चौबीसवें वर्ष तक सारे वेदोंको पढ़ (श्वेतकेतु) महामना पठिताभिमानी गम्भीर-सा हो पास गया। उससे पिताने कहा—

'श्वेतकेतो! जो कि सोम्य! यह तू महामना हो, क्या तूने उस आदेशको पूछा, जिसके द्वारा न-सुना सुना हो जाता है न-जाना जाना?

कैसा है भगवन्! वह आदेश (=उपदेश)?'

जैसे सोम्य! एक मिट्टीके पिंडसे सारी मट्टीकी (चीज) ज्ञात हो जाती है, मिट्टी ही सच है और तो विकार वाणीका प्रयोग नाम-मात्र है। जैसे सोम्य! एक लोह-मणि (=ताम्र पिंड)से सारी लोहेकी (चीजें) विज्ञात हो जाती है। जैसे सोम्य! एक नखसे खरोंचनेसे सारी कृष्ण-अयस (=लोहे)की (चीजें) विज्ञात हो जाती हैं। इसी तरह सोम्य! वह आदेश होता है।

'निश्चय ही वे भगवन् (मेरे आचार्य) नहीं जानते थे, यदि उसे जानते तो क्यों न मुझे बतलाते। भगवान् ही उसे बतलायें।'

---

[1] छान्दोग्य ६।१

अच्छा सोम्य !

सोम्य ! पहिले यह एक अद्वितीय सत् (=आत्मा) ही था, उसे कोई कोई कहते हैं—पहिले यह एक अद्वितीय असत् ही था, इसलिए असत्से सत् उत्पन्न हुआ। किन्तु सोम्य ! यह कैसे हो सकता है ?'

कैसे असत्से सत् उत्पन्न हो सकता है ?

सत् ही सोम्य ! यह एक अद्वितीय था। उसने ईक्षण (=सोचना) किया उसने तेजको सिरजा।'

इस प्रकार आरुणिके मतसे तेज (=अग्नि) प्रथम भौतिक तत्त्व था जिससे दूसरा तत्त्व—जल—पैदा हुआ। तत्पश्चात् पर्याप्त विचारता है, इस उदाहरणसे आरुणि अग्नि जलका उत्पत्ति साबित करनेके लिए काफी समझता था। जलसे अन्न। इस प्रकार सत् मूल" है तेज का, तेज मूल" है पानी का। उदाहरणार्थ 'मरा हुआ वाणी मनमें मिल जाती है मन प्राणमें प्राण तेज (=अग्नि)में तेज परात्परमें। सो जो यह अणिमा (=सूक्ष्मता) [illegible] ही स्वरूप यह सारा (=विश्व) है, यह सत्य है यह आत्मा है वह तू है (=तत् त्वं असि) श्वेतकेतु !

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'अच्छा सोम्य ! जैसे सोम्य ! मधु मक्खियाँ मधु बनाती हैं, नाना प्रकारके वृक्षोंके रसको जमाकर एक रस बनाती हैं। वह (रस) जैसे वहाँ फर्क नहीं पाता—मैं उस वृक्षका रस हूँ उस वृक्षका रस हूँ। इसी तरह सोम्य ! यह सारी प्रजाएँ सत्(=ब्रह्म)में प्राप्त हो नहीं जानतीं—हम सत्में प्राप्त होते हैं। वह तू है श्वेतकेतु !'

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

अच्छा सोम्य ! जैसे सोम्य ! पूर्ववाली नदियाँ पूर्वसे बहती हैं, पश्चिमवाली पश्चिमसे वह समुद्रसे समुद्रमें जाती हैं, (वहाँ) समुद्रही होती हैं। वह जैसे नहीं जानतीं—मैं यह हूँ। ऐसे ही सोम्य ! यह सारी प्रजाएँ सत्से आकर नहीं जानतीं—सत्से हम आईं वह तू है श्वेतकेतु !'

'और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'अच्छा सोम्य ! जस सोम्य ! वड वक्षके यदि मूलमें आघात कर ता जीव(रस) बहता ह । मध्यम आघात करे अग्रम आघात करे, जीव(रस) बहता ह । सो यह (वृक्ष) इस जीव-आत्मा द्वारा अनुभव किया जाता, पिया जाता माद लता स्थित होता ह । उसकी यदि एक शाखाका जीव छोडता ह, वह सूख जाती है, दूसरीका छाडता ह, वह सूख जाती ह, तीसरीका छोडता ह वह सूख जाती है, सबको छोडता ह, सब (वक्ष) सूख जाता ह । एसे ही सोम्य ! तू समझ ! जीव रहित ही यह (शरीर) मरता ह, जीव नही मरता । सा जा यह वह तू है श्वतकेतु !

'और भी मुझ भगवान् विज्ञापित करें ।

'बगदका फल ल आ ।'

यह ह भगवन !

ताड !

'तोड दिया भगवन् !

यहाँ क्या देखता ह ?'

'छोट छोटे इन दानाको भगवन !

'इनमेंसे प्रिय ! एकको तोड !'

'तोड दिया भगवन् !'

'यहाँ क्या देखता ह ?'

'कुछ नहीं भगवन् !'

'सोम्य ! तू जिस इस अणिमा (=सूक्ष्मता)को नही देख रहा ह, इसी अणिमासे सोम्य ! यह महान बगद खडा ह । श्रद्धा कर सोम्य ! सो जा वह तू ह श्वतकेतु !'

'और भी मुझ भगवान विज्ञापित करें ।'

'अच्छा सोम्य ! इस नमकको सोम्य ! पानीमें रख, फिर सवेर मेरे पास आना ।'

"उसन वसा किया ।'

जो नमक रातको पानीमें रखा, प्रिय ! उसे ला तो।'

उसे ढूंढ़ा पर नहीं पाया।'

गल गया सा (मालूम होता) है।

प्रिय ! भीतरसे इसका आचमन कर। कैसा है ?'

नमकीन है !

मध्यसे आचमन कर। कैसा है ?'

नमकीन है।

'इसे फेंककर मेरे पास आ।

उसने वैसा किया। वह एक समान (नमकीन) था। उस(=श्वेतकेतु)से कहा— (उसके) यहीं होते भी जिसे सौम्य ! तू नहीं देखता, यही है (वह)। सो जो वह तत् है श्वेतकेतु !'

'और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'अच्छा सौम्य ! जैसे सौम्य ! (किसी) पुरुषको गंधार (देश)से आँख मूंद लाकर (एक) जनशून्य (स्थान)में छोड़ दे। वह जैसे वहाँ आगे पीछे या ऊपर-नीचे चिल्लाये आँख मूंदे (मुझे) लाया, आँख मूंद मुझे छोड़ दिया। जैसे उसकी पट्टी छोड़ (कोई) कहे—इस दिशामें गंधार है इस दिशामें जा। वह पंडित, मेधावी एक गाँवसे दूसरे गाँवको पूछता गंधार ही को पहुँच जाये इसी तरह यहाँ आचार्य रखनेवाला पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है। उसकी (मुक्त होनेमें) उतनी ही देर है, जबतक कि (शरीरसे) नहीं छूटता (शरीर छूटने)पर तो (ब्रह्मको) प्राप्त होता है। सो जो वह तू है श्वेतकेतु !'

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

अच्छा सौम्य ! जैसे सौम्य ! (मरण यातनासे) पीड़ित पुरुषको भाई-बंधु घेरते (और पूछते) हैं—पहिचानते हो मुझे, पहिचानते हो मुझे ? जब तक उसकी वाणी मनमें नहीं मिलती मन प्राणमें प्राण तेजमें तेज परम देवतामें (नहीं मिलता), तबतक पहिचानता है। किन्तु जब उसकी वाणी मनमें मिल जाती है मन प्राणमें, प्राण तेजमें,

तेज परम देवताम, तब नहीं पहचानता। सा जा वह तू है श्वत-केतु।' "

इस तरह आरुणि सत्ब्रह्म (=शारीरक ब्रह्म) वादी थ, और भौतिक तत्त्वामें अग्निका प्रथम मानते थ।

३ याज्ञवल्क्य (६५० ई० पू०)

(१) जीवनी—याज्ञवल्क्यकी जन्मभूमि कहाँ थी इसका उल्लख नहीं मिलता। कुछ लगकोंने जनक वदहका गुर होनसे उन्हे भी विदेह (=तिरहुत) का निवासी समझ लिया है जा कि गलत है। बृहदारण्यक[1]के उद्धरणपर गौर करनस यही पता लगता है, कि वह कुरु-पचालके ब्राह्मणामसे थ—

जनक वदहन बहुत दक्षिणावाल यज्ञको किया। उसम कुरु-पचाल (=पश्चिमी युक्तप्रान्त)के ब्राह्मण एकत्रित हुए थ। जनक वदहके मनमें जिज्ञासा हुई—'इन ब्राह्मणो (=कुरु-पचालवाला)में कौन सबसे बडा शिक्षित (=अनूचानतम) है?

यहा इन ब्राह्मणों शब्दसे कुरु-पचालवालोंका ही बोध हाता है। वसे भी यदि याज्ञवल्क्य विदेहके थे, तो उनकी विद्वत्ता जनकके लिए अज्ञात नहीं हानी चाहिए।

इस तरह जान पडता है, जवलि, आरुणि, याज्ञवल्क्य तीनो दिग्गज उपनिषदके दार्शनिक कुरु-पचालके रहनवाले थे। इसीसे बुद्ध कालम भी कुरु-पचाल दशनकी खानि समझा जाता था जसा कि पीछे हम बतला चुके है। और इस तरह ऋग्वेदके समयसे (१५०० ई० पू०) जो प्रधानता इस प्रदशको मिली, वह बराबर याज्ञवल्क्यके समय तक मौजूद रही, यद्यपि इसी बीच कैकय (पजाब) काशी और विदेहम भी ज्ञान चर्चा होने लगा थी।

अश्वपति कैकयके पास जानवाले ये ब्राह्मण महाशाल बड धनाढ्य

---

[1] डाक्टर श्रीधर व्यकटेश केतकरका "महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश" (पूना, १९२३) प्रस्तावना खड १, विभाग ३, पृ० ४४८ [2] बृह० ३।१

बाँध हुए थे। जनकने उनसे कहा—'ब्राह्मण भगवानो! जो तुममें ब्रह्मिष्ठ (=सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवादी) है वह इन गायोंको हँका ले जाये। ब्राह्मणोंने हिम्मत न की। तब याज्ञवल्क्यने अपने ही ब्रह्मचारी (=शिष्य) को कहा—सोमश्रवा! हँका ले चल इन्हें।' और उन्हें हँकवा दिया। वे ब्राह्मण क्रुद्ध हुए—कैसे (यह) हममें (अपनेको) ब्रह्मिष्ठ कहता है।' जनक वदेहका होता अश्वल था उसने इस (याज्ञवल्क्य)से पूछा—

'तुम हममें ब्रह्मिष्ठ हो याज्ञवल्क्य!

'हम ब्रह्मिष्ठको नमस्कार करते हैं हम तो गाय चाहते हैं।

(a) अश्वलका कर्मपर प्रश्न— होता अश्वलने वहाँसे उससे प्रश्न करना शुरू किया— "

अश्वलने अपने प्रश्न ज्यादातर यज्ञ और उसके कर्मों कलापके बारेमें किये। याज्ञवल्क्य वैदिक कर्मकाण्डके बड़े पंडित थे, यह शतपथ ब्राह्मणके १४ तथा १०-१४ काण्डोंमें उद्धृत उनकी बहुतसी याज्ञिक व्याख्याओंसे स्पष्ट है। याज्ञवल्क्यकी आधी तार्किक और आधी साम्प्रदायिक व्याख्यासे होता अश्वल चुप हो गया।

(b) आर्तभागका मृत्यु भक्षकपर प्रश्न—फिर जारत्कारव आर्तभागने प्रश्न करने शुरू किये—अतिग्राह (=बहुत पकड़नेवाले) क्या हैं? आठ—प्राण वाक् जिह्वा, आँख कान, मन, हाथ, चर्म—यह आठ ग्रह (=इन्द्रिय) हैं जो कि क्रमशः अपान, नाम, रस, रूप शब्द, कामना और कर्म इन आठ अतिग्राहों (=विषयों) द्वारा गंध सूँघते, नाम बोलते, रस चखते, रूप देखते शब्द सुनते, काम (=भोग) चाहते, कर्म करते, स्पर्श जानते हैं। इन्द्रियोंके बारेमें यह उत्तर सुनकर आर्तभागने फिर पूछा—

'याज्ञवल्क्य! यह सब (=विश्व) तो मृत्युका अन्न (भोजन) है। कौन वह देवता है, जिसका अन्न मृत्यु है?'

'आग मृत्यु है, वह पानीका भोजन है पानीसे मृत्युको जीता जा सकता है।'

'याज्ञवल्क्य! जब यह पुरुष मर जाता है, (तब) उसके प्राण (साथ) जाते हैं या नहीं?'

गी। यही रह जाता है। वह उसास लेता है मरकर व
है फिर मरकर पड़ जाता है।

याज्ञवल्क्य! जब यह पुरुष मरता है क्या (है जो) इसे नहीं छोड़ता
नाम ।

याज्ञवल्क्य! जब मरनेपर इस पुरुषकी वाणी अग्नि (=तेज)में समा जाती है प्राण वायुमें आँख आदित्यमें मन चन्द्रमामें श्रोत्र दिशाओंमें, शरीर पृथिवीमें, आत्मा आकाशमें, रोएं ओषधियोंमें, केश वनस्पतियोंमें, खून और वीर्य पानीमें मिल जाते हैं तब यह पुरुष (जीव) कहाँ होता है?

हाथ पकड़ सौम्य आर्तभाग! हम दोनों ही इस (तत्त्व)को जान सकेंगे, यह लोग नहीं ।

तब जारत्कारव आर्तभाग उठकर मन्त्रणा की, उन्होंने जो कहा वह कर्म होने वारेमें कहा। जो प्रशंसाकी कर्मकी ही प्रशंसा की।—पुण्य कर्मसे पुण्य (=भला) होता है पापसे पाप (=बुरा) होता है। तब जगत्कारव आर्तभाग चुप हो गया।

(c) भुज्यु लाह्यायनिका अश्वमेध-याजियोंके लोकपर प्रश्न—तब भुज्यु लाह्यायनिने पूछा—'याज्ञवल्क्य! हम मद्र देशमें विचरण करते थे। वहाँ पतंचल काप्यके घर पर गये। उसकी लड़की गन्धर्व-गृहीता (=देवता जिसके सिरपर आया हो) थी। उससे मैंने पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—सुधन्वा आङ्गीरस। तब उससे लोकोंका अन्त पूछते हुए मैंने कहा—कहाँ पारिक्षित[1] (परीक्षित वंशी) गये? सो मैं तुमसे भी याज्ञवल्क्य! पूछता हूँ, कहाँ परीक्षित गये?'

---

[1] छान्दोग्य (३।१७।६) में घोर आंगीरसके शिष्य देवकीपुत्र कृष्णका जिक्र आया है, उससे और यहाँके वर्णनको मिलानेसे परीक्षित् महाभारतके अर्जुनका पुत्र मालूम होता है। फिर परीक्षित्-वंशियोंके कहनेसे जान पड़ता है, कि तबसे याज्ञवल्क्य तक कितनी ही पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं। "साङ्कृत्यायन-वंश"में मैंने परीक्षित-पुत्र जन्मेजयका समय ९०० ई० पू० निश्चित किया है।

'उस (याज्ञवल्क्य)ने कहा— वह वहाँ गय जहाँ अश्वमेध याजी (=करने वाल) जात ह ?'

अश्वमेधयाजी कहाँ जाते ह ?'

इसपर याज्ञवल्क्यने वायु द्वारा उस लाकमें अश्वमेधाजियाका जाना बतनाया जिसपर लाह्यायनि चुप हो गया।

(d) उषस्ति चाक्रायण-सर्वान्तरात्मापर प्रश्न—उषस्ति चाक्रायण कुरु-देशका एक प्रसिद्ध वेदज्ञ था। छान्दोग्य[1]म इसके बारम कहा गया है—

कुरु-देशमें ओले पड थ, उस समय उषस्ति चाक्रायण (अपनी) भार्या आटिकी के साथ प्रद्वाणक नामक शूद्रोके ग्राममें रहता था। उसन (एक) इभ्य (=शूद्र)को कुल्माष (=दाल) खान देख उससे माँगा। उसन उत्तर दिया—'यह जो मेर सामन ह उसे छोड और नहीं ह।' इस ही मुझे दे। उसन द दिया ।

इभ्यने उषस्तिका जब पानी भी देना चाहा तो उषस्ति न कहा— 'यह जूठा पाना होगा। जिसपर दूसरन पूछा—क्या यह (कुल्माष)जूठा नहीं ह ? तो उसन कहा—इसे खाये बिना हम नहीं जी सकेंग। पानी तो यथेष्ट पा सकते ह। खाकर बाकीको स्त्रीके लिए ल गया। वह पहिल ही आहार प्राप्त कर चुकी था। उसने उस लपर रख दिया। दूसरे दिन उसी जूठ कुल्माषको खाकर उषस्ति कुरु राजके यज्ञम गया, और राजान उसका बहुत सम्मान किया।

उषस्ति चाक्रायण अब कुरु (मेरठ जिल)से चलकर विदह (दभगा जिल, बिहार)में आया था जहाँ कि जनक बहुदक्षिणा यज्ञ कर रहा था। याज्ञवल्क्यकी गायें हँकवाते देख उसने पूछा[2]—

'याज्ञवल्क्य ! जो साक्षात अपरोक्ष (=प्रत्यक्ष) ब्रह्म जो सबके भीतर वाला (=सर्वान्तर) आत्मा ह, उसके बारमें मुझे बतलाओ।'

---

[1] छां० १।१० [2] बृह० ३।४।१

इच्छाएं ह । इसलिए ब्राह्मणको पाडित्यस विरक्त हो बाल्य (=बालकोंकी भांति भोलाभालापन)के साथ रहना चाहिए, बाल्य और पाण्डित्यसे विरक्त हो मुनि । मौनसे विरक्त हो, फिर ब्राह्मण (होता ह) । वह ब्राह्मण कसे होता ह ? जिससे होता ह उससे एसा ही (होता ह) इससे भिन्न तुच्छ ह ।

तब कहोल कौषीतकेय चुप हो गया ।

(f) गार्गी वाचक्नवी (ब्रह्मलोक, अक्षर)—मैत्रयीकी भांति गार्गी और उसके प्रश्न इस बातके सबूत ह कि छठी सातवी सदी ईसा-पूर्वम स्त्रियोंका चौके-चूल्हेसे आगे बढनेका काफी अवसर मिलता था अभी वह पर्दे और दूसरी सामाजिक जकडबन्दियोंमें उतनी नहीं जकडी गई थी । गार्गीने पूछा[1]—

'याज्ञवल्क्य ! जो (कि) यह सब (=विश्व) पानीमें ओत प्रोत (=ग्रथित) ह पानी किसमें ओतप्रोत ह ?

वायुमें गार्गी !'

वायु किसमें ओतप्रोत ह ?

'अन्तरिक्ष लोकोंमें गार्गी !' '

आगेके इसी तरहके प्रश्नके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने गन्धर्वलोक, आदित्य-लोक चन्द्रलोक,[2] नक्षत्रलोक, देवलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक, ब्रह्मलोक —में पहिलेका पिछलेमें ओतप्रोत होना बतलाया ।—ब्रह्मलोकमें सारे ही ओतप्रोत ह, इसपर गार्गीने पूछा—

ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है ?

"उस याज्ञवल्क्यने कहा— मत प्रश्नकी सीमाके पार जा, मत तेरा शिर गिरे । प्रश्नकी सीमा न पारकी जानेवाली देवताके बारेमें तू अतिप्रश्न कर

---

[1] बृह० ३।६।१

[2] आदित्यलोकसे भी चन्द्रलोकको परे और महान् बतलाना बतलाता है, कि ब्रह्मज्ञानीके लिए विज्ञानके बन्धके ज्ञान होनेकी कोई खास जरूरत नहीं ।

र । । । गार्गी ! मत अति प्रश्न कर ।

तब गार्गी वाचक्नवी चुप हो गई ।

इसके बाद उद्दालक आरुणिका प्रश्न है । जो कि प्रश्नकर्त्ता आरुणिके लिए अलग मालूम होता है । संभव तो यह सारे ग्रन्थ कंठस्थ करके लाये गये थे इसलिए एकाध जगह गलती भूल संभव है । पालि दीघनिकायके महापरिनिब्बाणसुत्तमें भी कंठस्थ प्रयोग कारण गलती हुई है इसका उल्लेख हमने वहाँ किया है । गार्गीके प्रश्नके उत्तरोंको भी देकर हम आगे याज्ञवल्क्यके विचारोंके जाननेकेलिए किसी विस्मृत प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नोत्तरको (जो कि यहाँ आरुणिके नामसे मिल रहा है) देंगे ।[1]—

'तब वाचक्नवीने पूछा—

ब्राह्मण भगवान ! अच्छा तो मैं इन (याज्ञवल्क्य)से दो प्रश्न पूछती हूँ यदि उन्हें यह बतला देंगे तो तुममेंसे कोई भी इन्हें ब्रह्मवादमें न जीतेगा ।

(याज्ञवल्क्य—) 'पूछ गार्गी !'

'उसने कहा—याज्ञवल्क्य ! जैसे काशी या विदेह देशका कोई उग्र-पुत्र (=सिपाही) उतरी प्रत्यंचाको धनुषपर लगा शत्रुको बधनेवाले बाण-फलवाले दो (तीरों)को हाथमें ले उपस्थित हो, इसी तरह मैं तुम्हारे पास दो प्रश्नोंके साथ उपस्थित हुई हूँ । उन्हें मुझे बतलाओ ।'

पूछ गार्गी !

'उसने कहा—याज्ञवल्क्य ! जो यह द्यौ (=नभस्) लोकसे ऊपर, जो पृथिवीसे नीचे जो द्यौ और पृथिवीके बीचमें है, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य कहा जाता है, किसमें यह ओतप्रोत है ?'

'वह आकाशमें ओतप्रोत है ।'

'उस (गार्गी)ने कहा—'नमस्ते याज्ञवल्क्य ! जो कि तुमने यह मुझे बतलाया । (अब) दूसरा (प्रश्न) ला ।

---

[1] बृह० ३।८।१।१–१२

'पूछ गार्गी !

'आकाश किसमें ओतप्रोत है ?

'गार्गी ! इसे ही ब्राह्मण अक्षर (=अविनाशी) कहते हैं, (जो कि) न स्थूल न अणु न ह्रस्व, न दीर्घ न लाल, न स्नेह (=चिकना या आर्द्र) न छाया न तम न वायु न आकाश, न गंध न रस, न गंध, न नेत्र-श्रोत्र वाणी-मन द्वारा ग्राह्य न तेज (=अग्नि) वाला न प्राण न मुख न मात्रा (=परिमाण) वाला, न आभ्यंतरिक, न बाह्य है। न यह किसीको खाता है न उसको कोई खाता है। गार्गी ! इसी अक्षरके शासनमें सूर्य-चन्द्र धारे हुए स्थित हैं, इसी अक्षरके शासनमें द्यौ और पृथिवी मुहूर्त रात दिन अर्ध-मास मास ऋतु-संवत्सर धारे हुए स्थित हैं। इसी अक्षरके शासनमें श्वेत पहाड़ों (=हिमालय) से पूर्व वाली नदियाँ या पश्चिमवाली दूसरी नदियाँ उस उस दिशामें बहती हैं इसी अक्षरके शासनमें (हो) गार्गी ! दाताओंकी मनुष्य, यजमानकी देव प्रशंसा करते हैं। गार्गी ! जो इस अक्षरको बिना जाने इस लोकमें हवन करे, यज्ञ करे, बहुत हजार वर्ष तप तप उसका यह (सब करना) अन्तवाला ही है। गार्गी ! जो इस अक्षरको बिना जाने इस लोकसे प्रयाण करता है, वह अभागा (=कृपण) है, और जो गार्गी ! इस अक्षरको जानकर इस लोकसे प्रयाण करता है वह ब्राह्मण है। वह यह अक्षर गार्गी ! न-देखा देखनेवाला, न-सुना सुननेवाला न-मनन किया मनन करनेवाला, न विज्ञात विजानन करनेवाला है। इससे दूसरा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं है। गार्गी ! इसी अक्षरमें आकाश ओतप्रोत है।'

'तब वाचक्नवी चुप हो गई।'

गार्गीके दो भागोंमें बट जानेमें 'किसमें यह विश्व ओतप्रोत है' इसी प्रश्नका उत्तर है, इससे भी हमारा सन्देह दृढ़ होता है कि श्रुतिमें स्मरण करनेवालोंकी गलतीसे यहाँ आरुणि—जो कि याज्ञवल्क्यके गुरु थे—के नामसे नया प्रश्न डालनेकी गड़बड़ी हुई है।

(g) विदग्ध शाकल्यका देवोंकी प्रतिष्ठापर प्रश्न—अन्तिम

[illegible] दूसरा [illegible] [illegible]—

[illegible]

[illegible]।

[illegible]?

[illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]।

[illegible]

'[illegible] (मन [illegible]) [illegible] और [illegible]—[illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] की गई है। फिर [illegible] पूछा—

किसमें तुम और आत्मा प्रतिष्ठित (=स्थित) हो?'

प्राणमें।

किसमें प्राण प्रतिष्ठित है?

अपानमें। 'व्यानमें। उदानमें।

किसमें उदान प्रतिष्ठित है?

समानमें। वह यह (=समान आत्मा) अगृह्य=नहीं ग्रहण किया जा सकता अशीर्य=न, [illegible] शीर्ण हो सकता, असंग=न [illegible] लिप्त हो सकता

तुमसे मैं उस औपनिषद (=उपनिषद् प्रतिपादित, अथवा रहस्यमय) पुरुषके बारेमें पूछता हूँ उस यदि [illegible]। नहीं तो तेरा सिर गिर जायगा।' शाकल्यने उसे नहीं समझा, (और) उसका सिर गिर गया। (मरते) समय दूसरे हड्डियोंको ले गये।

ब्रह्मके संवादमें शाकल्यका इस तरह शोचनीय अन्त हो जानेपर याज्ञवल्क्यने कहा—

'ब्राह्मण भगवानो! आपमेंसे जिसकी इच्छा हो मुझसे प्रश्न करे,

---

[1] बृह० ३।९।१

या सभी मुझसे प्रश्न करें। आपमेंसे जो चाहें उससे मैं प्रश्न करूँ या आपमें सबसे मैं प्रश्न करूँ।' "

'उन ब्राह्मणोंकी हिम्मत नहीं हुई।'

(h) अज्ञात प्रश्नकर्त्ताका अन्तर्यामीपर प्रश्न—आरुणिके नामसे किये गये प्रश्नके कर्त्ताका असली नाम हमारे लिए चाहे अज्ञात हो, किन्तु याज्ञवल्क्यके दर्शनके जाननेकेलिए प्रश्न महत्त्वपूर्ण है इसलिए उसका भी संक्षेप देना जरूरी है[1]—

'उसे मैं जानता हूँ, याज्ञवल्क्य! यदि उस सूत्र और अन्तर्यामीको बिना जाने ब्राह्मणोंकी गायोंको हँकायेगा तो तेरा शिर गिर जायगा।

मैं जानता हूँ गौतम! उस सूत्र (=धागे)को उस अन्तर्यामीको।

'मैं जानता हूँ (कहता है, तो) जैसे तू जानता है, वैसे बोल।

'उसे (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—वायु है गौतम! वह सूत्र वायु है। सूत्रसे गौतम! यह लोक, परलोक और सारे भूत गुथे हुए हैं। इसीलिए गौतम! मरे पुरुषके लिए कहते हैं—वायुसे इसके अंग छूट गये।

यह ऐसा ही है याज्ञवल्क्य! अन्तर्यामीके बारेमें कहो।

जो पृथिवीमें रहते पृथिवीसे भिन्न है, जिसे पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवीको अन्दरसे नियमन करता (=अन्तर्यामी) है यही तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

'जो पानीमें आगमें अन्तरिक्षमें वायुमें द्यौमें आदित्यमें दिशाओंमें चन्द्र-तारामें आकाशमें तमें (=अन्धकार)में तेजमें सारे भूतोंमें प्राणमें वाणीमें नेत्रमें श्रोत्रमें मनमें चर्म (=त्वग् इन्द्रिय)में विज्ञान (=जीव)में (और) जो वीर्य (=रेतस)में रहते वीर्यसे भिन्न है जिसे वीर्य नहीं जानता, जिसका वीर्य शरीर है, जो वीर्यको अन्दरसे नियमन

---

[1] बृह० ३।७।१ २३

करता (=अन्तर्यामी) है यही तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत (=अविनाशी) है। वह अन्धा देखनेवाला० अविज्ञात विज्ञाता करनेवाला है। इससे दूसरा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं है। यही तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इससे अन्य (सभी) तुच्छ है।'"

(ख) जनकको उपदेश—सभाके बाद भी याज्ञवल्क्य और राजा जनक (=राजा) विदेहका समागम होता रहा। इस समागममें जो दार्शनिक वार्तालाप हुए थे उसको बृहदारण्यकके चौथे अध्यायमें सुरक्षित रखा गया है।—

'जनक बैठे हुआ था, उसी समय याज्ञवल्क्य आ गये। उनसे (जनकने) पूछा—

कस आप पशुओंकी इच्छासे या (किसी) सूक्ष्म बात (अध्यात्म)के लिए ?'

'दोनों हीके लिए सम्राट्! जो कुछ किसीने तुझे बतलाया हो उसे सुनना चाहता हूँ।'

मुझसे जित्वा शैलिनि कहा था—वाणी ब्रह्म है।'

जैसे माता पिता आचार्यवाला (=शिक्षित पुरुष) बोले, उसी तरह शैलिनिने यह कहा—वाणी ब्रह्म है। क्या उसने तुझे उसका आयतन (=स्थान) प्रतिष्ठा बतलाई ?

' नहीं बतलाई।'

'वह एकपाद (एक परवाला) है सम्राट!'

'तो (उसे) मुझे बतलाओ याज्ञवल्क्य!

वाणी आयतन है आकाश प्रतिष्ठा है, प्रज्ञा (मान) करके इसकी उपासना कर।'

'प्रज्ञा क्या है याज्ञवल्क्य!'

'वाणी ही सम्राट! वाणीसे ही सम्राट! बन्धु (=ब्रह्मा[1]) जाना

---

[1] तुलना करो "दीघ निकाय" (हिन्दी-अनुवाद, नामसूची)

जाना है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्वांगिरस इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद श्लोक, सूत्र, व्याख्या अनुव्याख्यान, आहुति, खान-पान, यह लोक परलोक, सारे भूत वाणीसे ही जाने जाते हैं। सम्राट! वाणी परमब्रह्म है। जो इस जानते हुए इसकी उपासना करता है उसको वाणी नहीं त्यागती सारे भूत उसे (भोग) प्रदान करते हैं (वह) देव बन स्वर्ग जाता है।

जनक वैदेहने कहा—'(तुम्हें) हजार हाथी-सांड देता हूँ।

याज्ञवल्क्यने कहा—पिता मेरे मानते थे, कि बिना अनुशासन (=उपदेश)के (दान) नहीं लेना चाहिए। जो कुछ किसीने तुझे बतलाया हो, उसीको मैं सुनना चाहता हूँ।'

'मुझसे उदङ्क शौल्वायनने कहा था—प्राण ही ब्रह्म है।'

जैसे माता पिता आचार्यवाला बोले, उसी तरह शौल्वायनने कहा—प्राण ही ब्रह्म है। क्या उसने प्रतिष्ठा बतलाई?

' नहीं बतलाई।'

'हजार हाथी-सांड देता हूँ।'

(जनक—) 'मुझसे बकु दाल्भ्यने कहा—नेत्र ही ब्रह्म है।

'मुझसे गर्दभीविपीत भारद्वाजने कहा—श्रोत्र ही ब्रह्म है।

'मुझसे सत्यकाम जाबालने कहा—मन ही ब्रह्म है।

'मुझसे विदग्ध शाकल्यने कहा—हृदय ही ब्रह्म है'

(जनक—) 'हजार हाथी-सांड देता हूँ।'

'याज्ञवल्क्यने कहा—'पिता मेरे मानते थे कि बिना अनुशासनके दान नहीं लेना चाहिए।

और दूसरी बार जानपर[1] 'जनक वैदेहने दाढ़ीपर (हाथ) फेरते हुए कहा—नमस्ते हो याज्ञवल्क्य! मुझे अनुशासन(=उपदेश) करो।'

'उस (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—'जैसे सम्राट! बड़े रास्तेपर

---

[1]बृह० ४।२।१

जानवाला (यात्री) रथ या नाव पकड़ता है, इसी तरह इन उपनिषदों (=तत्त्वार्थ-शा)मे तर आत्माका समाधान हो गया है। इस तरह वृदारक(=देव) आढ्य(=धनी) वद-पढ़ा, उपनिषत-सुना तू यहाँसे छूटकर कहा जायगा ?'

'भगवन् ! म नहीं जानता कि कहाँ जाऊँगा।

अच्छा ता जहा तू जायगा उसे म तुझे बतलाता हूँ।

कहें भगवन् !'"

इसपर याज्ञवल्क्यने आँखा और हृदयमे हजार होकर ऊपरको जाने वाली केश-जसी सूक्ष्म हिता नामक नाडियोका जिक्र करते प्राणको चारो ओर व्यापक बतलाया और कहा—

'वह यह नेति नेति (=इतना ही नहीं) आत्मा है, (जो) अगृह्य= नहीं ग्रहण किया जा सकता अ-सग नहीं लिप्त हो सकता। जनक ! (अब) तू अभयको प्राप्त हो गया।

जनक वदेहने कहा—अभय तुम्हें प्राप्त हो, याज्ञवल्क्य ! जो कि हमें तुम अभयका ज्ञान करा रहे हो। नमस्ते हो, यह विदेह (=देश) यह म (तुम्हारा) हूँ ॥२॥

(a) आत्मा, ब्रह्म और सुषुप्ति— 'जनक वदेहके पास याज्ञवल्क्य गए। जब जनक वदेह और याज्ञवल्क्य अग्निहोत्रमें एकत्रित हुए, (तब) याज्ञवल्क्यने जनकको वर दिया। उसने इच्छानुसार प्रश्नका वर मागा, उसने उसे दिया। सम्राटने ही पहिले पूछा—

'याज्ञवल्क्य ! किस ज्योतिवाला यह पुरुष है ?'

आदित्य-ज्योतिवाला सम्राट ! आदित्य-ज्योतिसे ही वह कम करता है।'

हाँ, ऐसा ही है याज्ञवल्क्य ! आदित्यके डूबनेपर किस ज्योति वाला ?'

चन्द्र-ज्योतिवाला ' अग्नि-ज्योतिवाला '

'वाणी

'आत्म-ज्योतिवाला सम्राट ! आत्मा (रूपी) ज्योतिसे ही वह कर्म करता है ।

कौनसा है आत्मा ?

जो यह प्राणोंमें विज्ञानमय, हृदयमें आन्तरिक ज्योति (=प्रकाश) पुरुष है वह समान हो दोनों लोकोंमें संचार करता है वह स्वप्न (देखनेवाला) हो इस लोकके मृत्युके रूपोंको अतिक्रमण करता है। वह पुरुष पैदा हो शरीरमें प्राप्त हो पापसे लिप्त होता है उत्क्रान्ति करते मरते वक्त पापको त्यागता है। इस पुरुषके दो ही स्थान होते हैं—यह और परलोक स्थान तीसरा संधिवाला स्वप्नस्थान है। उस संधिस्थानमें रहते (वह) इन दोनों स्थानोंको देखता है—इस और परलोक स्थानको।

पाप और आनन्द दोनोंको देखता है। वह जब सोता है, इस लोककी सारी ही मात्राओंको ले स्वयं निर्माण कर अपनी प्रभा अपनी ज्योतिके साथ प्रसुप्त होता है वहाँ यह पुरुष स्वयंज्योति होता है। न वहाँ (स्वप्नमें) रथ होते, न घोड़े (=रथ-योग) न रास्ते, किन्तु (वह) रथों, रथयोगों रास्तोंको सजता है आनन्दोंको सृजता है। न वहाँ घर, पुष्करिणियाँ नदियाँ होती, किन्तु (इन्हें) वह सृजता है। जिन्हें जागृत (-अवस्थामें) देखता है उन्हें स्वप्नमें भी (देखता है), इस तरह वहाँ यह पुरुष स्वयंज्योति होता है।

'सोम भगवानको (और) हजार देता हूँ इसके आगे (भी) विमोक्षके बारेमें बतलाव !'

जैसे कि बड़ी मछली (नदीके) दोनों किनारोंमें संचार करती है, इसी तरह यह पुरुष स्वप्न और बुद्ध (=जागृत) दोनों छोरोंमें संचार करता है। जैसे आकाशमें बाज या गरुड़ उड़ते (उड़ते) थककर पंखोंको इकट्ठाकर घोंसलेको ही (आश्रय) पकड़ता है इसी तरह यह पुरुष उस अन्त (=छोर)की ओर धावन करता है जहाँ सोया हुआ न किसी काम (=भोग)की कामना करता है, न किसी स्वप्नको देखता है। उसकी वह केश-जैसी (सूक्ष्म) हजारों फूट निकली नील पिंगल-हरित

नाड़ियाँ (रस)से पूर्ण हिता नामक नाड़ियाँ हैं जिनमें गड़ते (गिरते) जैसा गिरता है जहाँ देवकी भाँति राजाकी भाँति—मैं ही यह सब कुछ हूँ, (मैं ही) सब हूँ—यह मानता है, वह इसका परम लोक है। सो जैसे प्रिय स्त्रीसे आलिंगित हो (पुरुष) न बाहरके बारेमें कुछ जानता न भीतरके बारेमें, ऐसे ही यह पुरुष प्राज्ञ आत्मा (=ब्रह्म) से आलिंगित हो न बाहरके बारेमें कुछ जानता, न भीतरके बारेमें। वह इसका रूप है। यहाँ पिता अ-पिता हो जाता है, माता अ-माता, लोक अ-लोक, देव अ-देव, वेद अ-वेद हो जाते हैं। यहाँ चोर अ-चोर, गर्भघाती अ-गर्भघाती, चंडाल अ-चंडाल, पौल्कस (=म्लेच्छ) अ-पौल्कस, श्रमण अ-श्रमण, तापस अ-तापस, पुण्यसे रहित पापसे रहित होता है। उस समय वह हृदयके सारे शोकसे पार हो चुका होता है। यदि वहाँ उसे नहीं देखता, तो देखते हुए ही उसे नहीं देखता अविनाशी होनेसे द्रष्टा (=आत्मा)की दृष्टिका लोप नहीं होता। उससे विभक्त (=भिन्न) दूसरा नहीं है, जिसे कि वह देखता। जहाँ दूसरा जैसा हो, वहाँ दूसरा दूसरेको देखे, दूसरा दूसरेको सूँघे चखे बोले सुने संयुक्त हो छुए विजानने करे। द्रष्टा एक अद्वैत होता है यह है ब्रह्मलोक सम्राट्।'

(b) ब्रह्मलोक आनन्द—ब्रह्मलोकमें कितना आनंद है, इसको समझाते हुए याज्ञवल्क्यने कहा—

'मनुष्योंमें जो संतुष्ट समृद्ध, दूसरोंका अधिपति न (होते भी) सब मानुष भोगोंसे सम्पन्न होता है उसका यह (आनन्द) मनुष्योंका परमानंद है। १०० मनुष्योंके जो आनंद हैं वह एक पितरोंका आनंद है आगे—

१०० पितर आनन्द	=१	गंधर्व-लोक आनन्द
१०० गंधर्व-लोक	=१	कर्मदेव ,,
१०० कर्मदेव	=१	आजानदेव ,
१०० आजानदेव	=१	प्रजापति-लोक ,
१०० प्रजापति-लोक	=१	ब्रह्म-लोक

फिर उपसंहार करते—

यही परम आनन्द ही ब्रह्मलोक है सम्राट !

सो मैं भगवानको सहस्र देता हूँ। इससे आगे (भी) विमोक्षकेलिए ही बतलाओ।'

'यहाँ याज्ञवल्क्यका भय होने लगा— राजा मेधावी है इन सब(की बात करने)से मुझे रोक दिया। (पुनः) वही यह (आत्मा) इस स्वप्नके भीतर रमण विचरण कर पुण्य और पापको देखकर फिर नियमानुसार जागृत अवस्थाको दौड़ता है। जैसे राजाको आते देख उग्र प्रत्यनम (=मनिक) सूत (=सारथी) ग्रामणी (=गाँवके मुखिया) अन्न-पान निवास प्रदान करते हैं—'यह आ रहा है 'यह आता है इसी तरह इस तरहके ज्ञानीकेलिए सारभूत (=प्राणी) प्रदान करते हैं—यह ब्रह्म आ रहा है—यह आता है।

(ग) मैत्रेयीको उपदेश—याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। याज्ञवल्क्यने घर छोड़ते वक्त जब सम्पत्तिके बँटवारेका प्रस्ताव किया, तो मैत्रेयीने अपने पतिसे कहा—

'भगवन् ! यदि वित्तसे पूर्ण यह सारी पृथिवी मेरी हो जाय, तो क्या उससे मैं अमृत होऊँगी अथवा नहीं ?'

नहीं, जैसे सम्पत्तिवालोंका जीवन होता है वैसा ही तेरा जीवन होगा, अमृतत्व(=मुक्तपद)की तो आशा नहीं है।

उस (=मैत्रेयी)ने कहा— जिससे मैं अमृत नहीं हो सकती, उसे (ले) क्या करूँगी। जो भगवान जानते हैं वही मुझसे कहें।

याज्ञवल्क्यने कहा— हमारी प्रिया हो आपने सबसे प्रिय (वस्तु) माँगी अच्छा तो आपको यह बतलाता हूँ। मेरे वचनको ध्यानमें करो।' और उसने कहा— अरे ! पतिकी कामनाकेलिए पति प्रिय नहीं होता अपनी कामना(=भोग)केलिए पति प्रिय होता है। अरे ! भार्याकी कामनाके लिए भार्या प्रिय नहीं होती, अपनी कामनाके लिए भार्या प्रिय होती है।

पुत्र वित्त पशु ब्रह्म क्षत्र लोक

[illegible] भूत [illegible] (=सब [illegible]) प्रिय न। [illegible] आत्मा [illegible] प्रिय होता है। अरे! आत्मा (=आप) ही द्रष्टव्य श्रोतव्य, मन्तव्य, निदिध्यासन (=ध्यान) करने योग्य है। मैत्रेयि! आत्माके दृष्ट श्रुत, मत विज्ञात हो जानेपर यह सब (=विश्व) विदित हो जाता है। ब्रह्म उसे छोड़ देता है जो आत्माको अपना ब्रह्मत्व जानता है। क्षत्र [illegible] भूत (=प्राणी) [illegible]। यह जो आत्मा है वही ब्रह्म, क्षत्र [illegible] सब [illegible] भूत [illegible] है। जैसे सभी जलोंका समुद्र एकायन (=एकघर) है, ऐसे ही सभी स्पर्शोंका त्वक [illegible] गन्धोंका नासिका रसोंकी जिह्वा [illegible] नाम [illegible] श्रोत्र संकल्पोंका मन विद्याओंका हृदय [illegible] कर्मोंका हाथ आनन्दोंका उपस्थ (=जननेन्द्रिय) विसर्गों (=त्याग) की गुदा मार्गोंके पैर सभी वेदोंका वाणी एकायन है। सा जैसे सभी (=समस्त) पूर्ण होता है बाहर भीतर (सभी) बिना छोड़े सारा (सबका) रसपूर्ण ही है इसी तरह अरे! यह आत्मा बाहर भीतर (सभी) से छोड़ प्रज्ञानपूर्ण (=प्रज्ञाघन) ही है। इन (शरीरों) भूतोंसे उठकर उनके बाद ही विनष्ट हो जाता है अरे! मरकर (प्रेत) संज्ञा नहीं है (यह मैं) कहता हूँ।

मैत्रेयीने कहा—'यहीं मुझे भगवानने मोहमें डाल दिया, मैं इसे नहीं समझ सकी।'

उसे (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—अरे! मैं मोह (की बात) नहीं कहता। अविनाशी है अरे! यह आत्मा, उच्छिन्न न होनेवाला है। जहाँ द्वैत हो वहाँ (उनमेंसे) एक दूसरेको देखता सूँघता चखता बोलता सुनता मनन करता छूता विज्ञान करता है, जहाँ कि सब उसका आत्मा ही है, वहाँ किससे किसको देखे विज्ञान करे। सो यह 'नेति नेति' आत्मा अगृह्य=नहीं ग्रहण किया जा सकता है अ-सङ्ग=नहीं लिप्त हो सकता है। मैत्रेयी! यह

(जो स्वयं) सबका विज्ञाता (=जाननहार) है, उसे किससे जाना जाये, यह मैत्रेयी ! तुझे अनुशासना यह दी गई। अरे ! इतना ही अमृतत्व है। यह कह याज्ञवल्क्य चल दिये।"

याज्ञवल्क्यके इन उपदेशोंसे पता लगता है, कि यद्यपि अभी भी जगतके प्रत्याख्यानका सवाल नहीं उठा था और न पीछेके योगाचारों और शंकरानुयायियोंकी भाँति ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या तक बात पहुँची थी तो भी सुषुप्ति और मुक्तिमें याज्ञवल्क्य ब्रह्मसे अतिरिक्त किसी और तत्त्वका भान होता है, इसे स्वीकार नहीं करते थे। आनंदकी सीमा ब्रह्म या ब्रह्मलोक है—यह सिर्फ अभावात्मक गुणोंका ही धनी नहीं है। ब्रह्म सबके भीतर है और सबको अन्दरसे नियमन करता (=अन्तर्यामी) है। यद्यपि अन्तमें याज्ञवल्क्यने घर-बार छोड़ा, किन्तु सन्यासरहित एक बूढ़ेके तौर पर। घर छोड़ते वक्त उनका ब्रह्मज्ञान (=दर्शन) पहिलेसे ज्यादा बढ़ गया था इसकी संभावना नहीं है। पहिले जीवनमें धन और कीर्ति दोनोंका उन्होंने खूब संग्रह किया यह हम देख चुके हैं। याज्ञवल्क्यके समयमें कर्म-काण्डपर जबर्दस्त संदेह होने लगा था, यज्ञमें लाखों खर्च करनेवाले क्षत्रियोंके मनमें पुरोहितोंकी आमदनीके संबंधमें खतरनाक विचार पैदा हो रहे थे। साथ ही गृहत्यागी श्रमण और तापस साधारण लोगोंको अपनी तरफ खींच रहे थे। ऐसी अवस्थामें याज्ञवल्क्य और उनके गुरु आरुणिकी दार्शनिक विचारधाराने ब्राह्मणोंके नेतृत्वको बचानेमें बहुत काम किया। (१) पुराने ब्राह्मण इन बातोंपर डटे हुए थे—यज्ञसे लौकिक पारलौकिक सारे सुख प्राप्त होते हैं। (२) ब्राह्मण विरोधी विचार धारा कहती थी—यज्ञ कर्मकाण्ड फजूल है, इन्हें लोकमें कितनी ही बार असफल होते देखा गया है, ब्राह्मण अपनी दक्षिणाके लोभसे परलोकका प्रलोभन देते हैं। (३) इसपर आरुणि-याज्ञवल्क्य का कहना था—ज्ञानके बिना कर्म बहुत कम फल देता है। ज्ञान सर्वोच्च साधन है, उससे हम उस अक्षर ब्रह्मके पास जाते हैं जिसका आनंद सभी आनंदोंकी चरम सीमा है। इस ब्रह्मलोकको हम नहीं देखते, किन्तु वह है उसकी हल्कीसी झाँकी हमें गाढ़ निद्रा

(सुषुप्ति)में मिलती है जहाँ—

जब सो गया हो गया बराबर।
बन गाने-गदाम फर पाया॥[1]

इन्द्रिय अगोचर इस ब्रह्मलोकके स्थानको मजबूत कर देनेपर यज्ञ-पशु भोगनेवालोंके लिए देवताओंकी सत्ताको मनवानेका भी काम चल जाता है। सर्व-श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य यानी वेद (यजुर्वेद)के मुख्य आधार तथा यजुर्वेदके कर्मकाण्डीय ब्राह्मण—शतपथ ब्राह्मण—के महान कर्त्ता हैं। मनरूपी अन्ध स्थानको उन्होंने सबसे अधिक दृढ़ता प्रदान की। उपनिषदोंके इन ऋषियोंने अपने सारे ब्रह्मज्ञानके साथ पुनर्जन्म परलोकका ध्यान छोड़ी नहीं। सामाजिक दृष्टिसे देखनेपर पुरोहित वर्गके आर्थिक स्वार्थपर जो एक भारी संकट आया था, उसे यज्ञोंकी प्रथाको पूर्ववत् प्रधान स्थान दिलाकर तो नहीं, बल्कि स्वयं गुरु बनने तथा श्रद्धा-दक्षिणा पानेका पहिलेसे भी मजबूत दूसरा रास्ता—ब्रह्मज्ञान प्रचार—निकालकर हल कर दिया। अब जहाँ ब्राह्मण पुरोहित बन पुराने यज्ञोंमें श्रद्धा रखनेवालोंको सन्तुष्टि कर्मकाण्ड द्वारा कर सकते थे, वहाँ ब्राह्मण ज्ञानी बुद्धिवादियोंको ब्रह्म ज्ञानसे भी सन्तुष्ट कर सकते थे।[1]

४ सत्यकाम जाबाल (६५० ई० पू०)

सत्यकाम जाबालका दर्शन जैसा हम छान्दोग्यमें पाते हैं और उसके प्रकट करनेका जो स्थूलसा ढंग है, उससे वह समय याज्ञवल्क्यसे पहलेवाला पीछेका मालूम होता है। याज्ञवल्क्यके यजमान जनक वैदेह[2]ने सत्य-कामसे अपने वार्तालापका जिक्र किया है, उससे याज्ञवल्क्यके समयमें उसका होना सिद्ध होता है। अपने गुरु हारिद्रुमत गौतमके अतिरिक्त गोश्रुति वैयाघ्र पद्य[3]का नाम सत्यकामके साथ आता है वैयाघ्रपद्य उसके शिष्योंमें था।

---

[1] इसकालकी सामाजिक व्यवस्थाके लिए देखो मेरी "वोल्गासे गंगा"में "प्रवाहण जैवलि" पृष्ठ ११८-३४ [2] बृह० ४।१।६ [3] छा० ५।२।३

(१) जीवनी—सत्यकाम जाबालके जीवनके बारमें उपनिषदसे हमें इतना ही मालूम होता है[1]—

सत्यकाम जाबालने (अपनी) माँ जबालासे पूछा—'मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ , मेरा गोत्र क्या है ?

'बहुतोंके साथ सचरण-परिचारण करती जवानीमें मैंने तुझे पाया। इसलिए मैं नहीं जानता कि तेरा क्या गोत्र है। जबाला तो नाम मेरा है, सत्यकाम तेरा नाम इसलिए सत्यकाम जाबाल ही तू कहना।

"तब वह हारिद्रुमत गौतमके पास जाकर बोला—'भगवानके पास ब्रह्मचर्यवास करना चाहता हूँ, भगवानकी शिष्यता मुझे मिले।

उसने पूछा—'क्या है सौम्य ! तेरा गोत्र ?

उसने कहा—मैं यह नहीं जानता भो ! माँसे पूछा उसने मुझसे कहा—बहुतोंके साथ सचरण-परिचारण करती जवानीमें मैंने तुझे पाया। सत्यकाम जाबाल ही तू कहना। सो मैं सत्यकाम जाबाल हूँ भो !

उससे (=गौतमने) कहा—अ-ब्राह्मण ऐसे (साफ-साफ) नहीं कह सकते। सौम्य ! समिधा ला तेरा उपनयन (=शिष्य बनाना) करूँगा, तू सत्यसे नहीं हटा।"

(२) अध्ययन—' उपनयनके बाद दुबली-पतली चार सौ गौओंका हवाल कर (हारिद्रुमत गौतमने) कहा—सौम्य ! इनके पीछे जा।

'हजार हुए बिना नहीं लौटना। उसने कितने ही वर्ष (=वर्षगण) प्रवास किये, जब कि वह हजार हो गई, तब ऋषभ (=साँड)ने उसके पास आकर (बात) सुनाई—हम हजार हो गए, हमें आचार्य-कुलमें ले चलो। और मैं ब्रह्मका एक पाद तुझे बतलाता हूँ।

'बतलायें मुझे भगवान् !'

पूर्व दिशा एक कला, पश्चिम दिशा एक कला, दक्षिण दिशा एक कला, उत्तर दिशा एक कला—यह सौम्य ! ब्रह्मका प्रकाशवान् नामक चार

---

[1] छा० ४।४।१-५

लावाला पाद है। (अगला) पाद अग्नि तुझे बतलायेगा।'

दूसरे दिन उसने गायोंको हाँका। जब संध्या आई तो आगको गा गायोंका घर समिधाको रखकर आगके सामने बैठा। उसे अग्निने ाकर कहा— सत्यकाम!

'भगवन्!'

ब्रह्मका एक पाद मैं तुझे बतलाता हूँ।

बतलाइये मुझे भगवन्!

पृथिवी एक कला अन्तरिक्ष द्यौ समुद्र एक कला है। ह सौम्य—ब्रह्मका अनन्तवान् नामक चार कलावाला पाद है। हंस ुझे (अगला) पाद बतलायगा।

" अग्नि सूर्य चन्द्र विद्युत कला है। यह ज्योतिष्मान् नामक पाद है। मदगु तुझे (अगला) ाद बतलायगा।

' प्राण चक्षु श्रोत्र मन कला है। यह आयतन(=इन्द्रिय)वान नामक पाद है।

वह आचार्यकुलमें पहुँच गया। आचार्यने उससे कहा— सत्यकाम!'

'भगवन्! —उत्तर दिया।'

'ब्रह्मवेत्ताकी भाँति सौम्य! तू दिखाई दे रहा है, किसने तुझे उपदेश दिया?'

(वह) मनुष्योंसे ना था। भगवान् ही मुझे इच्छानुसार बतला सकते हैं। भगवान्-जैसोंसे सुना है आचार्यके पाससे जाना विद्या ही उत्तम प्रयोजन (=समाधि)को प्राप्त करा सकती है।

(आचार्यने) उससे कहा—यहाँ छूटा कुछ नहीं है।

इससे ऐसा ही पता लगता है कि गौतमने सत्यकामसे कई वर्षों गायें चरवाईं, वहाँ चराते वक्त पशुओं और प्राकृतिक वस्तुओंसे उसे शिक्षा, सारी प्राकृतिक शक्तियों और इन्द्रियोंसे व्याप्त प्रकाशमान्, ज्योति स्वरूप इन्द्रिय (=मन) रूप ब्रह्मका पता हुआ।

(३) दार्शनिक विचार—सत्यकाम ब्रह्मका व्यापक अनन्त, चेतन प्रकाशवान् मानता था यह ऊपर आ चुका। जनकको उसने 'मन ही ब्रह्म'[1] का उपदेश किया था, अर्थात् ब्रह्म मनकी भाँति चेतन है। उसके दूसरे दार्शनिक विचार (आँखमेंका पुरुष ही ब्रह्म है आदि) उस उपदेशसे जाने जा सकते हैं जिसे कि उसने अपने शिष्य उपकोसल कामलायनको दिया था।[2]—

"उपकोसल कामलायनने सत्यकाम जाबालके पास ब्रह्मचर्यवास (=शिष्यता) किया। उसने गुरुकी (पूजा की) अग्नियोंकी बारह वर्ष तक सेवा (=परिचरण) की। वह (=सत्यकाम) दूसरे शिष्योंका समावर्तन (शिक्षा समाप्तिपर विदाई) कराते भी इसका समावर्तन नहीं कराता था। उसकी पत्नीने कहा—

'ब्रह्मचारीने तपस्या की अच्छी तरह अग्नि-परिचरण किया। क्या तुझे अग्नियोंने इसे बतलानेको नहीं कहा?'

"(सत्यकाम) बिना बतलाये ही प्रवास कर गया। उस (=उपकोसल) ने (चिंता) व्याधिके मारे खाना छोड़ दिया। उसे आचार्य-जायाने कहा—

'ब्रह्मचारिन्! खाना खा क्यों नहीं खाता?'

'इस पुरुषमें नाना प्रकारकी बहुतसी कामनाएँ हैं। मैं (मानसिक) व्याधियोंसे परिपूर्ण हूँ। (अपनेको) नष्ट करना चाहता हूँ।"

इसके बाद जिन अग्नियोंकी उसने सेवा की थी, उन्होंने उसे उपदेश दिया—

" प्राण ब्रह्म है प्राणको आकाश भी कहते हैं। जो यह आदित्यमें पुरुष (=आत्मा) है वह मैं (=सोऽहम्) हूँ वही मैं हूँ। जो यह चन्द्रमामें पुरुष (=आत्मा) है, वह मैं (=सोऽहम्) हूँ, वही मैं हूँ। जो यह विद्युतमें पुरुष है वह मैं हूँ वही मैं हूँ।'

साथ ही अग्नियोंने यह भी कहा— उपकोसल! यह विद्या तू हमसे

---

[1] बृह० ४।१।६ [2] छा० ४।१०।१

[illegible] भगवन्।

यह जो [illegible] पुरुष [illegible] है, [illegible] है। यह [illegible], अभय है [illegible] है।

५—मयुग्या (—गाड़ीवाला) रैक्व

मयुग्या रैक्व उपनिषदोंके प्रसिद्ध ही नहीं आरम्भिक ऋषियोंमें मानुष होता है। [illegible] नाथ [illegible] पागलकी भाँति घूमता रहता था राजाओं और गणिकाओं पर [illegible]—इस नव प्रकारके विचारोंका समूचा पेश करता था। यूनानमें दियोजन[1] (४१२ ३२२ ई० पू०)—जो कि चन्द्रगुप्त मौर्यके राज्यारोहणके साथ मरा—भी इसी तरहका एक फकीर दार्शनिक हुआ था, अपने [illegible] भाजनमें बैठे रहते उपदेश देना उसका मशहूर है। भारतमें इस तरहके फकीर—चाहे उनमें विचारकी मौलिकता हो या न हो—अभी भी सिद्ध महात्मा समझे जाते हैं। याज्ञवल्क्यने जो ब्रह्मज्ञानीका बालककी भाँति रहनेकी बात[2] कही थी, वह मयुग्या जैसा ही आचरणसे आकृष्ट होकर कही मालूम होती है।

---

[1] Diogenes [2] बृह०

इतना होने भी सयुग्वा अध्यात्मवादी नहीं ठेठ भौतिकवादी दार्शनिक था, वह संसारका मूल उपादान याज्ञवल्क्यके समकालीन अनक्सिमनेस[1] (५९० ५५०)की भाँति वायुको मानता था।

रैक्वका जीवन और उपदेश—सिर्फ छान्दोग्यमें और उसमें भी सिर्फ एक स्थानपर सयुग्वा रक्वका जिक्र आया है[2]—

"(राजा) जानश्रुति पौत्रायण श्रद्धासे दान देनेवाला बहुत दान देनेवाला था, (अतिथियोंके लिए) बहुत पाक (बाँटनेवाला) था। उसने सर्वत्र आवसथ(=पथिकशालाएं धर्मशालाएं) बनवाई थीं, (इस ख्यालसे कि) सर्वत्र (लोग) मेरा ही (अन्न) खायेंगे। हंस रातको उड़ रहे थे। उस समय एक हंसने दूसरे हंससे कहा—

'हो-हो हि भल्लाक्ष! भल्लाक्ष! जानश्रुति पौत्रायणकी भाँति (यहाँ) दिनकी ज्योति (=अग्नि) फैली हुई है, सो छू न जाना जल न जाना।'

"उसे दूसरेने उत्तर दिया—कम्बर! तू तो ऐसा कह रहा है, जैसे कि वह सयुग्वा रक्व हो।'

'कैसा है सयुग्वा रक्व?'

'जैसे विजेताके पास नीचेवाले जाते हैं इसी तरह प्रजाएं जो कुछ अच्छा कर्म करती हैं वह उस (=रक्व)के ही पास चले जाते हैं।

"जानश्रुति पौत्रायणने सुन लिया। उसने बड़े सबेरे उठते ही क्षत्ता (=सेक्रेटरी)से कहा—अरे प्रिय! सयुग्वा रक्वके बारेमें बतलाओ न?'

कैसा सयुग्वा रक्व?'

'जैसे विजेताके पास नीचेवाले जाते हैं।'

'ढूँढनेके बाद क्षत्ताने कहा—'नहीं पा सका।'

"(फिर) जहाँ ब्राह्मणोंको ढूँढा जा सकता है, वहाँ ढूँढो।'

'वह शकटके नीचे दाद खुजलाता बैठा हुआ था। (क्षत्ताने) उससे पूछा—भगवन्! तुम्हीं सयुग्वा रक्व हो?

---

[1] Anaximanes [2] छा० ४।१

म ी हैं र !

क्षत्ता लौट गया। तब जानश्रुति पौत्रायण छ सौ गायों, निष्क (=अशर्फी या सुवर्ण मुद्रा), खच्चरी रथ लेकर गया, और उससे बोला—

रैक्व ! यह छ सौ गायें हैं, यह निष्क है, यह खच्चरी रथ है। भगवन ! मुझे उस देवताका उपदेश करो जिस देवताकी तुम उपासना करते हो।

(रैक्वने) कहा—हटा रे शूद्र ! गायोंके साथ (यह सब) तेरे ही पास रहे।

तब फिर जानश्रुति पौत्रायण हजार गायें, निष्क खच्चरी रथ (और अपनी) कन्याको लेकर गया—और उससे बोला—

रैक्व ! यह हजार गाय है, यह निष्क है, यह खच्चरी रथ है, यह (तुम्हारे लिए) जाया (=भार्या) है, यह गाँव है जिसमें तुम (इस समय) बैठे हुए हो। भगवन ! मुझे उपदेश दो।'

'(रैक्वने) उस (कन्या)के मुखको (हाथसे) ऊपर उठाते हुए कहा—

'हटा रे शूद्र ! इन सबको इसी मुखके द्वारा तू मुझसे (उपदेश) कहलवायेगा। वायु ही मूल (=मार्ग) है। जब आग ऊपर जाती है वायुमें ही लीन होती है। जब सूर्य अस्त होता है, वायुमें ही लीन होता है। जब चन्द्र अस्त होता है वायुमें ही लीन होता है। जब पानी सूखता है वायुमें ही लीन होता है। वायु ही इन सबको समेटता है।—यह देवताओंके बारेमें। अब शरीरमें (=अध्यात्म) प्राण मार्ग (=मार्ग) है, यह जब सोता है, वाणी प्राणमें ही लीन होती है चक्षु श्रोत्र मन प्राणमें ही लीन होता है। यही दोनों मूल हैं—'वायु वायु, प्राणोंमें प्राण।'

इस प्रकार भौतिक जगत (=देवताओं) और शरीर (=अध्यात्म) दोनोंमें वायुको ही मूलतत्त्व मानना रैक्वका दर्शन था। रैक्वको फक्कड़पन बहुत पसन्द था इसलिए 'राजकन्याको लिए बैलगाड़ीपर विचरना और गाड़ीके नीचे बैठ दाद खुजलाना जितना उसे पसंद था उतना उसे गाँव, सोना गायें रथ नहीं।

पंचदश अध्याय

स्वतंत्र विचारक

जिस समय भारतमें उपनिषद्के दार्शनिक विचार तयार हो रहे थे उसी वक्त उसमें उलटी दिशाकी ओर जाती दूसरी विचार धाराएं भी चल रही थीं स्वयं उपनिषदमें भी इसका पता लगता है।[1] सयुग्वा रक्वके विचार भी भौतिकवादकी ओर झुकते थे, यह हम देख चुके हैं। ये तो वे विचारक थे जो किसी न किसी तरह वैदिक परंपरामें अपना संबंध बनाये रखना चाहते थे किन्तु इनके अतिरिक्त ऐसे भी विचारक थे जो वैदिक परंपरामें अपनेको बँधा नहीं समझते थे और जीवन तथा विश्वकी पहेलियोंको वैदिक परंपरामें बाहर जाकर हल करना चाहते थे। हम 'मानव समाज' में कह चुके हैं, कि भारतीय आर्योंका प्रारंभिक समाज जब अपनी पितृसत्ताक व्यवस्थासे आगे सामन्तवादकी ओर बढ़ा तो उसकी दो शाखाएं हुईं, एक तो वह जिसने कुरु-पंचाल (मेरठ रुहेलखंड) और आसपासके प्रदेशोंमें जो राजसत्ता कायम की, दूसरी वह जिसने कि पंजाब तथा मल्ल-वज्जी (युक्तप्रान्त बिहारकी सीमाओंपर) में अपने सामन्तवादी प्रजातंत्र कायम किये। इनके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि सिंधु-उपत्यका और दूसरे भू भागोंमें भी जिस जाति (=असुर) से आर्योंका संघर्ष हुआ था वह सामन्तवादी थे राजतांत्रिक थे सभ्य थे नागरिक थे। उनके परास्त होनेका मतलब यह नहीं था कि सभ्यता और विचारोंका जो विकास उन्होंने किया था, वह उनके पराजयके साथ बिल्कुल लुप्त हो गया।

---

[1] "तद्धैक आहुः 'असदेवेदमग्र आसीत एकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायते'।" छा० ६।२।१

ईसा-पूर्व छठी शताब्दी में जब कि भारतमें दर्शनका स्रोत पहिले-पहिल फूट निकला, उस समय तीन प्रणालियाँ मौजूद थीं—वैदिक (ब्राह्मणानुयायी) आर्य, अ-वैदिक (ब्राह्मणसे स्वतंत्र, या व्रात्य) आर्य, और अनार्य। इनमें वैदिक और अवैदिक आर्योंकी राजनीतिक (=आर्थिक) सत्ता किसी एक जनपदकी सीमाके भीतर न थी। लेकिन अनार्य नागरिक शताब्दियों मौजूद थे गणों (=प्रजातंत्रों)में गृहपतियों प्रधानता मानी जानेसे राजनीतिमें सीधे तो वह दखल नहीं दे सकते थे किन्तु उनके लिए राजतंत्रोंमें सुविधा अधिक थी। वहाँ किसी एक कबीले(=जन)का प्रधान न होनेसे राजा और पुरोहितकी आधीनता स्वीकार कर लेनेपर उनके लिए भी राजपद उच्चपद और कभी कभी तो राजपद पर भी पहुँचनेका सुभीता था। इतना होनेपर भी दर्शन-युगके आरंभ होनेसे पहिले अनार्य-संस्कृतिसे आर्य-संस्कृतिको अलग रखने हेतु कोशिश की जाती रही। वेद-संहिताएँ उठाकर ब्राह्मणोंके लिए कहीं अनार्य धार्मिक गति-रीतियोंका लेश या समन्वयका प्रयास नहीं मिलता—इसका अपवाद यदि है तो अथर्ववेद, किन्तु बुद्धके समय (५०० ई० पू०) तक वेद अथवा तीन ही थे, बुद्धके समकालीन उपनिषदोंमें इसका नाम तो आता है, किन्तु तीनों वेदोंके बाद बिना वेद विशेषणके—अथर्ववेद नहीं आथर्वण[1] या अथर्वांगिरस के नामसे[2] तो भी अथर्ववेद निम्न तलपर आर्य अनार्य धर्मों—मंत्र-तंत्रों, टोना-टोटका—के मिश्रणका प्रथम प्रयत्न है। दर्शनकी शिक्षा यद्यपि दास-स्वामी दो वर्गोंमें विभक्त समाजमें जरा भी हेरफेर करनेके लिए तैयार नहीं है तो भी मानसिक तौरपर इस तरहके भेदको मिटानेका प्रयत्न जरूर करती है।—इस दिशामें वैदिक दर्शन (=उपनिषद्)का प्रयत्न जितना हुआ, उससे कहीं अधिक प्रयत्नशील हम अवैदिक दर्शनोंको पाते हैं। बुद्धने

---

[1] छा० ७।१।२, ७।२।१ [2] बृह० ४।१।२

[3] छान्दोग्य (१।३)में भी कई बार तीन ही वेदोंका जिक्र किया गया है।

जातिभेद या रंगके प्रश्न (आर्य अनार्य भेद)का उठा देना चाहा। यही बात जैन आजीवक आदि धर्मोंके बारेमें भी है।

इन स्वतंत्र विचारोंमें चार्वाक और कपिलके दर्शन प्रथम आते हैं उनके बाद बुद्ध और उनके समकालीन तीर्थंकर (=सम्प्रदाय प्रवर्तक)।

§ १ बुद्धके पहिलेके दार्शनिक

चार्वाक

भौतिकवादी दर्शनको हमारे यहाँ चार्वाक दर्शन कहा जाता है। चार्वाकका शब्दार्थ है चबानेके लिए मुस्तैद या जो खाने पीने—इस दुनियाके भोगको ही सब कुछ समझता है। चार्वाक मत संस्थापक व्यक्तिका नाम नहीं है। बल्कि परलोक पुनर्जन्म, देववादसे जो लोग इन्कारी थे उनके लिए यह गालीके तौरपर इस्तेमाल किया जाता था। जड़वादी दर्शनके आचार्योंमें बृहस्पतिका नाम मिलता है। बृहस्पतिने शायद सूत्र, रूपमें अपने ज्ञानको लिखा था। उसके कुछ सूत्र कहीं-कहीं उद्धृत भी मिलते हैं। किन्तु हम देखेंगे कि सूत्र रूपेण दर्शनोंका निर्माण ईसवी सनके बादसे शुरू हुआ है। बुद्धके समकालीन अजित केशकम्बल भी जड़वादी थे, किन्तु वह धार्मिक ढोंगको उतारना पसन्द न करते थे। प्राचीन चार्वाक-सिद्धान्त जड़वादके सिद्धान्त थे—ईश्वर नहीं आत्मा नहीं पुनर्जन्म और परलोक नहीं। जीवनके भोग त्याज्य नहीं ग्राह्य हैं। तजर्बे (अनुभव) और बुद्धिको हमें सत्यके अन्वेषणकेलिए अपना मार्गदर्शक बनाना चाहिए। चार्वाक दर्शनके कितने ही और मंतव्य हमें पीछेके ग्रंथोंमें मिलते हैं। वह उसके पिछले विकासकी चीजें हैं। उनके बारेमें हम आगे कहेंगे।

§ २ बुद्ध कालीन और पीछेके दार्शनिक (५०० १५० ई० पू०)

हमने 'विश्वकी रूपरेखा' में देखा कि 'अचेतन प्रकृतिके राज्यमें गति शान्त एकरस प्रवाहकी तरह नहीं बल्कि रुक-रुक कर गिरते जल प्रपात या मेढकके कूदनेकी भांति होती है। 'मानव समाज' में भी यही बात मानव

संस्कृति, वैज्ञानिक आविष्कारों और सामाजिक प्रगतिके बारेमें देखी। दर्शनक्षेत्रमें भी हम यही बात देखते हैं—कुछ समय तक प्रगति तीव्र होती है, फिर प्रवाह रुँध जाता है, उसके बाद एकत्रित होती शक्ति एक बार फिर फूट निकलती देख पड़ता है। हर वादके प्रतिवादमें, जान पड़ता है काफी समय लगता है, फिर संवाद फूट निकलता है। यूरोपीय दर्शनके इतिहासमें हम ईसा-पूर्व छठीसे चौथी शताब्दीका समय दर्शनकी प्रगतिका सुनहरा समय देखते हैं, फिर जो प्रवाह क्षीण होता है तो तेरहवीं सदीमें कुछ सुगबुगाहट होती दीख पड़ती है, और सत्रहवीं सदीमें प्रवाह फिर तीव्र हो जाता है। भारतीय इतिहासमें ई० पू० पन्द्रहवीं से तेरहवीं सदी भरद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे प्रतिभाशाली बल्कि कवियोंका समय है। फिर छः सदियोंके कमकाम जंगलका मानसिक निद्राके बाद हम ई० पू० सातवीं-छठवीं-पाँचवीं सदियोंके दर्शनके रूपमें प्रतिभाको जागते देखते हैं। इन तीन सदियोंके परिश्रमके बाद, मानो श्रान्त प्रतिभा स्वास्थ्यके लिए सदियोंकी निद्राको आवश्यक समझती है, और फिर ईसाकी दूसरी सदीमें तीन सदियों तक यूनानी दर्शनसे प्रभावित हो, वह नागार्जुनके दर्शनके रूपमें फूट निकलती है। चार सदियों तक प्रवाह प्रखर होता जाता है, उसके बाद आठवीं और बारहवीं सदीमें सिवाय थोड़ीसी करवट बदलनेके वह अब तक चिरसुप्त है।

उपनिषदके जवलि आरुणि, याज्ञवल्क्य ऋषियों आदि और चार्वाक दर्शनके स्वतंत्र विचारकोंने जो विचार सम्बन्धी उथल-पुथल पैदा की थी, वह अब पाँचवीं सदी ई० पू०में अपनी चरमसीमापर पहुँच रही थी। यह बुद्धका समय था। इस कालके निम्नलिखित दार्शनिक बहुत प्रसिद्ध हैं इनका उस समयके सभ्य समाजमें बहुत सम्मान था—

१ भौतिकवादी—अजित केशकम्बल, मक्खलि गोशाल
२ नित्यतावादी—पूरणकाश्यप, प्रक्रुधकात्यायन
३ अनिश्चितवादी—संजय वेलट्ठिपुत्त, निगंठ नातपुत्त
४ अभौतिक क्षणिक अनात्मवादी—गौतम बुद्ध।

१—अजित केशकम्बल (५२३ ई० पू०) भौतिकवादी

अजित केशकम्बलके जीवनके बारेमें हमें इससे अधिक नहीं मालूम है, कि वह बुद्धके समय एक लाख विख्यात सम्मानित तीर्थंकर (सम्प्रदाय प्रवर्तक) था। कोसलराज प्रसेनजितने बुद्धसे एक बार कहा था[1]—"हे गौतम! यह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति गणाधिपति, गणके आचार्य प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर बहुत जनों द्वारा सुसम्मत हैं, जैसे—पूरण काश्यप मक्खलि गोशाल निगंठ नातपुत्त संजय बेलट्ठिपुत्त, प्रक्रुध कात्यायन अजित केशकम्बल—वह भी यह पदवीपर कि (आपने) अनुपम सच्ची सम्बोधि (=परम ज्ञान)को जान लिया यह दावा नहीं करते। फिर जन्मसे अल्पवयस्क और प्रव्रज्या (=संन्यास)में नये आए गौतमके लिए तो क्या कहना है?

इससे जान पड़ता है कि बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)से अजित उम्रमें ज्यादा था। त्रिपिटकमें अजित और बुद्धके आपसमें संवादकी कोई बात नहीं आती, हाँ यह मालूम है कि एक बार बुद्ध और इन छहों तीर्थंकरोंका वर्षावास राजगृहमें (५२३ ई० पू०) हुआ था।[2] केशकम्बल नाम पड़नेसे मालूम होता है कि आदमीके केशोंका कम्बल पहिननेको संयुक्त रखनेका बलगाड़ीकी भाँति उसने अपना धंधा बना रखा था।

दर्शन—अजित केशकम्बलके दार्शनिक विचारोंका जिक्र त्रिपिटकमें कितनी ही जगह[3] आया है लेकिन सभी जगह एक ही बातको उन्हीं शब्दोंमें दुहराया गया है।—

"दान यज्ञ हवन नहीं (=बेकार है) सुकृत-दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक नहीं। यह लोक परलोक नहीं। माता पिता नहीं। देवता

---

[1] संयुत्त निकाय ३।१।१ (देखो, "बुद्धचर्या", पृ० ६१)
[2] बुद्धचर्या, पृ० २६६, ७५ (मज्झिम निकाय, २।३।७)
[3] दीघ निकाय, १।२, मज्झिम निकाय, २।१।१०, २।६।६

(=आश्वासित, अयाचित) नहीं। लोकमें सत्य तक पहुँचे, सच्चाई (=एसे) श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो कि इस लोक, परलोकको स्वयं जानकर साक्षात्कार (दूसरोंको) बतलावें। आदमी चार महाभूतोंका बना है। जब (वह) मरता है (शरीरकी) पृथिवी पृथिवीमें पानी पानीमें आग आगमें वायु वायुमें मिल जाते हैं। इन्द्रियाँ आकाशमें चली जाती हैं। मृत पुरुषको खाटपर ले जाते हैं। जलाने तक चित्त जाने वाले हैं। (फिर) हड्डियाँ कबूतर(के रंग)सी हो जाती हैं। आहुतियाँ राख रह जाती हैं। दान (करना) यह मूर्खोंका उपदेश है। जो कोई आस्तिकवादकी बात करते हैं वह उनका (कहना) तुच्छ (=थोथा) झूठ है। मूर्ख हो चाहे पंडित, शरीर छोड़नेपर (सभी) उच्छिन्न हो जाते हैं विनष्ट हो जाते हैं मरनेके बाद (कुछ) नहीं रहता।

यहाँ हमें अजितका दर्शन उसके विरोधियोंके मुखमें मिल रहा है जिसमें उसे बदनाम करनेकेलिए भी कालिख जरूरी गई होगी। अजित आत्माको चातुर्महाभौतिक (=चार भूतोंसे बना) मानता था। परलोक और उसकेलिए किए जानेवाले दान-पुण्य तथा आस्तिकवादको वह झूठ समझता था यह तो स्पष्ट है। किन्तु वह माता पिता और इस लोकको भी नहीं मानता था यह गलत है। यदि ऐसा होता तो वह वैसा शिक्षा न देता जिसके कारण वह अपने समयका लोक-सम्मानित सम्भ्रान्त आचार्य माना जाता था फिर तो उसे डाकुओं और चोरोंका आचार्य या सर्दार होना चाहिए था।

अजितने अपने दर्शनमें, मालूम होता है उपनिषदके तत्त्वज्ञानकी अच्छी खबर नहीं थी। सत्य तक पहुँचा (=सम्यग्-गत), 'सत्यश्रद्ध' ब्रह्मज्ञानी कोई हो सकता है यह माननेसे उसने इन्कार किया एक जन्मके पाप पुण्यका आदमी दूसरे जन्ममें इसी लोकमें अथवा परलोकमें भोगता है इसका भी खंडन किया।

उग्र भौतिकवादी होते हुए भी अजित तत्कालीन साधुओं जैसे कुछ संयम नियमको मानता था यह उसके उद्धरणके आगे— ब्रह्मचर्य नंगा, मुंडित

रहना, उकड़ूँ-तप करना, केश-दाढी नोचना —इस वचनसे मालूम होता है। किन्तु यह वचन छह अ-बौद्ध तीर्थंकरोंके लिए एक ही तरह दुहराया गया है और निगंठ नातपुत्तके (जैन) मतमें यह बातें धर्मका अंग मानी भी जाती रही हैं, जिससे जान पड़ता है त्रिपिटकको कंठस्थ करनेवालोंने एक तीर्थंकरकी बातको कंठ करनेकी सुविधाके लिए सबके साथ जोड़ दिया—स्मरण रहे बुद्धके निर्वाणके चार सदियों बाद तक बुद्धका उपदेश लिखा नहीं गया था।

२ मक्खलि गोशाल (५२३ ई० पू०) अकर्मण्यतावादी

मक्खलि (=मस्करी) गोशालका जिक्र बौद्ध और जैन दोनों पिटकोंमें आता है। जैन पिटकोंसे पता लगता है कि वह पहिले जैन मतका साधु था पीछे उससे निकल गया। गोशालका जो चित्र वहाँ अंकित किया गया है उससे वह बहुत नीच प्रकृतिका ईर्ष्यालु धर्मांध जान पड़ता है।—उसने महावीर (=जैन-तीर्थंकर निगंठ नातपुत्त)को जानसे मारनेकी कोशिश की, ब्राह्मण-देवताकी मूर्तिपर पेशाब-पाखाना किया जिससे ब्राह्मणोंने उसे कूटा आदि आदि। किन्तु इसके विरुद्ध बौद्ध पिटक उसे बुद्धकालीन छह प्रसिद्ध लोकसम्मानित आचार्योंमें एक मानता है, आजीवक सम्प्रदायके तीन आचार्यों (=निर्याताओं)—नन्द वात्स्य, कृश सांकृत्य और मक्खली गोशालमेंसे एक बतलाता है[1]। वहीं[2] यह भी पता लगता है कि मक्खलि गोशाल (आजीवक) आचार्य नग्न रहते तथा कुछ संयम नियमकी पाबन्दी भी करते थे। बुद्धके बुद्धत्व प्राप्त करनेके समय (५३७ ई० पू०में) आजीवक सम्प्रदाय मौजूद था क्योंकि बुद्ध गयासे चलनेपर बोधि और गयाके बीच रास्ते उन्हें उपक नामक आजीवक मिला था।[3] इससे यह भी पता लगता है कि गोशालसे पहिले नन्द

---

[1] मज्झिम निकाय, २।३।६ (मेरा हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०४)
[2] वहीं, १।४।६ [3] म० नि०, १।३।६ (अनुवाद, पृ० १०७)

[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] आचार्य थे।

[illegible] गोशाल नामक व्याख्या [illegible] भी पालामें [illegible] गई [illegible] जिसमें मक्खलि=मा खलि=न लिर, मा पाल=मा पालमें उत्पन्न बताया गया। पाणिनि (४०० ई० पू०) ने मस्करी शब्दको [illegible] पाणिनिका माना है। [illegible] व्याख्याकी जगह पाणिनिका [illegible] [illegible] मत गोशाल।

दर्शन—गोशाल (आजीवक) [illegible] जिन पालि त्रिपिटकमें कई जगह आया है किन्तु सभी जगह [illegible] दुहराया गया है।[1]—

प्राणियों (=सत्वों) के संक्लेश (=चित्त मालिन्य) का [illegible] हेतु=कोई प्रत्यय नहीं। बिना हेतुके ही प्राणी संक्लेशको प्राप्त होते हैं। पालिमाला (चित्त) विशुद्धिका कोई हेतु [illegible]। बिना हेतुके प्राणी विशुद्ध होते हैं। [illegible] पुरुषकी दुहाई नहीं, पुरुष पराक्रम नहीं (बलवीर्य)। सभी सत्व, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव बल-वीर्य-पौरुष बिना हैं। नियति (=भवितव्यता) के वशमें छः अभिजातियों (=जन्मों) में सुख-दुःख अनुभव करते हैं। चौरासी हजार प्रमुख योनियाँ हैं (दूसरा) साठ सौ, (दूसरी) छः सौ। पाँच सौ कर्म हैं, (दूसरे) पाँच कर्म तीन कर्म एक कर्म और आधा कर्म। बासठ प्रतिपद (=मार्ग), बासठ अन्तरकल्प, छः अभिजातियाँ आठ पुरुष भूमियाँ उन्नीस सौ आजीवक उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नाग वास, बीस सौ इन्द्रियाँ तीस सौ नरक छत्तीस रजो (=मलवाली)-धातु सात संज्ञी (=भावान) गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ सात निगंठी गर्भ, सात देव सात मनुष्य, सात पिशाच सात स्वर सात सौ सात पगुट (=गाँठ), सात सौ सात प्रपात, सात सौ सात स्वप्न। और अस्सी लाख छोटे बड़े कल्प हैं जिन्हें मूर्ख और पंडित जानकर और अनुगमन कर दुःखोंका अन्त कर सकते हैं। वहाँ यह नहीं है कि इस शील-व्रतसे, इस तप-ब्रह्म

---

[1] दीघ नि०, १।२ (अनुवाद, पृ० २०), "बुद्धचर्या", पृ० ४६२, ४६३

चयसे मैं अपरिपक्व कर्मका परिपक्व करूँगा परिपक्व कर्मका भोगकर (उसका) अन्त करूँगा। सुख और दुःख द्रोण (=नाप)में नपे हुए हैं। संसारमें घटना-बढ़ना, उत्कर्ष अपकर्ष नहीं होता। जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर खुलती हुई गिर पड़ती है, वैसे ही मूर्ख और पंडित दौड़कर आवागमनमें पड़कर, दुःखका अन्त करेंगे।'

इससे जान पड़ता है कि मक्खलि गोशाल (आजीवक) पूरा भाग्यवादी था, पुनर्जन्म और देवताओंको मानता था और कहता था कि जीवनका रास्ता नपा-तुला है पाप-पुण्य उसमें कोई अन्तर नहीं डालते।

३—पूर्ण काश्यप (५२३ ई० पू०) अक्रियावादी

पूर्णकाश्यपके बारेमें भी हम इससे अधिक नहीं जानते कि वह बुद्धका समकालीन एक प्रसिद्ध तीर्थंकर था।

दर्शन—पूर्ण अच्छे बुरे कर्मोंका निष्फल बतलाता था। किन्तु परलोकके सम्बन्धमें या इस लोकके इस वह स्पष्ट नहीं करता था। उसका मत इस प्रकार उदधृत मिलता है[1]—

(कर्म) करते-कराते, छेदन करते कराते पकाते पकवाते शोक करते, परेशान होते परेशान करते चलते चलाते, प्राण मारते बिना दिया लेते (=चोरी करते), सेंध काटते गाँव लूटते चोरी-बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते झूठ बोलते भी पाप नहीं होता। छुरे जैसे तेज चक्र-द्वारा (काटकर) चाहे इस पृथिवीके प्राणियोंका (कोई) मांसका एक खलियान, मांसका एक पुञ्ज (क्यों न) बना दे, तो (भी) इसके कारण उसको पाप नहीं होगा पापका आगम नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते कटवाते, पकाते-पकवाते गंगाके (उत्तर तीरसे) दक्षिण तीरपर भी (चला) जाय, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं होगा, पापका आगम नहीं होगा। दान देते दिलाते यज्ञ करते-कराते यदि गंगाके

---

[1] [illegible] १।२ (अनुवाद, पृ० १९, २०)

[illegible] और भी जाय, तो इसके कारण [illegible] पुण्य नहीं होगा, पुण्यका आगम नहीं होगा। [illegible] न पुण्य है न पुण्यका आगम [illegible]।

पूरण काश्यपका यह मत परलोकमें भाग जानेवाले पाप-पुण्यके संबंध में माना होगा है इस लोकमें तो चोरी हत्या, व्यभिचारका फल राजदण्डके रूपमें अवश्य ही, [illegible] जाता ही था।

४–प्रक्रुध कात्यायन (५२३ ई० पू०) नित्यपदार्थवादी

प्रक्रुधकी जीवनीके संबंधमें भी हम यही जानते हैं, कि यह बुद्धका ज्येष्ठ समकालीन प्रसिद्ध और लोकसम्मानित तीर्थंकर था।

दर्शन—मक्खलि गोशालने भाग्यवादके कारण पूरण कश्यपने कर्मोंको निष्फल बतलाया था। पूरण काश्यप भी उन्हें निष्फल समझता था। प्रक्रुध कात्यायन हर वस्तुको अचल नित्य मानता था इसलिए कोई कर्म वस्तु स्थितिमें किसी तरहका परिवर्तन ला न। सकता इस तरह वह भी उनी अकर्मण्यतावादपर पहुँचता था। उसका मत इस प्रकार मिलता है[1]—

यह सात काय (=समूह) अकृत=अकृत अकृत=अ निर्मित=अनिर्मित अनिर्मित अवध्य कूटस्थ=स्तम्भ जैसे (अचल) है, यह चल नहीं होते विकारको प्राप्त नहीं होते न एक दूसरेको हानि पहुँचाते। न एक दूसरेके सुख दुःख, या सुख-दुःखके लिए पर्याप्त (=समर्थ) हैं। कौनसे सात? पृथिवी काय (=पृथिवीतत्त्व) जल-काय अग्नि-काय, वायु-काय सुख, दुःख और जीवन—यह सात। यहाँ न (कोई) हन्ता है न घातयिता (=हनन करनेवाला), न सुननेवाला न सुनानेवाला न जाननेवाला, न जतलानेवाला। यदि तीक्ष्ण शस्त्रसे भी काटे (तो भी) कोई किसीको नहीं मारता। मानों कायोंसे हटकर विवर (=खाली जगह) में वह शस्त्र गिरता है।

---

[1] दीघ निकाय, १।२ (अनुवाद, पृ० २१)

प्रक्रुध पथिवा, जल तज वायु इन चार भूता तथा जीवन (=चेतना) के साथ सुख और दुःखको भी अलग तत्त्व मानता था। इन तत्त्वोंके बीचमें काफी खाली जगह है जिसकी वजहसे हमारा कड़ासे कड़ा प्रहार भी वहीं रह जाता है और मूलतत्त्वको नहीं छू पाता। यह विचारधारा बतलाती है कि दृश्य तत्त्वोंकी तहमें किसी तरहके अखंडनीय सूक्ष्म अणुको वह मानता था जो कि एक तरहका परमाणुवादसा मालूम होता है।—खाली जगह या विवर (=आकाश)को उसने आठवाँ पदार्थ नहीं माना। सुख और दुःखको जीवनसे स्वतंत्र वस्तु मानना यही बतलाता है कि कर्मके निष्फल मान लेने पर उन्हें अकृत मान बिना उसके लिए कोई चारा नहीं था।

५—सजय वेलट्ठिपुत्त (५२३ ई० पू०) अनेकान्तवादी

सजय वेलट्ठिपुत्त भी बुद्धका ज्येष्ठ समकालीन तीर्थंकर था।

दर्शन—सजय वेलट्ठिपुत्त और निगंठ नातपुत्त (=महावीर) दोनों ही के दर्शन अनेकान्तवादी हैं। फर्क इतना ही है कि महावीरका जोर हाँ पर ज्यादा है और सजयका नहीं पर जैसा कि सजयके निम्न वाक्य और महावीरके स्याद्वादके मिलानसे मालूम होगा[1]—

'यदि आप पूछें—क्या परलोक है? तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता, दूसरी तरहसे भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता कि वह नहीं है। मैं यह भी नहीं कहता कि वह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक नहीं नहीं है। परलोक है भी और नहीं भी है। परलोक न है और न नहीं है। देवता (=औपपातिक प्राणी) हैं। देवता नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न है और न नहीं है। अच्छे बुरे कर्मके फल हैं, नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न है और न नहीं है। तथागत (=मुक्तपुरुष) मरनेके बाद होते हैं, नहीं होते हैं, ?—यदि मुझसे

[1] दीघ निकाय, १।२ (अनुवाद, पृ० २२)

[illegible]

[illegible]

६—वर्धमान महावीर (५९९-५२५ ई० पू०) सर्वज्ञतावादी

जैन धर्मके संस्थापक वर्धमान पार्श्वनाथ (=नागपुत्र) बुद्धके समकालीन आचार्योंमें थे। उनका जन्म प्राचीन वज्जी[1] प्रजातंत्रकी राजधानी वैशाली में लिच्छवियोंके एक गणतंत्रमें बुद्धके जन्म (५६३ ई० पू०)से कुछ पहिले हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ गण-संस्था (=सीनेट) के सदस्य (=राजाओं)मेंसे एक थे। त्रिशला रानी वैशालीसे हुई थी जिससे एक लड़की हुई। माँ-बापके मरनेके बाद ३० वर्षकी उम्रमें वर्धमानने गृहत्याग किया। १२ वर्ष तक नग्नरूपमें तपस्याके बाद उन्हें केवल (=मोक्ष)का ज्ञान हुआ। तदनन्तर ४२ वर्ष तक उन्होंने अपने धर्मका उपदेश मध्यदेश (=युक्तप्रांत और बिहार)में किया। ७४ वर्षकी उम्रमें पावा[2]में उनका देहान्त हुआ। मृत्युके समय महावीरके

---

[1] जिला मुजफ्फरपुर बिहार। [2] वर्तमान बसाढ़ (पटनासे २७ मील उत्तर)।

[3] कुसीनारा (कसया)से चार मील उत्तरमें पपउर (जिला गोरखपुर)। परंपराको भूलकर पटना जिलाकी पावा नई कल्पना है।

अनुयायियोंमें भारी कलह उपस्थित हो गया था[1]।

तीर्थंकर वर्धमानका जो लोग बार बार या महावीर उनका उल्लेख निगंठ नातपुत्त (=निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र)के

(१) शिक्षा—महावीरकी मुख्य शिक्षाको दो प्रकार उल्लेख किया गया है—

(क) चातुर्याम संवर[2]— निर्ग्रंथ (=जैन सा (=संयमी)से संवृत्त (=आच्छादित संयत) रहता है। जलके व्यवहारका वारण करता है (जिसमें जलके जीव (२) सभी पापोंका वारण करता है (३) सभी पापों वह पापरहित (=धुतपाप) होता है (४) सभी पापों रहता है। चूंकि निर्ग्रंथ इन चार प्रकारके संवरोंसे इसलिए वह गतात्मा (=अनिच्छुक) यतात्मा स्थितात्मा कहलाता है।[3]

(ख) शारीरिक कर्मोंकी प्रधानता—मज्झिम-नि (ज्ञातपुत्र)के शिष्य दीर्घ तपस्वीके साथ बुद्धका वार्तालाप हैं। इसमें दीर्घ तपस्वीने कर्मकी जगह निर्ग्रंथी परिभाषामें जोर देते हुए कर्मों (=दंडों)को काय- वचन मन-दंडों हुए काय-दंड (कायिक कर्म)को संवृत "महादोष-युक्त"

(ग) तीर्थंकर सर्वज्ञ—तीर्थंकर सर्वज्ञ होता है इस हैं आरम्भ-शील बहुत जोर दिया जाता था—

"(तीर्थंकर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी सारे ज्ञान=दर्शनका जा खड़े, सोते, जागते सदा निरन्तर (उनको) ज्ञान=दर्शन उप

---

[1] देखो सामगामसुत्त (म० नि०, ३।१।४, "बुद्ध च
[2] दीघ नि० १।२ (अनु०, प० २१)
[3] म० नि०, २।२।६, 'बुद्धचर्या', पृ० ४४५
[4] म० नि [illegible] पृ० ५६)

[illegible] बुद्धत्व [illegible] —

[illegible] (जो भी) [illegible] (स्त्री) भिक्षा [illegible] पाते, कुकुर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (मार्ग [illegible] स्त्री-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (आप [illegible] हैं फिर) [illegible] पूछा [illegible] —[illegible] कहा [illegible]—'मुझे [illegible] जाता [illegible] भिक्षा [illegible] मिलती [illegible] कुकुरों [illegible] [illegible] [illegible] बैलों [illegible] [illegible] था

(घ) शारीरिक तपस्या—शारीरिक [illegible] महावीरका जोर था, उनका उसमें शारीरिक [illegible] भी जोर [illegible] स्वाभाविक था। इस शारीरिक तपस्या—मरणान्त [illegible] नग्न [illegible] रह [illegible] शीत-उष्णता सहना आदि बातें जो आगमोंमें बहुत आती [illegible]। जो साधुओंकी तपस्या और उसके औचित्यका [illegible] त्रिपिटकमें भी मिलता है। बुद्धने महानाम शाक्यसे कहा था[1]—

एक समय महानाम! मैं राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर रहता था। उस समय बहुत से निगंठ (=जैन साधु) ऋषिगिरिकी कालशिलापर खड़े रहने (का व्रत) ले आसन छोड़ उपक्रम करते हुए कटु तीव्र, [illegible] भोग रहे थे। (कारण पूछनेपर) निगंठोंने कहा—निगंठ नातपुत्त (महावीर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी [illegible] है। वह ऐसा कहते हैं—निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी, दुष्कर क्रिया (=तपस्या) से नाश करो और जो यहाँ तुम काय-वचन-मनसे संयम-युक्त हो यह भविष्यके लिए पापका न करना होगा। इस प्रकार

---

[1] म० नि०, २।३।६ (अनुवाद, पृ० ३०२)
[2] म० नि०, १।२।४ (अनुवाद, पृ० ५९)

तपस्या द्वारा पुराने कर्मोंके अन्त होने और नये कर्मोंके न करनेसे भविष्यमें चित्त निर्मल (=अनास्रव) हो जायगा। भविष्यमें मल (=आस्रव) न होनेसे कर्मका क्षय (हो जायगा), कर्मक्षयसे दुःख-क्षय, दुःख-क्षयसे वेदनाका क्षय, वेदना क्षयसे सभी दुःख नष्ट हो जायगे।'

बुद्धने इसपर उन निगंठोंसे पूछा कि क्या तुम्हें पहिले अपना होना मालूम है? क्या तुमने उस समय पापकर्म किये थे? क्या तुम्हें मालूम है कि इतना दुःख (=पाप फल) नष्ट हो गया, इतना बाकी है? क्या मालूम है कि तुम्हें इसी जन्मसे पापका नाश और पुण्यका लाभ प्राप्त करना है? इसका उत्तर निगंठोंने नहीं में दिया। इसपर बुद्धने कहा—

"ऐसा होनेसे ही तो निगंठो! जो दुनियामें रुद्र (=भयंकर) खूनरंगे हाथोंवाले, क्रूरकर्मा मनुष्योंमें नीच हैं वह निगंठोंमें साधु बनते हैं। निगंठोंने फिर कहा—"गौतम! सुखसे सुख प्राप्य नहीं है दुःखसे सुख प्राप्य है।"

—अर्थात् शारीरिक दुःख ही पाप हटाने और कैवल्य-सुख प्राप्त करनेका मुख्य साधन है यह वर्धमानका विश्वास था।

(२) दर्शन—तप-संयम ही वर्धमानकी मूल शिक्षा मालूम होती है उसमें दर्शनका अंश बहुत कम था यदि था, तो यही कि पानी, मिट्टी, सभी जड़ अजड़ तत्त्व जीवोंसे भरे पड़े हैं, मनुष्यको हर तरहकी हिंसासे बचना चाहिए। इसीलिए उन्होंने जलके व्यवहार, तथा गमन आगमन आदि सबमें भारी प्रतिबंध लगाया। इसीका परिणाम यह हुआ कि जोतने काटने, निराने—जैसे कामोंमें प्रत्यक्ष अगणित जीवोंको मारे जाते देख, जैन लोग खेती छोड़ बैठे और आज वे प्रायः सभी बनिया-वर्गमें पाये जाते हैं।—यूरोपमें यहूदियोंने राजद्वारा खेतके अधिकारसे वंचित होनेके कारण मजबूरन् बनिया-व्यवसाय स्वीकार किया। किन्तु, भारतमें जैनियोंने अपने धर्मसे प्रेरित हो स्वेच्छापूर्वक वैसा किया। मनुष्योंकी एक भारी जमाअतको कैसे धर्म द्वारा उत्पादक-श्रमसे हटाकर पर परिश्रमोपहारी बनाया जा सकता है यहाँ यह इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

§ ३ गौतम बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)

दो सहस्रियों तकके भारतीय दार्शनिक दिमागोंके जबरदस्त प्रयासका अन्तिम फल हमें बुद्धके दर्शन—क्षणिक अनात्मवाद—के रूपमें मिलता है। आगे हम देखेंगे कि भारतीय दर्शनधाराओंमें जिसने काफी समय तक नई गवेषणाओंको जारी रहने दिया वह यही धारा थी।—नागार्जुन असंग वसुबंधु दिङ्नाग धर्मकीर्ति—भारतके अप्रतिम दार्शनिक इसी धारामें पैदा हुए थे। उन्हींके ही उच्छिष्ट भोजी पीछेके प्रायः सारे ही दूसरे भारतीय दार्शनिक दिखलाई पड़ते हैं।

१. जीवनी

सिद्धार्थ गौतमका जन्म ४६२ ई० पू०के आसपास हुआ था। उनके पिता शुद्धोदनको शाक्योंका राजा कहा जाता है किन्तु हम जानते हैं कि शुद्धोदनके साथ-साथ भद्दिय[1] और दण्डपाणि[2]को भी शाक्योंका राजा कहा गया, जिससे यही अर्थ निकलता है कि शाक्योंके प्रजातन्त्रकी गण-संस्था (=सीनेट या पार्लामेंट)के सदस्योंको लिच्छविगणकी भांति राजा कहा जाता था। सिद्धार्थकी मां मायादेवी अपने मके जा रही थीं उसी वक्त कपिलवस्तुसे कुछ मीलपर लुम्बिनी[3] नामक शालवनमें सिद्धार्थ पैदा हुए। उनके जन्मसे ३१८ वर्ष बाद तथा अपने राज्याभिषेकके बीसवें साल अशोकने इसी स्थानपर एक पाषाण स्तम्भ गाड़ा था जो अब भी वहाँ मौजूद है। सिद्धार्थके जन्मके सप्ताह बाद ही उनकी माँ मर गई, और उनके पालन-पोषणका भार उनकी मौसी तथा सौतेली माँ प्रजापती

---

[1] चुल्लवग्ग (विनय पिटक) ७, ("बुद्धचर्या", पृ० ६०)

[2] मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा, १।२।८

[3] वर्तमान रुम्मिनदेई, नेपाल-तराई (नौतनवा-स्टेशनसे ८ मील पश्चिम)।

गौतमीके ऊपर पड़ा। तरुण सिद्धार्थका संसारसे कुछ विरक्त तथा अधिक विचार मग्न देख, शुद्धोदनको डर लगा कि कहीं उनका लड़का भी साधुओंके बहकावेमें आकर घर न छोड़ जाय, इसकेलिए उसने पड़ोसी कोलिय गण (=प्रजातंत्र)की सुन्दरी कन्या भद्रा कापिलायनी (या यशोधरा)से विवाह कर दिया। सिद्धार्थ कुछ दिन और ठहर गये और इस बीचमें उन्हें एक पुत्र पैदा हुआ जिसे अपने उठते विचार-चंद्रके ग्रसनेके लिए राहु समझ उन्होंने राहुल नाम दिया। वृद्ध रोगी, मृत और प्रव्रजित (=संन्यासी)के चार दृश्योंको देख उनकी संसारसे विरक्ति पक्की हो गई और एक रात चुपकेसे वह घरसे निकल भागे। इसके बारेमें बुद्धने स्वयं चुनार (=सुसुमारगिरि)में वत्सराज उदयके पुत्र बोधिराज-कुमारसे कहा था[1]—

"राजकुमार! बुद्ध होनेसे पहिले मुझे भी होता था—'सुखमें सुख नहीं प्राप्त हो सकता, दुःखमें सुख प्राप्त हो सकता है।' इसलिए मैं तरुण बहुत काले केशोंवाला ही सुन्दर यौवनके साथ, प्रथम वयसमें माता पिताके अश्रुमुख छोड़ घरसे प्रव्रजित हुआ। (पहिले) आलार कालाम(के पास) गया।"

आलार कालामने कुछ योगकी विधियां बतलाईं किन्तु सिद्धार्थकी जिज्ञासा उससे पूरी नहीं हुई। वहाँसे चलकर वह उद्दक रामपुत्त (=उद्रक रामपुत्र)के पास गये वहाँ भी योगकी कुछ बातें सीख सके, किन्तु उससे भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। फिर उन्होंने बोधगयाके पास प्रायः छ वर्षों तक योग और अनशनकी भीषण तपस्या की। इस तपस्याके बारेमें वह खुद कहते हैं[2]—

"मेरा शरीर (दुर्बलता)की चरमसीमा तक पहुँच गया था। जैसे आसीतिक (अस्सी सालवाले)की गाँठें वैसे ही मेरे अंग

---

[1] मज्झिम निकाय, २।४।५ (अनुवाद, पृ० ३४५)

[2] वही, पृ० ३४८

प्रत्यंग हो गए थे। जैसे ऊँचा पेर बस ही मेरा कूल्हा हो गया था। जैसे सूखाकी (ऊँचा नीचा) पाँसा बस ही पाँसा गोल हो गया था। जैसे गाड़ीका पुरानी कड़ियाँ टेढ़ी मेढ़ी होती हैं, वैसी ही मेरी पँसुलियाँ हो गई थी। जैसे गहरे कूएँमें तारा, वैसे ही मेरी आँखें दिखाई देती थीं। जैसे कच्चा तोंबा काटकी लौकी हवा धूपसे सूखने जाता है, मुरझा जाती है वैसे ही मेरे सिरकी खाल सूखकर मुरझा गई थी। उस अवस्थामें मेरे पीठके नीचे और पेटकी खाल बिलकुल सट गई थी। यदि मैं पाखाना या पेशाब करनेकेलिए (उठता) तो वहीं भहराकर गिर पड़ता। जब मैं कायाको सहलाते हुए हाथसे गात्रको मलता तो कायाके सड़े जड़वाले रोम झड़ पड़ते। मनुष्य कहते—श्रमण गौतम काला है, कोई कहते—'काला नहीं श्याम'। कोई कहते—'मंगुरवर्ण है'। मेरा वैसा परिशुद्ध गौरा (=परिअवदात) चमड़ेका रंग नष्ट हो गया था।

तिस मैंने इस (तपस्या) से उस चरम दशाको न पाया। (तब विचार हुआ) बोधि(=ज्ञान)केलिए क्या कोई दूसरा मार्ग है? तब मुझे हुआ—'मैंने पिता (=शुद्धोदन) शाक्यके खेतपर जामुनकी ठंडी छायाके नीचे बैठ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार किया था शायद वह मार्ग बोधिका हो। (किन्तु) इस प्रकारकी अत्यन्त कृश पतला कायासे वह (ध्यान)सुख मिलना सुकर नहीं है। फिर मैं स्थूल आहार—दाल भात—ग्रहण करने लगा। उस समय मेरे पास पाँच भिक्षु रहा करते थे। जब मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा। तो वह पाँचों भिक्षु उदासीन हो चल गये।'

आगेकी जीवनयात्राके बारेमें बुद्ध अन्यत्र कहते हैं[1]—

---

[1] म० नि०, १।३।६ (अनुवाद, पृ० १०५)

"मैंने एक रमणीय भभागमें वनखंडमें एक नदी (=निरंजना)को बहते देखा। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। यहां ध्यान-योग्य स्थान है, (सोच) वहां बैठ गया। (और) जन्मनेके दुष्परिणामको जान अनुपम निर्वाणको पा लिया मेरा ज्ञान दर्शन(=साक्षात्कार) बन गया मेरे चित्तकी मुक्ति अचल हो गई यह अन्तिम जन्म है, फिर अब (दूसरा) जन्म नहीं (होगा)।'

सिद्धार्थका यह ज्ञान दर्शन था—दुःख है, दुःखका हेतु (=समुदय), दुःखका निरोध (=विनाश) है और दुःख निरोधका मार्ग। जो धर्म (=वस्तुएं घटनाएं) हैं वह हेतुसे उत्पन्न होते हैं। उनके हेतुको, बुद्धने कहा। और उनका जो निरोध है (उसे भी) ऐसा मत रखनेवाला महा श्रमण।'[1]

सिद्धार्थने उनतीस सालकी आयु (५३८ ई० पू०)में घर छोड़ा। छः वर्ष तक योग-तपस्या करनेके बाद ध्यान और चिंतन द्वारा ३६ वर्षकी आयु (५२८ ई० पू०)में बोधि(=ज्ञान) प्राप्त कर वह बुद्ध हुए। फिर ४५ वर्ष तक उन्होंने अपने धर्म (=दर्शन)का उपदेश कर ८२ वर्षकी उम्रमें ४८३ ई० पू०में कुसीनारा[2]में निर्वाण प्राप्त किया।

२ साधारण विचार

बुद्ध होनेके बाद उन्होंने सबसे पहिले अपने ज्ञानका अधिकारी उन्हीं पाँचों भिक्षुओंको समझा, जो कि अनशन त्यागनेके कारण पतित समझ उन्हें छोड़ गये थे। पता लगाकर वह उनके आश्रम ऋषि-पतन मृगदाव (सारनाथ बनारस) पहुँचे। बुद्धका पहिला उपदेश उसी शंकाको हटानेके लिए था, जिसके कारण कि अनशन तोड़ आहार आरम्भ करनेवाले गौतम

---

[1] "ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः।"

[2] कसया, जिला गोरखपुर।

का कर द्वार आर्य है। बुद्ध कहा[1]—

भिक्षुओ! इन दो अतियों (=चरम-सीमाओं) का, मनुष्य को त्याग करना चाहिए।—(१) काम-सुखों में लिप्त होना, (२) शरीर पीड़ाओं में लगना।—इन दोनों अतियों को छोड़ (मैं) ने मध्यम मार्ग खोज लिया। (जो कि) आँख देनेवाला, ज्ञान बढ़ानेवाला शान्ति (देने)वाला है। यह (मध्यम मार्ग) ही आर्य (=श्रेष्ठ) अष्टांगिक (=आठ अंगोंवाला) मार्ग है, जैसे कि—ठीक दृष्टि (=ज्ञान) ठीक संकल्प ठीक वचन ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक समाधि।

(१) चार आर्य-सत्य—

दुःख दुःख-समुदय (०हेतु) दुःख निरोध, दुःखनिरोधगामी मार्ग—जिनका जिक्र अभी हम कर चुके हैं, वह बुद्धके आर्य-सत्य—श्रेष्ठ सच्चाइयाँ—कहा है।

क दुःख-सत्य की व्याख्या करते हुए बुद्धने कहा है—'जन्म भी दुःख है बुढ़ापा भी दुःख है मरण शोक रोग—सारी विपन्नता—हरानगी दुःख है। अप्रियसे संयोग प्रियसे वियोग भी दुःख है इच्छा करके जिसे नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँचों उपादान स्कन्ध दुःख है।'[2]

(पाँच उपादान स्कंध)—रूप, वेदना संज्ञा संस्कार, विज्ञान—यही पाँचों उपादान स्कंध है।

(a) रूप—चारों महाभूत—पृथिवी, जल वायु, अग्नि यह रूप उपादान स्कंध है।

---

[1] "धर्मचक्रप्रवर्तन-सूत्र"—संयुत्त निकाय ५५।२।१ ("बुद्धचर्या", पृ० २३)

[2] महासतिपट्ठान सुत्त (दीघ निकाय, २।९)

(b) वेदना—हम वस्तुओं या उनके विचारके सम्पर्कमें आनेपर जो सुख दुख, या न सुख-दुखके रूपमें अनुभव करते हैं इसे ही वेदना स्कंध कहते हैं।

(c) संज्ञा—वेदनाके बाद हमारे मस्तिष्कपर पहिलेसे ही अंकित संस्कारों द्वारा जो हम पहिचानते हैं—यह वही देवदत्त है, इसे संज्ञा कहते हैं।

(d) संस्कार—रूपकी वेदनाओं और संज्ञाओंका जो संस्कार मस्तिष्क पर पड़ा रहता है और जिसकी सहायतासे कि हमने पहिचाना—'यह वही देवदत्त है', इसे संस्कार कहते हैं।

(e) विज्ञान—चेतना या मनका विज्ञान कहते हैं।

ये पाँचों स्कंध जब व्यक्तिकी तृष्णाके विषय होकर पास आते हैं तो इन्हें ही उपादान स्कंध कहते हैं। बुद्धने इन पाँचों उपादान स्कंधोंको दुःख रूप कहा है।

ख दुःख हेतु—दुःखका हेतु क्या है? तृष्णा—काम (भोग)की तृष्णा भवकी तृष्णा, विभवकी तृष्णा। इन्द्रियोंके जितने प्रिय विषय या काम हैं उन विषयोंके साथ संपर्क उनका ध्यान तृष्णाको पैदा करता है। 'काम (=प्रिय भोग)के लिए ही राजा भी राजाओंसे लड़ते हैं क्षत्रिय भी क्षत्रियोंसे, ब्राह्मण भी ब्राह्मणोंसे, गृहपति (=वैश्य) भी गृहपतिसे माता भी पुत्रसे, पुत्र भी मातासे, पिता पुत्रसे पुत्र पितासे भाई भाईसे बहिन भाईसे, भाई बहिनसे, मित्र मित्रसे लड़ते हैं। वह आपसमें कलह विग्रह विवाद करते एक दूसरेपर हाथसे भी, दंडसे भी, शस्त्रसे भी आक्रमण करते हैं। वह (इससे) मर भी जाते हैं, मरण समान दुःखको प्राप्त होते हैं।'[1]

ग दुःख-विनाश—ऐसी तृष्णाके अत्यन्त निरोध परित्याग विनाशको दुःख निरोध कहते हैं। प्रिय विषयों और तद्विषयक विचारों-विकल्पोंसे जब तृष्णा छूट जाती है तभी तृष्णाका निरोध होता है।

---

[1] मज्झिम निकाय, १।२।३

भावनाओंका कायम रखनेका प्रयत्न—यह ठीक प्रयत्न है।

(b) ठीक स्मृति—काया, वेदना, चित्त और मनके धर्मोंकी ठीक स्थितियां—उनके मलिन, क्षण विध्वंसी आदि होने—का सदा स्मरण रखना।

(c) ठीक समाधि—'चित्तकी एकाग्रताको समाधि कहते हैं'।[1] ठीक समाधि वह है जिससे मनके विक्षेपोंको हटाया जा सके। बुद्धकी शिक्षाओंको अत्यन्त संक्षेपमें एक पुरानी गाथामें इस तरह कहा गया है—

सारी बुराइयोंसे न करना, और अच्छाइयोंका संपादन करना अपने चित्तको संयम करना यह बुद्धकी शिक्षा है।

अपनी शिक्षाका क्या मुख्य प्रयोजन है इसे बुद्धने इस तरह बतलाया है[2]—

'भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य (=भिक्षुका जीवन) न लाभ-सत्कार प्रशंसाके लिए है न शील (=सदाचार)की प्राप्तिके लिए, न समाधि प्राप्तिके लिए न ज्ञान=दर्शनके लिए है। जो न अटल चित्तकी मुक्ति है उसीके लिए यह ब्रह्मचर्य है यही सार है यही उसका अन्त है।

बुद्धके दार्शनिक विचारोंका देनेसे पूर्व उनके जीवनके बाकी अंशको समाप्त कर देना जरूरी है।

सारनाथमें अपने धर्मका प्रथम उपदेश कर, वहीं वर्षा बिता, वर्षाके अन्तमें स्थान छोड़ते हुए प्रथम चार मासोंमें हुए अपने साठ शिष्योंको उन्होंने इस तरह संबोधित किया—[3]

'भिक्षुओ! बहुत जनोंके हितके लिए बहुत जनोंके सुखके लिए, लोकपर दया करनेके लिए देव-मनुष्योंके प्रयोजन हित-सुखके लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। मैं भी उरुवेला सेनानी ग्राममें धर्म उपदेशके लिए जा रहा हूँ।

---

[1] म० नि०, १।५।४ [2] म० नि०, १।३।६

[3] संयुत्त नि०, ४।१।४

इसके बाद ४४ वर्ष। बुद्ध जीवित रहे। इन ४४ वर्षोंमें बरसातके तीन मासोंको छोड़ वह बराबर विचरते जहाँ-तहाँ ठहरते लोगोंको अपने धर्म और दर्शनका उपदेश करते रहे।[1] बुद्धने बुद्धत्व प्राप्तिके बादकी ४४ बरसातोंको निम्न स्थानोंपर बिताया था—

स्थान	ई०पू०	स्थान	ई०पू०
(लुंबिनी जन्म	५६३)	बीच)	५१७
(बोधगया बुद्धत्व में	५२८)	१३ चालिय पर्वत (बिहार)	५१६
१ ऋषिपतन (सारनाथ)	५२८	१४ श्रावस्ती (गोंडा)	५१५
२-४ राजगृह	५२७-२५	१५ कपिलवस्तु	५१४
५ वैशाली	५२४	१६ आलवी (अरवल)	५१३
६ मकुल पर्वत (बिहार)	५२३	१७ राजगृह	५१२
७ (त्रयस्त्रिंश ?)	५२२	१८ चालिय पर्वत	५११
८ सुंसुमारगिरि(=चुनार)	५२१	१९ चालिय पर्वत	५१०
९ कौशाम्बी (इलाहाबाद)	५२०	२० राजगृह	५०९
१० पारिलेयक (मिर्जापुर)	५१९	२१-४५ श्रावस्ती	५०८-४८४
११ नाला (बिहार)	५१८	४६ वैशाली	४८३
१२ वेरंजा (कन्नौज-मथुराके		(कुसीनारामें निर्वाण	४८३)

उनके विचरणका स्थान प्रायः सारे युक्त प्रान्त और सारे बिहार तक सीमित था। इससे बाहर वह कभी नहीं गये।

(२) जनतन्त्रवाद—

हम देख चुके हैं, कि जहाँ बुद्ध एक ओर अत्यन्त भोग-मय जीवनके विरुद्ध थे, वहाँ दूसरी ओर वह शरीर सुखानेको भी मूर्खता समझते थे। कर्मकाण्ड, भक्तिकी अपेक्षा उनका झुकाव ज्ञान और बुद्धिवादकी ओर

---

[1] बुद्धके जीवन और मुख्य मुख्य उपदेशोंको प्राचीनतम सामग्रीके आधारपर मैंने "बुद्धचर्या"में संगृहीत किया है।

रहता था। उनके शासनकी विशेषता इन धर्मों कहनेवाले हैं। इन सारी बातोंके कारण अपने शासनमें और बादमें भी बुद्ध प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको आकर्षित करनेमें समर्थ हुए। मगधके सारिपुत्त, मौद्गल्यायन महाकाश्यप ही नहीं सुदूर उज्जैनके राजपुरोहित महाकात्यायन जैसे विद्वान् ब्राह्मण उनके शिष्य बने। विद्वान ब्राह्मणोंके धर्म और स्वार्थके विरोधी बौद्धधर्मके प्रति ब्राह्मणोंमें कितना पक्षपात—सामने प्रारंभिक सहिष्णुता—न रहा। मगधका राजा बिंबिसार बुद्धका अनुयायी था। कोसलके राजा प्रसेनजित् को इसका बड़ा अभिमान था कि बुद्ध भी कोसल क्षत्रिय हैं और वह भी कोसल क्षत्रिय। उसने बुद्धको और नजदीकी बनानेके लिए शाक्यवंशकी कन्याके साथ ब्याह किया था। शाक्य, मल्ल लिच्छवि प्रजातन्त्रोंमें उनके अनुयायियोंकी भारी संख्या थी। बुद्धका जन्म एक प्रजातन्त्र (शाक्य)में हुआ था, और मृत्यु भी एक प्रजातंत्र (मल्ल) हीमें हुई। प्रजातन्त्र प्रणाली उनको कितनी प्रिय थी, यह इससे मालूम है, कि अजातशत्रुके साथ अच्छा संबंध होनेपर भी उन्होंने उसके विरोधी वज्जीके लिच्छवियोंकी प्रशंसा करते हुए राष्ट्रके अपराजित रहनेवाली निम्न सात बातें बताई[1]—

(१) बराबर एकत्रित हो सामूहिक निर्णय करना, (२) (निर्णयके अनुसार) कर्त्तव्यको एक हो करना, (३) व्यवस्था (=कानून और विनय)का पालन करना (४) वृद्धोंका सत्कार करना, (५) स्त्रियों पर जबर्दस्ती नहीं करना, (६) जातीय धर्मका पालन करना (७) धर्माचार्योंका सत्कार करना।

इन सात बातोंमें सामूहिक निर्णय सामूहिक कर्त्तव्य-पालन स्त्री स्वातन्त्र्य प्रगतिके अनुकूल विचार थे किन्तु बाकी बातोंपर जोर देना यही बतलाता है, कि वह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं करना

---

[1] देखो, महापरिनिब्बाण-सुत्त (दी० नि०, २।३), "बुद्धचर्या", पृष्ठ ५२०-२२

चाहते थे। वैयक्तिक तृष्णाके दुष्परिणामको उन्होंने देखा था। दुःखका कारण यही तृष्णा है। दुःखका चित्रण करते हुए उन्होंने कहा था[1]—

"चिरकालसे तुमने माता पिता-पुत्र-दुहिताके मरणको सहा, भाग रागकी आफतको सहा, प्रियके वियोग, अप्रियके संयोगसे रोते क्रन्दन करते जितना आंसू तुमने गिराया, वह चारों समुद्रोंके जलसे भी ज्यादा है।

यहां उन्होंने दुःख और उसकी जड़को समाजमें न ख्याल कर व्यक्तिमें देखनेकी कोशिश की। भोगकी तृष्णाकेलिए राजाओं, क्षत्रियों ब्राह्मणों, वैश्यों, सारी दुनियाको झगड़ते मरते-मारते देख भी उस तृष्णाको व्यक्तिसे हटानेकी कोशिश की। उनके मतानुसार मानो, कांटोंसे बचनेकेलिए सारी पृथिवीको तो नहीं ढांका जा सकता है हां, अपने पैरोंको चमड़ेसे ढांक कर कांटोंसे बचा जा सकता है। वह समय भी ऐसा नहीं था कि बुद्ध जैसे प्रयोगवादी दार्शनिक सामाजिक पापोंको सामाजिक चिकित्सासे दूर करनेकी कोशिश करते। तो भी वैयक्तिक सम्पत्तिकी बुराइयोंको वह जानते थे, इसीलिए जहां तक उनके अपने भिक्षु-संघका संबंध था, उन्होंने उसे हटाकर भोगमें पूर्ण साम्यवाद स्थापित करना चाहा।

(३) दुःख विनाश-मार्गकी त्रुटियाँ—

बुद्धका दर्शन घोर क्षणिकवादी है किसी वस्तुको वह एक क्षणसे अधिक ठहरनेवाली नहीं मानते किन्तु इस दृष्टिको उन्होंने समाजकी आर्थिक व्यवस्थापर लागू नहीं करना चाहा। सम्पत्तिशाली शासक-शोषक-समाजके साथ इस प्रकार शान्ति स्थापित कर लेनेपर उनके जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिकको ऊपरके तबकेमें सम्मान बढ़ना लाजिमी था। पुरोहित-वर्गके कूटदंत, सोणदंड जैसे धनी प्रभुताशाली ब्राह्मण उनके अनुयायी बनते थे राजा लोग उनकी आवभगतके लिए उतावले दिखाई पड़ते थे। उस वक्तका धनकुबेर व्यापारी-वर्गको उससे भी

---

[1] सं० नि०, १४

ज्यादा उनके सत्कारके लिए अपना दैनिकी लाल रहता था जितने कि आजके भारतीय सम्राट गौमांसके लिए। बावजूदे बराबर मुख (अनार्यविहार) व गिरिव्रज और एक भारी बाग (जाता) मठोंपर बुद्ध और उनके भिक्षुओंके रहनेके लिए दिया। उसी राजाकी दूसरी राजधानी विशालामें भारी खर्चके साथ एक दूसरा विहार (=मठ) पूर्वाराम बनवाया था। दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम भारतके साथ व्यापारके महान केन्द्र कौशाम्बीमें भी भारी मठोंका तो विहार बनवानेमें हाथी कर ली थी। गर्व तो यह है कि बुद्धके धर्मका प्रचारमें राजाओंने भी अधिक व्यापारियोंने सहायता की। यदि बुद्ध तत्कालीन आर्थिक व्यवस्थाके विरुद्ध जाते तो यह सुभीता कहाँसे हो सकता था?

३ दार्शनिक विचार

अनित्य दुःख अनात्म[1] इस एक सूत्रमें बुद्धका सारा दर्शन आ जाता है। इन तीनों दुःखके बारेमें हम कह चुके हैं।

(१) क्षणिकवाद—बुद्धने तत्त्वोंका विभाजन तीन प्रकारसे किया है—(१) स्कन्ध (२) आयतन (३) धातु।

स्कन्ध पाँच हैं—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। रूपमें पृथिवी आदि चारों महाभूत शामिल हैं। विज्ञान चेतना या मन है। वेदना सुख दुःख आदिका जो अनुभव होता है उसे कहते हैं। संज्ञा होश या अभिज्ञानको कहते हैं। संस्कार मनपर बची रही छाप या वासनाको कहते हैं। इस प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार—रूपके सपक्षमें विज्ञान (=मन)की भिन्न भिन्न स्थितियाँ हैं।[2] बुद्धने इन स्कन्धोंको 'अनित्य=संस्कृत (=कृत)=

---

[1] अंगुत्तर निकाय, ३।१।३४

[2] महावेदल्ल-सुत्त म० नि०, १।५।३—"संज्ञा वेदना विज्ञान यह तीनों धर्म (=पदार्थ) मिलेजुले हैं, विलग नहीं विलग करके इनका भेद नहीं जतलाया जा सकता।

प्रतीत्य समुत्पन्न=क्षय धर्मवाला=व्यय धर्मवाला= निरोध (= विनाश) धर्मवाला"[1] कहा है।

आयतन बारह है—छ इन्द्रिया (चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा काया या चमडा और मन) और छ उनके विषय—रूप, शब्द, गंध रस स्प्रष्टव्य, और धर्म (=वेदना, संज्ञा संस्कार)।

धातु अठारह है—उपरोक्त छ इन्द्रिया तथा उनके छ विषय और इन इन्द्रियो तथा विषयोंके संपर्कसे होनेवाले छ विज्ञान (=चक्षु विज्ञान, श्रोत्र विज्ञान घ्राण विज्ञान जिह्वा विज्ञान काय विज्ञान और मन विज्ञान)।

विश्वकी सारी वस्तुए स्कन्ध, आयतन धातु तीनोंमेंसे किसी एक प्रक्रियामें बाटी जा सकती है। इन्हे ही नाम और रूपमें भी विभक्त किया जाता है, जिनमें नाम विज्ञानका पर्यायवाची है। यह सभी अनित्य है—[2]

"यह अटल नियम है— रूप (महाभूत) वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान (ये) सारे संस्कार (=कृत वस्तुए) अनित्य है।"

"रूप वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान (ये पाचो स्कन्ध) नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अविकारी नहीं है यह लोकमें पंडितसम्मत (बात) है। मैं भी (वैसा) ही कहता हूँ। ऐसा कहने समझाने पर भी जो नहीं समझता नहीं देखता उस बालक (=मूर्ख) अंध, बेअक्ल, अजान केलिए मैं क्या कर सकता हूँ।[3]

रूप (भौतिक पदार्थ)की क्षणिकताको तो आसानीसे समझा जा सकता है। विज्ञान (=मन) उससे भी क्षणभंगुर है, इसे दर्शाते हुए बुद्ध कहते है—

'भिक्षुओ! यह बहुत बेहतर है, कि अजान (पुरुष) इस चार महाभूतोंकी कायाको ही आत्मा(=नित्य तत्त्व) मान ले किन्तु

---

[1] महानिदान-सुत्त (दी० नि०, २।१५, "बुद्धचर्या", १३३)
[2] अंगुत्तर निकाय, ३।१।३४ [3] संयुत्त नि०, १६

चित्तरा (जैसा मानता ठीक) नहीं। ना क्या ? चारों महाभूतोंको यह काया एक [illegible] तीन चार पाँच [illegible] सौ वर्ष तक भी मौजूद रहा जाती है, किन्तु जिस चित्त मन या विज्ञान कहा जाता है वह रात और दिनमें भी (पहिलेसे) दूसरा ही उत्पन्न होता है, दूसरा ही नष्ट होता है।'[1]

बुद्धके दर्शनमें अनित्यता एक ऐसा नियम है जिसका कोई अपवाद नहीं है।

बुद्धका अनित्यवाद भी दूसरा ही उत्पन्न होता, दूसरा ही नष्ट होता है के रूप अनुसार किसी एक मौलिक तत्त्वका बाहरी परिवर्तनमात्र नहीं बल्कि एकका बिलकुल नाश और दूसरेका बिलकुल नया उत्पाद है।—बुद्ध कार्य कारणकी निरन्तर या अविच्छिन्न सन्ततिको नहीं मानते।

(२) प्रतीत्य समुत्पाद—यद्यपि कार्य कारणका बुद्ध अविच्छिन्न सन्तति नहीं मानते तो भी वह यह मानते हैं कि "इसके होनेपर यह होता है"[2] (एकके विनाशके बाद दूसरेकी उत्पत्ति इसी नियमको बुद्धने प्रतीत्य समुत्पाद नाम दिया है)। हर एक उत्पादका कोई प्रत्यय है। प्रत्यय और हेतु (=कारण) समानार्थक शब्द मालूम होते हैं किन्तु बुद्ध प्रत्ययसे वही अर्थ नहीं लेते जो कि दूसरे दार्शनिकोंका हेतु या कारणसे अभिप्रेत है। प्रत्ययसे उत्पाद का अर्थ है, बीजनसे उत्पाद—यानी एकके बीत जाने नष्ट हो जानेपर दूसरेकी उत्पत्ति। बुद्धका प्रत्यय ऐसा हेतु है जो किसी वस्तु या घटनाके उत्पन्न होनेसे पहिले क्षण सदा लुप्त होते देखा जाता है। प्रतीत्य समुत्पाद कार्यकारण नियमको अविच्छिन्न नहीं विच्छिन्न प्रवाह[3] बतलाता है। प्रतीत्य समुत्पादके इसी विच्छिन्न प्रवाहको लेकर आगे नागार्जुनने अपने शून्यवादको विकसित किया।

---

[1] संयुत्त नि०, १२।७ [2] "अस्मिन सति इदं भवति।" (म० नि०, २।४।८, अनुवाद, पृ० १५५)

[3] Discontinuous continuity

प्रतीत्य-समुत्पाद बुद्धके सारे दर्शनका आधार है उनके दर्शनके समझनेकी यह कुंजी है, यह खुद बुद्धके इस वचनसे मालूम होता है[1]—

"जो प्रतीत्य समुत्पादको देखता है, वह धर्म (=बुद्धके दर्शन) को देखता है, जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पादको देखता है। यह पाँच उपादान स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान) प्रतीत्य समुत्पन्न (=विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पन्न) है।'

प्रतीत्य समुत्पादके नियमको मानव व्यक्तिमें लगाते हुए बुद्धने इसके बारह अंग (=द्वादशांग प्रतीत्य समुत्पाद) बतलाये हैं। पुराने उपनिषदके दार्शनिक तथा दूसरे कितने ही आचार्य नित्य ध्रुव, अविनाशी तत्त्वको आत्मा कहते थे। बुद्धके प्रतीत्य समुत्पादमें आत्माके लिए कोई गुंजाइश न थी, इसीलिए आत्मवादको वह महा अविद्या कहते थे। इस बातको उन्होंने अपने एक उपदेश[2]में अच्छी तरह समझाया है—

'सात्ति केवट्टपुत्त भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि (=धारणा) उत्पन्न हुई थी—मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ कि दूसरा नहीं बल्कि वही (एक) विज्ञान (=जीव) संसरण-संधावन (=आवागमन) करता रहता है।'

बुद्धने यह बात सुनी तो बुलाकर पूछा—

"'क्या सचमुच सात्ति! तुझे इस प्रकारकी बुरी धारणा हुई है?'

'हाँ, दूसरा नहीं वही विज्ञान (=जीव) संसरण-संधावन करता है।'

सात्ति! वह विज्ञान क्या है?

यह जो, भन्ते! वक्ता अनुभव करता है, जो कि यहाँ वहाँ (जन्म लेकर) अच्छे बुरे कर्मोंके फलको अनुभव करता है।

निकम्मे (=मोघपुरुष)! तूने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते

---

[1] मज्झिम नि०, १।३।८

[2] [illegible] म० नि०, १।४।८ (अनुवाद, पृ० १५१ ८)

वेदना आदिके अनुसार) अनुरोध (=राग), विरोधमें पड़ा सुखमय, दुःखमय न सुख-न दुःखमय वेदनाको अनुभव करता है, उसका अभिनन्दन करता है। (इस प्रकार) अभिनंदन करते उसे नन्दी (=तृष्णा) उत्पन्न होती है। वेदनाओंके विषयमें जो यह नन्दी (=तृष्णा) है, (यही) उसका उपादान (=ग्रहण करना या ग्रहण करनेकी इच्छा) है।"

(३) अनात्मवाद—बुद्धके पहिले उपनिषदके ऋषियोंको हम आत्माके दर्शनका जबर्दस्त प्रचार करते देखते हैं। साथ ही उस समय चार्वाककी तरहके भौतिकवादी दार्शनिक भी थे यह भी बतला चुके हैं। नित्यतावादियोंके आत्मा संबंधी विचारोंको बुद्धने दो भागोंमें बाँटा है,[1] एक वह जिसमें आत्माको रूपी (इंद्रिय-गोचर माना जाता है, दूसरेमें उसे अरूपी माना गया है)। फिर इन दोनों विचारवालोंमें कुछ आत्माको अनन्त मानते हैं और कुछ सान्त (=परित्त या अणु)। फिर ये दोनों विचारवाले नित्यवादी और अनित्यवादी दो भागोंमें बँटे हैं—

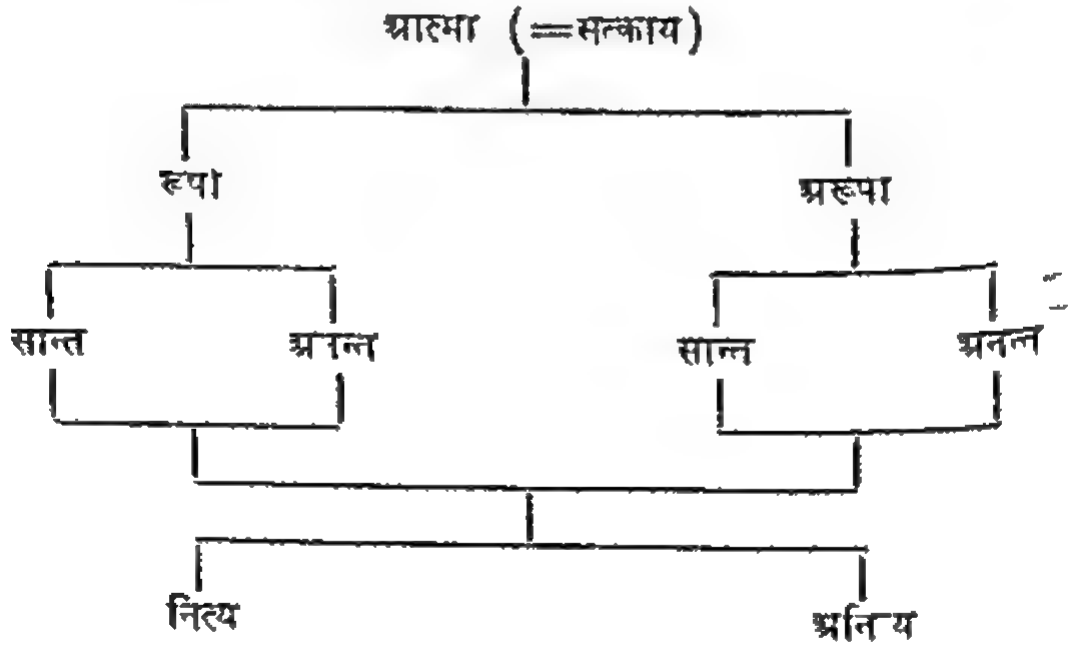

[1] महानिदान-सुत्त, दी० नि०, २।१५ ("बुद्धचर्या, पृ० १३१, ३२)

आत्मवादके लिए बुद्धने एक दूसरा शब्द सत्काय-दृष्टि भी व्यवहृत किया है। सत्कायका अर्थ है कायामें विद्यमान (=कायामें भिन्न अजर अमर तत्व)। अभी सात्ति केवट्टपुत्तके विज्ञान (=जीव)के आवागमनका बात करनेपर बुद्धने उसे कितना फटकारा और अपनी स्थितिको स्पष्ट किया यह बतला चुके हैं। सत्काय (=आत्मा) की धारणाको बुद्ध दर्शन-संबंधी एक भारी बंधन (=दृष्टि-संयोजन) मानते थे और सच्चे ज्ञानकी प्राप्तिके लिए उसके नष्ट होनेकी सबसे ज्यादा जरूरत समझते थे। बुद्धकी शिष्या पटिता धम्मदिन्नाने अपने एक उपदेशमें[1] पाँच उपादान (=ग्रहण करनेकी इच्छासे युक्त)-स्कंधोंको सत्काय बतलाया है, और आवागमनकी तृष्णाको सत्काय दृष्टिका कारण।

बुद्ध अविद्या और तृष्णासे मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करते हैं। हम लिख आये हैं कि कैसे जर्मन दार्शनिक शोपनहारने बुद्धकी इसी सर्वशक्तिमती तृष्णाको बहुत व्यापक क्षेत्रमें प्रयोग किया।

लेकिन बुद्ध सत्काय-दृष्टि या आत्मवादकी धारणाको नैसर्गिक नहीं मानते थे इसीलिए उन्होंने कहा है—[2]

'उत्तान (ही) सो सकनेवाले (दुधमुंहे) अबोध छोटे बच्चेको सत्काय (=आत्मवाद)का भी (पता) नहीं होता फिर कहाँसे उसे सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी?'

—यहाँ मिलाइए भेड़ियेकी मांदसे निकाली गई लड़की कमलासे जिसने चार वर्षमें ३० शब्द सीखे।[3]

उपनिषदके इतने परिश्रमसे स्थापित किए आत्माके महान् सिद्धान्तको प्रतीत्यसमुत्पादवादी बुद्ध कितनी तुच्छ दृष्टिसे देखते थे?—[4]

---

[1] चूलवेदल्ल-सुत्त, म० नि०, १।५।४ (अनुवाद, पृ० १७६)

[2] महामालुंक्य-सुत्त, म० नि०, २।२।४ (अनुवाद, पृ० २५४)

[3] "वैज्ञानिक भौतिकवाद।" पृष्ठ १६७-८ [4] मज्झिम नि०, १।१।२—"अयं भिक्खवे! केवलो परिपूरो बाल धम्मो।"

' जो यह मेरा आत्मा अनुभव करता, अनुभवका विषय है, और तहाँ-तहाँ (अपने) भले बुरे कर्मोंके विपाकका अनुभव करता है, यह मेरा आत्मा नित्य=ध्रुव=शाश्वत=अविपरिणामी है, आत्मा क्यों तक वैसा का रहेगा—यह भिक्षुओ! मेरा सम्पूर्ण वाद धर्म (=मूल सिद्धान्त) है।"

अपने शास्त्रोंमें अनात्मा बुद्धको अभावात्मक वस्तु अभिप्रेत नहीं है। उपनिषदोंमें आत्माको भी नित्य, ध्रुव, वस्तु सत्य माना जाता था। बुद्धने उसका निम्न प्रकारसे उत्तर दिया—

(उपनिषद्)—आत्मा=नित्य, ध्रुव=वस्तुसत्

(बुद्ध)—अनत्मा=अ नित्य, अ ध्रुव=वस्तुसत्

इसीलिए वह एक जगह कहते हैं—

'रूप अनात्मा है वेदना अनात्मा है संज्ञा संस्कार विज्ञान सारे धर्म अनात्मा हैं।'

बुद्धने प्रतीत्य-समुत्पादके जिस महान् और व्यापक सिद्धान्तका आविष्कार किया था उसके प्रकट करनेकेलिए उस वक्त अभी भाषा भी तैयार नहीं हुई थी इसलिए अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिये जहाँ उन्हें प्रतीत्य-समुत्पाद सम्बन्धी जैसे कितने ही नये शब्द गढ़ने पड़े, वहाँ कितने ही पुराने शब्दोंको उन्होंने अपने नये अर्थोंमें प्रयुक्त किया। उपरोक्त उद्धरणमें धर्मको उन्होंने अपने खास अर्थमें प्रयुक्त किया है, जो कि आजके साइंसकी भाषामें वस्तुको जगह प्रयुक्त होनेवाली घटना शब्दका पर्यायवाची है। 'ये धर्मा हेतु प्रभवा (=जो धर्म हैं वह हेतुसे उत्पन्न हैं)—यहाँ भी धर्म विच्छिन्न प्रवाह वाले विश्वके क्षण-तरंग अवयवको बतलाता है।

(४) अ-भौतिकवाद—आत्मवादके बुद्ध जबर्दस्त विरोधी थे सही, किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिए, कि वह भौतिक (=जड़) वादी थे। बुद्धके समय कोसलदेशकी सालविका नगरीमें लोहित्य नामक एक ब्राह्मण

---

[1] चूलसच्चक-सुत्त, म० नि०, १।४।५ (अनु०, पृ० १३८)

सामन्त रहता था। धर्मोंके बारेमें उसकी बहुत बुरी सम्मति थी[1]—

"संसारमें (कोई ऐसा) श्रमण (=संन्यासी) या ब्राह्मण नहीं है, जो अच्छे धर्मको जानकर दूसरेको समझावेगा। भला दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा? (नये नये धर्म क्या हैं), जैसे कि एक पुराने बंधनको काटकर एक दूसरे नये बंधनको डालना। इसी प्रकार मैं इसे पाप (=बुराई) और लोभकी बात समझता हूँ।"

बुद्धने अपने शील समाधि प्रज्ञा संबंधी उपदेश द्वारा उसे समझानेकी कोशिश की थी।

कोसलदेशमें ही एक दूसरा सामन्त—सेतव्या का स्वामी पायासी राजन्य था। उसका मत था[2]—

"यह भी नहीं है, परलोक भी नहीं है, जीव मरनेके बाद (फिर) नहीं पैदा होते, और अच्छे बुरे कर्मोंका कोई भी फल नहीं होता।'

पायासी क्या परलोक और पुनर्जन्मको नहीं मानता था इसकेलिए उसकी तीन दलील थीं जिन्हें कि बुद्धके शिष्य कुमार काश्यपके सामने उसने पेश की थीं—(१) किसी मरने लौटकर नहीं कहा, कि दूसरा लोक है, (२) धर्मात्मा आस्तिक—जिन्हें स्वर्ग मिलना निश्चित है—भी मरनेसे अनिच्छुक होते हैं, (३) जीवके निकल जानेसे मृत शरीरका न वजन कम होता है, और सावधानीसे मारनेपर भी जीवका कहींसे निकलते नहीं देखा जाता।

बुद्ध समझते थे कि भौतिकवाद उनके ब्रह्मचर्य और समाधिका भी वैसा ही विरोधी है जैसा कि वह आत्मवादका विरोधी है। इसीलिए उन्होंने कहा[3]—

'वही जीव है वही शरीर है, (दोनों एक हैं) ऐसा मत होनेपर

---

[1] दीघ निकाय, १।१२ (अनुवाद, पृ० ८२)
[2] दीघ नि०, २।१० (अनु०, पृ० १९९)
[3] अंगुत्तर नि०, ३

ब्रह्मचर्यवास [illegible] सकता। जीव दूसरा है शरीर दूसरा है' ऐसा मत (=दृष्टि) मानने पर भी ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता।'

आत्मा ब्रह्मचर्यवास (=साधुका जीवन) तब करता है, जब कि इस जीवन में भी उसे पाप पाप या काम पूरा करने का अवसर दिखलाता है। भौतिकवादियों के बारे में भौतिक ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ है। शरीर और आत्मा भिन्न भिन्न मानने वाले आत्मवादियों के लिए भी ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ है क्योंकि नित्य ध्रुव आत्मामें ब्रह्मचर्य द्वारा मनोमल संवर्द्धनकी गुंजाइश नहीं। इस तरह बुद्धने अपनेको अभौतिकवादी अनात्मवादीकी स्थितिमें रक्खा।

(५) अनीश्वरवाद—बुद्धके [illegible] जो [illegible]—अनित्य, अनात्म, प्रतीत्य समुत्पाद—हम [illegible] उसमें ईश्वर या ब्रह्मकी भी उसी तरह गुंजाइश नहीं है जैसे कि आत्माकी। यह सच है कि बुद्धने ईश्वर मान्यपर उतना अधिक व्याख्यान नहीं दिया है, जितना कि आत्मवादपर। इससे कुछ भारतीय—साधारण ही नहीं सत्यप्रतिष्ठ पश्चिमी ढंगके प्राफेसर—भी यह कहते हैं कि बुद्धने चुप रहकर इस तरहसे बहुत उपनिषदोंके सिद्धान्तोंको पूर्ण स्वीकृति दे दी है।

ईश्वरका ख्याल जहाँ आता है उसमें विश्वके स्रष्टा भर्ता हर्ता एक नित्यचेतन व्यक्तिका अर्थ लिया जाता है। बुद्धके प्रतीत्य-समुत्पादमें ऐसे ईश्वरकी गुंजाइश नहीं हो सकती है, जब कि सारे धर्मों की भाँति वह भी प्रतीत्य-समुत्पन्न है। प्रतीत्य समुत्पन्न होनेपर वह ईश्वर ही नहीं रहेगा। उपनिषद्में हम विश्वका एक कर्त्ता पाते हैं—

'प्रजापतिने प्रजाकी इच्छासे तप किया। उसने तप करके जोड़े पैदा किये।'[1]

'ब्रह्मा ने कामना की। तप करके उसने इस सब (=विश्व) को पैदा किया।'[2]

---

[1] प्रश्नोपनिषद्, १।३ १३ [2] तैत्तिरीय, २।६

"आत्मा ही पहिले अकेला था। उसने चाहा—'लोकको सिरजूँ।' उसने इन लोकोंको सिरजा।[1]

अब इस सृष्टिकर्ता ब्रह्मा आत्मा ईश्वर, सत की बुद्ध क्या गति बताते हैं, इसे सुन लीजिए। मल्लोंके एक प्रजातन्त्रकी राजधानी अनूपिया[2]में बुद्ध भागव-गोत्र परिव्राजकसे इस बातपर वार्तालाप कर रहे हैं।[3]—

'भागव! जो श्रमण-ब्राह्मण, ईश्वर (=ईस्सर) या ब्रह्माके कर्त्तापनके मत (=आचायक)को श्रेष्ठ बतलाते हैं उनके पास जाकर मैं यह पूछता हूँ—'क्या सचमुच आपलोग ईश्वर के कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ कहते हैं। उनसे मैं (फिर) पूछता हूँ—'आपलोग कैसे ईश्वर या ब्रह्माके कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे मुझसे ही पूछने लगते हैं। मैं उनको उत्तर देता हूँ— बहुत दिनोंके बीतनेपर इस लोकका प्रलय होता है। (फिर) बहुत काल बीतनेपर इस लोककी उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति होनेपर शून्य ब्रह्म विमान (=ब्रह्माका उड़ता फिरता घर) प्रकट होता है। तब (आभास्वर देवलोकका) कोई प्राणी आयुके क्षीण होनेसे या पुण्यके क्षीण होनेसे उस शून्य ब्रह्म विमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ बहुत दिनोंतक रहता है। बहुत दिनों तक अकेला रहनेके कारण उसका जी ऊब जाता है और उसे भय मालूम होने लगता है।[4]—अहा दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें।

---

[1] ऐतरेय, १।१ [2] छपरा जिलामें कहीं पर, अनोमा नदीके पास था।

[3] पाथिकसुत्त, दीघ नि०, ३।१ (अनुवाद, पृ० २२३)

[4] बुद्धका यहाँ ब्रह्माके अकेले डरनेसे बृहदारण्यकके इस वाक्य (१।४।१ २)की ओर इशारा है।—"आत्मा ही पहले था। उसने नजर दौड़ाकर अपनेसे दूसरेको नहीं देखा। वह भय खाने लगा। इसीलिए (आदमी) अकेला भय खाता है। उसने दूसरे(के होने)की इच्छा की।"

दूसरे प्राणी भी आयुके साथ होनेसे ब्रह्म विमानमें उत्पन्न होते हैं। जो प्राणी सबसे पहिले उत्पन्न होता है, उसके मनमें होता है—मैं ब्रह्मा महाब्रह्मा विजेता अविजित सर्वज्ञ वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता निर्माता श्रेष्ठ स्वामी और पूर्व तथा भविष्यके प्राणियोंका पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियोंको उत्पन्न किया है। (क्योंकि) मेरे ही मनमें यह पहिले हुआ था—'दूसरे भी प्राणी यहाँ आवें। अतः मेरे ही मनसे उत्पन्न शरीरसे ये प्राणी यहाँ आये हैं। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुए, उनके मनमें भी उत्पन्न होता है 'यह ब्रह्मा ईश्वर कर्ता है।

सो क्या? (क्योंकि) हम जानते हैं कि इसको पहिलेसे यहाँ विद्यमान पाया हम लोग (तो) पीछे उत्पन्न हुए।' दूसरा प्राणी जब उस (देव) कायाको छोड़कर इस (लोक)में आता है। (जब इनमेंसे कोई) समाधिको प्राप्तकर उससे पूर्वजन्मका स्मरण करता है, उसके आगे वहाँ स्मरण नहीं करता है। वह कहता है—जो वह ब्रह्मा ईश्वर कर्ता है वह नित्य=ध्रुव है शाश्वत निर्विकार और सदाके लिए वैसा ही रहनेवाला है। और जो हम लोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं (वह) अनित्य अध्रुव, अल्पायु मरणशील है। इस प्रकार (हो तो) आप लोग ईश्वरको कर्त्तापन कैसे बतलाते हैं? वह कहते हैं—' जैसा आयुष्मान गौतम बतलाते हैं वैसा ही हम लोगोंने (भी) सुना है।

उस वक्तकी—परंपरा, चमत्कार शास्त्र अधरगढ़ी प्रमाणमें ईश्वरका यह एक ऐसा बहतरीन खंडन था जिसमें एक बड़ा बारीक मजाक भी शामिल है।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा (=ईश्वर)का खंडन एक जगहपर और सूक्ष्म परिहास किया है।—

बहुत पहिले एक भिक्षुके मनमें यह प्रश्न हुआ—'ये चार

---

[1] केवट्टसुत्त (दीघ निकाय, १।११, अनुवाद पृ० ७६ ८०)

महाभूत—पृथिवी धातु जल धातु, तेज-धातु, वायु-धातु—कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? उसने चातुमहाराजिक देवताओं (के पास) जाकर (पूछा) । चातुमहाराजिक देवताओंने उस भिक्षुसे कहा—' हम भी नहीं जानते हमसे बढकर चार महाराजा[1] हैं । वे शायद इसे जानते हों ।'

" 'हमसे भी बढकर त्रायस्त्रिंश याम सुयाम तुषित (देवगण) सतुषितदेवपुत्र निर्माणरति (देवगण) सुनिर्मित (देवपुत्र) परनिर्मितवशवर्त्ती (देवगण) वशवर्त्ती नामक देवपुत्र ब्रह्मकायिक नामक देवता हैं वह शायद इसे जानते हों । ब्रह्मकायिक देवताओंने उस भिक्षुसे कहा—'हमसे भी बहुत बढ चढकर ब्रह्मा हैं वह ईश्वर कर्त्ता निर्माता और सभी पैदा हुए और होनेवालोंके पिता हैं, शायद वह जानते हों । (भिक्षुके पूछनेपर उन्होंने कहा—) हम नहीं जानते कि ब्रह्मा (=ईश्वर) कहाँ रहते हैं । इसके बाद शीघ्र ही महाब्रह्मा (=महान ईश्वर) भी प्रकट हुआ । (भिक्षुने) महाब्रह्मासे पूछा—ये चार महाभूत कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध (=विलुप्त) हो जाते हैं ?' महाब्रह्माने कहा— मैं ब्रह्मा ईश्वर पिता हूँ ।' दूसरी बार भी महाब्रह्मासे पूछा—' मैं तुमसे यह नहीं पूछता कि तुम ब्रह्मा ईश्वर पिता हो । मैं तो तुमसे यह पूछता हूँ—ये चार महाभूत कहाँ बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? तीसरी बार भी पूछा—तब महाब्रह्माने उस भिक्षुकी बाँह पकड, (देवताओंकी सभामें) एक ओर ले जाकर कहा—'हे भिक्षु ये देवता मुझे ऐसा समझते हैं कि (मेरे लिए) कुछ अज्ञात अ-दृष्ट नहीं है इसीलिए मैंने उन लोगोंके सामने नहीं बतलाया । भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता यह तुम्हारा

---

[1] धृतराष्ट्र, विरूढक, विरूपाक्ष, वैश्रवण (=कुबेर)

हो दोष है कि तुम (बुद्ध)को छोड़ बाहरमें इस बातकी खोज करते हो। उन्हींके पास जाओ जैसा (वह) वह वैसा ही समझो।

स्मरण रखना चाहिए कि आज हिन्दूधर्ममें ईश्वरसे जो अर्थ लिया जाता है वही अर्थ उस समय ब्रह्मा शब्द देता था। अभी शिव और विष्णुको ब्रह्मासे ऊपर नहीं उठाया गया था। बुद्धकी इस परिहासपूर्ण कहानीका मजा तब आयेगा यदि आप यहाँ ब्रह्माकी जगह अल्लाह या भगवान बुद्धकी जगह मोक्ष और भिक्षुकी जगह किसी साधारणसे मोक्ष अनुयायीको रखकर इसे दुहराय। हजारों अविश्वसनीय चीजोंपर विश्वास करनेवाले अपने समयके अंध श्रद्धालुओंको बुद्ध बतलाना चाहते थे कि तुम्हारा ईश्वर नित्य ध्रुव वगैरह नहीं है न वह सृष्टिको बनाता बिगाड़ता है वह भी दूसरे प्राणियोंकी भाँति जन्मने-मरनेवाला है। वह एक अनगिनत देवताओंमें सिर्फ एक देवतामात्र है। बुद्धके ईश्वर (=ब्रह्मा)के पीछे लाठी लेकर पड़नेका एक और उदाहरण लीजिए। अबके बुद्ध स्वयं जाकर ईश्वरको फटकारते हैं[1]—

एक समय वक ब्रह्माको ऐसी बुरी धारणा हुई थी[2]—यह (ब्रह्मलोक) नित्य ध्रुव, शाश्वत, शुद्ध अच्युत अज, अजर, अमर है न च्युत होता है न उपजता है। इससे आगे दूसरा निस्सरण (पहुँचनेका स्थान) नहीं है। तब मैं ब्रह्मलोकमें प्रकट हुआ। वक ब्रह्माने दूरसे ही मुझे आते देखा। देखकर मुझसे कहा—आओ भाव! (मित्र!) स्वागत भाव! चिरकालके बाद भाव! (आपका) यहाँ आना हुआ। भाव! यह (ब्रह्मलोक) नित्य ध्रुव शाश्वत अजर अमर है। ऐसा कहनेपर मैंने कहा—अविद्यामें पड़ा

---

[1] ब्रह्मनिमन्त्रिक-सुत्त (म० नि०, १।५।६, अनुवाद०, पृ० १६४ ५)

[2] याज्ञवल्क्यने गार्गीको ब्रह्मलोकसे आगेके प्रश्नको सिर गिरनेका डर दिखलाकर रोक दिया था। (बृहदारण्यक ३।६)

है, अहा ! वक ब्रह्मा, अविद्यामें पड़ा है अहा ! वक ब्रह्मा, जो कि अनित्यको नित्य कहता है, अशाश्वतको शाश्वत ।' ऐसा कहने पर वक ब्रह्माने कहा—माप ! मैं नित्यको ही नित्य कहता हूँ ।' मैंने कहा— ' ब्रह्मा ! (दूसरे लोकसे) च्युत होकर तू यहाँ उत्पन्न हुआ ।' ।'

ब्राह्मण अन्धके पीछे चलनेवाले अन्धोंकी भाँति बिना जाने देखे ईश्वर (ब्रह्मा) और उसके लोकपर विश्वास रखते हैं इस भावको समझाते हुए एक जगह और बुद्धने कहा है[1]—

वाशिष्ट ब्राह्मणने बुद्धसे कहा—'हे गौतम ! मार्ग अमार्गके संबंधमें ऐतरेय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण छन्दावा ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं तो भी वह ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं । जैसे ग्राम या कस्बेके पास बहुतसे नाना मार्ग होते हैं तो भी वे सभी ग्राममें ही जानेवाले होते हैं ।'

'वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो एक आचार्य एक आचार्य प्राचार्य सातवीं पीढ़ी तकका आचार्य भी नहीं । ब्राह्मणोंके पूर्वज, ऋषि[2] मन्त्रोंके कर्त्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता अष्टक वामक वामदेव, विश्वामित्र यमदग्नि, अंगिरा भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भगु—ये क्या कोई हैं,

---

[1] तेविज्ज-सुत्त (दी० नि० १।१३, अनुवाद, पृ० ८७-९)

[2] ऋग्वेदके ऋषियोंमें वामकका नाम नहीं है, अंगिराका भी अपना मन्त्र नहीं है, किंतु अंगिराके गोत्रियोंके ५७से ऊपर सूक्त हैं । (ऋक १।३५।३६, ६।१५, ८।५७ ५८, ६४, ७४, ७६, ७८ ७९, ८१ ८५, ८७, ८८, ९।४, ३०, ३५ ३६, ३९ ४०, ४४ ४६, ५० ५२, ६१, ६७, (२२ ३२), ६९, ७२, ७३, ८३, ९४, ९७, (४५ ५८), १०८ (८ ११), ११२, १०।४२ ४४, ४७, ६७-६८, ७१, ७२, ८२, १०७, १२८, १६४, १७२ ७४ बाकी आठ ऋषियोंके बनाए ऋग्-मन्त्र इस प्रकार हैं—

जिसने ब्रह्मा को अपनी आँखों से देखा है। 'जिसका न जाना है न देखना' उसका गुणगानकेलिए मार्ग खोजते करते हैं।

वशिष्ठ! (यह तो बस ही हुआ), जैसे अपनी गति एक

	सूक्त संख्या	पता
१ अष्टक (विश्वामित्र-पुत्र)	१	९।१०४
२ वामक	०	
३ वामदेव (बृहदुक्थ, गृत्समद, अंहोमुचके पिता)	५५	४।१ ४१ ४५ ५८
४ विश्वामित्र (कुशिक-पुत्र)	४६	३।१ १२, २४, २६, २७-३०, ३२ ५[illegible] ५७-६२, ९।६७ (१३ १५), ९। १०१ (१३ १६)
५ जमदग्नि (भार्गव)	४	८।९०, ९।६२, ६५, ६७ (१६ १८)
६ अंगिरा	०	०
७ भरद्वाज (बृहस्पति-पुत्र)	६०	६।१ १४, १६ ३२, ३७ ४३, ५३ ७४, ९।६७ (१ ३)
८ वशिष्ठ (मित्रावरुण-पुत्र)	१०५	७।१ १०४, ९।६७ (१९ २१), ९०, ९७ (१ ३)
९ कश्यप (मरीचि-पुत्र)	७	९।९९, ९।६४, ६७ (४ ६), ९१ ९३, ११३ १४
१० भृगु (वरुण-पुत्र)	१	९।६५

दूसरम जुडी हो, पहिलवाला भी नही देखता बीचवाला भी नही देखता, पीछेवाला भी नही देखता। "

(६) दश अकथनीय—बुद्धन कुछ बातोंको अकथनीय (=अव्याकृत) कहा है, कितने ही बौद्धिक बईमानीकेलिए उतारू भारतीय लेखक उसीका सहारा लेकर यह कहना चाहते है कि बुद्ध ईश्वर, आत्माके बारमें चुप थे। इसलिए चुप्पीका मतलब यह नही लेना चाहिए कि बुद्ध उनके अस्तित्वसे इन्कार करते है। लेकिन वह इस बातको छिपाना चाहते है, कि बुद्धकी अव्याकृत बातोंकी सूची खुली हुई नही है कि उसमे जितनी चाहें उतनी बात आप दर्ज करते जाय। बुद्धके अव्याकृतोंकी सूचीमें सिर्फ दस बातें है, जो लोक (=दुनिया) जीव शरीरके भेद-अभेद तथा मुक्त-पुरुषकी गतिके बारेमें है[1]—

क लोक	१	क्या लोक नित्य है ?
	२	क्या लोक अनित्य है ?
	३	क्या लोक अन्तवान है ?
	४	क्या लोक अनन्त है ?
ख जीव शरीरकी एकता	५	क्या जीव और शरीर एक है ?
	६	क्या जीव दूसरा शरीर दूसरा है ?
ग निर्वाणके बाद की अवस्था	७	क्या मरनेके बाद तथागत (=मुक्त) होते है ?
	८	क्या मरनेके बाद तथागत नहीं होते ?
	९	क्या मरनेके बाद तथागत होते है नहीं भी होते है ?
	१०	क्या मरनेके बाद तथागत न होते न नहीं होते है ?

मालुक्यपुत्तने बुद्धसे इन दस अव्याकृत बातोंके बारेमें [illegible]

[1] म०नि०, २।२।३ (अनुवाद, पृ० २८१)

यह समझना असम्भव है, कि बुद्धने दुनियाके इस बहावमें किसी वस्तुको ध्रुव (=नित्य) नहीं स्वीकार किया, सारे विश्वमें हो रही अशान्तिमें (उन्होंने) कोई ऐसा विश्राम-स्थान नहीं (माना), जहाँ कि मनुष्यका अशान्त हृदय शान्ति पा सके।[1]

इसके लिए सर राधाकृष्णनने बौद्ध निर्वाणको 'परमसत्ता' मनवानेकी चेष्टा की है किन्तु बौद्ध निर्वाणको अभावात्मक छोड़ भावात्मक वस्तु माना ही नहीं जा सकता। बुद्ध जब शान्तिके प्राप्तिकर्त्ता आत्माको भारी मूर्खता (=बालधर्म) मानते हैं, तो उसके विश्रामकेलिए शान्तिका जीव राधाकृष्णन् ही ढूढ सकते हैं! फिर आपने तो इस वचनको वहीं उद्धृत भी किया है—'यह निरन्तर प्रवाह या घटना है, जिसमें कुछ भी नित्य नहीं। यहाँ (=विश्वमें) कोई चीज नित्य (=स्थिर) नहीं—न नाम (=विज्ञान) ही और न रूप (=भौतिकतत्त्व) ही।'[2]

(घ) आत्माके बारमें बुद्धके चुप रहनेका दूसरा ही कारण था

'बुद्ध उपनिषदमें वर्णित आत्माके बारमें चुप हैं—वह न उसे स्वीकार ही करते हैं न इन्कार ही।'[3]

नहीं जनाब! बुद्धके दर्शनका नाम ही अनात्मवाद है। उपनिषद्के नित्य, ध्रुव आत्माके साथ यहाँ 'अन' लगाया गया है। अनित्य दुःख अनात्म"की घोषणा करनेवालेकेलिए आपके ये उदगार सिर्फ यही साबित करते हैं, कि आप दर्शनके इतिहास लिखनेकेलिए बिलकुल अयोग्य हैं।

आगे यह और दुहराते हैं—

'बिना इस अन्तर्हित तत्त्वके जीवनकी व्याख्या नहीं की जा सकती।

---

[1] वहीं, पृष्ठ ३७९

[2] It is a perpetual process with nothing permanent Nothing here is permanent, neither name nor form—महावग्ग (विनय पिटक) VI 35 ff

[3] वहीं, पृष्ठ ३८५ [4] वहीं, पृष्ठ ३८७

इसीलिए बुद्ध बराबर आत्माकी सत्यताके विषयसे इन्कार करते थे।"[1]

इसे कहते हैं—'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।' और बुद्धके सामने जानेपर राधाकृष्णन्‌की क्या गति होती, इसकेलिए मातुल पुत्रकी घटनाको पढ़िए।

(ङ) मिलिन्द प्रश्नके रचयिता नागसेन (१५० ई० पू०)ने बुद्धके दर्शनकी व्याख्या जिस सरलताके साथ यवनराजा मिनान्दरके सामने की, उसके बारेमें सर राधाकृष्णनका कहना है—

'नागसेनने बौद्ध(=बुद्धके) विचारको उसकी पतन शाखा(=उपनिषद?)से तोड़कर शुद्ध बौद्धिक(=बुद्धिसंगत) क्षेत्रमें रख दिया।

और—

"बुद्धका लक्ष्य(=मिशन) था कि उपनिषद्‌के श्रेष्ठ विज्ञानवाद (Idealism)को स्वीकार कर उसे मानव जातिके निम्न प्रतिनिधिकी आवश्यकताकेलिए सुलभ बनाय। ऐतिहासिक बौद्ध धर्मका अर्थ है, उपनिषद्‌के सिद्धान्तका जनतामें प्रचार।"[2]

स्वयं बुद्ध उनके समकालीन शिष्य नागसेन (१५० ई० पू०), नागार्जुन (१७५ ई०), असंग (३७५ ई०), वसुबंधु (४०० ई०), दिङ्नाग (४२५ ई०) धर्मकीर्ति (६००), धर्मोत्तर, शान्तरक्षित (७५० ई०), ज्ञानश्री, शाक्यश्रीभद्र (१२०० ई०) जिस रहस्यको न जान पाये थे, उसे खोज निकालनेका श्रेय सर राधाकृष्णन्‌को है, जिन्होंने अनात्मवादी बुद्धको उपनिषद्‌के आत्मवादका प्रचारक सिद्ध कर दिया। २५०० वर्षों तथा भारत, लंका, बर्मा, स्याम चीन जापान कोरिया मंगोलिया तिब्बत, मध्य एसिया, अफगानिस्तान और दूसरे देशों तक फैले भूभागपर कितना भारी भ्रम फैला हुआ था जो कि वह बुद्धको अनात्मवादी अनीश्वरवादी समझते रहे! और अक्षपाद बादरायण वात्स्यायन उद्योतकर कुमारिल वाचस्पति उदयन जैसे ब्राह्मणोंने भी बुद्धके दर्शनको जिस

---

[1] वहीं, पृष्ठ ३८९ [2] वहीं, पृ० ३९० [3] वहीं, पृष्ठ ४७१

तरहका समझा वह भी उनकी भारी अविद्या थी।

(७) विचार-स्वातन्त्र्य—प्रतीत्य-समुत्पादके आविष्कर्त्ताकेलिए विचार-स्वातन्त्र्य स्वाभाविक चीज थी। बौद्ध दार्शनिकोंने अपने प्रवर्त्तकके आदेशके अनुसार ही प्रत्यक्ष और अनुमान दोके अतिरिक्त तीसरे प्रमाण-को माननेसे इन्कार कर दिया। बुद्धने विचार-स्वातन्त्र्यका अपने ही उपदेशोंसे इस प्रकार शुरू किया था[1]—

"भिक्षुओ! मैं बेड़े (=तुल्ल)की भांति पार जानेकेलिए तुम्हें धर्मका उपदेश करता हूँ, पकड़ रखनेकेलिए नहीं। जैसे भिक्षुओ! पुरुष एसे महान जल-अर्णवको प्राप्त हो, जिसका उरला तीर खतरे और भयसे पूर्ण हो और परला तीर क्षेमयुक्त तथा भयरहित हो। वहाँ न पार ले जानेवाली नाव हो, न इधरसे उधर जानेकेलिए पुल हो। तब वह तृण-काष्ठ-पत्र जमाकर बेड़ा बाँधे और उस बेड़ेके सहारे हाथ और पैरसे मेहनत करते स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाये। उतर जानेपर उसके (मनमें) हो—यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे मैं पार उतर सका, क्या न मैं एसे बेड़ेको शिरपर रख कर, या कंधेपर उठाकर ले चलूँ।' तो क्या ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेके प्रति (अपना) कर्त्तव्य पालन करनेवाला होगा?

नहीं। 'भिक्षुओ! वह पुरुष उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला होगा।'

एक बार बुद्धसे केशपुत्र ग्रामके कालामोंने नाना मतवादोंके सच-झूठमें सन्देह प्रकट करते हुए पूछा था[2]—

"भन्ते! कोई-कोई श्रमण (=साधु) ब्राह्मण केशपुत्रमें आते हैं, अपने ही वाद (=मत)को प्रकाशित करते हैं, दूसरेके वादपर नाराज होते हैं निन्दा करते हैं। दूसरे भी अपने ही वादको प्रकाशित

---

[1] म० नि०, १।३।२ (अनुवाद, पृष्ठ ८६ ८७)

[2] अंगुत्तर निकाय, ३।७।५

वरन् दूसरे वादपर नाराज होता है। अब हम सन्देह होता है—कौन इन में सच कहता है, कौन झूठ ?"

कालामो ! तुम्हारा सन्देह ठीक है, सन्देह स्थानमें ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है। कालामो ! मत तुम श्रुत (=सुन कथना, बातों)के कारण (किसी बातको मानो), मत तर्कके कारणसे, मत नय-हेतुसे मत (बकनाके) आकारसे विचारसे मत अपने दिर विचारित मतके अनुकूल होनेसे मत (बकनाके) भव्यरूप होनेसे मत 'श्रमण हमारा गुरु है' से। जब कालामो ! तुम स्वयं ही जानो कि ये धर्म (=काम या बात) अच्छे, अदोष, विज्ञोंसे अनिन्दित हैं यह सब, ग्रहण करनेपर हित, सुखके लिए होते हैं तो कालामो ! तुम उन्हें स्वीकार करो।

(८) सर्वज्ञता गलत—बुद्धके समकालीन वर्धमानको सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहा जाता था जिसका प्रभाव पीछे बुद्धके अनुयायियोंपर भी पड़े बिना नहीं रहा। तो भी बुद्ध स्वयं सर्वज्ञताके सिद्धान्तके विरुद्ध थे।

वत्सगोत्रने पूछा[1]—"सुना है भन्ते ! श्रमण गौतम सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं —(क्या ऐसा कहनेवाले) यथार्थ कहनेवाले हैं ? भगवान्‌की असत्य से निन्दा तो नहीं करते ?

वत्स ! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं, वह मेरे बारेमें यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं। वह असत्यसे मेरी निन्दा करते हैं।

और अन्यत्र[2]—

ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं है जो एक ही बार सब जानेगा, सब देखेगा (सर्वज्ञ सर्वदर्शी होगा)।

(९) निर्वाण—निर्वाणका अर्थ है बुझना—दीप या आगका जलते जलते बुझ जाना। प्रतीत्यसमुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूपसे उत्पन्न) नाम-रूप (=विज्ञान और भौतिक तत्त्व) तृष्णाके कारण मिलकर जो एक जीवन प्रवाहका रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं इस प्रवाहका

---

[1] म० नि०, २।३।१ [2] म० नि०, २।४।१० (अनुवाद, पृष्ठ ३६९)

अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या ईंधनके जल चुकने तथा नयेका आमदनी न होनेसे जैसे दीपक या अग्नि बुझ जाते हैं, उसी तरह आस्रवों=चित्तमलों (कामभोगों, पुनर्जन्म और नित्य आत्माके नित्यत्व आदिकी दृष्टियों)के क्षीण होनेपर यह आवागमन नष्ट हो जाता है। निर्वाण बुझना है, यह उसका शब्दार्थ ही बतलाता है। बुद्धने अपने इस विशेष शब्दका इसी भावके द्योतनकेलिए चुना था। किन्तु साथ ही उन्होंने यह कहनेसे इन्कार कर दिया कि निर्वाण गत पुरुष (=तथागत)का मरनेके बाद क्या होता है। अनात्मवादी दर्शनमें उसका क्या हो सकता है, यह तो आसानीसे समझा जा सकता है, किन्तु वह ख्याल "बालानां त्रासजननम्" (=अज्ञोंको भयभीत करनेवाला) है, इसलिए बुद्धने उसे स्पष्ट नहीं कहना चाहा[1]। उदानके इस वाक्यको लेकर कुछ लोग निर्वाणको एक भावात्मक ब्रह्मलोक जैसा बनाना चाहते हैं।[2]—

"हे भिक्षुओ! अ-जात, अ-भूत, अ-कृत=अ-संस्कृत। किन्तु, यह निषेधात्मक विशेषणसे किसी भावात्मक निर्वाणको सिद्ध तभी कर सकते थे, जब कि उसके आनन्दका भोगनेवाला कोई नित्य ध्रुव आत्मा होता। बुद्धने निर्वाण उस अवस्थाको कहा है जहाँ तृष्णा क्षीण हो गई आस्रव=चित्तमल (=भोग, जन्मान्तर और विशेष मतवादकी तृष्णाएं हैं) जहाँ नहीं रह जाते। इससे अधिक कहना बुद्धके अ-व्याकृत प्रतिज्ञाकी अवहेलना करनी होगी।[3]

४. बुद्धका दर्शन और तत्कालीन समाज व्यवस्था

दर्शन दिमागकी चीज है, फिर हाड़ मांसके समूहवाले समाजका उसपर क्या वश है? यह केवल मनकी ऊँची उड़ान, मनोमय जगतकी

---

[1] इतिवुत्तक, २।२।६ [2] उदान, ८।३

[3] उदान, ८।२—"बुद्धस्स अनत्तं नाम न हि सच्चं सुदस्सनं।
पटिविद्धा तण्हा जानतो पस्सतो [illegible]..."

सारा वक्तव्य । तो भी जो प्रहार हो चुका था उससे अधिक बमराड़ा बचाया नहीं जा सकता था। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें पता लगता है, कि नारायण (=भौतिक वादिक)-वाद लोकायत भी भीतर ही भीतर बहुत प्रिय था। किन्तु दूसरी ही दलील वह समयके अनुसार, सिर्फ अपने स्वार्थोंका ख्याल रखते हुए सामाजिक—धार्मिक—रूढ़ियों से स्वतन्त्रता चाहते थे। लोगोंने धार्मिक मिथ्याविश्वासोंसे फायदा उठाकर शासकों तथा चमत्कारों द्वारा राज्यलाभ और बल बढ़ानेका यहाँ साफ सलाह दी गई है। 'अर्थशास्त्र'के समय (ई० छठी शतीमें) तो राज्यके गुप्तचर धार्मिक निर्लोभ वर्ग को बखूबी इस्तेमाल करते थे, और इस तरीकेका इस्तेमाल चाणक्य और उससे पहिलेके शासक भी लिखकर करते थे इसमें सन्देह नहीं। लेकिन शासकवर्ग भौतिकवादका अपने प्रयोजनकेलिए इस्तेमाल करता था—सिर्फ "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् (=ऋण करके घी पीओ)के नीचे उद्देश्य था। वही भौतिकवाद जब शोषित-श्रमिकवर्गकेलिए इस्तेमाल होता, तो उसका उद्देश्य वर्गविशेष स्वार्थ नहीं होता था। अब अपने श्रमका फल स्वयं भोगनेकी माँग पेश करता—शोषणको बन्द करना चाहता था।

बुद्धका दर्शन अपने मौलिक रूप—प्रतीत्य-समुत्पाद (=क्षणिकवाद)—में भारी क्रान्तिकारी था। जगत समाज, मनुष्य समाजको उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया और कभी न लौटनेवाले "ते हि नो दिवसा गता (=वे हमारे दिवस चले गये)की पर्वाह छोड़कर परिवर्तनके अनुसार अपने व्यवहार अपने समाजके परिवर्तनकेलिए हर वक्त तैयार रहनेकी शिक्षा देता था। बुद्धने अपने बड़े-से-बड़े दार्शनिक विचार ('धर्म')को भी बड़े समान सिर्फ उससे फायदा उठानेकेलिए कहा था, और उस समयके वाद भी ढालनेकी निन्दा की थी। तो भी इस क्रान्तिकारी दर्शनने अपने भीतरसे उन तत्त्वों (धर्म)को हटाया नहीं था जो 'समाजकी प्रगतिको रोकने' का काम देते हैं। पुनर्जन्मको यद्यपि बुद्धने नित्य आत्माका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आवागमनके

गया हटा, किन्तु जिस वर्गका समुदाय जल्दी बौद्ध धर्मकी ओर बढ़ गया। वर्ग-दृष्टिसे देखनेपर बौद्धधर्म नागरवर्गके एकदम अनुकूल था, वर्गके मौलिक स्वार्थको बिना हानि पहुँचाए वह अपनेको व्यापक-प्रचारी सिद्ध करना चाहता था।

सिद्धार्थ गौतम अपने दर्शनके रूपमें सामने क्यों मजबूर हुए? इसलिए उनके चारों ओरकी भौतिक परिस्थिति कहाँ तक कारण बनी? यह प्रश्न उठ सकता है। किन्तु हमें ख्याल रखना चाहिए कि व्यक्तिपर भौतिक परिस्थितिका प्रभाव समाजके एक आवश्यक रूपमें आ पड़ता है, कभी-कभी बड़े व्यक्तिका विशेष दिशामें प्रतिक्रियाके लिए पर्याप्त है, और कभी कभी व्यक्तिकी अपनी व्यक्तिगत भौतिक परिस्थिति भी दिशा-परिवर्तनमें सहायक होता है। पहिली दृष्टिसे बुद्धके दर्शनपर हम अभी विचार कर चुके हैं। बुद्धकी व्यक्तिगत भौतिक परिस्थितिका उनके दर्शनपर क्या कोई प्रभाव पड़ा? जरा इसपर भी विचार करना चाहिए। बुद्ध शरीरसे बहुत स्वस्थ थे। मानसिक तौरसे वह शान्त, गम्भीर तीक्ष्ण प्रतिभाशाली विचारक थे। महत्त्वाकांक्षाएँ उनकी उतनी ही थीं जितनी कि एक काफी योग्यता रखनेवाले आत्म विश्वासी व्यक्तिको होनी चाहिए। वह अपने दार्शनिक विचारोंकी सच्चाईपर पूरा विश्वास रखते थे, प्रचारसमुत्पादके महत्त्वको भली प्रकार समझते थे साथ ही पहिले-पहिल उन्हें अपने विचारोंको फैलानेकी उत्सुकता न थी क्योंकि वह तत्कालीन विचार प्रवृत्तिको देखकर आशापूर्ण न थे। शायद अभी तक उन्हें यह पता न था कि उनके विचारों और उस समयके प्रभुवर्गकी प्रवृत्तिमें समझौतेका गुंजाइश है।

बुद्धके दर्शनका अनित्य—अनात्मके अतिरिक्त दुःखवाद भी एक स्वरूप है। इस दुःखवादका कारण यदि उस समयके समाज तथा बुद्धकी अपनी परिस्थितिमें ढूँढ़ें, तो यही मालूम होता है, कि उन्हें बचपनमें ही मातृवियोग सहना पड़ा था, किन्तु उनकी मौसी प्रजापतीका स्नेह सिद्धार्थके लिए कम न था। घरमें उनको किसी प्रकारका कष्ट

अश्वघोषने अपने "बुद्धचरित"में बुद्धके पहिलेके दो आचार्यों—आलार-कालाम और उद्दक रामपुत्त—से एकको सांख्यवादी (कपिलका अनुयायी) कहा है, किन्तु यह भी जान पड़ता है ज्यादातर नवनिर्मित परम्परा पर निर्भर है, क्योंकि न इसका जिक्र पुराने साहित्यमें है और न उन दोनोंमें से किसीकी शिक्षा सांख्यदर्शनसे मिलती है। ऐसी अवस्थामें कपिलको बुद्धके पहिलेके दार्शनिकोंमें ले जाना मुश्किल है।

श्वेताश्वतरमें कपिल एक बड़े ऋषि हैं। भागवतमें वह विष्णुके २४ अवतारोंमें हैं, और उनके माता पिताका नाम कर्दम ऋषि और देवहूति बतलाया गया है। तो भी इससे कपिलके जीवनपर हमें ज्यादा प्रकाश पड़ता दिखाई नहीं पड़ता। कपिलके दर्शनका सबसे पुराना उपलब्ध ग्रंथ ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिका है। सांख्यसूत्रोंके नामसे प्रसिद्ध दोनों सूत्र ग्रंथ उससे पीछे तथा दूसरे पांच सूत्रात्मक दर्शनोंसे मुकाबिला करनेके लिए बने। चीनमें सुरक्षित भारतीय बौद्ध-परंपरासे पता लगता है, कि वसुबंधु समकालीन (४०० ई०) विन्ध्यवासीने सत्तर कारिकाओंमें सांख्यदर्शनको लिखा। वसुबंधुने उसके खंडनमें परमार्थसप्ततिके नामसे कोई ग्रंथ लिखा था। सांख्यकारिकाके ऊपर माठरने एक वृत्ति (=टीका) लिखी है, जिसका अनुवाद चीनी भाषामें भी हो चुका है। ईश्वरकृष्ण तथा माठरके कथनोंसे मालूम होता है, कि विचारक कपिलके उपदेशोंका एक बड़ा संग्रह था जिसे षष्ठितंत्र कहा जाता था। ईश्वरकृष्णने षष्ठितंत्रके कथानकों, परवादोंको हटाकर[1] दर्शनके असली तत्त्वको सत्तर आर्या श्लोकोंमें गुंफित किया। इससे यह भी मालूम होता है, कि षष्ठितंत्र बौद्धोंके पिटक और जैनोंके आगमोंकी भांति एक बहुत साम्प्रदायिक पिटक था, जिसमें बुद्ध और महावीरके उपदेशोंकी भाँति कपिल—और शायद उनके शिष्य आसुरि—के उपदेश और संवाद संगृहीत थे।

---

[1] "सप्तत्यां किल येऽर्था तेऽर्था कृत्स्नस्य षष्ठितंत्रस्य। आख्यायिका विरहिता परवादविवर्जिताश्चैव।"—(सां० का०)

बनाते वक्त विधिवाक्योंका पढ़नेवाले)की जीभ निकालनी चाहिए, और गण (=संघ)का पसली तोड़ देनी चाहिए।'

राजा बिंबिसारने जाकर बुद्धके पास इसकी शिकायत की, तो बुद्धने घोषित किया—

"भिक्षुओ! राजसैनिकोंको प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"[1]

इस तरह दुःख-सत्यके साक्षात्कारसे दुःख-हेतुओंको संसारमें दूर करनेका जो सवाल था वह तो खतम हो गया, अब उसका सिर्फ आध्यात्मिक मूल्य रह गया था, और वैसा होते ही सम्पत्तिवाले वर्गकेलिए बुद्धका दर्शन विषदन्तहीन सर्प-सा हो जाता है।

सब देखनेपर हम यही कह सकते हैं कि तत्कालीन दासता और दरिद्रता बुद्धको दुःखसत्य समझनेमें बाधक हुए। दुःख दूर किया जा सकता है इसे समझते हुए बुद्ध प्रतीत्यसमुत्पाद पर पहुँचे—"क्षणिक तथा हेतुप्रभव" होनेसे उसका अन्त हो सकता है। संसारमें साफ दिखाई देनेवाले दुःखकारणोंको हटानेमें असमर्थ समझ उन्होंने उसकी अलौकिक व्याख्या कर डाली।

§ ४ बुद्धके पीछेके दार्शनिक

क कपिल (४०० ई० पू०)

बुद्धके पहिलेके दार्शनिकोंमें कपिलको भी गिना जाता है, किन्तु जहाँ तक बुद्धके प्राचीनतम उपदेश-संग्रह तथा तत्कालीन दूसरी उपलब्ध सामग्रीका संबंध है वहाँ कपिल या उनके दर्शनका बिल्कुल पता नहीं है। श्वेताश्वतरमें कपिलका नाम ही नहीं है, बल्कि उसपर कपिलके दर्शनकी स्पष्ट छाप भी है, किन्तु वह बुद्धके पीछेकी उपनिषदोंमें है, यह कह आये हैं। ईसाकी पहिली सदीके बौद्ध कवि और दार्शनिक

---

[1] वहीं

ख. बौद्ध दार्शनिक नागसेन (१५० ई० पू०)

१ सामाजिक परिस्थिति

बुद्धके जन्मसे कुछ पहिले ही उत्तरी भारतके सामन्तान राज्य-विस्तारकेलिए युद्ध छेड़ने शुरू किये थे—दो-तीन पीढ़ी पहिले ही कोसल-ने काशी-जनपदको हड़प कर लिया था। बुद्धके समयमें ही बिंबिसारने अंगको भी मगधमें मिला लिया और उस समय विंध्यमें होती मगधकी सीमा अवन्ती (उज्जैन)के राज्यसे मिलती थी। वत्स (=कौशाम्बी, इलाहाबाद)का राज भी उस वक्तके सभ्य भारतके बड़े शासकोंमें था। कोसल, मगध, वत्स, अवन्तीके अतिरिक्त लिच्छविया (वैशाली)का प्रजातंत्र पाँचवीं महान शक्ति थी। आर्य प्रदेशोंको विजय करते एक एक जन (=कबीले)के रूपमें बसे थे। आर्योंकी यह नई बस्तियां पहिलेसे बसे लोगों और स्वयं दूसरे आर्य जनोंके खूनी संघर्षोंके साथ मजबूत हुई थीं। कितनी ही सदियों तक राजतंत्र या प्रजातंत्रके रूपमें यह जन चल आये। उपनिषद्कालमें भी यह जन दिखाई पड़ते हैं यद्यपि जनतंत्रके रूपमें नहीं बल्कि अधिकतर सामन्ततंत्रके रूपमें। बुद्धके समय जनोंकी सीमाबंदियाँ टूट रही थीं, और काशि-कोसल, अंग-मगधकी भाँति अनेक जनपद मिलकर एक राज्य बन रहे थे। व्यापारी वर्गने व्यापारिक क्षेत्रमें इन सीमाओंको तोड़ना शुरू किया। एक नहीं अनेक राज्योंसे व्यापारिक संबंधके कारण उनका स्वार्थ उन्हें मजबूर कर रहा था, कि वह छोटे-छोटे स्वतंत्र जनपदोंकी जगह एक बड़ा राज्य कायम होनेमें मदद करें। मगधके धनंजय सेठ (विशाखाके पिता)को साकेत(=अयोध्या)में बड़ी कोठी कायम करते हम अन्यत्र[1] देख चुके हैं। जिस वक्त व्यापारी अपने व्यापार द्वारा, राजा अपनी सेना द्वारा जनपदोंकी सीमा तोड़नेमें लगे हुए थे, उस वक्त जो भी ज्ञान या धार्मिक विचार उसमें सहायता देते, उनका अधिक प्रचार

---

[1] "मानवसमाज" पृष्ठ १३६ ३८

एक प्रख्यात विद्वान अश्वगुप्तके पास पहुँचे। अश्वगुप्त अभी इस नये विद्यार्थीकी विद्या बुद्धिकी परख कर ही रहे थे, कि एक दिन किसी गृहस्थके घर भोजनके उपरान्त कायदेके अनुसार दिया जानेवाला धर्मोपदेश नागसेनके जिम्मे पड़ा। नागसेनकी प्रतिभा उससे खुल गई और अश्वगुप्तने इस प्रतिभाशाली तरुणको और योग्य हाथोंमें सौंपनेके लिए पटना (=पाटलिपुत्र)के अशोकाराम विहारमें वास करनेवाले आचार्य धर्मरक्षितके पास भेज दिया। सौ योजनपर अवस्थित पटना पैदल जाना आसान काम न था किन्तु अब भिक्षु बराबर आते-जाते रहते थे, व्यापारियोंका साथ (=कारवां) भी एक-न-एक चलता ही रहता था। नागसेनको एक ऐसा ही कारवाँ मिल गया जिसके स्वामीने बड़ी खुशीसे इस तरुण विद्वानको खिलाते पिलाते साथ ले चलना स्वीकार किया।

अशोकारामर्में आचार्य धर्मरक्षितके पास रहकर उन्होंने बौद्ध तत्व ज्ञान और पिटकका पूर्णतया अध्ययन किया। इसी बीच उन्हें पंजाबसे बुलौवा आया, और वह एक बार फिर रक्षिततलपर पहुँचे।

मिनान्दर (=मिलिन्द)का राज्य यमुनासे आमू (वक्षु) दरिया तक फैला हुआ था। यद्यपि उसकी एक राजधानी बलख (बाह्लीक) भी थी किन्तु हमारी इस परंपराके अनुसार मालूम होता है मुख्य राजधानी सागल (=स्यालकोट) नगरी थी। प्लूतार्क लिखा है कि—मिनान्दर बड़ा न्यायी, विद्वान और जनप्रिय राजा था। उसकी मृत्युके बाद उसकी हड्डियोंके लिए लोगोंमें लड़ाई छिड़ गई। लोगोंने उसकी हड्डियोंपर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। मिनान्दरको शास्त्रचर्चा और बहसकी बड़ी आदत थी, और साधारण पंडित उसके सामने नहीं टिक सकते थे। भिक्षुओंने कहा—'नागसेन! राजा मिलिन्द वादविवादमें प्रश्न पूछकर भिक्षु-संघको तंग करता और नीचा दिखाता है, जाओ तुम उस राजाका दमन करो।'

नागसेन संघके आदेशको स्वीकार कर सागल नगरके असंखेय्य नामक परिवेण (=मठ)में पहुँचे। कुछ ही समय पहिले वहाँके बड़े पंडित आयुपालको मिनान्दरने चुप कर दिया था। नागसेनके आनेकी खबर शहरमें

पड़ गई। मिलिन्दने अपने एक अनार्य देशमें (=जहाँ बौद्ध धर्म पूर्णतः नहीं पहुँचा है) में नागसेनसे मिलनेका संकल्प प्रकट किया। इसी मिलनेपर एक दिन पाँच सौ यवनोंके साथ अस्सी हजार सवार हो वह आश्रम परिवेशमें गया। राजाने नमस्कार और अभिवादनके बाद प्रश्न शुरू किए। इसी प्रश्नोत्तरके कारण इस ग्रन्थका नाम 'मिलिन्द प्रश्न' पड़ा। यद्यपि उपलब्ध पाली मिलिन्द पञ्हो में छः परिच्छेद हैं, किन्तु उसमें पहिलेके तीन ही पुराने मालूम होते हैं, चौथी भाषामें भी इन्हीं तीन परिच्छेदोंका अनुवाद मिलता है। मिलिन्दने पहिले दिन अपने नागसेनसे प्रश्न किए, दूसरे दिन उनके प्रश्नोंमें सम्मिलित कर प्रश्न पूछे।

४—दार्शनिक विचार

अपने उत्तरमें नागसेन बुद्धके दो तरहके अनात्मवाद—नाम या पुनर्जन्म नाम रूप (=मन और भौतिक तत्त्व), निर्वाण आदिका व्याख्या विस्तार करनेका प्रयत्न किया है।

(१) अनात्मवाद—मिलिन्दने पहिले बौद्धोंके अनात्मवादकी ही परीक्षा करनी चाही। उसने पूछा[1]—

(क) 'भन्ते (स्वामिन्)! आप किस नामसे जाने जाते हैं?'

नागसेन—नागसेन (मुझे) पुकारते हैं? किन्तु यह केवल व्यवहारके लिए संज्ञा भर है, क्योंकि यथार्थमें ऐसा कोई तत्त्व पुरुष (=आत्मा) नहीं है।

'भन्ते! यदि एक पुरुष नहीं है तो कौन आपको वस्त्र, भोजन देता है? कौन उसका भोग करता है? कौन शील(=सदाचार)की रक्षा करता है? कौन ध्यान, योगका अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्गके फल निर्वाणका साक्षात्कार करता है? यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य, न पाप और पुण्यका कोई करनेवाला है, न करानेवाला

---

[1] मिलिन्द प्रश्न, २।१ (अनुवाद, पृ० ३० ३४)

है। न पाप और पुण्य के फल [illegible] ? , , [illegible]
आपको कोई मार डाले तो किसीका मारना नहीं हुआ। , , ([illegible])
नागसेन क्या ह ? क्या ये केश नागसेन ह ?"

'नहीं महाराज !'

"ये रायें नागसेन ह ?'

"नहीं महाराज !"

"ये नख दान, चमडा, मास स्नायु, हड्डी, म[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस आन पतली आँत पेट, [illegible], [illegible], [illegible], पीव, लोहू, पसीना मेद, आँसू चर्बी राल [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] नागसेन है ?'

'नहीं भन्ते !

क्या अक्ष रथ है ?'

नहीं भन्ते !'

क्या चक्के रथ है ?

नहीं भन्ते !"

क्या रथका पंजर रस्सियाँ लगाम चाबुक रथ है ?

नहीं भन्ते !

"महाराज ! क्या हरीस आदि सभी एक साथ रथ है ?'

नहीं भन्ते !'

"महाराज ! क्या हरीस आदिके परे कहीं रथ है ?'

नहीं भन्ते !'

महाराज ! मैं आपसे पूछते-पूछते थक गया किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्द मात्र है ? आखिर यह रथ है क्या ? आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है ! महाराज ! सारे जम्बूद्वीप (=भारत)के आप सबसे बड़े राजा हैं भला किससे डरकर आप झूठ बोलते हैं ?

'भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोलता। हरीस आदि रथके अवयवोंके आधारपर केवल व्यवहारकेलिए 'रथ' ऐसा एक नाम बोला जाता है।'

"महाराज ! बहुत ठीक आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी तरह मेरे केश आदिके आधारपर केवल व्यवहारकेलिए 'नागसेन' ऐसा एक नाम बोला जाता है। परन्तु परमार्थमें 'नागसेन' कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वज्राने भगवानके सामने इसीलिए कहा था—

'जैसे अवयवोंके आधारपर रथ संज्ञा होती है उसी तरह (रूप आदि) स्कंधोंके होनेसे एक सत्त्व (=जीव) समझा जाता है।' [1]

---

[1] संयुत्तनिकाय, ५।१०।६

लेकर अपने घरके उपरले छतपर जाय और भोजन करे। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकोंमें लग जाय। वे तिनके घरको (आग) लगा दें, और वह घर सारे गाँवको जला दे। गाँववाले उस आदमीको पकड़ कर कहें—'तुमने गाँवमें क्यों आग लगाई? इसपर वह कहे—'मैंने गाँवमें आग नहीं लगाई। उस दीयकी आग दूसरी ही थी जिसकी रोशनीमें मैंने भोजन किया था, और वह आग दूसरी ही थी, जिसने गाँव जलाया। इस तरह आपसमें झगड़ा करते (यदि) वे आपके पास आवें, तो आप किधर फैसला देंगे?'

"भन्ते! गाँववालोंकी ओर।

"महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्युके साथ एक नाम और रूपका लय होता है और उसके साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है किन्तु वह भी उसीसे होता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।'

"d विवाहित कन्या—महाराज! कोई आदमी रुपया दे एक छोटीसी लड़कीसे विवाह कर, कहीं दूर चला जाये। कुछ दिनोंके बाद वह बढ़कर जवान हो जाय। तब कोई दूसरा आदमी रुपया देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहिला आदमी आकर कहे—'तुमने मेरी स्त्रीको क्या निकाल लिया?' इसपर वह ऐसा जवाब दे—'मैंने तुम्हारी स्त्रीको नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी, जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह सयानी, जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ कि मैंने विवाह किया है और जिसके लिए रुपये दिये हैं। अब यदि दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे?"

" पहिले आदमीकी ओर। (क्योंकि) वही लड़की तो बढ़कर सयानी हुई।'

(घ)'—"भन्ते! जो उत्पन्न है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा?"

चूंकि वह फिर भी जन्म ग्रहण करता है इसलिए (मुक्त) नहीं हुआ।"
उपमा देकर समझावें।'

a "आमकी चोरी'—कोई आदमी किसीका आम चुरा ले। उस आमका मालिक पकड़कर राजाके पास ले जाय—'राजन्! इसने मेरा आम चुराया है। इसपर वह (चोर) ऐसा कहे—'नहीं, मैंने इसके आमको नहीं चुराया है। इसने (जो आम लगाया था) वह दूसरा था और मैंने जो आम लिये वे दूसरे हैं। ' महाराज! अब बतावें कि उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं?

" सजा मिलनी चाहिए।

"सो क्यों?"

'मन्ने! वह ऐसा भले ही कहे, किन्तु पहिले आमको छोड़ दूसरे हीको चुरानेकेलिए उसे जरूर सजा मिलनी चाहिए।"

"महाराज! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूपसे पाप या पुण्य करता है। उन कर्मोंसे दूसरा नाम और रूप जन्मता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।

b "आगका प्रयास—महाराज! कोई आदमी जाड़ेमें आग जलाकर ताप और उसे बिना बुझाये छोड़कर चला जाये। वह आग किसी दूसरे आदमीके खेतको जला दे (पकड़कर राजाके पास ले जानेपर वह आदमी बोले—) मैंने इस खेतको नहीं जलाया। वह दूसरी ही आग थी जिसे मैंने जलाया था और वह दूसरी है जिससे खेत जला। मुझे सजा नहीं मिलनी चाहिए।' महाराज! उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं?'

' मिलनी चाहिए। उसीकी जलाई हुई आगने बढ़ते बढ़ते खेतको भी जला दिया। '

c "दीपकसे आग लगना—महाराज! कोई आदमी दीया

---

[1] वहीं, २।२।१४ (अनुवाद, पृष्ठ ५७-६०)

लेकर अपने घरके उपरले छतपर जाय और भोजन कर। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकोंमें लग जाय। व तिनके घरको (आग) लगा दें, और वह घर सारे गाँवको लगा दे। गाँववाले उन आदमीको पकड़ कर कहें—'तुमने गाँवमें क्यों आग लगाई?' इसपर वह कहे—'मैंने गाँवमें आग नहीं लगाई। उस दीयेकी आग दूसरी ही थी जिसकी रोशनीमें मैंने भोजन किया था, और वह आग दूसरी ही थी जिसने गाँव जलाया। इस तरह आपसमें झगड़ा करते (यदि) वे आपके पास आवें, तो आप किधर फैसला देंगे?"

"भन्ते! गाँववालोंकी ओर।

"महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्युके साथ एक नाम और रूपका नाश होता है और उसके साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है, किन्तु यह भी उसीसे होता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।"

'd विवाहित कन्या—महाराज! कोई आदमी रुपया दे एक छोटीसी लड़कीसे विवाह कर, कहीं दूर चला जाये। कुछ दिनोंके बाद वह बढ़कर जवान हो जाये। तब कोई दूसरा आदमी रुपया देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहिला आदमी आकर कहे—'तुमने मेरी स्त्रीको क्यों निकाल लिया?' इसपर वह ऐसा जवाब दे—'मैंने तुम्हारी स्त्रीको नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी, जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह सयानी, जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ कि मैंने विवाह किया है और जिसकेलिए रुपये दिये हैं। अब, यदि दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे?'

पहिले आदमीकी ओर। (क्योंकि) वही लड़की तो बढ़कर सयानी हुई।"

(घ)[1]—"भन्ते! जो उत्पन्न है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा?"

---

[1] वहीं, २।२।६ (अनुवाद, पृ० ४६)

न वन्ना और न दूसरा ही। (१) जब आप बहुत बच्चे थे और खाटपर चित्त पड़ा लेट सकते थे, क्या आप अब इतने बड़े होकर भी वहां हैं ?

नहीं भन्ते ! अब मैं दूसरा हो गया हूँ।

महाराज ! यदि आप वही बच्चा नहीं हैं, तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है कोई पिता भी नहीं है, कोई गुरु भी नहीं। क्योंकि तब तो गर्भकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंकी भी भिन्न भिन्न माताएं होंगी। बड़े होनेपर माता भी भिन्न हो जायगी। शिल्प सीखनेवाला (विद्यार्थी) दूसरा और सीखकर तैयार (हो जानेपर) दूसरा होगा। अपराध करनेवाला दूसरा होगा और (उसकेलिए) हाथ-पैर किसी दूसरेका काटा जायगा।

भन्ते ! आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं ?

महाराज ! मैं बचपनमें दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ किन्तु वह सभी भिन्न भिन्न अवस्थाएं इस शरीरपर ही घटनेसे एक नामें ले ली जाती हैं।

(२) यदि कोई आदमी दीया जलाये, तो वह रात भर जलता रहेगा न ?

'रातभर जलता रहेगा।

महाराज ! रातके पहिले पहरमें जो दीयेकी टेम थी। क्या वही दूसरे या तीसरे पहरमें भी बनी रहती है ?'

नहीं भन्ते !'

'महाराज ! तो क्या वह दीया पहिले पहरमें दूसरा, दूसरे और तीसरे पहरमें और हो जाता है ?'

'नहीं भन्ते ! वही दीया सारी रात जलता रहता है।

महाराज ! ठीक इसी तरह किसी वस्तुके अस्तित्वके सिलसिलेमें एक अवस्था उत्पन्न होती है एक लय होता है—और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाहकी दो अवस्थाओंमें एक क्षणका भी अन्तर

नहीं होता, क्योंकि एकके लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण न (वह) वही जीव है और न दूसरा ही हो जाता है। एक जन्मके अन्तिम विज्ञान (=चेतना)के लय होते ही दूसरे जन्मका प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।

(ङ)[1]— 'भन्ते! जब एक नाम रूपमें अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं, तो वे कर्म कहाँ ठहरते हैं?

"महाराज! कभी भी पीछा नहीं छोड़नेवाली छायाकी भाँति वे कर्म उसका पीछा करते हैं।'

"भन्ते! क्या वे कर्म दिखाये जा सकते हैं (कि) वह यहाँ ठहरे हैं?"

"महाराज! वे इस तरह नहीं दिखाये जा सकते। क्या कोई वृक्षके उन फलोंको दिखा सकता है जो अभी लगे ही नहीं?"

(३) नाम और रूप—बुद्धने विश्वके मूल तत्त्वोंको विज्ञान(=नाम) और भौतिक तत्व (=रूप)में बाँटा है, इनके बारेमें मिनान्दरने पूछा—

'भन्ते! नाम क्या चीज है और रूप क्या चीज?"

'महाराज! जितनी स्थूल चीजें हैं, सभी रूप हैं और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं, सभी नाम हैं। दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं, एक दूसरेके बिना ठहर नहीं सकते। दोनों (सदा) साथ ही होते हैं। यदि मुर्गीके पेटमें (बीज रूपमें) बच्चा नहीं हो तो अंडा भी नहीं हो सकता, क्योंकि बच्चा और अंडा दोनों एक दूसरेपर आश्रित हैं। दोनों एक ही साथ होते हैं। यह (सदासे) होता चला आया है।'

(४) निर्वाण—मिनान्दरने निर्वाणके बारेमें पूछते हुए कहा[2]—

"भन्ते! क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है?'

"हाँ, महाराज! निरोध(=बन्द) हो जाना ही निर्वाण है। सभी अज्ञानी विषयोंके उपभोगमें लग रहते हैं उसीमें आनन्द लेते हैं, उसीमें डूब रहते हैं। वे उसीकी धारामें पड़े रहते हैं बार बार

---

[1] वहीं [2] वहीं, ३।१।६ (अनुवाद, पृ० ८५)

[illegible] (अह) [illegible] । महाराज ! [illegible] (=[illegible])में [illegible] । इससे [illegible] । [illegible] (=[illegible])का [illegible] । [illegible] (फिर) [illegible] (=(निर्वाण)) [illegible] । महाराज ! इस तरह [illegible] निर्वाण है ।

[illegible] (बुद्ध) कहा ~

"महाराज ! भगवान् परम निर्वाणको प्राप्त हो गये हैं जिसके बाद उनके व्यक्तित्वको बताने [illegible] कुछ भी [illegible] रह जाता ।

"भन्ते ! उसका [illegible] ।

'महाराज ! क्या [illegible] आगकी लपट, दिखाई जा सकती है ?'

'नहीं भन्ते ! वह लपट तो बुझ गई ।'

नागसेनके अपने प्रश्नोत्तरोंमें बुद्धके दर्शनमें कई नई बातें कही जाती, किन्तु उन्होंने उस विषयमें क्या किया यह उपरके उद्धरणसे स्पष्ट है । यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नागसेनका अपना जन्म हिन्दी-यूनानी साम्राज्य और सभ्यताके केन्द्र स्यालकोट (=साग्ल)के पास हुआ था और भारतीय ज्ञानके साथ-साथ यूनानी ज्ञानका भी परिचय रखनेके कारण ही वह मिनान्दर जैसे तार्किकका समाधान कर सके थे । मिनान्दर और नागसेनका यह संवाद इतिहासकी उस विस्तृत घटनाका एक नमूना है जिसमें कि हिन्दी और यूनानी प्रतिभाएँ मिलकर भारतमें नई विचार धाराओंका आरम्भ कर रही थीं ।

---

[1] वहीं, ३।२।१८ (अनुवाद, पृ० ६१)

षोडश अध्याय

अनीश्वरवादी दर्शन

दर्शनका नया युग (२००-४००)

क बाह्य परिस्थिति

(सामाजिक स्थिति)—मौर्योंके शासनके साथ कुमारी अन्तरीपसे हिमालय, सुवर्णभूमि (=बर्मा)की सीमासे हिन्दूकुश तकका भारत एक शासनके सूत्रमें बँध गया, और इस विशाल साम्राज्यकी राजधानी पटना हुई। पटना नाम ही पत्तनसे बिगड़कर बना है जिसका अर्थ होता है बन्दरगाह नावका घाट। पटना जिस तरह शासनकेन्द्र था, वैसेही वह व्यापारका केन्द्र था। यह भी हम बतला चुके हैं, कि किस तरह मगध की राजनीतिक प्रधानताके साथ वहाँके सब प्रिय धर्म—बौद्ध धर्म—ने भी अपने प्रभावका विस्तार किया। पाटलिपुत्र (=पटना) विद्वानोंकी परीक्षाका स्थान बन गया। यहीं पाणिनि (४०० ई० पू०) जैसे विद्वान सुपरीक्षित हो सारे भारतमें कीर्ति पाते थे। मिनान्दरके गुरु नागसेनका पटना (अशोकाराम)में आकर विद्याध्ययनकी बात हम कह चुके हैं। इतने बड़े साम्राज्यमें एक राजकीय भाषा (=मागधी), एक तरहके सिक्के, एक तरहके नाप-तौल होनेसे भारतीय समाजमें एकता आने लगी थी। लेकिन यह एकता भीतर नहीं प्रवेश कर सकी, क्योंकि देशों, प्रदेशोंके छोटे-छोटे प्रजातन्त्रों और राजतन्त्रोंके टूटते रहनेपर भी हर एक गाँव अपने स्वावलंबी 'प्रजातन्त्र' के रूपको नहीं छोड़ना चाहता था।

मौर्य चन्द्रगुप्तने यूनानी शासनको भारतसे हटाया जरूर, किन्तु उससे यूनानी भारतसे नहीं हट सके। पंजाबमें उनकी कितनी ही बस्तियाँ बसी हुई थीं। हिन्दूकुश पारसे उनका विशाल राज्य शुरू होता था, जो कि मध्य-एसिया, ईरान, मेसोपोटामिया क्षुद्र-एसिया होते मिश्र और

यूरोप तक फैला हुआ था। सिकन्दरकी मृत्यु (३२३ ई० पू०)के साथ यह कितने ही टुकड़ोंमें बँटा जरूर, किन्तु तब भी उसकी शासनप्रणाली, सभ्यता आदि एकसी थी। मातृभूमि (यूनान) तथा एक दूसरेके साथ उनका व्यापारिक ही नहीं सामाजिक बौद्धिक घनिष्ट सम्बन्ध था। और मौर्य साम्राज्यके नष्ट होते ही यूनानी फिर हिन्दूकुश पार हो यमुना और नर्मदाके पश्चिमके सारे भारतपर स्थायी तौरसे अधिकार जमानेमें सफल हुए। इस कार्यको सम्पन्न करनेवाले यूनानी शासकोंमें मिनान्दर (१५० ई० पू०) प्रमुख और प्रथम था।[1] इन यूनानी शासकोंके मध्य एसियाई साम्राज्यमें शक जट्ट गुज्जर आभीर आदि जातियाँ रहती थीं, इसलिए पश्चिमी भारतमें यूनानियोंके शासन स्थापित होनेपर यह जातियाँ भी आ आकर भारतमें बसने लगीं और आज भी उनकी सन्तानें पश्चिमी भारतकी आबादीमें काफी संख्या रखती हैं। इन जातियोंमें शक तो यूनानियोंके क्षत्रप (उपराज या वाइसराय) होकर मथुरा और उज्जैनमें रहते थे और यूनानियोंके शासनके उठ जानेपर स्वतन्त्र साम्राज्य कायम करनेमें समर्थ हुए। ईसाकी पहिली सदीमें शक सम्राट कनिष्क प्रायः सारे उत्तरी भारत और मध्य-एसिया तकका शासक था। शक तीसरी सदी तक गुजरात और उज्जैनपर शासन करते रहे। आभीर शकोंके प्रधान सेनापति तथा कभी-कभी स्वतन्त्र शासक भी बने थे। जायसवालके मतानुसार गुप्त राजवंश जत्र या जट्ट था। अस्तु, यह तो साफ है कि जिस कालकी ओर हम आगे बढ़ रहे हैं, वह पश्चिमसे आनेवाली जातियोंके भारतमें भारी संख्यामें आकर भारतीय बन जानेका समय था। जातियोंके साथ नाना सभ्यताओं, नाना विचारोंका भारतमें संमिश्रण भी हो रहा था। इसी समय (१५० ई० पू०) भारतने यूनानी ज्योतिषसे—१२ राशियाँ होरा (=घंटा) फलित ज्योतिषका होडाचक्र[2] सीखा। गन्धार-मूर्तिकला

---

[1] राजधानी बाह्लीक (=बलख या बास्तर)। [2] होडाचक्रकी वर्णमाला भारतीय (क-ख-ग) नहीं बल्कि यूनानी (अल्फा, बीता, गामा)है।

इसी कालकी देन है। इसी समय भारतीय कार्षापण चौकारकी जगह यूनानी सिक्कोंकी तरह गोल और राजाके चित्रसे अंकित बनने लगे। यूनानी नाटकोंकी भाँति भारतीय नाटकोंका प्रथम प्रयास भी इसी समय शुरू हुआ,—उपलब्ध नाटक हम अश्वघोष (८० ई०)से पहिले नहीं ले जाते। दार्शनिक क्षेत्रमें भी इस कालकी देन आकृतिवाद परमाणुवाद विज्ञान विशेष जातिवाद, उपादान निमित्त-कारण द्रव्य-गुणपरिणाम-देश-काल वाद है जिनके बारेमें हम आगे कहेंगे।

इस राजनीतिक अन्तर्जातिक, सांस्कृतिक उथल-पुथलके जमाने (१ ई०)में यदि हम भारतीय समाजके आर्थिक वर्गोंकी ओर नजर दौड़ाते हैं, तो मालूम होता है—सबसे ऊपर एक छोटीसी संख्या देशीय या देशीय बन गये राजाओं उनके दरबारियोंकी है जो शारीरिक श्रम तथा उत्पादनके कामको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। जनताकी बड़ी संख्या इनके लिए अच्छे-अच्छे खाने अच्छे अच्छे कपड़े देती है रहनेके लिए बड़े-बड़े महल बनाती है, देश विदेशसे अधिकारपर संकट उपस्थित होनेपर सैनिक बन, हथियार उठा, उनके लिए अपना खून बहाने जाती है। और परिणाम?—बाजकी भाँति शिकार मारकर फिर मालिकके हाथकी साँकलमें बँधना—फिर वही खून-पसीना एक कर मेहनत कर प्रभुओंके आगे—विलासकी सामग्री उपस्थित करना और खुद पेटके अन्न और तनके कपड़े बिना मरना।

इस शासक जमातके बाद दूसरी जमात थी धर्माचार्यों, भाँडों और धूर्तोंकी, जिनका काम था सामाजिक व्यवस्थाको विशृंखलित होनेसे रोकना, लोगोंको भ्रममें रख रहना, अर्थात् "दुनिया ठगिए मक्करसे। रोटी खाइए घी शक्करसे।" इस जमानेके आहार-विहारकेलिए भी उसी परिश्रमी भूखों मरती जनताको मेहनत करना पड़ता था।

तीसरी जमात व्यापारियोंकी थी जो कारीगरोंके मालको कम दामपर खरीद और ज्यादा दामपर बेंचते देश विदेशमें जल-स्थल मार्गसे व्यापार करते थे या सूदपर रुपया लगाते थे, और जिनकी करोड़ोंकी सम्पत्तिको देखकर राजा भी रश्क करते थे।

इन तीन कामचोर शोषक जमातके अतिरिक्त एक और जमात "ससार-त्यागियों की थी जो अपनको वर्गोंसे ऊपर निष्पक्ष, निर्लोभ सत्यान्वेषी समझते थे। इनसे उस बहुसंख्यक कर्मीवर्गको क्या मिलता था? ससार झूठा है ससारकी वस्तुएं झूठी हैं, इसकी समस्याएं झूठी हैं, इनकी ओरसे आंख मूंदना ही अच्छा है अथवा धनी गरीब भगवान्के बनाये हैं, कर्मके सवार हैं उनके भागोंकेलिए ईर्ष्या करनेकी जरूरत नहीं, सन्तोष और धैर्यसे काम लो, जिन्दगी ही भर तो दुःख है। गोया इस जमातका काम था अफीमकी गोलियोंपर गोलियाँ खिलाकर धन उत्पादक निर्धन वर्गको बहोश रखना। साथ ही इस 'ससार त्यागी' वर्गको भी खाना, कपड़ा, मकान—और बाजोंकेलिए वह राजाओंसे कम खर्चीला नहीं—चाहिए जिसका भी बोझ उसी श्रमसे पिसे जाते वर्गपर था।

यह तो हुई कामचोर वर्गकी बात। कर्मकर वर्गका क्या काम था, इसका दिग्दर्शन कामचोर वर्गके साथ अभी कर चुके हैं। लेकिन, उनकी मुसीबतें वहीं खतम नहीं होती थीं। उनमें काफी संख्या ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी थी जिनकी अवस्था पशुओंसे बहतर न था। दूसरे सौदोंकी भांति उनकी खरीद फरोख्त होती थी। ये दास-दासी मनुष्यसे पशु होते तो ही बहतर था, क्योंकि उस वक्त उनका अनुभव भी तो पशुओं जैसा होता।

उस वक्तके दार्शनिकोंने ब्रह्म और निर्वाण तककी उड़ान लगाई, आत्मा परमात्मा तकका सूक्ष्म विश्लेषण किया, किन्तु नब्बे सैकड़ा जनताके पशुवत् जीवन, उसके उत्पीड़न और शोषणके बारेमें इससे अधिक नहीं बतलाया, कि यह अवश्य भव भोक्तव्य है।

ख दर्शन-विभाग

विक्रम संवत (५७ ई० पू०), ईसवी सन् या शक संवत (७८ ई०)के शुरू होनेके साथ तीन शताब्दियोंके विचार-संघर्षोंकी धुंध फटने लगती है और उसके बीचसे नई धारा निकलती है। पेशावरमें जो इस वक्त भारतके महान सम्राट कनिष्कको राजधानी ही नहीं है, बल्कि पूरब

(चीन), पश्चिम (ईरान और यूनान) तथा अपने (भारतके) विचारोंके सम्मिश्रणसे पैदा हुए नये प्रयोगकी नाप-तोल हो रही है। अश्वघोष संस्कृत काव्य-गगनमें एक महान कवि और नाटककारके रूपमें आते हैं। इसी समयके आसपास गुणाढ्य अपनी बृहत्कथा लिखते हैं। चरक एक परिष्कृत आयुर्वेदका सम्पादन करते हैं। बौद्ध सभा बुला अपने त्रिपिटकपर नये भाष्य (=विभाषा) तयार करवाते हैं।—उनके दर्शनमें विज्ञानवाद, शून्यवाद, बाह्यार्थवाद (=सौत्रान्तिक), और सर्वार्थवादकी दार्शनिक धाराएं स्पष्ट होने लगती हैं। लेकिन इस वक्तकी कृतियां इतनी ठोस न थीं कि कालके थपेड़ोंसे बच रहतीं, न वह इतनी लोकोत्तर थीं कि धार्मिक लोग बड़ी चेष्टाके साथ उन्हें सुरक्षित रखते।

दर्शनका नया युग नागार्जुनसे आरम्भ होता है, इस कालके दर्शनोंमें कितने ही ईश्वरवादी हैं और कितने ही अनीश्वरवादी, विश्लेषण करने पर हम उन्हें इस रूपमें पाते हैं—

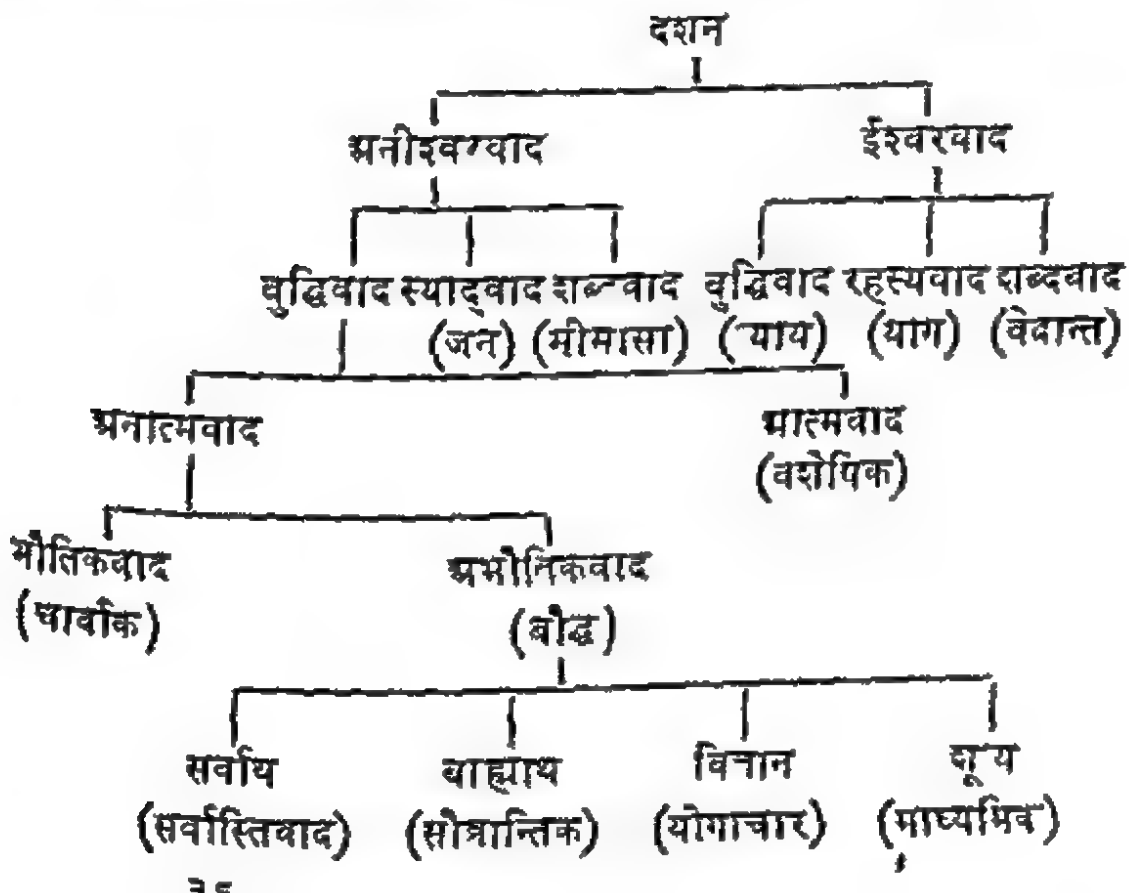

अनीश्वरवादी दर्शन

§ १ अनात्म-भौतिकवादी चार्वाक दर्शन

चार्वाक दर्शनका हम पहिले चित्र कर चुके हैं। बुद्धकालके बाद चार्वाक दर्शनके विकासका कोई क्रम हमें नहीं मिलता। साथ ही यह भी देखा जाता है कि उसकी तरफ सभी लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। अब पायामीकी तरह अपने भौतिकवादको छोड़नेमें भी शर्म महसूस करने की तो बात ही अलग लोग चार्वाक शब्दको गाली समझते हैं। इसका यही अर्थ हो सकता है, कि जिनके हितकेलिए परलोकवाद ईश्वरवाद आत्मवादका खंडन किया जाता था वह भी विरोधियोंके बहकावमें इतने आ गये थे कि अब उधर ध्यान ही देना पसन्द नहीं करते थे। तो भी इनके जिन विचारोंके खंडनकेलिए विरोधी दार्शनिकोंने उद्यत किया है उससे मालूम होता है कि अन्तर्हित होने भी इस बारे कुछ चेष्टा जरूर की थी। यहां संक्षेपमें हम इन भारतीय भौतिकवादियोंके विचारोंको रखते हैं—

१ चेतना (=जीव)—लोकायत चार्वाक भौतिक उपज मात्र मानते हैं—

"पृथिवी जल हवा, आग यह चार भूत हैं। (इन) चार भूतोंसे चैतन्य उत्पन्न होता है जैसे (उपयोगी सामग्री) से मदकी शक्ति।"[1]

२ अनीश्वरवाद—सृष्टिके निर्माताकी आवश्यकता नहीं, इसे बतलाते हुए कहा है—

'अग्नि गर्म पानी ठंडा, और हवा शीत-स्पर्शवाली।

यह सब किसने चित्रित किया? इसलिए (इन्हें) स्वभाव (से ही समझना चाहिए)।'[1] विश्वकी सृष्टि स्वभावसे ही होती है, इसके

---

[1] सर्वदर्शन-संग्रह, "कायाकारेण ततो भूत प्राणापानाद्यधिष्ठितात्।
युक्तं जायत इत्येतत् कम्बलाश्वतरोदितम्।"

लिए कर्त्ताको ढूंढना फजूल है—

"काँटोंमें तीखापन, मृगों या पक्षियोंमें विचित्रता कौन करता है ? यह (सब) स्वभावसे ही हो रहा है।"[1]

३ मिथ्याविश्वास-खंडन—मिथ्या विश्वासका खंडन करते हुए लिखा है—

"न स्वर्ग है, न अपवर्ग न परलोकमें जानेवाला आत्मा। वर्ण और आश्रम आदिकी (सारी) क्रियाएं निष्फल हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, बुद्धि और पौरुषसे जो हीन हैं, उन लोगोंकी जीविका है।"

'यदि ज्योतिष्टोम (यज्ञ)में मारा पशु स्वर्ग जायेगा तो उसके लिए यजमान अपने बापको क्यों नहीं मारता ? श्राद्ध यदि मृत प्राणियोंकी तृप्तिका कारण हो सकता है, तो यात्रापर जानेवाले व्यक्तिको पाथेयकी चिन्ता व्यर्थ है। यदि यह (जीव) देहसे निकलकर परलोक जाता है तो बन्धुओंके स्नेहसे व्याकुल हो क्यों नहीं फिर लौट आता ? मृतक श्राद्ध (आदिका) ब्राह्मणोंने जीविकोपाय बनाया है।"[2]

४ नैराश्य वैराग्य-खंडन—'विषयके संसर्गसे होनेवाला सुख दुःखसे संयुक्त होनेके कारण त्याज्य है, यह मूर्खोंका विचार है। कौन हितार्थी है जो सफेद बढ़िया चावलवाले धानको तुष (=भूसी)से लिपटी होनेके कारण छोड़ देगा ?"[1]

§ २ अनात्म-अभौतिकवादी बौद्ध दर्शन

१ बौद्ध धार्मिक सम्प्रदाय—बुद्ध आत्मवादके सख्त विरोधी थे, फिर साथ ही वह भौतिकवादके भी खिलाफ थे, यह हम बतला चुके हैं। मौर्योंके शासनकालके अन्त तक मगध ही बौद्ध धर्मका केन्द्र था, किन्तु साम्राज्यके ध्वंसके साथ बौद्ध धर्मका केन्द्र भी कमसे कम उसकी

---

[1] सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति।

[2] सर्वदर्शनसंग्रह (चार्वाक-दर्शन)।

सबसे अधिक प्रभावशाली शाखा (=निकाय)—पूरबसे पश्चिमकी ओर को खिसकने लगा। इसी स्थान-परिवर्तनमें सर्वास्तिवादी निकाय मगधसे उत्तरमुख पवन (=गान्धार मथुरा) पहुँचा, और यवन-शासन कालमें पंजाबमें जाकर शक-यवन-संघर्षके समय ईसाकी पहिली सदीके मध्यमें गंधार-कश्मीर उसके प्रधान केन्द्र बन गये। यही जगह थी, जहाँ वह यूनानी विचार कला आदिके संपर्कमें आया। अशोकके समय (२६९ ई० पू०) तक बौद्ध धर्म निम्न सम्प्रदायोंमें बँट चुका था[1]—

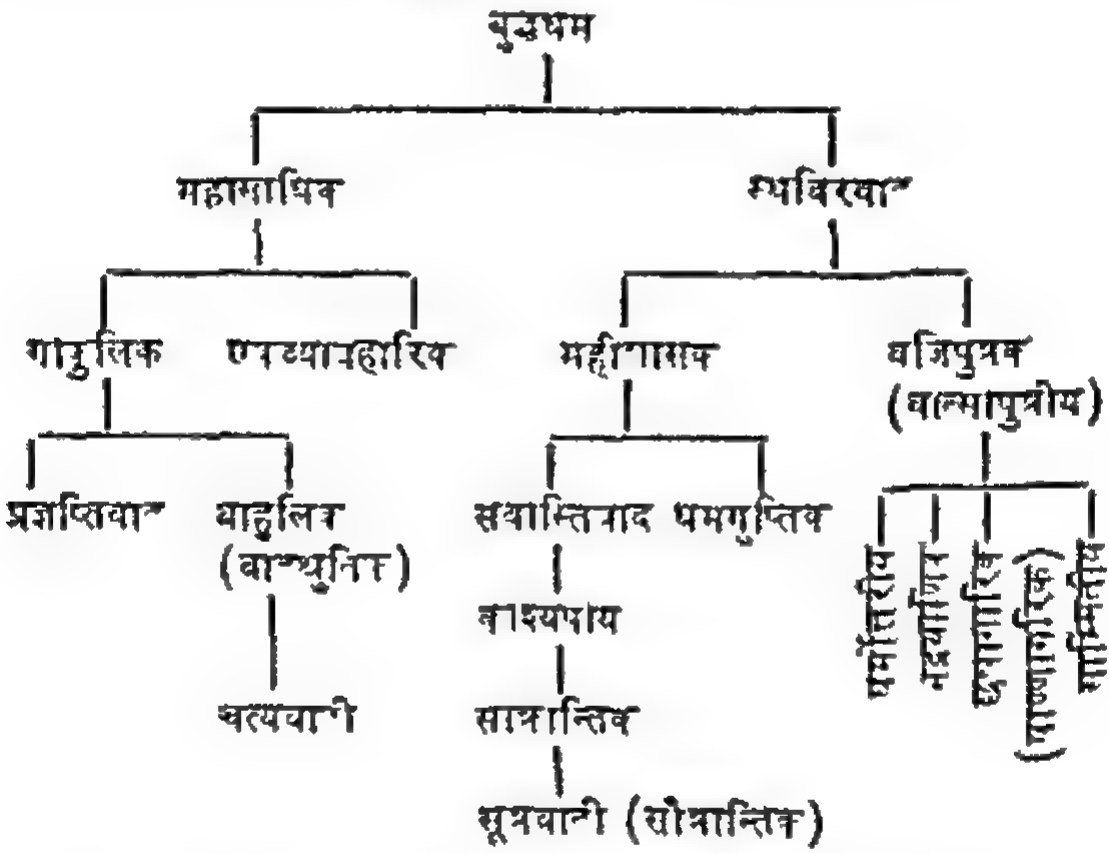

अर्थात्—बुद्धनिर्वाण (४८३ ई० पू०)के बादके सौ वर्षों (३८० ई० पू०)में स्थविरवाद (=बढ़ोंके रास्ते वाले) और महासांघिक जो दो

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व निबंधावली", पृ० १२१ (और कथावत्थु अट्ठकथा भी)।

निकाय (=सम्प्रदाय) हुए थे, वह अगले सवा सौ वर्षोंमें बँटकर महासांघिकके छः और स्थविरवादके बारह कुल अठारह निकाय हो गए—सर्वास्तिवाद स्थविरवादियोंके अन्तर्गत था। इन अठारह निकायोंके पिटक (सूत्र, विनय, अभिधर्म) भी थे, जो सूत्र और विनयमें बहुत कुछ समानता रखते थे किन्तु अभिधर्म पिटकमें मतभेद ही नहीं बल्कि उनकी पुस्तकें भी भिन्न थीं। स्थविरवादियोंने इन प्राचीन निकायोंमेंसे निम्न आठके कितने ही मतोंका अपने अभिधर्मकी पुस्तक 'कथावत्थु'में खंडन किया है—

महासांघिक, गोकुलिक, काश्यपीय, भद्रयाणिक, महीशासक, वात्सीपुत्रीय, सर्वास्तिवाद, सम्मितीय।

कथावत्थुका अशोकके गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्सकी कृति बतलाया जाता है, किन्तु उसमें वर्णित २१४ कथावस्तुओं (=वादके विषयों)में सिर्फ ७३ उन पुराने निकायोंसे संबंध रखते हैं[1] जो कि मोग्गलिपुत्त तिस्सके समय तक मौजूद थे—अर्थात उसका इतना ही भाग मोग्गलिपुत्तका बनाया हो सकता है। बाकी "कथावस्तु" अशोकके बादके निम्न आठ निकायोंसे संबंध रखती है—

(१) अन्धक (२) अपरशैलीय, (३) पूर्वशैलीय, (४) राजगिरिक, (५) सिद्धार्थक (६) वैपुल्यवाद, (७) उत्तरापथक, (८) हेतुवाद।

२ बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय—इन पुराने निकायोंके दार्शनिक विचारोंमें जानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वह "निर्देशन के कलेवरसे बाहर की बात है, किन्तु इतना स्मरण रखना चाहिए कि बौद्धोंके जो चार दार्शनिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं, उनमें (१) सर्वास्तिवाद और (२) सौत्रान्तिक दर्शन तो पुराने अठारह निकायोंसे संबंध रखते थे, बाकी (३) योगाचार और (४) माध्यमिक अठारह निकायोंसे बहुत पीछे ईसाकी पहिली सदीमें आदिम रूपमें आए। इनके विकासके क्रमके बारेमें हम 'महायान बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति'में लिख चुके हैं। महासांघिकोंमें

---

[1] देखो वहीं, पृ० १२६, टिप्पणी भी।

एक निकायका नाम था चैत्यवाद जिसका केन्द्र आन्ध्र साम्राज्यमें धान्यकटकका महाचैत्य (=महास्तूप) था इसीसे इसका नाम ही चैत्यवाद पड़ा। आन्ध्र साम्राज्यके पश्चिमी भाग (वर्तमान महाराष्ट्र) में साम्मितीय निकायका जोर था। इन्हीं दोनों निकायोंसे आगे चलकर महायानका विकास किस प्रकार हुआ—[1]

ई० पू० ३ सदी साम्मितीय=वात्सीपुत्रीय (महासांघिक)
                |
                चैत्यक (=आन्ध्रक)
                |
ई० पू० १ सदी पूर्वशैल अपरशैल राजगिरिक सिद्धार्थक
                |
                महायान

नागार्जुनका जबदस्त समर्थक लंकावतार-सूत्र वसुबन्धुका विज्ञप्तिवाद रखता है। नागार्जुनके माध्यमिक (=शून्य) वादके समर्थनमें प्रज्ञापारमिताएं तथा दूसरे सूत्र रचे गये किन्तु नागार्जुनका अपने दर्शनकी पुष्टिके लिए इनकी जरूरत न थी उन्होंने तो अपने दर्शनको प्रतीत्य-समुत्पाद (विच्छिन्न=प्रवाहरूपेण उत्पत्ति) पर आधारित किया था।

कथावत्थुके अर्वाचीन निकायोंमें हमने उत्तरापथक और हेतुवादका भी नाम पढ़ा है। उत्तरापथक कश्मीर-गंधारका निकाय था इसमें सन्देह नहीं। किन्तु हेतुवादके स्थानके बारेमें हमें मालूम नहीं। अश्वघोषके विज्ञानवादको प्रतीत्य-समुत्पादमें जोड़ देनेपर वह आसानीसे योगाचार विज्ञानवाद बन जाता है किन्तु अभी हमारे पास इससे अधिक प्रमाण नहीं है कि उसके दार्शनिक असंगका जन्म और कर्म स्थान पेशावर (गंधार) था। नागार्जुनके बाद बौद्धज्ञानके विकासमें सबसे जबदस्त हाथ असंग और वसु

[1] वहीं, पृ० १२७

बंधु इन दो पठान भाइयोंका था। नागार्जुनसे एक शताब्दी पहिलेके जबरदस्त बौद्ध विचारक अश्वघोषको यदि हम लें, तो उनका भी वंशस्थान पेशावर (गंधार) ही मालूम होता है। इससे भी बौद्ध दर्शनपर यूनानी प्रभावका पड़ना जरूरी मालूम होता है। अश्वघोषको महायानी अपने आचार्योंमें शामिल करते हैं, और इसके सबूतमें "महायानश्रद्धोत्पाद" ग्रंथको उनकी कृतिके तौरपर पेश करते हैं। किन्तु जिन्होंने 'बुद्धचरित', 'सौन्दरानंद', "सारिपुत्र प्रकरण" जैसे काव्य नाटकोंको पढ़ा है, तिब्बती भाषामें अनूदित उनके सर्वास्तिवादी सूत्रोंपर व्याख्याएं देखी हैं और जो सर्वास्तिवादी आचार्यों को चैत्य बनाकर अर्पित करनेवाले तथा त्रिपिटककी व्याख्या ("विभाषा") केलिए सर्वास्तिवादी आचार्योंकी परिषद् बुलानेवाले महाराज कनिष्कपर विचार करते हैं, वह अश्वघोषको सर्वास्तिवादी[1] स्थविर छोड़ दूसरा कह नहीं सकते।

अस्तु! यूनानी तथा शक कालके इन बौद्ध प्राचीन निकायोंपर यदि और रोशनी डाली जा सके, तो हम उन्हींके नहीं भारतीय दर्शनके एक भारी विकासके इतिहासके बारेमें बहुत कुछ मालूम हो सकेगा। किन्तु, चीनी तिब्बती अनुवाद तथा गोबीकी मरुभूमि हमारी इस विषयमें कितनी मदद कर सकती है, यह आगेके अनुसंधानका विषय है। अभी हम इससे ज्यादा नहीं कहना है कि भारतीय और यूनानी विचारधाराओंका जो समागम गंधारमें हो रहा था, उसमें अश्वघोष अपने आधुनिक ढंगके काव्यों और नाटकोंको ही नहीं बल्कि नवीन दर्शनको भी यूनानसे मिलानेवाली कड़ी थे। उनसे किसी तरह नागार्जुनका संबंध हुआ। फिर नागार्जुनने वह दर्शन चक्रप्रवर्तन किया, जिसने भारतीय दर्शनोंको एक अभिनव सुव्यवस्थित रूप दिया।

---

[1] पोइ-खङ (तिब्बत)में सुरक्षित एक संस्कृत ताल पत्रकी पुस्तककी पुष्पिकामें अश्वघोषको सर्वास्तिवादी भिक्षु भी लिखा मिला है। (देखो J B O R S में मेरे प्रकाशित सूचीपत्रोंको)।

३ नागार्जुन (१७५ ई०)का शून्यवाद

(१) जीवनी—नागार्जुनका जन्म विदर्भ (=बरार)में एक ब्राह्मणके घर हुआ था। उनके बाल्यकालमें हम अनुमान कर सकते हैं, कि वह एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे, ब्राह्मणोंके ग्रंथोंका गम्भीर अध्ययन किया था। भिक्षु बननेपर उन्होंने बौद्ध ग्रंथोंका भी उसी गंभीरताके साथ अध्ययन किया। आगे चलकर उन्होंने श्रीपर्वत (=नागार्जुनी कोंडा गुंटूर)को अपना निवास स्थान बनाया, जो कि उनकी ख्याति, तथा समय बीतनेके साथ गढ़ जानेवाले पहाड़ोंके कारण सिद्ध-स्थान बन गया। नागार्जुन वैद्यक और रसायन शास्त्रके भी आचार्य बतलाये जाते हैं। उनका अष्टांगहृदय अब भी तिब्बतके वैद्योंकी सबसे प्रामाणिक पुस्तक है। किन्तु नागार्जुनकी सिद्धाई तथा तंत्र मंत्रके बनाने बढ़ानेकी बातें जो हम पीछेके बौद्ध साहित्यमें मिलती हैं, उनसे हमारे दार्शनिक नागार्जुनका कोई संबंध नहीं।

नागार्जुन आंध्रराजा गौतमीपुत्र यज्ञश्री (१६६-१९६ ई०)के समकालीन थे विन्टरनित्ज[1]का यह मत युक्तियुक्त मालूम होता है।

नागार्जुनके नामसे वैसे बहुतसे ग्रंथ प्रसिद्ध हैं किन्तु उनकी असली कृतियाँ हैं—

(१) माध्यमिककारिका, (२) युक्तिषष्ठिका, (३) प्रमाणविध्वंसन, (४) उपायकौशल्य, (५) विग्रहव्यावर्त्तनी[2]।

इनमें सिर्फ दो—पहिली और पाँचवीं ही मूल संस्कृतमें उपलब्ध हैं।

(२) दार्शनिक विचार—नागार्जुनने विग्रह व्यावर्त्तनीमें विरोधी तर्कोंका खण्डन करके कान्टके वस्तु-सारसे उलटे वस्तु-शून्यता—वस्तुओंके

---

[1] History of Indian literature, Vol II, pp 346-48

[2] Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna Vol XXIII में मेरे द्वारा संपादित।

भीतर कोई स्थिर तत्त्व नहीं, वह विच्छिन्न प्रवाह मात्र है—सिद्धि की है।

(क) शून्यता—नागार्जुनको कारिका शैलीका प्रवर्तक कहा जाता है। कारिकामें पद्यकी-सी स्मरण करने तथा सूत्रकी भाँति अधिक बातोंको थोड़े शब्दोंमें कहनेकी सुविधा होती है। कमसे कम नागार्जुनके तीन ग्रंथ (१, २, ५) कारिकाओंमें ही हैं। "विग्रहव्यावर्तनी" में ७२ कारिकाएँ हैं, जिनमें अन्तिम दो माहात्म्य और नमस्कार श्लोक हैं, इसलिए मूलग्रंथ सत्तर ही कारिकाओंका हुआ। वह शून्यतापर है, इसलिए जान पड़ता है विग्रह-व्यावर्तनका ही दूसरा नाम 'शून्यता सप्तति' है। इन कारिकाओंपर आचार्यने स्वयं सरल व्याख्या की है।

नागार्जुनने ग्रंथके आदिमें नमस्कार श्लोक और ग्रंथ-प्रयोजन नहीं दिया है, जो कि पीछेके बौद्ध अबौद्ध ग्रंथोंमें सर्वमान्य परिपाटी सी बन गई देखी जाती है। नागार्जुनने ७१वीं कारिकामें शून्यताका माहात्म्य बतलाते हुए लिखा है—

जो इस शून्यताको समझ सकता है, वह सभी अर्थोंको समझ सकता है।
जो शून्यताको नहीं समझता वह कुछ भी नहीं समझ सकता॥"[1]

इसकी व्याख्यामें आचार्यने बतलाया है कि जो शून्यताको समझता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (=विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पत्ति)को समझ सकता है। प्रतीत्य-समुत्पाद समझनेवाला चारों आर्यसत्योंको समझ सकता है। चारों सत्योंके समझनेपर उसे तृष्णा निरोध (=निर्वाण) आदि पदार्थोंकी प्राप्ति हो सकती है। प्रतीत्य-समुत्पाद जाननेवाला जान सकता है कि क्या धर्म है, क्या धर्मका हेतु और क्या धर्मका फल है। वह जान सकता है कि अधर्म, अधर्म-हेतु, अधर्म फल क्या है। क्लेश (चित्तमल), क्लेश हेतु क्लेश वस्तु क्या है। जिसे यह सब मालूम है वह जान सकता है कि क्या है सुगति या दुर्गति, क्या है सुगति-दुर्गतिमें जाना, क्या है सुगति-

---

[1] "प्रभवति च शून्यतेयं यस्य प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः।
प्रभवति न तस्य किंचित न भवति शून्यता यस्य॥"

दुर्लभ [illegible] माग क्या है गुणि-दुर्लभ [illegible] तथा उसका उपाय।

शून्यता [illegible] प्रतीत्य-समुत्पाद[1]—[illegible] और उसकी सारी [illegible] वस्तुएं [illegible] स्थिर [illegible] तत्त्व (=आत्मा, द्रव्य आदि) से बिल्कुल शून्य है। अर्थात् विश्व [illegible] वस्तु सत्य नहीं। आचार्य ने अपने ग्रन्थ की पहिली बीस कारिकाओं में पूर्वपक्ष का प्रतिपादन किया है, और अंत के उत्तरार्द्ध में उसका उत्तर देते हुए शून्यवाद का समर्थन किया है। संक्षेप में उनका तात्पर्य इस प्रकार है—

पूर्वपक्ष—(१) वस्तुमात्र [illegible]—अर्थात् शून्यवाद ठीक नहीं है क्योंकि (i) जिन [illegible] को तुम युक्ति तौर पर इस्तेमाल करते हो, वह भी शून्य—असार—हैं, (ii) यदि नहीं तो तुम्हारी पहिली बात—सभी वस्तुएं शून्य [illegible]—झूठी ठहरी (iii) [illegible] सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं।

(२) सभी भाव (=वस्तुएं) वास्तविक हैं, क्योंकि, (i) अच्छे दूसरे सदा सभी स्वीकार करते हैं (ii) जो वस्तु है नहीं उसका नाम ही नहीं मिलता (iii) वास्तविकता का प्रतिषेध युक्तिसिद्ध नहीं (iv) प्रतिषेध्य भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

उत्तरपक्ष—(१) सभी भावों (=सत्ताओं) का शून्यता या प्रतीत्य समुत्पाद (=विच्छिन्न प्रवाह के रूप में उत्पत्ति) सिद्ध है, क्योंकि, (i) विश्व की अवास्तविकता स्वीकार शून्यता सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है (ii) इस लिए यह हमारी प्रतिज्ञा विरुद्ध नहीं (iii) जिन प्रमाणों से भावों की वास्तविकता सिद्ध की जाती है, उन्हीं से सिद्ध नहीं किया जा सकता—(a) न प्रमाण दूसरे प्रमाण से सिद्ध किया जा सकता क्योंकि ऐसी अवस्था

---

[1] विग्रहव्यावर्तनी २२—"इह हि यः प्रतीत्य भावानां भावः सा शून्यता। कस्मात्? निःस्वभावत्वात्। ये हि प्रतीत्य समुत्पन्ना भावास्ते न सस्वभावा भवन्ति स्वभावाभावात्। कस्मात्? हेतुप्रत्ययापेक्षत्वात्। यदि हि स्वभावतो भावा भवेयुः। प्रत्यात्मायामपि हेतुप्रत्ययं भवेयुः।"

में वह प्रमाण नहीं प्रमेय (=जिसे अभी प्रमाणसे सिद्ध करना है) हो जायगा, (b) वह आगकी भाँति अपनेको सिद्ध कर सकता है (c) न वह प्रमेयसे सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि प्रमेय तो खुद ही सिद्ध नहीं साध्य है, (d) न वह संयोग (=दृष्टिपाक)से सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि संयोग कोई प्रमाण नहीं है।

(२) भावों(=सत्ताओं)की शून्यता सत्य है, क्योंकि(i)यह अच्छे बुरेके भेदके खिलाफ नहीं है वह भेद तो स्वयं प्रतीत्य-समुत्पादके कारण ही है। यदि प्रतीत्य समुत्पादके आधारपर नहीं बल्कि स्वतः परमार्थरूपेण अच्छे बुरेका भेद हो, तो वह अचल एकरस है फिर ब्रह्मचर्य आदिके अनुष्ठान द्वारा इच्छानुकूल उसे बदला नहीं जा सकता, (ii) शून्यता होनेपर नाम नहीं हो सकता यह भी ख्याल गलत है, क्योंकि नामको हम सद्भूत नहीं असद्भूत मानते हैं। सत (=स्थिर अविकारी वस्तुसार)का ही नाम हो, असतका नहीं यह कोई नियम नहीं (iii) प्रतिषेध नहीं सिद्ध किया जा सकता यह कहना गलत है, क्योंकि अप्रतिषेधको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण आदिकी जरूरत पड़ेगी।

अक्षपादके न्यायसूत्रका प्रमाण सिद्धि प्रकरण तथा विग्रह-व्यावर्त्तिनी एक ही विषयके पक्ष प्रति-पक्षमें हैं। हम अन्यत्र[1] बतला चुके हैं कि अक्षपादने अपने न्यायसूत्रमें नागार्जुनके उपरोक्त मतका खंडन किया है।

पुस्तकको समाप्त करते हुए नागार्जुनने कहा है—

"जिसने शून्यता प्रतीत्य समुत्पाद और अनेक अर्थोंवाली मध्यमा प्रतिपत्(=बीचके मार्ग)को कहा उस अप्रतिम बुद्धको प्रणाम करता हूँ।"[2]

---

[1] विग्रहव्यावर्त्तनीकी भूमिका (Preface)में हम बतला आये हैं कि अक्षपादने नागार्जुनके इसी मतका खंडन किया है।

[2] वि० व्या० ७२—

"यः शून्यतां प्रतीत्यसमुत्पादं मध्यमां प्रतिपदमनेकार्थाम्।
निजगाद प्रणमामि तमप्रतिमसंबुद्धम्॥"

कभी भी कोई सत्ता न स्वतः है न परतः न स्वतः परतः दोनों, और न बिना हेतुके ही है।[1]

कार्य कारण सम्बन्धका खंडन करते हुए नागार्जुनने लिखा है—

यदि पदार्थ सत् है, तो उसके लिए प्रत्यय (=कारण)की जरूरत नहीं। यदि असत् है तो भी उसके लिए प्रत्ययकी जरूरत नहीं।

(गन्धर्व नगरकी भाँति) असत् पदार्थके लिए प्रत्ययकी क्या जरूरत? सत् पदार्थको (अपनी सत्ताके लिए) प्रत्ययकी क्या जरूरत?"[2]

उत्पत्ति स्थिति और विनाशको सिद्ध करनेके लिए कार्य-कारण, सत्ता असत्ता आदिके विवेचनमें पड़कर आखिर हमें यही मालूम होता है कि वह परस्पराश्रित है। ऐसी अवस्थामें उन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। बौद्ध-दर्शनमें पदार्थोंको संस्कृत(=कृत) और असंस्कृत (अ-कृत) दो भागोंमें बाँटकर सारी सत्ताओंको संस्कृत और निर्वाणको असंस्कृत कहा गया है। नागार्जुनने इस संस्कृत असंस्कृत विभागपर प्रहार करते हुए कहा है—

"उत्पत्ति स्थिति विनाशके सिद्ध होनेपर संस्कृत नहीं (सिद्ध) होगा। संस्कृतके सिद्ध हुए बिना असंस्कृत कैसे सिद्ध होगा?"[3]

जगत और उसके पदार्थोंकी मरुमरीचिका बतलाते हुए नागार्जुनने लिखा है—

"(रेगिस्तानकी) लहरका पानी समझकर भी यदि वहाँ जाकर पुरुष 'यह जल नहीं है' समझे तो वह मूढ़ है। उसी तरह मरीचि समान (इस) लोकको 'है' समझनेवालका नहीं है यह मोह भी मोह होनेसे युक्त नहीं है।'[4]

जिस तरह पराश्रित उत्पाद(=प्रतीत्य-समुत्पाद) होनेसे किसी वस्तुको सिद्ध, असिद्ध सिद्ध असिद्ध न सिद्ध-न असिद्ध नहीं किया जा सकता, उसी तरह प्रतीत्य-समुत्पादका अर्थ विच्छिन्न प्रवाह रूपसे उत्पाद लेनेपर वहाँ

---

[1] मध्य० का० ४ [2] वहीं २२ [3] वहीं ५६ [4] वहीं ५६

भी कार्य, कारण, कर्म, कर्त्ता आदि व्यवस्था नहीं हो सकती, क्योंकि उनमेंसे एक वस्तु दूसरेके बिलकुल उच्छिन्न हो जानेपर अस्तित्वमें आती है।

(ग) शिक्षायें—आन्ध्रवंशी राजाओंकी पदवी शातवाहन (शालिवाहन[1] भी) होती थी। तत्कालीन शातवाहन राजा (यज्ञश्री गौतमी पुत्र) नागार्जुनका "सुहृद्" था। यह सुहृद् राजा साधारण नहीं भारी राजा था, यह नागार्जुनसे चार सदी बाद हुए बाणके हर्षचरित[2]के इस वाक्यसे पता लगता है—'नागार्जुन नामक भिक्षुने उस एकावली (हार)को नागराजसे माँगा और पाया भी। (फिर) उसे (अपने) सुहृद तीन समुद्रोंके स्वामी शातवाहन नामक नरेन्द्रको दिया।

यहाँ शातवाहनको तीनों समुद्रों (अरब सागर, दक्षिण भारत सागर, बंग-खाड़ी)का स्वामी तथा नागार्जुनका सुहृद् बतलाया गया है। नागार्जुन जैसा प्रतिभाशाली विद्वान् जिसके राज्य (=विदर्भ)में पैदा हुआ तथा रहता हो, वह उससे क्या नहीं सौहार्द प्रदर्शन करेगा? नागार्जुनने अपने सुहृद् शातवाहन राजाको एक शिक्षापूर्ण पत्र 'सुहृद्-लेख' लिखा था जिसका अनुवाद तिब्बती तथा चीनी दोनों भाषाओंमें अब भी सुरक्षित है। इस लेखमें नागार्जुनने जो शिक्षायें अपने सुहृद्को दी हैं, उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

'६ धनको चंचल और असार समझ धर्मानुसार उसे भिक्षुओं, ब्राह्मणों, गरीबों और मित्रोंको दो। दानसे बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है।'

---

[1] बंश राजपूत अपनेको सालवाहन वंशज तथा पठन नगरसे आया बतलाते हैं। पठन या प्रतिष्ठान (हैदराबाद रियासत) नगर शातवाहन राजाओंकी राजधानी थी।

[2] "तामेकावलीं तस्मान्नागराजात् नागार्जुनो नाम भिक्षुरभिक्षत् लेभे च। त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहननाम्ने नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम्।'

—हर्षचरित ७

७ निर्दोष उत्तम, अभिजित, निष्कलंक, शील(=सदाचार)का (रागरहित) प्रकट हुआ प्रभुताप्राप्त आधार शील है जो कि धरावरका आधार धरती है।

२१ दूसरोंकी स्त्रीको नजर न दाहाओ यदि ऐसा तो आदुके अनुसार उस मा चन्दि या बहनकी तरह समझो।

२६ तुम जगको जानते हो संसारकी आठ स्थितियां—लाभ-अलाभ, सुख-दुःख मान अपमान, स्तुति निन्दा—में समान भाव रखो क्योंकि यह तुम्हारे विचारके विषय नहीं हैं।

३७ किन्तु उस एक स्त्री (अपनी पत्नी)का परिवारकी अधिष्ठात्री देवीकी भांति सम्मान करना जो कि वहिनकी भांति मंजुल, मित्रकी भांति विजयिनी माताकी भांति हितैषिणी, सखीकी भांति आपापहारिणी है।

४६ यदि तुम मानते हो कि 'मैं रूप (=भौतिकतत्त्व) नहीं हूँ', तो इससे तुम समझ जाओगे कि रूप आत्मा नहीं है, आत्मा रूपमें नहीं है रूप आत्मा (=मैं)में नहीं बसता। इसी तरह दूसरे (वेदना आदि) चार स्कन्धोंके बारेमें भी जानो।

"५० ये स्कन्ध न इच्छासे न कालसे न प्रकृतिसे न स्वभावसे न ईश्वरसे और न विना हेतुके पैदा होते हैं समझो कि वे अविद्या और तृष्णासे उत्पन्न होते हैं।

५१ जानो कि धार्मिक क्रिया कर्म (=शीलव्रतपरामर्श) झूठा दर्शन (=सत्कायदृष्टि) और संशय (विचिकित्सा)में आसक्ति तीन बेड़ियाँ (=संयोजन)[1] हैं।

नागार्जुनका दर्शन—शून्यवाद—वास्तविकताका अपलाप करता है। दुनियाको शून्य मानकर उसकी समस्याओंके अस्तित्वसे इनकार करनेके लिए इससे बढ़कर दर्शन नहीं मिलेगा? इसीलिए आश्चर्य

---

[1] देखो संगीति-परियायसुत्त (दी० नि०, ३।१०) "बुद्धचर्या", पृष्ठ ५९०

नहीं, यदि ऐसा दार्शनिक सम्राट यज्ञश्री गौतमीपुत्रका घनिष्ट मित्र (=सुहृद) था।

४—योगाचार और दूसरे बौद्ध-दर्शन

माध्यमिक और योगाचार महायानसे सम्बन्ध रखनेवाले दर्शन हैं, जब कि सर्वास्तिवाद और सौत्रान्तिक हीनयान (=स्थविरवाद)से सम्बन्ध रखते हैं। इन चारों बौद्ध दर्शनोंको यदि आधुनिक धर्मोंको और लाया तो वह इस प्रकार मालूम होंगे :—

वाद	नाम	आचार्य
१ शून्यवाद	माध्यमिक	नागार्जुन आर्यदेव चन्द्रकीर्ति भाव्य बुद्धपालित
२ विज्ञानवाद	योगाचार	असंग वसुबन्धु दिङ्नाग धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित
३ बाह्य अर्थवाद	सौत्रान्तिक	
४ बाह्य आभ्यन्तर अर्थवाद	सर्वास्तिवाद	संघभद्र वसुबन्धु (का अभिधर्मकोश)

योगाचार दर्शनके मूल बीज वसुबन्धुसूत्रमें मिलते हैं। उसके अवतार और निर्मोचन आदि सूत्र बाह्य जगतके अस्तित्वसे इन्कार करते हुए विज्ञान (=अभौतिक तत्त्व, मन)को एकमात्र पदार्थ मानते हैं। 'जो क्षणिक नहीं वह सत् ही नहीं' इस सूत्रका अपवाद बौद्धदर्शनमें हो नहीं सकता इसलिए योगाचार विज्ञान भी क्षणिक है। दूसरी कितनीही विचार धाराओंकी भाँति योगाचारके प्रथम प्रवर्तकके बारेमें भी हमें कुछ नहीं मालूम है। चौथी सदी तक यह दर्शन जिस किसी तरह चलता रहा, किन्तु चौथी सदीके उत्तरार्द्धमें असंग और वसुबन्धु दो दार्शनिक भाई पेशावरमें पैदा हुए, जिनके प्रौढ़ ग्रन्थोंके कारण यह दर्शन अत्यन्त प्रबल और प्रसिद्ध हो गया।

योगाचार योगाचर (=योगी) शब्दसे निकला है जो कि पुराने पिटकोंमें भी मिलता है किन्तु यहाँ यह दार्शनिक सम्प्रदायके नामके तौर

पर प्रकाश डाला है। इस नामके पड़नेका एक कारण यह भी है कि योगाचार दर्शनका प्रतिपादक आद्य असंगका मौलिक महान ग्रंथ योगाचारभूमि[1] है। असंगके बारेमें हम आगे कहेंगे। यहाँ नागार्जुन और उसके पहिले जैसा विज्ञानवादी माना जाता था और जिसपर गंधार प्रदेशमें यूनानियों द्वारा अफलातूनी दर्शनका प्रभाव जरूर पड़ा था उसके बारेमें कुछ कहते हैं।

"आलय विज्ञान (समुद्र)से प्रवृत्तिविज्ञानकी तरंगें उत्पन्न होती हैं।"[2]

लंकावतार सूत्रके इस दर्शनकी परिभाषामें आलयविज्ञान कहा गया है। विज्ञान समुद्रसे जो पाँचों इन्द्रियाँ और मनके—ये छः विज्ञान उत्पन्न होते हैं उन्हें प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं।[3]—

जैसे पवन रूपी प्रत्यय (=हेतु)से प्रेरित हो समुद्रसे नाचती हुई तरंगें पैदा होती हैं और उनके (प्रवाहका) विच्छेद नहीं होता। उसी तरह विषय रूपी पवनसे प्रेरित चित्त विचित्र नाचता हुआ विज्ञान-तरंगोंके साथ आलय समुद्र सदा क्रियापरायण रहता है।

अर्थात भीतरी नाम पदार्थ (=अभौतिक विज्ञान) पदार्थ है, वहाँ बाहरकी तरह सिलसिला पड़ता है। स्कंध प्रत्यय (=हेतु), अणु भौतिक तत्व सभी विज्ञान मात्र हैं। यह आलयविज्ञान भी प्रतीत्य-समुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पन्न), क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। क्षणिकताके कारण उसे हर वक्त नया रूप धारण करते रहना पड़ता है, जिसके ही कारण यह जगत वैचित्र्य है।

सर्वास्तिवादका वही सिद्धांत है जिसे हम बुद्धके दर्शनमें बतला आये हैं, वह बाह्य रूप, आन्तरिक विज्ञान दोनोंकी प्रतीत्य-समुत्पन्न सत्ताको स्वीकार करता है।

सौत्रान्तिक अपनेको बुद्धके सूत्रों (सूत्रों या उपदेशों)का अनुयायी बतलाते हैं। वह बाह्य विज्ञानवादसे उलटे बाह्यार्थवादी हैं अर्थात् क्षणिक रूप ही भौतिक तत्व है।

---

[1] देखो असंग पृष्ठ ७०४–३७ [2] लंकावतारसूत्र ५१ [3] वहीं

§ ३—आत्मवादी दर्शन

अनीश्वरवादी दर्शनोंमें चार्वाक और बौद्ध अनात्मवादी हैं, उनके बारेमें हम बतला चुके। दर्शनके इस नवीन युगमें कुछ ऐसे भी भारतीय दर्शन रहे हैं, जो कि ईश्वरपर तो जोर नहीं देते किन्तु आत्माका स्वीकार करते रहे हैं। वैशेषिक ऐसा ही आत्मवादी दर्शन है।

१—परमाणुवादी कणाद (१५० ई०)

क कणादका काल—वैशेषिक दर्शनके कर्त्ता कणाद थे। ब्राह्मणोंके छः दर्शनोंके कर्त्ताओंकी जीवनी और समयके बारेमें जो घना अंधकार देखा जाता है, वह कणादके बारेमें भी वैसा ही है। कणादके जीवनके बारेमें हम इतना ही जानते हैं कि वह गिरे हुए दाने (=कण)को खाकर जीवन यात्रा करते थे इसीलिए उनका नाम कणाद(=कण आद) पड़ा। लेकिन यह सूचना शायद ऐतिहासिक स्रोतसे नहीं बल्कि व्याकरणसे मिली व्याख्याके आधार पर है। वैशेषिकका दूसरा नाम औलूक्य दर्शन भी है। वैशेषिकके कर्त्ता या सृष्टिसे उलूक(=उल्लू) पक्षीका क्या संबंध था यह नहीं कहा जा सकता। कणादका दूसरा नाम उलूक होता यदि वे सरस्वती(=विद्या)के नहीं बल्कि लक्ष्मी(=धन)के स्वामी होते। उलूक कोई अच्छा पक्षी नहीं कि माता पिता या मित्र-सुहृद इस नामसे कणादको याद करते। उलूक ग्रीस (यूनान)के पवित्र चिह्नोंमें था क्या इस दर्शनका यूनानी दर्शनसे जो घनिष्ट संबंध है उसे ही तो उलूक शब्द सूचित नहीं करता?

ख यूनानी दर्शन और वैशेषिक—देवलीकी इस मरुस्थली कारागार जितनी कम सामग्रीके साथ मुझे यह पंक्तियां लिखनी पड़ रही हैं, उसकी दिक्कतोंको सहृदय पाठक जान सकते हैं। तो भी यूनानी दार्शनिकोंके मूल अनुवादोंको पढ़कर तुलना कर फिर कुछ विस्तृत तौरपर लिखनेके ख्यालपर इसे छोड़ देना अच्छा नहीं है इसलिए यहां हम ऐसे कुछ हिन्दू-यवन सिद्धान्तोंके बारेमें लिखते हैं।

a परमाण्वाद—कणादु (४०० ३२० ई० पू०)का जन्म बुद्धके निर्वाण (४८३ ई० पू०)के २३ वर्ष बाद हुआ था। यह वह समय है जब ब्राह्मण-श्रमणों, बुद्ध परायण (उपनिषदों) तथा बुद्ध-महावीर आदि आचार्यों उपदेशोंका विभव था। इस वातावरणमें रहकर हम कणादको अपूर्व स्वतन्त्र दार्शनिक कहे बिना नहीं रह सकते। कणादने जिस बात अधिकांश प्रबन्ध—पदार्थ—का सिद्धान्त निर्माण, उस बात भारतमें उसका बिलकुल स्थान न था। था यह स्थान है। कणादु परमाणुओंको सबसे सूक्ष्म तत्त्व मानता था, किन्तु साथ ही उनके परिमाण ? इसे स्वीकार नहीं करता था। कणाद भी परमाणुको सूक्ष्म परिमाणवाला कह समान है। यानी ये परमाणुओंको मूर्त्तिक निर्माणकी इकाई मानता है।

b सामान्य विशेष—वैशेषिक (४७० ५०० ई० पू०)में आकृति का महत्त्व माना था तथापि भिन्न भिन्न व्यक्तियों अलग अलग भी इस पार्थक्य रखनेवाली आकृति मौजूद रहती है। अकबानें (४२७ ३४७ ई० पू०)ने आगे आगे बढ़कर बराबर दुहराई जानेवाली आकृतियोंकी जो समानता=सामान्य है उसपर और जोर दिया उसके स्थानमें विशेष मूलतत्त्व (=विशेष)में विकसित हुए हैं। यह सामान्य विशेषकी कल्पना अकबानूने पहिले पहिल की थी। बौद्धोंके भारतमें पहिले संघ स्थापित करने (२२३ ई० पू०)में पहिलेके भारतीय साहित्यमें इस स्थान का बिलकुल अभाव है।

c द्रव्य, गुण आदि—कणादने अपने दर्शनमें विश्वके तत्त्वोंको—द्रव्य गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय इन छै पदार्थोंमें वर्गीकरण किया है। अकबानूके शिष्य अरस्तू (३८४–३२२ ई० पू०)ने अपने तर्क शास्त्रमें आठ और दस पदार्थ माने हैं—द्रव्य गुण परिमाण संबंध, दिशा काल आसन स्थिति कर्म परिमाण। द्रव्य गुण कर्म, संबंध (समवाय) दोनोंके मतमें समान है। दिशा और कालको कणादने द्रव्योंमें गिना है और परिमाणको गुणोंमें। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कणादने अरस्तूके पदार्थोंका वर्गीकरण फिरसे किया।

इन बातोंके साथ काल और भारतके यूनानसे घनिष्ट संबंध तथा सांस्कृतिक दानादानको देखते हुए यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि ये सादृश्य आकस्मिक नहीं हैं।

कणादके वैशेषिक दर्शनको बुद्धसे पहिले ले जानेका प्रयास फजूल है, कणादका दर्शन यदि पहिलेसे मौजूद होता तो बुद्ध तथा दूसरे समकालीन दार्शनिकोंको त्रिपिटक और जैनागमोंकी भाषा-परिभाषाके द्वारा अपने दर्शनोंका न आरंभ करनेकी जरूरत थी और न वह कणादके दर्शनके प्रभावसे अछूता रह सकता था।

कणादके दर्शनपर बौद्ध दर्शनका कोई प्रभाव नहीं है यह कहते हुए कितने ही विद्वान वैशेषिकको बुद्धसे पहिले खींचना चाहते हैं। इसके उत्तरमें हम अभी कह चुके हैं कि (१) बुद्धके दर्शनमें उसकी गंध तक नहीं है। (२) कणादका दर्शन बौद्ध दर्शनसे अप्रभावित नहीं है। आत्मा और नित्यताकी सिद्धिपर इतना जोर आखिर किसके प्रहारके उत्तरमें दिया गया है? यह निश्चय ही बुद्धके अनित्य अनात्मके विरुद्ध कणादकी दार्शनिक जेहाद है। यूनानी दर्शनमें भी हेराक्लितु (५३५-४२५ ई० पू०)के अनित्यतावादके उत्तरमें नित्य सामान्यकी कल्पना पेश की गई थी, कणाद और उनके अनुयायियोंका शताब्दियों तक उसी सामान्यको नित्यताके नमूनेके तौरपर पेश करना बौद्धोंके अनित्य (=क्षणिक)वादके उत्तरमें ही था और इस तरह वैशेषिक बौद्ध दर्शनसे परिचित नहीं यह बात गलत है।

नागार्जुनसे कणाद पहिले थे, यद्यपि इसके बारेमें अभी कोई पक्की बात नहीं कही जा सकती किन्तु जिस तरह हम कणादको नागार्जुनके प्रमाण विध्वंसनके बारेमें चुप देखते हैं उससे यही कहना पड़ता है कि शायद कणादको नागार्जुनके विचार नहीं मालूम थे।

ग वैशेषिकसूत्रोंका संक्षेप—कणादने अपने ग्रंथ—वैशेषिक सूत्र—को दस अध्यायोंमें लिखा है हर एक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। अध्यायों और आह्निकोंके प्रतिपाद्य विषय निम्न प्रकार हैं—

गुण कर्म इन तीन पदार्थों तक दृष्ट हेतुओंका प्रवेश है, इनसे अन्यत्र अदृष्टका सहारा लेना पड़ता है।

एक बार जब अदृष्टकी मौलिकता कायम हो गई, तो फिर उससे धर्म, रूढ़ि वर्ण-व्यवस्था सभीको कितना पुष्ट किया जा सकता है, इसे हम कान्ट आदि पाश्चात्य दार्शनिकोंके प्रयत्नोंमें देख चुके हैं। पाँचवें अध्यायके अन्त आह्निकमें उस समयके अज्ञात कारणवादी कितनी ही भौतिक घटनाओंकी व्याख्या अदृष्ट द्वारा करनेकी कोशिश की गई है। पुरोहितोंके विधान हो यज्ञ यागादि स्नान, ब्रह्मचर्य गुरुकुलवास वानप्रस्थ, यज्ञ, दान आदि क्रिया-कर्मोंका जो फल बतलाया जाता है उसे बुद्धिसे नहीं साबित किया जा सकता इनके लिए हमें अदृष्टपर वैसा ही विश्वास रखना चाहिए जैसे कि चुम्बक द्वारा लोहेके खिंचनेपर हमें विश्वास करना पड़ता है।

आहार भी धर्मका अंग है। शुद्ध आहार वह है, जो कि मन बराबर बाँधे रहता है जो आहार ऐसा नहीं है वह अशुद्ध है।

ङ दार्शनिक विचार—इस तरह कणादने धर्मके पुष्ट करनेकी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी चेष्टा जरूर की है किन्तु सारे ग्रंथमें उसकी मात्रा इतनी कम और दलील इतनी निर्बल है, कि किसी ब्राह्मणको यह कहना ही पड़ा[1]—

'धर्म व्याख्यातुकामस्य षट्पदार्थोपवर्णनम्।
हिमवद्गन्तुकामस्य सागरागमनोपमम्॥

[धर्मकी व्याख्याकी इच्छा रखनेवाले (कणाद)का छः पदार्थोंका वर्णन वैसा ही है जैसा हिमालय जानेकी इच्छावालेका समुद्रकी ओर आना।]

a पदार्थ—अरस्तूने जिस तरह अपने तर्कशास्त्रमें पदार्थोंको

---

[1] कलाप व्याकरणकी कोई पुरानी टीका —History of Indian Philosophy, (by S N Das-Gupta)में उद्धृत।

गिनाया है, उसी तरह कणाद ने भी विश्व के तत्त्वों को छः पदार्थों में विभाजित किया है वे हैं—

द्रव्य, गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय।

(a) द्रव्य—चल विश्व की तह में जो अचल या बहुत कुछ अचल तत्त्व हैं उन्हें कणाद ने द्रव्य कहा है। जो आज ईंट घर, सिकार हैं वे कल टूटकर घिसते घिसते धूलि बन जाते हैं फिर उन्हें हम ईंटों और बर्तनों के रूप में बदल सकते हैं। इन सब तब्दीलियों में जो वस्तु एकसी रहती है वही है पृथिवी द्रव्य। कणाद नौ द्रव्य मानते हैं—

पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश काल दिशा (=देश) आत्मा और मन।

इनमें पहिले चार अभौतिक तत्त्व और अपने मूलरूप में अत्यन्त सूक्ष्म अविभाज्य, अवध्य अनेक परमाणुओं में मिलकर बने हैं। आकाश काल दिशा और आत्मा अभौतिक तथा सर्वत्र व्यापी तत्त्व हैं। मन भी अतिसूक्ष्म अभौतिक कण (=अणुपरिमाणवाला) है।

(b) गुण—गुण सदा किसी द्रव्य में रहता है। जैसे—

द्रव्य	विशेषगुण	सामान्य गुण		
१ पृथिवी	गंध	रस रूप स्पर्श		
२ जल	रस	रस रूप स्पर्श तरलता स्निग्धता	संयोग, विभाग	संख्या परिमाण पृथक्त्व
३ अग्नि	रूप	रूप स्पर्श		
४ वायु	स्पर्श	स्पर्श		
५ आकाश	शब्द	शब्द		
६ काल			परत्व, अपरत्व	
७ दिशा			परत्व अपरत्व	
८ आत्मा				

[1] पीछे के न्याय वैशेषिक ने अभाव को और जोड़ सात पदार्थ माने हैं।

कणादने सिर्फ ग्यारह गुण माने थे—

(१) रूप
(२) रस
(३) गंध
(४) स्पर्श (=सर्दी गर्मी)
(५) संख्या
(६) परिमाण
(७) पृथक्त्व (=अलगपन)
(८) संयोग (=जुड़ना)
(९) विभाग
(१०) परत्व (=पर होना)
(११) अपरत्व (=उरे होना)

किन्तु पीछेके आचार्योंने १३ और नये गुणोंकी संख्या जोड़ कर दी है—

(१२) बुद्धि (=ज्ञान)
(१३) सुख
(१४) दुःख
(१५) इच्छा
(१६) द्वेष
(१७) प्रयत्न
(१८) गुरुत्व (=भारीपन)
(१९) लघुत्व (हल्कापन)
(२०) द्रवत्व (=तरलता)
(२१) स्नेह (=जोड़नेका गुण)
(२२) संस्कार
(२३) अदृष्ट (=अलौकिक शक्तिमत्ता)
(२४) शब्द

इनमें द्रवत्व स्नेह और शब्दको कणादने जल और आकाशके गुणोंमें गिना है। गंध, रस रूप स्पर्श शब्द—विशेष गुण कहे गये हैं, क्योंकि ये पृथिवी जल, अग्नि वायु आकाशके क्रमशः अपने अपने विशेष गुण हैं।[१]

(c) कर्म—कर्म क्रिया(=गति)को कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—

---

[१] "वायौ नवकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृता चतुर्दश।
दिक्-कालयो पंच षडेव चात्मनि महेश्वरेष्टौ मनसस्तथैव च॥"

(१) उत्क्षेपण (=ऊपरकी ओर गति)
(२) अपक्षेपण (=नीचेकी ओर गति)
(३) आकुंचन (=सिकुड़ना)
(४) प्रसारण (=चारों ओर फैलना)
(५) गमन (=सामनेकी गति)

द्रव्य, गुण, और कर्मपर दृष्ट हेतुओंका प्रयोग होता है, यह बतला चुके हैं। इन तीनोंको हम निम्न समान रूपोंमें पाते हैं—

(१) सत्ता (=अस्तित्व) वाले
(२) अनित्य
(३) द्रव्य
(४) कार्य
(५) कारण
(६) सामान्य
(७) विशेष

गुण और कर्म सदा किसी द्रव्यमें रहते हैं, इसलिए द्रव्यको गुण कर्मोंका समवायि (=नित्य) कारण कहते हैं। गुण की विशेषता यह है, कि वह किसी दूसरे गुण और कर्ममें नहीं होता।

(d) सामान्य—अनेक द्रव्योंमें रहनेवाला नित्य पदार्थ सामान्य है, जैसे पृथिवीत्व (=पृथिवीपन) अनेक पार्थिव द्रव्योंमें गोत्व (=गौपन)

अर्थात्—

द्रव्य	गुण-संख्या	द्रव्य	गुण-संख्या
(१) पृथिवी	१४	(६) काल	५
(२) जल	१४	(७) दिशा	५
(३) अग्नि	११	(८) आत्मा	१४
(४) वायु	९	(९) मन	८
(५) आकाश	६		

महेश्वर (=ईश्वर)को पीछेके ग्रन्थकारोंने आठ गुणोंवाला माना है, किन्तु कणादके सूत्रोंमें ईश्वरके लिए कोई स्थान नहीं, वहाँ तो ईश्वर का काम अदृष्टसे लिया गया है।

[illegible]

(c) [illegible]—[illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। इसी विशेषके प्रतिपादनके कारण कणादके शास्त्रका नाम वैशेषिक पड़ा।

(f) समवाय—वस्तुओंके [illegible] विशेष संबंधका समवाय कहा है। द्रव्यके साथ उसके गुण कर्म समवाय संबंधसे संबद्ध हैं—[illegible] [illegible] इस समवाय संबंधसे रहते हैं। सामान्य (—[illegible]) भी [illegible] गुण कर्मसे समवाय (—[illegible]) संबंधसे रहता है।

(g) द्रव्य—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] द्रव्योंमें आकाश काल और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी मानता [illegible]। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—इस प्रश्नका उत्तर [illegible] नहीं था। वैशेषिकका कहना है—[illegible] गुण है जो [illegible] सिद्ध है। [illegible] द्रव्यके बिना नहीं रह सकता [illegible] किसी और [illegible] जाना नहीं जा सकता, इसलिए एक [illegible] द्रव्यकी [illegible] है जो कि आकाश है। कणादको यह नहीं मालूम था कि इसका [illegible] जगह में [illegible] [illegible] [illegible] सकती।

(h) काल[1]—[illegible] [illegible] एक साथ (=यौगपद्य), क्षिप्रता हमारे लिए सिद्ध बात है इनका कोई कारण होना चाहिए इसी कारणको काल कहा जाता है। कालका जबरदस्त खंडन बौद्धोंने किया है जो बहुत कुछ आधुनिक सापेक्षतावादी तरहका है, इसे हम आगे करेंगे[2]। कणादके समय व्यवहारकी आसानीके लिए जो कितनी ही युक्तिरहित धारणाएं

---

[1] सत्ता [2] देखो, धर्मकीर्ति पृष्ठ ७४०

फली हुई थी उनसे भी उन्हें अपने वादका अंग बनाया।

(b) दिशा—दूर और नजदीकका ख्याल जो देखा जाता है उसका भी कोई आश्रय होना चाहिए और वही दिशा (=देश) द्रव्य है। सापेक्षता[1]में हम देख चुके हैं, और आगे धर्मकीर्तिके दर्शनमें भी देखेंगे कि देश या दिशा व्यवहार-सत्य हो सकती है किन्तु ऐसे निष्क्रिय अदृष्ट तत्त्वका परमार्थ-सत्य सिर्फ श्रद्धावान ही माना जा सकता है।

(c) आत्मा—(१) इन्द्रियों और विषयोंके संपर्कसे हमें जो ज्ञान होता है, उसका आधार इन्द्रिय या विषय नहीं हो सकते क्योंकि वे दोनों ही भौतिक—जड—हैं। ज्ञानका अधिकरण (=काश) आत्मा है। (२) जीवितावस्थामें शरीरमें गति और मृतावस्थामें गतिका बन्द होना भी बतलाता है कि गति देनेवाला कोई पदार्थ है वही आत्मा है। (३) श्वास प्रश्वास आँखका निमेष उन्मेष मनकी गति सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न शरीरके रहते भी जिसके अभावमें नहीं होते वही आत्मा है। दूसरे आत्मवादियोंकी भाँति कणाद शब्द (=वेद धार्मिक ग्रंथ)के प्रमाणसे आत्माको सिद्ध कर सकते थे किन्तु शब्द प्रमाणपर जिस तरहका प्रहार उस वक्त पड़ रहा था उससे उन्होंने उसपर ज्यादा जोर नहीं दिया। उन्होंने यह भी कहा कि (४) आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध है, जिसे 'मैं' (=अहं) कहा जाता है वह किसी पदार्थका वाचक है, और वही पदार्थ आत्मा है। इस प्रकार यद्यपि आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध है तो भी अनुमान उसकी और पुष्टि करता है। सुख दुःख, ज्ञानकी निष्पत्ति (=उत्पत्ति) सबमें एकसी होनेसे (सभी आत्माओं)की एक आत्मता (=एक आत्माकी व्यापकता) है तो भी सबका सुख दुःख, ज्ञान अलग अलग होता है जिससे सिद्ध है, कि आत्मा एक नहीं अनेक है। शास्त्र (=वेद आदि) भी इस मतकी पुष्टि करते हैं।

(d) मन—अणु(=सूक्ष्म) परिमाणवाला तथा प्रत्येक आत्माका

---

[1] देखो, "विश्वकी रूपरेखा"।

अलग अलग है। कई इन्द्रियां और विषयोंका सन्निकर्ष हो चुका है, आत्मा भी व्यापक होनेसे वहां मौजूद है तो भी अनेक इन्द्रियां आत्माके साथ मिलकर अनेक विषयोंका ज्ञान नहीं करा सकतीं, एक बार एक विषयका ही ज्ञान होता है, इससे मालूम होता है कि इन तीनोंके रहते कोई एक चौथी चीज (आत्माकी शक्तिको सीमित करनेवाली) है, जो अणु होनेसे सिर्फ एक इन्द्रिय विषय-संपर्कपर ही पहुँच सकती है, वही मन है। मन प्रत्यक्षका विषय नहीं है, इसलिए एक बार एक ही विषयका ज्ञान होनेसे उसका हम अनुमान कर सकते हैं।

(ग) **अन्य विषय**—छः पदार्थोंके अतिरिक्त कुछ और बातोंपर कणादने प्रसंगवश विचार किये हैं। जैसे—

(a) **अभाव**—अभावको यद्यपि कणादने अपने पिछले अनुयायियोंकी भांति पदार्थोंमें नहीं गिना है तो भी उन्होंने उसका प्रतिपादन जरूर किया है। अभाव अ-सत् अविद्यमानको कहते हैं। अभाव गुण और क्रियासे रहित है। सिर्फ क्रियासे रहित इसलिए नहीं कहा क्योंकि वैसा करनेपर आकाश काल और दिशा भी अभावमें शामिल हो जाते, इसलिए कणादने उन्हें कोई न कोई गुण देकर भाव पदार्थोंमें शामिल किया। अभाव चार प्रकारके होते हैं (१) **प्राग्-अभाव**—उत्पत्तिसे पहिले उस वस्तुका न होना प्राग् अभाव है जैसे बननेसे पहिले घड़ा। (२) **ध्वंस अभाव**—ध्वंस हो जानेपर जो अभाव होता है जैसे टूट जानेके बाद घड़ेकी अवस्था। (३) **अन्योन्य अभाव**—भाववाले पदार्थ भी एक दूसरेके तौरपर अभाव रूप हैं घड़ा कपड़ेके तौरपर अभाव रूप है कपड़ा घड़ेके तौरपर अभाव रूप है। (४) **सामान्य अभाव** (=अत्यंताभाव)—किसी देश-कालमें वस्तुका न होना सामान्याभाव है जैसे गन्धर्वकी सींग बाँझका बेटा। अभाव वाली वस्तुकी स्मृतिकी सहायतासे अभावको प्रत्यक्ष किया जा सकता है। स्मृति अभावके प्रतियोगी (=जिसका कि वह अभाव है उस) वस्तुका चित्र सामने उपस्थित रखती है जिससे हम अभावका साक्षात्कार करते हैं।

(b) नित्यता—जो सत् (=भाव रूप) है और बिना कारणका है, वह नित्य है। जैसे कार्य (=धूए)से कारण (=आग)का अनुमान होता है, उस अभावसे भावका अनुमान होता है, उसी तरह अनित्यसे नित्यका अनुमान होता है। कणाद, दमोक्रितुके मतानुसार बाहरसे निरन्तर परिवर्तन होती दुनियाकी तहमें अचल, अपरिवर्तन-शील, नित्य परमाणुओंको देखते हैं। पृथिवी जल, तेज वायु ये चारों भूत परमाणु रूपमें नित्य हैं। इन्हीं नेत्र अगोचर सूक्ष्मकणोंके मिलनेसे आँखसे दिखाई देनेवाले अथवा शरीरके स्पर्शसे मालूम होनेवाले स्थूल महाभूत पैदा होते हैं। मन भी अणु तथा नित्य है। आकाश, काल, दिक्, आत्मा सर्वव्यापी (=विभु) होते नित्य हैं। इस प्रकार कणादके मतमें परिवर्तन अनित्यता या क्षणिकता बाहरी दिखावा मात्र है, नहीं, तो विश्व वस्तुतः नित्य है—अर्थात् अनित्यता अवास्तविक है और नित्यता वास्तविक। यह सीधे बौद्धदर्शनके अनित्यता (=क्षणिक)वादका जवाब नहीं तो और क्या है? कणादका मुख्य प्रयोजन ही मालूम होता है, बौद्ध क्षणिकवादको देमोक्रितुके परमाणुवाद अफलातूके सामान्यवाद तथा अरस्तूके द्रव्य आदि पदार्थवादकी सहायतासे खंडित करना। कणादने यूनानियोंके दर्शनका प्रयोग पूरीतौरसे अपने मतलबके लिए किया, इसमें सन्देह नहीं।

(c) प्रमाण—वैशेषिक दर्शनकी पदार्थोंकी विवेचना मुख्यतः थी पदार्थोंके नित्य और अनित्य रूपों एवं दृष्ट और अदृष्ट (=शास्त्र) हेतु असि उन रूपोंकी सिद्धिके लिए। किन्तु किसी वस्तुकी सिद्धिके लिए प्रमाणपर कुछ कहना जरूरी था, इसीलिए विशेषतौरसे नहीं बल्कि प्रसंगवश प्रमाणोंपर भी वैशेषिकसूत्रोंमें कुछ कहा गया। यहाँ सभी प्रमाणोंका एक जगह क्रमबद्ध विवेचन नहीं है तो भी सब मिलानेपर प्रत्यक्ष, अनुमान ये दो प्रमाण यहाँ मिलते हैं। (१) साथ ही कणाद कितनी ही बातोंके लिए शास्त्र या शब्दप्रमाणको भी मानते हैं। (२) नवें अध्यायके प्रथम आह्निकमें वस्तुके साक्षात्कार करनेके लिए योगीकी विशेष शक्तिका भी जिक्र आता है जिससे मालूम होता है, कि यौगिक शक्तिको कणाद

अलग अलग । कई इन्द्रिया और विषयोंका सन्निकर्ष हो चुका है, आत्मा भी व्यापक होनेसे सदा ही मौजूद है तो भी मनके इन्द्रियों आत्माके साथ मिलकर अनेक विषयोंका ज्ञान हो। कैसे सकता। एक बार एक विषयका ही ज्ञान होता। इससे मालूम होता है कि इन तीनोंके रहते कोई एक तीसरी चीज (आत्माकी शक्तिका संनिधि करानेवाली) है, जो अपने साथ लिए एक इन्द्रिय विषय-संसर्गपर ही पहुँच सकता है, वही मन । मन प्रत्येक विषय नहीं है इसलिए एक बार एक ही विषयका ज्ञान होने उसका हम अनुमान कर सकते हैं।

(ग) अन्य विषय—छः पदार्थोंके अतिरिक्त कुछ और बातोंपर कणादने प्रसंगवश विचार किया है। जैसे—

(a) अभाव—अभावको यद्यपि कणादने अपने सिद्धान्त अनुयायियोंकी भाँति पदार्थोंमें नहीं गिना तो भी उन्होंने उसका प्रतिपादन जरूर किया है। अभाव अ-सत् अर्थात् विद्यमानको कहते हैं। अभाव गुण और क्रियासे रहित है। सिर्फ क्रियासे रहित इसलिए नहीं कहा, क्योंकि ऐसा करनेपर आकाश काल और दिशा भी अभावमें शामिल हो जाते, इसलिए कणादने उन्हें कोई न कोई गुण देकर भाव-पदार्थोंमें शामिल किया। अभाव चार प्रकारके होते हैं। (१) प्राग् अभाव—उत्पत्तिसे पहिले उस वस्तुका न होना प्राग् अभाव है, जैसे बननेसे पहिले घड़ा। (२) ध्वंस अभाव—ध्वंस हो जानेपर जो अभाव होता है जैसे टूट जानेके बाद घड़ेकी अवस्था। (३) अन्योन्य अभाव—भावात्मक पदार्थ भी एक दूसरेके तौरपर अभाव रूप हैं घड़ा कपड़ेके तौरपर अभाव रूप है, कपड़ा घड़ेके तौरपर अभाव रूप है। (४) सामान्य अभाव (=अत्यंताभाव)—किसी देश-कालमें वस्तुका न होना सामान्याभाव है जैसे गदहेकी सींग बाँझका बेटा। अभाव जैसे वस्तुकी स्मृतिकी सहायतासे अभावका प्रत्यक्ष किया जा सकता है। स्मृति अभावके प्रतियोगी (=जिसका कि वह अभाव है उस) वस्तुका चित्र सामने उपस्थित रखती है जिससे हम अभावका साक्षात्कार करते हैं।

(b) नित्यता—जो सद (=भाव रूप) है, और बिना कारणका है वह नित्य है। जैसे धूम (=धूआं)से कारण (=आग)का अनुमान होता है जैसे अभावसे भावका अनुमान होता है, उसी तरह अनित्यसे नित्यका अनुमान होता है। कणाद देमोक्रितुके मतानुसार बाहरसे निरन्तर परिवर्तन होती दुनियाकी तहमें अचल अपरिवर्तनशील, नित्य परमाणुओंको देखते हैं। पृथिवी जल तेज वायु ये चारों भूत परमाणु रूपमें नित्य हैं। वहीं नेत्र अगोचर सूक्ष्मकणोंके मिलनेसे आँखसे दिखाई देनेवाले अथवा शरीरके स्पर्शसे मालूम होनेवाले स्थूल महाभूत पैदा होते हैं। मन भी अणु तथा नित्य है। आकाश काल, दिक्, आत्मा सर्वव्यापी (=विभु) होते नित्य हैं। इस प्रकार कणादके मतमें परिवर्तन अनित्यता या क्षणिकता बाहरी दिखावा मात्र है नहीं, तो विश्व द्रव्य नित्य है—अर्थात अनित्यता अवास्तविक है और नित्यता वास्तविक। यह सीधे बौद्धदर्शनके अनित्यता (=क्षणिक)वादका जवाब नहीं था और क्या है? कणादका मुख्य प्रयोजन ही मालूम होता है, बुद्ध क्षणिकवादको देमोक्रितुके परमाणुवाद, अफलातूके सामान्यवाद तथा अन्त्य द्रव्य आदि पदार्थवादकी सहायतासे खंडित करना। कणादने दूसरे दर्शनका प्रयोग पूरातौरसे अपने मतलबके लिए किया, इसमें शक नहीं।

(c) प्रमाण—वैशेषिक दर्शनकी पदार्थोंकी विवेचना मुख्यतः दो पदार्थोंके नित्य और अनित्य रूपों एवं दृष्ट और अदृष्ट (=शास्त्र) हेतुओंसे उन रूपोंकी सिद्धिके लिए। किन्तु किसी वस्तुकी सिद्धिके लिए प्रमाण पर कुछ कहना जरूरी था इसीलिए विशेषतौरसे नहीं बल्कि प्रसंगवश प्रमाणोंपर भी वैशेषिकसूत्रोंमें कुछ कहा गया। यहाँ सभी प्रमाणोंका एक जगह क्रमबद्ध विवेचन नहीं है तो भी सब मिलाकर प्रत्यक्ष, अनुमान ये दो प्रमाण वहाँ मिलते हैं। (१) साथ ही कणाद कितनी ही बातोंके लिए शास्त्र या शब्दप्रमाणको भी मानते हैं। (२) नवें अध्यायके प्रथम आह्निक वस्तुके साक्षात्कार करनेके लिए योगका विशेष शक्तिका भी जिक्र आता है जिससे मालूम होता है, कि योगिक शक्तिको कणाद

प्रमाणोंमें मानते हैं। किस तरहके शब्द और योगि प्रत्यक्षको प्रमाण माना जाय इसके बारेमें कणादने बहस नहीं की। (३) प्रत्यक्षपर एक जगह कोई विवेचना नहीं है। हां भाव-अभाव प्रकरणमें "इन्द्रिय और विषयके सन्निकर्ष (=सम्बन्ध)से ज्ञान का जिक्र प्रत्यक्षके ही लिए आया है इसमें सन्देह नहीं। जो पदार्थ प्रत्यक्षके विषय हैं उनमेंसे गुण कर्म, सामान्यकी प्रत्यक्षताका उनके आश्रयभूत द्रव्यके संयोगसे बतलाया है—जैसे कि पृथिवीद्रव्यका (घ्राणसे) संयोग होनेपर गंध गुणका प्रत्यक्ष होना जैसे अग्नि वायुके संयोगसे रूप वर्ण स्पर्श गुणोंके प्रत्यक्ष होते हैं। (४) वस्तुका अनुमान प्रसिद्धिके आधारपर होता है। इसके तीन रूप हैं—(a) एकके अभावका अनुमान दूसरेके भाव (=विद्यमानता)से जैसे सींगके विद्यमान होनेसे अनुमान हो जाता है कि वह घोड़ा नहीं है। (b) एकके भावका अनुमान दूसरेके अभावसे जैसे सींगके न विद्यमान होनेसे अनुमान होता है कि वह घोड़ा है। (c) एकके भावसे दूसरेके भावका अनुमान जैसे सींगके विद्यमान होनेसे अनुमान हो जाता है यह गाय है। ये सभी अनुमान इन प्रसिद्धियोंके आधारपर किये जाते हैं कि घोड़ा सींग रहित होता है गाय सींग सहित होती है। प्रथम अध्यायके प्रथमाह्निकमें यह भी बतलाया है कि कारण (आग)के अभावमें कार्य (धूम)का अभाव होता है किन्तु कार्य (धूम)के अभावमें कारण (अग्नि)का अभाव नहीं होता। अनुमानके लिए हेतुकी जरूरत होती है। बिना देखे ही कोई कह उठता है पर्वतमें आग है किन्तु जब हम उसे देखते नहीं केवल मात्रसे आगकी सत्ता नहीं मानी जा सकती। इसके लिए हेतु देनेकी जरूरत पड़ती है और वह है—क्योंकि वहां धुआं दिखाई पड़ रहा है' इस प्रकार नवम अध्यायके दूसरे आह्निकमें हेतुका जिक्र किया गया है।

(d) ज्ञान और मिथ्याज्ञान—अविद्या या मिथ्याज्ञान इन्द्रियोंके विकार अथवा गलत संस्कारोंके साथ किये साक्षात्कार या अ साक्षात्कारके कारण होता है। इसके उल्टा है विद्या या ज्ञान।

(e) ईश्वर—ईश्वरके लिए कणादके दर्शनमें गुंजाइश नहीं।

उसके नौ द्रव्योंमें आत्मा आया है, किन्तु वह इन्द्रिया और मनोबल सहायतासे ज्ञान प्राप्त करनेवाले अनेक जीव। उन्हें कर्मफल आदि अदृष्ट देता है। यह फल देनेवाला अदृष्ट सुकृत-दुष्कृतकी वासना या संस्कार है। इसे ईश्वर नहीं कहा जा सकता। सृष्टिके निर्माणके लिए परमाणुओंमें गतिकी आवश्यकता है जिससे कि उनमें संयोग होकर स्थूल पदार्थ बनें। सृष्टि-रचनाके लिए होनेवाली यह परमाणु-गति भी कर्मादके अनुसार अदृष्टके अनुसार होती है इस प्रकार अदृष्टवादी कर्मादकी सृष्टि, कर्मफल देनेकी भी ईश्वरकी जरूरत नहीं महसूस होती।

२—अनेकान्तवादी जैन-दर्शन

जैन तीर्थंकर महावीरके दर्शनके बारेमें हम पहिले कुछ बतला चुके हैं। महावीरके समय यह व्रत उपवास और तपस्याका पंथ था, अभी इसपर दर्शनकी पुट नहीं लगी थी किन्तु जैसा कि हम बतला आये हैं संजय वेलट्ठिपुत्तके अनेकान्तवादसे प्रभावित हो जैनोंने अपना अनेकान्तवादी स्याद्वाद दर्शन तैयार किया। दार्शनिक विचार मंथन और यूनानियोंके संपर्कसे ईसवी सन्‌के आरम्भ होनेके साथ अपने-अपने दार्शनिक विचारोंको सुव्यवस्थित करनेका प्रयत्न जो भारतके भिन्न भिन्न संप्रदायोंने करना शुरू किया उसमें जैन भी पीछे नहीं रह सकते थे और इसीका परिणाम हम नग्नता और आचारके बलसे इस संप्रदायमें स्याद्वाद दर्शनके रूपमें पाते हैं। नग्न व्यवस्थावाले जैन-दर्शनके पुराने ग्रंथकार उमास्वातिका नाम पहिले आता है। इनका समय ईसाकी पहिली सदी बतलाया जाता है किन्तु यह संदिग्ध है। जो कुछ भी हो उमास्वातिका तत्त्वार्थाधिगम नवीन दर्शनयुगमें जैनोंका सबसे पुराना दर्शन ग्रंथ है।

यद्यपि जैनोंके श्वेताम्बर और दिगम्बर दो मुख्य संप्रदाय ईसाकी पहिली सदीसे चले आते हैं तो भी जहाँ तक दर्शनका संबंध है, उनमें वैसा कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनोंके भेद आचार आदिके संबंधमें हैं जैसे—

श्वेताम्बर	दिगम्बर
१ आर्त भोजन करते हैं	नहीं

७ वर्धमानका गर्भावस्थामें देवनन्दाका त्रिशलाके गर्भमें
बदला गया था। नहीं
साधु वस्त्र पहिन सकता है नहीं
८ स्त्रीका मोक्ष मिल सकता है नहीं

श्वेताम्बर जैन अधिकतर गुजरात, पश्चिमी राजपूताना, युक्तप्रान्त और मध्यभारतमें रहते हैं। दिगम्बर पश्चिमोत्तर पंजाब, पूर्वीय राजपूताना और दक्षिण भारतमें रहते हैं। श्वेताम्बरोंके मूलग्रन्थ—अंग—प्राकृतमें लिखे हैं, किन्तु दिगम्बरोंके सारे ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। दिगम्बर प्राकृत अंगोंको जनावश्यक बतलाते हैं यद्यपि पालि त्रिपिटकमें अर्धमागधी रूपनेपर भी वे उतने नवीन नहीं हैं जितने कि ये उन्हें बतलाते हैं।

जैन धर्म-दर्शनकी एक खास विशेषता है कि इसके प्रायः सारे अनुयायी व्यापारी महाजन और छोटे दुकानदार हैं। लाभ-शुभ" और पालित्र स्वाभाविक प्रेमी व्यापारी वर्गका चरम अहिंसाके दर्शनमें इतनी श्रद्धा आकस्मिक नहीं हो सकती यह हम अन्यत्र[1] बतला आये हैं।

हमने यहाँ २०० ४०० ई० तकके भारतीय दर्शनोंको लिया है किन्तु इसके अगले प्रकरणमें दुःखानन्द वचनके लिए हम यहीं अगले विकासको भी लेते हुए इस विषयमें लिख रहे हैं।

(१) दर्शन और धर्म—जैनोंने स्याद्वादका जिक्र पीछे कर चुके हैं, जिसके अनुसार वह सबमें सबके होनेकी संभावना मानते हैं। उपनिषदोंके दर्शनमें नित्यतापर जोर दिया गया था बौद्धोंका जोर अनित्यता पर था, जैनोंने दोनोंका सम्मेल बतलाते हुए बीचका रास्ता स्वीकार किया। उदाहरणार्थ—

उपनिषद	बौद्ध	जैन
(ब्रह्म) सत् है	सब अनित्य है	कुछ नित्यमान है और कुछ अनित्यमान भी

[1] "भारत संस्कृति" पृष्ठ १६३-४

जन दोनाकी आंशिक सत्यता और असत्यताको बतलाते हुए कहते हैं—पर्यायनयसे देखनेपर मिट्टीका पिंड नष्ट होता है, घड़ा उत्पन्न होता है वह भी नष्ट हो जाता है। किन्तु द्रव्यनयसे देखनेपर सारी अवस्थाओंमें मिट्टी (द्रव्य) मौजूद रहती है। द्रव्यको न वह सर्वथा परिवर्तनशील मानते हैं, नहीं सर्वथा अपरिवर्तनशील, बल्कि परिवर्तनशील अ-परिवर्तनशील दोनों तरहका मानते हैं—अर्थात द्रव्य एक ही समयमें वह (=द्रव्य है) और नहीं भी है। सत्ता (=विद्यमानता)के बारेमें सात प्रकारके स्याद (=हो सकता है)की बात हम पीछे बतला चुके हैं।

(२) तत्त्व—जन-दर्शनमें तत्त्वोंके दो पाँच सात नौ भेद बतलाये गये हैं, जो कि बौद्धोंके स्कन्ध, आयतन धातुकी भाँति एक ही विश्वका भिन्न भिन्न दृष्टिसे विभाजन है।—

दो तत्त्व—जीव, अजीव

पाँच तत्त्व—जीव अजीव आकाश, धर्म, पुद्गल

सात तत्त्व—जीव अजीव, आस्रव, बंध संवर निर्जर, मोक्ष

नौ तत्त्व—जीव अजीव आस्रव बंध, संवर, निर्जर मोक्ष पुण्य, अपुण्य

दो और पाँच तत्त्वोंवाले विभाजनमें दार्शनिक पदार्थोंको ही रखा गया है पिछले दो विभाजनोंमें धर्म और आचारकी बातोंको भी शामिल कर लिया गया है।

(३) पाँच अस्तिकाय—जीव अजीवके दो भेदोंमें अजीवको ही आकाश, "धर्म", 'अधर्म' पुद्गल चार भेदोंमें बाँटकर पाँच तत्त्वमें बाँटा गया है, इन्हें ही पंच अस्तिकाय भी कहते हैं इनमें—

(क) जीव—जीव आत्माको कहते हैं जिसकी पहिचान ज्ञान है। तो भी सिर्फ ज्ञानवाला मान लेनेपर अनेकान्तवाद न हो सकता था, इसलिए कहा गया[1]—

---

[1] "ज्ञानाद भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्न कथञ्चन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूत सोऽयमात्मेति कीर्तित ॥"

जो [illegible] भिन्न [illegible] और [illegible] अभिन्न [illegible] [illegible] भी भिन्न और अभिन्न [illegible] (जो) ज्ञान पूर्वापरवाला [illegible] वह आत्मा [illegible] ॥

आत्मा भौतिक (=भूतपरिणाम) नहीं है, शरीर उसका अधिष्ठान है जीवोंकी संख्या असंख्य है। जीव नहीं सर्वव्यापी है [illegible] वार्षिक [illegible] की भाँति अणु है [illegible] मध्यम परिमाणी है अर्थात् जिसका बड़ा शरीर होता है उसका बड़ा ही आत्मा है—हाथीके शरीरमें हाथीके बराबर का आत्मा है और चींटीके शरीरमें चींटीके बराबरका। मुक्त होनेपर निकलकर जब वह चींटीके शरीरमें प्रवेश करता है तो उसे वैसा ही क्षुद्र आकार धारण करना पड़ता है। दीपकके प्रकाशकी भाँति वह प्रसार और संकोच कर सकता है। इतनेपर भी आत्मा नित्य है भिन्न-भिन्न जीवोंमें इन्द्रियोंकी संख्या कम-बेश होती है यह ख्याल जैनोंमें महावीरके समयसे चला आता है। [illegible] बढ़वानेपर जो साधुओं बौद्ध भिक्षुओंको एकेन्द्रिय जीव [illegible] [illegible] [illegible]

(a) संसारी—संसारी आवागमन (=पुनर्जन्म) के चक्कर (=संसार) में फिरते रहनेवाले हैं। वे कर्मके आवरणमें ढँके हुए हैं। मन-सहित (=समनस्क) और मन रहित (=अमनस्क) यह उनके दो भेद हैं। जिज्ञासा, क्रिया आदिके ग्रहण करनेवाली संज्ञा (=होश) जिनमें है वह मन-सहित जीव है। जिनमें संज्ञा (होश) नहीं है, वह मन रहित (=अमनस्क) है। समनस्कोंके फिर दो भेद हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वृक्ष—ये एक इन्द्रियवाले जीव स्थावर जीव हैं। पृथिवी आदि चारों महाभूत भी जैन-दर्शनके अनुसार किसी जीवके शरीर हैं, उपनिषदोंके अन्तर्यामी ब्रह्मकी तरह नहीं, बल्कि हृदयी आत्मवादियोंके शरीर निवासी जीवकी तरह।

मन-सहित (=समनस्क) जीव छः इन्द्रियोंवाले नर, देव और नारकीय प्राणी हैं।

(b) मुक्त—जीवोंमें जिन्होंने त्याग-तपस्यासे कर्मके आवरणको हटाकर कैवल्य पद प्राप्त कर लिया है, वे मुक्त कहे जाते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि अनन्तकालसे आजतक जिस प्रकार प्राणी मुक्त होते जा रहे हैं, उससे तो एक दिन दुनिया जीवोंसे खाली हो जायगी। इसके समाधानमें जैन-दर्शनका कहना है कि जीवोंकी संख्या घटने योग्य नहीं है। विश्व तो निगोद—जीव-ग्रंथियों—से भरा हुआ है। एक एक निगोदके भीतर संकोच विकास शील जीवोंकी कितनी भारी संख्या है, यह इससे पता लग सकता है कि अनादिकालसे लेकर आजतक जितने जीव मुक्त हुए हैं, उनके लिए एक निगोद पर्याप्त है। इस प्रकार संसारके उच्छिन्न होनेका डर नहीं।

(अजीव)—अजीवके धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश चार भेद बतला चुके हैं। धर्म, अधर्म यहाँ खास अर्थमें व्यवहृत होता है।

(ख) धर्म—विश्वव्यापी एक चालक तत्त्व है, जिसका अनुमान गति—प्रवृत्ति—से होता है।

(ग) अधर्म—एक विश्वव्यापी रोधक तत्त्व है, स्थिति—गतिहीन अवस्था—से इसका अनुमान होता है।

विश्वका संचालन, सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन्हीं दो तत्त्वों—धर्म, अधर्म

—द्वारा होता है।

(घ) पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)—बौद्ध-दर्शनमें पुद्गल जीवका वाचक है और बौद्ध इस तरहके पुद्गलको नहीं मानते। जैनोंका पुद्गल उससे भिन्न कुछ उलटा अ-जीव पदार्थ अर्थात् भौतिक तत्त्व है। पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)में रूप, रस, गंध, वर्ण चारों गुण मिलते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) उनका सूक्ष्म पहुँचनेपर वह सूक्ष्म अणु रह जाते हैं, इन्हें अणु-पुद्गल कहते हैं, ये दमाक्रिटुस भौतिक परमाणु हैं जिनके सिद्धान्तको दूसरे भारतीय दार्शनिकों की भाँति जैन-दर्शनने भी बिना आभार स्वीकार किये अपनाया है। (२) दूसरे हैं स्कंध-पुद्गल, जो अनेक परमाणुओंके संघात (=स्कन्ध) हैं। स्कन्ध पुद्गलोंकी उत्पत्ति परमाणुओंके संयोग वियोगसे होती है।

(ङ) आकाश—यह भी पाँच अस्तिकायोंमें एक है और उपनिषद्के समयसे चला आया है। यह आकाश संसारी जीवोंके लोकसे परे जहाँ कि मुक्त जीव हैं वहाँ तक फैला हुआ है। आकाश अभावात्मक नहीं भावात्मक वस्तु है इसलिए इसकी गणना पाँच अस्तिकायोंमें है।

(४) सात तत्त्व—(क, ख) सातमें जीव और अजीवका पाँच अस्तिकायोंके रूपमें अभी उनका चुके हैं, शेष पाँच निम्न प्रकार हैं।

(ग) आस्रव—आस्रव बहनेका कारण है जैसे नदी आस्रवति (=नदी बहती है)। बौद्ध-दर्शनमें भी आस्रव (=आसव) आता है किन्तु वह केवल शुद्ध चित्तमलके अर्थमें। जीव कषाय या चित्तमलसे लिपटा आवागमनमें आता है।

कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ और अशुभ ये कषाय हैं। अ-क्रोध, अ-मान, अ-माया, अ-लोभ शुभ (अच्छे) कषाय हैं।

(घ) बंध—बंध सातवाँ तत्त्व है। कषायसे लिप्त होनेसे जीव विषयोंमें आसक्त होता है यही बंध या बन्धन है, जिसके कारण जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें दुःख सहते मारा मारा फिरता है।

कषायके चार हेतु होते हैं—(१) मिथ्या दर्शन—झूठा ज्ञान जो नैसर्गिक या पूर्वकृत मिथ्या कर्मोंसे उत्पन्न भी हो सकता है या उपदेशजन्य

यानी इसी जन्मम झठ दर्शनोंके सुनने पढ़नेसे हो सकता है। (२) अविरति या इन्द्रिय आदिपर संयम न करना। (३) प्रमाद है आस्रव रोकनेके उपाय गुप्ति समिति आदिमें आलसी होना।

(ङ) संवर—आस्रव प्रवाहके रास्तेको रोक देनेको संवर कहते हैं। जो कि गुप्ति और समिति द्वारा होता है।

(a) गुप्ति—काया वचन, मनकी रक्षाको कहते हैं। गुप्तिका शब्दार्थ है रक्षा।

(b) समिति—समिति संयम है इसके पाँच भेद हैं—(१) ईर्या समिति यानी प्राणियोंकी रक्षा करना (२) भाषा समिति हित परिमित और प्रिय भाषण, (३) ईषणा समिति—शुद्ध दोषरहित भिक्षा का ही लेना (४) आदान समिति, यह देख भालकर आसन वस्त्र आदिको लेना कि उसमें प्राणिहिंसा आदि होनेकी तो संभावना नहीं है (५) उत्सर्ग-समिति यानी वैराग्य, जगत मल गन्दगीसे पूर्ण है इसे उत्सर्ग (=त्याग) करना चाहिए।

जैसे बौद्धोंका आर्य सत्योंपर बहुत जोर है, वैसे ही जैन धर्ममें आस्रव और संवर मुमुक्षुके लिए त्याज्य और ग्राह्य है—

'आवागमन (=भव) का हेतु आस्रव है और संवर मोक्षका कारण। बस यह अर्हत (महावीर) की रहस्य शिक्षा है दूसरे तो इसीके विस्तार हैं।'[1]

इसी तरह बौद्धोंमें भी बुद्धकी शिक्षाका सार माना जाता है—

सारी बुराइयों (=पापों) का न करना भलाइयोंका संपादन करना। अपने चित्तका संयम करना यह बुद्धकी शिक्षा है।

(च) निर्जर—जन्मान्तरसे जो कर्म—कषाय—संचित हो गया है

"आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्ष-कारणम्।
इतीयमार्हती मुष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम्॥"

[1] "सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्सुपसंपदा। सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं॥"

[illegible]

(घ) [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [

स्त्रीसे विवाह, सदाचारका पालन, पापधन्दे, अतिथि-सेवा करनी चाहिए।

(घ) भावना—मानसिक एकाग्रता है। मोक्षके लिए करणीय भावनाओंके कई प्रकार हैं जैसे—

(a) अनित्यता भावना—भोगोंको अनित्य समझ उनकी भावना करना।

(b) [1]अशरण भावना—कि मृत्यु दुःखके प्रहारसे बचनेके लिए संसारमें कोई शरण नहीं है।

(c) [1]अशुचि भावना—कि शरीर मल-दुर्गंध पूर्ण है।

(d) आस्रवा भावना—कि आस्रव बंधनके हेतु हैं।

(e) धर्मस्वभावाख्यातता भावना—संयम सत्य, शौच ब्रह्मचर्य अलोभ तप क्षमा मृदुता सरलता आदि द्वारा भावना रत होना।

(f) लोक भावना—सृष्टिके स्वभावकी भावना।

(g) बोधि भावना—मनुष्यकी अवस्था कर्म निर्मित है।

(h) [1]मैत्री भावना—सर्वत्र मित्रताके भावसे देखना।

(i) [1]करुणा भावना—

(j) [1]मुदिता भावना—आदि।

(६) अनीश्वरवाद—ईश्वरको न माननेमें जैन भी चार्वाक और बौद्ध दर्शनोंके साथ हैं। इनकी युक्तियाँ भी प्रायः वही हैं जिन्हें वे दोनों दर्शन देते हैं। वैशेषिकोंने लोककी सृष्टिके लिए अदृष्टको ईश्वरके स्थानपर रखा है, और जैनोंने धर्म-अधर्मको उसके स्थानपर रखा। लोक ऊर्ध्व मध्य और अधः तीनों लोकोंमें विभक्त है, जिनमें क्रमशः देव मानव और नारकीय लोग बसते हैं। लोकमें सर्वत्र आकाश है, जिसे लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाशके परे तीन तह हवाकी हैं। मुक्त जीव तीनों लोकोंको पार कर लोकाकाशके ऊपर जाकर वास करता है।

व्यापार, दूकान, सूदका व्यवसाय।

[1] ये भावनाएं बौद्ध-ग्रंथोंमें भी पाई जाती हैं।

जैन तत्त्वोंका वृक्षाकारमें इस प्रकार प्रकित कर सकते हैं—

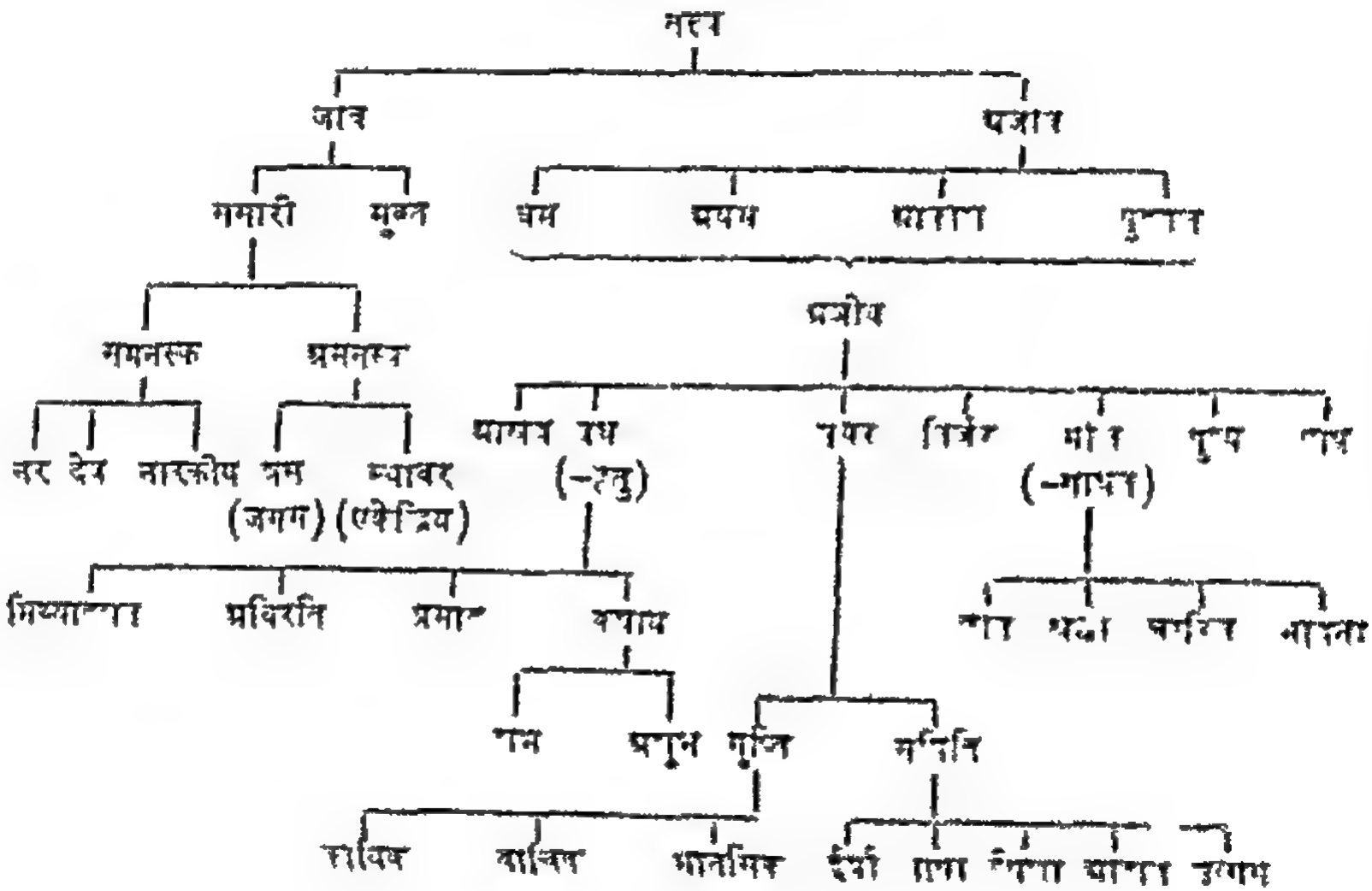

वाजि वर्ण-संहितामें वाजपेय-कर्मकाण्डकी विधि और व्याख्याके लिए भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा कई पोथियां तैयार बनाए जाते थे। शतपथ, तैत्तिरीय तैत्तिरीय पञ्चविंश गोपथ आदि कितने ही ब्राह्मण ग्रंथ अब भी मिलते हैं। इन्हीं ब्राह्मणोंमेंसे कुछके अन्तिम भाग आरण्यक और उपनिषद् हैं यह भी हम बतला चुके हैं। ब्राह्मणोंका मुख्य तात्पर्य भिन्न भिन्न यज्ञोंकी प्रक्रियाओं तथा वह यज्ञ किन किन मन्त्रोंके साथ की जानी चाहिए इसका बतलाना है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें वर्णित ये विधान जहां-तहां बिखरे तथा कहीं कहीं असंबद्ध भी थे जिससे पुरोहितोंको दिक्कत होती थी, जिसके लिए बुद्धके पीछे कितनेही ग्रंथ बने जिन्हें कल्प-सूत्र या प्रयोग शास्त्र कहते हैं। कल्प-सूत्रोंमें श्रौत सूत्रोंका काम था यज्ञ करनेवाले पुरोहितोंकी आसानीके लिए सारी प्रक्रियाको व्यवस्थित रीतिसे जमा कर देना। यजुर्वेदके कात्यायन श्रौतसूत्रको देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

ब्राह्मण और श्रौतसूत्रोंने यज्ञ पद्धतियां बनानेका कोशिश की। अपने अपने वक्तके लिए वह पर्याप्त था किन्तु ईसवी सन्के शुरू होनेके साथ सिर्फ पद्धतियोंसे काम नहीं चल सकता था बल्कि वहां जरूरत थी उठती हुई शंकाओंको दूर कर यज्ञ और कर्मकाण्डके महत्त्वको समझानेकी। इसी कामको अक्षपाद ऋषिने करना चाहा किन्तु यूनानी दर्शनने दिमाग पर भारी असर किया था जिससे धर्मके तार्किक व्याख्यान द्वारा श्रद्धाकी पुष्टिकी जगह दृष्टपर जोर ज्यादा दिया जिससे वह लक्ष्यसे बहक गए। जैमिनि जैसा कि अभी कहा जा चुका है यज्ञ और कर्मकाण्डको लौकिक पारलौकिक लाभके रूपमें पुरोहितोंकी आमदनीके एक भारी व्यवसायकी रक्षा करनेके ख्यालसे पहिले तो यह सिद्ध करना चाहा कि सत्यकी प्राप्तिके लिए वेद ही एक मात्र अभ्रान्त प्रमाण है। इसके बाद फिर उसने भिन्न भिन्न यज्ञ उनके अंगों तथा दूसरे कर्मकाण्डसंबंधी प्रक्रियाओंका विवेचन किया।

मीमांसा-सूत्रमें १२ अध्याय तथा प्रायः २५०० सूत्र हैं। इसके भाष्यकार शबर स्वामी (४०० ई०)ने याज्ञिकोंके मतका जिस तरहसे खंडन

किया है। उससे उसका अस्तित्व समकालीन या पश्चात्कालीन होना चाहिए। मीमांसाके शब्द प्रामाण्यवाद तथा कर्मकाण्डका खंडन दिङ्नाग और दूसरे आचार्योंने किया, उसके उत्तरमें छठी सदीमें कुमारिल भट्ट (६१० ई०)ने कलम उठाई और जैमिनिका समर्थन करते हुए मीमांसाके भिन्न भिन्न भागोंपर तीन श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुप्टीका तीन ग्रंथ लिखे जिनमें श्लोकवार्तिक विशेषकर तर्क निर्भर है। कुमारिलके शिष्य प्रभाकर (जिसकी प्रतिभाके कारण कहा जाता है उसके गुरु कुमारिलने उन गुरुका नाम दे दिया और तबसे प्रभाकरका मत गुरुमत कहा जाने लगा)ने शबर भाष्यपर दूसरी टीका बृहती लिखी। मीमांसापर और भी ग्रंथ लिखे गए किन्तु शबर और कुमारिलके ही ग्रंथ ज्यादा महत्त्व रखते हैं। हम यहाँ जैमिनि ही के दर्शनपर न होंगे कुमारिलका दार्शनिक मत धर्मकीर्तिके प्रकरणमें पूर्वपक्षके रूपमें आ जायगा।

(२) मीमांसासूत्र संक्षेप—मीमांसाने अपने १२ अध्याय तथा ढाई हजार सूत्रोंमें निम्न विषयोंपर विवेचन किया है—

अध्याय	विषय
१	प्रमाण—विधि (=यज्ञका विधान) अर्थवाद मन्त्र स्मृति नामधेयकी प्रामाणिकता।
२	अपूर्व—क्रमभेद उपोद्घात प्रमाण अपवाद प्रयोगभेद।
३	श्रुति लिंग वाक्य प्रकरण स्थान समाख्या (=नाम)के विरोध प्रधान(-यज्ञ)के उपकारत्व और कर्मोंका चिन्तन।
४	प्रधान (=मुख्य) यज्ञ तथा अप्रधान (=अंग यज्ञ)की प्रयोजनता, जूहू (=पात्र)के पत्ते आदिके होनेका फल राजसूय यज्ञके भीतर जूआ खेलने आदि कर्मोंपर विचार।
५	श्रुति लिंग आदिके क्रम उनके द्वारा विशेषका घटना बढ़ना और मजबूती तथा समझारा।
६	अधिकारी उसका धर्म द्रव्य प्रतिनिधि अवलोपनप्राय शिक्षा सम्प्रदाय वह्निपर विचार।

अध्याय	विषय
७	प्रत्यक्ष (=श्रुतिमें) न कथन किये गए अतिदेशमय नाम लिंग अतिदेशपर विचार।
८	स्पष्ट अस्पष्ट प्रबल लिंग वाले अतिदेशपर विचार।
९	ऊहपर विचारारम्भ—साम-ऊह मन्त्र ऊह।
१०	निषेधके अर्थोंपर विचार।
११	मन्त्रके उपादेयत्व, अवाप प्रपचन अवाय, प्रपचन चिंतन।
१२	प्रसंग मंत्र निर्णय समुच्चय विकल्पपर विचार।

यह सूची पूर्ण नहीं है। यहां दिये विषयोंसे यह भी पता लग जाता है कि मीमांसाका दर्शनसे बहुत थोड़ा सा संबंध है, बाकी तो कर्मकाण्ड-संबंधी प्रश्नों विरोधों, संदेहोंको दूर करनेके लिए कोशिश मात्र है।—वस्तुतः जैमिनि कल्प सूत्रों (=प्रयोगशास्त्रों)के लिए वही काम किया है जो कि वेदान्तने उपनिषदोंके लिए।

(३) दार्शनिक विचार—जैमिनि पहिले सूत्रमें धर्म जिज्ञासाको मीमांसा शास्त्रका प्रयोजन बतलाया। धर्म क्या है। इसका उत्तर दिया—'चोदनालक्षणार्थो धर्मः'[1]—(वेदकी) प्रेरणा जिसके लिए हो वह बात धर्म है। कणादने धर्मकी व्याख्या करते हुए उसे अभ्युदय और निःश्रेयस (=पारलौकिक समृद्धि)का साधन बतलाया था। जैमिनि यहाँ धर्मका स्वरूप बतलाना चाहा, और उसके लिए तर्क और बुद्धिपर जोर न देकर वेदके उन वाक्योंको मुख्य बतलाया जिनमें कर्मकी प्रेरणा(=चोदना या विधि) पाई जाती है। इस प्रेरणा(=चोदना)वाक्य ब्राह्मणोंमें सत्तरके बराबर है। इन्हें ही जैमिनि कर्मकाण्डके लिए सबसे बड़ा प्रमाण तथा उसके सफलताकी गारंटी बतलाता है।

मीमांसाने बुद्धिवादकी चर्चाको धर्म आर्य भारतमें किस मतलबसे प्रतिपादन किया इसे आचार्य शबरस्वामीके वाक्य बहुत अच्छी तरह बत

[1] मीमांसा-सूत्र १।१।२

लाते हैं[1]—

'मीमांसक पुराने ब्राह्मणी यज्ञवाले धर्मके अत्यन्त कट्टर धर्मशास्त्री थे। यज्ञके सिवाय किसी दूसरे विषयके तर्क वितर्कके वह सख्त खिलाफ थे। शास्त्र—वेद—उन ७०के करीब उत्पत्ति विधियोंके संग्रहके अतिरिक्त और कुछ नहीं। ये विधियाँ यज्ञोंका विधान करती हैं और बतलाती हैं कि उनके करनेसे किस तरहका फल मिलेगा। (मीमांसाके) इस धर्मम न कोई धार्मिक भावुकता है और न उच्च भावनाएँ। उनकी सारी बातें इस सिद्धान्तपर स्थापित हैं—ब्राह्मणोंको उनकी दक्षिणा दे दो और फल तुम्हारे पास आ मौजूद होगा। लेकिन इस धार्मिक क्रय विक्रय—व्यापार—पर जो प्रहार (बुद्धिवादियोंकी ओरसे) हो रहे थे उनसे अपनी रक्षा करना मीमांसकोंके लिए जरूरी था, और (सारे व्यापारकी भित्ति) वेदकी प्रामाणिकताको दृढ करनेके लिए 'शब्द नित्य है' इस सिद्धान्तकी कल्पना थी। जिन गकार आदि (वर्णों)से हमारी भाषा बनी है, वह उस तरहकी ध्वनियाँ या शब्द नहीं हैं जैसी कि दूसरी ध्वनियाँ और शब्द। वर्ण नित्य अविकारी द्रव्य हैं किन्तु सिवाय समय-समयपर अभिव्यक्त होनेके उन्हें साधारण आदमी (सदा) नहीं ग्रहण कर सकता। जिस तरह प्रकाश जिस वस्तुपर पड़ता है उसे पैदा नहीं करता बल्कि प्रकाशित (=अभिव्यक्त) करता है, इसी तरह हमारा उच्चारण वर्णके शब्दोंको पैदा नहीं बल्कि प्रकाशित करता है। सभी दूसरे आस्तिक नास्तिक दर्शन मीमांसकोंके इस उपहासास्पद विचारका खंडन करते थे, तो भी मीमांसक अपनी असाधारण सूक्ष्म तार्किक युक्तियोंसे उनका उत्तर देते थे। इस एक बातकी रक्षामें वह इतने व्यस्त थे कि उन्हें दूसरे दार्शनिक विषयोंपर ध्यान देनेकी फुर्सत न थी। वह कट्टर वस्तुवादी योग तथा अध्यात्मविद्याके विरोधी और निषेधात्मक सिद्धान्तोंके पक्षपाती थे। कोई सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं

[1] Buddhist Logic (by Dr Th Stcherbatskv, Leningrad 1932) Vol I, pp 23-24 (भावार्थ)

कोई सर्वज्ञ नहीं, कोई सर्वज्ञ परुष नहीं। विश्वके भीतर कोई रहस्यवाद नहीं। वह उससे अधिक कुछ नहीं है जैसा कि हमारी (स्थूल) इन्द्रियोंको दिखलाई पड़ता है। इसलिए (यहाँ) कोई स्वयंभू (=स्वतःसिद्ध) विचार नहीं, कोई रचनामय साक्षात्कार नहीं, कोई (मानस) प्रतिबिंब नहीं, कोई अन्तर्दर्शन नहीं, एक केवल चेतना—चेतना स्मृतिकी कोरी तख्ती—है जो कि सभी बाहरी अनुभवोंको अंकित करती और सुरक्षित रखती है। वेदोंको जाननेवाले शब्दको नित्य माननेके लिए उन्होंने जिस प्रकारकी मनोवृत्ति दिखाई, वैसा उनके (यज्ञके) फलोंके पीछे पसेव हिसाबवाले सिद्धान्तमें भी पाई जाती है। यज्ञकी क्रियाएँ बहुत पेचीदा हैं, या बहुतसे टुकड़ों(=अंगों)से मिलकर सम्पन्न होती हैं। प्रत्येक अंग क्रिया आंशिक फल(=भाग अपूर्व) उत्पन्न करती है, फिर ये आंशिक फल जोड़े जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण फल(=समाहार अपूर्व) तैयार होता है—यही सम्पूर्ण याग (=प्रधान)का फल है। शब्द नित्य है, इस सिद्धान्त तथा इससे सम्बंध रखनेवाले विचारोंको छोड़ देनेपर मीमांसा और बुद्धिवादी न्याय-वैशेषिक दर्शनोंमें कोई भेद नहीं रहता। मीमांसकोंके सबसे जबर्दस्त विरोधी बौद्ध दार्शनिक थे। दोनोंके प्रायः सारे ही सिद्धान्त एक दूसरेसे उल्टे हैं।

(क) वेद स्वतः प्रमाण है—जैसा कि ऊपरके उद्धरणसे मालूम हुआ मीमांसाका मुख्य प्रयोजन था पुरोहितोंकी आजीविकाको सुरक्षित करना। इसीसे उन्हें सभी मिल सकती थी, यदि याग-विधि कर्मकाण्डको मानें, विधि कर्मकाण्ड तब यजमानोंको प्रिय हो सकता था जब कि उन्हें विश्वास हो कि यज्ञका अच्छा फल—स्वर्ग जरूर मिलेगा। इस विश्वासके लिए कोई पक्का प्रमाण चाहिए, जिसके लिए मीमांसकोंने वेदको पेश किया। उन्होंने कहा—वेद अनादि, वह किसी देवता या मानुषने नहीं बनाया—अपौरुषेय—। इसपर वेदमें गलतीका डर नहीं रहता है, क्योंकि उसमें राग-द्वेष, जिससे प्रेरणाओं पर पक्षपात भी मुमकिन निकल सकता है। वेद यदि किसी व्यक्तिका बनाया होता तो उसके कर्त्ताओंका नाम सुना जाता,

कर्त्ताकी याद तक न रहनी यही सिद्ध करती है कि वेद अकृत है। वेद अनादि है क्योंकि उन्हें हर एक वेदपाठीने अपने गुरुसे पढ़ा है और इस प्रकार यह गुरु शिष्यकी परम्परा कभी नहीं टूटती। वेदमन्त्रोंमें भरद्वाज वशिष्ठ कुशिक आदि ऋषियों दिवोदास सुदास आदि राजाओंके नाम आते हैं। जमिनि मन्त्र(=संहिता) और ब्राह्मण दोनोंको वेद मानता है। उसने और सबने ऐतिहासिक नामोंकी व्याख्याके पहले फँसनेके डरसे दयानन्दकी भाँति ब्राह्मणको वेदसे खारिज नहीं किया। भरद्वाज-वशिष्ठ और दिवोदास-सुदाससे लेकर आरुणि-याज्ञवल्क्य और पौलायण-जनक तक सबको ऐतिहासिक नामोंको वह अनैतिहासिक वस्तुओंका नाम कहकर व्याकरणके धातु प्रत्ययोंसे व्याख्या कर देना चाहता है। जमिनिके लिए प्रावाहणि किसी प्रवहणके पुत्र का नाम नहीं बहनेवाली हवाका नाम है। ऋषियोंको मन्त्रकर्त्ता कहना गलत है। वेदके शब्द अर्थका सम्बन्ध नित्य है जैसे लौकिक भाषामें रेलगाड़ी शब्द और पहियोंवाले लम्बे चौड़े घर पदार्थका सम्बन्ध पिता माता-गुरु आदि द्वारा बतलाया और किसी समय बने मानव-मस्तिष्क रूपमें देखा जाता है वेदमें ऐसा नहीं है। जमिनिने तो बल्कि यहाँ तक कहा है कि लौकिक भाषामें भी 'गाय' शब्द और गाय अर्थका जो सम्बन्ध है वह भी वैदिक शब्दार्थ सम्बन्धकी नकलपर भ्रान्तिके कारण है।

वेद जिस कर्मको इष्टका साधन बतलाता है, वही धर्म है। वेद जिसे अनिष्टका साधन बतलाता है वह अधर्म है। स्मृति (=ऋषियोंके बनाए धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ) और सदाचार भी धर्मके प्रमाण हो सकते हैं यदि वह वेद अनुसारी है। स्मृति और सदाचारमें पाये जानेवाले कितने ही कर्म भी धर्म हो सकते हैं यदि वेदमें उनका विरोध न मिले। किन्तु उन्हें वेदसे अलग समझकर धर्म नहीं माना जायगा बल्कि इसलिए माना जायगा कि वेदका वैसा कोई वाक्य पहिले कभी मौजूद था जिससे स्मृति और सदाचारने उसे लिया। अब वेदकी कितनी ही शाखाओंके लुप्त हो जानेसे वह प्राप्य नहीं है। 'प्राप्य नहीं है' का अर्थ इतना ही लेना है कि

उसका अभिव्यक्ति नहीं होता, इसलिये विना होमके [illegible]
[illegible]।

(a) विधि—[illegible] भी सकल उसका प्रयोजनके है। विधि-वाक्य जिनके द्वारा कर्म आदि कर्मोंके करनेका वाक्य [illegible] है[1]—"स्वर्गकी कामनावाला अग्निहोत्र करे, सोमसे यजन करे" 'पशुकी कामनावाला उद्भिद (यज्ञ)का यजन करे'। इस तरह सकल शरीर विधि-वाक्य [illegible] कर्मोंके करनेका विधान करता है। और साथ ही यजमानका उसे शुभकारी मानता है। यदि मनुष्यका अभिलाषा, इसका ज्ञान कोई प्रयोजन नहीं मानता कि यज्ञका विधान—पशु पकड़ने आदि [illegible] मास काटना पकाना [illegible] होम करने आदि—[illegible] उसे पढ़ने (=विनियोग)की जरूरत होती है। ब्राह्मणमें भी इन सारे-[illegible] विधायक वाक्योंके अतिरिक्त बाकी सारे—ब्राह्मण—आरण्यक उपनिषद—पोथी निरे अर्थवाद हैं।

सामगान सारा यज्ञ प्रधान यज्ञ कहा जाता है, लेकिन सारा यज्ञ एक भागमें पूरा नहीं हो सकता। जैसे "गाय गाता है" यह सारा वाक्य एक अभिप्रायको व्यक्त करता है किन्तु जब "गा" बोला जा रहा होता है उसी वक्त अभिप्राय नहीं मालूम होता। जब एक एक करके "हे [illegible] हम पहुँचते हैं, तो सारे गाय गाता है" वाक्यका अभिप्राय मालूम हो जाता है। उसी तरह एक यज्ञके अंगभूत कर्म पूरे होने पर जब सामगान यज्ञ पूरा हो जाता है तो उसके फलका अपूर्व—फल उत्पादक संस्कार—पैदा होता है यही अपूर्व श्रुति प्रतिपादित फलको इस जन्म या परजन्ममें देगा।

(b) अर्थवाद—वेद (ब्राह्मण)के चार विधि-वाक्योंको छोड़ बाकी सभी अर्थवाद हैं यह बतला चुके। अर्थवाद चार प्रकारके हैं—निन्दा प्रशंसा, परकृति पुराकल्प। निन्दा आदि द्वारा अर्थवाद विधिकी पुष्टि

---

[1] अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' सोमेन यजेत"।

करता है। जैमिनिके अनुसार आरुणि और याज्ञवल्क्यके सार गंभीर दर्शन यज्ञ प्रतिपादक विधियोंके अर्थवादको छोड़ और कोई महत्त्व नहीं रखते।

(i) स्तुति[1]— उसका मुख शोभता है, जो इस जानता है — यहाँ जाननेकी विधिकी स्तुति है।

(ii) निन्दा—इस अर्थवादका उदाहरण है[2]— आँसुओंसे जन्मी (यह) चाँदी है जो इस यज्ञमें देता है वर्षसे पहिलेही उसके घरमें रोते हैं। यह यज्ञमें दक्षिणा रूपसे चाँदी देनेकी निंदा करके 'यज्ञमें चाँदी नहीं देनी चाहिए'—इस विधि-वाक्यकी पुष्टि करता है। (iii) परकृति—दूसरे किसी महान् पुरुषने किसी कामको किया उसको बतलाना परकृति है जैसे 'अग्निने कामना की'[3] (iv) पुराकल्प—पुराने कल्पका ज्ञान जैसे पहिले (जमानेमें) ब्राह्मण थे।"[4] जैसे स्तुति और निंदासे विधिकी पुष्टि होती है, वैसे ही बड़ोंकी कृति तथा पुराने युगकी बातें भी उसकी पुष्टि करती हैं। यह समझानेकी कोशिश की गई है कि वेदमें विधि वाक्योंका कम करनेसे वेदका अधिकांश भाग निरर्थक नहीं है। जैमिनिने एक ओर तो वेदको अनादि अपौरुषेय सिद्ध करनेके लिए यह घोषित किया कि उसमें कोई इतिहास नहीं, दूसरी ओर अर्थवादोंमें परकृति और पुराकल्प जोड़कर इतिहासको मान सा लिया। इसके उत्तरमें मीमांसकोंका कहना है यह इतिहास नित्य इतिहास है अर्थात् याज्ञवल्क्य और जनक अनित्य इतिहासकी एक बारकी घटना नहीं बल्कि रात दिनकी भाँति बराबर अनादिकालमें ऐसे याज्ञवल्क्य और जनक होते हैं जिनका जिक्र वेदके एक अंश शतपथ ब्राह्मणके अंतिम खंड बृहदारण्यकमें हमेशासे लिखा

---

[1] "शोभते वास्य मुखं"।

"अश्रुजं हि रजतं यो बर्हिषि ददाति पुरास्य संवत्सरादगृहा रुदन्ति।"

[2] "बर्हिषि रजतं न देयम्"। [3] "अग्निर्वै अकामयत"।

[4] "पुरा ब्राह्मणा अभवन्।"

हुआ है। आज हम यह दलील उपहासास्पदसी जान पड़ेगी किन्तु वह समय था जब कि कितने ही लोग ईमानदारीसे जैमिनिके इस तरहके अपौरुषेय वेद सिद्धान्तको मानते थे।

(ख) अन्य प्रमाण—मीमांसामें प्रमाणोंकी सूची बहुत लंबी है। वह शब्द प्रमाणके अतिरिक्त प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, संभव, अभाव छः और प्रमाणोंको मानता है, यद्यपि सबसे मजबूत प्रमाण उसका शब्द प्रमाण या वेद है। प्रत्यक्ष अनुमान उपमान मीमांसकोंके भी वैसे ही हैं, जैसे कि उन्हें अक्षपाद गौतम जैमिनिसे पहिले कह गए थे। अर्थापत्तिका उदाहरण 'मोटा देवदत्त दिनको नहीं खाता' अर्थात् रातको खाता है। संभव—जैसे हजार कहनेपर सौ उसमें सम्मिलित समझा जाता है। अभाव या अनुपलब्धि भी एक प्रमाण है क्योंकि 'भूमिपर घड़ा नहीं है' इसके सच होनेके लिए यही प्रमाण दे सकते हैं कि वहाँ घड़ा अनुपलब्ध है।

(ग) तत्त्व—मीमांसाके अनुसार बाह्य विश्व सच है और वह जैसा दिखलाई पड़ता है वैसा ही है। आत्मा अनेक हैं। स्वर्गको भी वह मानता है किन्तु उसके भोगोंको विश्वके भोगोंसे इस बातमें समानता है कि दोनों भौतिक हैं। ईश्वरके लिए मीमांसामें गुंजाइश नहीं।[1] जैमिनिका वेदकी स्वतः प्रमाणता सिद्धकर यज्ञ कर्मकाण्डका रास्ता साफ करना था। उसने ईश्वर सिद्धिके बखेड़ेमें पड़नेसे वेदको नित्य अनादि सिद्ध करना आसान समझा और इतिहासके संबंधमें उस वक्त जितना अज्ञान था उससे यह बात आसान भी थी।

मीमांसासूत्र वैसे बाकी पाँचों ब्राह्मण दर्शनोंसे बहुत बड़ा है किन्तु उसमें दर्शनका अंश बहुत कम है।

मीमांसा अधिककालसे चले आते पुरोहित श्रेणीका अपनी जीविका (=दक्षिणा आदि)को सुरक्षित रखनेके लिए अन्तिम प्रयत्न था। उपनिषद्

---

[1] द्विजन्मना जैमिनिना पूर्व वेदमथाथतः। निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्॥"—पद्मपुराण, उत्तरखंड २६३

कालके आसपास (७०० ६०० ई० पू०) धर्म और स्वर्ग नामपर होने-वाला मुँहबाँधकर या दूसरे तरीके की गई पशु हत्याओं तथा तदिक जमा क्रियाओंसे बुद्धि बगावत करने लगी थी। उपनिषदने यागोंका स्थान थोड़ा नीचाकर ब्राह्मणोंको ऊँचे स्थानपर रख ब्राह्मणोंके नये धर्म (=ब्रह्म वाद)का पुरोहित ही नहीं बनाया बल्कि पुराने यज्ञ-यागोंको विनयोंके साधन मान पुरानी पुरोहितोंका भी हाथसे नहीं जाने दिया। अब बुद्धका समय आया। जात-पाँत और आर्थिक विषमताओंसे उत्पन्न हुए असन्तोषने धार्मिक विद्रोहका रूप धारण किया। अजित केशकम्बली जैसे भौतिकवादी तथा बुद्ध जैसे प्रतीत्य-समुत्पाद प्रचारक बुद्धिवादीने पुराने धार्मिक विश्वासोंपर जबरदस्त प्रहार किये। कूपमंडूकता भौगोलिक ही नहीं बौद्धिक क्षेत्रमें भी हटने लगी। फिर यूनानियों शकों तथा दूसरी आकर बसे जातियोंने आगन्तुक जातियोंके इस बौद्धिक युद्धको और उग्र कर दिया। अब मानवजन्य और आरणिकी शिक्षाओंसे गार्गीका सिर गिरनेका भय दिखाना प्रश्न और सन्देहकी सीमाओंको रोका नहीं जा सकता था। नवागन्तुक जातियाँ जब यहाँ बसकर भारतीय बन गईं, तो फिर अपने-अपने धर्मोंको बौद्धिक भित्तिपर तर्कसम्मत सिद्ध करनेकी कोशिश की गई। बुद्धके बाद भी मौर्योंके उत्तराधिकारी और प्रतिद्वंद्वी शुंगोंने अश्वमेध यज्ञ तथा दूसरे यागोंको पुनर्जीवित करना चाहा था। मथुरामें शकोंके भी यज्ञ-यूप मिले हैं। इस तरह जमिनिके समय यज्ञ-संस्था लुप्त नहीं हो गई थी। लेकिन उसका ह्रास हुआ था और भविष्यका संकट और भी प्रबल था जिसको रोकनेके लिए कणादने हलका और जमिनिने भारी प्रयत्न किया। जमिनिके बाद गुप्तकालमें लोक प्रसिद्धिके लिए यज्ञ राजाओं और धनियोंको बड़े साधन मालूम हुए, जिससे इनका प्रचार अच्छा रहा। किन्तु इसी कालमें वसुबंधु (४०० ई०) दिङ्नाग (४२५ ई०) जैसे स्वतन्त्रचेता तार्किकोंको पैदा किया जिससे फिर ब्राह्मणोंकी यज्ञ-जीविकापर एक भारी संकट आन उपस्थित हुआ और तब कुमारिलने जमिनिके पक्षमें तलवार उठाई।

कुमारिलने मीमांसा दर्शनमें कोई नया-तत्त्व विकास नहीं किया बल्कि जैमिनिके सिद्धान्तोंको युक्ति और न्यायसे और पुष्ट करना चाहा। कुमारिलके तर्कोंको हम उसके प्रतिद्वन्द्वी धर्मकीर्तिके प्रकरणमें देखेंगे।

यद्यपि इस प्रकार मीमांसकोंने वैदिक कर्मकाण्डको जीवित रखनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसके ह्रासको नहीं रोका जा सका। उसमें एक कारण था—ब्राह्मणोंके अनुयायियोंमें भी मन्दिरों और मूर्तियोंकी अधिक लोकप्रियता। वैदिक पुरोहित दयल या पुजारी बनकर दक्षिणा कम करनेके लिए तैयार न था दूसरी ओर यजमान भी वह दिनोंमें बिना पिला मामूली पत्थर या गूलरके यूपको खड़ाकर अपनी कीर्तिको उतना चिरस्थायिनी नहीं होते देखता था जितना कि उनने सबसे बड़ा किया देवतीर्थ या वैजनाथ (बागडा)का मंदिर उठा कर सकता था।

सप्तदश अध्याय

ईश्वरवादी दर्शन

नव युगके अनीश्वरवादी दर्शनोंके बारमें हम बतला चुके अब हम इस युगके ईश्वरवादी दर्शनोंको लेते हैं। इन्हें हम बुद्धिवाद रहस्यवाद और शब्दवाद—तीन श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं। अक्षपाद गौतमका न्याय शास्त्र बुद्धिवादी है पतंजलिका योग रहस्यवादी दर्शन है, बल्कि दर्शनकी अपेक्षा उसे योग-युक्तिकी गुटका समझना चाहिए। बादरायणका वेदान्त शब्दवादी है।

§१—बुद्धिवादी न्यायकार अक्षपाद (२५० ई०)

१—अक्षपादकी जीवनी

अक्षपादके जीवनके बारमें भी हम अन्धेरमें हैं। डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण[1]ने मेधातिथि गौतमको आन्वीक्षिकी (=न्याय)का आचार्य बतलाते हुए उनका काल ५५० ई० पू० साबित करना चाहा है, और दभगाके गौतम-स्थानको[2] उनका जन्मस्थान बतला, उन्होंने वहाँकी तीर्थयात्रा भी कर डाली। ऐसा गौतमस्थान सारन (छपरा जिला)में सरयूके दाहिने तटपर मानते भी हैं जहाँ कार्तिकके महीनेमें भारी मेला लगता है।[1]

---

[1] Indian Logic, p 17 दभगासे २८ मील पूर्वोत्तर।

[2] गौतम-स्थानमें चैत्रमें मेला लगता है।

ऋग्वेदके ऋषि मेधातिथि गौतम और उपनिषदके ऋषि नचिकेता गौतमका मिला जुलाकर उन्होंने आचार्यपीठ मूल आचार्य मेधातिथि गौतमका स्वीकार किया है। तर्कविद्याका आचार्यपीठ अक्षपादसे पहिले, कौटिल्य (४४० ई० पू०)के समय भी सुविदित है कहा जाता है। तर्कका वामपक्ष (=सांख्य और मीमांसा) तर्क पक्षी ब्रह्मजाल-सुत्त[1] भी आता है किन्तु स्वयं उसमें जैमिनि मीमांसा का अस्तित्व उस समय स्वीकार नहीं कर सकते। जिस न्यायसूत्रको हम अक्षपादके न्यायसूत्रके नाम पाते हैं उससे पहिले भी ऐसा कोई व्यवस्थित शास्त्र था इसका कोई पता नहीं।

न्यायसूत्रके कर्त्ता अक्षपाद (आँखका काम देने जिनके पर) थे।[2] न्यायवार्तिक (उद्योतकर ५५० ई०) और न्यायभाष्यकार (वात्स्यायन ३०० ई०)में न्यायसूत्रकारका इसी नामसे पुकारा गया है।[3] किन्तु श्रीहर्ष (नैषधकार ११९० ई०)के समय न्यायसूत्रकारका नाम गौतम (? गोतम) भी प्रसिद्ध था।[3] दोनोंकी संगति गौतम गोत्री अक्षपादसे हो जाती है।

अक्षपादके समयके बारेमें हम इतना ही कह सकते हैं कि वह नागार्जुनसे पहिले हुए थे। नागार्जुनने अपनी विग्रहव्या-

---

[1] सुत्तपिटक, दीघनिकाय १।१

[2] "यदक्षपाद प्रवरो मुनीनां समाय शास्त्रं जगतो जगाद।"

—न्यायवार्तिक (आरम्भ),

"योऽक्षपादमुनिं न्याय प्रत्यभाद यदतां वरम्।
तस्य वात्स्यायन इति भाष्यजातमवर्तयत॥"

[3] "मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतम तमवेत्येव यथा वित्थ तथैव स॥"

—नैषध १७।७५

बनती है[1] परमार्थ रूपमें प्रमाणकी सत्ता न माननेके लिए जो युक्तियाँ दी हैं अक्षपादने न्यायसूत्रमें उनका खंडन कर परमार्थ प्रमाणको साबित करनेकी चेष्टा की है जिसका अर्थ इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि न्यायसूत्र नागार्जुनके बाद बना।

२—न्यायसूत्रका विषय संक्षेप

न्यायसूत्रके वर्णनकी शैली ऐसी है कि पहले ग्रंथकार प्रतिपाद्य विषयोंके नामोंकी गिनती और लक्षण बतलाता है फिर पीछे युक्ति (=न्याय) से परीक्षा करके बतलाता है कि उसका मत ठीक है और विरोधीका मत गलत है। न्यायसूत्रमें पाँच अध्याय और प्रत्येक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। इनमें सूत्रोंकी संख्या निम्न प्रकार है—

अध्याय	आह्निक	सूत्र संख्या	
१	१	४१	६१
	२	२०	
२	१	६९	१३९
	२	७०	
३	१	७२	१४१
	२	७२	
४	१	६९	१२०
	२	५१	
५	१	४३	६८
	२	२५	
			५३३

अध्यायोंमें कही गई बातें निम्न प्रकार हैं—

१ प्रतिपाद्यका सामान्य कथन — अध्याय १

---

[1] "विग्रहव्यावर्तनी" J B O R S, Vol XXIII Preface, pp iv v

(१) प्रतिपाद्य विषयका सामान्य तौरसे वर्णन अध्याय १
(२) प्रतिपादनके लिए युक्त और अयुक्त शैली ,
२ परीक्षाएं २ ५
(१) प्रमाणोंकी परीक्षा २
(२) प्रमेयों (=प्रमाणके विषयों)की परीक्षा ३ ४
(क) स्वसम्मत वस्तुओंकी परीक्षा ३
(ख) धार्मिक धारणाओंकी परीक्षा ४
(३) अयुक्त वाद पद्धतियोंकी परीक्षा ५[1]

---

[1] इस संक्षेपको और विस्तारसे जाननेके लिए निम्न पंक्तियोंको अवलोकन करें—

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
१		न्यायसूत्रके प्रतिपाद्योंकी नाम-गणना	१
१	१	अपवर्ग (=मुक्ति) प्राप्तिका क्रम	२
		(१) (चार) प्रमाणोंकी नाम-गणना	३
		प्रमाणोंके लक्षण	४ ८
		(२) प्रमेयों (=प्रमाणके विषयों)की नाम-गणना	९
		प्रमेयोंके लक्षण	१० २२
		(३) संशयका लक्षण	२३
		(४) प्रयोजनका लक्षण	२४
		(५) दृष्टान्तका लक्षण	२५
		(६) सिद्धान्तका लक्षण	२६
		सिद्धान्तोंके भेद और उनके लक्षण	२७ ३१
१	२	(७) साधक वाक्योंके अवयवोंकी नाम-गणना	३२
		उनके लक्षण	३३ ३९
		(८) तर्कका लक्षण	४०
		(९) निर्णयका लक्षण	४१

न्यायसूत्रके प्रतिपाद्य विषय या पदार्थ सोलह हैं जो कि पहिले अध्याय-के दोनों आह्निकोंमें दिये हैं। इनमें चार प्रमाणों और ग्यारह प्रमेयोंपर

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
१	२	(१०) वाद (=ठीक बहस)का लक्षण	१
		(११) जल्पका लक्षण	२
		(१२) वितंडाका लक्षण	३
		(१३) गलत हेतुओं (=हेत्वाभासों)की नाम-गणना	४
		हेत्वाभासोंके लक्षण	५ ९
		(१४) छलका लक्षण	१०
		छलके भेद	११
		उनके लक्षण	१२ १७
		(१५) जाति(=एक तरहका गलत हेतु)का लक्षण	१८
		(१६) निग्रह-स्थान(=पराजयके स्थान)का लक्षण	१९
		जाति निग्रहस्थानकी बहुता	२०
२	१	संशयकी परीक्षा	१ ७
		(१) प्रमाण-परीक्षा (सामान्यतः)	८ १९
		(क) प्रत्यक्ष प्रमाणके लक्षणकी परीक्षा	२० २९
		प्रत्यक्ष अनुमान नहीं है	३० ३२
		[पूर्ण(=अवयवी)अपने अंशोंसे अलग है]	३३-३६
		(ख) अनुमानप्रमाण-परीक्षा	३७-३८
		(काल पदार्थ है)	३९ ४३
		(ग) उपमान प्रमाणकी परीक्षा	४४ ४८
		(घ) शब्द प्रमाणकी परीक्षा	४९ ६९
२	२	प्रमाण चार ही हैं	१ १२
		(बोले जानेवाले वर्ण नित्य नहीं हैं)	१३ ५९
		पद क्या है	६०

ने बहुत जोर दिया गया है यह इससे मालूम होता है कि पाँच अध्यायोंमें तीन अध्याय (२ ४) तथा ५३३ सूत्रोंमें ४०४ सूत्र इन्हींके बारेमें लिखे गये हैं।

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
		पदार्थ (=गौ आदि पदोंके विषय) क्या है?	६१ ७०
३	१	(१) आत्मा है	१ २७
		(आँखोंके दो होनेपर भी चक्षु इन्द्रिय एक है)	(८ १५)
		(२) शरीर क्या है?	२८ २९
		(३) इन्द्रियाँ भौतिक हैं	३० ५०
		(आँख आगसे बनी है)	(३० ३६)
		इन्द्रियाँ भिन्न भिन्न हैं	५१ ६०
		(४) अर्थों (=इन्द्रियोंके विषयों) की परीक्षा	६१ ७१
३	२	(५) बुद्धि (=ज्ञान) अनित्य है	१ ५६
		(बौद्धोंके क्षणिकवादकी परीक्षा)	(१० १७
		(६) मन है	५७-६०
		[=अदृष्ट (देहान्तर और कालान्तरमें भोग पानेका कारण) है]	६१ ७३
		(७) प्रवृत्ति (=कायिक, वाचिक मानसिक कर्म, या धर्म अधर्म) की परीक्षा	१
		(८) दोष क्या है?	२ ९
		(दोषके तीन भेद—राग, द्वेष, मोह)	(३)
		(९) प्रेत्यभाव (=पुनर्जन्म) है	१० १३
		(बिना हेतु कुछ नहीं उत्पन्न होता)	१४ १८
		(ईश्वर है)	१९ २१
		अ हेतुवादका खंडन	२२ २४

३—अक्षपादके दार्शनिक विचार

न्यायसूत्रके प्रतिपाद्य विषयोंपर संक्षेपमें भी लिखना यहां संभव नहीं है तो भी दार्शनिक विचारोंको समझानेके लिए हम यहां उसकी कुछ बातोंपर प्रकाश डालना चाहते हैं।

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्राङ्क
		(सभी अनित्य हैं ?)	२५-२८
		(सभी वस्तुएं नित्य हैं ?)	२९ ३३
		(सभी वस्तुएं अपने भीतर भी अलग अलग हैं ?)	३४ ३६
		(सभी शून्य हैं ?)	३७-४०
		(प्रतिज्ञा, हेतु आदि एक नहीं हैं)	४१ ४३
	(१०)	(कर्म)फल होता है	४४ ५४
	(११)	दुःख-परीक्षा	५५ ५८
	(१२)	अपवर्ग (=मुक्ति) है	५९ ६९
४	२	पूर्ण [=अवयवी] अंशोंसे अलग है	१ १५
		परमाणु	१६ २५
		विज्ञानवादियोंका बाहरी जगतसे इन्कार गलत है	२६ ३७
		तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेका उपाय	३८ ५१
		जल्प, वितंडा जैसी गलत बहसोंकी भी जरूरत है	५० ५१
५	१	जातिके भेद	१
		उनके लक्षण आदि	२ ४३
	२	निग्रह-स्थानके भेद	१
		उनके लक्षण आदि	२ २५

क प्रमाण

(१) प्रमाण—सच्चे ज्ञान तक पहुँचनेके तरीकेको प्रमाण कहा जाता है। अक्षपाद प्रमाणको सापेक्ष नहीं परमार्थ अर्थमें लेते हैं, जिस पर (नागार्जुन जैसे) विरोधियोंका पहिले ही से आक्षेप था—[1]

पूर्वपक्ष—प्रत्यक्ष आदि (परमार्थ रूपेण) प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि तीनों कालों (=भूत भविष्यत वर्तमान)में वह (किसी) बात (=प्रमेय—ज्ञेय बात)को नहीं सिद्ध कर सकते।—(क) यदि प्रमाण (प्रमेयसे) पहिलेहीसे सिद्ध है, (तो ज्ञान रूप प्रमाणके पहिले ही सिद्ध होनेसे) इन्द्रिय और विषय (=अर्थ)के संयोगसे प्रत्यक्ष (ज्ञान) उत्पन्न होता है यह बात गलत हो जाती है। (ख) यदि प्रमाण (प्रमेयके सिद्ध हो जानेके) बाद सिद्ध होता है तो प्रमाणसे प्रमेय (ज्ञातव्य सच्चा ज्ञान) सिद्ध होता है यह बात गलत है। (ग) एक ही साथ (प्रमाण और प्रमेय दोनों)की सिद्धि माननेपर (एक ही साथ दो ज्ञान (=बुद्धि) होता है यह मानना पड़ेगा फिर) ज्ञान (=बुद्धि) क्रमशः उत्पन्न होती है (अर्थात एक समय मनमें सिर्फ एक ज्ञान पैदा होता है) यह (तुम्हारा सिद्धान्त) नहीं रहेगा।

इन चार सूत्रोंमें किये गए आक्षेपोंका उत्तर पांच सूत्रोंमें[2] देते हुए कहते हैं—

उत्तरपक्ष—(क) तीनों कालोंमें (=प्रमाण) सिद्ध नहीं है, ऐसा माननेपर (तुम्हारा) निषेध भी ठीक नहीं होगा। (ख) सारे प्रमाणोंका निषेध करनेपर निषेध नहीं किया जा सकता (क्योंकि आखिर निषेध भी प्रमाणकी सहायतासे ही किया जाता है)। (ग) उस (=अपने मतलब वाले प्रमाण)को प्रमाण माननेपर सारे प्रमाणोंका निषेध नहीं हुआ। (घ) तीनों कालों (=पहिले पीछे और एक कालमें जो) निषेध (आपने

---

[1] न्यायसूत्र १।१।८ १२ [2] वहीं १।१।१२ १६

किया है, वह) नहीं किया जा सकता आखिर पीछे जिस ज्ञान (की सिद्धि सुनकर हम होती है उस)से (पहिलेसे स्थित) वाजा सिद्ध होता है। (इसी तरह एक साथ होनेवाले धुएं और आगमें धुएंके देखनेसे आगकी सिद्धि होती है)। (ङ) प्रमेय (=ज्ञेय) होनेसे कोई किसी वस्तुके प्रमाण होनेमें बाधक नहीं होता, जैसे तोला (का बटखरा माना या रत्तीसे तोलते वक्त प्रमेय हो सकता है किन्तु माप ही वह स्वयं माप=प्रमाण है इसमें सन्देह नहीं)।

इसपर फिर आक्षेप होता है—

पूर्वपक्ष[1]—(क) प्रमाणसे (दूसरे) प्रमाणोंकी सिद्धि माननेपर (फिर उस पहिले प्रमाणकी सिद्धिके लिए) किसी और प्रमाणकी सिद्धि करनी पड़ेगी। (ख) इस (बात)से इन्कार करनेपर जैसे (बिना प्रमाणके किसी बातको) प्रमाण मान लिया उसी तरह प्रमेयको भी (स्वतः) सिद्ध मान लेना चाहिए।

उत्तर पक्ष[2]—(आपका आक्षेप ठीक) नहीं है दीपकके प्रकाशकी भांति (प्रमाण) स्वतः अपनी सत्ताको सिद्ध करते हुए दूसरी वस्तुओंकी सत्ताको भी सिद्ध करता है।

इस तरह अक्षपादने प्रमाणको परमार्थरूप प्रमाण सिद्ध करना चाहा है यद्यपि आजके सापेक्षतावादी युगमें परमार्थ नामधारी किसी सत्ताको साबित करना टेढ़ी खीर है साथही सापेक्ष प्रमाण ऐसा सिक्का है, जिसे प्रकृति स्वीकार करती है इसलिए व्यवहार(=अर्थक्रिया)में बाधा नहीं होती।

(२) प्रमाणकी संख्या—अक्षपादने प्रमाण चार माने हैं[3]—प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द। दूसरे प्रमाणशास्त्री चारसे अधिक प्रमाणोंको भी मानते हैं—जैसे इतिहास अर्थापत्ति(=अर्थसे ही जिसका सिद्ध समझा जाय जैसे मोटा देवदत्त दिनको बिलकुल नहीं खाता

---

[1] वहीं १।१।१७ १८ [2] वहीं १।१।१९ [3] वहीं १।१।३

में विश्वास होता है। शब्द और अर्थके वाचकका संबंध किसी दूसरे प्रमाणसे नहीं जाना होता, अतः शब्द और उसके वाच्य अर्थका कोई स्वाभाविक संबंध नहीं है। यदि संबंध होता तो लड्डू कहनेसे मुहका लड्डूसे भर जाना, आग कहनेसे मुहका जलना, धमूला कहनेसे मुहका छीला जाना देखा जाता।

पूर्वपक्ष[1]—शब्द और अर्थके बीच संबंधकी व्यवस्था है, तभी तो गाय शब्द कहनेसे एक खास साकार गाय अर्थका भान होता है, इसलिए शब्द और अर्थके स्वाभाविक संबंधसे इंकार नहीं किया जा सकता।

उत्तर[2]—स्वाभाविक संबंध नहीं है, किन्तु सामयिक (=मान लिया गया) संबंध जरूर है जिसके कारण वाच्य अर्थका ज्ञान होता है। यदि शब्द अर्थका संबंध स्वाभाविक होता, तो दुनियाकी सभी जातियों और देशोंमें उस शब्दका वही अर्थ पाया जाता जैसे आग पदार्थ और गर्मीके स्वाभाविक संबंध होनेसे वे सर्वत्र एकसे पाये जाते हैं।

शब्द प्रमाणको सिद्ध करनेमें अक्षपादका मुख्य मतलब है, वह—ऋषि-वाक्यों—को प्रत्यक्ष अनुमानके दर्जेका एक स्वतंत्र प्रमाण मनवाना। इसीलिए उन्होंने जहाँ प्रत्यक्ष अनुमान उपमानकी परीक्षाओंमें क्रमशः १३, २ और ४ सूत्र लिखे हैं वहाँ शब्द प्रमाणकी परीक्षामें सबसे अधिक यानी २१ सूत्र[3] लिखे हैं जिनमें अन्तिम १२ सूत्रोंका ढंग तो करीब करीब वही है जिसका अनुकरण पीछे जैमिनिने अपने मीमांसा-सूत्रोंमें बड़े पैमानेपर किया है।

वेदकी कितनी ही बातें (यज्ञ-कर्म) झूठ निकलती हैं, कितनी ही परस्परविरोधी हैं, वहाँ कितनी ही पुनरुक्तियाँ भरी पड़ी हैं। अक्षपादने इसका समाधान करना चाहा है।—झूठ नहीं निकलती, ठीक फल न मिलना कर्म, कर्त्ता और सामग्रीके दोषके कारण होता है। परस्परविरोधी बात नहीं है, दो तरहकी बात दो तरहके आदमियोंके लिए हो सकती है। पुनरुक्ति अनुवादके लिए भी हो सकती है।

---

[1] न्याय० २।१।५५ [2] वहीं २।१।४९ ६९ [3] वहीं २।१।५८ ६१

फिर अक्षपादने वेदके वाक्योंको विधि, अर्थवाद और अनुवाद तीन भागोंमें विभक्त किया है। विधिका काम है कर्त्तव्यका विधान करना। विधिमें श्रद्धा जमानेके लिए अच्छेकी प्रशंसा (=स्तुति) बुरेकी निन्दा, और दूसरे व्यक्तियोंकी कृतियों तथा पुरानी बातोंका उदाहरण वेदमें बहुत मिलता है, इसको अर्थवाद कहते हैं। अनुवाद विधिवाक्यमें बतलाये शब्द या अर्थको फिरसे दुहराना है जो कि जल्दी जल्दी जाओ की भाँति विधि (=आज्ञा)को और जोरदार बनाता है इसलिए वह व्यर्थकी चीज नहीं है। अन्तिम वेदके प्रमाणमें सबसे जबरदस्त युक्ति है—वेद प्रमाण है क्योंकि उसके वक्ता ऋषि आप्त (=सत्यवादी) जनोंसे प्रामाणिक हैं उसी तरह जैसे कि साँप बिच्छूके मंत्रों और आयुर्वेदकी प्रामाणिकता हमें माननी पड़ती है।—आखिर मंत्रों और आयुर्वेदके कर्त्ता जो ऋषि हैं वही तो वेदके भी हैं।[1]

यहाँ मैंने अक्षपादकी वर्णनशैलीको दिखलानेके लिए उसका अनुकरण किया है किन्तु साथ ही समझनेकी आसानीके लिए सूत्रोंको लेते हुए भी उनके अर्थको विशद करनेकी कोशिश की है।

दो कुछ प्रमेय

आत्मा आदि ग्यारह प्रमेय नैयायिक मानते हैं, इनमें मन आत्मा और ईश्वरके बारेमें हम यहाँ नैयायिक मतका दर्शन और कुछका जिन नैयायिक धार्मिक विचारोंको बतलाते समय करेंगे।

(१) मन—यद्यपि न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्स्यायन स्मृति, अनुमान आगम संशय प्रतिभा, स्वप्न ऊह (=तर्क वितर्क)की शक्ति जिसमें है उसे मन बतलाया है किन्तु अक्षपाद स्वयं इस विवरणमें न जा एक समय (अनेक) ज्ञानोंका उत्पन्न न होना मन (के अनुमान)का लिंग बतलाते हैं।—अर्थात् एक ही समय हमारी आँखका किसी रूपसे संबंध है, तथा

[1] न्याय० २।१।६२ ६९ [2] वहीं १।१।१६

उसी समय [illegible] भी [illegible] हम एक समयमें [illegible] ही ज्ञान प्राप्त कर [illegible] [illegible] पड़ता [illegible] पाँच इन्द्रियोंके अतिरिक्त एक और भीतरी इन्द्रिय [illegible] जिसका [illegible] प्राप्त करनेमें होता [illegible] और वही मन [illegible]। एक बार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], कि मन एक और अणु [illegible]।[1] [illegible] [illegible] समय [illegible] किया [illegible] जाती [illegible] वह तीव्र गतिके कारण [illegible] [illegible] [illegible] बनाकर [illegible] और [illegible] वृत्ति बनाते दीख पड़ते हैं।

(२) आत्मा—[illegible] बहुत प्रभावशाली [illegible] करना [illegible] निर्माणमें [illegible] [illegible] अभिप्रेत था। [illegible] प्रमाणकी सिद्धिमें [illegible] प्रयत्न [illegible] नित्य आत्मा और ईश्वरको सिद्ध करनेपर जोर भी इसीलिए [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

सिर्फ दाहिनीसे देखकर स्मरण करते हैं, यह आत्माके ही कारण। (६) स्वादु भोजनको आँखसे देखते ही हमारे जीभमें पानी आने लगता है यह बात स्वादकी जिस स्मृतिके कारण होती है, वह आत्माका गुण है।

यहाँ जिन बातोंसे आत्माकी सत्ताका प्रतिपादन किया गया है वह मन-पर घटित होती है।[1] इस आक्षेपका उत्तर अक्षपादने ज्ञाता (आत्मा)को ज्ञानका एक साधन (मन) भी चाहिए कहकर देना चाहा है, किन्तु, यह कोई उत्तर नहीं है। चूँकि आत्मा सर्वव्यापी (=विभु) है जिससे पाँचों इन्द्रियों और उनके विषयोंका जिस समय संयोग हो रहा है उस वक्त आत्मा भी वहाँ मौजूद है तब भी चूँकि विषय ज्ञान नहीं होता इससे साबित होता है कि आत्मा और इन्द्रियोंके बीच एक और अणु (=अ सर्वव्यापी) चीज है जो कि मन है—अक्षपादकी इन्द्रिय, मन और आत्माके विषयकी यह कल्पना बहुत उलझी हुई है। अनुमानसे वह मनको सिद्ध कर सकते हैं, जिसकी सिद्धिमें ही सारे लिंग समाप्त हो जाते हैं फिर उनमेंसे ही कुछको लेकर वह आत्माको सिद्ध करना चाहते हैं जिसमें आत्मा और मन एक ही वस्तुके दो नाम भले हो सकते हैं किन्तु उन्हें दो भिन्न वस्तु नहीं साबित किया जा सकता।

(३) **ईश्वर**—अक्षपादने ईश्वरको अपने ११ प्रमेयोंमें नहीं गिना है और न उन्होंने कहीं साफ कहा है कि ईश्वरको भी वह आत्माके अन्तर्गत मानते हैं। ऊपर जो मनको आत्माका साधन कहा है उससे भी यही सा जत होता है कि आत्मासे उनका मतलब जीवसे है। अपने सारे दर्शनमें अक्षपादका ईश्वरपर कोई जोर नहीं है और न ईश्वर वाले प्रकरणको हटा देनेसे उनके दर्शनमें कोई कमी रह जाती है एसी अवस्थामें न्याय-सूत्रोंमें यदि क्षेपक हुए हैं तो हम इन तीन सूत्रोंको ले सकते हैं जिनमें ईश्वरकी सत्ता सिद्ध की गई है।—डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणने जहाँ न्यायसूत्रके बहुतसे भागको पीछेका क्षेपक मान लिया है फिर इन तीन सूत्रोंका क्षेपक होना

---

[1] न्याय० ३।१।१६ १७ [2] वहीं ४।१।१९ २१

बहुत जगह दी है। इस सूत्रमें भी हम देखते हैं कि ईश्वर दुनियाका कर्ता हुआ न हुआ सकता है। फल प्राणियोंके कर्मोंका फल ईश्वर कारण है, जिसके न होनेपर पुरुषके शुभ अशुभ कर्मोंका फल न होता। यह सही है कि पुरुषका कर्म न होनेपर भी फल तो होता, किन्तु कर्म यदि फलका कर्ता है, तो ईश्वर उस फलका कारयिता (=करानेवाला) है।

४—अक्षपादके धार्मिक विचार

आत्मा और ईश्वरके बारेमें न्यायसूत्रके विचारको हम देख चुके हैं। शब्द प्रमाणके प्रकरणमें यह भी बतला चुके हैं कि अक्षपादका वेदकी प्रामाणिकता ही नहीं उसके विधि विधान—कर्मकाण्ड—पर बहुत जोर था। यद्यपि कणादकी भाँति इन्होंने धर्म जिज्ञासापर ज्यादा जोर न दे तत्त्व जिज्ञासाको अपना लक्ष्य बनाया।

(१) परलोक और पुनर्जन्म

एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आत्मा जाता है, इसका अक्षपादने समर्थन किया है।[1] मरनेके बाद आत्मा लोकान्तरमें जाता है इसके लिए आत्माका नित्य होना ही काफी हेतु है। परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी पुनर्जन्म होता है, इसे सिद्ध करनेके लिए अक्षपादने निम्न युक्तियाँ दी हैं[2]—(१) पैदा होते ही बच्चेका हर्ष भय शोक होते देखा जाता है, यह पहिले (जन्म)के अभ्यासके कारण ही होता है। यह बात पद्मके खिलने और संकुचित होनेकी तरह स्वभाविक नहीं है, क्योंकि पाँचों महाभूतोंके बल पद्म आदिकी वैसी अवस्था सर्दी गर्मी वर्षा आदिके कारण होती है। (२) पैदा होते ही बच्चेको स्तन-पानकी अभिलाषा होती है, यह भी पूर्वजन्मके आहारके अभ्यासके ही होती है।

---

[1] न्याय० १।१।१९, ३।१।१९ २७ ४।१।१० [2] वहीं ३।१।१९ २७

(२) कर्म-फल

कायिक वाचिक मानसिक कर्मोंसे उनका फल उत्पन्न होता है।[1] अच्छे बुरे कर्मोंका फल तुरन्त नहीं कालान्तरमें होता है। चूंकि कर्म तब तक नष्ट हो गया रहता है इसलिए उससे फल कैसे मिलेगा?— ऐसी शंकाकी गुंजाइश नहीं, जब कि हम गेहूंके पौधेके नष्ट हो जाने-पर भी उसके बीजसे अगले साल नये वृक्षको उगते देखते हैं उसी तरह क्रिया कर्मोंसे धर्म-अधर्म उत्पन्न होते हैं जिनसे आगे फल मिलता है। यह धर्म-अधर्म उसी आत्मामें रहते हैं जिसने बिना शरीरके उस कामको किया है।[2]

पहिलेके कर्मसे पैदा हुआ फल शरीरकी उत्पत्तिका हेतु है।[3] महा भूतोंसे जैसे ककड़-पत्थर आदि पैदा होते हैं वैसे ही शरीर भी यह कहना मान्य नहीं है क्योंकि इसके बारेमें कुछ विचारकोंका मत है कि सारी दुनिया भले बुरे कर्मोंके कारण बनी है। माता पिताका रज-वीर्य तथा आहार भी शरीर उत्पत्तिका कारण नहीं है क्योंकि इनके होनेपर भी नियमसे शरीर (=बच्चे)का उत्पन्न होते नहीं देखा जाता। भले-बुरे कर्म शरीरकी उत्पत्तिका निमित्त (=कारण) हैं उसी तरह यह किसी शरीरके साथ किसी खास आत्माके संयोगका भी निमित्त है।

(३) मुक्ति या अपवर्ग

यज्ञ आदि कर्मकाण्डका फल स्वर्ग होता है यह था ब्राह्मण तथा श्रौत-सूत्र आदिका मन्तव्य था। उपनिषदने स्वर्गके भी ऊपर मुक्ति या अप-वर्गको माना। जैमिनिने अपने मीमांसा-दर्शनमें उपनिषद्की इस नई विचारधाराको छोड़ फिर पुराने वेद-ब्राह्मणका ओर लौटनेका नारा बुलन्द किया किन्तु अक्षपाद उपनिषदसे पीछे लौटनेकी सम्मति नहीं देते

---

[1] न्याय० १।१।२०
[2] वहीं ४।१।४४ ४७, ५२
[3] वहीं ३।२।६१ ६६
[4] वहीं ३।२।६७

बहुत ज्यादा नहीं है। इन सूत्रोंमें भी हम देखते हैं अक्षपाद ईश्वरको दुनियाका कर्त्ता हर्ता नहीं बना सकते हैं। कर्म-फलके भोगमें ईश्वर कारण है, उसके न होनेपर पुरुषके शुभ अशुभ कर्मोंका फल न होता। यह सही है कि पुरुषका कर्म न होनेपर भी फल नहीं होता किन्तु कर्म यदि फलका कर्त्ता है, तो ईश्वर उस फलका कारयिता (=करानेवाला) है।

४—अक्षपादके धार्मिक विचार

आत्मा और ईश्वरके बारेमें न्यायसूत्रके विचारको हम देख चुके हैं। शब्द प्रमाणके प्रकरणमें यह भी बतला चुके हैं, कि अक्षपादको वेदकी प्रामाणिकता ही नहीं उसके विधि विधान—कर्मकाण्ड—पर बहुत जोर था यद्यपि कणादकी भाँति न्यायमें धर्म जिज्ञासापर ज्यादा जोर न दे तत्त्व जिज्ञासाको अपना लक्ष्य बनाया।

(१) परलोक और पुनर्जन्म

एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आत्मा जाता है इसका अक्षपादने समर्थन किया है।[1] मरनेके बाद आत्मा लोकान्तरमें जाता है, इसके लिए आत्माका नित्य होना ही काफी हेतु है। परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी पुनर्जन्म होता है इसे सिद्ध करनेके लिए अक्षपादने निम्न युक्तियाँ दी हैं[2]—(१) पैदा होते ही बच्चेको हर्ष भय, शोक होते देखा जाता है, यह पहिले (जन्म)के अभ्यासके कारण ही होता है। यह बात पद्मके खिलने और संकुचित होनेकी तरह स्वभाविक नहीं है क्योंकि पाँचों महाभूतोंके बने पद्म आदिकी वैसी अवस्था सर्दी गर्मी वर्षा आदिके कारण होती है। (२) पैदा होते ही बच्चेको स्तन-पानकी अभिलाषा होती है, यह भी पूर्वजन्मके आहारके अभ्याससे ही होती है।

---

[1] न्याय० १।१।१९, ३।१।१९ २७, ४।१।१० [2] वहीं ३।१।१९ २७

[illegible] उस ओर [illegible] उठाना चाहो। उपनिषद्में तथा सांख्यमें या स्वर्गीय आत्मा (=सुख)का [illegible] जगह नीचा गया है और उस नीचेमें ब्रह्मवाद या मुक्तिका आनन्द [illegible] गया। [illegible] भावानन्द (=सुखमय) महिम इस तत्त्वके [illegible] गृह करते [illegible] इसलिए [illegible]। महिमा भावानन्द—सुखमय—न यह दुःखाभाव [illegible] माना है[1]— (तत्त्वज्ञान) मिथ्याज्ञान (=झूठा ज्ञान)के [illegible] (=राग द्वेष मोह) [illegible] होते हैं, [illegible] धर्म अधर्म (प्रवृत्ति)का [illegible] धर्म अधर्मके [illegible] जन्म [illegible] होता है [illegible] दुःख समाप्त होता है[2] तदनन्तर (इस) नामसे अपवर्ग (=मुक्ति) होता। अपवर्गके स्वरूपको और स्पष्ट करते हुए दूसरी जगह कहा — [illegible] [शरीर, इन्द्रिय और बुद्धि मन प्रवृत्ति (क्रिया) दोष पुनर्जन्म, फल और दुःख] [illegible] लिए मुक्त होना अपवर्ग। यहाँ मुक्तावस्थामें अक्षपाद गौतमने आत्माकी बुद्धि (=ज्ञान) मन और क्रिया का अत्यन्त रहित कहा है इसीको लेकर श्रीहर्ष (११६० ई०) ने नैषधमें उपहास किया है[3]—'जिसने सचेतनोंकी मुक्तिके लिए अ-चेतन का जाना रहने लायक रचना की, वह गौतम वस्तुतः गोतम (भारी बैल) ही लगा।

(४) मुक्तिके साधन

(क) तत्त्वज्ञान—निःश्रेयस् (=मुक्ति या अपवर्ग)की प्राप्तिके लिए अक्षपादने अपना न्याय लिखा यह उसके प्रथम सूत्रसे ही स्पष्ट है। जन्म-मरण (=पुनर्जन्म) या संसारमें भटकनेका कारण मिथ्या (=झूठा)-ज्ञान है, जिसे तत्त्वज्ञान (=यथार्थ या वास्तविक ज्ञान)से दूर किया जा सकता है। तत्त्वज्ञान भी किसी वस्तुका होता है उपनिषद् ब्रह्मका तत्त्वज्ञान (=ब्रह्मज्ञान) मुक्तिके लिए जरूरी समझती है।

---

[1] न्याय० १।१।२ [2] वही १।१।२२ [3] नैषधचरित १७।७५

अक्षपादने प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह न्यायशास्त्र द्वारा प्रतिपाद्य पदार्थोंके वास्तव ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहा।

तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए विद्या और प्रतिभा पर्याप्त नहीं है वह खास प्रकारकी समाधिके अभ्याससे होता है। यह (खास प्रकारकी समाधि) पूर्व (=जन्म)के क्रिया फलके कारण उत्पन्न होती है।[2] इसीके लिए 'जंगल गुहा नदी-तट आदि पर योगाभ्यासका उपदेश है।[3]

(ख) मुक्तिके दूसरे साधन—मुक्तिके लिए यम नियम (=मन और इंद्रियका संयम)के द्वारा योग तथा आध्यात्मिक विधियोंके तरीकोंसे आत्माका संस्कार करना होता है ज्ञान ग्रहण करनेका अभ्यास तथा उस (विषय)के जानकारोंसे संवाद (=वाद या सत्संग) करना होता है।[4]

इस प्रकार न्यायसम्मत वाद—संवाद—का प्रयोजन तत्त्वज्ञान होता है किन्तु अपने मतकी सिद्धि तथा परमतके खंडनके लिए छल आदि अनुचित तरीकोंवाले जल्प एवं केवल दूसरेके पक्षके खंडनके लिए भी वितंडा—का भी तत्त्वज्ञानमें जरूरत है इस बतलाते हुए अक्षपादने कहा है[5]—"तत्त्व-ज्ञानकी रक्षाके लिए जल्प और वितंडाकी उसी तरह जरूरत है जैसे बीजके अंकुरोंकी रक्षाके लिए काँटेवाली शाखाओंके बाड़की। हमें याद है यूनानके स्तोइक दार्शनिक जेनो ईसा पूर्व तीसरी सदीमें ही कहता था[6]—दर्शन एक खेत है जिसकी रक्षाके लिए तर्क एक बाड़ है।

५—न्यायपर यूनानी दर्शनका प्रभाव

भारतमें यूनानियोंका प्रभाव ईसा-पूर्व चौथी सदीमें सिकन्दरकी विजय (३२३ ई० पू०)के साथ बढ़ने लगा। चन्द्रगुप्त मौर्यने भारतसे यूनानी शासनको खत्म कर दिया तो भी ईसापूर्व तीसरी शताब्दीमें यवन प्रभाव कम नहीं हुआ यह अशोकके शिलालेखोंसे भी मालूम होता है, जिनमें

---

[1] न्याय० ४।२।३८ [2] वहीं ४।२।४१ [3] वहीं ४।२।४२
[4] वहीं ४।२।४६ ४७ [5] वहीं ४।२।५० [6] देखो पृष्ठ ८

भारत और यूनानी राजाओंके शासित प्रदेशोंमें घनिष्ट संबंध स्थापित करनेका श्रेय आता है। और मौर्य साम्राज्यकी समाप्तिके बाद उसके पश्चिमी भागका तो शासन ही हिंदूकुशपारवाले यूनानियों (मीनान्दर)के हाथमें चला गया। ईसापूर्व दूसरी शताब्दीमें यूनानी और भारतीय मूर्तिकलाके मिश्रणसे गंधारकला उत्पन्न होती है और ईसाकी तीसरी सदी तक अटूट चलती आती है। कलाके क्षेत्रमें दोनों जातियोंके लेनादेनका यह एक अच्छा नमूना है, और साथ ही यह यह भी बतलाता है कि भारतीय दूसरे देशोंसे किसी बातका सीखनेमें पिछड़े नहीं थे। पिछली सदियोंमें कुछ उलटी मनोवृत्ति ज्यादा बढ़ने लगी थी जरूर, और इसीलिए वराहमिहिरको[1] इस मनोवृत्तिके विरुद्ध कलम उठानेकी जरूरत पड़ी। कला ही नहीं, आजका हिंदू ज्योतिष भी यूनानियोंका बहुत ऋणी है। यह हो नहीं सकता था कि भारतीय शास्त्रोंपर यूनानके उन्नत दर्शनसे प्रभावित न होते। यूनानी प्रभावके कुछ उदाहरण हम वैशेषिक प्रकरणमें दे आए हैं। अश्वघोषके स्वरूपके बारेमें "अक्षरकी रक्षाके लिए (बौद्धोंका) यह कौशल एक तरह शास्त्र ले लिया" इसे हमने अभी देखा। महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषणने अपने लेख[2] 'अरस्तूके तर्कशास्त्रका सिद्धान्तोंका सिकन्दरिया (मिश्र)से भारतमें आना' में दिखलाया है कि १७५ ई० पू०से ६०० ई० तक किस तरह अरस्तूके तर्कने भारतीय न्यायको प्रभावित किया। सिकन्दरियाके प्रसिद्ध पुस्तकालयके पुस्तकाध्यक्ष कलिमस्तुस २८५-२४७ ई० पू०में अरस्तूके ग्रंथोंकी प्रतियाँ पुस्तकालयमें जमा कीं। दूसरी शताब्दीमें स्यालकोट(=सागल)यूनानी राजा मिनान्दरकी राजधानी था, और मिनान्दर स्वयं तर्क और न्यायका पंडित था यह हम बतला आए हैं। उस समय भारतके यूनानियोंमें अरस्तूके तर्कका

---

[1] बृहत्संहिता २।१४ "म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विज ॥

[2] Indian Logic Appendix B, p. 511-13

प्रचार होना बिलकुल स्वाभाविक बात है। यूनानी स्वयं बौद्ध धर्मसे प्रभावित हुए थे, इसलिए उनके नकल यदि नागसेन, अश्वघोष नागार्जुन, वसुबंधु दिङ्नाग प्रभावित हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। अक्षपादने भी उससे बहुत कुछ लिया है यहां इसके चंद उदाहरण हम दे रहे हैं।—

(१) अवयवी

अवयव (=अंश) मिलकर अवयवी (=पूर्ण)का बनाते हैं अर्थात् अवयवी अवयवोंका योग है। यूनानी दार्शनिक अवयवी[1]को एक स्वतंत्र वस्तु मानते थे। अक्षपादने भी उनके इस विचारको माना है। प्रमाणसे हम सापेक्ष नहीं परमार्थ ज्ञान पा सकते हैं यह अक्षपादका सिद्धान्त है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्राप्त ज्ञानको भी वह इसी अर्थमें लेते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष जिस इंद्रिय और विषयके संयोगसे होता है वह संयोग विषयके सारे अवयव (वृक्षके भीतरी-बाहरी छोटे छोटे सभी अंश—परमाणुओं)के साथ नहीं होता इसलिए जो प्रत्यक्ष ज्ञान होगा वह सारे विषय(=वृक्ष)का नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें यह नहीं कहा जा सकता कि हमने सारे वृक्षका प्रत्यक्ष ज्ञान कर लिया हम तो सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि वृक्षके एक बहुत थोड़े बाहरी भागका हमें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है। लेकिन अक्षपाद इसको माननेके लिए तैयार नहीं हैं। उनका कहना है,—(वृक्षके) "एक देशका ज्ञान नहीं (सारे वृक्षका ज्ञान होता है) क्योंकि अवयवीके अस्तित्व होनेसे (हम अखंड वृक्षको देख लेते हैं)।"[2] अवयवी (सिद्ध नहीं) साध्य है इसलिए उस (की सत्ता)में संदेह है।[3] इस उचित संदेहको दूर करनेके लिए अक्षपादने कहा—

---

[1] Whole [2] न्याय० २।१।३२ [3] वहीं २।१।३३
वहीं २।१।३४ ३६

सभी (पदार्थों) का ग्रहण (=ज्ञान) नहीं होगा, यदि हम (अवयवोंसे) अवयवी (को अलग सत्ताका) न मानें। थामने तथा खींचने भी सिद्ध होता है (कि अवयवसे अवयवी अलग है, क्योंकि थामना या खींचना हम वस्तुके एक अवयवका ही अनुभव जानते हैं किन्तु थामने या खींचने हैं सारी वस्तुको)। (यह तो कहा जा सकता है कि) जल मेघ या वन (अलग अलग अवयवों—सिलाओं या मेघ वृक्षों—का समुदाय मात्र होने पर भी उन) का ज्ञान होता है (वैसे ही यहाँ भी परमाणु-समूह घटका प्रत्यक्ष होता है) क्योंकि परमाणु अतीन्द्रिय (अत्यन्त सूक्ष्म) होनेसे इन्द्रियके विषय नहीं हैं।

अवयवीको सिद्ध करते हुए दूसरी जगह[1] भी आक्षेप किया है—

पूर्वपक्ष— (सन्देह हो सकता है कि अवयवीमें अवयव) न हों सकते हैं तो एक देशमें भी हो सकते हैं इसलिए अवयवीका अवयवोंमें अभाव (मानना पड़ेगा)। अवयवोंमें न भी रहनेसे भी अवयवीका अभाव (सिद्ध होता है) अवयवोंसे पृथक् अवयवी हो नहीं सकता, और नहीं अवयव ही अवयवी है।'

उत्तर—एक (अखंड अवयवी वस्तु) में (एक देश और सर्वदेश) भेद नहीं होता इसलिए भेद शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतएव (अवयवोंमें सर्वत्र या एक देशसे जो) प्रश्न (उठाया गया है, वह) हो नहीं सकता। दूसरे अवयवोंसे न भी रहनेपर भी (एक देशमें) न होनेसे (वह अवयवीके न होनेका) हेतु नहीं है।"

पूर्वपक्ष— (एक एक अवयवके देखनेपर भी समूहमें किसी वस्तुको देखा जा सकता है)। जैसे कि तिमिरोग (आँखमें एक एक केश नहीं देखता किन्तु केश-समूहको देखता है उसी तरह अवयव-समूहमें) उस वस्तुकी उपलब्धि (=प्राप्ति) हो सकती है (फिर अवयव-समूहसे अलग अवयवीके माननेकी क्या आवश्यकता ?)

---

[1] न्याय० ४।२।७ १७

उत्तर— 'विषयके ग्रहणमें (किसी आँख आदि) इन्द्रियका तेज मद्धिम होनेसे अपने विषयको बिना छोड़े वैसा (तन्मय देखना) होता है, (उस अपने) विषयसे बाहर (इन्द्रियकी) प्रवृत्ति नहीं होती। (केश और केश-समूह एक तरहके विषय होनेसे वहाँ आँखकी तेजी या मद्धिमपन (=आवरण)का प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु परमाणु कभी आँखका विषय ही नहीं है इसलिए वहाँ तेजी मन्दीका सवाल नहीं हो सकता। अतएव अवयवीकी अलग ही सत्ता माननी पड़ेगी)।

(परमाणुवाद—)

पूर्वपक्ष— अवयवोंमें अवयवीका होना तभी तक रहेगा जब तक कि प्रलय नहीं हो जाता।

उत्तर—'प्रलय (तब) नहीं क्योंकि परमाणुकी सत्ता (अन्तिम इकाईकी भाँति उस वक्त भी रहती है)। (अवयव और अवयवीका विभाग) त्रुटि (=परमाणुसे बनी दूसरी इकाई) तक है। परमाणुमें अवयव नहीं होता अवयव तो तब शुरू होता है जब अनेक परमाणु मिलते हैं और अवयव उनके बाद अवयवी भी आकर उपस्थित होता इसी त्रुटिसे अवयवोंका आरम्भ होता है।

यहाँ हमने देखा परमाणु-ज्ञानके फेरमें पड़कर अक्षपादको अवयवोंके भीतर अवयवोंसे परे एक पृथक् पदार्थ सिद्ध करनेकी कोशिश करनी पड़ी, यदि सापेक्ष-ज्ञानसे वह सन्तुष्ट होते—और वह अर्थक्रिया(=व्यवहार)के लिए पर्याप्त भी है—तो ऐसी क्लिष्ट कल्पनाकी जरूरत नहीं पड़ती।

(२) काल

अक्षपादने कालको एक स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की, किन्तु उनके अनुयायी विशेषकर उद्योतकर (५०० ई०)ने[1] कालको एक

[1] "न्यायवार्तिक" २।१।३८ (चौखम्बासिरीज, पृष्ठ २५३)

(बौद्ध) (ब्राह्मण)

नागार्जुन (१७५ ई०)

↑ ——— अक्षपाद (२५० ई०)

वसुबन्धु (४०० ई०) ↑ वात्स्यायन (४०० ई०)

दिङ्नाग (४७५ ई०) ——— ↑

↑ ——— उद्योतकर (५०० ई०)

धर्मकीर्ति (६०० ई०) ——— ↑

↑ ——— वाचस्पतिमिश्र (८४१ ई०)

ज्ञानश्री

↑ ——— उदयन (९८४ ई०)

रत्नकीर्ति (१००० ई०) ↑

दुर्वेक मिश्र (११०० ई०) ———

वर्धमान (१२५० ई०)

बौद्ध अनात्मवादी अनीश्वरवादी तथा दो प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान) वादी हैं, साथही वह प्रमाणको भी परमार्थ नहीं सापेक्ष तौरपर मानते हैं। अक्षपादके सिद्धान्त उनके विरुद्ध हैं यह हम बतला आए हैं। यहाँ बौद्धोंके दूसरे सिद्धान्तोंका अक्षपादने किस तरह खण्डन किया है, इसके बारेमें लिखेंगे।

(१) क्षणिकवाद-खंडन[1]—सब कुछ क्षणिक है यह सिद्धान्त पक्का (=एकान्त) नहीं है, क्योंकि कितनी ही चीजें क्षणिक (=क्षण क्षण परिवर्तनशील) देखी जाती हैं, और कितनी ही नहीं, जैसे कि शरीरमें नया नया परिवर्तन होता है स्फटिक (=बिल्लौर) में वैसा नहीं देखा जाता। परिवर्तन भी (बौद्धोंके सिद्धान्तके अनुसार) बिना कारण (=हेतु) के नहीं

[1] न्याय० ३।२।१० १७ का भाष्य

होता जब कि कारणके रहते होता है जैसे कि कारणरूप दूध मौजूद रहनेपर ही दही उत्पन्न होता है।

(२) अभाव अहेतुक नहीं—बौद्ध दर्शनका कार्य-कारणके संबंधमें अपना खास सिद्धान्त है जिसे प्रतीत्य-समुत्पाद[1] (=विच्छिन्न प्रवाह) कहते हैं अर्थात कार्य और कारणके भीतर कोई वस्तु या वस्तुसार नहीं है, जो कि कारण (दूध)की अवस्थामें भी हो कार्य(=दधि)की अवस्थामें भी। प्रतीत्य समुत्पादके अनुसार पहिले एक वस्तु(=दूध)होकर आमूल नष्ट हो गई (इसे कारण कह लीजिए), फिर दूसरी वस्तु (दही) जो पहिले बिलकुल न थी सर्वथा नई पैदा हुई इसे कार्य कह लीजिए। इस प्रकार कार्य अपने प्रादुर्भावसे पहिले बिलकुल अभाव रूप था। अक्षपादने इसे 'अभावसे भाव उत्पत्ति' कह कर खंडित किया यद्यपि यहाँपर स्थाल रखना चाहिए कि बौद्ध-दर्शन अत्यन्त विनाश और सर्वथा नव उत्पादको मानते भी विनाश उत्पत्ति विनाश उत्पत्ति —इस प्रवाह (=सन्तान) को स्वीकार करता है।

अभावसे भावकी उत्पत्ति होती है क्योंकि बिना (बीजके) नष्ट हुए (अंकुरका) प्रादुर्भाव नहीं होता[2]—इन शब्दोंमें बौद्ध विचारको रखते अक्षपादने इसका खंडन इस प्रकार किया है[3]—

नष्ट और प्रादुर्भाव (मेंसे एक) अभाव और (दूसरा) भावरूप होनेसे दो परस्पर विरोधी बातें हैं जो कि एक ही वस्तु (=बीज)के लिए नहीं इस्तेमाल की जा सकती। जो बीज वस्तुतः नष्ट हो गया है उससे अंकुर नहीं उत्पन्न होता इसलिए अभावसे भावकी उत्पत्ति कहना गलत है। पहिले बीजका विनाश होता है पीछे अंकुर उत्पन्न होता है यह जो क्रम देखा जाता है, वह बतलाता है, कि अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती यदि ऐसा होता तो बीज अंकुर क्रमकी जरूरत ही क्या थी?

प्रवाह स्वीकार करनेसे बौद्ध क्रमको भी स्वीकार करते हैं, इसलिए

---

[1] देखें पृष्ठ ५१२ [2] वहीं ४।१।१४ [3] वहीं ४।१।१५ १८

(बौद्ध) (ब्राह्मण)

नागार्जुन (१७५ ई०)

↑ अक्षपाद (२५० ई०)

वसुबन्धु (४०० ई०) ↑ वात्स्यायन (४०० ई०)

दिङ्नाग (४२५ ई०) ↑

↑ उद्योतकर (५०० ई०)

धर्मकीर्ति (६०० ई०) ↑

↑ वाचस्पतिमिश्र (८४१ ई०)

ज्ञानश्री

↑ उदयन (९८४ ई०)

रत्नकीर्ति (१००० ई०) ↑

दुर्वेक मिश्र (११०० ई०)

जयन्त (१२५० ई०)

बौद्ध अनात्मवादी, अनीश्वरवादी तथा दो प्रमाण (प्रत्यक्ष अनुमान) वादी हैं, साथही वह प्रमाणको भी परमार्थ नहीं सापेक्ष तौरपर मानते हैं। अक्षपादके सिद्धान्त उनके विरुद्ध हैं यह हम बतला आए हैं। यहाँ बौद्धोंके दूसरे सिद्धान्तोंका अक्षपादने किस तरह खंडन किया है, इसके बारेमें लिखेंगे।

(१) क्षणिकवाद-खंडन[1]—सब कुछ क्षणिक है यह सिद्धान्त पक्का (=एकान्त) नहीं है क्योंकि कितनी ही चीजें क्षणिक (=क्षण क्षण परिवर्तनशील) देखी जाती हैं और कितनी ही नहीं, जैसे कि शरीरमें नया नया परिवर्तन होता है, स्फटिक (=बिल्लौर) में वैसा नहीं देखा जाता। परिवर्तन भी (बौद्धोंके सिद्धान्तके अनुसार) बिना कारण (=हेतु) के नहीं

[1] न्याय० ३।२।१० १७ का भाष्य

यह हम बतला आए हैं,[1] इसलिए विज्ञानवादके खंडनसे अक्षपादका असंगत पाद्य मीमांसकी जरूरत नहीं।

'बुद्धिसे विवेचन करनेपर वास्तविकता (=याथात्म्य)का ज्ञान होता है जैसे (मूल) सत्ताका (एक एक करके) खींचनेपर कपड़ेकी सत्ताका पता नहीं रहता वैसे ही(बाहरी जगत्का भी परमाणु और उससे आगे भी विश्लेषण करनेपर) उसका पता नहीं मिलता।'—इस तरह विज्ञानवादी पक्षको रखकर अक्षपादने उसका खंडन किया है[2]—एक ओर बुद्धिसे बाहरी वस्तुओंके विवेचन करनेकी बात करना दूसरी ओर उनके अस्तित्वसे इन्कार करना यह परस्परविरोधी बातें हैं। कार्य (=कपड़ा) कारण (=सूत)के आश्रित होता है इसलिए कार्यके कारणसे पृथक् न मिलनेमें कोई हर्ज नहीं है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे हमें बाहरी वस्तुओंका पता लगता है। स्वप्नकी वस्तुओं जादूगरकी माया गंधर्वनगर मृगतृष्णाकी भाँति प्रमाण प्रमेयकी कल्पना करनेके लिए कोई हेतु नहीं है इसलिए बाह्य जगत स्वप्न आदिकी भाँति है, यह सिद्ध नहीं होता। स्वप्नकी वस्तुओंका ख्याल भी उसी तरह वास्तविक बाह्य दुनिया पर निर्भर है, जैसे कि स्मृति या संकल्प, यदि बाहरी दुनिया न हो तो जैसे स्मृति और संकल्प नहीं होंगे वैसे ही स्वप्न भी नहीं होगा। हाँ बाह्य जगतका मिथ्या ज्ञान भी होता है किन्तु वह तत्त्व(=यथार्थ) ज्ञानसे वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे जागनेपर स्वप्नकी वस्तुओंका ख्याल। इस तरह बाहरी वस्तुओंकी सत्तासे इन्कार नहीं किया जा सकता।

§ २—योगवादी पतञ्जलि (४०० ई०)

जहाँ तक आगम वर्णित प्राणायाम समाधि यौगिक क्रियाओंका संबंध है, इनका पता हमें सति पट्ठान[3] जैसे प्राचीनतम बौद्ध सुत्तों तथा कठ

---

[1] देखो पृष्ठ ५२० [2] न्याय० ४।२।२६ ३५ (का भावार्थ)।
[3] दीघनिकाय २।९

अपापात्का आश्रय ठीक नहीं, यह सार है।

(३) शून्यवाद(=नागार्जुन-मत)का खंडन—नागार्जुनने क्षणिकवाद और प्रतीत्य-समुत्पादके आधारपर अपने सापेक्षतावाद या शून्यवादका विकास किया, यह हम बता चुके हैं। विच्छिन्न प्रवाह रूप वस्तुओंके निरन्तर विनाश और उत्पत्ति होनेसे प्रत्येक वस्तुकी स्थिति सापेक्ष तौरपर ही यह सकती है। गर्मीका सत्ता हमें गर्मीका अपने आप मालूम होती, गर्मीकी सर्दीका अभाव। इस तरह सत्ता सापेक्ष ही सिद्ध होती है। सापेक्ष सत्तासे (वस्तुका) सर्वथा अभाव सिद्ध करना मर्यादाको पार करना है, तो भी हम जानते हैं कि नागार्जुनका सापेक्षतावाद अन्तमें यहीं तक ऊपर पहुँचा और इसीलिए शून्यवादका अर्थ जहाँ क्षणिक जगत और उसका प्रत्येक अंश किसी भी स्थिर तत्त्वसे सर्वथा शून्य है—होना चाहिए था वहाँ क्षणिकत्वसे भी उसका अर्थ शून्य—सर्वथा शून्य—मान लिया गया। "भावों (=सम्भूत पदार्थों)में एकका दूसरेमें अभाव (=घटमें कपड़ेका अभाव कपड़ेमें घड़ेका अभाव) देखा जाता है, इसलिए सार (पदार्थ) अभाव (=शून्य) ही है"—इस तरह शून्यवादके पक्षको रखते हुए अक्षपादने उसके विरुद्ध अपने मतको स्थापित किया[1]—सब अभाव है यह बात गलत है क्योंकि भाव (=सम्भूत पदार्थ) अपने भाव (=सत्ता)से विद्यमान देखे जाते हैं। एक ओर सब वस्तुओंके अभावकी घोषणा भी करना और दूसरी ओर उसी अभावको सिद्ध करनेके लिए उन्हीं अभावभूत वस्तुओंमेंसे कुछको सापेक्षताके लिए लेना क्या यह परस्पर विरोधी नहीं है?

(४) विज्ञानवाद-खंडन—यद्यपि बौद्ध (क्षणिक) विज्ञानवादके महान् आचार्य असंग ३५० ई०के आसपास हुए किन्तु विज्ञानवादका मूल (=अविकसित) रूप उनसे पहिलेके वसुबन्धु-सूत्रोंमें पाया जाता है

---

[1] न्याय० ४।१।३७ वहीं ४।१।३८ ४० (भाष्य)।

कार पतंजलि (१५० ई० पू०) और योग-सूत्रकार पतंजलिको एक करके उनका समय ईसा-पूर्व दूसरी सदी माना है। मैं समझता हूँ, किसी भी हमारे सूत्रबद्ध दर्शनको नागार्जुनसे पहिले ले जाना मुश्किल है। चाहे योगसूत्रमें नागार्जुनके शून्यवादका खंडन नहीं भी हो, किन्तु उसके अन्तिम (चतुर्थ) पादमें विज्ञानवादका खंडन आया है, जिसे डाक्टर दासगुप्तने क्षेपक मानकर छुट्टी ले ली है, लेकिन वैसा माननेके लिए उन्होंने जो प्रमाण दिए हैं, वे बिलकुल अपर्याप्त हैं। हाँ उनके इस मतमें मैं सहमत हूँ, कि पतंजलिने जिस विज्ञानवादका खंडन किया है वह असंगसे पहिले भी मौजूद था।

दूसरे दर्शन-सूत्रकारोंकी भाँति पतंजलिकी जीवनीके बारेमें भी हम अंधकारमें हैं।

१—योगसूत्रोंका संक्षेप

योग-दर्शन छःमें दर्शनोंमें सबसे छोटा है, इसके सारे सूत्रोंकी संख्या सिर्फ १९४ है, इसीलिए इसे अध्यायोंमें न बाँटकर चार पादोंमें बाँटा गया है, जिनके सूत्रोंकी संख्या निम्न प्रकार है—

पाद	नाम	सूत्र-संख्या
१	समाधिपाद	५१
२	साधनपाद	५५
३	विभूतिपाद	५४
४	कैवल्यपाद	३४

पादोंके नाम, मालूम होता है, पीछेसे दिये गये हैं। कुल १९४ सूत्रोंमें से चौथाई (४९) योगसे मिलनेवाली अद्भुत शक्तियोंकी महिमा गानेके लिए है। इन सिद्धियों(=विभूतियों)में सारे प्राणियोंकी भाषाका ज्ञान[1] "अन्तर्द्धान"[2], "भुवन(=विश्व) ज्ञान"[3], क्षुधा-प्यासकी निवृत्ति"[4] दूसरे

[1] योगसूत्र ३।१७ [2] वहीं ३।२१ [3] वहीं ३।२६ [4] वहीं ३।३०

[illegible] पुराणी [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

है, किन्तु इनसे यह मालूम होता है, कि चेतन (=पुरुष) चेतनाका आधार नहीं बल्कि चेतना-मात्र तथा निर्विकार है। उसकी चेतनामें हम जो विकार होते देखते हैं, उसका समाधान पतंजलि बुद्धिकी वृत्तियोंसे मिश्रित होनेकी बात कह कर देते हैं। बुद्धिको सांख्यकी भाँति पतंजलि भी भाग्य विकारशील (प्रकृति)से बनी मानते हैं। बुद्धिसे प्रभावित हो पुरुष जो विकारी मालूम होता, उसीको हटाकर उसे अपने (चेतना मात्र) केवल स्वरूपमें स्थापित करना योगका मुख्य ध्येय है, इसी अवस्थाको कैवल्य कहते हैं।

(२) चित्त (=मन)

चित्तसे पतंजलिका क्या अभिप्राय है, इसे बतलानेकी उन्होंने कोशिश नहीं की है, उनका ऐसा करनेका कारण यह भी हो सकता है कि सांख्यके प्रकृति-पुरुष-संबंधी दर्शनको मानते हुए उन्होंने योग-संबंधी पहलूपर ही लिखना चाहा। चित्तको वह भोक्ता (=चेतन)की भोग्य वस्तुओंमें मानते हैं—"यद्यपि चित्त (मल, कर्म विपाकवाली) असंख्य वासनाओंसे युक्त होनेसे (देखनेमें भोक्ता जैसा मालूम होता है) तथापि (वह) दूसरे (अर्थात भोक्ता जीव)के लिए है क्योंकि वह संघातरूपमें होकर (अपना काम) करता है, (वैसे ही जैसे कि घर ईंट, काठ कोठरी द्वार आदिका) संघात बनकर जो अपनेको बसने योग्य बनाता है, वह किसी दूसरेके लिए ही ऐसा करता है।[2]

(३) चित्तकी वृत्तियाँ

पतंजलिके अनुसार[1] योग कहते ही हैं चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको। जब तक चित्तकी वृत्तियोंका निरोध (=विनाश) नहीं होता, तब तक पुरुष (=जीव) अपने शुद्ध रूप (=कैवल्य)में नहीं स्थित होता

---

[1] योग० १।३ [2] वहीं ४।२४ मिलाइये "प्रयोजनवाद"से (ह्वाइटहेड पृ० ३६३) [1] वहीं १।२

के शरीरमें घुसना,[1] आकाशगमन,[2] "सवसना"[3] 'इष्ट देवताके मिलने' जैसी बातें हैं। सूत्रमें संयम करके न जाने कितने योगियोंने भुवन(=विश्व)ज्ञान प्राप्त किया होगा, किन्तु हमारा पुराना भूगोल-ज्ञान कितना नगण्यसा है यह हमसे छिपा नहीं है—जहाँ दूसरे देशोंने अपने पर्यवेक्षणोंको आधुनिक उन्नत ज्योतिष शास्त्रके अनुसार सुधार लिया है, वहाँ अपने भवा ज्ञान के भरोसे हम अभी तानसेन बजानेको ही लिए बैठे हैं।

२—दार्शनिक विचार

सिद्धियोंकी बात छोड़ देनेपर योग-सूत्रमें प्रतिपादित विषयोंको मोटे तौरसे दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—दार्शनिक विचार और योग साधना-संबंधी विचार। दार्शनिक विचारोंको (१) चित्त चेतन (२) बाह्य (=दृश्य) जगत और (३) तत्त्वोंका इन तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है तो भी यह स्मरण रखना चाहिए कि योगसूत्रोंका प्रतिपाद्य विषय दर्शन नहीं यौगिक साधनायें हैं, इसलिए उसने जो दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं, वह सिर्फ प्रसंगवश ही किये हैं।

(१) जीव (=द्रष्टा)

द्रष्टा चेतनामात्र (=चिन्मात्र) शुद्ध निर्विकार होते भी बुद्धिकी वृत्तियोंके द्वारा देखता है (इसलिए वह बुद्धिकी वृत्तियोंसे मिश्रित मालूम होता है।) दृश्य (=जगत)का स्वरूप उसी (=द्रष्टा)के लिए है।[4] पुरुष (=चेतन जीव)की निर्विकारताको बतलाते हुए कहा है[5]—'उस (=भोग्य बुद्धि)का प्रभु पुरुष अपरिणामी (=निर्विकार) है, इस लिए (क्षण क्षण बदलती भी) चित्तकी वृत्तियाँ उसे सदा ज्ञात रहती हैं।" यद्यपि इन सूत्रोंमें चेतनका स्वरूप पूरी तौरसे व्यक्त नहीं किया गया

---

[1] योग० ३।३८ [2] वहीं ३।४२ [3] वहीं ३।४८
वहीं २।४४ [5] वहीं २।२०, २१ [4] वहीं ४।१८

(४) ईश्वर

पतंजलिके योगशास्त्रको सेश्वर (=ईश्वरवादी) सांख्य भी कहते हैं क्योंकि जहाँ कपिलके सांख्यमें ईश्वरकी गुंजाइश नहीं है, वहाँ पतंजलिने अपने दर्शनमें उसके लिए 'गुंजाइश बनाई' है। गुंजाइश बनाई' इसलिए कहना पड़ता है कि पतंजलिने उसे उपनिषत्कारोंकी भाँति सृष्टिकर्त्ता नहीं बनाना चाहा और न अंशपालकी भाँति कर्मफल दिलानेवाला ही। चित्तवृत्तियोंके निरोध (=बंद) करनेके (योग-संबंधी साधनोंका) अभ्यास, और (विषयोंसे) वैराग्य दो मुख्य उपाय बतलाये[1] हैं, उसीमें "अथवा ईश्वरकी भक्तिसे"[2] कहकर ईश्वरको भी पीछेसे जोड़ दिया। ईश्वर भक्तिसे समाधिकी सिद्धि होती है, यह भी आगे कहा है।[3] पतंजलिके अनुसार ईश्वर एक खास तरहका पुरुष है, जो कि (अविद्या राग द्वेष आदि) मलों (धर्म अधर्म रूपी) कर्मों (कर्मों) विपाकों (=फलों) तथा संस्कारोंसे निर्लेप है।[4] इस परिभाषाके अनुसार जैनों और बौद्धोंके अर्हत तथा कैवल्यप्राप्त कोई भी (मुक्त) पुरुष ईश्वर है। हाँ ईश्वर बननेवालोंकी सूची कम करनेके लिए आगे फिर शर्त रक्खी है— 'उस (=ईश्वर)में बहुत अधिकताके साथ सर्वज्ञ बीज है।'[5] लेकिन जैन और उनकी देखादेखी पीछेवाले बौद्ध भी अपने मत प्रवर्त्तक गुरुको सर्वज्ञ (=सब कुछ जाननेवाला) मानते हैं। इस खतरेसे बचनेके लिए पतंजलिने फिर कहा[6]— वह पहिलेवाले (गुरुओं=ऋषियों)का भी गुरु है क्योंकि जब वह न हो ऐसा काल नहीं है। बुद्ध और महावीर ऐसे सनातन पुरुष नहीं हैं यह सही है, तो भी पतंजलिके कथनसे यही मालूम होता है, कि ईश्वर कैवल्यप्राप्त दूसरे मुक्तों जैसा ही एक पुरुष है फर्क इतना ही है, कि जहाँ मुक्त पुरुष पहिले बद्ध रहकर अपने प्रयत्नसे मुक्त हुए हैं,

---

[1] योग० १।१२ [2] वहीं २।४५ [3] वहीं १।२३
[4] वहीं १।२४ [5] वहीं १।२५ [6] वहीं १।२६

चित्तकी वृत्तियाँ जैसी होती हैं, उसी रूपमें वह स्थित रहता है।[1] चित्तके धारण ज्यादा न कहकर भी चित्तकी वृत्तियोंको पतंजलिने साफ करके बतलाया है[2] और यह वृत्तियाँ चूँकि चित्तकी भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं, इसलिए उनसे हम चित्तका भी परिचय हो सकता है। चित्त-वृत्तियाँ पाँच प्रकारकी हैं जो कि (राग आदि कारण) मलिन और निर्मल दो भेद रखती हैं। यह पाँच वृत्तियाँ निम्न हैं—

(क) प्रमाण—यथार्थज्ञानके साधन प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणोंके रूपमें जब चित्त वृत्ति क्रियाशील होती है, उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं।

(ख) विपर्यय—(किसी वस्तुका ज्ञान) जो अपनेसे भिन्न रूपमें होता है वही मिथ्या ज्ञान विपर्यय वृत्ति है (जैसे रस्सीमें सांपका ज्ञान)।

(ग) विकल्प—वस्तुके अभावमें सिर्फ उसके नाम (=शब्द)के ज्ञानको लेकर (जो चित्तकी अवस्था बनती होती है) वही विकल्प (=संकल्प विकल्पकी) वृत्ति है।

(घ) निद्रा—(दूसरी किसी तरहकी वृत्तिके) अभावको ही लिए हुए जो चित्तकी अवस्था होती है उसे निद्रावृत्ति कहते हैं।

(ङ) स्मृति—प्रमाण आदि वृत्तियोंमें जिन विषयोंका अनुभव होता है, उनका चित्तसे लुप्त न होना स्मृति-वृत्ति है।

यहाँ पतंजलिने स्वप्नका जिक्र नहीं किया है जिसे कि विकल्पवृत्तिके लक्षणको जरा व्यापक—वस्तुके अभावमें सिर्फ वासनाको लेकर जो चित्तकी अवस्था होती है—करके प्रकट किया जा सकता है किन्तु सूत्रकार केवल चित्त द्वारा निर्मित वस्तुको उतना तुच्छ नहीं समझते बल्कि चित्तकी ऐसी निर्माण करनेकी शक्तिको एक बड़ी सिद्धि मानते हैं[3] यह भी ध्यान रखना चाहिए।

---

[1] योग० १।४ [2] वहीं १।५ ११ [3] वहीं ४।४ ५

दोनोंके जय-जनक मध्यमें निम्न अन्तर है—

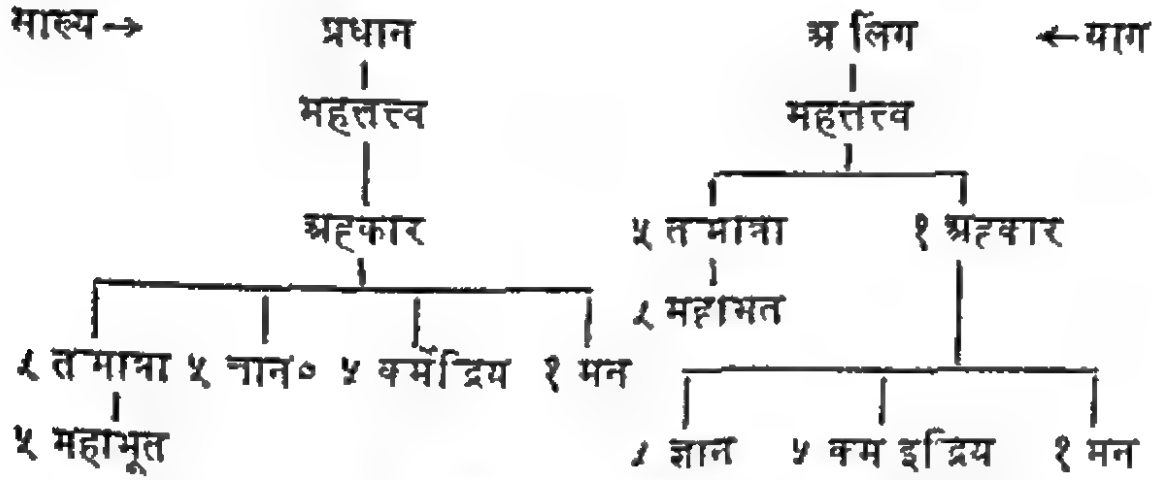

पाँच तन्मात्रायें हैं—गंधतन्मात्रा, रस०, रूप०, स्पर्श०, शब्दतन्मात्रा

पाँच भूत हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं—नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र

पाँच कर्म इन्द्रियाँ हैं—वाणी, हाथ, पैर, मल इन्द्रिय, मूत्र इन्द्रिय

अनीश्वरवादी सांख्य २४ प्राकृतिक तत्त्वों तथा पुरुष (जीव)को लेकर २५ तत्त्वोंको मानता है, और ईश्वरवादी योग उसमें पुरुषविशेष (=ईश्वर)को जोड़ कर २६ तत्त्वोंको।

"पुरुषके लिए ही दृश्य (जगत्)का स्वरूप है,"[1] इसका अर्थ है, कि पुरुषके कैवल्य (=मुक्ति) प्राप्त हो जानेपर संसारका अस्तित्व खतम हो जायगा, किन्तु अनादिकालसे आज तक कितने ही पुरुष कैवल्यप्राप्त हो गए तो भी जगत् इसलिए जारी है, कि कैवल्यप्राप्तोंसे भिन्न—बद्ध पुरुषों—की भी वह साझेकी भोग्य वस्तु है।"[2]

(ख) **परिवर्त्तन**—पांचों महाभूतों, दशों इन्द्रियों और मन (=चित्त) में निरन्तर परिवर्त्तन (=नाश, उत्पत्ति) होता रहता है, जिनमेंसे महाभूतों और इन्द्रियोंके परिवर्त्तन (=परिणाम) तीन प्रकारके होते हैं—धर्म-परिणाम (=मिट्टीका पिंडरूपी धर्म छोड़ घटरूपी धर्ममें परिणत

---

[1] योग० २।२१ [2] वहीं २।२२

[illegible] (=चित्त) मुक्त है। उसका प्रयोजन यही है कि उसके भक्ति या प्रतिपादन चित्त-वृत्तियोंका निरोध होता है।[1] उसका वाचक प्रणव (=ओम्) है, जिसके अर्थकी भावना उस (=ओम्)का जप कहलाता है। चित्त (=मन)में प्रत्यक्ष चेतना (=बुद्धिमें स्थित जो जीव है उस)का साक्षात्कार होता है तथा (रोग संशय आलस्य आदि चित्त विक्षेपकों) अन्तरायों (=बाधाओं)का नाश होता है।

(५) भौतिक जगत् (=दृश्य)

पतञ्जलिने जहाँ पुरुषको द्रष्टा (=चेतनवाला) कहा है वहाँ भौतिक जगत् या साङ्ख्यके प्रधानके लिए दृश्य शब्दका प्रयोग किया है। दृश्यका स्वरूप बतलाते हुए कहा है[2]— (सत्त्व रज तम, तीनों गुणोंके कारण) प्रकाश गति और गति सहित (स्थिति) स्वभाववाला, भूत (पाँच महाभूत और पाँच तन्मात्रा) तथा इन्द्रिय (पाँच ज्ञान, पाँच कर्म-इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार और तीन अन्तःकरण) स्वरूपी दृश्य (=जगत्) है जो कि (पुरुषके) भोग, और मुक्ति (=अपवर्ग)के लिए है।

(क) प्रधान—साङ्ख्य पुरुषके अतिरिक्त प्रकृति(=प्रधान) के २४ तत्त्वोंको प्रकृति, प्रकृति विकृति और विकृति इन तीन कोटियोंमें बाँटा है जिन्हें ही पतञ्जलिने चार प्रकारसे बाँटा है।—[3]

साङ्ख्य	तत्त्व	योग
प्रकृति १	प्रधान (त्रिगुणात्मक)	अलिंग १
प्रकृति विकृति ७	१ महत्तत्त्व (=बुद्धि) + ५ तन्मात्रा + १ अहंकार	लिंग १ अविशेष ६
विकृति १६	५ महाभूत + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ ज्ञानेन्द्रिय + १ मन	विशेष १६

[1] योग० १।२७ ३० [2] वहीं २।१८, २१, २२ [3] वहीं २।१९

क्योंकि विज्ञानवादी एक ही विज्ञानसे जगतकी असंख्य विचित्रताओंको उत्पन्न मानते हैं। इसका खंडन करते हुए पतंजलि कहते हैं कि वे (चित्त=विज्ञान=मन और भौतिक तत्त्व) दोनों भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि एक (स्त्री) वस्तुके होनेपर भी (जिस चित्तसे उसकी उत्पत्ति विज्ञानवादी मानते हैं, वह) चित्त (एक नहीं) अनेक हैं।[1] विज्ञानवादके अनुसार वहाँ जो स्त्री शरीर है वह विज्ञान (=चित्त)का ही बाहरी शपण (=फेंकना) है, किंतु जिस चित्तके शपणका परिणाम वह स्त्री है, वह एक नहीं है—किसीके चित्तके लिए वह सुखदा प्रिया पत्नी है किसीके चित्तके लिए वह दुःखदा सौत है। फिर ऐसे परस्परविरोधी अनेक विज्ञानों (=चित्तों)से निर्मित स्त्री एक विज्ञानसे बनी नहीं कही जा सकती इसकी जगह यही मानना चाहिए कि विज्ञान और भौतिक तत्त्व भिन्न भिन्न हैं, और वही मिलकर एक वस्तुको बनाते हैं। और भी[2] यदि वस्तुको एक चित्त (=विज्ञान)से बनी माना जाय तो (उस चित्तके किसी दूसरे कपड़े आदिके निर्माणमें) व्यस्त होनेपर उस वस्तुका क्या होगा (—निर्माण कर्त्ता चित्तके अभावमें उसका अभाव होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए वस्तु चित्तसे बनी) नहीं है, बल्कि उसकी स्वतंत्र सत्ता है। अकेला चित्त सारी वस्तुओं (=भौतिक पदार्थों)का कारण होनेसे आपके तर्कानुसार उसे सर्वज्ञ होना चाहिए किन्तु वैसा नहीं देखा जाता, इसलिए विज्ञान सबका मूलकारण है, यह मत गलत है। हमारे मतमें तो 'वस्तुके ज्ञान होनेके लिए (इंद्रिय-द्वारा) चित्तका उस (वस्तु)से 'रँगा जाना' (=मनपर संस्कार पड़ना) जरूरी है, (जब वह वस्तुसे रँगा नहीं होता तो वस्तु) अज्ञात होती है। चित्त परिवर्तनशील है, किन्तु चित्तकी वृत्तियाँ लगातार (=सदा) ज्ञात रहती हैं यह इसीलिए कि उस (=भोग्य-वस्तु)का स्वामी (=पुरुष) अ-परिवर्तनशील है। 'दृश्य (=जगतका एक भाग होनेसे चित्त स्वप्रकाश (=स्वयंचेतन) नहीं है बल्कि उसे प्रकाश

---

[1] योग० ४।१५ [2] वहीं ४।१६ १९

होना) लक्षण-परिणाम (=घडेका अतीत वर्तमान, भविष्यके संबंध= लक्षणसे अतीत घडा वर्तमान घडा भविष्य घडा बनना), अवस्था परिणाम (=वर्तमान घडेका नयापन पुरानापन आदि अवस्थामें बदलना)। मिट्टीमें चूर्ण और पिंड पिंड और घडा, घडा और कपाल (=ठीकरा) यह जो पहिले पीछेका क्रम देखा जाता है, वह एक ही मिट्टीके भिन्न भिन्न धर्म-परिवर्तनको जतलाता है, इसी अतीत वर्तमान और भविष्यकालके भिन्न भिन्न क्रममें भिन्न भिन्न लक्षण तथा दृश्य सूक्ष्म, स्थूलके भिन्न भिन्न क्रममें भिन्न भिन्न अवस्थाका परिवर्तन मालूम पडता है।[1]

इस तरह पतंजलि परिवर्तन होता है इसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि वह स्वयं इस बातको स्पष्ट नहीं करते, तो भी सांख्यकी दूसरी कितनी ही बातोंकी भाँति उनके मतमें भी परिवर्तन होना है भावसे भाव रूपमें (=सत्कार्यवाद)में ही।

'(सत्त्व रज तम ये तीन) गुण स्वरूपवाले (प्रधानसे नीचेके २३ तत्त्व) व्यक्त होते हैं (जब कि वे वर्तमानकालमें हमारे सामने होते हैं), और सूक्ष्म होते हैं (जब कि वे आँखसे ओझल भूत या भविष्यमें रहते हैं)। (गुणके तीन होनेपर भी उनके धर्म लक्षण, या अवस्था) परिणाम (=परिवर्तन) चूंकि एक होते हैं इसलिए (परिणामसे उत्पन्न बुद्धि, अहंकार आदि वस्तुओंका) एक होना देखा जाता है।[2] इस प्रकार नाना कारणों (=गुणों) से एक कार्यकी उत्पत्ति पतंजलिने सिद्ध की। सांख्य और योगके तीनों गुण प्रकृतिकी तीन स्थितियोंको बतलाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए, वह स्थितियाँ हैं—सत्त्व=प्रकाशमय अवस्था रज= गतिमय अवस्था तम=गतिशून्यतामय अवस्था।

(६) क्षणिक विज्ञानवाद खंडन

नाना कारणसे एक कार्यका उत्पन्न होना विज्ञानवादके विरुद्ध है,

---

[1] योग० ३।१३ १५ [2] वहीं ४।१३ १४

क्योंकि विज्ञानवादी एक ही विज्ञानमें जगतकी असंख्य विचित्रताओंको उत्पन्न मानते हैं। इसका खंडन करते हुए पतंजलि कहते हैं कि 'वे (चित्त=विज्ञान=मन और भौतिक तत्त्व) दोनों भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि एक (स्त्री) वस्तुके होनेपर भी (जिस चित्तमें उसकी उत्पत्ति विज्ञानवादी बतलाते हैं, वह) चित्त (एक नहीं) अनेक हैं।'[1] विज्ञानवादके अनुसार वहाँ जो स्त्री शरीर है वह विज्ञान (=चित्त)का ही बाहरी क्षेपण (=फेंकना) है, किंतु जिस चित्तके क्षेपणका परिणाम वह स्त्री है वह एक नहीं है—किसीके चित्तके लिए वह सुखदा प्रिया पत्नी है, किसीके चित्तके लिए वह दुःखदा सौत है। फिर ऐसे परस्परविरोधी अनेक चित्तों (=चित्तों)से निर्मित स्त्री एक चित्तमें बनी नहीं कही जा सकती, इसकी जगह यही मानना चाहिए कि चित्त और भौतिक तत्त्व भिन्न भिन्न हैं, और वही मिलकर एक वस्तुको बनाते हैं। और भी[2] 'यदि वस्तुको एक चित्त (=चित्त)से बनी माना जाय, तो (उस चित्तके किसी दूसरे कपड़े आदिके निर्माणमें) व्यस्त होनेपर, उस वस्तुका क्या होगा (—निर्माण कर्ता चित्तके अभावमें उसका अभाव होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए वस्तु चित्तमें बनी) नहीं है, बल्कि उसकी स्वतंत्र सत्ता है। अकेला चित्त सारी वस्तुओं (=भौतिक पदार्थों)का कारण होनेसे आपके तर्कानुसार उसे सर्वज्ञ होना चाहिए, किन्तु वैसा नहीं देखा जाता इसलिए विज्ञान सबका मूलकारण है, यह मत गलत है। हमारे मतमें तो वस्तुके ज्ञात होनेके लिए (इंद्रिय द्वारा) चित्तका उस (वस्तु)से 'रँगा जाना' (=मनपर संस्कार पड़ना) जरूरी है, (जब वह वस्तुसे रँगा नहीं होता, तो वस्तु) अज्ञात होती है।' चित्त परिवर्तनशील है किन्तु 'चित्तकी वृत्तियाँ लगातार (=सदा) ज्ञात रहती हैं, यह इसीलिए कि उस (=भोग्य वस्तु)का स्वामी (=पुरुष) अ-परिवर्तनशील है।' 'दृश्य (=जगतका एक भाग होनेसे चित्त स्वप्रकाश (=स्वयंचेतन) नहीं है' बल्कि उसे प्रकाश

---

[1] योग० ४।१५ [2] वहीं ४।१६ १९

किंतु यह [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (पर और अपरिग्रह) [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।"

योगके अंगोंके अनुष्ठान ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

३—योगकी साधनायें

योगसूत्रका मुख्य प्रयोजन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

(६) धारणा[1]—(किसी खास) देश (=नासाग्र आदि) में चित्तको रोकना।

(७) ध्यान[2]—उस (धारणाकी स्थिति) में (चित्तकी) वृत्तियोंकी एकरूपता।

(८) समाधि—वही (ध्यान) जब (ध्यानके) स्वरूप (के ज्ञानसे) रहित, सिर्फ (ध्येय) अर्थ (के स्वरूप) में प्रकाशमान होता है (तो उसे समाधि कहते हैं)। —अर्थात् ध्येय, ध्याता और ध्यानके नानोंमें जहाँ ध्येय मात्रका ज्ञान प्रकट होता है उसे समाधि कहते हैं।

धारणा, ध्यान समाधि इन तीन अन्तरंग योगांगोंको संयम भी कहते हैं।

§३—शब्दप्रमाणक ब्रह्मवादी बादरायण (३०० ई०)

१—बादरायणका काल

यूनानियों और शकोंके चार शताब्दियोंके शासन और संस्कृति-संबंधी प्रभाव तथा बौद्धोंके तीक्ष्ण तर्क प्रहारसे ब्राह्मणोंके कर्मकाण्डकी ही नहीं उनके उपनिषदीय अध्यात्म दर्शनका प्रभाव भी क्षीण होने लगा। जहाँ तक युक्ति-संगत सिद्धान्तोंके संबंधमें उत्तर हो सकता था वह उन्होंने न्याय वैशेषिक योग और सांख्य द्वारा दिया, किन्तु वह काफी नहीं था। यदि वेद-मूलक ज्ञान और कर्मकाण्डके संबंधमें उत्पन्न हुई शंकाओंका वह उत्तर नहीं दे सकते थे, तो ब्राह्मणधर्मकी जड़ खुद चुकी थी इसीलिए उनकी रक्षाके लिए बादरायण और जैमिनिने कलम उठाई। जैमिनिकी कर्म-मीमांसाके बारेमें हम लिख चुके हैं। वहाँ हमने यह भी बतलाया था, कि एक दूसरेकी राय उद्धृत करनेवाले जैमिनि और बादरायण समकालीन थे जिसका अर्थ हुआ, बादरायण भी ३०० ई० में मौजूद थे। पौराणिक परंपरा बादरायण

---

[1] योग० ३।१ [2] वहीं ३।२ [3] वहीं ३।३

तथा योगाचार एक माना है और बौद्ध दृष्टिसे कुछ गौण पहिले महा भारत कालमें उनका होना मानता है, किन्तु इसका खंडन स्वयं वेदान्त सूत्रकार व भाष्य करते हैं, जिसमें सिर्फ बुद्धके दर्शनका ही नहीं, बल्कि उनका मनु (४८३ ई० पू०)से कुछ मन्त्रियों भी पीछे अस्तित्वमें आनेवाले बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय—स्वभाविक योगाचार माध्यमिक—का खंडन है। अश्वघोष प्रभावसे प्रभावित हो बौद्धोंने अपने विज्ञान वादका विकास नागार्जुन (१७५ ई०)से पहिले भी किया था जरूर किन्तु उसका पूर्ण विकास हो वसुबन्धु (३५० ई०)—ने किया। यद्यपि विज्ञानवाद (=योगाचार)का जिस प्रकार खंडन सूत्रोंमें किया गया है उससे पता मालूम गुजरता है कि वेदान्तसूत्र असंग (३५० ई०)से पीछे बने, तो भी और निश्चयात्मक प्रमाणोंके अभावमें अभी हम यही कह सकते हैं कि बादरायण कणाद (१५० ई०) नागार्जुन (१७५ ई०), योगसूत्रकार पतंजलि (२५० ई०) के पीछे और जैमिनि (३०० ई०)के समकालीन थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि ३५० ई० से पहिले के सभी समालोचक बौद्ध-दार्शनिकोंके ग्रंथोंसे पता नहीं लगता कि उनके समयमें वेदान्तसूत्र या मीमांसासूत्र मौजूद थे।

२—वेदान्त-साहित्य

वेदान्तसूत्रोंपर बौधायन और उपवर्षने वृत्तियाँ (=छोटी टीकायें) लिखी थीं, जिनमें बौधायन वृत्तिके कुछ उद्धरण रामानुज (जन्म १०२७ ई०)ने दिये हैं, किन्तु ये दोनों वृत्तियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं। परम्परासे यही पता लगता है कि बौधायन शारीरकवाली द्वैतवादके समर्थक थे जो हो वेदान्त सूत्रोंका भी भाव मालूम होता है जैसा कि आगे प्रकट होगा, और उपवर्ष अद्वैतवादके। वेदान्तसूत्रोंपर सबसे पुराना ग्रंथ शंकर (७८८-८२० ई०)का भाष्य है। हर्षवर्धन (६४० ई०)के शासन और धर्मकीर्त्ति (६०० ई०)के होनेके बाद संन्यासी कन्धेपर रख छोड़ी

गई सामाजिक और आर्थिक समस्याओंकी उलझनें उनके कारण पैदा हुई विषमताओं बहुसंख्यक जनताकी पीड़ा प्रताड़नाओं तथा अल्पसंख्यक शासक शोषकोंकी मानसिक विलासिताओं, अनिश्चित भविष्य संबंधी आशंकाओंसे भारतीय मस्तिष्क वस्तुस्थितिको लेते हुए किसी हलके ढूंढनेमें इतना असमर्थ था कि उसे विज्ञानवाद परलोकवाद मायावादकी हवामें उड़कर आत्मसन्तोष या आत्मसम्मोह—आँख मूंदना—एक मात्र रास्ता सूझता था। असंग, वसुबंधुके विज्ञानवाद द्वारा बौद्धोंको शिक्षित शासक शोषक वर्गमें प्रिय और सम्मानित बननेका मौका मिला था तो भी बौद्ध विज्ञानवाद उस समय अति तक न पहुँच सका यह तो इसीसे मालूम होता है, कि दिङ्नाग (४५० ई०) और धर्मकीर्त्ति (६०० ई०) विज्ञानवादी सम्प्रदायके होते भी उनपर वस्तुवादका जितना प्रभाव था, उतना विज्ञानवादका नहीं—धर्मकीर्त्तिको तो बल्कि स्वातन्त्रिक (=वस्तुवादी) विज्ञानवादी साफ तौरसे कहा गया है। बौद्धोंकी सफलताको देखकर शंकरने भी उपनिषदके दर्शनको शुद्ध विज्ञानवादके रूपमें परिणत करनेकी इच्छासे अपने वेदान्तभाष्यको लिखा। उन्हें इसमें आशातीत सफलता हुई यह तो इसीसे मालूम है, कि आजके शिक्षित हिन्दुओंमें—जिन्हें दर्शनकी ओर कुछ भी शौक है—सबसे अधिक संख्या शंकर-वेदान्तके अनुयायियों—वेदान्तियों की है। शंकर वेदान्तसे संबंध रखनेवाली तथा खुद शंकरभाष्य पर लिखी गई पुस्तकोंकी संख्या हजारों है। शंकर भाष्यके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०) की भामती (शंकरभाष्यकी टीका) तथा कन्नौज राज जयचन्दके दर्बारी कवि और दार्शनिक श्रीहर्ष (११९० ई०)का खंडनखंडखाद्य है।

शंकरकी सफलताने बतला दिया, कि ब्राह्मण (=हिन्दू) धर्मी किसी सम्प्रदायको यदि सफलता प्राप्त करनी है तो उसे शंकरके रास्तेका अनुकरण करना चाहिए। इस अनुकरणका परिणाम यह हुआ है, कि आज सभी प्रधान प्रधान हिन्दू सम्प्रदायोंके पास अपनी दार्शनिक नींव

मजबूत करनेके लिए अपने अपने वेदान्त भाष्य हैं[1]—

सम्प्रदाय	भाष्यकार	काल
शंकर (शैव)	शंकर (मलबार)	७८८-८२० ई०
रामानुजीय (वैष्णव)	रामानुज (तामिल)	१०२७ (जन्म)
निम्बार्क (वैष्णव)	निम्बार्क (तेलगू)	११ वीं सदी
माध्व (वैष्णव)	आनन्दतीर्थ (कर्नाटि)	११९८ (जन्म)
राधावल्लभी (वैष्णव)	वल्लभ (तेलगू)	१४०१ (जन्म)

३—वेदान्तसूत्र

वेदान्तसूत्रको शारीरकसूत्र भी कहा जाता है क्योंकि इसमें जगत् और ब्रह्मको शरीर और शरीरधारी=शारीरकके तौरपर वर्णित किया है—जो कि शंकरके मतके खिलाफ जाता है। दूसरा नाम ब्रह्ममीमांसा है जो कि कर्ममीमांसा (=मीमांसा)की तुलनासे रखा गया है। वेदान्त सूत्रमें चार अध्याय और हर अध्यायमें चार चार पाद हैं जिनमें सूत्रों की संख्या इस प्रकार है—

अध्याय	पाद	सूत्र-संख्या	अधिकरण (प्रकरण)	विषय
१	१	३२	११	उपनिषद सिर्फ ब्रह्म का जगतकी उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारण मानता है।
	२	३३	६	
	३	४४	१०	
	४	२९	८	युक्तिसे भी जगत कारण ब्रह्म है प्रधान आदि नहीं।
		१३८		

[1] इनके अतिरिक्त श्रीकंठ बलदेव और भास्करके भी भाष्य हैं यद्यपि उनका आज कोई धार्मिक सम्प्रदाय मौजूद नहीं है। हालमें जब रामा

अध्याय	पाद	सूत्र संख्या	अधिकरण (प्रकरण)	विषय
२	१	३६	१०	दूसरे दर्शनोंका खंडन
	२	४२	८	
	३	४२	७	चेतन और जड़
	४	१९	३	प्राण और इन्द्रियां
		१४९		
३	१	२७	६	पुनर्जन्म
	२	४०	८	स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाएं।
	३	६४	२६	उपनिषद्के सभी उपदेशों (विद्याओं)का प्रयोजन ब्रह्मज्ञानसे ही मुक्ति, किन्तु कर्म भी सहकारी।
	४	५१	१५	
		१८२		
४	१	१९	११	ब्रह्मज्ञानका फल शरीरान्तके बाद मुक्तकी यात्रा।
	२	२०	११	
	३	१५	५	अन्तिम यात्राका मार्ग
	४	२२	६	मरनेके बाद मुक्तकी अवस्था और अधिकार।
	१६	७६	१५१	
		५४५		

४ वेदान्तका प्रयोजन उपनिषदोंका समन्वय—जिस तरह जैमिनि ब्राह्मण और उसके कर्मकाण्डका अंधाधुंध समर्थन किया है, वहीं

नवीं वर्णवोंने अपनेको रामानुजी वर्णवोंसे स्वतंत्र संप्रदाय साबित करनेका प्रयास किया, तो किसी विद्वानके वेदान्तभाष्यको रामानन्द भाष्यके नामसे प्रकाशित करना जरूरी समझा।

और [illegible] (आत्मा) के भीतर उस (आकाश) का इस (जीव)[illegible] साथ योग (=मिलना) भी कहा[1] गया है।

इस प्रकार आत्मा [illegible] जीवको लेकर उसे मूलकारण माना जा सकता है और [illegible] प्रत्ययों विचार अथवा [illegible] सांख्यवाले प्रधानको लिया जा सकता। इस तरह उपनिषद् ब्रह्मको ही विश्वके जन्म आदिका कर्ता मानते हैं यह बात साफ है।

अन्तर आकाश प्राण ज्योति शब्दोंका भी छान्दोग्य उपनिषद्[2] [illegible] तौरपर कहा गया है। उनके बारेमें भी प्रकृति (=प्रधान) या प्राकृतिक पदार्थोंका भ्रम हो सकता है जिसको सूत्रकारने इस पादके आठ सूत्रोंमें यह कह कर दूर किया है, कि इनमें शब्दोंके साथ जो विशेषण आदि आए हैं, वह ब्रह्मपर ही घट सकते हैं जीव या प्रकृति पर नहीं।

(३) जगत् और जीव ब्रह्मके शरीर—उपनिषदोंमें कुछ उपदेश ऐसे भी हैं जिनसे मालूम होता है कि वहां जीव और ब्रह्मको एकसा समझा जाता है। बादरायण शारीरकवाद (=जीव और जगत शरीर है, और ब्रह्म शरीरवाला=शारीरक शरीर और शरीरिवाला) अभिन्न समझना आम तौरसे प्रचलित है अथवा सारा मिलकर एक पूर्ण ब्रह्म है) को मानते जरूर थे किन्तु वह जीव या ब्रह्म है इस माननेके लिए तैयार न थे इसलिए जहां कहीं ऐसे भ्रमकी सम्भावना हुई है उसे उड़ाने बार बार हटानेकी कोशिश की है, इसे हम आगे बतलायेंगे। कौषीतकि उपनिषद्[3]में इसी तरहका एक प्रकरण आया है जिसमें प्राणको लेकर ऐसे भ्रमकी गुंजाइश है—विरोचनका पुत्र पतन्न (देवासुर-संग्राममें) युद्ध (विजय) तथा

---

[1] तै० २।७ "वह (ब्रह्म) रस है, इसको ही पाकर यह (जीव) आनन्दी होता है।"

क्रमशः निम्नस्थलोंमें—छा० १।३।६, छा० १।९।१, छा० १।११।५ छा० १।११।४ [2] कौ० उ० ३।१,९

पराक्रमसे इन्द्रके प्रिय धाम (इन्द्रलोक)में पहुँचा। उसे इन्द्रने कहा—
'तुझे वर देता हूँ। उसने उत्तर दिया—'मनुष्योंके लिए जो हिततम वर हो उस वरको तुम ही चुन दो। इन्द्रने कहा—मेरा ही ज्ञान प्राप्त कर मैं प्रज्ञात्मा (=प्रज्ञास्वरूप) प्राण हूँ, मुझे आयु अमृत समझ उपासना कर। यहाँ प्राणकी उपासना कहनेसे जान पड़ता है कि वह ब्रह्मकी भाँति उपास्य है तथा इन्द्र (एक जीव)के कहनेसे वह जीवात्माका वाचक भी मालूम होता है। सूत्रकारने इस संदेहको दूर करते हुए कहा[1]—

(यहाँ) प्राण (पहिले जैसा ही (ब्रह्मवाचक) है क्योंकि (आगे कहे गए विशेषण तभी) संभव है।

वक्ता (इन्द्र) अपने (जीवात्माकी उपासना)का उपदेश करता है यह (माननेकी जरूरत) नहीं क्योंकि (वक्ता इन्द्र)में आत्माका आन्तरिक संबंध बहुत अधिक (ब्रह्मसे व्याप्त है इसलिए ब्रह्मभूतके तौरपर वहाँ इन्द्रने अपने भीतर प्राण ब्रह्मकी उपासना करनेका उपदेश दिया न कि अपने जीवको ब्रह्म सिद्ध करनेके लिए)।

"शास्त्रकी दृष्टिसे भी (ऐसा) उपदेश होता है जैसे कि वामदेव (ने कहा है)। बृहदारण्यकमें[2] कहा है— इसीको देखते हुए ऋषि वामदेवने कहा[3]— मैं मनु हुआ था और मैं सूर्य हुआ था। सो आज भी जिसे ज्ञान हो गया है— मैं ब्रह्म हूँ वह यह सब (=विश्व) होता है

इन सबका वह आत्मा होता है। वामदेवने जैसे ब्रह्मको अपने आत्माके तौरपर समझकर उसके नाते मनु और सूर्यका अपना रूप (=शरीर) बतलाया वैसे ही इन्द्रका प्राण और अपनी उपासनाके बारे कहना भी है।

(४) उपनिषद्में अस्पष्ट और स्पष्ट जीववाची शब्द भी ब्रह्मके लिए प्रयुक्त—कितने ही जीव-वाचक शब्द हैं जिन्हें [illegible]

---

[1] वे० सू० १।१।२९-३२ [2] बृ० उ० १।४।१० [illegible] ३।६।१५

अविनाशी ब्रह्मके लिए प्रयुक्त किया है, इसलिए इन शब्दोंके बारे इस भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए कि उपनिषद् जीवको भी जन्मादिकारण तथा उपास्य मानता है। इस अभिप्राय वह साफ साफ जीव वाचक नहीं है। एवं अस्पष्ट जीववाचक शब्दोंके बारेमें सूत्रकारने दूसरे पादमें कहा है। स्पष्ट जीववाचक शब्द भी ब्रह्मके अर्थमें प्रयुक्त हुए, यह तीसरे पादमें बतलाया है।

मनोमय, अन्ना (=भक्षक) अन्तर (=भिन्न) अन्तर्यामी, अदृश्य (=आँखसे न दिखाई देनेवाला) वैश्वानर ऐसे शब्द हैं जो कि कितनी ही बार जीवके लिए भी प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु ऐसे स्थलों[1] भी हैं जहाँ उन्हें ब्रह्मके लिए प्रयुक्त किया गया है। इसलिए विरोधका भ्रम नहीं होना चाहिए। पहिले अध्यायके दूसरे पादमें[2] इन्हीं शब्दोंको ब्रह्मवाची साबित किया गया है।

द्यौ और पृथिवीमें रहनेवाला भूमा (=बहुत), अक्षर, ईक्षण (=नाड़ी) करनेवाला दहर (=छोटासा), अंगुष्ठमात्र, देवताओंका मधु, अंगुष्ठ आकाश जैसे जीवों मात्रवाची शब्द कितने ही उपनिषदोंमें आए हैं, इनमें भी जन्मादि कर्त्ता जैसे विशेषण आए हैं। तीसरे पादमें[3] इन्हें ब्रह्मवाची सिद्ध कर विरोध परिहार किया गया है।

इस प्रकार पहिले अध्यायके प्रथम तीन पादोंमें ब्रह्म ही जिज्ञास्य

---

[1] देखो क्रमशः छां० ३।४।१, कठ० १।२।२, छां० ४।१५।१, बृह० ३।७।३, मुंडक १।१।५ ६, छां० ५।११।६

[2] क्रमशः निम्न सूत्र १–८ ९ १२, १३ १८ १९ २१, २२ २४, २५ ३३

[3] क्रमशः मुंडक २।२।५, छां० ७।२४।१, बृह० ५।८।८, प्रश्न ५।५, तै० ८।१।१, कठ २।४।१२ छां० ३।१।१ कठ २।४।१२ २।६।१७, छां० ८।१४।१

क्रमशः १ ६, ७ ८, ९ ११, १२ १३ २२, २३ २४, ३० ३२, ४० ४१, ४२ ४४

(=ज्ञानका विषय) तथा जगत्‌का जन्म स्थिति प्रलय-कर्त्ता उपनिषदमें बतलाया गया है इस पक्षका सूत्रकारने समर्थन तथा पारस्परिक विरोधका परिहार किया है। वेदान्त-सूत्रोंमें जिन उपनिषदोंके वचनोंपर ज्यादा बहस की गई है वह ये हैं—कठ प्रश्न, मुंड तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य बृहदारण्यक, कौषीतकि, जिनमें छान्दोग्यके वाक्य एक दर्जनसे अधिक सूत्रोंमें बहसके विषय बनाए गए हैं।

५ बादरायणके दार्शनिक विचार—बादरायणने उपनिषदोंके सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनी चाही किन्तु बादरायणके सूत्रोंको लेकर आजकल द्वैत, अद्वैत द्वैताद्वैत शुद्धाद्वैत विशिष्टाद्वैत, व्रत आदि कितने ही वाद चल रहे हैं और सभी दावा करते हैं, कि वही भगवान बादरायणके एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। बादरायणने स्वयं उपनिषद्‌के भिन्न भिन्न ऋषियोंके मतभेदोंको हटाकर सर्व-समन्वय करना चाहा था किन्तु उपनिषदमें मतभेदके काफी बीज थे जिसके कारण अनुयायियोंने गुरुकी सर्वसमन्वय नीतिको ठुकरा दिया, और आज वेदान्तके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें उससे कहीं अधिक मतभेद है जितना कि रैक्व आरुणि या याज्ञवल्क्यमें हमने देखा है। यहाँ ब्रह्म, जगत जीव आदिके बारेमें हम बादरायणके अपने विचार देते हैं जिससे पता लगेगा कि उनके सिद्धान्तोंके सबसे समीप यदि किसीका वेदान्त है, तो वह रामानुजका।

(१) ब्रह्म उपादान कारण—'जगतका जन्म आदि जिससे है'[1] इस सूत्रसे ब्रह्मके कर्म—सृष्टिका उत्पादन धारण और विनाशन—को बतलाया है, साथही अगले सूत्रोंमें उपनिषदोंके वाक्योंकी सहायतासे सूत्रकारने यह भी बतलाना चाहा कि जैसे मिट्टी घट आदिका उपादान कारण है वैसे ही विश्वका (निमित्त ही नहीं उपादान) कारण भी ब्रह्म है। यहाँ प्रश्न हो सकता है—ब्रह्म चेतन, शुद्ध ईश्वर स्वभाववाला है जब कि जगत् अचेतन अशुद्ध अनीश्वर (=पराधीन) है फिर कारणसे

[1] वे० सू० १।१।२

कार्य अनेक विलक्षण (=अ समान) स्वभाववाला क्यों ? इसका समाधान करते हुए बादरायण कहते हैं —(कारणसे कार्यका विलक्षण होना) देखा जाता है। मकड़ियाँ या बिच्छुओं अपने अंडोंसे जिन कार्योंको पैदा करती हैं वह अपनी मातृव्यक्तिसे बिलकुल ही विलक्षण होते हैं और इन कीड़ोंसे जो फिर मकड़ी या बिच्छू पैदा होती हैं वह अपने मातृस्थानीय कीड़ोंसे विलक्षण होती हैं। (दर्शित अनादि भौतिकवादका गुणात्मक परिवर्तन कैसे स्वीकार्य हो गया है ?) सृष्टिसे पहिले उसका 'असत्' होना जो कहा है वह सर्वथा अ भावके अर्थमें नहीं है, बल्कि जिस रूपमें वर्तमान जगत् है उसका प्रतिषेध करके कार्यसे कारणकी विलक्षणताको ही यह पुष्ट करता है। उपादानकारण मानकर कार्य (जगत्)की अशुद्धता परकीयता आदि ब्रह्मपर लागू होनेका भय नहीं है, क्योंकि उसका दृष्टान्त यह हमारा शरीर मौजूद है —यहाँ शारीरिक दोषसे आत्मा लिप्त नहीं है, इसी तरह जगत्के दोषसे उसका शारीरक (=आत्मा) लिप्त नहीं होगा। ब्रह्मसे भिन्न प्रधानको कारण माननेमें और भी दोष उठ खड़े होंगे।— प्रधान जड़ है, पूर्ण विलकुल निष्क्रिय है, फिर प्रधान पुरुषका न पाया हो सकता है, और न उससे सृष्टि ही उत्पन्न हो सकती है। तर्कसे हम किसी एक निश्चयपर नहीं पहुँच सकते, तर्क एक दूसरेका खंडित करते रहते हैं इसलिये उपनिषद्के वचनको स्वीकार कर ब्रह्मको जगतका उपादान कारण मान लेना ही ठीक है।

'ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं है, यह उद्दालक आरुणिके[1] मिट्टी ही सत्य है (घड़ा आदि तो) बात कहनेके लिए नाम है' इस वचनसे स्पष्ट है, क्योंकि (जिस तरह मिट्टीके मूलपर ही घड़ा मिलता है, वैसे ही ब्रह्मके) होनेपर ही (जगत्) प्राप्त होता है और कार्यके कारण होनेसे भी ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं। जैसे (सूत) पटसे (भिन्न नहीं) वैसे ही ब्रह्म जगतसे

---

[1] वे० सू० २।१।६ ७ ९ १२ भाष्य।

[2] वे० सू० २।१।१५ २० भाष्य। [3] छां० ६।१।४

भिन्न नहीं। जैसे (वही वायु) प्राण अपान आदि कितने ही रूपोंमें देखा जाता है, वैसे ही ब्रह्म भी जगतके नाना रूपोंमें दिखाई पड़ता है।

जगतको ब्रह्मसे अभिन्न कहते हुए जीवको भी वैसा ही कहना पड़ेगा, फिर यदि जीव ब्रह्म है तो अपनेको बंधनमें डालकर वह स्वयं क्या अपने हितका न करनेवाला हो गया? यह प्रश्न नहीं हो सकता क्योंकि ब्रह्म जीव भर ही नहीं उससे अधिक भी है यह भेद करके बतलाया[1] गया है।— जो आत्मामें रहते भी आत्मासे भिन्न है जिसे आत्मा नहीं जानता जिसका कि आत्मा शरीर है।[2] पत्थर आदि (भौतिक पदार्थों)में उस (=ब्रह्म)के विशेष गुण संभव नहीं वैसे ही जीवमें भी वह सम्भव नहीं है। इसलिए जहाँ जीव जगतमें ब्रह्मके अनन्य होनेकी बात कही गई है वहाँ आत्मा और आत्मीय (=शरीर) भावको लेकर ही समझना चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ब्रह्म जगतकी सृष्टि करनेमें साधनोंका मुहताज नहीं है बल्कि जैसे दूध स्वयं दही रूपमें बदल सकता है वैसे ही ब्रह्म भी अपने संकल्प (=कामना) मात्रसे जगतकी सृष्टि कर सकता है देव आदि अपने अपने लोकोंमें ऐसा करते हैं, यह शास्त्रसे मालूम है।

प्रश्न हो सकता है ब्रह्म तो एक अखंड पदार्थ है यदि वह जगत्के रूपमें परिणत होता है तो संपूर्ण शरीरसे परिणत होगा अन्यथा उसे अखंड नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसका उत्तर यह है कि उस परमात्मामें ऐसी बहुत सी विचित्र शक्तियाँ हैं जिन्हें कि श्रुति हमें बतलाती है। उसी विचित्र शक्तिसे यह सब संभव है और इतना होनेपर भी वह निर्विकार रहता है।

(२) **सृष्टिकर्त्ता**[1]—ब्रह्म स्रष्टा (=जगन्निर्माता) कहा गया है, किन्तु सवाल होता है उस नित्य मुक्त तृप्त ब्रह्मको सृष्टि करनेका प्रयोजन क्या है? उत्तर है—शास्त्रमें जैसे अपश्चात्कृत 'नित्य मुक्त तृप्त'

---

[1] वे० सू० २।१।२१ ३१ [2] बृह० ५।७।२२ ३१ भाष्य।
[1] वे० सू० २।१।३२ ३६ भाष्य।

महाराजा या नाता (=खेल) मात्रके लिए गर्त आदि खनते हैं वैसे ही ब्रह्म भी सृष्टिको लीलाके लिए करता है। जगतकी विषमता या क्रूरताको देखकर ब्रह्मपर आक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म तो जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे ऐसा जगत बनाता है और यह कर्म अनादि कालसे चला आया है इसलिए जगतकी सृष्टि भी अनादिकालसे जारी है। प्रधान या परमाणुको जगतका कारण मानकर जो बात देखी जाती है वह अधिक पूर्ण निर्दोष रूपमें सिद्ध हो सकती है, यदि ब्रह्मको ही एकमात्र निमित्त उपादानकारण माना जाय।

इस तरह बादरायण जगत्, जीव, ब्रह्मको एक ऐसा शरीर मानते हैं, जो तीनोंको मिलकर पूर्ण होता है और जो सारा मिलकर सजीव सशरीर ब्रह्म ही नहीं है बल्कि जिसमें एक अवयवके दोष उस अखंड ब्रह्मपर लागू नहीं होते। क्यों? इसका जो उत्तर बादरायणने दिया है वह बिलकुल असन्तोषजनक है, तथा उसका आधार शब्द छोड़ दूसरा प्रमाण नहीं है।

(३) जगत्—जगत ब्रह्मका शरीर है, जगतका उपादानकारण ब्रह्म है, दोनोंमें विलक्षणता है किन्तु कार्य कारणकी यह विलक्षणता बादरायण स्वीकार करते हैं, यह बतला चुके हैं। बादरायणने कहीं भी जगतको माया या काल्पनिक नहीं माना है और न उनके दर्शनसे इसकी गंध भी मिलती है कि 'ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है।'[1]

किन्तु जगत् उत्पत्तिमान है पृथिवी, जल, तेज वायु ही नहीं आकाश भी उत्पत्तिमान् है। बादरायण दूसरे दार्शनिकोंकी भाँति आकाशको उत्पत्तिरहित नहीं मानते, इसे उन्होंने 'उसी आत्मासे आकाश पैदा हुआ'[2] आदि उपनिषद वाक्योंसे सिद्ध किया है। आकाशकी भाँति दूसरे महाभूत—पृथिवी, जल, तेज वायु तथा इन्द्रियाँ और मन भी उत्पन्न हैं, और उनका कारण ब्रह्म है।

---

[1] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।" [2] तैत्तिरीय २।१

[3] वे० सू० २।३।१ १७

गया है। इसलिए कि ज्ञान आत्माका सारभूत गुण है और इसलिए भी कि जहाँ जहाँ आत्मा है वहाँ विज्ञान (=ज्ञान) जरूर रहता है। यदि कभी विज्ञान न हो तो पहला तो मौजूद ज्ञान भी बाल्यावस्थामें जैसे (शिशुमें) पर्याप्त नहीं प्रकट होता वैसे समझना चाहिए। ज्ञान शरीरके भीतर तक ही रहता है इससे भी आत्मा अणु (=छोटा सा) सिद्ध होता है।

(घ) कर्त्ता आत्मा[1]—आत्मा कर्ता है इसके प्रमाण श्रुतिमें भरे पड़े हैं। और उसके कर्ता न होनेपर भोक्ता मानना भी गलत लगा फिर (सांख्य योग-सम्मत) समाधिका क्या करना? आत्माको कर्ता माननेपर उसे किसी वस्तु किया करने न करनेका बाप नहीं, वह हमें अपने काम करनेका (=कर्तृत्व) शक्ति है, किन्तु वह किसी वस्तु उसका इस्तेमाल करता है किसी वक्त न इस्तेमाल कर चुप बैठा रहता है। जीवको यह कर्तृत्व शक्ति परमात्मासे मिला है, यह श्रुतिसे[2] सिद्ध है। शक्तिके ब्रह्मसे मिलनेपर भी चूँकि जीवके किए प्रयत्नकी अपेक्षा रहती है कायपरायण होती है इसलिए पुण्य-पापके विधि निषेध फजूल नहीं और न जीवको बेकार है भोगनेका ज्ञान उठ सकता है।

(ङ) ब्रह्मका अंश जीव है—जीवात्मा ब्रह्मका अंश है, यह उपनिषद्-सम्मत विचार बादरायणको भी स्वीकृत है। प्रश्न हो सकता है शुद्ध ब्रह्मका अंश होनेसे जीव भी शुद्ध हुआ फिर उसके पुण्य-पापके संबंधमें विधि निषेधकी क्या आवश्यकता? (बादरायण छुआछूत जात पाँतके कट्टर पक्षपाती हैं इस बारेमें उन्हें कदाचित् कुछ भी सिद्धान्तमें असमंजस है) इसीलिए वह समाधान करते हैं कि देह-संबंधमें विधि निषेधकी जरूरत होती है, जैसे आग एक होनेपर भी अग्निहोत्री ब्राह्मणके घरकी आग ग्राह्य है और श्मशानकी त्याज्य। जीव ब्रह्मका अंश है साथ ही अणु भी है इसलिए एक जीवके भागके दूसरेमें मिल जानेका डर

---

[1] वे० सू० २।३।३३ ४१ [2] बृह० ४।१।१८, तैत्ति० २।५।१
[3] वही० ३।७।२२ [4] वे० सू० २।३।४२ ४८

नहीं है क्योंकि प्रत्येक जीव एक दूसरेसे भिन्न है।

(च) जीव ब्रह्म नहीं है—यद्यपि शरीर शरीरी भावसे बादरायण जीवको ब्रह्मके अन्तर्गत उसका अभिन्न अंश मानते हैं किन्तु जीव और ब्रह्मके स्वरूपमें भेदको साफ रखना चाहते हैं।[1] और (जीव तथा ब्रह्म के) भेदका (उपनिषदोंमें) कथनमें (दोनों एक नहीं हैं)। इस सत्रको बादरायणने पहिले अध्यायमें ही तीन बार दुहराया है। भेदके कहनेमें (ब्रह्म जीवसे) श्रेष्ठ है[2] भी कहा है और अन्तमें[3] मुक्त होनेपर भी जगत बनाने आदिकी बात छोड़ जीव और ब्रह्ममें सिर्फ भोग भरकी समानता होती है। इस पर वह ब्रह्म और जीवकी एकताको किसी अवस्थामें संभव नहीं मानते।

(छ) जीवके साधन—अणु-परिमाणवाले जीवके क्रिया और ज्ञानके साधन ग्यारह इन्द्रियां हैं—चक्षु श्रोत्र, घ्राण जिह्वा त्वक—पांच ज्ञान इन्द्रियां वाणी हाथ पैर मल इन्द्रिय मूत्र इन्द्रिय—पांच कर्म इन्द्रियां और ग्यारहवां मन। ये सभी इन्द्रियां उत्पत्तिमान (=अनित्य) और अणु (=एकदेशी) हैं।[4]

इन ग्यारह इन्द्रियोंके अतिरिक्त प्राण (=श्वास) भी जीवके साधनोंमें है, और वह भी अनित्य तथा अणु है।[5]

(ज) जीवकी अवस्थायें[6]—स्वप्न सुषुप्ति जागरण मूर्छा जीवकी भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं। स्वप्नकी वस्तुयें माया मात्र हैं। स्वप्न ब्रह्मके संकल्पसे होता है तभी तो स्वप्नसे अच्छी बुरी घटनाओंकी पूर्व-सूचना मिलती है। स्वप्नका अभाव सुषुप्तिमें होता है। श्रुतियोंकी अनुस्मृतिसे सिद्ध है कि सुषुप्तिके बाद जागनेवाला पहिला ही आत्मा होता है। मूर्छा आधा मरण है।

---

[1] वे० सू० १।१।८, १।१।२२, १।३।४ [2] वे० सू० २।१।२२
[3] वे० सू० ४।४।१७, २१ [4] वहीं २।४।४ ५ [5] वहीं २।४।१, २।४।६
[6] वहीं २।४।७ वे० सू० ३।२।१-१०

(झ) कर्म—पहिले बतला चुके हैं[1], कि जगत् बनानेमें ब्रह्मको भी जीवके कर्मकी अपेक्षा पड़ती है। वस्तुतः जगतमें—मानव समाजमें—जो विषमता देखी जा रही जिस तरह हजारमें ९९० मनुष्य श्रम करते करते भूखे मरते हैं और १० बिना काम किये दूसरेकी कमाईसे मौज करते हैं जिनको ही देखकर पुरोहितोंने देवलोककी कल्पना की। फिर प्राणि-जगत—मनुष्यसे लेकर सूक्ष्मतम कीटों तक—में जिस तरहका भीषण संघार मचा हुआ है वह जगतके रचयिता ब्रह्मको भारी हृदयहीन क्रूर ही साबित करेगा इससे बचनेके लिए उपनिषदोंने (पूर्वजन्मके) कर्मवाले सिद्धान्तको निकाला। समाजकी तत्कालीन अवस्था—शोषक और शोषित, दास और स्वामी प्रथा—के जबरदस्त पोषक बादरायणने उसे दुहरा दिया। कर्म तो एक समयमें किए जाते हैं फिर उससे पहिले जगत कैसे? इसके उत्तरमें कह दिया[2] कर्म अनादि है।

(ञ) पुनर्जन्म—पुनर्जन्मके बारेमें भी बादरायणने उपनिषदोंके विचारोंको सुव्यवस्थित रूपसे एकत्रित किया है।[3] प्रवाहण जैवलिके पानीके पुरुष रूप धारण करने के उपदेशको सामने रख बादरायण कहते हैं—जब जीव शरीर छोड़ता है तो सूक्ष्म भूतों(=सूक्ष्म शरीर)के साथ जाता है। कृत कर्मोंके भोगके समाप्त हो जानेपर, वह कुछ बचे अनुशय (कर्म)के साथ लौटता है।—बादरायणके पिता बादरिके मतसे उपनिषद्में आये चरण[4] शब्दसे सुकृत दुष्कृत अभिप्रेत हैं जिसके साथ कि परलोकसे लौटा पुरुष इस लोकमें फिरसे जीवन आरम्भ करता है। चन्द्रलोक वही जाते हैं जिन्होंने कि पुण्य किया है। नये शरीरमें आनेके लिए चन्द्रमासे मेघ जल अन्न आदिका जो रास्ता उपनिषद्[5]ने बतलाया है उसमें देरी नहीं होती। जिन धान आदि अन्नोंके साथ हो जीव मातृगर्भ तक पहुँचता है उनमें वह स्वयं नहीं दूसरे जीवके अधिष्ठाता होते समय ऐसा

---

[1] वही २।१।३४ [2] वे० सू० २।१।३४, ३५ [3] वही ३।१।१ २७
[4] छान्दोग्य ५।३।३ [5] छा० ६।१०।७ [6] छां० ५।१०।६

करना है। उस अनाजके खानेके बाद फिर रज-वीर्यका योनिमें संयोग होता है, जिसके बाद शरीर बनता है।

(५) **मुक्ति**[1]—ब्रह्मको प्राप्त हो जीवके अपने रूपमें प्रकट होनेको मुक्ति कहते हैं। जीवका अपना स्वरूप अविद्यासे ढँका रहता है जिसके खोलनेके लिए उपनिषद विद्याकी जरूरत पड़ती है।

(क) **मुक्तिके साधन**—बादरायण विद्या (=ब्रह्मज्ञान)को मुक्तिका खास साधन मानते हैं जिसमें कर्म भी सहायक है।

(a) **ब्रह्म-विद्या**—उपनिषदके भिन्न भिन्न ऋषियोंने ब्रह्मका सत, उदगीथ, प्राण भूमा पुरुष दहर वैश्वानर, आनन्दमय, अक्षर मधु, आदिके तौरपर ज्ञान द्वारा उपासना करनेकी बात कही है इन्हींके नामपर इनके बारेमें किए गए उपदेश सत् विद्या उद्गीथ विद्या प्राण विद्या आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। बादरायण इसी (=विद्या)से पुरुषार्थ (=मोक्ष) की प्राप्ति मानते हैं।[2] जैमिनि पुरुषार्थ (=स्वर्ग)में कर्मकी प्रधानता मानते हैं और विद्याको अर्थवाद,[3] इसके लिए वह अश्वपति कैकेय जैसे ब्रह्मवेत्ताओंका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ब्रह्मवेत्ताओंका यज्ञ करनेका आचार भी देखा जाता है। बादरायण जैमिनिसे मतभेद प्रकट करते हुए कहते हैं[4]—(स्वर्गमें नहीं) अधिक (ब्रह्मके) उपदेशसे (=विद्यासे ही) वैसा (मोक्ष मिलता है)। ब्रह्मवेत्ताके लिए यागादि कर्म करना सर्वत्र नहीं देखा जाता। कोई कोई उपनिषदके ऋषि गृहस्थ आदिके कर्मकाण्डको ऐच्छिक भी बतलाते हैं।[5] और कुछ तो कर्मके क्षयको भी बतलाते हैं।[6] संन्यास (=ऊर्ध्वरेता) आश्रम भी है, जिसमें कर्मकाण्ड नहीं है, तो भी विद्या (=ब्रह्मज्ञान) प्रयुक्त होती है। जैमिनि जरूर ऐसे आश्रमोंको

---

[1] वे० सू० ४।४।१ [2] वे० सू० ३।४।१

[3] वे० सू० ३।४।२-७ और मीमांसा-सूत्र ४।३।१

[4] छां० ५।११।५ [5] वे० सू० ३।४।८ २० [6] बृह० ६।४।१२ मुंडक २।२।८

मानसका स्वीकार करते हैं किन्तु बादरायण इन आश्रमोंको भी श्रुतिपादित होनेसे अनिवार्य स्वीकार करते हैं।

विद्या—ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्म साक्षात्कार रूपी ब्रह्म उपासनासे जीवका अपने स्वरूपमें अवस्थित रूपी मुक्ति होती है यह कह चुके। लेकिन सब उद्गीथ प्राण आदि विद्याएं अनेक हैं इसलिए भ्रम हो सकता है, कि इनके उपासनाके विषय (=उपास्य) भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं। बादरायण इसका समाधान करते हुए सभी विद्याओंका एक ब्रह्मपरक मानते हैं।[1]

(b) **कर्म**—विद्या (=ब्रह्मज्ञान)की प्रधानताको मानते हुए भी बादरायण यज्ञ आदि कर्मकाण्डको कितने ही उपनिषदके ऋषियोंकी भांति तुच्छ नहीं समझते बल्कि कर्मवाले गृहस्थ आदि आश्रमोंमें वह अग्निहोत्र आदि सारे कर्मोंको विद्या (=ब्रह्मज्ञान)में जरूरत समझते हैं,[2] ज्ञानीको शम-दम आदिसे युक्त भी होना चाहिए। कर्म ठीक है किन्तु ब्रह्मविद्याके साथ वह बलवत्तर होता है।[3]

यज्ञ-याग आदि श्रेष्ठ कर्म ही नहीं खानपान सबंधी छूतछातके नियमोंसे भी बादरायण ब्रह्मवादीको मुक्त करनेके लिए तयार नहीं हैं, हाँ, प्राणका भय हो, तो उपस्ति चाक्रायणकी भांति सबके (हाथके) अन्नको खानेकी अनुमति देते हैं किन्तु जानबूझकर करनेकी नहीं। आश्रम (=गृहस्थ आदि)के कर्तव्य (=धर्म)को ब्रह्मज्ञानीके लिए भी ब्रह्मविद्याके सहकारीके तौरपर कर्तव्य मानते हैं।[4] हां वह आपत्कालमें नियमोंको शिथिल करनेके लिए तयार हैं किन्तु आश्रमहीन रहनेसे आश्रममें रहनेको बहतर बतलाते हैं।[5]

---

[1] वे० सू० ३।३।१४ [2] वे० सू० ३।४।२६ २७, बृह० ६।४।२२
[3] "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।"
[4] वे० सू० ४।१।१८ [5] वे० सू० ३।४।२८ ३१
वहीं ।४।३२ ३५ [6] वहीं ३।४।३६

(c) उपासनाके ढंग—भिन्न भिन्न विद्याओंसे ब्रह्मकी उपासना किस तरह की जाय, यह उपनिषदके प्रकरणमें हम बतला चुके हैं। आत्मामें ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए, ब्रह्मसे भिन्न पदार्थों (=प्रतीक—मूर्ति आदि) में ब्रह्मकी उपासना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह (=प्रतीक) ब्रह्म नहीं है।

आसनमें बैठकर शरीरको अचल रख ध्यानके साथ जहाँ चित्तकी एकाग्रता हो, वहाँ ब्रह्मोपासना करनी चाहिए।[1]

विद्या (=ब्रह्मोपासना) की आवृत्ति यावज्जीवन करते रहना चाहिए।[2]

(ख) मुक्तकी अन्तिम यात्रा—ब्रह्मविद्याके प्राप्त हो जानेपर भोगोन्मुख न हुए पहिले और पीछेके पाप-पुण्य विनष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मवेत्ताको नहीं लगते।[3] किन्तु जो पुण्य पाप भोगोन्मुख (=प्रारब्ध) हो गए हैं, उन्हें भोगकर मोक्षको प्राप्त करना होता है। इस तरह संपूर्ण कर्मराशिको नष्ट कर मुक्त जीव निम्न क्रमसे शरीर छोड़ता है[4]—वाणी मनमें लीन होती है, मन प्राणमें, प्राण जीवमें और वह महाभूतोंमें। इस साधारण गतिसे मुक्तिकी गतिमें विशेषता यह है—ब्रह्मविद्याके सामर्थ्यसे सौ ऊपर मस्तककी नाड़ियोंमेंसे मूर्धाजाती नाड़ी द्वारा जीव अपने आसन हृदयको छोड़ निकलता है, फिर सूर्य किरणका अनुसरण करते हुए आगे प्रस्थान करता है। चाहे रात हो या दक्षिणायन, किसी वक्त मरनेपर मुक्त पुरुषकी मुक्तिमें बाधा नहीं।

मुक्त पुरुषको मरनेके बाद एक दूरस्थकी यात्रा करनी पड़ती है, यह उपनिषदमें हम देख आए हैं। उपनिषदकी बिखरी सामग्रीको जमाकरके बादरायणने खगोलकी कल्पना की है। क्रमशः अर्चि (=किरण) दिन-शुक्लपक्ष-उत्तरायण-संवत्सर-सूर्य-चन्द्र-विद्युत (=बिजली) तक मुक्त पुरुष

---

[1] वे० सू० ४।१।७-११ [2] वही ४।१।१,१२
[3] वहीं ४।१।१३-१५ [4] वहीं ४।१।१६
वहीं ४।२।१-५, १४ [5] वहीं ४।२।१६-१९

जाता है। वहाँ अ-मानव पुरुष आ उस मुक्त पुरुषको ब्रह्मके पास लेजाता है।[1] बृहदारण्यकमें कहा है जब पुरुष इस लोकसे प्रयाण करता है तो वायुको प्राप्त करता है। उसके लिए वहाँ छेद ऊपर रहता है और सूर्यमें पहुँचता है। इसी तरह पाठकोंको ठीकसे बतलाते बादरायणने संवत्सरसे वायुमें जाना बतलाया।[2] इसी तरह कौषीतकिके पाठको जानते हुए विद्वत्तानुसार ऊपर वरुण लोकमें जानेकी बात कही। इस प्रकार उपरोक्त रास्ता हुआ—अर्चि-दिन-शुक्लपक्ष-उत्तरायण-संवत्सर-वायु-सूर्य-चन्द्र-वरुण (अमानव पुरुष) ब्रह्मलोक। गार्गी बादरायण अपनेसे हजार वर्ष पहिलेके ज्योतिष-ज्ञानको कदाच करीब अक्षुण्ण मानते हुए लगोलमें वायुलोकमें भय उसके आगे चन्द्र, उसके आगे वरुण उसके आगे ब्रह्मलोकको मानते हैं। ब्रह्म और ब्रह्मलोक तकका ज्ञान इन ऋषियोंके बाँयें हाथका खेल था, मगर वास्तविक विश्वके ज्ञानमें हजारोंकी संख्यामें पिछड़ जाती थी।

(ग) मुक्तका वैभव—मुक्त जीव ब्रह्मको जब प्राप्त होता है, तो उससे जुदा हुए बिना रहता है। उसके बारे उस जीवके रूपके बारेमें जैमिनिका कहना है कि वह ब्रह्मवान रूपके साथ होता है औडुलोमि आचार्य कहते हैं कि वह चैतन्यमात्र स्वरूपवाला होता है। बादरायण इन दोनों मतोंमें विरोध नहीं पाते।

मुक्तकी भोग-सामग्री उसके संकल्पमात्रसे प्राप्त उपस्थित होती है, इसलिए वह अपना स्वामी आप है।[3]

"ब्रह्मके पास रहते मुक्तका शरीर होता है या नहीं?—इसके बारेमें बादरि नहीं कहते हैं, जैमिनि उसका सद्भाव मानते हैं, बादरायण कहते हैं—शरीर नहीं होता और संकल्प करते ही वह आ मौजूद भी होता है। शरीरके अभावमें स्वप्नकी भाँति वह ईश्वर प्रदत्त भोगोंको भोगता है और

---

[1] छा० ४।१५।३ [2] बृह० ७।१०।१
[3] वे० सू० ४।३।२ कौषी० १।३ [4] वे० सू० ४।४।४ ७
[5] वे० सू० ४।४।८ ९ वहीं ४।४।१० १४

शरीरके मौजूद होनेपर जाग्रत अवस्थाकी तरह।

मुक्त जीव फिर जन्म आदिमें नहीं पड़ता ब्रह्मके पासमें फिर उसका लौटना नहीं होता।[1]

मुक्त ब्रह्मकी भाँति सृष्टि नहीं बना सकता, उसकी ब्रह्मसे सिर्फ भोगकी समानता होती है, यह बतला चुके हैं।

(६) वेद नित्य हैं—यद्यपि बादरायण जैमिनिकी भाँति वेदको अपौरुषेय (किसी भी पुरुष—जीव या ब्रह्म—द्वारा न बनाया) नहीं मानते, किन्तु वेदको नित्य मनवानेकी उनको भी बहुत फिक्र है। वह समझते हैं, कि यदि वेद भी दूसरे शास्त्रोंकी भाँति अनित्य साबित हो गए, तो युक्ति-तर्कके बलपर सांख्य वैशेषिक न्याय बौद्ध जैन तार्किकोंके सामने अपने पक्षको नहीं साबित कर सकेंगे। ब्रह्मकी उपासना करनेके लिए मनुष्यके वास्ते अपने हृदयमें अंगुष्ठ मात्र ब्रह्मको उपनिषदमें बतलाया गया।[2] इसी प्रकरणमें देवताओंकी भी चर्चा चल गई[3] और बादरायणने कहा—मनुष्यके ऊपरवाले देवता भी ब्रह्मकी उपासना करते हैं क्योंकि यह (बिलकुल) संभव है। इस प्रकार तो देवता साकार साबित होंगे फिर एक ही इन्द्र एक ही समय अनेक यज्ञोंमें कैसे उपस्थित हो सकता है? उत्तर है—वह अनेक रूप धारण कर सकता है। इन्द्र जैसे शरीरधारी अनित्य देवताका नाम वेदमें आनेसे वेद भी अनित्य होगा यह शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन्द्रने वेदसे इस शब्दको नहीं लिया, बल्कि वेदके शब्दसे इन्द्रको यह नाम मिला, इसीलिए वेद नित्य है। इन्द्र आदिके एक ही नाम और रूपवाले होनेसे उनकी बार-बार आवृत्ति होते रहनेसे भी वेदकी नित्यतामें कोई क्षति नहीं।

(७) शूद्रोंपर अत्याचार—बादरायणके छुआछूतके पक्षपातकी बात अभी हम बतला आए हैं। वर्णाश्रम धर्मपर उनका बहुत जोर था।

---

[1] वे० सू० ४।४।१९, २२ [2] वे० सू० १।३।२४
[3] वहीं १।३।२५ २९ [4] वहीं ३।४।२८ ३१

[illegible] सर्वप्रथम उनके विचारोंका हम आगे नहीं [illegible] सकते [illegible]। वास्तवमें ब्रह्मविद्याका काम [illegible] रहा था। वह वानप्रस्थीय [illegible] वाला वह [illegible] ब्रह्मचर्य [illegible] विचारोंका प्रचार करना चाहते [illegible] उसी अवस्थामें भारतीय मानवोंमें [illegible] समझ जानेवालोंके प्रति अधिक [illegible] आशा की जा सकती थी। किन्तु नहीं वानप्रस्थीय जन [illegible] प्रचार [illegible] मनोरथ कर रहे थे।

(क) वानप्रस्थीकी दुनिया— [illegible] आर्य आये, उन्होंने पहिले [illegible] दस्युओंको पराजित किया। फिर [illegible] और परस्पर [illegible] उन्होंने [illegible] और समाजमें नाना [illegible] स्वीकार करनेके लिए मजबूर किया। [illegible] समय तक रह जानेपर रक्त मिश्रण (=वर्णसंकरता) होने लगा। आर्यकि [illegible] दृढ़ [illegible] अनार्यकि [illegible] पड़ गिरे। बुद्ध जैसे [illegible] और धार्मिक [illegible] इसका [illegible] समर्थन किया। [illegible] तक वर्णभेद पर प्रहार हुआ—[illegible] कम प्रभुता और [illegible] मालिक [illegible] जाने वालोंके लिए वह [illegible] तेजाब दूर [illegible] लगा। ई० पू० चौथी शताब्दी यवन, [illegible] जट्ट गुर्जर आभीर जैसी [illegible] विदेशी भारी जातियाँ भारतमें आकर बस [illegible]। उन सबको भारतीय सामाजिक व्यवस्थामें उनको क्या स्थान दिया जाय—यह भारी प्रश्न था। वर्ण-व्यवस्था बिखरियाँ—बौद्धों—[illegible] अपना नुसखा [illegible] उन्हें अपना वर्ग (=शासक शासित)-[illegible] किन्तु वर्णहीन समाजकी कल्पनाको पूरा करनेके लिए [illegible] आगन्तुकोंपर प्रभाव डालना चाहा और उसमें कुछ सीमा तक उन्हें सिर्फ इसी बातमें सफलता हुई कि उनमें कितने ही अपनेको बौद्ध कहने लगे [illegible] और [illegible] गुहा विहारोंमें [illegible] लगे। किन्तु ब्राह्मण भी अपने आसपासकी इन घटनाओंको [illegible] बिना [illegible] हुए नहीं रह सकते थे। उन्होंने वर्ण संहारकके विरुद्ध अपने वर्णप्रत्यय हथियारका इस्तेमाल शुरू किया — बौद्ध तो गोरे सुन्दर वीर शासक लोगोंको वर्णहीन बना चाण्डालोंकी श्रेणीमें रखना चाहते हैं हम तो उनके उच्च वर्ण होनेको स्वीकार करते हैं। ये आगन्तुक क्षत्रिय जातियाँ हैं जो कि ब्राह्मणोंके [illegible] न करनेसे

म्लेच्छ हो गई थी अब ब्राह्मण बनाने हुआ इस बात्रें संस्कारके द्वारा फिर क्षत्रिय बनाते हैं इन्हें चाण्डालोंके बराबर करना ठीक नहीं। जाबाल अन्तमें ब्राह्मणोंका भी जवदस्त निकला। एक ओर इन आगन्तुकोंको क्षत्रिय, कुछको ब्राह्मण भी बनाया गया दूसरी ओर अपनी उच्चवर्ण भक्तिको और पक्की साबित करनेके लिए शूद्रोंके लिए अत्याचार और अपमानकी मात्रा और बढ़ा दी। इस समयके ऋषियोंमें ये प्रातःस्मरणीय वेदान्त सूत्रकार भगवान् बादरायण।

(ख) प्रतिक्रियावादी वर्गका समर्थन— रैक्वके पास भारी भटके साथ ब्रह्मविद्या सीखनेके लिए जानेपर जानश्रुति पौत्रायणको गाड़ीवाले रैक्वने पहिले हटाते शूद्र[1] इन सबको[2] कहा फिर पौत्रायणको ब्रह्मविद्या भी बतलाई[3] जिससे जान पड़ता है शूद्रको भी ब्रह्मविद्याका अधिकार है। बादरायण ब्रह्मविद्यासे शूद्रका अधिकार न मानते हुए सिद्ध करते हैं कि पौत्रायण शूद्र नहीं था, इसीसे इतना दाना देनेपर भी अपने लिए अनादर, रैक्वके लिए प्रशंसाके शब्द सुनकर तथा रैक्वके पास एकसे अधिक बार दौड़नेसे पौत्रायणको शोक हुआ था इसीलिए शोकसे दौड़नेवाला (=शुक्र) इस अर्थमें रैक्वने उसे शूद्र कहा था। छान्दोग्यके उस प्रकरणसे पौत्रायणके क्षत्रिय होनेका पता लगता है। उसी प्रकरणमें रैक्वके वायु ही संवर्ग (=मन कारण) है इस संवर्ग विद्याके सीखनेवालोंमें शौनक कापेय, अभिप्रतारी काक्षसेनि तथा एक ब्रह्मचारीकी बात आती है जिनमें शौनक और ब्रह्मचारी ब्राह्मण थे और अभिप्रतारीके क्षत्रिय सिद्ध होनेमें दूसरे प्रमाण हैं।—कापेय (=कपि-गोत्री) पुरोहित चित्ररथका यज्ञ कराते थे[4] और चित्ररथ नामक एक क्षत्रपति (=क्षत्रिय) पर

---

[1] वे० सू० १।३।३३ ३९ भाष्य।

[2] छा० ४।२।५, देखो पृष्ठ ४८० भी।

[3] "एतेन च चित्ररथ कापेया अयाजयन"—ताण्ड्य ब्राह्मण २।१२।५

हुआ था [1]। यूरोपियोंका [illegible] चक्रवर्ती क्षत्रिय था और यहाँ गौतम कापेय अभिप्रतारी काशिराजके साथ ब्रह्मविद्या सीख रहा है, इसलिए यहाँ भी पुरोहित यजमान-राजा गौतम और अभिप्रतारी [illegible] ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं। इस तरह गोत्रवाले [illegible] ब्रह्मविद्याको सीखनेवाले दो ब्राह्मणोंके अतिरिक्त तीसरा क्षत्रिय ही है, फिर पौत्रायण शूद्र होगा यह संभव नहीं। सत्यकाम जाबालके बापका ठिकाना न था, उसको कैसे हारिद्रुमत गौतमने ब्रह्मविद्या सिखाई ?[2] इसका उत्तर बादरायणकी ओरसे यह दिया गया, तेरा उपनयन करूँगा' कहनेसे साफ है कि हारिद्रुमतने उसे ब्राह्मण समझा, क्योंकि शूद्रको उपनयनका 'अभाव (मनुने) बतलाया है — शूद्रका पातक नहीं, उसे (उपनयन आदि) संस्कारोंका अधिकार नहीं।'[3] यही नहीं सत्यकामके अब्राह्मण (=शूद्र) न होनेके निर्धारणकी भी हारिद्रुमत गौतमने कोशिश करते हैं—'अब्राह्मण ऐसे (साफ साफ अपने अनिश्चित पितृत्वका) नहीं कह सकता।' इससे भी साफ है कि ब्रह्मविद्यामें शूद्र ('अब्राह्मण ?)का अधिकार नहीं। शूद्रका वेदके सुनने पढ़नेका निषेध श्रुतिमें मिलता है— शूद्र श्मशान सा है इसलिए उसके समीप (वेद) नहीं पढ़ना चाहिए शूद्र बहुत पशु और (धन) वाला भी हो तो भी वह यज्ञ करनेका अधिकारी न है।[4] यही नहीं स्मृति भी इसका निषेध करती है— 'उस (=शूद्र)का पानी वेद सुनते या (पिघला) सीसे और लाखसे उसके कानको भरना चाहिए (वेदका) पाठ करनेपर उसकी जिह्वाको काटना चाहिए, याद (=धारण) करनेपर (उसके) शरीरको

---

[1] "चक्रवर्ती नामक क्षत्रपतिरजायत।'—शतपथ-ब्राह्मण ११।५।३।१३

[2] छा० ४।४।१ ५, देखो पृष्ठ ३७२ [3] मनुस्मृति १०।१२६

"पशु हवा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्'।

[4] 'तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीय।'

काट देना चाहिए।"[1]

(ग) बादरायणीयोंका भी यही मत—ब्रह्मज्ञानका फिलासफीने भी वर्ग-स्वार्थपर आधारित वर्ण-व्यवस्थाके नामसे शूद्रों (किसी समय स्वतन्त्र फिर आर्य-समाज-बहिष्कृत पराजित दास और तब कितने ही बादरायणोंकी नसोंमें अपना खून तक दौड़ानेवालों)के ऊपर होते शुद्ध सामाजिक अत्याचारको नरम करनेकी तो बात ही क्या उसे और पुष्ट किया। बादरायणके ब्रह्मज्ञानने धर्मसूत्रकर्ता गौतमकी कठोर आज्ञाको—नरम करना तो अलग उसे—आदेशवाक्य बनाया। शंकरके सारे अद्वैतवादने गौतमकी इन क्रूर पंक्तियोंके एक भी वज्राक्षरको विचलित करनेकी हिम्मत न की। रामानुजके गुरु तथा परदादा-नगड़दादा गुरु स्वयं अतिशूद्र थे, तो भी वेदान्त भाष्य करते वक्त वह धर्मसूत्रकार गौतम बादरायण और शंकरसे भी आगे रहनेकी कोशिश करते हैं। "शूद्रको अधिकार नहीं" इस प्रकरणके अन्तिम सूत्र[2]पर उनका भाष्य तीन सवातीन पंक्तियोंमें समाप्त होता है, किंतु उसके बाद ४२ पंक्तियोंके एक लच्छेदार व्याख्यानमें रामानुजने उसे वर्ण-व्यवस्था विरोधी आदि बतलाकर शंकरके दर्शन (मायावाद)पर आक्षेप करते हुए अपने (विशिष्टाद्वैत) दर्शनके द्वारा वास्तविक शूद्र अनधिकार सिद्ध किया है। "जो (शंकर आदि)—(सब विशेषण रहित अद्वैत) चेतनामात्र (स्वरूपवाले) ब्रह्मको ही परमार्थ (=वास्तविक तत्त्व), और सब (=जीव जगत)को मिथ्या और (जीवके) बंधको अवास्तविक कहते हैं", वह 'ब्रह्मज्ञानमें शूद्र आदिका अधिकार नहीं'—यह नहीं कह सकते। तर्ककी सहायतासे प्रत्यक्ष और अनुमान (प्रमाण)से भी (उस तरहके ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर) शूद्र आदि भी मुक्ति पा जायंगे। इसी तरह ब्राह्मण आदिको भी ब्रह्मविद्या मिल जायगी

---

[1] "अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः।"—गौतम धर्मसूत्र २।१२।३

[2] "स्मृतेश्च"—वे० सू० १।३।३९

६ दूसरे दर्शनोंका खण्डन

[illegible] उत्तरमें [illegible] दिया [illegible] किन्तु साथ ही उन्होंने दूसरे [illegible] सैद्धान्तिक निर्बलताओंका [illegible] किया है। इस [illegible] सांख्य और योग का [illegible] जिनके मत कर्ता—कपिल—को उस काल तक ऋषि माना जा चुका था [illegible] कपिलोक्त होने [illegible] मतमें [illegible] दिखाई गई थी। पातञ्जल और पौराणिक सम्प्रदाय आर्योंके आनेके पहिले आर्यावर्त धर्मों और परम्पराओंका उपज थे [illegible] ईश्वरवादी होनेपर भी अन्य ऋषि प्राप्त होनेसे उन्हें वैदिक आर्योंमें सम्मान [illegible] नहीं दिया जाता था। यद्यपि बौद्ध और जैन अन्य ऋषि प्राप्त तथा अनीश्वरवादी होनेसे ब्राह्मण जगत् आस्तिकोंके लिए और भी घृणास्पद थे

क. ऋषिप्रोक्त विरोधी दर्शनोंका खंडन

(१) **सांख्य-खंडन**—कपिलके सांख्य दर्शन और उसके प्रकृति (=प्रधान) तथा पुरुषके सिद्धान्तके बारेमें हम कह चुके हैं। उपनिषदके ब्रह्मकारणवादसे सांख्यका प्रधानकारणवाद कई बातोंमें उलटा था। बादरायण कारणसे कार्यको विलक्षण मानते थे जब कि सत्कार्यवादी सांख्य कार्य कारणका स-लक्षण=अभिन्न मानता था। सांख्यका पुरुष निष्क्रिय था जब कि वेदान्तका पुरुष सक्रिय। सांख्यके संस्थापक कपिलको श्वेताश्वतर उपनिषद तकने ऋषि मान लिया था, इसलिए शब्द प्रमाणको अंधाधुंध माननेवाले बादरायण जसोंके लिए भारी दिक्कत थी, ऊपरसे सांख्यवाले—यदि सब नहीं तो उनकी एक शाखा अपनेको वेद माननेवाला—अतएव उपनिषद्के वाक्योंसे पुष्ट करनेके लिए तत्पर दीख पड़ते थे। बादरायणने यह बतलानेकी कोशिश की[1] है कि उपनिषद न सांख्यके प्रधान (=प्रकृति)को मानती है और नहीं उसके निष्क्रिय पुरुषको। साथ ही सांख्य अपने दर्शनको सिर्फ शब्द प्रमाणपर ही आधारित नहीं मानता था वह उसके लिए युक्ति तर्क भी देता था जिसका उत्तर देते हुए बादरायण कहते हैं[2]—

अनुमान (-सिद्ध प्रधानको मानना युक्तिसंगत) नहीं है क्योंकि (जड होनेसे विश्वकी विचित्र वस्तुओं)की रचना (उससे) सम्भव नहीं है, और (न उसमें प्रधानकी) प्रवृत्ति (ही हो सकती है)। (जड) दूध जैसे (दही बन जाता), पानी जैसे (बर्फ बन जाता है वैसे ही बिना चेतन ब्रह्मकी सहायताके भी प्रधान विश्वका बना सकता है, यह कहना ठीक नहीं) क्योंकि वहां भी (बिना ब्रह्मके हम दही, हिमकी रचना सिर्फ दूध और जलसे नहीं मानते)। तृण आदि जैसे (गायके पेटमें जा दूध बन जाते हैं वैसे ही प्रधानसे भी विचित्र विश्व बन जाता है, यह भी कहना

---

[1] ब० सू० १।४।१ २२ [2] वहीं २।२।१ ९ भाष्यार्थ।

[illegible] नहीं ?) क्योंकि (गायमें) अचेतन (तथा आदिका दूध बनना) नहीं (देखा जाता)। यदि (कहो—जड़ अंधा और पंगु) पुरुष (और और, परस्पर होने भी पर दूसरेका सहायतासे चलने और देखनेकी क्रियाको कर सकते हैं अथवा जैसे लोहा तथा चुम्बक पत्थर दोनों स्वतः निष्क्रिय होने भी एक दूसरे की समीपतासे चल सकते हैं, उसी तरह प्रकृति और पुरुष स्वतन्त्र रूपसे निष्क्रिय होते हुए भी एक दूसरेकी समीपतासे विश्व वैचित्र्य पैदा करनेवाली क्रियाको कर सकते हैं)। (उत्तर हैं—) तब भी (गति संभव नहीं क्योंकि प्रकृति और पुरुषकी समीपता आवश्यक नहीं नित्य बनती है फिर तो सिर्फ गति ही निरन्तर होती रहेगी, किन्तु वस्तुके निर्माणके लिए गति और गति रोध दोनों चाहिए)। (सत्त्व, रज तम, गुणोंके अंग तथा) अंगीपन (की कभी कभी मानने) से भी (काम नहीं) चल सकता (क्योंकि सदैव पुरुषके पास उपस्थित प्रकृतिके इन तीन गुणोंमें कभी-कभी करनेवाला कौन ? जिससे कि कभी सत्त्वकी अधिकतासे हल्कापन और प्रकाश प्रकट होगा कभी रजकी अधिकतासे चलन और स्तम्भन होगा और कभी तमकी अधिकतासे भारीपन तथा निष्क्रियता आ मौजूद होगी ?)।

यदि प्रधानको मान भी लिया जाय तो भी उससे कोई मतलब नहीं (क्योंकि पुरुष—जीव—तो स्वतः निष्क्रिय निर्विकार चलते हैं प्रधानके कार्यके कारण उसमें कोई खास बात नहीं होगी।) फिर सांख्य सिद्धान्त परस्पर विरोधी भी है—वहाँ एक ओर पुरुषके मोक्षके लिए प्रकृतिका रचना परायण होना बतलाया जाता है[1] और दूसरी जगह यह भी कहा जाता है,[2]—न कोई बद्ध होता न मुक्त होता है न आवागमनमें पड़ता है।

(२) योग-खंडन—सांख्यके प्रकृति, पुरुषमें पुरुष विशेष ईश्वरके जोड़ देनेसे वह ईश्वरवादी (सेश्वर) सांख्य-दर्शन हो जाता है यह बतला

---

[1] सांख्यकारिका ५७ [2] वहीं ६२

आए हैं। बादरायणको योगके खंडनके लिए ज्यादा परिश्रमकी जरूरत न थी क्योंकि सांख्य-सम्मत प्रधान, तथा पुरुषके विरुद्ध दी गई युक्तियां यहाँ काम आ सकती थीं। योग ईश्वरको विश्वका उपादान कारण (=प्रकृति) नहीं मानता था बादरायणने[1] उपनिषदके प्रमाणसे उसे निमित्त उपादान कारण सिद्ध कर दिया। ईश्वर (=ब्रह्म) जगतके रूपमें परिणत होता है, यह उसकी विचित्र शक्तिका बतलाना है और वह योग-सम्मत निर्विकार ईश्वर नहीं है।

प्रश्न उठता है उपनिषद[2]ने जिस कपिलको ऋषि कहा है उसके प्रतिपादित सांख्यका खंडन करके हम स्मृति (=ऋषि-वचन)की अवहेलना करते हैं। उत्तर है[3]—यदि हम उसे मानते हैं, तो दूसरी स्मृतियों (=ऋषिवाक्यों)की अवहेलना होती है। इसी उत्तरसे बादरायणने योग दर्शनकी ओरसे उठनेवाली शंकाका भी उत्तर दे दिया है।[4]

ख अन्-ऋषिप्रोक्त दर्शन-खंडन

पाशुपत और पांचरात्र ऐसे दर्शन हैं यह बतला चुके हैं।

(क) ईश्वरवादी दर्शन—

(१) पाशुपत-खंडन—शिवका नाम पशुपति है। यद्यपि शिव वैदिक (आर्य) शब्द है किन्तु शिव-पूजा जिस लिंग (=पुरुष जननेन्द्रिय चिह्न)को सामने रखकर होती है, वह मोहन्-जो-डरो काल (आजसे ५००० वर्ष पूर्व)के अन् आर्यकि वक्तसे चली आती है, और एक समय था जब कि इसी लिंग (=शिश्न) पूजाके कारण अन् आर्योंको शिश्नदेव कहकर अपमानित भी किया जाता था, किन्तु इतिहासमें एक वक्त

---

[1] वे० सू० १।४।२३ २७

[2] श्वेताश्वतर ५।२—"ऋषिं प्रसूतं कपिलम्"।

[3] वे० सू० २।१।१

[4] "एतेन योगः प्रत्युक्तः"—वे० सू० २।१।३

अन्य [illegible] जानवाला बात दूसरे बात सम्मानकी हो जाय यह दूषण नहीं [illegible]। यही लिंग पूजा धर्म [illegible] पाशुपत (=शैव) [illegible] दिखाई हुआ और उसने अपने दार्शनिक सिद्धान्त भी तैयार किए। आजके वे यद्यपि पूजामें पाशुपतोंके उत्तराधिकारी हैं, किंतु [illegible] में वे शंकरके मायावादी अद्वैतवादका अनुसरण करते हैं। बादरायणके समय उनका अपना एक [illegible] था जिसके खंडनमें उन्हें चार सूत्रोंकी रचना करनी पड़ी।[1]

पाशुपत आगमोंके आयसमाजियोंकी भाँति त्रैतवाद—जीव (=पशु) जगत् और ईश्वर (=पशुपति)—को मानते थे। वह कहते थे—जिनमें पशुपति जगत्का निमित्त कारण है, फिर वह वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्मकी भाँति निमित्त और उपादान दोनों कारण नहीं है।

बादरायणने पाशुपत दर्शनपर पहिला आक्षेप यह किया कि वह '(वेद) संगत नहीं है' (=असामञ्जस्य)। (घट या घर रूपी कार्यका जैसे कोई देवदत्त अधिष्ठाता होता है वैसे ही जगत्का भी कोई अधिष्ठाता है इस तरह अनुमानसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती। क्योंकि (निराकार ईश्वरका) अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं हो सकता। (निराकार जीव) जड़ (इन्द्रिय, शरीर आदि) साधनों (का अधिष्ठाता है वैसे ही पशुपति भी है) यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि जीवको अधिष्ठाता होना पड़ता है (फल) भोगादिके कारण (कर्म-बंधन मुक्त पशुपतिके लिए न फल भोग है न उसके कारण शरीर धारणकी जरूरत पड़ सकती है)। और (यदि पाशुपतिके भोगादिको मान लिया जाये, तो उसे) अन्तवान और अ-सर्वज्ञ (मानना पड़ेगा)।

(२) पाँचरात्र खंडन—पाशुपत मतकी भाँति पाँचरात्र मतका भी स्रोत अति प्राचीन भारतका पुराना काल है। पाशुपतने शिव और शिवलिंगको अपना इष्ट देव माना पाँचरात्रोंने विष्णु—भगवान्—वासुदेवको अपना

---

[1] वहीं २।२।३५ ३८

इष्ट बनाया, और इसीलिए इन्हें वैष्णव और भागवत भी कहते हैं। शिवकी लिंग-मूर्ति मोहन जो दड़ो काल तक जरूर जाती है किन्तु शिवकी मूर्ति उतनी पुरानी नहीं मिलती। वासुदेवकी मूर्तियोंकी कथा ईसा पूर्व चौथी सदी तक तथा मूर्तियोंके प्रस्तरखंड ईसा-पूर्व तीसरी सदी तकके मिलते हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदीमें भगवान वासुदेवके सम्मानमें एक यूनानी (हेलियोदोर) भागवत द्वारा खड़ा किया पाषाण-स्तम्भ आज भी भिलसा (ग्वालियर राज्य)में खड़ा है।

भागवत धर्मके मूल ग्रंथको ही पंचरात्र कहते हैं जो कि एक पुस्तक न हो कई पुस्तकोंका संग्रह है। इनमें अहिर्बुध्न्य पौष्कर सात्वत परम-संहिता जैसे कुछ ग्रंथ अब भी प्राप्य हैं। जिस तरह पाशुपतोंकी पूजा और धर्म आज शैवोंकी पूजा और धर्मके रूपमें परिणत मिलते हैं यद्यपि दर्शन बिलकुल नया है उसी तरह पांचरात्र भागवत धर्म आजके विष्णु पूजक वैष्णव धर्मके रूपमें मौजूद है यद्यपि यह गुप्तकाल—अपने वैभवके समय—में जितना बलवान था उससे आज कहीं ज्यादा बलवान हुआ है। तो भी आजके अनेक वैष्णव मतोंमें रामानुजका वैष्णव मत अभी पंचरात्र आगमको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है, और एक तरहसे उसका उत्तराधिकारी भी है। कैसी विडंबना है? उसी सम्प्रदायके एक महान सारथी रामानुज बादरायणके द्वारा पांचरात्र मतपर किए गए प्रहारका अनुमोदन करते हैं और पांचरात्र दर्शनकी जगह बादरायणके दर्शनको स्वीकार करते हैं।

पाँचरात्र ज्ञानके अनुसार[1] वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध क्रमशः ब्रह्म, जीव, मन और अहंकारके नाम हैं।—ब्रह्म (=वासुदेव)से जीव (=संकर्षण) उत्पन्न होता है, उससे मन और उससे अहंकार। इस

---

[1] "परमकारणात् परब्रह्मभूतात् वासुदेवात् संकर्षणो नाम जीवो जायते, संकर्षणात् प्रद्युम्नसंज्ञं मनो जायते, तस्माद् अनिरुद्धसंज्ञाऽहंकारो जायते"—परमसंहिता।

सिद्धान्तका खंडन करते हुए बादरायण कहते हैं[1]—

(यदि [illegible]) उत्पत्ति संभव नहीं। (अतः [illegible]) और [illegible] नहीं [illegible] (इसलिए जीव [illegible] मनकी [illegible] [illegible]) । हाँ, यदि (वायुकी) आदि विकार [illegible] (सिद्ध [illegible]) तो (पंचभूतोंके) उस (गुण)का [illegible] नहीं। [illegible] विरोधी (अनादि) [illegible] भी [illegible]) ।

(ख) अनीश्वरवादी दर्शन खंडन—

[illegible] पाठ करनेकी भाँति [illegible] किया गया किन्तु बादरायणके [illegible] (३०० ई०) [illegible] हुए इतना समय नहीं हुआ था कि वह [illegible] [illegible] । [illegible] बौद्ध और [illegible] [illegible] [illegible] दर्शनका विरोध उस [illegible] [illegible] था इसलिए उसकी ओर ध्यान [illegible] जरूरत नहीं पड़ी।

(१) वैशेषिक दर्शनका खंडन—[illegible] परमाणुओं [illegible] परिमंडल—[illegible]—[illegible] और कहते हैं कि यदि [illegible] परमाणु [illegible] मिलकर ह्रस्व (=छोटा) परिमाणवाले द्व्यणुक [illegible] बनाते हैं। इन्हीं ह्रस्व-परिमंडलोंके योगसे महत् (=बड़े) और दीर्घ परिमाणवाली वस्तुओंकी उत्पत्ति होती तथा जगत् बनता है। बादरायण कहते हैं[2]—(वैशेषिक कारणके गुणके अनुसार कार्यके गुणकी उत्पत्ति मानता है फिर अवयव रहित परमाणुसे सावयव ह्रस्व द्व्यणुककी उत्पत्ति संभव नहीं) और (महत् दीर्घ परिमाणसे रहित) ह्रस्व तथा परिमंडल (द्व्यणुक [illegible])से (आगे) महत् दीर्घ (परिमाण) वाले (पदार्थोंकी उत्पत्ति संभव नहीं) ।

---

[1] वे० सू० २।२।३९-४२ [2] वे० सू० २।२।१०

जड परमाणु वस्तुओंका उत्पादन तभी कर सकते हैं जब कि उनमें क्रिया (=गति) हो। कणादके मतसे जगतकी उत्पत्तिके लिए अदृष्ट[1] (=अज्ञात नियम)की प्रेरणासे परमाणुमें कर्म (=क्रिया) उत्पन्न होता है, जिससे दो परमाणु एक दूसरेसे संयोग कर द्व्यणुकका निर्माण करते हैं और साथ ही अपने कर्म (=क्रिया)को भी उसमें देते हैं। यही सिलसिला आगे चलता जगतको निर्माण करता है। प्रश्न उठता है—परमाणुमें जो आदिम क्रिया (=कर्म) उत्पन्न होती है क्या वह परमाणु (=जड)के अपने भीतरके अदृष्टसे उत्पन्न होती है या आत्मा (=चेतन)के भीतरसे? बादरायण कहते हैं[2]— दोनों तरहसे भी कर्म (संभव) नहीं। क्योंकि अदृष्ट एवं जड़के कर्मसे उत्पन्न होना है। आत्माके किए कर्मका अदृष्ट परमाणुमें कैसे जायगा? और परमाणुओंमें क्रियाके बिना जगत ही नहीं उत्पन्न होगा, फिर आत्मा कर्म कैसे करेगा? इसलिए (अणुमें) कर्म नहीं हो सकता। यदि कहा जाय कि सदा एक साथ रहनेवाले पदार्थोंमें जो समवाय (नित्य) संबंध होता है उससे अदृष्टका परमाणुमें होना मानेंगे तो[3] समवायके स्वीकारसे भी वही बात है (समवाय संबंध क्या वहाँ है? उसके लिए दूसरा कारण फिर उसके लिए भी दूसरा कारण इस प्रकार) अनवस्था (=अन्तिम उत्तरका अभाव) होगी। यही नहीं समवाय-संबंध नित्य होता है, इसलिए परमाणु और उसका अदृष्ट दोनों नित्य ही मौजूद रहेंगे फिर जगतका नित्य रहना ही साबित होगा और यह जगतकी सृष्टि और प्रलय माननेवालोंके लिए ठीक नहीं है।

परमाणुको एक ओर वैशेषिक नित्य सूक्ष्म अवयव रहित मानता है, दूसरी ओर उसीसे तथा कारणके गुणके अनुसार कार्यमें गुण उत्पन्न होता है इस नियमके अनुसार उत्पन्न घटमें रूप आदिके[4] रहनेसे और पृथ्वी

---

[1] "अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यग्गमनं अणुमनसोरचाद्यं कर्मेति अदृष्टकारितानि।" [2] वहीं २।२।११

[3] वे० सू० २।१।१२ वहीं २।१।१३ [4] वहीं २।१।१४

नन गाना हवाके परमाणुओंमें 'रूप आदि (रस गंध, स्पर्श गुणों)के होने (का जैनोंका स्वीकार करना) न भी परस्पर विरोधी (बात होती है)। परमाणुओंको यदि रूप आदिवाला माना चाहे रूपादिरहित[1], दोनों तरहसे ही मौजूद रहता है। पहिली अवस्थामें अवयव रहित होनेकी बात नहीं रहेगी दूसरी अवस्थामें कारणके गुणके अनुसार कार्यमें गुण उत्पन्न होता है, यह बात गलत न जायगा।

इस तरह यूरोपके वैज्ञानिक भौतिकवादियोंकी भाँति कारणमें गुणों के पूर्व परिवर्तन हो कार्यके बननेका न माननेसे परमाणुवादमें जो धर्म जरियाँ थी उनका बादरायणने खंडन किया। निर्विकार ब्रह्म उपादान-कारण बन जगत्को अपनेमेंसे बनाकर सविकार हो जायगा, और अपनेमेंसे जगत्की उत्पत्ति नहीं करेगा तो वह उपादानकारण नहीं निमित्तकारण मात्र रह जायगा फिर उपनिषदके 'एक (मिट्टीके) विज्ञानसे सारे (मिट्टीसे बने पदार्थोंके) विज्ञान'की बात कैसे लगेगी—आदि प्रश्नोंका उत्तर बादरायण (और उनके अनुयायी रामानुज भी) कैसे देते हैं यह हम देख चुके हैं और वह लीपापोतीसे बढ़कर कुछ नहीं है।

तर्क-युक्तिसे परमाणुवादपर प्रहार करना कैसे न समझ अन्तमें बादरायण अपने असली रंगमें उतर आते हैं[2]— चूँकि (आस्तिक वैदिक लोग जैनियोंका) नहीं स्वीकार करते, इसलिए (उसका) अत्यन्त त्याग ही ठीक है।

(२) जैनदर्शन-खंडन—जैनोंके अपने ही मुख्य सिद्धान्त—स्याद्वाद[3] और जीवका शरीरके अनुसार घटना-बढ़ना (मध्यमपरिमाणी होना)—ही जिनके ही ऊपर बादरायणने प्रहार किया है। स्याद्वादमें है भी नहीं भी आदि सात तरहकी परस्पर विरोधी बातें मानी गई हैं बादरायण कहते हैं[4]— एक (ही वस्तुमें इस तरहकी परस्पर-

---

[1] वहाँ २।१।१५

[2] वे० सू० २।२।१६

[3] देखो पृष्ठ ४९६ ९७

[4] वे० सू० २।२।३१

सिद्धान्त अति प्राचीन क्षणिकवाद साथ मानते थे। बादरायण मुख्य उनका इस क्षणिकवाद प्रचार किया है। यद्यपि बुद्धके वक्त परमाणुवाद प्राचीन जन्मभूमि वैशाली पैदा हुआ था उसके प्रवर्तक दार्शनिक इस मानने लिए बुद्धका मत (४८५ ई० पू०)के बाद और तक्षशिला जरूरत था। यूनानियोंके साथ यह भारत आया जरूर था उस जमानेमें भारतकी सीमाके पास ही उसे मिलनेवाले मानवतावादी (=अनेकात्मवादी) बौद्ध लोग पहिले थे। यूनानमें स्वाकिनु (४६० ७० ई० पू०)का परमाणुवाद स्थिरवादका समर्थक था, और वह स्वाकिनु (५३८ ४०५ ई० पू०)के क्षणिकवादका समर्थक नहीं कह सकता था किन्तु भारतमें परमाणुवादके प्रथम स्वागत करनेवाले बौद्ध स्वयं यह समरवादके स्वाकिनुकी भाँति क्षणिकवादी थे। यह भी समझ बुद्धके वक्तसे चल आए उस अनित्यवादका नया नामकरण, क्षणिकवाद इसी समय हुआ था। बौद्धोंने परमाणुवादका क्षणिकवादमें मेलजोल कर दिया। सभी भौतिकतत्त्व (=रूप)की मूल इकाई अविभाज्य (=अनन्त) परमाणु है किन्तु वह स्वयं एक क्षणसे अधिककी सत्ता नहीं रखता—उनका प्रवाह (=सन्तान) जारी रहता है, किन्तु प्रवाहके तौरपर इस क्षणिकवाद कारण हर क्षण विच्छिन्न होते हुए। अणुओंके संयोग—अणु समुदाय—से पृथिवी आदि भूतोंका समुदाय पैदा होता है और पृथिवी आदिके कारणसे शरीर इन्द्रिय विषय-समुदाय पैदा होता है। बादरायण इसका खंडन करते हुए कहते हैं[1]—

(परमाणु,हेतु या पृथिवी आदि हेतु) नाना हो हेतुओंके (मानने) पर भी जगत् (का अस्तित्वमें आना) नहीं हो सकता (क्योंकि परमाणुओंके क्षणिक होनेसे उनका संयोग हो नहीं हो सकता फिर समुदाय कैसे?)। (प्रतीत्य समुत्पाद के अविद्या आदि १२ अंगोंके) एक दूसरेके

---

[1] ब० सू० २।२।१७ २४ [2] देखो पृष्ठ ५१२ १५

प्रत्यय से (समुदाय) हो सकता है वह [illegible]
(वे अविद्या आदि पृथिवी आदिके) [illegible]
(चाहे वह दिमागमें भले ही मानते [illegible]
(क्षणिकवादके अनुसार) पीछे (हो [illegible]
नष्ट हो गई रहती है (फिर विछुड़ा वस्तुका [illegible]—[illegible] हो
गई—वस्तु कैसे हो सकती है क्योंकि [illegible]
अभाव हो चुका है [1]) यदि (इसके [illegible]
है यह मानते हैं तो प्रत्ययके बिना [illegible]
(आपकी) छुटना है और ([illegible]) [illegible] (काल और
कारण दोनोंके) एक समय मौजूद [illegible]) ।

धर्मों (=वस्तुओं या घटनाओंको [illegible] संस्कृत (=कृत) और
असंस्कृत (=अकृत) दो नामोंसे [illegible] । [illegible] रूप वेदना संज्ञा
संस्कार, विज्ञान—ये पाँचों स्कन्ध (रूप आदि [illegible] धातु) संस्कृत
धर्म हैं, और निरोध (=अभाव) तथा आकाश असंस्कृत। निरोध
(=अभाव विनाश) भी दो प्रकारका है एक प्रतिसंख्या-निरोध या
स्थूल निरोध दूसरा अप्रतिसंख्या-निरोध या प्रतिपक्ष हो रहा अनिश्चित
निरोध। दोनोंमें वह मानते हैं कि विनाश निश्चित (=निश्चय) होता
है। वात्सीपुत्रका कहना है कि किस तरहका निरन्वय प्रतिसंख्या
अप्रतिसंख्या निरोध (तुम मानते हो वही) नहीं सिद्ध हो सकता
क्योंकि विच्छेद (होता) ही नहीं घट वस्तुके नाश होनेपर भी मूल
उपादान मिट्टी घटके टुकड़ोंमें भी अविच्छिन्न भाव मौजूद रहता है।
(कारणके बिलकुल अभाव—शून्य—हो जानेपर कार्यकी उत्पत्ति तथा
कार्यका नाश हो बिलकुल अभाव—शून्य—हो जाता) दोनों ही तरहका
दोष है (शून्यसे उत्पत्ति तथा अन्तिम शून्य हो जानेवाला शून्य ही रहना)

---

[1] जिसके होनेके बाद दूसरी चीज होती है, वह इस होनेवाली चीजका प्रत्यय है।

अष्टादश अध्याय

भारतीय दर्शनका चरम विकास (६०० ई०)

§ १—असंग (३५० ई०)

भारतीय दर्शनका अपने अन्तिम विकासपर पहुँचानेके लिए पहिला जबरदस्त प्रयत्न असंग और वसुबंधु दो पेशावरी पठान भाइयोंने किया। इन भाई असंगने योगाचार भूमि[1] उत्तरतन्त्र[1] जैसे ग्रन्थोंको लिखकर विज्ञानवादका समर्थन किया। छोटे भाई वसुबंधुकी प्रतिभा और भी बहुमुखी थी। उन्होंने एक ओर स्वभाविक-सम्मत तथा बुद्धके दर्शनसे बहुसम्मत अपना सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ अभिधर्मकोष तथा उसपर एक बड़ा भाष्य[1] लिखा दूसरी ओर विज्ञानवादके सर्वस्व विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि विंशिका (बीस कारिकाएं) और त्रिंशिका (तीस कारिकाएं) लिख अपने बड़े भाईके कामको और सुव्यवस्थित रूपमें दार्शनिकोंके सामने पेश किया। तीसरा काम उनका सबसे महत्त्वपूर्ण था वादविधान नामक न्याय-ग्रंथका लिखना भारतीय न्यायशास्त्रको नागार्जुनकी पैनी दृष्टिसे मिली प्रेरणाको और नियमबद्ध करना और सबसे बड़ी बात थी भारतीय मध्ययुगीन न्यायके पिता दिङ्नाग जैसे शिष्यको पैदाकर अब तकके किये गये प्रयत्नोंको एक बड़े प्रवाहके रूपमें ले जानेके लिए तैयार करना।

बौद्धोंके विज्ञानवाद—क्षणिक विज्ञानवाद—के शंकराचार्य और उनके दादा गुरु गौड़पाद कितने ऋणी हैं यह हम बतलानेवाले हैं। वस्तुतः गौड़

---

[1] ये दोनों ग्रंथ चीनी और तिब्बती अनुवादके रूपमें पहिले भी मौजूद थे किन्तु उनके संस्कृत मूल मुझे तिब्बतमें मिले, उनकी फोटो और लिखित प्रतियाँ भारत आ चुकी हैं। अभिधर्मकोषको अपनी वृत्तिके साथ मैं पहिले संपादित कर चुका हूँ।

पादकी माण्डूक्य कारिका अनात्म शान्ति प्रकरण प्रच्छन्न नहीं प्रकट रूपसे एक बौद्ध विज्ञानवादी ग्रंथ है। बौद्ध विज्ञानवाद और असंगका एक दूसरे के साथ कितना संबंध है यह इसीसे मालूम हो सकता है कि विज्ञानवाद अपने नामकी अपेक्षा योगाचार दर्शन के नामसे ज्यादा प्रसिद्ध है और योगाचार शब्द असंगके सबसे बड़े ग्रंथ योगाचार भूमि से लिया गया है।

१—जीवनी

असंगका जन्म पेशावरके एक ब्राह्मण (पठान) कुलमें हुआ था। उनके छोटे भाई वसुबंधु बौद्ध जगत्के प्रमुख दार्शनिकोंमें थे। वसुबंधुके कितने ही मौलिक ग्रंथ कालकवलित हो गये। उनका अभिधर्मकोश बहुत प्रौढ़ ग्रंथ है, मगर वह सर्वास्तिवाद दर्शनका एक सुश्रृंखलित विवेचन मात्र है इसलिए हमने उसके बारेमें विशेष नहीं लिखा। वसुबंधुने अभिधर्मकोश पर विस्तृत भाष्य लिखा है, जो सौभाग्यसे तिब्बतकी यात्रामें मुझे संस्कृतमें मिल गया और प्रकाशित होनेकी प्रतीक्षामें फोटो रूपमें पड़ा है। अपने बड़े भाई असंगके विज्ञानवादपर विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि नामके 'विंशिका' और 'त्रिंशिका'[1] नामसे बीस और तीस कारिकावाले दो प्रकरण भी मिल कर प्रकाशित हो चुके हैं। वसुबंधु मध्यकालीन 'न्याय शास्त्र'के पिता दिग्नागके गुरु थे और उन्होंने स्वयं भी 'वादविधान' नामसे न्यायपर एक ग्रंथ लिखा था किन्तु शिष्यकी प्रतिभाके सामने गुरुकी कृतियाँ ढँक गईं। वसुबंधु समुद्रगुप्तके पुत्र चंद्रगुप्त (विक्रमादित्यके) अध्यापक रह चुके थे, और इस प्रकार वह ईसवी चौथी शताब्दीके उत्तरार्धमें मौजूद थे।[1]

असंगकी जीवनीके बारेमें हम इससे अधिक नहीं जानते कि वह योगाचार दर्शनके प्रथम आचार्य थे वह मथुराके लेखक वसुबंधुके बड़े भाई और पेशावरके रहनेवाले थे। वह ३५०में जरूर मौजूद रहे होंगे। यह समय नागार्जुनसे पौने सदी पीछे पड़ता है। नागार्जुनके ग्रंथ भारतीय न्याय-शास्त्रके प्राचीनतम ग्रंथ हैं—जहाँ तक अभी हमारा ज्ञान जाता है—लेकिन

---

[1] देखो मेरी "वादन्याय" और "अभिधर्मकोश"की भूमिकाएँ।

नागार्जुन का प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्तवाला ग्रन्थ उसी तरह हम मालूम नहीं है जिस तरह वसुबन्धु के विज्ञानवाद का पोषक भारतीय दर्शन तक साथ पहुँचनेवाली पोथियाँ अभी उपलब्ध नहीं हुई हैं। असंगका वाङ्मय (= ग्रन्थ) का काफी परिचय था और हम योगाचार भूमि से पता लगाते हैं।

२—असंगके ग्रन्थ

महायानोत्तर तन्त्र सम्प्रदाय योगाचार भूमि-वस्तुसंग्रहणी बोधिसत्त्व विनिश्चय आदि पाँच ग्रन्थ अभी तक हमें असंगकी दार्शनिक कृतियाँ मालूम थे। इनमें सिद्धान्त सम्बन्धी पोथी तो योगाचार भूमि' ने ही लगाई है। पहिले तीन ग्रन्थों के तिब्बती या चीनी अनुवाद का पता नहीं था।

योगाचार भूमि—असंगका यह विशाल ग्रन्थ निम्न सत्रह भूमियोंमें विभक्त है—

१ विज्ञान भूमि	१० श्रुतमयी भूमि
२ मन भूमि	११ चिन्तामयी भूमि
३ सवितर्क-सविचारा भूमि	१२ भावनामयी भूमि
४ अवितर्क विचारमात्रा भूमि	१३ श्रावक भूमि[1]
५ अवितर्क अविचारा भूमि	१४ प्रत्येकबुद्ध भूमि
६ समाहिता भूमि	१५ बोधिसत्त्व भूमि[1]
७ असमाहिता भूमि	१६ पर्यायिका भूमि
८ सचित्तका भूमि	१७ निरुपधिका भूमि[1]
९ अचित्तका भूमि	

[1] श्रावक भूमि और बोधिसत्त्व भूमि तिब्बतमें मिला। 'योगाचारभूमि' का तालपत्र पोथी (दसवीं सदी) में नहीं है। बोधिसत्त्वभूमिको प्रो० उ० योगीहारा (जापान १९३०) प्रकाशित कर चुके हैं। अलग भी मिल चुकी है।

[2] "योगाचारभूमि" में आचार्यने किन किन विषयोंपर विस्तृत विवेचन किया है। यह निम्न विषयसूचीसे मालूम हो जायगा।

श्रीसेठिया जैन ग्रन्थालय

भूमि १

§ १ (पाँच इन्द्रियोंके) विज्ञानोंकी भूमियाँ ।

§ २ पाच इन्द्रियोंके विज्ञान (= ज्ञान)

१ आँखका विज्ञान

(१) विज्ञानोंके स्वभाव

(२) उनके आश्रय (सहभू, समनन्तर, बीज)

(३) उनके आलबन (Objects) वर्ण, सस्थान, विज्ञप्ति (=क्रिया)

(४) उनके सहाय (=सहयोगी)

(५) कर्म

(क) अपने विषयके आलबनकी क्रिया (= विज्ञप्ति)

(ख) अपने स्वरूप (= स्वलक्षण)की विज्ञप्ति

(ग) वर्तमान कालकी विज्ञप्ति

(घ) एक क्षणकी विज्ञप्ति

(ङ) मनवाले विज्ञानकी अनुवृत्ति (=पीछे आना)

(च) भलाई बुराईकी अनुवृत्ति

२ कानका विज्ञान (स्वभाव आदिके साथ)

३ घ्राणका विज्ञान (,,)

४ जिह्वाका विज्ञान (,,)

५ काया (=त्वक् इन्द्रिय)का विज्ञान(स्वभाव आदिके साथ)

§ ३ पाचो विज्ञानोंका उत्पन्न होना

§ ४ पाँचो विज्ञानोंके साथ सबद्ध चित्त

§ ५ पाँचो विज्ञानोंके सहाय आदि की 'एक काफिलेवाला' आदि होनेकी उपमा ।

भूमि २

मनकी भूमि

§ १ मनके स्वभाव आदि

१ मनका स्वभाव

२ मनका आश्रय

३ मनका आलबन (=विषय)

४ मनका सहाय (=सहयोगी)

५ मनके विशेष कर्म

(१) आलबन विज्ञप्ति

(२) विशेष कर्म

(क) विषयकी विकल्पना

(ख) उपनिध्यान
(ग) मत्त होना
(घ) उन्मत्त होना
(ङ) सोना
(च) जागना
(छ) मूर्च्छित होना
(ज) मूर्च्छासे उठना
(झ) कायिक, वाचिक काम करना
(ञ) विरक्त होना
(ट) विरागका हटना
(ठ) भली अवस्थाकी जड़का कटना
(ड) भली अवस्थाकी जड़का जुड़ना

२ मनका शरीरसे च्युति और उत्पत्ति
(१) शरीरसे च्युति (= टूटना मृत्यु)
(२) एक शरीरसे दूसरे शरीरके बीचकी अवस्थाका सूक्ष्मकायिक मन (=अन्तराभव)

३ दूसरे शरीरमें उत्पत्ति
(१) उत्पत्तिवाले स्थानमें जानेकी अभिलाषा
(२) गर्भमें प्रवेश करना
(क) गर्भाधानमें सहायक
(ख) गर्भाधानमें बाधक
(a) योनिका दोष
(b) बीजका दोष
(c) पुरविले कर्मका दोष
(ग) अन्तराभवकी दृष्टि में परिवर्तन
(घ) पापी और पुण्यात्मा के उन्मुक्त
(ङ) गर्भाशयमें आलय विज्ञान (प्रवाह) जुड़नका ढंग
(च) गर्भकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ
(a) कलल अवस्था
(b) अर्बुद अवस्था
(c) पेशी ,,
(d) घन ,,
(e) प्रशाख ,,
(f) केश - रोम - नखकी अवस्था
(g) इन्द्रियोंका प्रकट होना
(h) स्त्री - पुरुष - लिंग प्रकट होना
(छ) शरीरमें विकार

होना
(a) रगमें विकार
(b) चमडेमें विकार
(c) अगमें विकार
(ज) गर्भके स्त्री या पुरुष होनेकी पहिचान
(३) गर्भसे निकलना
(४) शिशु-पोषण
§३ जगत्का संहार और प्रादुर्भाव
१ संहार (=संवर्तन) का क्रम
(१) देवताओंकी आयु
(२) कल्पका परिमाण
२ प्रादुर्भाव (=विवर्त्त)
(१) भिन्न भिन्न लोकोंका प्रादुर्भाव
(क) ब्रह्मलोक आदिका प्रादुर्भाव
(ख) पृथिवीका प्रादुर्भाव
(a) सुमेरु आदि ,,
(b) नरक ,,
(c) द्वीपों ,,
(d) नागलोक ,,
(e) यक्षलोक ,,
(f) धृतराष्ट्र आदि चारों महाराजाका प्रादुर्भाव
(g) हिमालयकाप्रादुर्भाव
(h) अनवतप्तसर (= मानसरोवर) ,,
(i) सुमेरुके पार्श्वों ,,
§४ सत्त्वोंका प्रादुर्भाव
१ प्रथम कल्पके सत्त्व (= मानव)
(१) उनके आहार
(२) मनके विकारसे आहार ह्रास
(३) राजाका पहिला चुनाव
२ ग्रह नक्षत्र आदिका प्रादुर्भाव
(१) सत्त्वोंके प्रकाशका लोप, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदिका प्रादुर्भाव
(२) चन्द्रमा और सूर्यकी गतियाँ
(३) ऋतुओंमें परिवर्तन
(४) चन्द्रमाका घटना बढ़ना
§५ हजार चूडावाला लोक (Local Universe) (बुद्धका क्षेत्र)
§६ रूप (=जड तत्त्व)
१ रूपका बीज (=मूलरूप)
२ महाभूत
३ परमाणु (=अवयव)

४ द्रव्य चौन्ह
५ भूतोंका साथ या अलग रहना
§ ७ चित्त
§ ८ चित्त-संबंधी (=चेतस) तत्त्व
(विज्ञानकी उत्पत्ति)
१ चेतस मनस्कार आदि
(१) उनके स्वभाव
(२) उनके कर्म
§ ९ तीन काल
(जन्म, जरा आदि)
§ १० छ प्रकारके विज्ञान
१ विज्ञानोंके चार प्रत्यय
(१) प्रत्यय
(२) प्रत्ययोंके भेद
२ आयतनोंके छ भेद
(१) इन्द्रियोंके भेद
(क) चक्षुके भेद
(ख) श्रोत्र ,,
(ग) घ्राण ,,
(घ) जिह्वा ,,
(ङ) काया ,,
(च) मन ,,
(२) आलम्बनोंके छ भेद
(क) रूपके भेद
(ख) शब्द ,,
(ग) गन्ध ,,
(घ) रस के भेद
(ङ) स्पर्श ,,
(च) धर्म ,,
§ ११ नव वस्तुवाले बुद्ध-वचन

भूमि ३, ४, ५

(सवितर्क-सविचारा भूमि,
अवितर्क विचारमात्रा भूमि,
अवितर्कअविचारा भूमि)
(सवितर्क-सविचारा भूमि)
§ १ धातुकाप्रज्ञप्ति
१ धातुके प्रज्ञापन द्वारा
(१) काम (=स्थूल) धातु
(=लोक)
(२) रूप धातु
(३) आरूप्य धातु
२ परिमाणके प्रज्ञापन द्वारा
(१) शरीरका परिमाण
(२) आयुका परिमाण
३ भोगके प्रज्ञापन द्वारा
(१) दुःखभोग
(a) नरक
(a) महानरक (आठ)
(b) छोटे(=सामन्त)
नरक (चार)
(c) ठंड नरक (आठ)
(d) प्रत्येक नरक

(ख) तिर्यग्योनि
(ग) प्रेतयोनि
(घ) मनुष्ययोनि
(ङ) देवयोनि
(२) सुख भाग
(क) नरक-योनिमें
(ख) तिर्यक (=पशु पक्षी) योनिमें
(ग) मनुष्य योनिमें (चक्रवर्ती बनकर)
(घ) देव-योनिमें
(a) स्वर्गमें इन्द्र और देवपुर, उत्तरकुरु और असुर
(b) रूपलोकके देवता
(c) अरूपलोकके देवता
(३) दुःख सुख विशेष
(४) आहारभोग
(५) परिभोग
४ उपपत्ति(=जन्म)के प्रज्ञापन द्वारा
५ आत्मभाव
६ हेतु और फलकी व्यवस्था
(१) हेतु और फल(=काय) के लक्षण
(२) हेतु प्रत्ययके अधिष्ठान
(३) हेतु प्रत्ययके भेद
(क) हेतुके भेद
(ख) प्रत्ययके भेद
(ग) फलके भेद
(७) हेतु प्रत्यय फलव्यवस्था
(क) हेतु प्रज्ञापन
(ख) प्रत्यय प्रज्ञापन
(ग) फल प्रज्ञापन
(घ) हेतु व्यवस्था
§ २ लक्षण प्रज्ञप्तिसे
१ शरीर आदि
(१) शरीर
(२) आलंबन (=विषय)
(३) आकार
(४) समुत्थान
(५) प्रभेद
(६) विनिश्चय
(७) प्रवृत्ति
२ वितर्क विचारा गतिके भेदसे
(१) नारकोंकी गति
(२) प्रेत और तिर्यकोंकी गति
(३) देवोंकी गति
(क) कामलोकके देव
(ख) प्रथमध्यानकी भूमि वाले देव

§ ३ योनिशोमनस्कारकी प्रज्ञप्तिसे
१ अधिष्ठान
२ वस्तु
३ एषणा
४ परिभोग
५ प्रतिपत्ति
§ ४ अयोनिशोमनस्कार प्रज्ञप्तिसे
१ दूसरोंके वाद (=मत)
(१) सद्वाद (सांख्य)
(२) अनभिव्यक्ति-वाद (सांख्य और व्याकरण)
(३) द्रव्यसद्वाद (सर्वास्तिवादी)
(४) आत्मवाद (उपनिषद)
(५) शाश्वतवाद (कात्यायन)
(६) पूर्वकृत हेतुवाद (जन)
(७) ईश्वरादि-कर्तावाद (नयायिक)
(८) हिंसाधर्मवाद (याज्ञिक और मीमांसक)
(९) अज्ञानान्तिकवाद
(१०) अमरावि क्षेपवाद (बेलट्ठिपुत्त)
(११) अहेतुकवाद (गोशल)
(१२) उच्छेदवाद (लोकायत)
(१३) नास्तिकवाद (केश कम्बल)
(१४) अपवाद (ब्राह्मण)
(१५) शुद्धिवाद (,,)
(१६) ज्योतिषगणन (=की तुर-मंगल) वाद
§ ५ संक्लेश प्रज्ञप्तिसे
१ क्लेश (=चित्तके मल)
(१) क्लेशोंके स्वभाव
(२) क्लेशोंके भेद
(३) क्लेशोंके हेतु
(४) क्लेशोंकी अवस्था
(५) क्लेशोंके मूल
(६) क्लेशोंकी अतिशयता
(७) क्लेशोंके विपर्यास
(८) क्लेशोंके पर्याय
(९) क्लेशोंके आदीनव
२ कर्म
३ जन्म
(१) कर्मोंके भेद
(२) कर्मोंकी प्रवृत्ति
§ ६ प्रतीत्यसमुत्पाद

भूमि ६
(समाहिता भूमि)

§ १ ध्यान
१ नाम गिनाई

(१) ध्यान
(२) विमोक्ष
(३) समाधि
(४) समापत्ति
२ व्यवस्थान
§ २ विमोक्ष
§ ३ समाधि
§ ४ समापत्ति

भूमि ७

(असमाहिता भूमि)

भूमि ८, ९

अचित्तका भूमि

भूमि १०

सचित्तका भूमि
(श्रुतमयी भूमि)
पाँच विद्याएं

§ १ अध्यात्मविद्या
१ वस्तुप्रज्ञप्ति
(१) सूत्र वस्तु
(२) विनय वस्तु
(३) मातका वस्तु
२ सज्ञाभेद प्रज्ञप्ति
(१) पद
(२) भ्रान्ति
(३) प्रपच
(४) स्थिति
(५) तत्त्व
(६) शुभ
(७) वर
(८) प्रशम
(९) प्रकृति
(१०) युक्ति
(११) सकेत
(१२) अभिसमय
३ बुद्ध-शासनके अर्थमें प्रज्ञप्ति
४ बुद्ध-वचनके ज्ञेयोंका अधिष्ठान
§ २ चिकित्सा विद्या
§ ३ हेतु (=वाद) विद्या
१ वाद
(१) वाद
(२) प्रतिवाद
(३) विवाद
(४) अपवाद
(५) अनुवाद
(६) अववाद
२ वादके अधिकरण
३ वादके अधिष्ठान (दस)
(१) दो प्रकारके साध्य
(२) आठ प्रकारके साधन
(क) प्रतिज्ञा
(ख) हेतु

(ग) उदाहरण
(घ) साम्य
(a) लिंगमें सादृश्य
(b) स्वभावमें सादृश्य
(c) कर्ममें सादृश्य
(d) धर्ममें सादृश्य
(e) हेतुफल (=कार्य कारण) में साम्य
(ङ) वैधर्म्य
(च) प्रत्यक्ष
(१) अ-परोक्ष
(b) अनभ्यूहित अनभ्यूह्य
(c) अभ्रान्त
(भ्रान्तियाँ—संज्ञा संख्या, संस्थान, वर्ण, कर्म, चित्त दृष्टिसे संबंध रखनेवाली)
(प्रत्यक्षके भेद—इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन प्रत्यक्ष, लोक-प्रत्यक्ष, शुद्ध (=योगि) प्रत्यक्ष
(छ) अनुमान
(१) लिंगसे
(b) स्वभावसे
(c) कर्मसे
(d) धर्मसे
(e) हेतुफल (=कार्य-कारण) से
(ज) आप्तागम (=शब्द)

४ वादके अलंकार
(१) अपने और पराये वाद की अभिज्ञता
(२) वाक्-कर्म सम्पन्नता (=भाषण-पटुता)
(क) अग्राम्य भाषण
(ख) लघु (=मित) भाषण
(ग) ओजस्वी भाषण
(घ) पूर्वापरसंबद्ध भाषण
(ङ) अच्छे अर्थोंवाला भाषण
(३) विशारद होना
(४) स्थिरता
(५) दाक्षिण्य (=उदारता)

५ वादका निग्रह
(१) कथात्याग
(२) कथामाद
(३) कथादोष
(क) बुरा वचन
(ख) संरब्ध (=कुपित) वचन
(ग) अ-गमक वचन

(घ) अ मित वचन
(ङ) अनर्थ-युक्त वचन
(च) अ-काल वचन
(छ) अ स्थिर वचन
(ज) अ-दीप्त वचन
(झ) अ प्रबद्ध वचन
६ वाद नि सरण
(१) गुणदोष परीक्षा
(२) परिषत-परीक्षा
(३) कौशल्य (=नपुण्य)-परीक्षा
७ वादमें उपकारक बातें
§ ४ शब्द विद्या
१ धम प्रज्ञप्ति
२ अध प्रज्ञप्ति
३ पुद्गल प्रज्ञप्ति
४ काल प्रज्ञप्ति
५ सख्या प्रज्ञप्ति
६ अधिकरण प्रज्ञप्ति
§ ५ शिल्प-कमस्थान विद्या

भूमि ११

(चिन्तामयी भूमि)

§ १ स्वभावशुद्धि
§ २ ज्ञेया (=प्रमेयो)का सचय
१ सद् (वस्तु)
(१) स्वलक्षण सत्
(२) सामान्यलक्षण सत्
(३) सकेतलक्षण सत
(४) ऋतुलक्षण सत
(५) फल(=काय)-लक्षण सत्
२ असद (वस्तु)
(१) अनत्पन्न असत
(२) निरुद्ध असत्
(३) अन्योन्य असत
(४) परमाथ असत
३ अस्तित्व
४ नास्तित्व
§ ३ धर्मोंका सचय
१ सूत्रार्थोंका सचय
२ गाथार्थोंका सचय
(यहा पिटकोकी सकडो गाथाओंका सग्रह है)

भूमि १२

(भावनामयी भूमि)

§ १ स्थानत सग्रह
१ भावनाके पद
२ भावना उपनिषत
३ योग भावना
४ भावना फल
§ २ अगत सग्रह
१ अभिनिवृत्ति-सपद

२ सद्धर्मश्रवण-सपद्
(१) ठीक उपदेश करना
(२) ठीक सुनना
(३) निर्वाण प्रमुखता
(४) चित्त-मुक्तिको परिपक्व बनानेवाली प्रज्ञाका परिपाक
(५) प्रतिपक्ष भावना

भूमि १३

(श्रावक भूमि)

भूमि १४

(प्रत्येकबुद्ध भूमि)

§ १ गोत्र
१ मन्द रजवाला गोत्र
२ मन्द-करुणावाला गोत्र
३ मध्य-इन्द्रियवाला गोत्र
§ २ मार्ग
§ ३ समुदागम
१ गैंडेकी सींग जैसा अकेला विहरनेवाला
२ जमातके साथ विहरनेवाला
§ ४ चार

भूमि १५

(बोधिसत्त्व भूमि)

भूमि १६

(उपाधि-सहिता भूमि)

तीन प्रज्ञप्तियोंसे
१ भूमि प्रज्ञप्ति
२ उपशम प्रज्ञप्ति
३ उपधि प्रज्ञप्ति
(१) प्रज्ञप्ति उपधि
(२) परिग्रह उपधि
(३) स्थिति प्रज्ञप्ति
(४) प्रवृत्ति प्रज्ञप्ति
(५) अन्तराय प्रज्ञप्ति
(६) दुःख प्रज्ञप्ति
(७) रति प्रज्ञप्ति
(८) अन्य प्रज्ञप्ति

भूमि १७

(उपधि रहिता भूमि)

१ भूमि प्रज्ञप्तिसे
२ निवृति प्रज्ञप्तिसे
(१) व्यपगमा निवृति
(२) अव्याबाध निवृति
३ निवृति-पर्यायविज्ञप्तिसे

"योगाचार भूमि" (संस्कृत) को महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य सम्पादित कर रहे हैं।

३—दार्शनिक विचार

असंग क्षणिक विज्ञानवादी थे। यह विज्ञानवाद असंगके पहिले भी "लंकावतार सूत्र", 'संधिनिर्मोचन सूत्र' जैसे महायान सूत्रोंमें मौजूद था। इन सूत्रोंको बुद्धवचन कहा जाता है मगर अधिकांश महायान-सूत्रोंकी भांति यह बुद्धके नामपर बने पीछेके सूत्र हैं। लंकावतार सूत्रका बुद्धने दक्षिणमें लंका (=सीलोन) द्वीपके पर्वत (समन्तकूट ?)पर उपदेश दिया था। वस्तुतः उसे दक्षिण न ले जा उत्तरमें गंधारकी पर्वतावलीमें ले जाना अधिक युक्तियुक्त है। बौद्धोंका विज्ञानवाद बुद्धके 'सब्बं अनिच्चं' (=सब अनित्य है) या क्षणिकवादका अफलातूंके (स्थिर) विज्ञान वादके साथ मिश्रण मात्र है, और यह मिश्रण उसी गंधारमें किया गया जहाँ यूनानियोंकी कलाके मिश्रण द्वारा गंधार मूर्तिकलाने अवतार लिया। विज्ञानवाद विज्ञानको ही परमार्थतत्त्व मानता है, यह बतला आये हैं और यह भी कि वह पांच इंद्रियोंके पाँच विज्ञानों तथा छठे मन विज्ञानके अति रिक्त एक सातवें आलयविज्ञानको मानता है। यही आलयविज्ञान वह तरंगित समुद्र है जिससे तरंगोंकी भांति विश्वकी सारी जड़ चेतन वस्तुएं प्रकट और विलीन होती रहती हैं।

यहाँ हम असंगके दार्शनिक विचारोंको उनकी योगाचार भूमिके आधार पर देते हैं। स्मरण रहे 'योगाचार भूमि' कोई सुसंबद्ध दार्शनिक ग्रंथ नहीं है, वह बुद्धघोषके विसुद्धिमग्ग (=विशुद्धिमार्ग)की भाँति ज्यादा तर बौद्ध सदाचार योग तथा धर्मतत्त्वका विस्तृत विवेचन है। असंगने अपने इस तरुण समकालीनकी भाँति बुद्धकी किसी एक गाथाको आधार बनाकर अपने ग्रंथको नहीं लिखा है। 'गाथार्थ प्रविचय' में जरूर १७८ गाथाएं—हीनयान महायान दोनों पिटकोंकी—एकत्रित कर दी हैं। बुद्धघोषकी भाँति असंगने भी सूत्रोंकी भाषा-शैलीका इतना अधिक अनुकरण किया है कि

---

[1] योगाचारभूमि (श्रुतमयीभूमि १०)

आज वक्त भ्रम होने लगता है कि हम अभिसंस्कृत संस्कृतके कालमें न हो पिटक-कालकी किसी पुस्तकका संस्कृत रूपान्तरके रूपमें पढ़ रहे हैं। बुद्धघोष अपने ग्रंथका पालीमें लिख रहे थे जिसे वसुबंधु-कालिदास कालीन संस्कृतकी भाँति संस्कृत होनेका अभी मौका नहीं मिला था, इसलिए बुद्धघोष पालिका भाषा शैलीका अनुकरण करनेके लिए मजबूर थे। मगर असंगको ऐसी कोई मजबूरी न थी। न वह अपनी कृतिको बुद्धके नामसे प्रकट करनेके लिए ही इच्छुक थे। फिर, उन्होंने क्यों ऐसी शैलीको स्वीकार किया जिसमें किसी बातका संक्षेपमें कहा ही नहीं जा सकता? संभव है सूत्रोंकी शैली से परिचित अपने पाठकोंके लिए आसान करनेके ख्यालसे उन्होंने ऐसा किया है।

हम यहाँ योगाचार भूमि[1] का पूरा संक्षेप नहीं देना चाहते इसलिए उसमें आये असंगके नय (=प्रमेय) विज्ञानवाद प्रतीत्यसमुत्पाद हेतु (=वाद) विद्या परवाद खंडन और द्रव्य-परमाणु-संबंधी विचारोंका ही पर संलाप करते हैं।

(१) ज्ञेय (=प्रमेय) विषय

'नय' कहते हैं परीक्षणीय पदार्थको। ये चार प्रकारके होते हैं: सत या भाव रूप दूसरा असत या अभाव रूप—अस्तित्व और नास्तित्व।

(क) सत्—यह पाँच प्रकारका होता (१) स्वलक्षण (=अपने स्वरूपमें) सत, (२) सामान्यलक्षण (=जाति आदि रूपमें) सत (३) संकेतलक्षण (=संकेत किये रूपमें) सत (४) हेतु लक्षण (=इष्ट अनिष्ट प्राप्तिके हेतुके रूपमें) सत (५) फल लक्षण (=परिणामके रूपमें) सत।

(ख) असत्—यह भी पाँच प्रकारका है। (१) अनुत्पन्न (=जो पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ अतएव) असत (२) निरुद्ध (=जो उत्पन्न

---

[1] योगाचारभूमि (चिंतामयी भूमि ११)

हो कर निरुद्ध या नष्ट हो गया, अतएव) असत (३) अयोग (= गाय घोड़ा नहीं घोड़ा गाय नहीं इस तरह एक दूसरेके रूपमें) असत (४) परमार्थ (=मतमें जानपर) असत और (५) (=वन्ध्या पुत्र की भाँति) अत्यन्त असत।

(ग) अस्तित्व—यह भी पाँच प्रकारका माना है—(१) परिनिष्पन्नलक्षण—जो अस्तित्व कि परमार्थतः है (जैसे कि असंगके मतमें विज्ञान मौलिकवादियोंके मतमें मन भौतिकतत्त्व), (२) परतन्त्रलक्षण अस्तित्व प्रत्ययसमुत्पन्न (अमुकके होनेके बाद अमुक अस्तित्वमें आता है) अस्तित्वका कहते हैं (३) परिकल्पितलक्षण अस्तित्व है संकेत (Convention) बल जिसको माना जाय (४) विषयलक्षण है काल, जन्म, मृत्यु आदिके संबंधमें माना जानेवाला अस्तित्व और (५) अवक्तव्यलक्षण अस्तित्व वह है जिसे हाँ या नहीं में दो टूक नहीं कहा जा सके (जैसे बौद्ध दर्शनमें पुद्गल=चेतनाका स्कन्धोंसे न अलग कहा जा सकता, न एक ही कहा जा सकता)।

(घ) नास्तित्व—यह पाँच प्रकारका होता है—(१) परमार्थरूपेण नास्तित्व, (२) स्वतन्त्ररूपेण नास्तित्व (३) सर्वसंस्कारोंसे नास्तित्व (४) अविशेष रूपसे नास्तित्व और (५) अवक्तव्य रूपसे नास्तित्व।

परमार्थतः सत असत अस्तित्व या नास्तित्वको बतलानेके लिए असंगने परमार्थ-गाथाके नामसे महायान सूत्रोंकी कितनी ही गाथाएँ उद्धृत की हैं। इनमें (१) वस्तुओंके अपने भीतर किसी प्रकारके स्थिर तत्त्वकी सत्ताका इन्कार करते हुए उन्हें शून्य (=सार-शून्य) कहा गया है बाह्य और मानस तत्त्वोंको सार-शून्य कहते हुए उन्हें क्षणिक (=क्षण क्षण विनाशी) बतलाया गया है, और यह भी कि (३) कोई (ईश्वर आदि) जनक और नाशक नहीं है बल्कि जगतके सारे पदार्थ स्वरस (=स्वभावतः) भंगुर हैं। रूप (=Matter) वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धोंमें स्थिरताका भास सिर्फ भ्रममात्र है वस्तुतः वे फेन बुलबुले मृगमरीचिका कदली गर्भ तथा मायाकी भाँति निस्सार

—

आध्यात्मिक (=मानसिक) शून्य है, बाह्य भी शून्य है।

ऐसा कोई (आत्मा) भी नहीं है, जो शून्यताका अनुभव करता ॥३॥

अपना (कोई) आत्मा ही नहीं है (यह आत्माका कल्पना) उसका कल्पना है। यहाँ कोई सत्त्व या आत्मा नहीं है। ये (तीन) धर्म (=पदार्थ) अपने ही अपने कारण हैं ॥४॥

गोर संसार (=उत्पन्न पदार्थ) शाश्वत है। ॥५॥

उसे कोई दूसरा नहीं जनाता और न वह स्वयं उत्पन्न होता है। प्रत्ययके होनेपर पदार्थ (=भाव) पुराने नहीं बिल्कुल नये-नये जनमते हैं ॥८॥ न दूसरा इसे नाश करता है और न स्वयं नष्ट होता है। प्रत्यय (=पूर्वकारण)के होनेपर (ये पदार्थ) उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न हो स्वरस ही क्षणभंगुर है ॥९॥ रूप (=भौतिकतत्त्व) फेनके पिंड समान है, वेदना (स्वाद) बुद्बुद जैसी ॥१७॥ संज्ञा (मृग)-मरीचिका सदृशी है संस्कार केलेके जैसे और विज्ञानको माया-समान सूर्यबन्धु (=बुद्ध)ने बतलाया है ॥१८॥[1]

(२) विज्ञानवाद

(क) आलयविज्ञान—बाह्य-आभ्यन्तर जड चेतन—जो कुछ जगत् है सब विज्ञानका परिणाम है। विज्ञान-समष्टिको आलयविज्ञान, कहते हैं इसीसे वीचि-तरंगकी भाँति जगत् तथा उसकी सारी वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। इस विश्व विज्ञान[2] या आलय विज्ञानसे जैसे जड-जगत् उत्पन्न हुआ उसी तरह, वैयक्तिक विज्ञान (=प्रवृत्ति विज्ञान)—पाँचों इन्द्रियोंके विज्ञान और छठाँ मन पैदा हुआ।

(ख) पाँच इन्द्रिय विज्ञान—इन्द्रियोंके आश्रयसे जो विज्ञान (=चेतना) पैदा होता है, वह इन्द्रिय विज्ञान है। अपने आश्रयो चक्षु

---

[1] योगाचार भूमि (चिन्तामयी भूमि ११) [2] देखो, रोन्द, पृष्ठ २४०

(=आँख) आदि पाँचों इंद्रियोंके अनुसार इंद्रिय विज्ञान भी पाँच प्रकारके होते हैं।—

(a) चक्षु विज्ञान[1] (i) स्वभाव—चक्षु (=आँख)के आश्रय (=सहारे)से जो विज्ञान प्राप्त होता है वह चक्षु विज्ञान है। यह है चक्षु विज्ञानका स्वभाव (=स्वरूप)।

(ii) आश्रय—चक्षु विज्ञानके आश्रय तीन हैं चक्षु जो कि साथ साथ अस्तित्वमें आता तथा विलीन होता है अतएव सहभू आश्रय है मन जो इस विज्ञान (की सन्तति)का वास्तव आश्रय होता है अतएव समनन्तर आश्रय है रूप इंद्रिय मन तथा सारे जगत्का बीज जिसमें मौजूद रहता है, वह सर्वबीजक आश्रय है आलय विज्ञान। इन तीनों आश्रयोंमें चक्षु रूप (=भौतिक) होनेसे रूपी आश्रय है और बाकी अरूपी।

(iii) आलंबन या विषय है—वर्ण (=रंग) संस्थान (=आकृति) और विज्ञप्ति (=क्रिया)। (a) वर्ण है—नील, पीत लाल सफेद छाया, धूप प्रकाश, अंधकार मेघ, धूम रज महिका और नभ। (b) संस्थान है—लम्बा, छोटा, वृत्त, परिमंडल अणु स्थूल सात विसात उन्नत और अवनत। (c) विज्ञप्ति है—लेना फेंकना सिकोड़ना फैलाना, ठहरना बैठना लेटना दौड़ना इत्यादि।

(iv) सहाय—चक्षु विज्ञानके साथ पैदा होनेवाले एक ही आलंबन के चैतसिक धर्म हैं।

(v) कर्म—छः हैं (१) स्वविषय अवलंबी (२) स्वलक्षण, (३) वर्तमान काल, (४) एक क्षण (५) शुद्ध (=कुशल) अशुद्ध मनके विज्ञान धर्मके उत्थान, इन दो आकारोंसे अनुवृत्ति, (६) इष्ट या अनिष्ट फलका ग्रहण।

(b-e) श्रोत्र आदि विज्ञान—इसी तरह श्रोत्र घ्राण जिह्वा और काया (=त्वग) इंद्रियके इंद्रिय विज्ञान हैं।

---

[1] योगाचार भूमि (१)

(ग) मन विज्ञान—[illegible] । इसके [illegible]

(a) स्वभाव—[illegible] (=स्वभाव) [illegible] (=[illegible]) [illegible] आलय विज्ञान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (=[illegible]) [illegible] (=[illegible]) [illegible] (=[illegible]) [illegible] (=[illegible]) [illegible] ।

(b) आलय—[illegible] आश्रय, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उन्मादमें होना, (५) निद्रामें जाना (६) जागना (७) मूर्च्छा खाना, (८) मूर्च्छामें उठना, (९) कायिक-वाचिक कर्मोंका करना (१०) वैराग्य करना (११) वैराग्य छोड़ना (१२) भलाईकी जड़ोंको काटना, (१३) भलाईकी जड़ोंको जोड़ना (१४) शरीर छोड़ना (=च्युति) और (१५) शरीरमें आना (=उत्पत्ति)।

इन कर्मोंमेंसे कुछके होनेके बारेमें असंग कहते हैं[1]—

पूर्वजन्म कर्मोंसे अथवा शरीरधातुकी विषमता भय मर्म-स्थानमें चोट, और भूत प्रेतके आवेशसे उन्माद (=पागलपन) होता है।

शरीरकी दुर्बलता परिश्रमका थकावट भोजनके भारीपन आदि कारणोंसे निद्रा होती है।

वात पित्तके बिगड़ने अधिक पसीना और खूनके निकलनेसे मूर्च्छा होती है।

(मनकी च्युति तथा उत्पत्ति)

बौद्ध-दर्शन क्षण-क्षण परिवर्तनशील मनसे परे किसी भी नित्य जीवात्माको नहीं मानता। मरनेका मतलब है, एक शरीर प्रवाह (=शरीर भी क्षण-क्षण परिवर्तनशील होनेसे वस्तु नहीं बल्कि प्रवाह है)से एक मन प्रवाह (=मन-सन्तति)का च्युत होना। उसी तरह उत्पत्तिका मतलब है, एक मन प्रवाहका दूसरे शरीर प्रवाहमें उत्पन्न होना।

(a) च्युति (=मृत्यु)—मृत्यु तीन कारणोंसे होती है—आयुका खतम हो जाना, पुण्यका खतम हो जाना और शरीरकी विषम क्रिया यानी भोजनमें न मात्राका ख्याल न पथ्यका ख्याल दवा सेवन न करना अकालचारी अब्रह्मचारी होना।

मृत्युके वक्त पापियोंके शरीरका हृदयसे ऊपरी भाग पहिले ठंडा पड़ता है और पुण्यात्माओंका निचला भाग फिर सारा शरीर।

---

[1] योगाचार भूमि (मन भूमि १)

(अन्तराभव)—एक शरीरके मृत्यु दूसरे शरीरमें उत्पन्न होने तक जो अवस्थामें मन (=जीव) रहता है, उसको अन्तराभव या पर मनोभव कहते हैं। अन्तराभवको जब शरीरमें उत्पन्न होना होता है तभी वह उसकी आकृति होता है। यह अपने रूपमें सप्ताह भर तक रह सकता है।

(b) उत्पत्ति (=जन्म)—मरणासन्न मन अपने इन बुरे कर्मों को साथ लेकर और ऐसा ही अन्तराभवाय रूप धारण करता है। मनके किसी शरीरमें उत्पन्न होनेके लिए तीन बातोंकी जरूरत है—माता ऋतुमती हो, पिताका बीज मौजूद हो और गन्धर्व (=अन्तराभव) उपस्थित हो। साथ ही योनि बीज और कर्मके रूप बाधक न हों।

(गर्भमें लिंगभेद)—अन्तराभव माता पिताका मैथुन क्रियाको देखता है, उस समय यदि स्त्री बननेवाला होता है तो उसको पुरुषमें आसक्ति हो जाती है और यदि पुरुष बननेवाला होता है, तो स्त्रीमें।

(i) गर्भाधान—मैथुनके पश्चात् पिताका बीज छूटता है और रक्तका बिन्दु भी। बीज और शोणित बिन्दु दोनों माँकी योनि ही में मिश्रित हो, एक पिंड बनकर उसमें ठहर गए दूधकी भाँति स्थित होते हैं। इसी पिंडमें सारे बीजोंको अपने भीतर रखनेवाला आलय विज्ञान समा जाता है। अन्तराभव उसमें आकर जुड़ जाता है। इस गर्भको कलल अवस्था कहते हैं। कललके जिस स्थानमें विज्ञान जुड़ता है वहाँ उसका हृदय स्थान होता है। (१) कललमें आगे बढ़ते हुए गर्भ और सात अवस्थाएँ धारण करता है—(२) अर्बुद (३) पेशी, (४) घन (५) प्रशाख, (६) केश रोम-नखवाली अवस्था (७) इन्द्रिय-अवस्था और (८) व्यंजन (=लिंगभेद) अवस्था। इनमें अर्बुद अवस्थामें गर्भ वहीं जमा होता है, वहाँ मासावस्था तक न पहुँचा अर्बुद होता है। पेशी शिथिल मांसकी होती है। कुछ और घना हो जानेपर घन शाखाकी भाँति हाथ-पैर आदिका फूटना प्रशाख होता है।

(ii) रंग आदि—बुरे कर्मोंके कारण अथवा माताके अधिक

क्षार लवण रसवाले अन्न पानके सेवनसे बालकके केशोंमें नाना रंग होते हैं। बालकके केश काले-गोरे होनेमें पूर्व जन्मके अतिरिक्त निम्न कारण हैं—यदि माँ बहुत गर्मी तथा धूप आदिका सेवन करती है तो बच्चा काला होगा। यदि माँ बहुत ठंढे कमरेमें रहती है तो लड़का गोरा। बहुत गर्म खाना खानेपर लड़का काला होगा। चर्मरोग दाद कुष्ट आदि विकार माताके अत्यन्त मधुन-सेवनसे होता है। माताके बहुत दौड़ने-कूदने तरहसे बच्चेके अंग विकृत होते हैं।

कन्या होनेपर गर्भ माताकी बायीं ओर जाता और होता है, और पुत्र होनेपर दाहिनी ओर। प्रसवके वक्त माताके उदरमें असह्य कष्ट देनेवाली हवा पैदा होती है जो गर्भके सिरको नीचे और पैरको ऊपर कर देती है।

(३) अनित्यवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद

इसे कोई दूसरा नहीं जनमाता और न वह स्वयं उत्पन्न होता है प्रत्ययके होनेपर भाव (=वस्तुएँ) पुराने नहीं बिल्कुल नये नये जनमते हैं। प्रत्ययके होनेपर भाव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हो स्वरस (=स्वतः) ही क्षणभंगुर हैं।[1]

महायानसूत्रकी इन गाथाओं द्वारा असंग बौद्ध-दर्शनके मूल सिद्धान्त अनित्यवाद या क्षणिकवादको बतलाया है। क्षणिकके अर्थको लेकर प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हुए उन्होंने क्षणिकवाद शब्दसे प्रतीत्य-समुत्पादको स्वीकार किया है।

प्रतीत्यसमुत्पाद—प्रतीत्य समुत्पादका अर्थ करते हुए असंग कहते हैं[2]—प्रतिगमन करके (=खतम करके एक चीजका दूसरीकी उत्पत्ति प्रतीत्य-समुत्पाद है।) प्रत्यय अर्थात् गतिशील अस्तित्व (=विनाश)के साथ उत्पत्ति प्रतीत्य-समुत्पाद है जो क्षणिकके अर्थको लेकर होता है

---

[1] देखो पृष्ठ १६ [2] यो० भू० (भूमि ३,४,५) "प्रत्ययतः इत्वरात्ययसंगत उत्पादः प्रतीत्य-समुत्पादः क्षणिकार्थमधिकृत्य।" [3] वहीं।

अथवा प्रत्यय प्रवाह [illegible] (=[illegible]) [illegible] उत्पन्न। इसके [illegible] [illegible] इसके उत्पन्न [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] उत्पन्न इस अर्थमें। अथवा [illegible] [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] उत्पन्न प्रत्यय-समुत्पन्न है।

और भी—

प्रतीत्य-समुत्पन्न क्या है? निश्चित (=[illegible])के अर्थमें। [illegible] [illegible] [illegible] अर्थमें। [illegible] [illegible] [illegible] अर्थमें। [illegible] [illegible] [illegible] अर्थमें। [illegible] [illegible] [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] अर्थमें। ([illegible])[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर्थमें। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर्थमें।

[illegible] [illegible] और [illegible] (=[illegible] [illegible])के [illegible] [illegible] (युद्ध)[illegible] प्रतीत्य-समुत्पन्न [illegible] क्या 'प्रतीत्य-समुत्पन्न गम्भीर'।

(वस्तुतः) प्रतिक्षण [illegible] [illegible] जानने योग्य (=प्रवृत्ति) करती है। प्रतीत्य-समुत्पन्न क्षणभंगुर है।[3]

(४) हेतु विद्या

अर्थात विद्या (=ज्ञान)का पांच प्रकारकी माना है—(१) अध्यात्मविद्या जिसमें बुद्धोक्त सूत्र, विनय और मातृका (=अभिधर्म) अर्थात त्रिपिटक तथा उसमें वर्णित विषय सम्मिलित हैं, (२) चिकित्सा

---

[1] यहाँ कुछ पहिले। [2] संयुत्तनिकाय २।६२, दीघनिकाय २।५५

[3] प्रतिक्षणं च सर्व संस्कारानि प्रवर्तन्ते। क्षणभंगुरश्च प्रतीत्य समुत्पादः"।

[4] यो० भू० (श्रुतमयी भूमि १०)

विद्या या वैद्यकशास्त्र (३) हेतुविद्या या तर्कशास्त्र (४) शब्दविद्या जिससे धर्म अर्थ पुद्गल (=जीव) काल संख्या और संज्ञाधिकरण (=व्याकरणशास्त्र) का ज्ञान होता है और शिल्पकर्मस्थानविद्या (=शिल्पशास्त्र)।

हेतुविद्याका कुछ विस्तारपूर्वक समझाते हुए असंग उसे छ भागोंमें बाँटते हैं—(१) वाद (२) वाद अधिकरण (३) वाद अधिष्ठान (४) वाद अलंकार (५) वाद निग्रह और (६) वादबहुकर (=वाद उपयोगी) वाद।

(क) वाद—वाद कहल या संलाप छ प्रकारके होते हैं।

(a) वाद—जो कुछ मुँहसे बोला जाय वह वाद है।

(b) प्रवाद—लोकश्रुति या जनश्रुति प्रवाद है।

(c) विवाद—भोगोंके ग्रहण-छीननेके सम्बन्धमें अथवा दृष्टि (=दर्शन) या विचारके संबंधमें परस्पर विरोधी वाद (=वाग्युद्ध) विवाद है।[1]

(d) अपवाद—निन्दा।

(e) अनुवाद—धर्मके बारेमें उठे संदेहको दूर करनेके लिए जो बात की जाय।

(f) अववाद—तत्त्वज्ञान करानेके लिए किया गया वाद।

इनमें विवाद और अपवाद त्याज्य हैं और अनुवाद तथा अववाद सेवनीय।

(ख) वाद-अधिकरण—वादके उपयुक्त अधिकरण या स्थान दो

---

[1] "कामेषु तद्यथा नट-नर्तक-लासक-हासकाद्युपसंहितेषु वा वश्या जनोपसंहितेषु वा पुनः संदर्शनाय वा उपभोगाय वा विगृहीतानां नानावादः। दृष्टेर्वा पुनः आरभ्य तद्यथा सत्कायदृष्टिः, उच्छेददृष्टिः, विषमहेतुदृष्टिः, शाश्वतदृष्टिः, यावगण्यदृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः मिति वा नानावादः।"

है राजा या वाग्वृत्तकी परिषद् और धर्म अर्थमें निपुण ब्राह्मणों या श्रमणोंकी सभा।

(ग) वाद अधिष्ठान—वादके अधिष्ठान (=मुख्य विषय) हैं दो प्रकारके साध्य और साध्यको सिद्ध करनेके लिए उपयुक्त होनेवाले आठ प्रकारके साधन। इसमें साध्यके सब मतोंके स्वभाव (=स्वरूप), तथा नित्य अनित्य भौतिक अभौतिक आदि विषयोंको लेकर साध्यके स्वभाव और विषय ये दो भेद होते हैं।

(आठ साधन)—साध्य वस्तुके सिद्ध करनेवाले साधन निम्न आठ प्रकारके हैं—

(a) प्रतिज्ञा—स्वभाव या विशेषवाले दोनों प्रकारके साध्योंको लेकर (वादी प्रतिवादीका) जो अपने पक्षका परिग्रह (=ग्रहण) है। वही प्रतिज्ञा है। यह पक्ष-परिग्रह शास्त्र(-मत)को स्वीकृतिसे हो सकता है या अपनी प्रतिभासे या दूसरेके निरूपणसे या दूसरेके शास्त्रीय मत (=अनुभव)से या तत्त्व-साक्षात्कारसे, या अपने पक्षकी स्थापनासे, या पर-पक्षके दूषणसे या दूसरेके पराजयसे, या दूसरेपर अनुकम्पासे भी हो सकता है।

(b) हेतु—उसी प्रतिज्ञावाली बातकी सिद्धिके लिए साधर्म्य (=सादृश्य) या वैधर्म्य उदाहरणकी सहायतासे, अथवा प्रत्यक्ष अनुमान या आप्त आगम (=शब्दप्रमाण अर्थ प्रमाण)से युक्तिका कहना हेतु है।

(c) उदाहरण—उसी प्रतिज्ञावाली बातकी सिद्धिके लिए हेतुपर आश्रित दुनियामें उचित प्रसिद्ध वस्तुको लेकर बात करना उदाहरण है।

(d) सारूप्य—किसी चीजका किसीके साथ सादृश्य सारूप्य कहा जाता है। यह पांच प्रकारका होता है।—(१) अनुमान या प्रत्यक्ष देख हेतुसे चिह्नको लेकर एक दूसरेका सादृश्य लिंग सादृश्य है, (२) परस्पर स्वरूप (=लक्षण) सादृश्य स्वभाव-सादृश्य कहा जाता है (३) परस्पर क्रिया-सादृश्यको कर्म-सादृश्य कहते हैं (४) धर्मता (=गुण)

सादृश्य धर्म-सादृश्य कहा जाता है, जैसे अनित्यमें दुःख धर्मताका सादृश्य दुःखमें नैरात्म्यधर्मताका निरात्मकोंमें जन्म धर्मताका इत्यादि (५) हेतुफल-सादृश्य, परस्पर कार्य कारण बननेका सादृश्य है।

(e) वैरूप्य—किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ अ-सदृश होना वैरूप्य है। यह भी लिंग- स्वभाव- कर्म- धर्म- और हेतुफल-सादृश्यके तौरपर पाँच प्रकारका होता है।

(f) प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो कि अ-पराक्ष (=इन्द्रियों परका नहीं) अनभ्यूहितअनभ्यूह्य और अ-भ्रान्त है।[1] यहाँ जो कल्पना नहीं सिर्फ (इन्द्रियके) ग्रहण मात्रसे सिद्ध है और जो वस्तु (=विषय) पर आधारित है उसे अनभ्यूहित अनभ्यूह्य कहते हैं। अभ्रान्त उसे कहते हैं जो कि पाँच भ्रान्तियोंसे मुक्त है। यह पाँच भ्रान्तियाँ हैं—

(i) सज्ञा भ्रान्ति—जैसे मृगतृष्णावाला (मरु) मरीचिकामें पानीकी सज्ञा (=ज्ञान)।

(ii) सख्या भ्रान्ति—जैसे धुंधवालेका एक चन्द्रमें दो चन्द्रका देखना।

(iii) सस्थान-भ्रान्ति—जैसे उनठा (=अनात)में (प्रकाश) चक्रका भ्रान्ति सस्थान(=आकार)-सबधी भ्रान्ति है।

(iv) वर्ण-भ्रान्ति—जैसे कामला रोगवाले आदमीको न पीली चीज भी पीला दिखलाई पड़ता है।

(v) कर्म भ्रान्ति—जैसे बड़ी मुट्ठी बाँधकर दौड़नेवालेको वृक्ष पीछे चलते दीख पड़ते हैं।

---

[1] "प्रत्यक्ष कल्पनापोढमभ्रान्त"—धर्मकीर्ति, प० ७६५ (असगानुज वसुबन्धुके शिष्य दिग्नागका भी यही मत)।

[2] "यो ग्रहणमात्रप्रसिद्धोपलब्ध्याश्रयो विषय यश्च विषयप्रतिष्ठोपलब्ध्याश्रयो विषय।" यो० भू०

चित्त-भ्रान्ति—उन पाँचों भ्रान्तियोंमें भ्रमपूर्ण विषयमें जितनी रुचि चित्त भ्रान्ति है।

दृष्टि-भ्रान्ति—उन पाँचों भ्रान्तियोंमें भ्रमपूर्ण विषयमें जो रुचि, स्थिति मगन मानना आसक्ति है उसे दृष्टिभ्रान्ति कहते हैं।

प्रत्यक्ष चार प्रकारका माना है—रूपी (=भौतिक), इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन अनुभव प्रत्यक्ष तीन प्रत्यक्ष और शुद्ध प्रत्यक्ष।[1] इन्द्रिय प्रत्यक्ष और मन अनुभव प्रत्यक्षको ही नाम लोक प्रत्यक्ष, है, यह असंग खुद मानते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष तीन ही हैं जिन्हें धर्मकीर्त्ति (दिङ्नाग और शायद उनके गुरु वसुबन्धु भी) इन्द्रिय प्रत्यक्ष मानस प्रत्यक्ष और योगि प्रत्यक्ष कहते हैं। हाँ वह लोक-प्रत्यक्षकी जगह स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे चारकी संख्या पूरी कर देते हैं इस तरह प्रत्यक्षके अपराध कल्पना रहित (=कल्पनापोढ) अभ्रान्त इन प्रत्यक्ष लक्षण और इन्द्रिय मानस योगि प्रत्यक्ष इन तीन भेदोंकी परम्परासे हम बौद्धन्यायके सबसे पीछेके ग्रन्थकार ज्ञानश्री मित्रसे असंग तक पाते हैं। असंगसे पाँच शताब्दी पहिले नागार्जुनसे और नागार्जुनसे शताब्दी पहिले अश्वघोष तक उसे जोड़नेका हमारे पास साधन नहीं है।

(g) **अनुमान**—ऊहा (=तर्क)से सम्यूहित (=तर्कित) और तर्कणीय जिसका विषय है वह अनुमान है। इसके पाँच भेद होते हैं—(१) लिंगसे किया गया अनुमान जैसे ध्वजसे रथका अनुमान धूमसे अग्नि राजासे राष्ट्र पतिसे स्त्री कबुर (=उडढा)-सींगसे बैलका अनुमान, (२) स्वभावसे अनुमान यह एक दाना (=अन्न)से सारेका अनुमान है, जैसे एक चावलके पकनेसे सारी हाँडीके पकनेका अनुमान (३) कर्मसे अनुमान, जैसे हिलते अंग-चालनसे पुरुषका अनुमान परदेकी चालसे हाथी शरीरकी गतिसे साँप हिनहिनानेसे घोड़ा हाँकनेसे साँडका अनुमान, दंशनसे आँख, सुननेसे

---

[1] शुद्ध प्रत्यक्ष योगि प्रत्यक्ष ही है "यो लोकोत्तरस्य ज्ञानस्य विषय।"

[1] 'तदुभयमेकध्यमभिसंक्षिप्य लोक प्रत्यक्षमित्युच्यते।' यो० भू०

कान, सूंघनसे घ्राण, चखनसे जिह्वा, छूनेसे त्वक्, जाननेसे मनका अनुमान पानीमें देखनेकी रुकावटसे पहिचान, चिकने हरे होनेसे जल, दाह भस्म देखनेसे आग, वनस्पतिके हिलनेसे हवा। (४) धर्म (=गुण)से अनुमान जैसे आत्मा होनेसे दुःख होनेका अनुमान, दुःख होनेसे शून्य और अनात्मक होनेका अनुमान। (५) कार्य-कारण (=हेतु फल)से अनुमान अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान तथा कारणसे कार्यका अनुमान, जैसे राजाकी सवारी महाऐश्वर्य (=महाभिसार)के लाभका अनुमान, महाऐश्वर्यके लाभसे राज-सवारीका अनुमान, बहुत भोजनसे तृप्ति, तृप्तिसे बहुत भोजन, विषम भोजनसे व्याधि, व्याधिसे विषम भोजनका अनुमान।

धर्मकीर्तिने तादात्म्य और तदुत्पत्तिसे अनुमानके जिन भेदोंको बतलाया है, वे अक्षपादके इन भेदोंमें भी मौजूद हैं।

(h) **आप्तागम**—यही शब्द प्रमाण है।

(घ) वाद-अलंकार—वादमें भूषण रूप हैं वक्ताकी निम्न पांच योग्यताएं—(१) **स्व-पर-समयज्ञता**—अपने और पराये मतोंकी अभिज्ञता। (२) **वाक्क्रम-संपन्नता**—बोलनेमें निपुणता जोकि अग्राम्य, लघु (=सुबोध) ओजस्वी संबद्ध (=परस्पर अविरोधी और अशिथिल) और सु अर्थ शब्दोंके प्रयोगको कहते हैं। (३) **वैशारद्य**—सभामें अज्ञानता निर्भीकता, नशीला मुख, दीन गद्गद स्वर न होना, अदीन वचन होनेको कहते हैं। (४) **स्थैर्य**—काल लगाकर जल्दी किये बिना बोलना। (५) **दाक्षिण्य**—मित्रकी भांति पर चित्तके अनुकूल बात करनेका ढंग।

(ङ) वाद-निग्रह—वादमें पकड़ा जाना जिससे कि वादी पराजित हो जाता है। ये तीन हैं—कथा-त्याग, कथा-भ्रंश (=इधर उधरकी बातें करने लगना) और कथा-दोष। बढ़ाकर बोलना, अ-परिमित बोलना, अनर्थवाली बात बोलना, असमय बोलना, अ-स्थिर, अ-दीप्त और अ-संबद्ध बोलना ये कथा-दोष हैं।

(च) वाद-निःसरण—गुण-दोष, कौशल्य (=निपुणता) और सभाकी परीक्षा करके वादको न करना वाद-निःसरण है।

(छ) वादबहुकर बातें—ये हैं वादकी उपयोगी बातें स्व-पर-मत अभिज्ञता, वैशारद्य और प्रतिभान्विता।

(५) परमत खंडन

असंगत योगाचार भूमिमें सोलह पर-वाद (=दूसरोंके मत)का लेकर उनका खंडन किया है। ये पर-वाद हैं—

(क) हेतु फल-सद्भाव—हेतु (=कारण)में फल (=कार्य) सदा मौजूद रहता है जैसा कि सांख्यगण (सांख्य) मानते हैं। वे अपने इस सद्भाव (पक्ष यही सत्कार्यवाद)का आगम (=ग्रंथ)पर आधारित तथा युक्ति-सम्मत मानते हैं। वे कहते हैं जो फल (=कार्य) जिससे उत्पन्न होता वह उसका हेतु (=कारण) होता है इसीलिए आदमी जिस फलको चाहता है वह उसीके हेतुका उपयोग करता है दूसरेका नहीं। यदि ऐसा न होता तो जिस किसी वस्तु (तेलके लिए तिल नहीं रेत आदि किसी भी चीज)का भी उपयोग करता।

खंडन—मगर उनका यह वाद गलत है। आप हेतु (=कारण) को फल(=कार्य)-स्वरूप मानते हैं या भिन्न स्वरूप? यदि हेतु फल स्वरूप ही है अर्थात दोनों अभिन्न हैं, तो हेतु और फल हेतुसे फल यह कहना गलत है। यदि भिन्न स्वरूप है तो सवाल होगा—वह भिन्न स्वरूप उत्पन्न हुआ है या अनुत्पन्न? उत्पन्न माननेपर हेतुमें फल है कहना ठीक नहीं। यदि उत्पन्न मानते हैं तो जो अनुत्पन्न है वह हेतुमें है कैसे कहा जायगा? इसलिए हेतुमें फलका सदभाव नहीं होता हेतुके होनेपर फल उत्पन्न होता है। अतएव नित्य काल सनातनसे हेतुमें फल विद्यमान है यह कहना ठीक नहीं है। यह वाद अयोग विहित (=युक्ति रहित) है।

(ख) अभिव्यक्तिवाद—अभिव्यक्ति या अभिव्यंजनावादके अनुसार पदार्थ उत्पन्न नहीं होते बल्कि अभिव्यक्त (=प्रकाशित) होते हैं। हेतु फल सद्भावके माननेवाले सांख्य और शब्द लक्षणवादी वैयाकरणोंका

यही मत है। हेतु-फल सद्भावके अनुसार फल(=कार्य) यदि पहिलेहीसे मौजूद है तो प्रयत्न करनेकी क्या जरूरत? अभिव्यक्तिके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

खंडन—क्या आप अनभिव्यक्तिमें आवरण करनेवाले कारणके होने को मानते हैं या न होनेको? 'आवरण-कारणके न होनेपर' यह कह नहीं सकते। 'होनेपर' भी नहीं कह सकते, क्योंकि जब वह हेतुको नहीं ढाँक सकता जो कि सदा फल-संयुक्त है तो फलको कैसे ढाँक सकता है? हेतु-फल-सद्भाव वस्तुतः गलत है। वस्तुओंके अभिव्यक्त न होनेके छः कारण हैं[1]—(१) दूर होनेसे (२) चार प्रकारके आवरणोंसे ढँके होनेसे (३) सूक्ष्म होनेसे, (४) चित्तके विक्षेपसे (५) इन्द्रियके उपघातसे, (६) इन्द्रिय संबंधी ज्ञानोंके न पानेसे।

जिस तरह सांख्योंका हेतु फल अभिव्यक्तिवाद गलत है वैसे ही वैयाकरणों (और मीमांसकोंका भी) शब्द अभिव्यक्तिवाद भी गलत है। 'शब्द नित्य है' यह युक्तिहीन वाद है।

(ग) भूत-भविष्यके द्रव्योंका सद्भाव—यह बौद्ध सर्वास्तिवादियोंका मत है। अश्वघोष(५० ई०)से असंगके समय तक गंधार(असंगकी जन्म भूमि) सर्वास्तिवादियोंका गढ़ चला आया था। असंगके अनुज वसुबन्धुका महान ग्रंथ अभिधर्मकोश तथा उसपर स्वरचित भाष्य सर्वास्तिवाद(=वैभाषिक)के ही ग्रंथ हैं। लेकिन अब गंधार तथा सारे भारतमें इन प्राचीन (=स्थविर) बौद्ध संप्रदायोंका नाश होनेवाला था और उनका स्थान महायान लेने जा रहा था। सर्वास्तिवादी कहते अतीत (=भूत) है अनागत (=भविष्य) है क्योंकि उसी तरह लक्षण-संपन्न है जैसे कि वर्तमान द्रव्य।

---

[1] ईश्वरकृष्णने भी सांख्य-कारिकामें इन हेतुओंको गिनाया है। ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम विंध्यवासी भी था, और उनकी प्रतिद्वंद्विता असंगानुज वसुबन्धुसे थी, यह हमें चीनी लेखोंसे मालूम है।

[illegible]—[illegible] (=[illegible])[illegible]

(घ) आत्मवाद—[illegible] (=[illegible])[illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

सृष्टि है तब ईश्वर और यह ठीक नहीं, (क्योंकि दोनों तब अनादि होंगे)। [illegible] कारण सृष्टि के [illegible] भी बनी रहे[1]। इस प्रकार सामर्थ्य जगतमें अलभ्य अनन्तभूत [illegible] मंत्रयोजन निष्प्रयोजन और हेतु होनेवाले [illegible] विचार करनेसे पता लगा कि सृष्टिकर्ता ईश्वर मानना बिल्कुल [illegible]।

(ज) हिंसाधर्मवाद—[illegible] मंत्रविधिके अनुसार हिंसा (=प्राणातिपात) करना है हनन करना है या जो हनन होता है (पशु) और जो [illegible] सहायक होता है सभी स्वर्ग जाते हैं—यह याज्ञिकों (और मीमांसकों)का मत हिंसाधर्मवाद है। कलियुगके आनेपर ब्राह्मणोंने पुराने ब्राह्मण धर्मको छोड़ मांस खानेकी इच्छासे इस (हिंसाधर्म)का विधान किया।

हेतु दृष्टान्त व्यभिचार फलशक्तिके अभाव मंत्रप्रणेताके संबंधसे विचार करनेपर यह बात अयुक्त ठहरती है।

(झ) अन्तानन्तिकवाद—लोक अन्तवान् लोक अनन्तवान् है इस वादको अन्तानन्तिकवाद कहते हैं। बुद्धके उपदेशोंमें भी इस वादका जिक्र आया है।

(ञ) अमराविक्षेपवाद—यह वाद भी बुद्ध-वचनोंमें मिलता है और पहिले इसके बारेमें कहा जा चुका है।[2]

(ट) अहेतुकवाद—आत्मा और लोक अहेतुक (=बिना हेतुके) हैं यह अहेतुकवाद है, यह भी पीछे आ चुका है।[3] अभावके अनुस्मरण आत्माके अनुस्मरण बाह्य आभ्यन्तर जगतमें निर्हेतुक वैचित्र्यपर विचार करनेसे यह बात अयुक्त जान पड़ती है।

(ठ) उच्छेदवाद—आत्मा रूपी स्थूल चार महाभूतोंसे बना है, वह राग [illegible] शल्य-सहित है। मरनेके बाद वह उच्छिन्न हो जाता है

---

[1] देखो दीघनिकाय १।१ [2] देखो पीछे, पृष्ठ ४६१
[3] देखो पीछे पृष्ठ ४८७ देखो पीछे पृष्ठ ४८५ ६

अकेला पृथिवी द्रव्य, चर्म सार-तडाग-नदी प्रपात आदिमें सिर्फ अकेला जल, दीपक उल्का आदिमें अकेला अग्नि, परवा-पछवाँ आदिमें अकेला वायु। कहीं दो-दो द्रव्य इकट्ठा मिलते हैं जैसे वृक्ष-पत्ता फल फूल आदिमें और मणि आदिमें भी। कहीं कहीं वर्षादिके तप्त होनेपर तीन भी। और कहीं कहीं चार भी जैसे शरीरके भीतरके कफसे लेकर मल मूत्र तकमें। खक्खट (=खटखट) माने पृथिवीका सूचक है, बहना जलका ऊपरकी ओर जलना अग्निका और ऊपरकी ओर जाना वायुका। जहाँ जो जो मिले, वहाँ उस महाभूतका मानना चाहिए। सभी रूप समुदायमें सार महाभूत रहते हैं, इसीलिए तो सूखे काठ (=पृथिवी)की मथनेसे आग पैदा होती है, अतिसंतप्त लोहा रूपा सुवर्ण पिघल जाते हैं।

(ख) वेदना—वेदना अनुभव करनेको कहते हैं।

(ग) संज्ञा—संज्ञा सजानने जाननेको कहते हैं।

(घ) संस्कार—चित्तमें संस्कारको कहते हैं।

(ङ) विज्ञान—विज्ञानके प्रारंभमें पहिले कहा जा चुका है।

(२) परमाणु—बीजकी भाँति परमाणु सार रूपा स्थूल द्रव्योंका निर्माण करते हैं, वह सूक्ष्म और नित्य होते हैं। असंग इन परमाणुओंकी सत्ताका खण्डन करते हैं।—

परमाणुके संचयसे रूपसमुदाय नहीं तैयार हो सकता, क्योंकि परमाणुके परिमाण अन्त परिच्छेदका ज्ञान बुद्धि (=कल्पना)पर निर्भर है (प्रत्यक्षपर नहीं)। परमाणु अवयव रहित है, फिर वह सावयव द्रव्योंका निर्माण कैसे कर सकता है? परमाणु अवयव सहित है, यह नहीं कह सकते, क्योंकि परमाणु ही अवयव है और अवयव द्रव्यका होता है, परमाणुका नहीं।

परमाणु नित्य है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि इस नित्यताकी परीक्षा करके किसीने सिद्ध नहीं किया। सूक्ष्म होनेसे परमाणु नित्य है, यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि सूक्ष्म होनेसे तो वह अधिक दुर्बल (अतएव भंगुर) होगा।

[illegible] । [illegible] स्नान मात्र शुद्धि मानते हैं । [illegible] कुक्कुर व्रत (=[illegible] हाथ बिना लगाये मुँह से खाना वैसे ही हाथ पर [illegible] खाना खाना आदि) गोव्रत [illegible]-व्रत, [illegible], भस्म-व्रत, [illegible] विष्ठा-व्रत जैसे व्रतों से शुद्धि मानते हैं, इस शुद्धिवाद [illegible] कहते हैं ।

खंडन—यदि आध्यात्मिक बात [illegible] तो [illegible] स्नानसे कुछ न [illegible] ।

(त) कौतुकमंगलवाद—सूर्य-ग्रहण चन्द्र-ग्रहण, ग्रहों-नक्षत्रों विशेष स्थिति आदमी [illegible] सिद्धि या असिद्धि होती है । इस लिए ऐसा विश्वास रखनेवाले (=कौतुकमंगलवादी) लोग सूर्य आदि की पूजा करते हैं [illegible] जप तपण, कुम्भ, बेल(=बिल्व) शंख आदि चढ़ाते हैं जैसा कि ज्योतिषी (=गाणितिक) करते हैं ।

खंडन—ग्रह सूर्य चन्द्र-ग्रहण आदि कारण पुरुषकी सम्पत्ति विपत्तिका होता है या उसके अपने शुभ अशुभ कर्मसे ? यदि ग्रहण आदि से शुभ अशुभ कर्म फलते यदि शुभ अशुभ कर्मसे तो ग्रहणसे कहना ठीक नहीं ।

४—अन्य विचार

अजीवन स्कंध द्रव्य परमाणुके बारेमें भी अपने विचार प्रकट किए हैं ।

(१) स्कंध—

(क) रूप-स्कंध या द्रव्य—रूप-समुदाय (=रूपस्कंध)में चौदह द्रव्य हैं—पृथिवी-जल अग्नि-वायु चार महाभूत रूप शब्द-गंध रस स्प्रष्टव्य पाँच इंद्रिय विषय और चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा-काय(=त्वक) पाँच इंद्रियाँ ।

ये द्रव्य कहीं कहीं अकेले मिलते हैं जैसे हीरा शंख शिला-मूँगा आदिमें

अकेला पृथिवी-द्रव्य, वहमा सार-तडाग-नदी प्रपात आदिमे सिर्फ अकेला जल दीपक-उल्का आदिमे अकेला अग्नि पुरवा-पछवा आदिमे अकेला वायु। कहीं दो दो द्रव्य इकट्ठा मिलते हैं जैसे वृक्ष पत्ता फल फूल आदिमे और मणि आदिमे भी। कहीं-कहीं वक्षादिके तप्त होनेपर तीन भी। और कहीं कहीं चार भी, जैसे शरीरके भीतरके केशसे लेकर मल-मूत्र तकमें। खरखट (=खटखट) होना पृथिवीका सूचक है, बहना जलका ऊपरकी ओर जलना अग्निका और ऊपरकी ओर जाना वायुका। जहाँ जो-जो मिलें, वहाँ उस महाभूतका मानना चाहिए। सभी रूप-समुदायमें सारे महाभूत रहते हैं इसीलिए तो सूखे काठ (=पृथिवी)का मथनेसे आग पैदा होती है अतिसंतप्त चाँदी रूपा-सुवर्ण पिघल जाते हैं।

(ख) वेदना—वेदना अनुभव करनेको कहते हैं।

(ग) संज्ञा—संज्ञा संजानन, जाननेको कहते हैं।

(घ) संस्कार—चित्तमें संस्कारको कहते हैं।

(ङ) विज्ञान—विज्ञानके बारेमें पहिले कहा जा चुका है।

(२) परमाणु—बीजकी भाँति परमाणु सार रूपी स्थूल द्रव्योंका निर्माण करते हैं वह सूक्ष्म और नित्य होते हैं। श्रमण इन परमाणुओंकी सत्ताका खंडन करते हैं।—

परमाणुके संचयसे रूपसमुदाय नहीं तैयार हो सकता क्योंकि परमाणुके परिमाण, अल्प परिच्छिन्नता आदि बुद्धि (=कल्पना)पर निर्भर हैं, (प्रत्यक्षपर नहीं)। परमाणु अवयव रहित हैं फिर वह सावयव द्रव्योंका निर्माण कैसे कर सकता है? परमाणु अवयव सहित हैं यह नहीं कह सकते क्योंकि परमाणु ही अवयव हैं, और अवयव द्रव्यका होता है परमाणुका नहीं।

परमाणु नित्य हैं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि इस नित्यताकी परीक्षा करके किसीने सिद्ध नहीं किया। सूक्ष्म होनेसे परमाणु नित्य हैं यह भी कहना ठीक नहीं क्योंकि सूक्ष्म होनेसे तो वह अधिक दुर्बल (अतएव भंगुर) होगा।

§ २–दिग्नाग (४२५ ई०)

वसुबन्धुके तरह दिग्नागका भी छोटेसे भाग बहुत नहीं चाहिए, यह मैं मानता हूँ किन्तु मैं धर्मकीर्तिके कथनके बाद उनके प्रमाणवार्तिकके आधारपर संक्षिप्त लिखने जा रहा हूँ। प्रमाणवार्तिक वस्तुतः आचार्य दिग्नागके प्रधान ग्रंथ प्रमाणसमुच्चयकी व्याख्या (वार्तिक) है—जिसमें धर्मकीर्तिने अपनी मौलिक दृष्टिसे लिखने के जगह दिग्नागके मतको खंडन करके भी प्रकट किया—इसलिए दिग्नागपर और लिखनेका मतलब पुनरुक्ति और ग्रंथविस्तार होगा। दिग्नागके बारेमें मैंने अन्यत्र[1] लिखा है—

दिग्नाग (४२५ ई०) वसुबन्धुके शिष्य थे, यह तिब्बतकी परंपरासे मालूम होता है। और तिब्बतमें इस संबंधकी यह परंपराएं आठवीं शताब्दीमें भारतसे गई थीं इसलिए उन्हें भारतीय-परंपरा ही कहना चाहिए। यद्यपि चीनी परंपरामें दिग्नागके वसुबन्धुके शिष्य होनेका उल्लेख नहीं है तो भी वहाँ उसके विरुद्ध भी कुछ नहीं पाया जाता। दिग्नागका काल वसुबन्धु और कालिदासके बीचमें हो सकता है और इस प्रकार उसे ४२५ ई० के आसपास माना जा सकता है। न्यायमुख आदिरिक्त दिग्नागका मुख्य ग्रंथ प्रमाणसमुच्चय है जो सिर्फ तिब्बती भाषामें ही मिलता है। उसी भाषामें प्रमाण समुच्चयपर महाव्याकरण कारिकाविवरणपञ्जिका (=न्यास)के कर्ता जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई०)की टीका भी मिलती है।

दिग्नागका जन्म तमिल प्रदेशके काञ्ची (=कांजीवरम्)के पास 'सिंहवक्त्र' नामके गाँवमें एक ब्राह्मण घरमें हुआ था। सयाना होनेपर वह वात्सीपुत्रीय बौद्धसम्प्रदायके एक भिक्षु नागदत्तके संघमें आ भिक्षु बने। कुछ समय पढ़नेके बाद अपने गुरुसे उनका पुद्गल (=आत्मा)के बारेमें

---

[1] पुरातत्त्व निबन्धावली पृष्ठ २१४ १५

[2] वात्सीपुत्रीय बौद्धोंके पुराने सम्प्रदायोंमें वह सम्प्रदाय है, जो अनात्मवादसे साफ इन्कार न करते भी, छिपे तौरसे एक तरहके आत्मवादका समर्थन करना चाहता था।

मतभेद हो गया, जिसके कारण उन्होंने मठको छोड दिया, और वह उत्तर भारतमें आ आचार्य वसुबंधुके शिष्यमें दाखिल हो गए, और न्यायशास्त्र-का विशेषतौरसे अध्ययन किया। अध्ययनके बाद उन्होंने शास्त्रार्थोंमें प्रतिद्वंदियोंपर विजय (दिग्विजय) पाने और न्यायके थोड़े किंतु गंभीर ग्रंथोंके लिखनेमें समय बिताया।

दिग्नागके प्रधान ग्रंथ प्रमाणसमुच्चयमें परिच्छेदों और श्लोकों (=कारिकाओं)की संख्या निम्न प्रकार है—

परिच्छेद	विषय	श्लोक संख्या
१	प्रत्यक्ष-परीक्षा	४८
२	स्वार्थानुमान-परीक्षा	४१
३	परार्थानुमान-परीक्षा	५०
४	दृष्टान्त-परीक्षा	२१
५	अपोह-परीक्षा	५२
६	जाति-परीक्षा	२५
		२४७

प्रमाण-समुच्चयका मूल संस्कृत अभी तक नहीं मिल सका है, मैंने अपनी चार तिब्बत यात्राओंमें इस ग्रंथके ढूंढनेमें बहुत परिश्रम किया, किन्तु इसमें सफलता नहीं मिली, किन्तु मुझे अब भी आशा है, कि वह तिब्बतके किसी मठ, स्तूप या मूर्तिके भीतरसे जरूर कभी मिलेगा।

प्रमाणसमुच्चयके प्रथम श्लोकमें दिग्नागने ग्रंथ लिखनेका प्रयोजन इस प्रकार लिखा है[1]—

"जगत्के हितैषी प्रमाणभूत उपदेष्टा बुद्धको नमस्कार कर, जहाँ-तहाँ फैले हुए अपने मतोंका यहाँ एक जगह प्रमाणसिद्धिके लिए जमा किया जायगा।

---

[1] "प्रमाणभूताय जगद्धितैषिणे प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने।
प्रमाणसिद्ध्यै स्वमतात् समुच्चयः करिष्यते विप्रसितादिहैकतः।"

[illegible] ग्रन्थ [illegible] दूसरे [illegible] और वात्स्यायन के भाष्य की [illegible] इतना तर्कगत आलोचना की है, कि वात्स्यायन के भाष्यपर पाशुपत [illegible] उद्योतकर भारद्वाजका लिए उनका [illegible] लिए न्यायवार्तिक लिखा गया।[1]

§ ३—धर्मकीर्त्ति (६०० ई०)

[illegible] धर्मकीर्त्ति [illegible] थे। धर्मकीर्त्ति की प्रतिभा [illegible] उनके [illegible] प्रतिद्वन्द्वी भी माना था। उद्योतकर (५५० ई०) के न्यायवार्तिक का न्यायवार्तिक ग्रन्थ तर्कगत द्वारा छिन्न भिन्न कर दिया था कि वाचस्पति (८४१) ने उसपर टीका[2] करके (धर्मकीर्त्ति के) तर्कपक्ष में मग्न उद्योतकरके ग्रन्थ की गायों के उद्धार करने का पुण्य प्राप्त करना चाहा। जयन्त भट्ट (१००० ई०) ने धर्मकीर्त्ति के ग्रन्थ की आलोचना करते हुए भी उनकी 'सुनिपुणबुद्धि' मानी, तथा उनके प्रयत्नको 'जगदभिभव धीर' माना।[3] अपनेको अद्वितीय कवि और दार्शनिक समझनेवाले श्रीहर्ष (११६२ ई०) ने धर्मकीर्त्ति के तर्कपक्ष को 'दुराधार' कहकर उनकी प्रतिभाका समर्थन किया। वस्तुतः धर्म

---

[1] यदक्षपाद प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद।
कुतर्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुं करिष्यते तस्य मया निबन्ध ॥
—न्यायवार्तिक १।१।१

[2] न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका १।१।१

[3] इति सुनिपुणबुद्धिलक्षणं वस्तुकाम पदयुगलमपाद निर्ममे मानवद्यम्।
भवतु मतिमहिम्नश्चर्चितं दृष्टमेतज्जगदभिभवधीरं धीमतो धर्मकीर्तेः।
—न्यायमञ्जरी, प० १००
दुराधार इव चायं धर्मकीर्तेः पन्था इत्यवहितेन भाव्यमिहेति ॥
—खण्डनखण्डखाद्य १

कीर्त्तिकी प्रतिभाका लोहा तब उन्हें आजकी विद्वन्मंडली मान सकती है क्योंकि आजकी दार्शनिक और तार्किक प्रगतिमें उसके मूल्यका वह ज्यादा समझ सकते हैं।

१ जीवनी—धर्मकीर्त्तिका जन्म चोल (=उत्तर तमिल) प्रान्तके तिरुमल नामक ग्राममें एक ब्राह्मणके घरमें हुआ था। उनके पिताका नाम तिब्बती परंपरामें कारुनन्द (?) मिलता है और किसी किसीमें यह भी कहा गया है कि वह कुमारिलभट्टके भाई थे। यदि यह ठीक है—जिसकी बहुत कम संभावना है—तो प्रामाणिक तर्कोंका भाजन जिस तरह प्रमाण वार्त्तिकमें खंडन करते हुए मार्मिक परिहास किया है वह उन सजीव हास्य-प्रिय व्यक्तिके रूपमें हमारे सामने ला रखता है। धर्मकीर्त्ति बचपनसे ही बड़े प्रतिभाशाली थे। पहिले उन्होंने ब्राह्मणोंके शास्त्रों और वेद-वेदांगोंका अध्ययन किया। उस समय बौद्धधर्मकी ध्वजा भारतके कोने कोनेमें फहरा रही थी, और नागार्जुन वसुबंधु दिग्नागका बौद्धदर्शन विरोधियोंमें प्रतिष्ठा पा चुका था। धर्मकीर्त्तिको उसके बारेमें जाननेका मौका मिला और वह उससे इतने प्रभावित हुए कि तिब्बती परंपराके अनुसार उन्होंने बौद्ध गृहस्थोंके वेषमें बाहर आना जाना शुरू किया (?) जिसके कारण ब्राह्मणोंने उनका बहिष्कार किया। उस वक्त नालन्दाकी ख्याति भारतसे दूर-दूर तक फैली हुई थी। धर्मकीर्त्ति नालन्दा चले आये और अपने समयके महान विज्ञानवादी दार्शनिक तथा नालन्दाके संघ-स्थविर (=प्रधान) धर्मपालके शिष्य बन भिक्षुसंघमें सम्मिलित हुए।

धर्मकीर्त्तिकी न्यायशास्त्रके अध्ययनमें ज्यादा रुचि थी और उसे उन्होंने दिग्नागकी शिष्य-परंपराके आचार्य ईश्वरसेनसे पढ़ा।

विद्या समाप्त करनेके बाद उन्होंने अपना जीवन ग्रंथ लिखने, शास्त्रार्थ करने और पढ़नेमें बिताया।

(धर्मकीर्त्तिका काल ६०० ई०)[1]— चीनी पर्यटक इ त्सिङ्ग धर्म

---

[1] मेरी "पुरातत्त्वनिबंधावली", पृष्ठ २१५ १७

कीर्तिका वर्णन अपने ग्रंथमें किया है इसलिए धर्मकीर्ति ६७९ ई०से पहिले हुए (इसमें संदेह नहीं)। धर्मकीर्ति नालन्दाके प्रधान आचार्य धर्मपालके शिष्य थे। युवान् च्वाङ्ग समय (६३३ ई०) धर्मपालके शिष्य शीलभद्र नालन्दाके प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्षकी थी। इसी अवस्थामें धर्मपालके शिष्य धर्मकीर्ति ६२५ ई०में बच्चे नहीं हो सकते थे। (धर्मकीर्तिके बारेमें) युवान् च्वाङ्गकी चुप्पीका कारण दन्तकथा हो चुका होना है।

यह और दूसरा बयान विलक्षण हुए धर्मकीर्तिका समय ६०० ई० ठीक मालूम होता है।

२ धर्मकीर्तिके ग्रंथ—धर्मकीर्तिके अपने ग्रंथ सिर्फ प्रमाण-सम्बद्ध बौद्धन्याय या बौद्ध प्रमाणशास्त्रपर लिखे हैं। इनकी संख्या सात है, जिनमें सात मूल ग्रंथ और सात अपने ही ग्रंथोंपर टीकाएं हैं।

ग्रंथनाम	ग्रंथपरिमाण (श्लोकोंमें)	गद्य या पद्य
१ प्रमाणवार्तिक	१४८४½	पद्य
२ प्रमाणविनिश्चय	१३४०	गद्य-पद्य
३ न्यायबिन्दु	१७७	गद्य
४ हेतुबिन्दु	८४४	गद्य
५ संबंध-परीक्षा	२९	पद्य
६ वाद-न्याय	७९८	गद्य-पद्य
७ सन्तानान्तर सिद्धि	७२	पद्य
	४३१४½	

टीकाएं—

१ (८) वृत्ति	३५००	गद्य	प्रमाणवार्तिक १ परिच्छेदपर।
२ (९) वृत्ति	१४७	गद्य	संबंधपरीक्षापर
	३६४७		

गोया धर्मकीर्तिने मूल और टीका मिलाकर (४३१४½ + ३६४७) ७९६१½ श्लोकों[1] के बराबर ग्रंथ लिखे। धर्मकीर्तिके ग्रंथ कितने महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे, यह इसीसे पता लगता है कि तिब्बती भाषामें अनुवादित बौद्ध न्यायके कुल संस्कृत ग्रंथोंके १७५००० श्लोकोंमें १३७००० धर्मकीर्तिके ग्रंथोंकी टीका अनुटीकाओंके हैं।[2]

---

[1] श्लोकसे ३२ अक्षर समझना चाहिए।

[2] टीकाएं इस प्रकार हैं—

मूल ग्रंथ		टीकाकार	किस परिच्छेदपर	ग्रंथ-परिमाण
१ प्रमाण वार्तिक	१	देवेन्द्रबुद्धि (पंजिका) T	२ ४	८,७४८
	२	शाक्यबुद्धि (पंजिका-टीका) T	२ ४	१७,०४६
	३	प्रज्ञाकरगुप्त (भाष्य) TS	२ ४	१६,२७६
	४	जयानन्त (भाष्यटीका) T	२ ४	१८,१४८
	५	यमारि (भाष्यटीका) T	२ ४	२६,५५२
	६	रविगुप्त (भाष्यटीका) T	२ ४	७,५५२
	७	मनोरथनन्दी (वृत्ति) S	१ ४	८,०००
	८	धर्मकीर्ति (स्ववृत्ति) TS	१	३,५००
	९	शक्रानन्द (स्ववृत्ति-टीका) T (अपूर्ण)	१	७,५७८
	१०	कर्णकगोमी (स्ववृत्ति-टीका) S	१	१०,०००
	११	शाक्यबुद्धि (स्ववृत्तिटीका) T	१	
२ प्रमाण विनिश्चय	१	धर्मोत्तर (टीका) T	१ ३	१२,४६३
	१	ज्ञानश्री (टीका) T		३,२७१
३ न्याय बिन्दु	१	विनीतदेव (टीका) T	१ ३	१,०३०
	२	धर्मोत्तर (टीका) TS	१-३	१,४७७
	३	दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) S	१ ३	
	४	कमलशील (टीका) T		२२१

वार्तिका वर्णन अपने ग्रंथमें किया है, इसलिए धर्मकीर्त्ति ६७९ ई०से पहिले हुए (इसमें संदेह नहीं)। धर्मकीर्त्ति नालंदाके प्रधान आचार्य धर्मपालके शिष्य थे। युन् च्वंङके समय (६३३ ई०) धर्मपालके शिष्य शीलभद्र नालंदाके प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्षकी थी। ऐसी अवस्थामें धर्मपालके शिष्य धर्मकीर्त्ति ६३५ ई०में बच्चे नहीं हो सकते थे। (धर्मकीर्त्तिके बारेमें) युन् च्वङकी चुप्पीका कारण हो सकता है युन् च्वङके नालंदा निवासके समयसे पहिले धर्मकीर्त्तिका देहान्त हो चुका होना हो।

यह और दूसरी बातोंपर विचारते हुए धर्मकीर्त्तिका समय ६०० ई० ठीक मालूम होता है।

२ **धर्मकीर्त्तिके ग्रंथ**—धर्मकीर्त्तिने अपने ग्रंथ सिर्फ प्रमाण-संबंधी बौद्धदर्शन या बौद्ध प्रमाणशास्त्रपर लिखे हैं। इनकी संख्या नौ है, जिनमें सात मूल ग्रंथ और दो अपने ही ग्रंथोंपर टीकाएं हैं।

	ग्रंथनाम	ग्रंथपरिमाण (श्लोकोंमें)	गद्य या पद्य
१	प्रमाणवार्त्तिक	१४५४½	पद्य
२	प्रमाणविनिश्चय	१३४०	गद्य पद्य
३	न्यायबिन्दु	१७७	गद्य
४	हेतुबिन्दु	८४४	गद्य
५	संबंध-परीक्षा	२९	पद्य
६	वादन्याय	७९८	गद्य-पद्य
७	सन्तानान्तर सिद्धि	७२	पद्य
		४३१४½	

टीकाएं—

१	(८) वृत्ति	३५००	गद्य	प्रमाणवार्त्तिक १ परिच्छेदपर।
२	(९) वृत्ति	१४७	गद्य	संबंधपरीक्षापर
		३६४७		

गाथा धर्मकीर्त्तिने मूल और टीका मिलाकर (४३१४½+३६४७) ७९६१½ श्लोक[1]के बराबर ग्रंथ लिखे हैं। धर्मकीर्त्तिके ग्रंथ कितने महत्त्व-पूर्ण समझे जाते थे, यह इसीसे पता लगता है कि तिब्बती भाषामें अनुवादित बौद्ध न्यायके कुल संस्कृत ग्रंथोंके १७५००० श्लोकोंमें १३७००० धर्मकीर्त्तिके ग्रंथोंकी टीका अनुटीकाओंके हैं।[2]

---

[1] श्लोकसे ३२ अक्षर समझना चाहिए।

[2] टीकाएं इस प्रकार हैं—

मूल ग्रंथ		टीकाकार	किस परिच्छेदपर	ग्रंथ-परिमाण
१ प्रमाण-वार्त्तिक	१	देवेन्द्रबुद्धि (पंजिका) T	२ ४	८,७४८
	२	शाक्यबुद्धि (पंजिका-टीका) T	२ ४	१७,०४६
	३	प्रज्ञाकरगुप्त (भाष्य) TS	२-४	१६,२७६
	४	जयानन्त (भाष्यटीका) T	२ ४	१८,१४८
	५	यमारि (भाष्यटीका) T	२-४	२६,५५२
	६	रविगुप्त (भाष्यटीका) T	२ ४	७,५५२
	७	मनोरथनन्दी (वृत्ति) S	१ ४	८,०००
	८	धर्मकीर्त्ति (स्ववृत्ति) TS	१	३,५००
	९	शंकरानंद (स्ववृत्ति-टीका) T (अपूर्ण)	१	७,५७८
	१०	कर्णकगोमी (स्ववृत्ति-टीका) S	१	१०,०००
	११	शाक्यबुद्धि (स्ववृत्तिटीका) T	१	
२ प्रमाण विनिश्चय	१	धर्मोत्तर (टीका) T	१ ३	१२,४६३
	१	ज्ञानश्री (टीका) T		३,२७१
३ न्याय-बिन्दु	१	विनीतदेव (टीका) T	१ ३	१,०३०
	२	धर्मोत्तर (टीका) TS	१-३	१,४७७
	३	दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) S	१ ३	
	४	कमलशील (टीका) T		२२१

	५	जिनमित्र (टीका) T		३१
४ हेतुबिन्दु	१	विनीतदेव (टीका) T	१४	२,२६८
	२	अर्चट (विवरण) TS	१४	१,७६८
	३	दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) T	१४	"
५ सबंध परीक्षा	१	धर्मकीर्त्ति (वृत्ति) T		१४७
	५	विनीतदेव (टीका) T		५४८
	३	शंकरानंद (टीका) T		३८४
६ वादन्याय	१	विनीतदेव (टीका) T		६०९
	२	शांतरक्षित (टीका) TS		२,९००
७ संतानान्तर सिद्धि	१	विनीतदेव (टीका) T		४७४

I T तिब्बती भाषानुवाद उपलब्ध, S=संस्कृत मूल, मौजूद।

II प्रमाणवार्त्तिकके टीकाकारोंका क्रम इस प्रकार है—

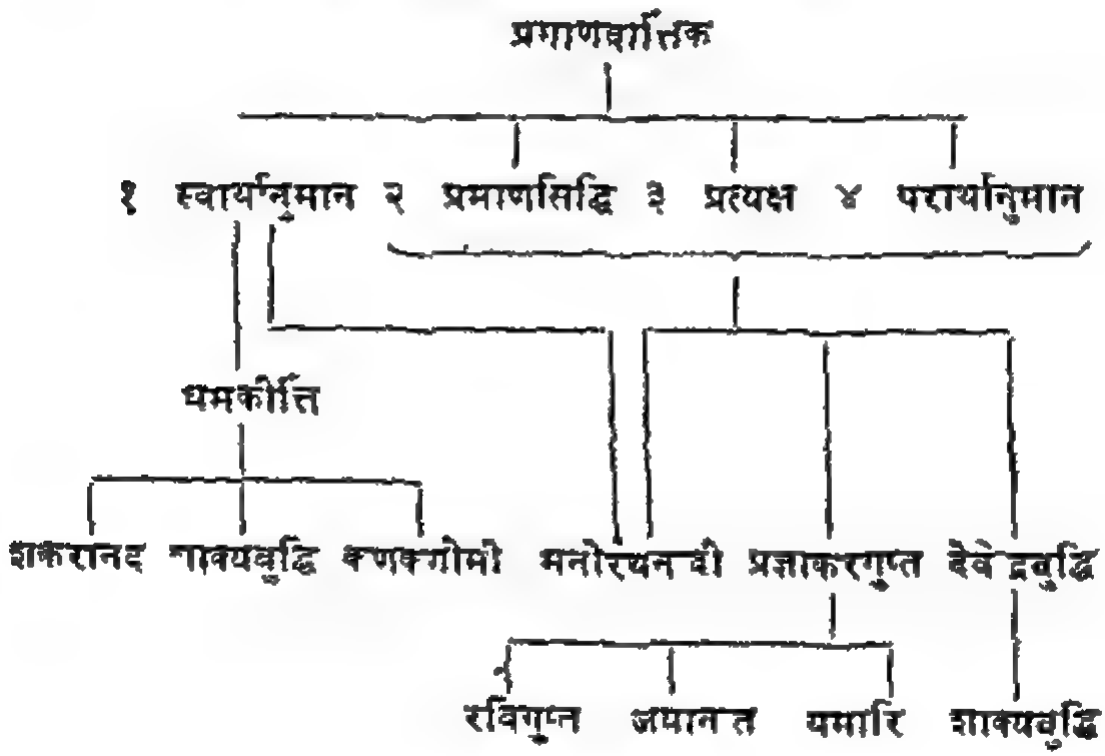

(प्रमाणवार्त्तिक)—यह कह चुके हैं कि धर्मकीर्त्तिका प्रमाण वार्त्तिक दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चयकी एक स्वतन्त्र व्याख्या है। प्रमाणसमुच्चयके छः परिच्छेदोंका हम बतला चुके हैं। प्रमाणवार्त्तिकके चार परिच्छेदोंके विषय प्रमाणसिद्धि प्रत्यक्ष स्वार्थानुमान प्रमाण और परार्थानुमान प्रमाण हैं किन्तु आमतौरसे पुस्तकोंमें यह क्रम पाया जाता है—स्वार्थानुमान प्रमाणसिद्धि प्रत्यक्ष और परार्थानुमान। यह क्रम गलत है यह समझनेमें दिक्कत नहीं होती जब हम देखते हैं कि प्रमाणसमुच्चयके जिस भागपर प्रमाणवार्त्तिक लिखा गया है वह किस क्रमसे है। इसके लिए देखिए, प्रमाणसमुच्चयके भाग और उसपरके प्रमाण वार्त्तिकका—

III कालके साथ धर्मकीर्त्तिकी शिष्य परंपरा—

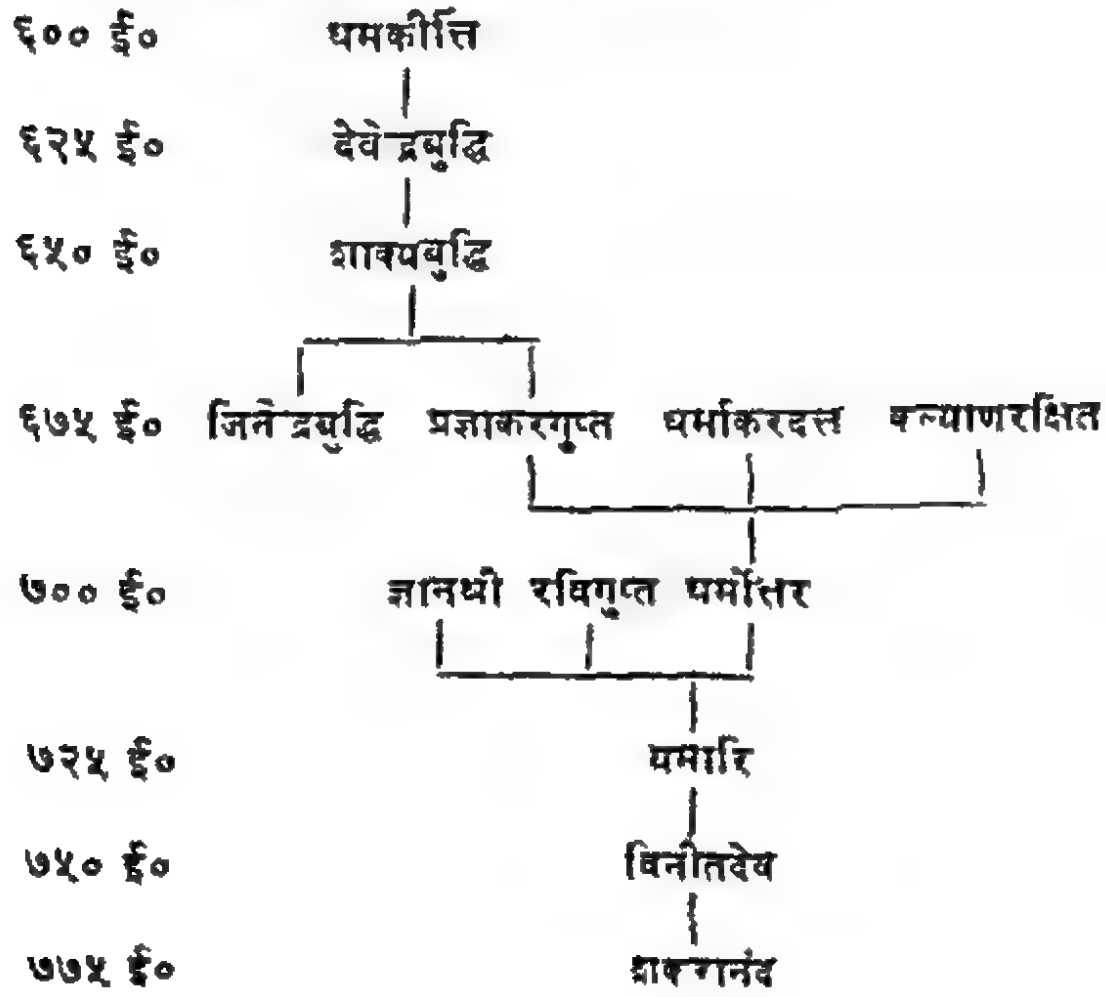

प्रमाणसमुच्चय	परिच्छेद	प्रमाणवार्तिक	परिच्छेद (होना चाहिए)
मङ्गलाचरण[1]	(१)	प्रमाणसिद्धि	(१)
प्रत्यक्ष	१	प्रत्यक्ष	(२)
स्वार्थानुमान	२	स्वार्थानुमान	(३)
परार्थानुमान	३	परार्थानुमान	(४)

प्रमाणसमुच्चयके बाकी परिच्छेद—स्थान[2] 'अपोह', जाति (=सामान्य)-परीक्षा—के बारेमें अलग परिच्छेदोंमें न लिखकर धर्मकीर्तिने उन्हें प्रमाणवार्तिकके इन्हीं चार परिच्छेदोंमें प्रकरणके अनुकूल बाँट दिया है।

न्यायबिन्दु तथा धर्मकीर्तिके दूसरे ग्रंथोंमें भी प्रत्यक्ष स्वार्थानुमान परार्थानुमानके क्रमसे ही माना गया है[3] और मनोरथनन्दीने प्रमाणवार्तिकवृत्तिमें भी यही क्रम स्वीकार किया है, इसलिए भाष्य पंजिकाओं टीकाओं या मूलपाठोंमें सर्वत्र स्वार्थानुमान प्रमाणसिद्धि प्रत्यक्ष परार्थानुमानके क्रमको देखनेपर भी ग्रंथकारका क्रम यह नहीं बल्कि मनोरथनन्दी द्वारा स्वीकृत क्रम ही ठीक सिद्ध होता है। क्रममें उलटफेर हो जानेका कारण धर्मकीर्तिकी स्वार्थानुमानपर स्वरुचिकी वृत्ति है। उनके शिष्य देवेन्द्रबुद्धिने ग्रंथकारकी वृत्तिवाले स्वार्थानुमान परिच्छेदको छोड़कर अपनी पंजिका लिखी जिससे आगे वृत्ति और पंजिकाको अलग अलग रखनेके लिए प्रमाणवार्तिकके दो भागोंमें कर दिया गया। इस विभागको और स्थायी रूप देनेमें प्रज्ञाकरगुप्तके भाष्य तथा देवेन्द्रबुद्धिकी पंजिकावाले तीनों परिच्छेदोंके चुनावने सहायता दी। इस क्रमको सर्वत्र प्रचलित देखकर मूल कारिकाओंकी प्रतियोंमें भी लेखकोंको वही क्रम अपना लेना पड़ा।

---

[1] देखो पृ० ६६० फुटनोट ६ [2] प्र० वा० ३।३७ ३।१३६

[3] वहीं २।१६३ ७३ वहीं २।५ ५५, २।१४५ ६२ ३।५५ १६१ ४।१३३ ४८, ४।१७६ ८८

यद्यपि मनोरथनंदी द्वारा स्वीकृत क्रमके अनुसार उनकी वृत्तिका मैंने सम्पादित किया है, और वह उपलभ्य है, तो भी मूल प्रमाणवार्त्तिकको मैंने सर्वस्वीकृत तथा तिब्बती अनुवाद और ताडपत्रोंसे मिल क्रमसे सम्पादित किया है, और प्रज्ञाकर गुप्तका प्रमाणवार्त्तिक भाष्य (वार्त्तिकालंकार) उसी क्रमसे संस्कृतमें मिला प्रकाशित होनेके लिए तैयार है इसलिए मैंने भी यहाँ परिच्छेद और कारिका देनेमें उसी सर्वस्वीकृत क्रमका स्वीकार किया है।

धर्मकीर्त्तिके दार्शनिक विचारोंपर लिखते हुए प्रमाणवार्त्तिकमें आए मुख्य मुख्य विषयोंपर हम आगे कहने ही वाले हैं, तो भी यहां परिच्छेदके क्रमसे मुख्य विषयोंको देते हैं—

विषय	परिच्छेद	कारिका
पहिला परिच्छेद (स्वार्थानुमान)		
१ ग्रंथ का प्रयोजन		१।१
२ हेतुपर विचार		१।३
३ अभावपर विचार		१।५ (+४।१२६)
४ शब्दपर विचार		१।१८६
५ शब्द प्रमाण नहीं		१।२१४
६ अपौरुषेय वेद प्रमाण नहीं		१।२२५
दूसरा परिच्छेद (प्रमाणसिद्धि)		
१ प्रमाणका लक्षण		२।१
२ बुद्धके वचन क्या माननीय हैं।		२।२९
तीसरा परिच्छेद (प्रत्यक्षप्रमाण)		
१ प्रमाण दो ही— प्रत्यक्ष अनुमान		३।१
२ परमार्थ सत्य और व्यवहार सत्य		३।३
३ सामान्य कोई वस्तु नहीं		३।३ (+४।१३१)
४ अनुमान प्रमाण		३।५५
५ प्रत्यक्ष प्रमाण		३।१२३
६ प्रत्यक्षके भेद		३।१९१
७ प्रत्यक्षाभास कौन है?		३।२८८
८ प्रमाणका फल		३।३००

चौथा परिच्छेद

(परार्थानुमान)

१	परार्थानुमानका लक्षण	४।१
२	पक्षपर विचार	४।१५
	शब्द प्रमाण नहीं है	४।४८
४	सामान्य कोई वस्तु नहीं	४।१३१ (+३।३)
५	पक्षधर्मता	४।१४१
६	हेतुपर विचार	४।१८९
७	अभावपर विचार	४।१२६ (+१।५)
८	भाव क्या है ?	४।२८

३—धर्मकीर्तिका दर्शन

धर्मकीर्तिने सिर्फ प्रमाण (न्याय) शास्त्र हो पर सात ग्रंथ लिखे हैं, और उन्होंने जीवनके आरंभ जो कुछ कहना था उसे इन्हीं प्रमाणशास्त्रीय ग्रंथोंमें कह दिया। इन सात ग्रंथोंमें प्रमाणवार्त्तिक (१४४४ श्लोक) प्रमाण विनिश्चय (१२८० श्लोक) हेतुबिन्दु (४४४ श्लोक) न्यायबिन्दु (१७७ श्लोक) के प्रतिपाद्य विषय एक ही हैं और उनमें सबसे बड़ा और संक्षेपमें अधिक बातोंपर प्रकाश डालनेवाला ग्रंथ प्रमाणवार्त्तिक है। वादन्यायमें आचार्यने अक्षपादके अठारह निग्रहस्थानोंकी भारी भरकम सूचीका फजूल बतलाकर उसे आधे श्लोकमें कह दिया है[1]—

'निग्रह (=पराजय) स्थान है (वादीके लिए) अ-साधन, उसका कथन और (प्रतिवादीके) दोषका न पकड़ना।

सम्बन्ध-परीक्षाकी २६ कारिकाओंमें धर्मकीर्तिने क्षणिकवादके अनुसार कार्य-कारण संबंध कैसे माना जा सकता है इसे बतलाया है, यह विषय प्रमाणवार्त्तिकमें भी आया है।

---

[1] 'असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः।'—वादन्याय पृष्ठ १

सन्तानान्तरसिद्धिके ७२ सूत्रोंमें धर्मकीर्त्तिने पहिले तो इस मन सन्तान (मन एक वस्तु नहीं बल्कि प्रतिक्षण नष्ट और नए उत्पन्न होती सन्तान=घटना है)से परे भी दूसरी-दूसरी मन-सन्तान (सन्तानान्तर) को सिद्ध किया है और अन्तमें बतलाया है कि ये सब मन (=विज्ञान) सन्तान किस प्रकार मिलकर दृश्य जगत्का (विज्ञानवादके अनुसार) बाहर रूप करती हैं। विज्ञानवादकी चर्चा प्रमाणवार्त्तिकमें भी धर्मकीर्त्तिने की है।

धर्मकीर्त्तिके दर्शनको जाननेके लिए प्रमाणवार्त्तिक पर्याप्त है।

(१) तत्कालीन दार्शनिक परिस्थिति—धर्मकीर्त्ति दिङ्नागकी भाँति अपनेको योगाचार (विज्ञानवाद) दार्शनिक सम्प्रदायके माननेवाले थे। वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति जैसे महान तार्किकोंका योगाचार छोड़ विज्ञानवादसे संबंध होना यह भी बतलाता है कि इनकी तरह इन्हें भी अपने तर्कसम्मत दार्शनिक विचारोंके लिए विज्ञानवादकी बड़ी जरूरत थी। किन्तु धर्मकीर्त्ति शुद्ध योगाचार नहीं सौत्रान्तिक (या स्वातन्त्रिक) योगाचार माने जाते हैं। सौत्रान्तिक बाहरी जगतकी सत्ताको ही मूलतत्व मानते हैं और योगाचारी सिर्फ विज्ञान (=चित्त मन)को। सौत्रान्तिक (या स्वातन्त्रिक) योगाचारका मतलब है, बाह्य जगतका प्रवाह रूपी (क्षणिक) वास्तविकताको स्वीकार करते हुए विज्ञानको मूलतत्व मानना—ठीक न्यायकी भाँति—जिसका अर्थ आजकी भाषामें होगा जड़ (=भौतिक)-तत्व विज्ञानका ही वास्तविक गुणात्मक परिवर्तन है। परन्तु योगाचार दर्शनमें मूलतत्व विज्ञान (चित्त) का विश्लेषण करके उसे दो भागोंमें बाँटा गया था—आलयविज्ञान और प्रवृत्तिविज्ञान। प्रवृत्ति विज्ञान छः हैं—चक्षु श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा त्वक्—पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विज्ञान (=ज्ञान), जो कि विषय तथा इन्द्रियके संपर्क होते वक्त रंग आकार आदिकी कल्पना उठनेसे पहिले भान होते हैं और छठा है मनका विज्ञान। आलय विज्ञान उक्त छओं विज्ञानोंके साथ जन्मता मरता भी अपने प्रवाह (=सन्तान)में सारे प्रवृत्ति विज्ञानोंका आलय (=घर) है। उसीमें पहिलेके संस्कारोंकी वासना और आगे उत्पन्न होनेवाले विज्ञानोंकी वासना

रहता है। यद्यपि क्षणिकवादके साथ रहनेसे आलय विज्ञान कुछ था आत्माका भ्रम नहीं जा सकता था, तो भी यह एक तरहका रहस्यपूर्ण तत्त्व बन जाता था जिसमें विज्ञानवादी हरिभद्र धर्मकीर्ति जैसे विद्वान् ही विचारक इसमें अच्छुण आत्मतत्त्वका पता करने लगे थे और वे आलय विज्ञानको विज्ञानका अथरम और चलानेवाली तरह सतत्त्वाव समझते थे।[1] धर्मकीर्तिका आलय (विज्ञान) शब्दका प्रयोग प्रमाणवार्तिकमें किया है किन्तु वह है विज्ञान सामान्य—वे अर्थमें, उसके पीछे वहाँ किसी अन्तर्भूत रहस्यमयी शक्तिका ख्याल[2] नहीं है।

सन्तान रूपण (क्षणिक या विच्छिन्नप्रवाहरूपण) भौतिक जगतकी वास्तविकताका साफ तौरसे इन्कार तो नहीं करना चाहते थे, जैसा कि आगे मालूम होगा किन्तु बचावका था कुछ धर्मसंकट भी, यदि अपने तर्कोंमें जगह-जगह प्रयुक्त भौतिक तत्त्वोंकी वास्तविकताको साफ स्वीकार करते हैं, तो धर्मका ढाँचा गिर जाता है और वे साथ भौतिकवादी बन जाते हैं, इसीलिए स्वाभाविक ही सही किन्तु उन्हें विज्ञानवादी रहना जरूरी था। युरोपमें भौतिकवादका फलन-फूलनका मौका तब मिला जब कि सामन्तवादके गर्भसे एक हानहार जमात—व्यापारी और पूँजीपति—बाहर निकल सामन्त आविष्कारोंका सहायतासे अपना प्रभाव

---

[1] तिब्बती न्यायिक जम-यङ-शद-पा (मञ्जुघोषपाद १६४८-१७२२ ई०) अपने ग्रंथ "सप्तनिबंध-न्यायालंकार सिद्धि" (अलंकार सिद्धि)में लिखते हैं—"जो लोग कहते हैं कि (धर्मकीर्तिके) सात निबंधों (=ग्रंथों)के मन्तव्योंमें "आलय विज्ञान" भी है, वह अंधे हैं अपने ही अज्ञानान्धकारमें रहनेवाले हैं।"—डाक्टर श्चेर्बात्स्कीकी Buddhist Logic Vol II p 529 के फुटनोटमें उद्धृत। [2] ३।५२२

[1] "आलय" शब्द पुराने पाली सूत्रोंमें भी मिलता है। किन्तु वहाँ वह रुचि, अनुनय, या अध्यवसायके अर्थमें आता है। देखो "महाहत्थिपदोपम सुत्त" (मज्झिम निकाय १।३।८), बुद्धचर्या, पृष्ठ १७६

खड़ा रही थी, और हर क्षत्रम पुराने विचारोंका दक्षियानूसी कह भौतिक जगतकी वास्तविकतापर आधारित विचारोंका पोत्साहन दे रही थी। छठी सदी ईसवीके भारतमें अभी यह अवस्था आनेमें १४ सदियोंकी जरूरत थी, किंतु इसीका कम न समझिए कि भारतीय हेगल (धर्मकीर्त्ति) जर्मनीके हेगल् (१७७०-१८३१ ई०)से बारह सदियां पहिले हुआ था।

(२) तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति—यहां जरा इस दर्शनके पीछे सामाजिक भित्तिको देखना चाहिए, क्योंकि दर्शन चाहे कितना ही हाड़-मांससे नफरत करते हुए अपनेको उससे ऊपर समझे किन्तु है वह भी हाड़-मांसका ही उपज। वसुबंधुसे धर्मकीर्त्ति तकका समय (४०० ६०० ई०) भारतीय दर्शनके (और काव्य, ज्योतिष, चित्र-मूर्त्ति वास्तुकलाके भी)[1] चरम विकासका समय है। इस दर्शनके पीछे आप गुप्त—मौखरी—हर्ष-वर्द्धनके महान् तथा दृढ़ शासित साम्राज्यका हाथ भी देखना चाहेंगे किन्तु महान साम्राज्य कहकर हम मूल भित्तिको प्रकाशमें नहीं लाते बल्कि उसे अंधेरेमें छिपा देते हैं। उस कालका वह महान साम्राज्य क्या था? कितने ही सामन्त-परिवार एक बड़े सामन्त—समुद्रगुप्त हर्षवर्मा या हर्षवर्द्धन—को अपने ऊपर मान, नये प्रदेशों नये लोगोंको अपने आधीन करने या अपने आधीन जनताको दूसरेके हाथमें न जाने देनेके लिए मौलिक शासन—युद्ध—या युद्धकी तैयारी—करते और अपने शासनमें पहिलेसे मौजूद या नवीन जनतामें 'शान्ति और व्यवस्था' कायम रखनेके लिए नागरिक शासन करते थे। किन्तु यह दोनों प्रकारका शासन 'पेटपर पत्थर बांधकर' सिर्फ परोपकार बुद्धिसे नहीं होता था। साधारण जनतामें आया सैनिक—जिसकी संख्या लड़नेवालोंमें ही नहीं मरनेवालोंमें भी सबसे ज्यादा थी—को

---

[1] काव्य—कालिदास, दंडी, बाण, ज्योतिष—आर्यभट्ट, वराह-मिहिर, ब्रह्मगुप्त, चित्रकला—अजन्ता और बाग, मूर्त्तिकला—गुप्त कालिक पाषाण और पीतलमूर्त्तियां, वास्तुकला—अजंता, एलोराकी गुहा, देव बर्नारकके मन्दिर।

[illegible] बहुत [illegible] पत्थर [illegible] बाँधना पड़ता था। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बड़ी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लूटकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

घर भजता था, उसके उपाजनके लिए ७ करोड़ आदमियों—या सारी जनसंख्याके चौथाईसे अधिक—के श्रमकी आवश्यकता होती थी। इसके अतिरिक्त वह खर्च अलग था जिसे अंग्रेज कर्मचारी भारतमें रहने खर्च करते थे।

यही नहीं कि जनताके आधे निहाई भागको शासकोंके लिए इस तरहकी वस्तुओंको अपने श्रमसे जुटाना पड़ता था बल्कि उनकी काम-वासनाकी तृप्तिके लिए लाखों स्त्रियोंको वध या अर्धरूपसे अपना शरीर बेचना पड़ता था, उनकी एक बड़ी संख्याको दासी बनकर बिकना पड़ता था। मनुष्यका दास-दासीके रूपमें सरेबाजार बिकना उस वक्तका एक आम नजारा था।

अर्थात इस ज्ञान—कला—साहित्यके महान युगकी सारी भव्यता मनुष्यकी पशुवत परतंत्रता और हृदयहीन गुलामीपर आधारित थी—यह हम नहीं भूलना चाहिए। फिर दार्शनिक दृष्टिसे क्रान्तिकारीसे क्रान्तिकारी विचारकको भी अपनी विचार-संबंधी क्रान्तिको उस सीमाके अन्दर रखना जरूरी था, जिसके बाहर जाते ही शासक वर्गके कोपका भाजन—चाहे साथ राजदण्ड रूपमें उसकी कृपासे वंचित होनेके रूपमें चाहे उसके स्थापित धर्म मठ मन्दिरमें स्थान न पानेके रूपमें—होना पड़ता। उस वक्त 'शान्ति और व्यवस्था' की चाह आजसे बहुत तेज थी जिससे बचनेमें धार्मिक सहानुभूति ही थोड़ा बहुत सहायक हो सकती थी, जिसके उसका साथ उसके जीवनका मूल्य एक शोषित डाकूके जीवनसे अधिक नहीं था।

धर्मकीर्ति जिस नालन्दाके रत्न थे उसका गाँव और नगरके रूपमें बड़े-बड़े दान देनेवाले यही सामन्त थे, जिनके ताम्रपत्रपर लिखे दानपत्र आज भी हमें काफी मिले हैं। युवान च्वाङके समय (६४० ई०)में वहाँके दस हजार विद्यार्थियों और पंडितोंपर जिस तरह खुले हाथों धन खर्च किया जाता था यह कहा नहीं सकता था कि प्रमाणवार्त्तिककी पंक्तियाँ उन हाथोंको भुलाकर उन्हें काटनेपर तुल जातीं, इसीलिए स्वातंत्रिक (वस्तुवादी) धर्मकीर्ति भी इसकी व्याख्या आध्यात्मिक तलमें ही करके छुट्टी न लेते

र । विश्वके कारणका ईश्वर आदि छोड़ विश्वमें, उसके क्षुद्रतम तथा महत्तम अवयवोंकी क्षणिक परिवर्तनशीलता तथा गुणात्मक परिवर्तनके रूपमें ढूंढनेवाले धर्मकीर्ति दुःखके कारणको अलौकिक रूपमें—पुनर्जन्ममें—निहित बतलाकर साकार और वास्तविक दुःखके लिए साकार और वास्तविक कारणके पता लगानेसे मुह मोड़ते हैं। यदि जनताके एक तिहाई उन दासों तथा सख्यामें कम-से-कम उनके बराबरके उन आदमियोंको—जो कि मद और व्यापारके नफरे रूपमें अपने श्रमका मूल्य देते थे—दासतासे मुक्त कर उनके श्रमका साथी जनता—जिसमें वह खुद भी शामिल थे—के हिसाबमें लगाया जाता, यदि सामन्त परिवारों और वणिक-श्रेष्ठी-परिवारोंके निठल्लेपन कामचोरपनको हटाकर उन्हें भी समाजके लिए लाभदायक काम करनेके लिए मजबूर किया जाता तो निश्चय ही उस समयके साकार दुःखकी मात्रा बहुत हद तक कम होती। हां, यह ठीक है कामचोरपनके हटानेका अभी समय नहीं था, यह स्वप्नचारिणी योजना उस वक्त असफल होती, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यही बात तो उस वक्तकी सभी दार्शनिक उड़ानोंमें सभी धार्मिक मनोहर कल्पनाओंके बारेमें थी। सफल न होनेपर भी दार्शनिककी गलती एक अच्छे कामकी ओर होती है, उसकी सहृदयता और निर्भीकताकी दाद दी जाती, यदि उपेक्षा और शस्त्रप्रहारसे उसकी कृतियां नष्ट हो जाती तो भी खंडनके लिए उद्धृत उसकी प्रतिभाके प्रखरतीर सदियोंको चीरकर मानवताके पास पहुँचते और उसे नया संदेश देते।

(३) विज्ञानवाद—सहृदय मस्तिष्कसे वास्तविक दुनिया (भौतिकवाद)को भुलाने भुलवानेमें दार्शनिक विज्ञानवाद बड़ी काम देता है, जो कि शरीरको तोड़ने वाले श्रमसे चूर मजदूरको अपने कष्टोंको भुलवानेमें। चाहे वह दासताके सहायतासे ही सही, मनुष्यका मस्तिष्क और हृदय तब तक बहुत अधिक विकसित हो चुका था, उसमें अपने साथी प्राणियोंके लिए संवेदना आना स्वाभाविक सी बात थी। आसपासके लोगोंकी दयनीय दशाको देखकर हो नहीं सकता था, कि वह उसे महसूस न करता, विकल न होता। जगतको भूला वह इस विकलताको दूर करनेमें दार्शनिक

विज्ञानवाद कुछ सहायता जरूर करता था—आखिर अभी दार्शनिकोंका काम जगत्की व्याख्या करना था उसे बदलना नहीं।"

धर्मकीर्त्ति बाह्यजगत्—भौतिक तत्वों—का अवास्तविक बतलाते हुए विज्ञान (=चित्त)को असली तत्व साबित करते हैं—

(क) विज्ञान ही एक मात्र तत्त्व—हम किसी वस्तु (=कपड़े)को देखते हैं तो वहां हमें नीला पीला रंग तथा लंबाई, चौड़ाई मुटाई भारीपन-चिकनापन आदिको छोड़ केवल रूप (=भौतिक-तत्व) नहीं दिखाई पड़ता।[1] दर्शन नील आदिके तौरपर होता है, उससे रहित (वस्तु)का (प्रत्यक्ष या अनुमानसे) ग्रहण ही नहीं हो सकता और नीलादिके ग्रहणपर ही (उसका) ग्रहण होता है। इसलिए जो कुछ दर्शन है वह नील आदिके तौरपर है, केवल बाह्यार्थ (=भौतिक तत्व)के तौरपर नहीं है।[2] जिसको हम भौतिक तत्त्व या बाह्यार्थ कहते हैं वह क्या है इसका विश्लेषण करें तो वहां आंखसे देखे रंग आकार, हाथसे छूए सख्त-नरम चिकनापन, आदि ही मिलता है, फिर यह इंद्रियां इनके इस स्थूल रूपमें अपने निजी ज्ञान (चक्षु विज्ञान, स्पर्श विज्ञान) द्वारा मनको कल्पना करनेके लिए नहीं प्रदान करती। मनका निर्णय इंद्रिय चर्वित ज्ञानके पुनः चर्वणपर निर्भर है इस तरह जहांसे अन्तिम निर्णय होता है, उस मनमें तथा जिनकी दी हुई सामग्रीके आधारपर मन निर्णय करता है, उन इंद्रियोंके विज्ञानोंमें भी, बाह्य अर्थ (=भौतिक तत्त्व)का पता नहीं निर्णायक स्थानपर हमें सिर्फ विज्ञान (=चेतना) ही विज्ञान मिलता है, इसलिए "वस्तुओं द्वारा वही (विज्ञान) सिद्ध है, जिससे कि विचारक कहते हैं— जैसे-जैसे अर्थों (=पदार्थों)पर चिन्तन किया जाता है वैसे ही वैसे वह छिन्न भिन्न हो लुप्त हो जाते हैं (—उनका भौतिक रूप नहीं सिद्ध होता)।"[3]

(ख) चेतना और भौतिक तत्त्व विज्ञान होके दो रूप—विज्ञान-का भीतरी आकार चित्त—सुख आदिका ग्राहक—है, यह तो स्पष्ट है, किन्तु

---

[1] प्रमाण-वार्त्तिक ३।२०२ [2] प्र० वा० ३।३३५ [3] प्र० वा० ३।२०९

जो बाहरी पदार्थ (=भौतिक तत्त्व घड़ा या कपड़ा) है, वह भी विज्ञानका अंश नहीं बल्कि विज्ञानका ही एक दूसरा भाग है, और बाहरमें अवस्थित सा जान पड़ता है—इस अभाव बतलाया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही विज्ञान भीतर (चित्तके तौरपर) ग्राहक, और बाहर (विषयके तौरपर) ग्राह्य भी है। विज्ञान जब अभिन्न है तो उसका (भीतर और बाहरके विज्ञान तथा भौतिक तत्त्वके रूपमें) भिन्न प्रतिभासित होना सत्य न (भ्रम) है। ग्राह्य (बाह्य पदार्थके रूपमें मालूम पड़नेवाला विज्ञान) और ग्राहक (=भीतरी चित्तके रूपमें विज्ञान) में एकके भी अभावमें दोनों ही नहीं रहते (ग्राहक नहीं रहा तो ग्राह्य है इसका कैसे पता लगेगा? और फिर ग्राह्यके न रहनेपर अपनी ग्राहकताको किसकी ग्राहक चित्त अपनी सत्ताको कैसे सिद्ध करेगा? इस तरह किसी एकके अभावमें दोनों नहीं रहते) इसलिए जानेका भी तत्त्व है (ग्राह्य-ग्राहक) दो जानेका अभाव (=अभिन्नता)।[1] जो आकार प्रकार (बाहरी पदार्थोंके मौजूद है वह) ग्राह्य और ग्राहकके आकारका छाप (और किसी आकारसे) नहीं मिलते (और ग्राह्य ग्राहक एक ही निराकार विज्ञानके ही रूप हैं), इसलिए आकार प्रकारसे शून्य होने (सारे पदार्थ) निराकार सिद्ध हुए हैं।[2]

प्रश्न हो सकता है यदि बाह्य पदार्थोंकी वस्तुसत्ताका अस्वीकार करते हैं तो उनकी भिन्नताको भी अस्वीकार करना पड़ेगा फिर बाहरी अर्थोंके बिना यह घड़ा है यह कपड़ा' इस तरह नानाता भ्रम कैसे होगा? उत्तर है—

किसी (घट आदि आकारवाले ज्ञान)का पाँच (एक ज्ञान) है जो कि (चित्तके) भीतरवाली वासना (=पूर्व संस्कार) को जगाता है, उसी (वासनाके जगने)से नाना (की भिन्नता)का नियम देखा जाता है न कि बाहरी पदार्थकी अपेक्षासे।[3]

---

[1] प्र० वा० ३।२१२ [2] प्र० वा० ३।२१३
[3] प्र० वा० ३।२१५ प्र० वा० ३।३३६

"चूंकि बाहरी पदार्थका अनुभव हम नहीं होता इसलिए एक ही (विज्ञान) दो (=भीतरी ज्ञान बाहरी विषय)रूपवाला (देखा जाता) है, और दोनों रूपोंमें स्मरण भी किया जाता है। इस (एक ही विज्ञानके ग्राह्य ग्राहक दोनों आकारोंके होने)का परिणाम है स्व संवेदन (अपने भीतर ज्ञानका साक्षात्कार)।"[1]

फिर प्रश्न होता है—"(वह जो बाह्य पदार्थके रूपमें) अवभासित होनेवाला (ज्ञान है), उसका जैसे कैसे भी जो (बाहरी) पदार्थवाला रूप (भासित हो रहा है), उसे छोड़ देनेपर पदार्थ (=घड़े)का ग्रहण (=इन्द्रिय प्रत्यक्ष आदि) कैसे होगा? (आखिर अपने स्वरूपके ज्ञानके साक्षात्कारसे ही तो पदार्थोंका अपना अपना ग्रहण है?)—(प्रश्न) ठीक है, मैं भी नहीं जानता कैसे यह होता है। जैसे मंत्र (हिप्नाटिज्म) आदिसे जिनकी (आँख आदि) इन्द्रियोंको बाँध दिया गया है, उन्हें मिट्टीके ठीकरे (रुपया आदि) दूसरे ही रूपमें दीखते हैं, यद्यपि वह (वस्तुतः) उस (रुपये)के रूपसे रहित है।"[2]

इस तरह यद्यपि अन्तर, बाहर सभी एक ही विज्ञान तत्त्व है किन्तु "तत्त्व अर्थ (=वास्तविकता)की ओर न ध्यान दे हाथीकी तरह आँख मूँदकर सिर्फ लोक व्यवहारका अनुसरण करने तत्त्वज्ञानियोंको (कितना हो बार) बाहरी (पदार्थों)का चिंतन (=वर्णन) करना पड़ता है।"[3]

(४) क्षणिकवाद—बुद्धके दर्शनमें 'सब अनित्य है' इस सिद्धांतपर बहुत जोर दिया गया है, यह हम बतला आए हैं। इसी अनित्यवादको पीछेके बौद्ध दार्शनिकोंने क्षणिकवाद कहकर उसे अभावात्मकसे भावात्मक रूप दिया। धर्मकीर्तिने इसपर और जोर देते हुए कहा—'सत्ता मात्रमें नाश (=धर्म) पाया जाता है।' इस भावका पीछे नागार्जुनी (७००

---

[1] प्र० वा० ३।३३७

[2] प्र० वा० ३।३५३-५५ [3] वही ३।२१९

प्र० वा० १।२७२—"सत्तामात्रानुवर्तित्वात् नाशस्य"

इ०) न रहा है— जो (जो) सत् (=भाव रूप) है, वह क्षणिक है।"[1] सभी संस्कार (=बने हुए पदार्थ) अनित्य हैं। इस युक्तिवादी आर्य सत्य को कहते हुए धर्मकीर्ति कहते हैं[2]— जो कुछ उत्पन्न स्वभाववाला है वह सब स्वभाववाला है। अनित्य क्या है, इसे बतलाते हुए लिखा है—'पहिले होकर जो भाव (=पदार्थ) पीछे नहीं रहता, वह अनित्य है।

इस प्रकार बिना किसी आधार के लक्षित होता हुआ भाव (=सत्ता) रखनेवाले पदार्थों में है।

(५) परमार्थ सत्की व्याख्या—प्रकाशवान् और उत्पत्तिवाले क्षण-क्षण परिवर्तनशील जड़ और उसके पर्यायों को एक अपरिवर्तनशील तत्त्व को परमार्थ सत् मानते हैं। किन्तु बौद्ध दर्शन को ऐसे इन्द्रिय और बुद्धि की पहुँच पर किसी तत्त्व को मानने की जरूरत न थी इसलिए धर्मकीर्ति ने परमार्थ सत्की व्याख्या करते हुए कहा—

अर्थक्रिया में जो समर्थ है वही परमार्थ सत् है। इसके विरुद्ध जो (अर्थक्रियाम असमर्थ) है वह संवृति (=कल्पित) सत् है। घड़ा, कपड़ा, परमार्थ सत् है, क्योंकि वह अर्थक्रिया समर्थ है, उनसे जल आदि या सर्दी गर्मी का निवारण हो सकता है, किन्तु घड़ापन कपड़ापन जो सामान्य (=जाति) माने जाते हैं वह संवृति (=काल्पनिक या कल्पित) सत् है। क्योंकि उनसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती। इस तरह व्यक्ति और उनका नानापन ही परमार्थसत् है। (वस्तुतः सारे) भाव (=पदार्थ) स्वयं भेद (=भिन्नता) रखनेवाले हैं, किन्तु उसी संवृति (=कल्पना) से जब उनके नानापन (=अलग-अलग घड़ों) को छोड़ दिया जाता है तो वह किसी (घड़ापन) रूपसे अभिन्न मालूम होने लगते हैं।"[3]

---

[1] "यत् सत् तत् क्षणिकं"—भाष्य भाग १।१ (ज्ञान भा०)

[2] प्र० वा० २।२८४ ५ [3] वहीं ३।१११० वहीं ३।३

[4] प्र० वा० १।७१

(६) नाश अहेतुक होता है—क्षणिकता सारे भावों (=पदार्थों) में स्वभावसे ही है, इसलिए नाश भी स्वाभाविक है, फिर नाशके लिए किसी हेतु या हेतुओंकी जरूरत नहीं—अर्थात नाश अहेतुक है, वस्तु की उत्पत्तिके लिए हेतु या बहुत से हेतु (=हेतु सामग्री) चाहिए, जिससे कि पहिले न मौजूद पदार्थ भावमें आवे। चूंकि एक मौजूद वस्तुका नाश और दूसरी ना-मौजूद वस्तुकी उत्पत्ति पास पास होता है, इसलिए हमारी भाषामें कहनेकी यह गलत परिपाटी पड़ गई है कि हम हेतुको उत्पन्न वस्तुसे न जोड़ नष्टसे जोड़ देते हैं। इसी तथ्यको साबित करते हुए धर्मकीर्ति कहते हैं—

(क) अभाव रूपी नाशको हेतु नहीं चाहिए— यदि कोई कार्य (करणीय पदार्थ) हो, तो उसके लिए किसी (=कारण)की जरूरत हो सकती है, (नाश) जो कि (अभाव रूप होनेसे) कोई वस्तु ही नहीं है, उसके लिए कारणकी क्या जरूरत ?"[1]

"जो कार्य (=कारणसे उत्पन्न) है वह अनित्य है जो अ-कार्य (=कारणसे नहीं उत्पन्न) है वह अविनाशी (=नित्य) है। (वस्तुका विनाश नित्य अर्थात् हमेशाके लिए होता है, इसलिए वह अ-कार्य= अ-हेतुक है, फिर इस प्रकार) अहेतुक होनेसे वह (=नाश) स्वभावतः (वस्तुमात्रका) अनुसरण करता है।"[2] और इस प्रकार विनाशके लिए हेतुकी जरूरत नहीं।

(ख) नश्वर या अनश्वर दोनों अवस्थाओंमें भावके नाशके लिए हेतु नहीं चाहिए— 'यदि (हम उसे अनश्वर मान लें, तब) दूसरे किसी (हेतु)से भावका नाश न मानें फिर उस (अनश्वर भाव)की स्थिति के लिए हेतुकी क्या जरूरत ? (—अर्थात भावका होना अहेतुक हो जायगा)। (यदि हम भावको नश्वर मान लें, तो) वह दूसरे (हेतुओं=कारणों) के बिना भी नष्ट होगा, (फिर उसकी) स्थितिके लिए हेतु असमर्थ होंगे।'[3]

---

[1] प्र० वा० १।२८२ [2] वहीं १।१९५ [3] वहीं २।७०

जो स्वयं अनादि स्वभाववाला है उसके लिए दूसरे स्वभावकी कल्पना न है। जो स्वयं सदा स्वभाववाला है उसके लिए भी दूसरे स्वभावकी कल्पना नहीं। इस तरह विज्ञानको सदा स्वभाववाला मानें या अनादि स्वभाववाला माना जाय, उसके लिए स्वभावान्तरकी कल्पना न है।

(३) भावके स्वरूपसे नाश भिन्न है या अभिन्न, दोनों अवस्थाओंमें नाश असंभव—आगे और सकारण एवंविध होता है। फिर इस सकारण नाशको आप कैसे मानते हैं? उत्पत्ति होती है। इसलिए इस कारणको नाशमें आगे सकारण जला दिया—नष्ट कर दिया कहते हैं किन्तु वस्तुतः करना चाहिए आगने काष्ठ सकारण उत्पन्न किया। धूलि लकड़ी जलकर कोयले राखमें अधिक उपादानें (मन्दरान्) इसलिए यहां आपने द्वारा हम अपने लिए एक उपयोगी वस्तु। इस प्रकार जलाना जारी रहे। यदि कोयला राख लकड़ीसे जलाना उपयोगी था। तो हम आगने उस लिए नाश कर दिया। वा जगह वहां आगने कोयला राखको बनाया। वस्तुतः जगहमें जहां सुन्दर लकड़ीकी जगह कोयला बनाकर प्रचलमें जलाना नाम रखते हैं वहां क्या काम करते हैं? बुद्धिपूर्वक यह नहीं कहा कि हम लकड़ीका नाश करते हैं, बल्कि कहते हैं हम कोयला बनाते हैं। तालाबमें कारणात्मक (कारवान) पत्थरका नाश मारना या कीलोंका उपादान होता है किन्तु यहां नाशको स्वाभाविक (=अवस्तु) समझकर उसका नाश न कहा यह। कहा जाता है, कि लोहा प्रति अप लगन बनाकर मन लोहा और डाल लोहा मा फौलाद बनाता है। क्या भावका हमारे लोकनिवन समझानेकी कोशिश की।

प्रश्न है—आग (=कारण हेतु) क्या करती है लकड़ीका विनाश या कोयलेकी उत्पत्ति? आप कहते हैं लकड़ीका विनाश करता है। फिर सवाल होता है विनाश वस्तु भिन्न वस्तु है या अभिन्न? अभिन्न माननेपर

---

[1] वहीं २।७२

आग जिस विनाशको उत्पन्न करती है, वह काष्ठ ही हुआ फिर तो 'विनाश' होनेका मतलब काष्ठका होना हुआ, अर्थात काष्ठका विनाश नहीं हुआ फिर काष्ठके अविनाशमें काष्ठका दर्शन होना चाहिए। यदि (कहो) वही (आगसे उत्पन्न वस्तु काष्ठका) विनाश है (इसलिए काष्ठका दर्शन नहीं होता, तो फिर प्रश्न होगा—)"कैसे (विनाशरूपी) एक पदार्थ (काष्ठ रूपी) दूसरे (पदार्थ)का विनाश होगा? (और यदि नाश एक भाव पदार्थ है, तो) काष्ठ क्यों नहीं दिखाई देता?"[1]

(b) विनाश एक भिन्न ही भावरूपी वस्तु है यह माननेसे भी काम नहीं चलता—यदि कहो विनाश (सिर्फ काष्ठका अभाव नहीं बल्कि)एक दूसरा ही भावरूपी पदार्थ है, और उस (भाव रूपी विनाश नामवाले दूसरे पदार्थ)के द्वारा ढँका होनेसे (काष्ठ हमें नहीं दिखलाई देता), (तो यह भी ठीक नहीं) उस (एक दूसरे भाव=नाश)से (काष्ठका) आवरण (=आच्छादन) नहीं हो सकता क्योंकि (ऐसा माननेपर नाशको वस्तुका आवरण मानना पड़ेगा फिर तो वह) विनाश ही नहीं रह जायेगा (=विनष्ट हो जायगा)'[2] और इस प्रकार आग काष्ठके विनाशको उत्पन्न करती है कहनेके अभावमें यह कहना भी गलत है।

और यदि आग द्वारा नाशकी उत्पत्ति मानें तो 'उत्पन्न होनेके कारण' हमें नाशमान मानना पड़ेगा, क्योंकि जितने उत्पत्तिमान भाव (=पदार्थ) हैं, सभी नाशमान होते हैं। 'और फिर (नाशमान होनेसे जब नष्ट हो जाता है)तो (आवरण-मुक्त होनेसे) काष्ठका दर्शन होना चाहिए।

यदि कहो—नाश रूपी भाव पदार्थ काष्ठका हन्ता है। रामने श्यामको मार डाला (=नष्ट कर दिया), फिर न्यायाधीश रामको फाँसी चढ़ा देता है, किंतु रामके फाँसी चढ़ा देने—'हत्याके नाश हो जाने—पर जैसे मृत (=नष्ट श्याम)का फिरसे अस्तित्वमें आना नहीं होता उसी तरह यहाँ

---

[1] प्र० वा० १।२७३ [2] वहीं १।२७४

भी[1] (नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी काष्ठ किसी अभिन्न नहीं माना)।

किन्तु यह दृष्टान्त गलत है। राम श्यामके [illegible] हुआ (=राम) =(श्यामका) मरण नहीं [illegible] बल्कि श्यामका मरण है अपने [illegible] इन्द्रिय आदिका नाश होता। यदि श्यामके प्राण इन्द्रिय आदिका नाश होता हुआ दिखा जाय तो श्याम जरूर अभिन्न माने जायेंगे। किन्तु यहाँ आप [illegible] पदार्थ=काष्ठका मरण मानते [illegible] पदार्थके नाश या बाधपर काष्ठका किसी अभिन्नरूप माना चाहिए।

(६) 'नाश—एक अभिन्न भावरूपी वस्तु' यह माननेसे भी काम नहीं चलेगा— यदि (माना कि) विनाश (भावरूपी वस्तु काष्ठ) अभिन्न [illegible] तो नाश=काष्ठ है। तो (काष्ठ)—(नाश=) अ सत् अतएव (नाश आदि) उसका हेतु नहीं हो सकती।

नाशको (काष्ठसे) भिन्न या अभिन्न न छोड़ कर नहीं माना जा सकता और हमने ऊपर दोष दिया कि दोनों अवस्थामें नाशके लिए हेतु (=कारण)का जरूरत नहीं अतएव नाश अहेतुक होता है।

यदि कहा— नाश अहेतुक माननेपर (यह) दोष लगा, किन्तु (काष्ठका) भाव और नाश दोनों एक साथ रहनेवाला मानते पड़ेंगे।[2] तो यह कहना ही गलत बुनियाद पर है, क्योंकि (नाश तो) असत् (=अभाव) है उसका निवारण कैसे होगा? नित्य अभिन्न होनेका सनातन भाव पदार्थके लिए नाश है गलतका मार्ग—अन्यत् पदार्थ—के लिए नाश।

(७) कारण-समूहवाद—कार्य एकसे नहीं बल्कि अनेक कारणोंके इकट्ठा होने—कारण सामग्री—से उत्पन्न होता है अर्थात् अनेक कारण मिलकर एक कार्यको उत्पन्न करते हैं। इस सिद्धान्त द्वारा बौद्ध दार्शनिक जहाँ जगत्में प्रयोगसिद्ध वस्तुस्थितिकी व्याख्या करते हैं वहाँ किसी एक

---

[1] प्र० वा० १।२७४ २७५ [2] प्र० वा० १।२७५ २७७

ईश्वरके कर्तापनका भी खंडन करते हैं। साथ ही यह भी बतलाते हैं कि स्थिरवाद—चाहे वह परमाणुओंका हो या ईश्वरका—कारणोंकी सामग्री (=इकट्ठा होनेका) अस्तित्वमें नहीं ला सकता, यह क्षणिकवाद ही है, जो कि भावोंकी क्षणिकता—देश और कालमें गति—की वजहसे कारणोंकी सामग्री (=इकट्ठा होना) करा सकता है।

"कोई भी एक (वस्तु) एक (कारण)से नहीं उत्पन्न होती, बल्कि सामग्री (=बहुतसे कारणोंके इकट्ठा होने)से (एक या अनेक) सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है।"[1]

"कार्योंके स्वभावों (=स्वरूपों)में जो भेद है, वह आरम्भिक नहीं, बल्कि कारणों (=कारण सामग्री)से उत्पन्न होता है। उनके बिना (=कारणोंके बिना, किसी दूसरेसे) उत्पन्न होना (माने नए कार्यके) रूप (=कार्य)को उस (आग)से उत्पन्न कैसे कहा जायगा?"[2]

"(चूंकि) सामग्री (=कारण-समुदाय)की शक्तियाँ भिन्न भिन्न होती हैं, (अतः) उन्हींकी वजहसे वस्तुओं (=कार्यों)में भिन्न रूपता दिखलाई पड़ती है। यदि वह (अनेक कारणोंकी सामग्री) भेद करनेवाली न होती, तो यह जगत (विश्व रूप नहीं) एक रूप होता।"[3]

मिट्टी, चक्का, कुम्हार अलग अलग (किसी घड़े जैसे भिन्न रूपवाले) कार्यके करनेमें असमर्थ हैं किन्तु उनके (एकत्र) होनेपर कार्य होता है इससे मालूम होता है, कि सहित (=एकत्रित) हुई उन (=क्षणिक वस्तुओं)में हेतुपन (=कारणपन) है, ईश्वर आदिमें नहीं क्योंकि (ईश्वर आदिमें क्षणिकता न होनेसे) अभेद (=एक रसता) है।"[4]

(८) प्रमाणपर विचार—मानवका ज्ञान जितना ही बढ़ता गया, उतना ही उसने उसके महत्त्वको समझा, और अपने जीवनके हर क्षेत्रमें मस्तिष्कको अधिक इस्तेमाल किया। यही ज्ञानकी महिमा आगे प्रयोगसिद्ध

---

[1] प्र० वा० ३।५३६ [2] वहीं ४।२४८ [3] वहीं ४।२४९
[4] वहीं २।२८

सामान्यमें भक्त सिर्फ स्वलक्षण मात्र है इसलिए उन)में शब्दोंका प्रयोग नहीं हो सकता।[1] 'इस (=घट वस्तु)का यह (वाचक, घट शब्द) है इस तरह (वाच्य-वाचकता जो) संबंध (है उन)में जो दो पदार्थ प्रतिभासित हो रहे हैं उन्हीं (वाच्य वाचक पदार्थों)का (वह) संबंध है (और जिस वक्त उस वाच्य-वाचक संबंधकी ओर मन कल्पना दौड़ाता है) उस वक्त (वस्तु) इन्द्रियके सामनेसे हट गई रहती है (और मन अपने संस्कारके भीतर अवस्थित नाम और पुराने दो कल्पना चित्रोंको मिलाकर नाम देनेमें व्यापृत रहता है)।[2]

(शंकर स्वामी जैसे कुछ बौद्ध प्रमाणशास्त्री प्रत्यक्ष-ज्ञानको) इन्द्रिय-ज ज्ञानसे (शब्द ज्ञानसे वर्जित) छोटे बच्चेके ज्ञानकी भाँति कल्पना रहित (ज्ञान) बतलाते हैं, और बच्चेके (ज्ञानको इस तरह) कल्पना रहित ज्ञानसे (वाच्य-वाचक रूपसे शब्द अर्थ संबंधके) संकेतका कारण कहते हैं। ऐसे (मतमें) कल्पनाके (सर्वथा) अभावके कारण बच्चोंका (सारा ज्ञान) सिर्फ प्रत्यक्ष ही होगा, और (बच्चोंका) संकेत (जानने)के लिए कोई उपाय न होनेसे पीछे (बड़े होनेपर) भी वह (=संकेत ज्ञान) नहीं हो सकेगा।[3]

(b) **मानस-प्रत्यक्ष**—दिग्नागने प्रमाणसमुच्चयमें मानस प्रत्यक्षकी व्याख्या करते हुए कहा[4]— पदार्थके प्रति राग आदिका जो (ज्ञान) है वही (कल्पनारहित ज्ञान) मानस (प्रत्यक्ष) है।' मानस प्रत्यक्ष स्वतंत्र प्रत्यक्ष नहीं रहेगा यदि पहिलेके इन्द्रिय द्वारा ज्ञात (अर्थ)का ही ग्रहण करे क्योंकि ऐसी दशामें (पहिलेसे ज्ञात अथवा प्रकाशक होनेसे अज्ञात अर्थ प्रकाशक नहीं अतएव वह) प्रमाण नहीं होगा। यदि (इन्द्रिय ज्ञान द्वारा) अदृष्टको (मानस प्रत्यक्ष) माना जाय तो अंध आदिका भी

---

[1] प्र० वा० ३।१२५ १२७ [2] वहीं ३।१२९
[3] वहीं ३।१४१ १४२ [4] "मानसं चाथरागादि।"

(रूप आदि) अर्थोंका दर्शन (होता है यह) मानना लगा।[1] इस सबका ख्याल कर धर्मकीर्ति मानस प्रत्यक्षकी व्याख्या करते हैं—

"(चक्षु आदि) इन्द्रियसे जो (विषयका) विज्ञान हुआ है उसका अनन्तर प्रत्यय (=तुरन्त पहिले गुजरा कारण) बना जो मन (=चेतना) उत्पन्न हुआ है वही (मानस प्रत्यक्ष है)। चूंकि (चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ज्ञात रूप आदि ज्ञानसे) भिन्नको (मन प्रत्यक्षमें) ग्रहण करता है (इस लिए वह ज्ञात अर्थका प्रकाशन नहीं, साथ ही मन द्वारा प्रत्यक्ष होनेवाले रूप आदिके विज्ञान इन्द्रियसे ज्ञात उन रूप आदिकोंसे संबद्ध है जिन्हें कि अंध आदि नहीं देख सकते इसलिए) आंखके अंधोंकी (रूप) देखनेकी बात नहीं आती।"[2]

(c) स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष—दिग्नागने इसका लक्षण करते हुए कहा—"(चक्षु-इन्द्रियसे गृहीत रूपका ज्ञान मनसे गृहीत रूप विज्ञानका ज्ञान होनेके बाद रूप आदि) अर्थके प्रति अपने भीतर जो राग (द्वेष) आदिका संवेदन (=अनुभव) होता है, (वही) कल्पना-रहित (ज्ञान) स्वसंवेदन (प्रत्यक्ष) है।"[3] इसके अर्थको अपने वार्तिकमें स्पष्ट करते हुए धर्मकीर्तिने कहा—

राग (सुख) आदिके जिस स्वरूपका (हम अनुभव करते हैं वह) किसी दूसरे (इन्द्रिय आदिसे) संबंध नहीं रखता, अतः उसके स्वरूपके प्रति (वाच्य-वाचक) संकेतका प्रयोग नहीं हो सकता (और इसीलिए) उसका जो अपने भीतर संवेदन होता है वह (वाचक शब्दसे) प्रकट होने लायक नहीं है।"[4] इस तरह अज्ञात अर्थका प्रकाशक कल्पनारहित तथा अविसंवादी होनेसे राग-सुख आदिका जो अनुभव हम करते हैं, वह स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष भी इन्द्रिय और मानस प्रत्यक्षसे भिन्न एक प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष

[1] प्र० वा० ३।२३९ [2] वही ३।२४३
[3] "अर्थरागादि स्वसंवित्तिरकल्पिका"—प्रमाण-समुच्चय।
[4] प्र० वा० ३।२४९

[illegible] विषय (=रूप आदि) का ज्ञान प्राप्त करने [illegible] उसका अवलम्बन करता [illegible] विषयों [illegible] । किन्तु [illegible] इन्द्रियों (रूप-)ज्ञान और उस इन्द्रिय [illegible] भिन्न [illegible] का [illegible] ।

(७) योगि प्रत्यक्ष — [illegible] योगियों [illegible] योगि प्रत्यक्ष माना [illegible] । [illegible] अविवाद।—प्रत्यक्षादि [illegible] योगी [illegible] — [illegible] (योगियों) का [illegible] भावनाओं उत्पन्न [illegible] [illegible] योगि [illegible] । (स्पष्ट [illegible]) [illegible] ज्ञान [illegible] (अविकल्प) [illegible] (—[illegible]) [illegible] की भाँति [illegible] । [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] । [illegible] (=[illegible]) भी [illegible] । [illegible] (तर्कों का [illegible]) [illegible] (—विकल्परहित) [illegible] । [illegible] ।[1]

समाधि (=चित्त की एकाग्रता) आदि भावनाओं प्राप्त [illegible] [illegible] योगि प्रत्यक्ष प्रमाणरूप [illegible] । [illegible] उनमें [illegible] भावनाओं उत्पन्न (जात) प्रत्यक्ष प्रमाणरूप अभिप्रेत [illegible] (अर्थात् प्रकाशक आदि) की भाँति [illegible] (=[illegible]) [illegible], बाधा (दूसरे, भावनाओं उत्पन्न होने) [illegible] ।[2]

प्रत्यक्ष ज्ञान [illegible] उसे कल्पना रहित [illegible] इसपर जोर दिया गया । इन्द्रिय प्रत्यक्ष तक [illegible] रहित होना [illegible] समझा जा सकता [illegible] क्योंकि वहाँ हम [illegible] कि सामने घड़ा [illegible] [illegible]

---

[1] Intuition [2] प्र० वा० ३।२८१ २८३ [3] प्र० वा० ३।२८६

धर्म प्रतिबिम्बका जो पहिला दबाव ज्ञानतनुओं द्वारा हमारे मस्तिष्कपर पड़ता है, वह कल्पना-रहित होता है। पहिले दबावके बाद एक छाप (=प्रतिबिंब) मस्तिष्कपर पड़ता है फिर मस्तिष्कमें संस्काररूपमें पहिलेके देखे घड़ोंके जो प्रतिबिंब (या प्रतिबिंब-संतान) मौजूद हैं, उनसे इस नए प्रतिबिंब (या लगातार पड़ रहे प्रतिबिंब-संतान)का मिलाया जाता है—अब यहाँ कल्पनाका आरम्भ हो गया। फिर जिस प्रतिबिंबसे यह नया प्रतिबिंब मिल जाता है, उसके वाचक नामका स्मरण होता है फिर इस नए प्रतिबिंबवाले पदार्थका नामकरण किया जाता है। यहाँ कहाँ तक कल्पनारहित ज्ञान रहा, और कहाँसे कल्पना शुरू हुई यह समझना उस प्रथम दबावके द्वारा आसान है किंतु जहाँ बाहरी वस्तुके दबावकी बात नहीं रहती, वहाँ कल्पनाके आरंभकी सीमा निर्धारित करना—खासकर योगिप्रत्यक्ष जैसे ज्ञानमें—बहुत कठिन है। इसीलिए कल्पनाकी व्याख्या करते हुए धर्मकीर्त्तिने लिखा—

"जिस (विषय, वस्तु)में जो (ज्ञान, दूसरेसे पृथक करनेवाले) शब्द अर्थ (के संबंध)को ग्रहण करनेवाला है वह ज्ञान उस (विषय)में कल्पना है। (वस्तुका) अपना रूप शब्दार्थ (=शब्दका विषय) नहीं होता इसलिए वहाँका सारा (ज्ञान) प्रत्यक्ष है।[1]

इस तरह चाहे ज्ञानका विषय बाहरी वस्तु हो अथवा भीतरी विज्ञान, जब तक समानता असमानताको लेकर प्रयुक्त होनेवाले शब्दार्थ को अवकाश नहीं मिल रहा है, तब तक वह प्रत्यक्षकी सीमाके भीतर रहता है।

(प्रत्यक्षाभास)—चार प्रकारके प्रत्यक्षज्ञानको बतला चुके। किन्तु ज्ञान ऐसे भी हैं, जो प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं और देखनेमें प्रत्यक्षसे लगते हैं, ऐसे प्रत्यक्षाभासोंका भी परिचय होना जरूरी है जिससे कि हम गलत रास्ते पर न चले जायें। दिग्नागने ऐसे प्रत्यक्षाभासोंकी संख्या चार बतलाई

---

[1] प्र० वा० ३।२८७

है'— भ्रान्तिसंवृत्तिसंज्ञज्ञान अनुमानानुमानिकम् स्मार्तीभिलाषिकं चेति प्रत्यक्षाभासं सप्तविधम्। (१) भ्रान्तिज्ञान मरुमरीचिकादि जलज्ञान है। (२) संवृतिज्ञान जैसे द्रव्यके गुण आदिका ज्ञान—'यह अमुक द्रव्य है अमुक गुण है।' (३) अनुमान (=लिंग धर्म) आनुमानिक (=लिंगी धर्मी)के संकेतवाला स्मृति अभिलाष (=वचनके विषय) वाला ज्ञान—यह घड़ा है। (४) तैमिरिक ज्ञान वह ज्ञान है जो कि इन्द्रिय बिना सहकारी विकारके कारण होता है जैसे कामला रोगवालेको सभी चीज पीला मालूम होती है। इस पंक्ति 'चार प्रकारके प्रत्यक्षाभास कल्पना युक्त होते हैं' (जो कल्पनायुक्त होनेके कारण ही प्रत्यक्षके भीतर नहीं गिने जा सकते) और तैमिरिक (=तैमिरिक) कल्पना रहित है किन्तु आश्रय (=इन्द्रिय)में (विकार होनेके कारण उत्पन्न होता है (इसलिए प्रत्यक्षाभास नहीं माना जाता—ये हैं चार प्रकारके प्रत्यक्षाभास।[1]

(ख) अनुमान प्रमाण—अनुमान ज्ञान दो प्रकारसे हो सकता है एक अपने स्वरूपसे जैसे कि प्रत्यक्षसे देखनेपर होता है, दूसरा दूसरेके रूपसे जैसे धुआँ देखनेपर एक दूसरी (=रसोईघरकी) आगका रूप याद आता है और इस प्रकार दूसरेके रूपका इस धुएँके लिंग (=चिह्न) वाली आगका ज्ञान होता है—यह अनुमान है। चूँकि पदार्थका "स्वरूप और पर रूप से ही तरहसे ज्ञान होता है, अतः प्रमाणके विषय (भेद) दो ही प्रकारके होते हैं"[2]—एक प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय और दूसरा अनुमानका विषय।

किन्तु "(जो परस्परसे, अनुमान ज्ञान होता) है वह जैसी (वस्तुस्थिति) है उसके अनुसार नहीं लिया जाता इसलिए (यह) दूसरे तरहका (ज्ञान) भ्रान्ति है। (फिर प्रश्न होता है) यदि (वस्तुका अपने-रूपसे) पर-रूपसे

---

[1] "भ्रान्तिसंवृतिसंज्ञज्ञानं अनुमानानुमानिकम्। स्मार्तीभिलाषिकं चेति प्रत्यक्षाभासं सप्तविधम्।"—प्रमाण-समुच्चय।

[1] प्र० वा० ३।२८८ [2] प्र० वा० ३।५४

ज्ञान होता है, तो (वह भ्रान्ति है) और भ्रान्तिका प्रमाण नहीं कह सकते (क्योंकि वह अविसंवादी नहीं होगी)। (उत्तर है—) भ्रान्तिका भी प्रमाण माना जा सकता है यदि (उस ज्ञानका) अभिप्राय (जिस अर्थमें है, उस अर्थ)से अविसंवाद न हो (=उसके विरुद्ध न जाय, क्योंकि) दूसरे रूपसे पाया जाने भी (अभिप्रेत अर्थका संवादी) देखा जाता है।"[1] यही पहाड़में देखे धुएँवाली आगके ज्ञानका हम अपने रूपसे नहीं पा रसोईघर वाली आगके रूपके द्वारा पाते हैं परन्तु हमारे इस अनुमान ज्ञानसे जो अभिप्रेत अर्थ (पहाड़की आग) है, उससे उसका विरोध नहीं है।

(a) **अनुमानकी आवश्यकता**— वस्तुका जो अपना स्वरूप (=स्वलक्षण) है, उसमें कल्पना रहित प्रत्यक्ष प्रमाणकी जरूरत होती है (यह बतला चुके हैं) किन्तु (अनेक वस्तुओंके भीतर जो) सामान्य है उसे कल्पनाके बिना नहीं ग्रहण किया जा सकता इसलिए इस (सामान्यके ज्ञान)में अनुमानकी जरूरत पड़ती है।[2]

(b) **अनुमानका लक्षण**—किसी 'संबंधी (पदार्थ, धूमसे संबंध रखनेवाली आग)के धर्म (=लिंग धूम)से धर्मी (=धूमवाली आग)के विषयमें (जो परोक्ष) ज्ञान होता है वह अनुमान है।"[3]

पहाड़में हम दूरसे धुआँ देखते हैं हमें रसोईघर या दूसरी जगहकी आग याद आती है और यह भी कि 'जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ आग होती है" फिर धुएँको हेतु बनाकर हम जान जाते हैं कि पर्वतमें आग है। यहाँ आग परोक्ष है इसलिए उसका ज्ञान उसके अपने स्वरूपसे हमें नहीं होता, जैसा कि प्रत्यक्ष आगमें होता है, दूसरी बात है कि हमें यह ज्ञान सद्य नहीं होता, बल्कि उसमें स्मृति, शब्द-अर्थ-संबंध—अर्थात् कल्पना—का आश्रय

---

[1] वहीं ३।५५, ५६ [2] प्र० वा० ३।७५

[3] वहीं ३।६२ "अटूट संबंधवाले (दो) पदार्थों (मेंसे एक)का दर्शन उस (=संबंध)के जाननेवालेके लिए अनुमान होता है" (अनन्तरीयकार्थ दर्शनं तद्विदोऽनुमानम्"—वसुबन्धुकी वादविधि)।

लना पड़ता है।

(प्रमाण दो ही)—प्रमाण द्वारा ज्ञेय (=प्रमेय) पदार्थ स्वरूप और पररूप (=कल्पना रहित, कल्पना युक्त) दो ही प्रकारका जाने जाते हैं। इनमें पहिला प्रत्यक्ष रहते जाना जाता है, दूसरा परोक्ष (अ प्रत्यक्ष) रहते। प्रत्यक्ष और परोक्षके छोड़ और कोई (तीसरा) प्रमेय संभव नहीं है, इसलिए प्रमेयके (सिर्फ) दो होनेके कारण प्रमाण भी दो ही होते हैं। दो तरहके प्रमेयोंके देखनेसे (प्रमाणोंकी) संख्याको (बढ़ाकर) तीन या (घटाकर) एक करना भी गलत है।[1]

(c) अनुमानके भेद—कणाद ऋषिने अनुमानको एक ही माना था, इसलिए अपने पश्चवर्ती ऋषियोंके पदपर चलते हुए प्रशस्तपाद जैसे भाष्यकारोंके साथ आज तक ब्राह्मण नैयायिक उसे एक ही मानते आ रहे हैं। अनुमानके स्वार्थ अनुमान, परार्थ अनुमान ये दो भेद पहिलेपहिल आचार्य दिङ्नागने किया।[2] दो प्रकारके अनुमानोंमें स्वार्थ अनुमान वह अनुमान है, जिसमें तीन प्रकारके हेतुओं (=लिंगों, चिह्नों, धूम आदि)से किसी प्रमेयका ज्ञान अपने लिए (=स्वार्थ) किया जाता है।[3] परार्थानुमानमें उन्हीं तीन प्रकारके हेतुओं द्वारा दूसरेके लिए (=परार्थ) प्रमेयका ज्ञान कराया जाता है।

(d) हेतु (=लिंग) धर्म—पदार्थ (=प्रमेय)के जिस धर्मको हम देख कर कल्पना द्वारा उसके अस्तित्वका अनुमान करते हैं, वह हेतु है। अथवा पक्ष (=आग)का धर्म हेतु है, जो कि पक्ष (=आग)के अंश (=धूम धर्म)में व्याप्त है।[4]

हेतु सिर्फ तीन तरहके होते हैं[5]—कार्य हेतु, स्वभाव हेतु और अनुपलब्धि-हेतु। हम किसी पदार्थका अनुमान करते हैं उसके कार्यसे—'पहाड़में आग है, धूआं होनेसे'। यहां धुआं आगका कार्य है, इस तरह

---

[1] प्र० वा० ३।६३ ६४ [2] धर्मोत्तर (न्यायबिन्दु पृ० ४२)
[3] देखो न्यायबिन्दु २।३ प्र० वा० १।३ [4] वहीं

[illegible] इन्द्रियों [illegible] बुद्धि बिना [illegible] इस तरह [illegible] (=[illegible] और बुद्धि) [illegible]=[illegible] (=[illegible] दूसरेपर निर्भर है), और [illegible] (मन [illegible]) [illegible] (सिद्ध है)[1]।

(ख) मन शरीर नहीं—मन और शरीरका इस तरह एक दूसरेपर आश्रित होना—[illegible] संबंध होना—[illegible] परिणामवाद [illegible] [illegible] मन, शरीरसे सर्वथा भिन्न [illegible] है, यह [illegible] [illegible] और [illegible] उसी भौतिक [illegible] [illegible] है [illegible] तरह उसमें [illegible] भेद नहीं—[illegible] ही [illegible] है जो [illegible] है वह [illegible]। [illegible] बौद्ध [illegible] भौतिकवाद (भौतिकवाद या जड़वाद)का खंडन करते हुए कहते हैं—'प्राण=प्रान (=श्वास-प्रश्वास) इन्द्रियों और बुद्धि (=मन)का उत्पत्ति [illegible] समानता [illegible] (=[illegible]) पूर्व कारणके बिना केवल [illegible] नहीं होता। यदि इस तरहसे उत्पत्ति (=जन्मग्रहण) होती, तो (प्राण प्रान इन्द्रिय बुद्धिका [illegible] उत्पन्न होना) नियम न रहता (और बिना किसी भवन जीवन=प्राण प्रान इन्द्रिय-बुद्धि वाला शरीर उत्पन्न होता)।[1]

जीवनवाले [illegible] दूसरे जीवोंकी उत्पत्ति होती है—यह भी इस बातका [illegible] है कि मन (=चेतना) केवल भूतोंका उपज नहीं है। कहीं कहीं जीवन बीजके बिना भी जीवोंका उत्पन्न होना दिखाई देता है, जबकि वर्षाके [illegible] [illegible] उत्तर देते हुए धर्मकीर्ति कहते हैं—

पृथिवी आदिसे [illegible] कोई [illegible] नहीं है—जैसे [illegible] आदि जन्तु न पैदा होते [illegible] मालूम होता है [illegible] (भूतोंसे उत्पन्न होना दिखाई देनेवाली वस्तुएँ) बीजाभास हैं।[2]

'यदि अपने सजातीय (जीवनमुक्त कारण)के बिना इन्द्रिय आदिकी उत्पत्ति मानी जाय तो जड़ (जड़रूप भूत जीवनके रूपमें) परिणत

---

[1] प० वा० २।३५ [2] वही २।३७

४ दूसरे दार्शनिकोंका खंडन

धर्मकीर्तिने अपने ग्रंथ प्रमाण वार्तिकमें अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका समर्थन और प्रतिपादन ही नहीं किया है बल्कि उन्होंने अपने समय तककी हिन्दू दार्शनिक प्रगतिकी आलोचना भी की है। जिन दार्शनिकोंके ग्रंथोंको सामने रखकर उन्होंने यह आलोचना की है उनमें उद्योतकर और कुमारिल जैसे प्रमुख ब्राह्मण दार्शनिक भी हैं। हमने पुनरुक्ति और ग्रंथ विस्तारके डरसे उनके बारेमें अलग नहीं लिखा किन्तु यहां धर्मकीर्तिकी आलोचनासे उनके विचारोंका हम जान सकते हैं।

(१) नित्यवादियोंका सामान्यरूपसे खंडन—पहिले हम उन सिद्धान्तोंको ले रहे हैं, जिन्हें एकसे अधिक दार्शनिक सम्प्रदाय मानते हैं।

(क) नित्यवादका खंडन—अनित्यवाद (=क्षणिकवाद)का धारण करनेवाले होनेसे बौद्धदर्शन नित्यवादका जबरदस्त विरोधी है। भारतके बाकी सारे ही दार्शनिक किसी-न किसी रूपमें नित्यवादको मानते हैं। जैन और मीमांसक जैसे आत्मवादी ही नहीं चार्वाक जैसे भौतिकवादी भी भले सूक्ष्मतम अवयवको क्षणिक (=अनित्य) कहनेके लिए तैयार नहीं थे जैसे कि पिछली सदी तकके यूरोपके यांत्रिक भौतिकवादी विश्वकी मूल इंटों—परमाणुओं—को क्षणिक कहनेके लिए तैयार न थे।

दिङ्नाग कहते हैं[1]—'कारण (स्वयं) विकारको प्राप्त होकर ही दूसरी (चीज)का कारण हो सकता है। धर्मकीर्तिने कहा—"जिसके होनेके बाद जिस (वस्तु)का जन्म होता है, अथवा (जिसके) विकारयुक्त होनेपर (दूसरी वस्तु)में विकार होता है, उसे उस (पीछेवाली वस्तु)का कारण कहते हैं।'[2]

इस प्रकार कारण वही हो सकता है जिसमें विकार हो सकता है। 'नित्य (वस्तु) में यह (बात) नहीं हो सकती अतः ईश्वर आदि (जो नित्य

---

[1] "कारणं विकृतिं गच्छज्जायतेऽन्यस्य कारणम्"।

[2] प्र० वा० २।१८१ ८२

धर्मकी वजहसे (कहा जाता है)। यदि (भौतिकवादियोंके मतानुसार) केवल (भौतिक तत्त्व ही मनके कारण हो) तो (इस दोषको हटाना) असाध्य न हो सकता।

(माना जाता है कि साँप काटनेपर जब तक जीवन रहता है तब तक विष सारे शरीरमें फैलता जाता है किन्तु शरीरके निर्जीव हो जानेपर विष वहीं स्थावर जमा हो जाता है इस तरह तो यदि भूत ही चेतना होती तो (शरीरके) मर जानेपर विष आदिके (शरीरके अन्य स्थानोंसे हटकर एक स्थानपर) जमा होने (शरीरके बाकी स्थानों) अथवा घटे (स्थान)के फट जानेसे वह (शरीर) क्या नहीं सोम जैसा लगता? (इससे पता लगता है कि चेतना भूत ही नहीं है बल्कि उससे भिन्न वस्तु है यद्यपि दोनों एक दूसरेके आश्रित होनेसे अलग अलग नहीं रह सकते)।

'(मनमें चेतनाकी उत्पत्ति माननेपर मन उपादान और चेतना उपादेय हुए फिर) उपादान (=शरीर)के विकारके बिना उपादेय (=चेतना)में विकार नहीं किया जा सकता जैसे कि मिट्टीमें विकार बिना (मिट्टीके बने) कुम्हार आदिमें (विकार नहीं किया जा सकता)। किसी वस्तुके विकार-युक्त हुए बिना जो पदार्थ विकारवान होता है, वह वस्तु उस (पदार्थ)का उपादान नहीं (हो सकती), जैसे कि (एकके विकारके बिना दूसरी विकार-युक्त होनेवाली) गाय और नीलगायमें (एक दूसरेका उपादान नहीं हो सकती), इसी तरह मन और शरीरकी भी (बात है दोनोंमेंसे एकके विकार युक्त हुए बिना भी दूसरेमें विकार देखा जाता है)।'[1]

(ग) मनका स्वरूप— स्वभावसे मन प्रभास्वर (=निर्विकार) है, (उसमें पाए जानेवाले) मल आगन्तुक (आकाशमें अंधकार कुहरा आदिकी भाँति अपनेसे भिन्न) हैं।'[2]

---

[1] प्र० वा० २।५४ ६२ [2] वही २।२०८

४ दूसरे दार्शनिकोंका खंडन

धर्मकीर्तिने अपने ग्रंथ प्रमाण-वार्तिकमें अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका समर्थन और प्रतिपादन ही नहीं किया है, बल्कि उन्होंने अपने समय तककी हिन्दू दार्शनिक प्रगतिकी आलोचना भी की है। जिन दार्शनिकोंके ग्रंथोंको सामने रखकर उन्होंने यह आलोचना की है उनमें उद्योतकर और कुमारिल जैसे प्रमुख ब्राह्मण दार्शनिक भी हैं। हमने पुरोवर्ति और ग्रंथ विस्तारके डरसे उनके बारेमें अलग नहीं लिखा किन्तु यहां धर्मकीर्तिकी आलोचनासे उनके विचारोंको हम जान सकते हैं।

(१) नित्यवादियोंका सामान्यरूपसे खंडन—पहिले हम उन सिद्धान्तोंको ले रहे हैं, जिन्हें एकसे अधिक दार्शनिक सम्प्रदाय मानते हैं।

(क) नित्यवादका खंडन—अनित्यवाद (=क्षणिकवाद)का धार पकड़ लेनेसे बौद्धदर्शन नित्यवादका जबर्दस्त विरोधी है। भारतके बाकी सारे ही दार्शनिक किसी-न किसी रूपमें नित्यवादको मानते हैं। जैन और मीमांसक जैसे आत्मवादी ही नहीं चार्वाक-जैसे भौतिकवादी भी भूतके सूक्ष्मतम अवयवको क्षणिक (=अनित्य) कहनेके लिए तयार नहीं थे, जैसे कि पिछली सदी तकके यूरोपके यांत्रिक भौतिकवादी विश्वकी मूल इंटों—परमाणुओं—को क्षणिक कहनेके लिए तयार न थे।

दिङ्नाग कहते हैं[1]—"कारण (स्वयं) विकारको प्राप्त होकर ही दूसरे (काम)का कारण हो सकता है। धर्मकीर्तिने कहा—'जिसके होनेके बाद जिस (वस्तु)का जन्म होता है अथवा (जिसके) विकारयुक्त होनेपर (दूसरी वस्तु)में विकार होता है उसे उस (पीछेवाली वस्तु)का कारण कहते हैं।"[2]

इस प्रकार कारण वही हो सकता है, जिसमें विकार हो सकता है। नित्य (वस्तु) में यह (बात) नहीं हो सकती, अतः ईश्वर आदि (जो नित्य

---

[1] "कारणं विकृतिं गच्छज्जायतेऽन्यस्य कारणम्"।

[2] प्र० वा० २।१८१-८२

पदार्थ) हैं उनमें (कोई वस्तु) उत्पन्न नहीं हो सकता।[1]

जिसे अनित्य नहीं कहा जा सकता वह किसी (चीज)का हेतु नहीं हो सकता। (नित्यवादी) विद्वान् उसी (स्वरूप)को नित्य कहते हैं जो स्वभाव (=स्वरूप) विनष्ट नहीं होता।[2]

यह भी बतला चुके हैं कि धर्मकीर्ति परमार्थ-सत उसी वस्तुको मानते हैं, जो कि अर्थवाला (=सार्थक) क्रिया (करने) में समर्थ हो। नित्यमें विकारका सर्वथा अभाव होनेसे क्रिया हो ही नहीं सकती। आत्मा ईश्वर, इंद्रिय आदिसे अगोचर है साथ ही वह नित्य होनेके कारण निष्क्रिय भी है इनपर भी उनके अस्तित्वकी धारणा करना यह साहस मात्र है।

(ख) आत्मवादका खंडन—चार्वाक और बौद्ध दर्शनको छोड़ बाकी सारे भारतीय दर्शन आत्माको एक नित्य चेतन पदार्थ मानते हैं। बौद्ध अनात्मवादी हैं अर्थात् आत्माको नहीं मानते। आत्माको न माननेपर भी क्षण-क्षण परिवर्तनशील चेतना प्रवाह (=विज्ञान-संतति) एकसे दूसरे शरीरसे जुड़ता (=प्रतिसंधि ग्रहण करता) रहता है इसे हम पहिले बतला चुके हैं। चेतना (=मन या विज्ञान) सदा कायाश्रित रहती है। जब कि एक शरीरका दूसरे शरीरसे एकदम सन्निकटका संबंध नहीं है मरनेवाले के शरीर भूलोकपर है और उसके बादका सजीव बननेवाले के शरीर मंगललोकमें ऐसी अवस्थामें के शरीरको छोड़ के शरीर तक पहुँचनेमें बीचकी एक अवस्था होगी जिसमें विज्ञानको कायासे बिलकुल स्वतंत्र मानना पड़ेगा फिर 'मन कायाश्रित है'—कहना गलत होगा। इसका उत्तर बौद्ध यह सकते हैं कि हम मनको एक नहीं बल्कि प्रवाह मानते हैं प्रवाहका अर्थ निरन्तर—अविच्छिन्न चली आती एक वस्तु नहीं बल्कि, हर क्षण अपने रूपमें विच्छिन्न—सर्वथा नष्ट—होती तथा उसके बाद उसी तरहकी किन्तु बिलकुल नई चीजका उत्पन्न होना और इस नष्ट उत्पत्ति-नष्ट उत्पत्ति से एक विच्छिन्न प्रवाहका

---

[1] वहीं २।१८३ [2] वहीं २।२०४

जारी रहना। चेतन प्रवाह इसी तरहका विच्छिन्न प्रवाह है, वह जीवन रूपा मालूम होता है, किन्तु है जीवन बिन्दुओंकी पाती। फिर प्रवाहका विच्छिन्न मान लेनेपर "मन कायाश्रित"का मतलब मनके हर एक "बिन्दु"को बिना कायाके नहीं रहना चाहिए। क शरीर—जो कि स्वयं क्षण-क्षण परिवर्तनशील शरीर निर्मापक मूल बिन्दुओं (=कणों)का विच्छिन्न प्रवाह है—का अन्तिम चित्त बिन्दु नष्ट होता है उसका उत्तराधिकारी ख शरीरके साथ होता है। क शरीर(प्रवाह)के अन्तिम और ख शरीर(प्रवाह)के आदिम चित्त बिन्दुओं (क चित्त, ख चित्त)के बीच यदि किसी ग चित्त-बिन्दुका मान लें तब न आश्रय किया जा सकता है, कि ग चित्त बिन्दु कायाके बिना है। इस तरह स्थिर (=नित्य या चिरस्थायी) नहीं बल्कि बिजलीकी चमकसे भी बहुत तेज गतिसे 'आँख मिचौनी' करनेवाले चित्त-प्रवाहके (अनात्म तत्त्व)को मानते हुए भी वह एकसे अधिक शरीरों (=शरीर प्रवाहों)से उसका जाना सिद्ध करते हैं।

(a) नित्य आत्मा नहीं—आत्माको नित्य माननेवाले वैसा मानना सबसे जरूरी इस बातके लिए समझते हैं कि उसके बिना बंध—जन्म मरणमें पड़कर दुःख भोगना और मोक्ष—दुःखसे छूटकर परम सुखी' हो विचरण करना—दोनों संभव नहीं। इसपर धर्मकीर्ति कहते हैं—

दुःखकी उत्पत्तिमें कारण (=कर्म) बंध है (किन्तु) जो नित्य है (वह निष्क्रिय है इसलिए) वह ऐसा (कारण) कैसे हो सकता है? दुःखकी उत्पत्ति न होनेमें कारण (कर्मसे उत्पन्न बंधसे) मोक्ष (मुक्त होना) है जो नित्य है, वह ऐसा (कारण) कैसे हो सकता है? (वस्तुतः) जिसे अनित्य (=क्षणिक) नहीं कहा जा सकता वह किसी (चीज)का कारण नहीं हो सकता। नित्य उस स्वरूपको कहते हैं जो कि नष्ट नहीं होता। इस लज्जाजनक दृष्टि (=नित्यताके सिद्धान्त)को छोड़कर उसे (=आत्माको) (अतः) अनित्य कहो।"[1]

---

[1] प्र० वा० २।२०२-२०५

(b) नित्य आत्माका विचार (=सत्काय दृष्टि) सारी बुराइयोंकी जड़— मैं सुखी होऊँ या दुःखी नहीं होऊँ—यह तृष्णा करते (पुरुष)का जो मैं ऐसा ख्याल (=बुद्धि) होता है वही सहज आत्मवाद (=सत्काय दृष्टि) है। मैं ऐसी धारणाके बिना और आत्मामें स्नेह नहीं कर सकता और आत्मामें (इस तरहके) स्नेहके बिना सुखकी कामना करनेवाला बन (कर गर्भस्थानकी ओर) दौड़ नहीं सकता है।[1]

जब तक आत्मा-संज्ञाका प्रभाव न छूटता तब तक (पुरुष अपनेको) दुःखी मानता रहेगा और स्वस्थ (=चिंता रहित) नहीं हो सकेगा। यद्यपि कोई (अपनेको) मुक्त करनेवाला नहीं है तो भी ('मैं, मेरा, जैसे) झूठे ख्याल (=आरोप)को हटानेके लिए यत्न करना पड़ता है।[2]

यह (क्षणिक मन शरीर प्रवाहमें) भिन्न आत्माका ख्याल है, जिससे उससे उलटे स्वभाव (=वस्तुका स्थिरता आदि)में राग (=स्नेह) उत्पन्न होता है।[3]

आत्माका ख्याल (केवल) मोह और वही सारी बुराइयोंकी जड़ (=पापोंका मूल) है।

(यह) मोह सत्काय दृष्टि (=नित्य आत्माकी धारणा) है, मोह मूलके भी सार मल (=चित्त विकार) है।

धर्मके माननेवालोंके लिए भी आत्मवाद (=सत्काय-दृष्टि) बुरी चीज है इसे बतलाते हुए कहा है—

जो (नित्य) आत्माको मानता है उसका मैं इस तरहका स्नेह (=राग) सदा बना रहता है स्नेहसे सुखकी तृष्णा करता है और तृष्णा दोषोंको ढाँक देता है। (दोषोंके ढँक जानेसे वह) वह गुणोंको देखता है और) गुणदर्शी तृष्णा करते हुए 'मेरा (सुख)' ऐसी (चाह करते) उस (की प्राप्ति)के लिए साधनों (=पुनर्जन्म आदि)को ग्रहण करता है।

---

[1] प्र० वा० २।२०१-२ [2] वहीं २।१९१-९२
[3] प्र० वा० १।१९५ [4] वहीं २।१९६ [5] वहीं २।२१३

इस सत्काय-दृष्टिसे जब तक आत्माकी धारणा है, तब तक वह संसार (=भवसागर)में है। आत्मा (=मेरा) जब है, तभी पराए (=मेरा)-का ख्याल होता है। मेरा-परायाका भेद जब (पुरुषमें) आता है तो लेना, छोड़ना (=राग, द्वेष) होता है, इन्हीं (लेने छोड़ने)से वैर सारे दोष (=ईर्ष्या आदि) पैदा होते हैं। जो नियमसे आत्मामें स्नेह करता है, वह आत्मीय (=सुख साधनों)में रागरहित नहीं हो सकता।[1]

आत्माकी धारणा सर्वथा अपने (व्यक्तित्वमें) स्नेहको दृढ़ करती है। आत्मीयोंके प्रति स्नेहका बीज (जब मौजूद है तो वह दोषोंको) वैसा ही कायम रखेगा।[2]

'(वस्तुतः आत्मा नहीं नैरात्म्य ही है,) किन्तु नैरात्म्यमें जब (गलतीसे) आत्म-स्नेह हो गया, तो उससे (=आत्मस्नेहसे कि जिसे वह आत्मीय सुख आदिकी चीज समझता है उसमें) जितना भी लाभ हो, उसके अनुसार क्रिया-परायण होता है। (—बड़ा लाभ न होनेपर छोटे लाभको भी हासिल करनेमें बाज नहीं आता जैसे) मत्तकासिनी (=मत्त गजगामिनी सुन्दरी)के न मिलनेपर (कामुक पुरुष) पशुसे भी कामतृप्ति करता है।"[3]

इस प्रकार नित्य आत्मा युक्तिसे सिद्ध नहीं हो सकता है, और धर्म, परलोक, मुक्तिमें भी उसके माननेसे बाधा ही होती है।

(ग) ईश्वर-खंडन—ईश्वरवादी ईश्वरको नित्य और जगतका कर्त्ता मानते हैं। धर्मकीर्त्ति ईश्वरके अस्तित्वका खंडन करते हुए कहते हैं—

'जैसे (स्वरूपसे) वह (ईश्वर जगत्की सृष्टिके वक्त) कारण वस्तु है वैसे ही (स्वभावसे सृष्टि करनेसे पहिले) वह अ-कारण भी था। (आखिर स्वरूपसे एकरस होनेसे दोनों अवस्थामें उसमें भेद नहीं हो सकता, फिर) जब वह कारण (माना गया, उसी वक्त) किस (वजह)से (वैसा) माना गया (और) अ-कारण नहीं माना गया?

---

[1] प्र० वा० २।२१७-२२० [2] वही २।२३५, २३६ [3] वही २।२३३

(कारण और अकारण दोनों अवस्थाओंमें एकरस रहनेवाला ईश्वर जब कारण बन जाता है, तो प्रश्न होता है—) रोग (के शरीर)में शस्त्रके लगनेसे घाव और औषधके लगानेसे घाव भरना (देखा जाता है) शस्त्र और औषध क्षणिक होनेसे क्रिया कर सकते हैं इसलिए उनके लिए यह सम्भव है किन्तु यदि (नित्य अक्षय निष्क्रिय ईश्वरको कारण माना जाय, तो क्रिया आदि) सम्भव नहीं होनेसे ही क्या न किसको कारणता मान लें ?

(यदि यह कहा कि ईश्वरके सृष्टिके कारण होनेकी अवस्थामें अकारण अवस्थामें विशेषता होती है तो प्रश्न होगा—ऐसा होनेमें उसके स्वरूपमें परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि) स्वरूपमें परिवर्तन हुए बिना (वह कारण नहीं हो सकता और नित्य होनेसे) वह कोई व्यापार (=क्रिया) नहीं कर सकता। और (साथ ही) जो नित्य है, वह तो अकारण नहीं (सदा वहाँ मौजूद) है (फिर उसकी सृष्टि रचना-सम्बन्धी) सामर्थ्यके कारण यह समझना मुश्किल है (कि सदा अपनी उसी सामर्थ्यके रहते भी वह उसे एक समय ही प्रदर्शित कर सकता है दूसरे समय नहीं)।

जिन (कारणों)के होनेपर ही जो (कार्य) होता है, उन (कारणों) से अन्यको उस (कार्य)का कारण माननेपर (कारण ढूंढते वक्त ईश्वर तक ही जाकर थम जाना नहीं पड़ेगा बल्कि) सभी कारणोंका खोजना ही नहीं होगा (ईश्वरके आगे भी और तथा उसके आगे और कारण ढूंढने पड़ेंगे।)

(कारण वही होता है जिसके स्वरूपमें कार्यके उत्पन्नके समय परिवर्तन होता है) भूमि आदि अंकुर पैदा करनेमें कारण अपने स्वरूप परिवर्तन करते हुए होते हैं क्योंकि उन (=भूमि आदि)के संस्कारसे अंकुरमें विशेषता देखते हैं। (ईश्वर अपने स्वरूपमें परिवर्तन किए बिना कारण नहीं बन सकता और स्वरूप-परिवर्तन करनेपर वह नित्य नहीं रह सकता)।[1]

---

[1] प्र० वा० २।२१ २५

ईश्वरवादी ईश्वर सिद्ध करनेके लिए इस एक जबर्दस्त युक्ति समझते हैं—सन्निवेश (=खास आकार प्रकार)की वस्तुको देखनेपर कर्त्ताका अनुमान होता है जैसे सन्निवेशवाले घड़ेको देखकर उसके कर्त्ता कुम्हारका अनुमान होता है। इसका उत्तर देते हुए धर्मकीर्त्ति कहते हैं—

'किसी वस्तु (=घट)के बारेमें (पुरुषकी उपस्थितिमें सन्निवेशका होना यदि) प्रसिद्ध है तो उसके एकसे शब्द (=सन्निवेश पुरुषपूर्वक होता है)की समानतासे (कुम्हारकी तरह ईश्वरका) अनुमान करना ठीक नहीं जैसे कि (एक जगह कहीं) पीले रंगवाले धुएँको देखकर आपने आगका अनुमान किया और फिर सभी जगह पीले रंगका देखकर आगका अनुमान करते चलें। यदि ऐसा न माने तब तो चूँकि कुम्हारने मिट्टीके किसी घड़े आदिको बनाया इसलिए दीमकोंके टीलेको कुम्हारकी ही कृति सिद्ध करना होगा।'[1]

पहिले सामग्रीकारणवादके बारेमें कहते वक्त धर्मकीर्त्ति बतला चुके हैं, कि कोई एक वस्तु कार्यको नहीं उत्पन्न करती अनेक वस्तु मिलकर अर्थात् कारण-सामग्री कार्य करनेमें समर्थ होती है।

(२) **न्याय-वैशेषिक खंडन**—वैशेषिक और न्याय-दर्शनमें जगत्को बाहरसे परिवर्तनशील मानते हुए यूनानी दार्शनिकों—खासकर अरस्तूके दर्शन—का अनुसरण करते हुए बाहरी परिवर्तनके भीतर नित्य एक रस तत्त्वों—चेतन और जड़ मूल तत्त्वोंको सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है। बौद्धदर्शन अपवादरहित क्षणिकताके अटल सर्वव्यापी नियमको स्वीकार करते हुए किसी स्थिरता-साधक सिद्धान्तको माननेके लिए तयार नहीं था इसीलिए हम प्रमाणवार्त्तिकमें धर्मकीर्त्तिको मुख्यतः ऐसे सिद्धान्तोंका जबर्दस्त खंडन करते देखते हैं। वैशेषिकने स्थिरवादी सिद्धान्तके अनुसार अपने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय—छः पदार्थोंको स्वीकृत किया है इनमें कर्म और विशेष ही हैं जिनके माननेमें बौद्धोंको आनाकानी

---

[1] वहीं २।१२, १३

नहीं हो सकता था क्योंकि कर्म या क्रिया परिणामवाला है साकार—परमाणुमय—स्वरूप और हेतु सामग्री तथा प्रवाह (जिसके बारेमें आगे शास्त्रप्रमाणपर बहस करने वाले हैं)के सिद्धान्तोंका मानवाले होनेसे विषयको भी वह स्वीकार कर सकते थे। आगे द्रव्य गुण सामान्य इस तरहका वह कल्पनापर निर्भर व्यवहारमात्र तौरपर ही मान सकते थे।

(क) द्रव्य गुण आदिका खंडन—बौद्धोंका परमाणुवाद और व्यवहारका परिभाषाएँ आगे लिखे जा चुकी हैं उसमें परमाणु सत्को कपोल कल्पित—अर्थक्रिया—का रूप है। विश्वमें जो कुछ वस्तु सत् है वह अर्थक्रियासे युक्त है जो अर्थक्रियाकारी नहीं है वह वस्तु सत् (=परमार्थसत्)न हो सकता। विश्व और उसकी वस्तुओंके आरम्भ ऐसा विचार करते हुए वह वस्तु वस्तु ही नहीं मान सकते थे क्योंकि वस्तु से साधारण जनके मनमें स्थिर पदार्थका ख्याल आता है क्योंकि बौद्ध दार्शनिकोंने वस्तुके स्थानमें धर्म या "भाव" शब्दका अधिक प्रयोग करना चाहा है। धर्म या समूह या प्रवाह स्थिर सत्यके अर्थमें नहीं बल्कि विच्छिन्न प्रवाहके उन बिन्दुओंके अर्थमें लिया है जो क्षण क्षण नष्ट होकर उत्पन्न होते हैं वस्तुके आकारमें हम लिखना पड़ते हैं। भाव (=होना) को वह इसलिए पसन्द करते हैं क्योंकि वस्तु स्थिति हमें देखने को नहीं मिलती बल्कि भाव का पता लगती है—विश्व स्थिर तत्त्वोंका समूह नहीं है कि हम देखने का प्रयोग करें बल्कि यह उन घटनाओंका समूह है जो प्रतिक्षण धटित हो रहा है। वैशेषिकोंकी द्रव्य, गुणकी कल्पना भावके पक्षमें स्थिर विच्छिन्न प्रवाह वाले विचारके विरुद्ध है।

वैशेषिकोंका कहना है—द्रव्य और गुण दो चीज (पदार्थ) हैं जिनमें गुण वह है जो सदा किसीके आधारमें रहता है गंधको हमेशा हम पृथिवी (तत्त्व)के आधारपर देखते हैं, रसको जल (तत्त्व)के आधारपर। उसी तरह जहाँ-जहाँ हम द्रव्य देखते हैं, वहाँ वहाँ उसके आश्रय—गुण—भी पाए जाते हैं जहाँ जहाँ पृथ्वी (तत्त्व) मिलता है वहाँ-वहाँ उसका आश्रय गुण गंध भी मिलता है। इस तरह गुणके लिए कोई आधार होना चाहिए यह

ख्याल हमें द्रव्यकी सत्ता स्वीकार करनेके लिए मजबूर करता है, और द्रव्य सदा अपने आश्रय गुणके साथ रहता है, यह ख्याल हमें गुणकी सत्ताको स्वीकार करनेके लिए मजबूर करता है। बौद्धोंका कहना है—प्रकृति इन द्रव्य गुणके भेदको नहीं जानती यह तो हम समझनेकी आसानीके लिए अलग करके कहते हैं जिस तरह प्रकृति दस आमोंमें एकको पहिला एकको दूसरा इस तरह नंबर देकर हमारे सामने उपस्थित नहीं करती हर एक आम एक दूसरेसे भिन्न है—उसे वह इतना ही जानती है। भाव प्रतिक्षण विनष्ट हो रहे हैं भावोंके प्रवाहकी उस तरह की (प्रतिक्षण विनाशसे युक्त) उत्पत्तिसे (सिद्ध होता है कि यह उत्पत्ति सदा) सहेतुक (=कारण या पूर्ववर्ती भावके होनेपर) होती है इससे आश्रय (=आधार है, सिर्फ इसी अर्थमें लेना चाहिए कि हर एक भावकी उत्पत्तिके पहिले भाव प्रवाह मौजूद रहता) है इससे भिन्न अर्थमें (आश्रय, आधार या द्रव्यका मानना) अयुक्त है।'[1]

जैसे जलका आधार घड़ेको मानते हैं उसी तरह गंधका आधार पृथिवी (-तत्व) है, यह कहना गलत है जल आदिके लिए आधार (की जरूरत) हो सकती है क्योंकि (गतिशील जलके) गमनका (घड़ेसे) प्रतिबंध होता है। गुण सामान्य (=जाति) और कर्म (जो तुम्हारे मतमें गतिरहित हो द्रव्यके भीतर रहते हैं फिर एसे) गतिहीनोंका आधार लेकर क्या करना है?'[2]

इस तरह आधारकी कल्पना गलत साबित होनेपर आश्रय गुण आदिका पृथक् पदार्थ होना भी गलत ख्याल है। गुण सदा द्रव्यमें रहता है, अर्थात् दोनोंके बीच समवाय (=नित्य) संबंध है, तथा द्रव्य गुणका समवायी (=नित्य संबंध रखनेवाला) कारण है, यह समवाय और समवायी कारणका ख्याल भी पूर्व-खंडित द्रव्य-गुणकी कल्पनापर आधारित होनेसे गलत है।

---

[1] प्र० वा० २।६७ [2] प्र० वा० २।६८

(ख) सामान्यका खंडन—गाय इत्यादि जब हम अनेक भेद, अर्थात् भविष्यकी व्यक्तियोंपर विचार करते हैं तो वह अनगिनत मालूम होती हैं। इन अनगिनत गाय-व्यक्तियोंमें एक बात हम सदा पाते हैं, वह है गायपन (=गोत्व) जो गाय व्यक्तियोंके मरने रहनेपर भी हर नई उत्पन्न गायमें पाया जाता है। अनेक व्यक्तियोंमें एकसा पाया जानेवाला यह पदार्थ सामान्य या जाति है जो नित्य—सर्वकालीन—है। यह है सामान्यका सिद्ध करनेमें वैशेषिकोंकी युक्ति जिसके आरंभ पहिले लिखे वचनपर भी प्रकरणके समझनेमें आसानीके लिए हम यहाँ फिर कहना पड़ा है।

अनेकानेक प्रकरणोंमें हमकोंने कह चुके हैं कि सामान्य अनुमानका विषय है साथ ही सामान्य वस्तु-सत् नहीं बल्कि कल्पनापर निर्भर है। हम इसीलिए यह कहते हैं—

बाहरी अर्थ (=पदार्थ)की अपेक्षाके बिना जैसे (अर्थ पदार्थसे) उसे वाचक मान बैठना जिस शब्दको नियत करते हैं वह शब्द वैसा (हो) वाचक होता है।

(एक स्त्रीके लिए भी संस्कृतमें बहुवचन) दारा (छः नगरोंके नाम) वचनवाले अर्थके लिए संस्कृतमें एक वचन) षण्णगरी (छः नगर) कहा जाता है जैसे (शब्द-रूपों)में एक वचन और बहुवचनकी व्यवस्थाका क्या कारण है? अथवा (सामान्य अनेक व्यक्तियोंमें एक होता है आकाश तो एक सिर्फ एक है फिर) खेत्व स्वभाव खपन (=आकाशपन) यह सामान्य क्यों माना जाता है?

इसका अर्थ यही है शब्दोंके प्रयोगमें वस्तुकी पर्वाह नहीं करके वक्ता बहुत जगह स्वतन्त्रता दिखलाते हैं गायपन आदि इसी तरहकी उनकी स्वतन्त्र कल्पना है जिसके ऊपर वस्तुस्थितिका फैसला करना गलत होगा।

(सर्वथा एक दूसरेसे) भिन्नता रखनेवाले भावों (=वस्तुओं)का

---

[1] प्र० वा० १।६८ ६९

गवर का एक अर्थ (=गायपन) जतलानेवाली (बुद्धि=ज्ञान पैदा होती है, जिस)के द्वारा उन (भावों)का (वास्तविक) रूप ढँक (=संवृत हो) जाता है (इसलिए ऐसे ज्ञानको) संवृति (=वास्तविकताको ढाँकनेवाली) कहते हैं।

ऐसा संवृतिसे (भावों=गायों)का नानापन ढँक गया है, (इसीलिए) भाव (=गाय आपसमें) स्वयं भिन्नता रखते हुए (भी) किसी (कल्पित) रूपसे अभिन्नता रखनेवाले जान पड़ते हैं।

'उसी (संवृति या कल्पनाजाता बुद्धि)के अभिप्रायको लेकर सामान्यको मत कहा जाता है क्योंकि परमार्थसे वह अ-मत (और) उस (संवृति बुद्धि)के द्वारा कल्पित है।'[1]

गायपन एक वस्तु मान है जो सभी गाय व्यक्तियोंमें है यह ख्याल गलत है क्योंकि—

"व्यक्तियाँ (भिन्न भिन्न गाय एक दूसरेसे) अनुगत नहीं हैं (और) न उन (भिन्न गाय व्यक्तियों)में (कोई) अनुगत होनेवाला (पदार्थ) दीख पड़ता है (जो दीखती है वह भिन्न भिन्न गाय-व्यक्तियाँ हैं)। ज्ञानसे अभिन्न (यह सामान्य) कैसे (एकसे) दूसरे पदार्थको प्राप्त हो सकता है?

इसलिए (अनेक) पदार्थोंमें एकरूपता (=सामान्य)का ग्रहण झूठी कल्पना है इस (झूठी कल्पना)का मूल (व्यक्तियोंका) पारस्परिक भेद है जिसके लिए (गोत्व आदि) संज्ञा (=शब्दका प्रयोग होता) है।'[2]

'यदि (संज्ञाओं शब्दों द्वारा पदार्थोंका) भेद (मालूम होता है तो इतना ही तो शब्दोंका प्रयोजन है, फिर) वहाँ सामान्य या किसी दूसरी (चीजकी कल्पनासे) तुम्हें क्या (लाभ) है?"[3]

वस्तुतः गायपन आदि सामान्यवाची शब्द विद्वानोंने व्यवहारके सुभीतेके लिए बनाए हैं।

---

[1] प्र० वा० १।७० ७२ [2] प्र० वा० १।७३ ७४ [3] वहीं १।९९

एक (तरहके) [illegible] (परस्परवाले) भावों (=वस्तुओं) में उनके [illegible] जतलाने के लिए भेद करनेवाला गया (का उदाहरण होता [illegible] दूध तथा श्वेत [illegible] आदि विशेषणों का करनेवाला गायोंमें उनके [illegible] जानने के लिए भेद करनेवाली मानी, किन्तु गाय-व्यक्तियोंके अनगिनत होनेसे हर व्यक्तिकी अलग अलग संज्ञा रखनेपर नाम) बहुत बढ़ जाता, (वह) [illegible] नहीं [illegible] और (प्रमाण) [illegible] भी होता इसलिए (व्यवहार करने) वाले उन (गोपालों) [illegible] विचारसे एक [illegible] (=गाय नाम) प्रयुक्त किया।[1]

फिर प्रश्न होता है, सामान्य (=गोत्वादि) जिसे नित्य कहते हैं, वह एक [illegible] या [illegible]? यदि कहो यह एक है अर्थात् अलग अलग रहनेवाला गाय-व्यक्तिमें ही रहता है तो—

(एक गायमें स्थित सामान्य उस व्यक्तिके मरने तथा दूसरी गायके उत्पन्न होनेपर एक दूसरेमें) न जाता और न उस (व्यक्तिकी उत्पत्ति वाले देश)में (पहिलेसे) था (क्योंकि वह सिर्फ व्यक्तियोंमें ही रहता है) और (व्यक्तिकी उत्पत्तिके) पश्चात् (ही उत्पन्न) [illegible] (क्योंकि सामान्यके बिना व्यक्ति का न हो सकना), यदि (सामान्यका) अंशवाला (मानते हो, जिससे कि उसका एक अंश=छोर पहिली व्यक्तिमें और दूसरा पीछे उत्पन्न होनेवाली व्यक्तिमें संबद्ध हो)। और (अंशरहित माननेपर यह नहीं कह सकते कि यह) पहिले (उत्पन्न होकर नष्ट होने) आधारको छोड़ता है (क्योंकि ऐसा माननेपर एक कालके अन्तरको लिये सामान्य जब पार करेगा उस वक्त उस व्यक्तिमें अंश भी मानना पड़ेगा इस प्रकार विचार सामान्यवादीके लिए) मुसीबतोंका अन्त न है।

दूसरा जगह वर्तमान (सामान्य)का अपने स्थानसे बिना हिले उस (पहिले स्थान)से दूसरे स्थानमें जानेवाले (पिंड)में मौजूद होना युक्ति युक्त बात नहीं है।

---

[1] प्र० वा० १।१३९ १४०

'जिस (देश)में वह भाव (=सारा गाय) वर्तमान है उस (देश=स्थान)में (सामान्य गायपन) संबद्ध भी नहीं होता (क्योंकि तुम मानते हो कि सामान्य देशमें नहीं व्यक्तिमें रहता है), और (फिर कहते हो देशमें रहनेपर भी उस) देशवाले (पदार्थ—गाय-व्यक्ति)में व्याप्त होता है यह तो कोई भारी चमत्कार सा है !!

"यदि सामान्यको (एक देशी नहीं) सर्वव्यापी (सर्वज्ञ) मानते हो, तो एक जगह एक गाय-व्यक्ति द्वारा व्यक्त कर दिए जानेपर उसे सर्वत्र दिखाई देना चाहिए (क्योंकि सर्वव्यापी सामान्यमें) भेद न होने (=एक होने)से व्यक्तिकी अपेक्षा नहीं।

'(और ऊपरकी बातसे यह भी सिद्ध होता है कि गायपन सामान्य सर्वत्र है। फिर वह दिखलाई देता क्यों नहीं यह पूछनेपर आप कहते हैं—क्योंकि उसके लिए व्यंजक (=प्रकट करनेवाली) व्यक्ति—गाय—की जरूरत है। इसका अर्थ हुआ—) (पहिले) व्यंजकके ज्ञान हुए बिना व्यंग्य (=सामान्य) ठीकसे नहीं प्रतीत होता। तब फिर सामान्य (=गायपन) और सामान्यवान् (=गायपनवाली गाय-व्यक्ति)के संबंधमें उलटा क्या मानते हो।—अर्थात् गायपन सामान्य गाय व्यक्तिकी उत्पत्तिसे पहिले भी मौजूद था ?"[1]

अतएव सामान्य है ही नहीं—

"क्योंकि (व्यक्तिमें भिन्न) केवल जातिका दर्शन नहीं होता, और (गाय)व्यक्तिके ग्रहणके वक्त भी उसके (नामवाची) शब्दरूप ('गाय') से भिन्न (कुछ) नहीं दिखाई देता।"[2]

इसलिए सामान्य अरूप (=अवस्तु) है, (और वह) रूपों (=गाय व्यक्तियों)के आधारपर नहीं कल्पित किया गया है बल्कि (वह व्यक्तियोंकी क्रिया-संबंधी) उन उन विशेषताओंके जतलानेके लिए शब्दों द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

---

[1] प्र० वा० ३।१५४ ५८ [2] प्र० वा० ३।४९

एक (सामान्य)में वास्तविकता (=सत्)का अभाव अथवा सामान्यके रूपमें एक (=एक। यह व्यक्ति)का एक भाति (गाय) ने (और एक भाति) विशेषरूप(=प्रयोगरूप) [illegible] अस्तित्व पाया हुआ ।

और पदार्थों (=विषयों या व्यक्तियों)का यह (अनेक भिन्न व्यक्ति) ने विषयरूप या समानता (=सामान्य) और जिस (सामान्य)ने विशेष ने (सामान्य-संबंधी सकल व्यवहार) शब्द ने उसका वास्तविक रूप (=वास्तविक रूप) नष्ट (क्योंकि ये सामान्य-व्यवहारके सुभीतेके लिए कल्पित किए गये हैं)।[1]

(ग) अवयवीका खंडन—हम बता आए हैं कि हम अवयव (=अंश)के भीतर किंतु उनसे अलग एक स्वतंत्र पदार्थ—अवयवी (=अंशी)—को मानते हैं। परमाणु सामान्यकी भाँति अवयवीका व्यवहार (=गवादि)-संबंधी सकल व्यवहारके लिए सदोष है किंतु अवयवोंसे पृथक् अवयवी एक परमार्थ सत् है इसे हम नहीं स्वीकार करते। बुद्धि (=ज्ञान) किसी आकारकी होती है वही उस (=बुद्धि)का बाह्य रूप माना जाता है।[2] हम बुद्धि (=ज्ञान)से अवयवीके स्वरूपको ही देखते हैं उससे हम अवयवीका पता नहीं पाते। भिन्न भिन्न अवयवोंके प्रत्यक्ष ज्ञानोंको एकत्रित कर कल्पनाके सहारे हम अवयवीकी मानसिक सृष्टि करते हैं जो कि कल्पना छोड़ वास्तविक वस्तु नहीं हो सकता। यदि कहा कि अवयवीका भी ग्रहण होता है तो संवाद होगा—

एक ही बार अपने अवयवोंके साथ एक अवयवीका ग्रहण हो सकता है? गतकी तरह (सींग) आदि (अवयवों)के न रहनेपर गाय (=अवयवी) नष्ट देखी जा सकती।[3]

जिस तरह वाक्य पढ़ते वक्त पहिले एक एक अक्षर पढ़नेके साथ वाक्यका अर्थ हम न। मालूम होता जाता बल्कि एक एक अक्षर हमारे

---

[1] प्र० वा० २।३१ ३२ [2] प्र० वा० ३।२२४ [3] प्र० वा० ३।२२५

र अनक (=बीज, पानी मिट्टी आदि) एक (प्रधान=प्रकृति) ने एक काय (अकुर) को करते है तो (वही) स्वरूप (=प्रधान))मे (उसे ही जसे कि वह दूसरी जगह), इसलिए (दूसरे) कारण पानी मिट्टी आदि) फजूल है।

ी, मिट्टी आदि सहकारी कारणोंके न होनेपर बीजके रहनेसे) न—मौलिक भौतिक तत्व तो) अ-भिन्न—(है) और (वह आदि बन जानपर भी अपने पहिले) स्वरूपको नही छोडता नित्य है, और) विशेष (=पानी मिट्टी आदि) नाशमान ात है) एक (सहकारी जल या मिट्टी)के न होनेपर (भी) र) नही होता इससे (पता लगता है कि) वह (अकुर, तिक विशेषो (=पानी मिट्टी आदि)मे उत्पन्न होता है। ोला भाव (=पदार्थ) वही है जो कि अर्थक्रियाका कर (इस अर्थक्रिया करनेवाले है मिट्टी, पानी आदि विशेष) और भिन्न होनेसे काय=अकुरम) एक रूप नही होते, और जिसे ा होता (कहते है) उस (प्रधान)से (अकुर) कायका , क्योकि सत्कार्यवादके अनुसार वह तो जैसा अपने स्वरूपमे ट्टी आदि बननेपर भी है)।

२, ानको हर हालतमे एक रूप माननेपर बीज मिट्टी, पानी और एक रूप है फिर एक बीजके रहनेसे मिट्टी पानी भी अकुरकी उत्पत्तिमे कोई हर्ज नही होना चाहिए, स्वभाव (देखते है कि) उस (कारण) स्वरूपसे (बीज, ने आपसमे) भिन्न होनेपर कोई (=बीज मिट्टी, आदि ाता है, दूसरे (आग, सुवर्ण आदि) नही, यदि (बीज आदि विशेषोंका) अभेद होता, तो (अकुरका आगम) ादिसे) उत्पत्ति (होना) एक साथ होती।''

एक मासा भर सोना अलग तोलनेपर भले ही एक मासा हो, किन्तु जब ९५ मासा सोनेको गलाकर एक डला तैयार किया गया तो उसमें ९६ मासेके ९६ टुकड़ोंके अतिरिक्त उसका बना अवयवी भी आ मौजूद हुआ है इसलिए सब वजन ९६ मासासे ज्यादा होना चाहिए।

(संख्या आदिका खंडन)—वैशेषिकने संख्या, संयोग, क्रम, विभाग, आदि गुणोंको वस्तुसत्के तौरपर माना है जिन्हें कि धर्मकीर्ति व्यवहार (=संवृति) मात्र भर माननेके लिए तैयार है और कहते हैं—

संख्या संयोग क्रम आदिका भी स्वरूप उनके रखनेवाले (द्रव्य)के स्वरूपसे (या) उनके साथ रहनेसे बुद्धि (=ज्ञान)में नहीं भासित होता। (इसलिए भासित न होनेपर भी उन्हें वस्तुसत् मानना गलत है)।

एकके ज्ञानमें (एक घटदल) कल्पित अथवा वस्तुओंके (पारस्परिक) भेदका अनुसरण करनेवाले विकल्पके द्वारा (संख्या आदिका प्रयोग उसी तरह किया जाता है) जैसे गुण आदिमें (=पोतीमें 'एक बड़ी जाती है' यहाँ एक भी गुण और बड़ी भी गुण किन्तु गुणसे गुण नहीं हो सकनेसे एक संख्याके साथ बड़ा परिमाणका प्रयोग नहीं होना चाहिए) अथवा नष्ट या अभावको न पाये हुओंमें (एक, दो, बहुत मर गए) या पाये हुओंका कहना। निश्चय ही जो एक, दो संख्या मेरे या न पैदा-हुए-जैसे शास्त्रोंके आधारका आधेय—गुण—है, वह कल्पित छोड़ वास्तविक नहीं हो सकता।[1]

(३) साख्य दर्शनका खंडन—साख्य-दर्शन चेतन और जड़ दो प्रकारके तत्त्वोंको मानता है। जिनमें चेतन—पुरुष—को निष्क्रिय साक्षी मानते हैं उसके संपर्कसे जड़तत्त्व—प्रधान—सारे जगत्को अपने स्वरूप परिवर्तन द्वारा बनाता है। सांख्य प्रधानमें भिन्नता नहीं मानता और साथही सत्कार्यवाद—अर्थात् कार्यसे पहिलेसे ही पूर्वरूपेण कारणके मौजूद होने—को स्वीकार करता है। धर्मकीर्ति कहते हैं—

---

[1] प्र० वा० २।९२

'अगर अनन्य (=बीज पानी मिट्टी आदि) एक (प्रधान=प्रकृति) स्वरूप होते एक कार्य (अंकुर) को करते हैं तो (वही) स्वरूप (=प्रधान) एक (बीज) में (वैसे ही न, जब कि वह दूसरी जगह), इसलिए (दूसरे) सहकारी (कारण पानी मिट्टी आदि) फजूल हैं।

"(पानी मिट्टी आदि सहकारी कारणों के न होनेपर बीजके रहनेसे) वह (प्रधान—मौलिक भौतिक तत्व तो) अभिन्न—(है) और (वह पानी, मिट्टी आदि बन जानेपर भी अपने पहिले) स्वरूपको नहीं छोड़ता (क्योंकि वह नित्य है, और) विशेष (=पानी मिट्टी आदि) नानामान है (किंतु हम देखते हैं) एक (सहकारी जल या मिट्टी) के न होनेपर (भी) कार्य (=अंकुर) नहीं होता इससे (पता लगता है कि) वह (अंकुर, प्रधानसे नहीं बल्कि विशेषों (=पानी मिट्टी आदि) से उत्पन्न होता है।

'परमार्थवाला भाव (=पदार्थ) वही है, जो कि अर्थक्रियाको कर सकता है। (ऐसे अर्थक्रिया करनेवाले हैं मिट्टी पानी आदि विशेष) और वह (परस्पर भिन्न होनेसे कार्य=अंकुरसे) एक रूप नहीं होते, और जिसे (तुम) एक रूप मानते (कहते हो) उस (प्रधान) से (अंकुर) कार्यका सम्भव नहीं (क्योंकि सत्कार्यवादके अनुसार वह तो, जैसा अपने स्वरूपमें है वैसा ही मिट्टी आदि बननेपर भी है)।

'(और प्रधानको हर हालतमें एक रूप माननेपर बीज मिट्टी पानी सभी प्रधान मय और एक रूप हैं फिर एक बीजके रहनेसे मिट्टी पानी आदिके न होनेपर भी अंकुरकी उत्पत्तिमें कोई हर्ज नहीं होना चाहिए किन्तु हम) यह स्वभाव (देखते हैं कि) उस (कारण) स्वरूपसे (बीज, मिट्टी पानी आदि के आपसमें) भिन्न होनेपर कोई (=बीज, मिट्टी, आदि अंकुरका) कारण होता है दूसरे (आग सुवर्ण आदि) नहीं, यदि (बीज मिट्टी, आग, पानी आदि विशेषोंका) अभेद होता, तो (अंकुरका आगम) नाश (और बीज आदिसे) उत्पत्ति (दोनों) एक साथ होती।"[1]

---

[1] प्र० वा० १।१६६ १७०

(जो अर्थक्रिया करनेवाला[1] है) उसीका ग्रहण और त्याग करता है, वही स्व-लक्षण (=वस्तुसत्) है (और) उसीके त्याग और प्राप्तिके लिए पुरुषार्थ (यानी कार्योंमें) प्रवृत्ति होती है।

जैसे (सांख्य मतमें जैसे भौतिक तत्त्व प्रधानरूप सभी भौतिक तत्त्वों—मिट्टी, बीज, पानी, आग, आकाश) अभिन्नरूप एक समान कारण भी सभी (बीज, पानी, आग, प्रधानमय तत्त्व) सभी (कार्यों—अंकुर, घड़ा आदि)के (करनेमें) साधन नहीं होते, वैसे ही पूर्वपक्ष कारण (शक्ति परमाणु या भौतिक तत्त्वोंका) सभी उत्तर उत्तर कार्यों (मिट्टी, बीज, पानी, आग आदि)में भिन्नरूप एक समान कारण भी सभी (कारण) सभी (कार्यों)के (करनेमें) साधन नहीं होते।

(यदि ये सत्कार्यवादके विरुद्ध कारणमें कार्यका) भिन्न मानकर (सर्वथा) दूसरेकी (वस्तुएँ) अपनी विशेषता (=धर्म)की वजहसे (किसी एक कार्यका) कारण हो सकती हैं। किन्तु (सत्कार्यवादके अनुसार कारणमें कार्यका) अभिन्न मानकर (सभी वस्तुएँ अभिन्न हैं, फिर उनमेंसे) एकका (क्या) क्रिया (=कार्य)कर सकना और (क्या) न कर सकना (यह तो परस्पर) विरुद्ध (बात) है।[2]

इस प्रकार सांख्यका सत्कार्यवाद—मूलतः विभु और विभुकी वस्तुएँ कारणसे कार्य अवस्थामें कोई भेद नहीं रखता (प्रधान=पानी, प्रधान=आग, प्रधान=चावल, प्रधान=मिट्टी)—गलत है और बौद्धोंका असत्कार्यवाद भी ठीक है जिसके अनुसार कि—कारण एक नहीं अनेक और हर कार्य अपने कारणसे बिलकुल भिन्न है, यद्यपि हर नया उत्पन्न होनेवाला कार्य अपने कारणसे सम्बन्ध रखता है जिससे 'यह वही है' का

---

[1] अर्थक्रियाकारी=अर्थक्रिया-समर्थ-कार्यके उत्पादनमें समर्थ, क्रियाके उत्पादनमें समर्थ, सार्थक क्रिया करनेमें समर्थ, सफल क्रिया करनेमें समर्थ, क्रिया करनेमें योग्य, क्रिया कर सकनेवाला—आदि इसके अर्थ हैं।

[2] प्र० वा० १।१७५–१७७

भ्रम होता है।

(४) मीमांसाका खंडन—मीमांसाके सिद्धान्तोंके आरम्भ हम पहिले लिख चुके हैं। मीमांसाका कहना है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण सामने उपस्थित पदार्थ या वस्तुएं क्या हैं इसे नहीं बतला सकते और परलोक, स्वर्ग, नर्क, आत्मा आदि जो पदार्थ इन्द्रिय अगोचर हैं उनका ज्ञान करानेमें तो वे बिलकुल असमर्थ हैं इसलिए उनका सबसे ज्यादा जोर शब्द-प्रमाण—वेद—पर है, जिसे कि वह अपौरुषेय किसी पुरुष (=मनुष्य देवता या ईश्वर) द्वारा नहीं बनाया अर्थात् अकृत सनातन मानते हैं। बौद्ध प्रत्यक्ष, तथा अनुमान प्रत्यक्ष अर्थात् अनुमानके सिवा किसी तीसरे प्रमाणको नहीं मानते, और प्रत्यक्ष अनुमानकी कसौटीपर कसनेसे वेद उसके हिंसामय यज्ञ—कर्मकाण्ड आदि ही नहीं बहुतसी दूसरी गप्पें और पुरोहितोंकी दक्षिणाके लोभसे बनाई बातें गलत साबित होती, ऐसी अवस्थामें सभी धर्मानुयायियोंकी भाँति वैदिक पुरोहितोंके लिए मीमांसा जैसे शास्त्रकी रचना करके शब्दप्रमाणको ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण सिद्ध करना जरूरी था। बुद्धसे लेकर नागार्जुन तक ब्राह्मण-पुरोहितोंपर जबर्दस्त हथियार लेके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डपर भारी प्रहार हो रहा था। युक्तिके सहारे ज्ञानकाण्डके नवीनतम कोविद अक्षपाद और उनके भाष्यकार वात्स्यायनपर, जिनपर दिङ्नागके समय तक तीखा प्रहार हुआ, जिसमें उद्योतकर पाशुपताचार्य उद्योतकर भारद्वाज (५०० ई०)ने की, किन्तु धर्मकीर्त्तिने उद्योतकरकी ऐसी गति बनाई कि वाचस्पति मिश्रको उद्योतकरकी बूढ़ी गायके उद्धार के लिए कमर बाँधनी पड़ी।

किन्तु युक्तिवादियों (=तार्किकों)की सहायतासे वैदिक ज्ञान—और कर्म-काण्डके ठीकेदारोंका काम नहीं चल सकता था इसलिए बादरायणको ज्ञानकाण्ड (=ब्रह्मवाद) और जैमिनिको कर्मकाण्डपर कलम उठानी पड़ी। उनके भाष्यकार शबर असंगके विज्ञानवादसे परिचित थे। दिङ्नागने अक्षपाद और वात्स्यायनकी भाँति शबर और जैमिनिपर भी जबर्दस्त चोट की, जिसपर नैयायिक उद्योतकरकी भाँति मीमांसक कुमारिल भट्ट मैदानमें आए।

धर्मकीर्ति उद्यानकरपर जिस तरह प्रहार करते हैं उससे भी निष्ठुर प्रहार उनका कुमारिलपर है। वह प्रमाणके अतिरिक्त मीमांसक प्रत्यभिज्ञाको भी एक जबरदस्त प्रमाण मानते हैं हम इन्हीं दोनोंके बारेमें धर्मकीर्तिके विचारोंको लिखेंगे।

(क) प्रत्यभिज्ञा-खंडन—स्थाणु (=राम)को सामने देखकर 'यह वही (राम) है' ऐसी प्रत्यभिज्ञा (=प्रामाणिक स्मृति) स्पष्ट मालूम होनेवाली (=स्पष्टावभास) प्रत्यक्ष प्रमाण है—मीमांसकादि यह प्रत्यभिज्ञा है। बौद्ध इस प्रत्यभिज्ञाको यह वही की कल्पनापर आश्रित होनेसे प्रत्यक्ष नहीं मानते और 'स्पष्ट मालूम होनेवाली' के बारेमें धर्मकीर्ति कहते हैं—

'(काटनेपर फिरसे जमे) केशों (मदारीके नये नये निकाले) गोलों, तथा (क्षण-क्षण नष्ट होने वाले) तोपों में भी (यह वही है यह) स्पष्ट भासित होता है (किन्तु क्या इससे यह कहना सही होगा कि केश—गोला—तोप वही हैं')।

जब भेद (प्रत्यक्ष) नहीं (तो भी) वैसा (=एक होनेके भ्रमवाला अभेद) ज्ञान कैसे प्रत्यक्ष हो सकता है? इसलिए प्रत्यभिज्ञाके ज्ञानमें (केश आदिकी) एकताका निश्चय ठीक नहीं है।'[1]

(ख) शब्दप्रमाण-खंडन—यथार्थ ज्ञानको प्रमाण कहा जाता है, शब्दप्रमाणको माननेवाले कपिल कणाद अक्षपाद प्रत्यक्ष अनुमानके अतिरिक्त यथार्थवक्ता (=आप्त) पुरुषके वचन (=शब्द) भी प्रमाण मानते हैं। मीमांसक 'कौन पुरुष यथार्थवक्ता है' इसे जानना असंभव समझते हुए कहते हैं—

(a) अपौरुषेयता फजूल— यह (पुरुष) ऐसा (=यथार्थवक्ता) है या नहीं है इस प्रकार (निश्चयात्मक) प्रमाणके दुर्लभ होनेसे (किसी) दूसरे (पुरुष)के दोषयुक्त (=झूठ) या निर्दोष (=सच्चे यथार्थवक्ता)

---

[1] प्र० वा० ३।५०३–५०५

होनेका जानना अनिवार्य है।'

और फिर—

"(किसी) वचनके झूठ होनेके हेतु (ये अज्ञान [illegible] दोष पुरुषमें रहनेवाले [illegible], (इसलिए पुरुषवाले=पौरुषेय [illegible] है और) अपौरुषेय सत्यार्थ [illegible]।

इसके उत्तरमें धर्मकीर्त्ति कहते हैं—

"(किसी) वचनके सत्य होनेके हेतु (ज्ञान [illegible] गुण पुरुषमें रहनेवाले [illegible] (इसलिए जो वचन पुरुषके [illegible] हो सकते हैं और जो) पौरुषेय (है वही) सत्यार्थ। [illegible]

'(साथ ही शब्दके) अर्थका समझानेका [illegible] अर्थ 'सींग पूछ-गलकम्बल-मोटा पिंड' ऐसा) [illegible] पुरुषके ही आश्रयसे रहता (पौरुषेय) है। [illegible] से वचनोंके अपौरुषेय होनेपर भी उनके [illegible]।

"यदि (यही शब्द और अर्थका) संबंध [illegible] आँखके संबंधकी भाँति उसके स्वाभाविक [illegible] का भी (सार वाचकका) ज्ञान होना चाहिए। [illegible] वह (संबंध) प्रकट होता है तो (संबंध [illegible] (संबंधको व्यवस्थापित) नहीं कर सकता।

'यदि (वस्तुतः) वचनोंका एक [illegible] होना तो (एक वचनका एक छोड़) [illegible]

"यदि (कहो—एक वचनका) [illegible] वाचक) संबंध (स्वाभाविक) है, तो [illegible] को) सूचना होगी (फिर अनिष्टाम [illegible] अर्थ 'अनिष्टाम याग नरकका [illegible]।

[illegible] (पुरुष) द्वारा [illegible] (=[illegible] प्रकट होनेवाला मानकर [illegible]) बिलकुल निरर्थक होगा (क्योंकि [illegible] सम्बन्धके [illegible] गुरु शिष्य सम्बन्धसे ही जानते [illegible] [illegible] नहीं किया जा सकता)। यदि (पुरुष द्वारा) संस्कार (होने) को स्वीकार करते हो तो यह ठीक गजस्नान हुआ (—वेद वचन और उसके [illegible] सम्बन्धका जो पौरुषेय न [illegible] माना किन्तु [illegible] सम्बन्ध [illegible] पुरुष द्वारा ही संस्कार मानकर फिर वचनसे मिलनेवाले [illegible] सब झूठ होनेसे सन्देह पैदा कर दिया)।[1]

और वस्तुतः वेदको जैमिनि जिस तरह अपौरुषेय सिद्ध करना चाहते हैं वह बिलकुल गलत है।—

(चूँकि वेद वचनोंके) कर्ता (पुरुष) याद नहीं इसलिए (वह) अपौरुषेय है —[illegible] भी (ढीठ) बोलनेवाले [illegible] धिक्कार है (जगतमें) धिक्कार (इस जड़ताके) अन्धकारको।[2]

अपौरुषेयता सिद्ध करनेके लिए "कोई (कहता है—) 'जैसे यह (आज का विद्यार्थी) दूसरे (पुरुष—अपने गुरु—से) बिना सुने इस वर्ण (=अक्षर) और पद (के) क्रम (वाले वेद)को नहीं बोल सकता [illegible] कोई दूसरा पुरुष (=गुरु) भी (अपने गुरु और वह अपने गुरु [illegible] से सुने बिना नहीं बोल सकता और इस प्रकार गुरुओंकी परम्पराका अन्त न होनेसे वेद अनादि, अपौरुषेय सिद्ध होता है।)[1]

(किन्तु ऐसा कहनेवाला भूल जाता है—'(वेदसे भिन्न) दूसरे (पुरुषके) रचित (रघुवंश आदि) ग्रन्थ भी (गुरु शिष्यके) सम्प्रदायके बिना (पढ़े) जाते नहीं देखे गये फिर इससे तो वह (=रघुवंश) (वेदकी) तरह (अनादि) अनुमान किया जायगा।

---

[1] प्र० वा० १।२३३ वहीं १।२४२, २४३
[2] वही १।२४२, २४३ वहीं १।२४३, २४४

गुरु शिष्य, पिता-पुत्रके संबंधमें हर एक तरहकी बात मनुष्य सीखता है, और इसीसे मीमांसक वेदकी अनादि सिद्ध करते हैं फिर 'जैसे तो म्लेच्छ आदि (अ भारतीय जातियों) के व्यवहार (अपनी माँ और बेटीसे ब्याह आदि) तथा नास्तिकोंके वचन (ग्रंथ) भी अनादि (मानने पड़ेंगे। और) अनादि होनेसे (उन्हें भी वेद) जैसे ही स्वतःप्रमाण मानना होगा।'

"फिर इस तरहके अपौरुषेयत्वके सिद्ध होनेपर भी (जैमिनि और कुमारिलका) कौनसा फायदा होगा (क्योंकि इससे तो सब धान बाईस-पसेरी हो जायेगा)।"[1]

(b) अपौरुषेयताकी आड़में कुछ पुरुषोंका महत्त्व बढ़ाना—वस्तुतः एक दूसरे ही भावसे प्रेरित होकर जैमिनि-कुमारिल एड़-चोटसे अपौरुषेयताका नारा बुलंद किया है—

'(इस वेद वचनका) यह अर्थ है, यह अर्थ नहीं है यह (वेदके) शब्द (खुद) नहीं कहते। (शब्दका) यह अर्थ तो पुरुष कल्पित करते हैं, और वे रागादि युक्त होते हैं। (उन्हीं रागादिमान पुरुषोंके बीच जैमिनि वेदार्थका तत्त्ववक्ता है। फिर प्रश्न होता है—) वह एक (जैमिनि ही) तत्त्ववक्ता है दूसरा नहीं यह भेद क्या? उस (=जैमिनि)की भाँति पुरुषत्व होने भी किसी तरह किसी (दूसरेको) ज्ञानी तुम क्यों नहीं मानते?'[2]

(c) अपौरुषेयतासे वेदके अर्थका अनर्थ—आप कहते हैं चूँकि '(पुरुष) स्वयं रागादिवाला (है इसलिए) वेदके अर्थको नहीं जानता और (उसी कारण वह) दूसरे (पुरुष)में भी नहीं (जाना जा सकता, बेचारा) वेद (स्वयं तो अपने अर्थको) जतलाता नहीं (फिर) वेदार्थकी क्या गति होगी? इस (गड़बड़ी)से तो 'स्वर्ग चाहनेवाला अग्निहोत्र होम करे' इस श्रुतिका अर्थ 'कुत्तेका मांस भक्षण करे' नहीं है इसमें क्या प्रमाण है?

---

[1] प्र० वा० १।२४८, २४९ [2] वहीं १।२४९ [3] वहीं १।३१६

[illegible] ।[1]

(५) अहेतुवाद खंडन—[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]

न हो। यही पूर्वगामी बिन्दु कारण है और पश्चादगामी अपने पूर्वगामी बिन्दुके स्वभावसे सादृश्य रखता है। यदि यह नियम न होता तो आम-खानेवाला आमकी गुठली रोपनेके लिए क्यों ध्यान न देता। एक भाव (=वस्तु)के होनेपर ही दूसरे भावका होना तथा हर एक वस्तुकी अपने पूर्वगामीके सदृश उत्पत्ति यह हेतुवादको साबित करता है। जबतक विश्वमें सर्वत्र देखा जानेवाला यह उत्पत्ति प्रवाह और सदृश-उत्पत्तिका नियम विद्यमान है, तबतक अहेतुवाद बिलकुल गलत माना जायगा।

(६) जैन अनेकान्तवादका खंडन—जैन-दर्शनके स्याद्वाद या अनेकान्तवादका जिक्र हम कर चुके हैं। इस वादके अनुसार घड़ा घड़ा भी है और कपड़ा भी, उसी तरह कपड़ा कपड़ा भी है और घड़ा भी। इसपर धर्मकीर्तिका आक्षेप है—

'यदि सब वस्तु (अपना और अन्य) दोनों रूप है, तो (दही दही ही है, ऊँट नहीं, अथवा ऊँट ऊँट ही है दही नहीं इस तरह दोनों) उसकी विशेषताका इन्कार करनेसे (किसीका) 'नहीं सा' कहनेपर (वह) क्या ऊँटपर नहीं दौड़ता? (—आखिर ऊँटमें भी दही धर्म ही मौजूद है, जैसे दही में)।

"यदि (कहो, दहीमें) कुछ विशेषता है जिस विशेषताके साथ (दही वर्तमान है ऊँट नहीं, तब तो) वही विशेषता अन्यत्र भी है, यह (बात) नहीं रही, और इसीलिए (सब वस्तु) दोनों रूप नहीं (बल्कि अपना ही अपना है, और)पर ही (पर है)।'[1]

धर्मकीर्तिके दर्शनके इस संक्षिप्त विवरणका उनकेही एक पद्यके साथ हम समाप्त करते हैं—

'वेद (=ग्रंथ)की प्रमाणता किसी (ईश्वर)का (सृष्टि)कर्तापन (=कर्तृवाद), स्नान (करने)में धर्म(होने)की इच्छा रखना, जातिवाद (=छोटी बड़ी जाति-पाँत)का घमंड, और पाप दूर करनेके लिए

---

[1] प्र० वा० १।१८० १८२

(पराक्रम) मन्त्रार्थ-ज्ञान (=ज्ञानमय तथा पारमार्थिक नवरत्नों का ज्ञान)—
ये पाँच अ अ-वाद (साधन)का गुणता (=उदात्त)का लिंग
निर्दी।[1]

---

[1] प्रमाणवार्तिक-स्ववृत्ति १।३४२—
"यदप्रामाण्य कस्यचित् मतवाद स्थाने धर्मेच्छा जातिवादाद्यल्प ।
सतापारभ पापहानाय चेति ध्वस्तप्रत्यानां पञ्च लिंगानि जाड्ये ॥"

एकोनविंश अध्याय

गौडपाद और शंकर

(सामाजिक परिस्थिति)—धर्मकीर्त्तिके बाद हम शान्तरक्षित, कमलशील, ज्ञानश्री जैसे महान् बौद्ध दार्शनिकोंको पाते हैं। वैसे ही ब्राह्मणोंमें भी शंकरके अतिरिक्त और कई गतिमें उनसे बढ़चढ़कर उद्योतन, गंगेश जैसे नैयायिक तथा पार्थसारथी जैसे मीमांसक और वाचस्पति श्रीहर्ष एवं रामानुज जैसे वेदान्ती दार्शनिक हुए हैं। इनसे भी महत्त्वपूर्ण स्थान काश्मीरके शैव दार्शनिक वसुगुप्तका है जिन्होंने बौद्धोंके विज्ञानवादका तोड़-मरोड़ बिना, उसे स्पन्द करनेवाले (=लहरानेवाले) क्षणिक विज्ञानके रूप ही में ले लिया और बौद्धोंके आलय विज्ञान (=समष्टिरूपी विज्ञान)को शिव नाम देकर अपने दर्शनकी नींव रखी। इन दार्शनिकोंके बारेमें लिखकर हम ग्रंथको और नहीं बढ़ाना चाहते क्योंकि अभी ही इसके पूर्वनियत आकारको हम बढ़ा चुके हैं और एकाध जगह ग्रंथको जरूरतसे ज्यादा विस्तार करनेमें हम इसलिए भी मजबूर थे कि वह विषय हिन्दीमें अभी आया नहीं है। अतः हम अद्वैत वेदान्तके संस्थापक दार्शनिकोंके बारेमें लिखे बिना भारतीय दर्शनसे विदाई नहीं ले सकते।।

उपनिषद्के दार्शनिकों और बादरायणका क्या मत था इसके बारेमें हम पहिले काफी लिख चुके हैं, वहाँ यह भी जिक्र आ चुका है कि इन दार्शनिकोंके विचारोंका विशिष्टाद्वैत (भूत-चेतन सहित ब्रह्म-वादी) रामानुज अपेक्षाकृत अधिक ईमानदारीसे प्रकट करते हैं, हाँ बादरायणके दोषोंको कुछ बढ़ाचढ़ाकर लेते हुए। बादरायणने खुद दूसरे दर्शनों और विशेषकर बौद्धोंके प्रहारसे उपनिषद्-दर्शनको बचानेके लिए अपना

[illegible] था। [illegible] वाद[1] [illegible] रहा था, उसका [illegible] बौद्धों का प्रतिवाद[2] जारी हुआ, [illegible] उसका प्रतिवाद[2] बौद्ध कर रहे थे। [illegible] प्रतिवाद चलते रहे, और [illegible] प्रभाव [illegible] [illegible]—[illegible]—[illegible] हुआ, यह [illegible] सकता था। पुराने [illegible] वाद तथा [illegible] प्रतिवादों में मिलाकर गया (१४०० ई०) का हम एक [illegible] (=तत्त्व-न्याय, तत्त्वचिन्तामणि) के नाम संवाद [illegible] किया [illegible] जिसमें पुराने न्याय-वैशेषिकों [illegible] बौद्धों का [illegible] प्रयत्न किया गया है। [illegible] ब्राह्मणों के ईश्वर (=शिव) और बौद्धों के [illegible] विज्ञान का एक अनूठा संवाद तैयार किया। उपनिषद् और बादरायणी परम्परा भी वाद-प्रतिवाद द्वारा अपना प्रभाव जमाए रही रहा था, और इसीका [illegible] था गौड़पाद का बुद्ध अनुचर-शिष्यों नागार्जुन और असंग का [illegible] में जाना। गौड़पाद असंग को न छोड़ते हुए भी नागार्जुन के शून्यवाद को नजदीक है और [illegible] (मनुष्यों में श्रेष्ठ) बुद्ध के प्रति अपनी भक्ति खूब [illegible] प्रकट करते हैं। [illegible] अनुयायी (शिष्य) [illegible] असंग [illegible] और साथ ही इस बात की पूरी कोशिश करते हैं कि कहीं उन पर बौद्ध न कह दें।

[illegible] उस युग के [illegible] पैदा हुए जिसमें कालिदास भवभूति बाण जैसे कवि [illegible] उद्योतकर-कुमारिल धर्मकीर्ति जैसे दार्शनिक हुए। [illegible] तौरसे यह उस युगका आरंभ था, जब कि भारत पतन और चिर-गुलामी स्वीकार करनेकी जोरसे तैयारी कर रहा था। हर्षवर्धन के द्वारा बना महान साम्राज्य छिन्न भिन्न हो चुका था और पुराने ग्रामीण प्रजातन्त्र और कबीले (=शाखा) तथा जातियोंकी प्रतिद्वन्द्विता में पलता मगध्रति आन्तरिक विग्रहका आमन्त्रण तथा बाहरी आक्रमणका निमन्त्रण दे रही थी। हम इस्लामिक [illegible] प्रकरणमें बतला चुके हैं,

---

[1] Thesis [2] Antithesis [3] Synthesis

कि वस सातवीं सदीके दूसरे पादमें दरियाकी ना खानाबदोश पशुपालक जातियाँ—तिब्बती और अरब—अपने निर्भीक, निष्ठुर तथा बहादुर बादशाहोंके संगठित कर एक मजबूत सैनिक शक्ति बन सभ्य किन्तु पुरुत्व हीन देशोंको परास्त कर उनके सर्वस्वपर अधिकार जमानेके लिए दौड़ पड़े। गौडपाद और शंकरका समय वह था जब कि अरब और तिब्बतका पहिला जोश खतम हो गया था और खाड़ चन-गम्पो (६२० ६९८ ई०) तथा खलीफा उमर (६४२ ४५ ई०)की विजयी तलवारें अपने म्यानोंमें चिर विश्राम कर रही थीं और उनके सिंहासनोंको ठि-सोङ-दे-चन् (८०२-४५ ई०) तथा खलीफा मामून (८१३ ३८ ई०) जैसे कामन्द तथा और दर्शनके प्रेमी अलंकृत कर रहे थे। मामूनके समय अरबी भाषाको जिस तरह समृद्ध बनाया जा रहा था ठि-सोङ-दे चनके समय उसी तरह भारतीय बौद्ध साहित्य और दर्शनके अनुवादोंसे तिब्बती भाषा मालामाल की जा रही थी। यही समय था जब कि शंकरके दार्शनिक शान्त रक्षित—जो कि वस्तुतः अपने समयके भारतके अद्वितीय दार्शनिक थे—आखिरी उद्यम तिब्बतमें जा उस प्रखर जातिको दुःखवादी दर्शनके साथ सभ्यताकी मीठी घूंट देकर सुलाना चाहते थे। एक इतना था जरूर कि अरबोंकी तलवारको जगदात्मा ठंडी पड़ते देख, उसे उठानेवाले (मरुकावासी) बर्बर तथा मध्य-एशियाके तुर्क, मुगल जैसी जातियाँ मिल जाती हैं, क्योंकि वहाँ इस्लामकी व्यवहारवादी शिक्षा तथा एक खास उद्देश्यके लिए जगत् विजय-आकांक्षा थी लेकिन बेचारे खाङ-चन्को तलवारके साथ वैसा "खास उद्देश्य" न होनेसे वह किसी दूसरेको अपना भार वहन करनेके लिए तैयार नहीं कर सकी।

बादशाहके अरबी तलवारको जो शान्ति दान किया जा रहा था उसके पुरोहितोंमें कुछ भारतीय भी थे जिन्होंने अरबोंको योग गणित, ज्योतिष चिकित्सा कितने ही पाठ पढ़ाये किन्तु जैसा कि मैंने अभी कहा वह शान्त नहीं हुई उसने सिर्फ हाथ बदला और किसी अरबकी जगह महमद गजनवी और मुहम्मद गोरी जैसे तुर्कोंके हाथमें पड़कर भारतको भी अपने पंजेमें दबोचा।

यह वह समय था जब कि भारतमें तंत्र मतका अविदग्ध प्रचार हो रहा था और राजा धर्मपाल (७९८–८०६)के समकालीन सरहपाद (८०० ई०) जैसे तांत्रिक सिद्ध अपनी सिद्धियों और उनसे बढ़कर अपनी मोहक हिन्दी कविताओंसे जनता और शासकवर्गका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। गुह्यसमाजमें धर्म शास्त्रोंके नामपर "मानव"की अपनी सभी प्राकृतिक भूखों—विशेषकर यौन सुखों—के तृप्त करनेमें बाधा-पर-बाधा पहुंचाई जाती रही। ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय निग्रहके यशोगान, दिखावा तथा कीर्ति प्रलोभन द्वारा भारी जन-संख्याको इस तरहके अप्राकृतिक जीवनको अपनानेके लिए मजबूर किया जा रहा था। इसका नतीजा था, यह तंत्र-मार्ग जिसमें मद्य मांस मत्स्य मधुर मुद्रा(शरीरके प्यारे रखने आदिके लिए हाथ द्वारा बनाए जानेवाले खास चिह्न)—इन पाँच मकारोंको मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाना शुरू किया। लोग बाहरी सदाचारके डरसे इधर आनेमें हिचकिचाते थे इसलिए उसने डबल (=दुहरे) सदाचारका प्रचार किया—भरसी चक्रमें पंच मकार ही महान सदाचार है और उसके बाहर वह आचार जिसे लोग मानते जा रहे हैं। एक दूसरेसे बिलकुल उलटे इस डबल सदाचारके युगमें यदि शंकराचार्य जैसे डबल-ज्ञान सिद्धान्तको पेश करते तो कोई आश्चर्य नहीं।

आर्थिक तौरपर देशमें यह सामन्त-महन्त और दास-कर्मियोंका समाज था। इनके बीचमें बनिया और साहूकार भी थे, जिनका स्वार्थ शासक—सामन्त महन्त—से अलग न था और उन्हींकी भाँति यह भी डबल सदाचारके शिकार थे। शासक और सम्पत्तिमान वर्ग विलासके नये-नये साधनोंके आविष्कारोंमें तथा दास-कर्मी वर्गके अपने खून पसीने एक कर उसे जुटानेमें लगा था।—एक खाते-खाते मरा जा रहा था दूसरा भूखसे तड़फ-तड़फ एक ओर अपार ऐश्वर्य-लक्ष्मी हँस रही थी दूसरी ओर नंगी भूखी जनता कराह रही थी। यह नाटक दिल रखनेवाले व्यक्तिपर चोट पहुँचाए बिना नहीं रह सकता था और चोट खाया दिल दिमागको क्षुब्ध करनेके लिए मजबूर कर सकता था। इसलिए दिल दिमागको बेकाबू न होने देनेके

लिए एक मूल भुलैयाकी जरूरत थी जिस कि इस तरहके और समयमें पहिले भी पैदा किया जाता रहा और अब भी पैदा किया जा रहा है। गौडपाद तथा शंकर भी उसी मूल भुलैयाके वाहन बने।

§ १—गौडपाद (५०० ई०)

१ जीवनी—शंकरके दर्शनके मूलको ढूंढनेके लिए हम उनके पूर्वगामी गौडपादके पास जाना चाहेंगे। शंकरका जन्म ७८८ ई० और मृत्यु ८२० ई० है। म० म० विधुशेखर भट्टाचार्यने (The Āgamasāstra of Gaudapada)में गौडपादका समय ईसाकी पांचवीं सदी ठीक ही निश्चित किया है। गौडपादके जीवनके बारेमें हम इससे ज्यादा कुछ नहीं मालूम है, कि वह नर्मदाके किनारे रहते थे। नर्मदा मध्यप्रान्त, मालवा और गुजरातके बीच बहती चली गई है इसलिए यह भी कहना असंगत नहीं है, कि गौडपादका निवास कहांपर था।

२ कृतियाँ—गौडपादकी कृतियोंमें सबसे बड़े शंकर हैं जिनके दीक्षा-गुरु यद्यपि गोविंद थे किन्तु निर्माता निस्संदेह गौडपाद थे, किन्तु उनके अतिरिक्त गौडपादका एक दर्शन-ग्रंथ आगम शास्त्र या माण्डूक्य-कारिका है। ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिकापर भी गौडपादकी एक छोटीसी टीका (वृत्ति) है किन्तु वह मामूली तथा बहुत कुछ मोटर वृत्तिसे नीची गई है। माण्डूक्य-कारिकामें चार अध्याय हैं जिनमें पहिला अध्याय ही माण्डूक्य उपनिषद्से संबंध रखता है, नहीं तो बाकी तीन अध्यायोंमें गौडपादने अपने दार्शनिक विचारोंको प्रकट किया है।

गौडपादका माण्डूक्य उपनिषद्पर कारिका लिखना बतलाता है कि वह उपनिषद्को अपने दर्शनसे संबद्ध मानते हैं, लेकिन साथ ही वह छिपाना नहीं चाहते, कि बुद्ध भी उनके लिए उतने ही श्रद्धा और सम्मानके भाजन हैं। चौथे अध्याय ('अलातशान्ति प्रकरण' जो कि वस्तुतः बौद्ध विज्ञानवादका एक स्वतंत्र प्रकरण ग्रंथ है) की प्रारंभिक

[illegible] —'मैं द्विपदोत्तम' (=मनुष्य-श्रेष्ठ)का प्रणाम करता हूँ जिसने अपने आचरण से [illegible] (=मनुष्य) [illegible] (=आर्य सत्य) [illegible] (=[illegible]) [illegible] । [illegible] प्रारम्भ [illegible] [illegible] । [illegible] (४।१२)में [illegible] । [illegible] (४।१०) [illegible] बुद्ध और [illegible] (=[illegible]) [illegible] । [illegible] और [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । अन्तिम [illegible] (४।१००) [illegible] ।

[illegible] बौद्ध प्रभावों को [illegible] ।

[illegible] लिए [illegible] है । (१) [illegible] [illegible] (=आर्य)के [illegible] आदि चार अवस्थाओंका वर्णन किया गया [illegible] था जिसमें उनके माध्यमिक-[illegible] विचारोंके विकृत [illegible] सम्भावना न थी, (२) इसमें [illegible] लिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] नागार्जुनके माध्यमिक-[illegible] भी लागू होते हैं । [illegible] या बौद्ध [illegible] [illegible] उपनिषदोंमें उसका [illegible] । शून्यवादके [illegible] उन्हें [illegible]

---

[1] बौद्धोंके संस्कृत और पालि-साहित्यमें द्विपदोत्तम, या द्विपदुत्तम शब्द बुद्धके लिए आता है । देखो "आगमशास्त्र" (म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य-सम्पादित कलकत्ता १९४३) [2] "सर्वथा बुद्धरजाति परिदीपिता।"

अ-क्षणिकके झगडेमें पडनेकी जरूरत न था। शंकरने भी बौद्ध दार्शनिक विचारोंसे पूरा फायदा उठाया किन्तु वह उसे मालहा ज्ञान उपनिषदकी चीज बनाकर वैसा करना चाहते थे। हाँ साथ ही वह उसे बुद्धिवादके पास रखना चाहते थे, इसलिए उन्हें योगाचारके विज्ञानवादको अपनाना पडा, किन्तु, विज्ञान (=चित)-तत्त्व की घोषणा करते हुए उन्हें क्षणिक अक्षणिकमेंसे एक चुनना था शंकरने अ-क्षणिक (=नित्य) चित्त-तत्त्व स्वीकार कर अपनेको शुद्ध ब्राह्मण दार्शनिक साबित करनेका प्रयत्न किया।

३ **दार्शनिक विचार**—यहाँ हम गौडपादके उन विचारोंमेंसे कुछके बारेमें कहना है जिनका आधार बनाकर शंकरने अपने दर्शनकी इमारत खडी की।

जगत नहीं—"कोई वस्तु न अपने से जनमती न दूसरेसे ही (जो) कोई वस्तु विद्यमान, अविद्यमान या विद्यमान अविद्यमान है वह (भी) नहीं उत्पन्न होता।[1] जो (वस्तु) न आदिमें है न अन्तमें, वह वर्तमान कालमें भी वैसा ही है, झूठेकी तरह होती वह झूठी ही दिखाई पडती है।"[2]

सब माया—"वस्तुएँ जो जनमती कही जाती हैं वह भ्रमसे ही न कि वस्तुतः। उनका जन्म मायारूपी है और मायाका कोई सत्ता नहीं।"[3] "जैसे स्वप्नमें चित्त मायामें (द्रष्टा और दृश्य) दो रूपोंमें गति करता है, वैसे ही जाग्रतमें भी चित्त मायासे दो रूपोंमें गति करता है।

जीव नहीं—"जैसे स्वप्नवाला या मायावाला जीव जनमता और मरता (सा दीखता है) उसी तरह ये सारे जीव हैं भी और 'नहीं भी हैं।'

परमतत्त्व—"बाल बुद्धि (पुरुष) 'है' न है 'है-न' और न है-न-न है इन (चारों कोटियों) में चल स्थिर, नचल-नस्थिर-के तौरपर (वास्तविकताका) छिपाव है। इन चारों कोटियोंकी पवडमें

---

[1] आगमशास्त्र ४।२२ [2] वहीं ४।३१ [3] वहीं ४।५८
[4] वहीं ४।६१ [5] वहीं ४।६८ ६९

भगवान (=परमतत्त्व) सदा हँसे उन्हें नहीं छुवाई देते। जिसने उसे देखा लिया वही सर्वज्ञ है।[1]

शंकरके सारे मायावादका मौलिक सामग्री यहीं मौजूद है। और विज्ञानवाद '—[2]

जैसे किसी अनेठी साधी या गोल आदि दीखता है, वैसे ही विज्ञान द्रष्टा और दृश्य जैसा दीखता है।[3]

गौडपाद मानते हैं कि (१) एक अद्वय (विज्ञान) तत्त्व है जो शंकरके ब्रह्मकी अपेक्षा नागार्जुनके शून्यके ज्यादा नजदीक है (२) जगत् माया और भ्रम मात्र है (३) जीव नहीं है जन्म, मरण, और कर्म भोग किसीका नहीं होता। ये विचार 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या जीव ब्रह्म ही' से काफी अन्तर रखता है और वह अन्तर बौद्ध शून्यवादके पक्षमें है।

§२—शंकराचार्य (७८८—८२० ई०)

१ जीवनी—शंकरका जन्म ७८८ ई०में मलाबार (केरल) में एक ब्राह्मण कुलमें हुआ था। अभी शंकर गर्भमें ही थे कि उनके पिता शिवगुरुका देहान्त हो गया और उनके पालन पोषण तथा बाल्य शिक्षाका भार माताके ऊपर पड़ा। यह वह समय था जब कि बौद्ध ब्राह्मण जो सभी धर्म अधिकसे अधिक लोगोंको साधु बनानेकी होड़ लगाए हुए थे। आठ वर्षके बालक शंकरके ऊपर किसी संन्यासी गोविन्दकी नजर पड़ी और उन्होंने उसे चेला बनाया। जैसा कि पहिले कह चुके हैं गोविन्दके दीक्षागुरु होनेपर भी शंकरके 'शिक्षागुरु' गौडपाद बतलाये जाते हैं। एकसे अधिक शंकर दिग्विजयोंमें शंकरके भारी भारी शास्त्रार्थों उनकी दिव्य प्रतिभा और

---

[1] वहीं ४।८३, ८४, तुलना करो "न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्वं माध्यमिका जगुः।"—सर्वदर्शन संग्रह (बौद्ध-दर्शन)। [2] आगम० ४।४७

[3] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

भगवान (=परमतत्त्व) मन हुँचे उन्हें न। छुवाइ न। जिसने उसे देख लिया वह सर्वज्ञ है।[1]

शंकरके सार मायावादका मौलिक सामग्री यहां मौजूद है। और विना तर्क[2]—

जैसे फिरती बनती सीधा या गोल आदि दीखता है, वैसे ही विज्ञान द्रष्टा और दृश्य जैसा दीखता है।

गौडपाद मानते हैं कि (१) एक अद्वय (विज्ञान) तत्त्व है जो शंकरके ब्रह्मका अपरनाम होकर शून्यसे ज्यादा राजदार है (२) जगत माया और भ्रम मात्र है (३) जीव नहीं है जन्म मरण, और बन्ध मोक्ष किसीका नहीं होता। ये विचार ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या जीव ब्रह्म ही है[3] से काफी अन्तर रखता है और यह अन्तर बौद्ध शून्यवादके पक्षमें है।

§२—शंकराचार्य (७८८—८२० ई०)

१ जीवनी—शंकरका जन्म ७८८ ई०में मलाबार (केरल) में एक ब्राह्मण कुलमें हुआ था। अभी शंकर गर्भमें ही थे कि उनके पिता शिवगुरुका देहान्त हो गया, और उनके पालन-पोषण तथा बाल्य शिक्षाका भार माताके ऊपर पड़ा। यह वह समय था जब कि बौद्ध ब्राह्मण इन सभी धर्म अधिकसे अधिक लोगोंका साधु बननेकी ओर लगाए हुए थे। आठ वर्षके बालक शंकरके ऊपर किसी संन्यासी गोविन्दकी नजर पड़ी और उन्होंने उसे चेला बनाया। जैसा कि पहिले कह चुके हैं गोविन्दके दीक्षागुरु होनेपर भी शंकरके 'शिक्षागुरु' गौडपाद बतलाये जाते हैं। एकसे अधिक शंकर-दिग्विजयोंमें शंकरके भारी भारी शास्त्रार्थों उनकी दिव्य प्रतिभा और

---

[1] वहीं ४।८३, ८४, तुलना करो "न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका जगुः।"—सर्वदर्शन संग्रह (बौद्ध-दर्शन)। [2] आगम० ४।४७

[3] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

चमत्कारोंका जिक्र है, किन्तु हर एक धर्ममें अपने आचार्यके बारेमें ऐसी कथाएँ मिलती हैं। हम निश्चित तौरसे इतना ही कह सकते हैं कि शंकर एक मेधावी तरुण थे, बत्तीस वर्षकी कम आयुमें मृत्युके पहिले वेदान्त और दस प्रधान उपनिषदोंपर सुन्दर और विचारपूर्ण भाष्य उनकी प्रतिभाके पक्के प्रमाण हैं। शास्त्रार्थके बारेमें हम इतनाही कह सकते हैं कि शंकरके समकालीन शान्तरक्षित ही नहीं, उनके बादके भी कमलशील (८५० ई०), जिनारि (१००० ई०) जैसे महान दार्शनिक उनके बारेमें कुछ नहीं जानते। जान पड़ता है बौद्धोंके तर्कोंसे कुछ बाणोंको लेकर शंकरने अलग एक छोटा सा शस्त्रागार तैयार किया था, जिसका महत्त्व शायद सबसे पहिले वाचस्पति मिश्र[1] (८४१ ई०)को मालूम हुआ, किन्तु वह तब तक गुमनाम ही पड़ा रहा जब तक कि तुर्कोंके आक्रमणसे त्राण पानेके लिए बौद्ध-ज्ञानके नेताओंने भारतको छोड़ हिमालय और समुद्रपारके देशोंमें भाग जाना नहीं पसन्द किया। हाँ, इतना कह सकते हैं कि बौद्ध भारतके अन्तिम प्रधान आचार्य या मठराज शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०)के भारत छोड़ने (१२०६ ई०)से पहिले शंकरको श्रीहर्ष (११९८ ई०) जैसा एक और जबर्दस्त वरदान मिल चुका था।

२ **शंकरके दार्शनिक विचार**—शंकरने बस तो अपने विचारोंकी छाप अपने सभी ग्रंथोंपर छोड़ी है, किन्तु ब्रह्मसूत्रके पहिले चार सूत्रों (चतुःसूत्री)के भाष्यमें उन्होंने अधिक स्वतन्त्रताके साथ काम लिया है। बौद्धोंके संवृति-सत्य और परमार्थ सत्यको अपना मुख्य हथियार बनाकर ब्रह्मको ही एकमात्र (=द्वैत) सत् पदार्थ मानते हुए उन्होंने व्यवहार-सत्यके तौरपर सभी बुद्धि और अ-बुद्धि-गम्य ब्राह्मण सिद्धान्तोंको स्वीकार किया।

---

[1] शंकरके वेदान्त भाष्यकी टीका (भामती)के रचयिता।

[2] शंकरके सिद्धान्तपर, किन्तु गौड़पादकी भाँति नागार्जुनके शून्यवादसे अत्यन्त प्रभावित-ग्रंथ "खंडन-खंड-खाद्य"के रचयिता तथा कनौज अधिपति जयचंदके सभा-पंडित।

(१) शब्द ही एक प्रमाण—शब्द ही एक प्रमाण। दूसरे प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाण शब्द (=वेद) का प्रमाण ही प्रमाण रह गया है—मीमांसकों का इस अर्थ में [illegible] उसी तरह मानते हैं, पर तार्किक [illegible] बातें सिद्ध करता है दूसरे अधिक [illegible] उन बातों साबित कर दूसरी ही बातें सिद्ध कर देता है, इस तरह [illegible] सिद्धान्त। यद्यपि मान। सत्यकी प्राप्ति इस लिए उपनिषदों का [illegible] है। [illegible] उपनिषदों अभिप्रायों [illegible] निर्णय। इसमाने [illegible]। शंकर के मतानुसार वेदान्त सिद्धान्त [illegible] बुद्धि (=बुद्धि) पर नहीं निर्भर करता बल्कि वह इसपर निर्भर है कि वह उपनिषद् प्रतिपादित है। इस प्रकार प्रमाणों के [illegible] विचार थे जो कि अभिनव और पुराने [illegible] और जिनके [illegible] धर्मकीर्ति की युक्तियाँ हम उद्धृत कर चुके हैं।

(२) ब्रह्म ही एक सत्य—अनादि काल से चला आता अविद्या (=अज्ञान) के कारण यह नाना पदार्थों का भेद [illegible] है जिसमें यह जन्म जरा मरण आदि सांसारिक दुःख [illegible]। इन सारे दुःखों से छुटकारे के लिए सिर्फ एक आत्मा ही सत् है यह ज्ञान करना। इसी आत्मा की एकता या ब्रह्म अद्वैत ज्ञान के प्रतिपादन के लिए अपने ग्रंथों का प्रयोजन [illegible]।[1] वह ब्रह्म सत (=अस्तित्व) सत् चित (=चेतना) और आनन्द-स्वरूप है। सत् चित, आनन्द-स्वरूपता उसके गुण हैं और वह उनका गुणी। यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि गुण-गुणी की कल्पना भेद—द्वैत—का [illegible] है, इसलिए वह किसी विशेषण—गुण—से रहित निर्विशेष चित्-मात्र है। सभी मानसिक और शारीरिक वस्तुएं विलीन परिवर्तित होती जाती हैं और उनके भीतर एक अपरिवर्तनीय परम-सत् बना रहता है। दूसरे सारे ज्ञान प्रमाणों की खोज में है जिसमें कि वे बाहरी वस्तुओं की सत्यता का पता लगा सकें, किन्तु वेदान्त बाहरी वस्तुओं (=वस्तुओं) का तहकीक जो चरम

---

[1] शंकर वेदान्त भाष्य १।३।१७

परम-सत्य है उसकी खोज करता है, इसलिए वेदान्तके सामने दूसरे शास्त्र तुच्छ हैं।[1]

(३) जीव और अविद्या—ब्रह्म ही सिर्फ एक तत्त्व है भेद—नानापन—का स्थान गलत है, इसे मान लेनेपर उससे भिन्न कोई ज्ञाता—जीव—का विचार ठीक नहीं रहता। 'मैं जानता हूँ'—यहाँ जाननेवाले मैं का जो अनुभव हमें होता है, उससे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है यह कहना ठीक नहीं है। इस तरहका अनुभव तथा उससे होनेवाले जीवका ज्ञान केवल भ्रान्तिमात्र है, उसी तरह जैसे सीपमें चाँदी रस्सीमें साँप मृगतृष्णावाले बालूमें जलका प्रत्यक्ष-अनुभव तथा ज्ञान भ्रान्तिके सिवा कुछ नहीं। ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेयके भेदको छोड़ सिर्फ अनुभवमात्र हम ले सकते हैं क्योंकि भेदके आदि और अन्त भी न होनेसे, वर्तमानमें भी अस्तित्व न रखनेके कारण अनुभव मात्र ही तीनों कालोंमें एकसा रहता है फिर अनुभवमात्र—सत्तामात्र—ब्रह्म ही है। अतएव ब्रह्मके अतिरिक्त भेद प्रतिपादक मैं मनुष्य हूँ इस तरहका मनुष्यता आदिसे युक्त पिंडमें ज्ञाताका स्थान केवल अध्यास (=भ्रम) मात्र है। ज्ञाता उसे कहते हैं जो कि ज्ञानकी क्रिया करता है। क्रिया करनेवाला निर्विकार नहीं रह सकता, फिर ऐसे विकारी जीवका सारे विकारोंके बीच एकरस, साक्षी, चित-मात्र तत्त्वमें कहाँ गुजाइश हो सकती है? फिर ज्ञेय (=बाहरी पदार्थों)के बिना किसीका ज्ञाता नहीं कहे सकते। आगे बतायेंगे कि ज्ञेय दृश्य जगत सिर्फ भ्रममात्र है। मैं जानता हूँ यह अनुभव सब अवस्थामें नहीं होता सुषुप्ति (=गाढ़ निद्रा) और मूर्च्छामें उसका कहीं पता नहीं रहता, किन्तु आत्माका यह रहित अनुभव उस वक्त भी होता है, इसलिए अहंका ख्याल तथा उससे

---

[1] "तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्त केसरी।"
(तब तक ही दूसरे शास्त्र जंगलमें स्यारकी तरह गर्जते हैं, जब तक कि महाबली वेदान्त सिंह नहीं गर्जता।)

जाकर कल्पना करते हैं। रूपणरूपमें मुख या चन्द्रमाका प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है किन्तु सभी जानते हैं कि वहाँ मुख या चन्द्रमा नहीं है, वह भ्रम मात्र है। इसी तरह निर्माण निर्विकार ब्रह्ममें मन या ज्ञाताका दर्शन सिर्फ भ्रम अविद्या है। वस्तुतः ब्रह्ममें ज्ञाता—जीव—ने ज्ञानकी जननी माया अविद्या—ब्रह्मपर पड़ा अविद्याका पर्दा तीसरा उत्पन्न करता है।

सबका ज्ञान सत्य है—यथार्थ अधिष्ठान किसी दूसरे तत्त्वका न स्वीकार करनेवाले वेदान्तियोंके लिए अविद्या यहाँ आ गई। अविद्या अज्ञान-स्वरूप है। ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप होता प्रकाश और अन्धकारकी भाँति एक दूसरेका अत्यन्त विरोधी एवं एक दूसरेके साथ न रह सकनेवाले हैं, फिर ब्रह्मपर अविद्याका पर्दा डालना क्या हुआ, जैसे प्रकाशपर अन्धकारका पर्दा डाला जाय। वस्तुजगत्के सर्वथा अपलापमें इन और एक हजारा पन्नोंका अन्तर अद्वैत सिर्फ यही है कहते हैं, कि सत्य नहीं है, जिसे कि उपनिषद् कहते हैं। इसपर धर्मकीर्तिकी आँखोंसे दो बूँद आँसू आ जाते हैं।

(४) जगत् मिथ्या—प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेपर मालूम होता है कि दृश्य जगत है किन्तु वर्तमानमें ही। उसकी परिवर्तनशीलता बतलाती है कि वह पहिले न था न आगे रहेगा। इस तरह उसका अस्तित्व एक कालमें है, यह तो स्वयं गलत हो जाता है—"आदौ अन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।" वस्तुतः जगत् तीनों कालमें नहीं है। 'जगत्' में जगत्का कल्पना भ्रान्तिमूलक है और 'है' (=सत्)ब्रह्मका अपना स्वरूप है। है (=सत्) न होता, तो जगत्का भान न होता, इसलिए जगत्का भ्रान्तिका अधिष्ठान (=भ्रम स्थान) ब्रह्म है उसी तरह जैसे सर्पकी भ्रान्तिका अधिष्ठान रस्सी, चाँदीकी भ्रान्तिका अधिष्ठान सीप।

(५) माया—'आदि अन्तमें नहीं रहनेवाले वर्तमानमें भी वैसा' के अनुसार, यह जगत् वस्तुतः है ही नहीं। फिर यह प्रतीत (=प्रत्यक्ष अनुमानसे

जात) क्या हो रहा है ?—यही तो माया है। मदारी ठर-के-ठर रुपए बनाता है, किन्तु क्या वह वास्तविक रुपए है, यदि ऐसा होता तो उसे तमाशा दिखलाकर एक एक पैसा माँगनेकी जरूरत न पड़ती। वह रुपए क्या है ?—माया, मायाके अलावा कुछ नहीं। जगत् भी माया है। माँ भी माया, बाप भी माया, पत्नी भी माया पति भी माया उपकार भी माया, अपकार भी माया, गरीबकी कामसे पिसती भूखसे तिलमिलाती अँतड़ियाँ भी माया, निकम्मे अमीरकी फूली तोंद और ऐंठी मूछ भी माया, कोड़ासे लो-लोहान तड़फता दास भी माया और उसपर कोड़े बरसानेवाला जालिम मालिक भी माया, चोर भी माया साहू भी माया गुलाम हिन्दुस्तान भी माया, स्वतन्त्र भारत भी माया हिटलरकी हिंसा भी माया, गांधीकी अहिंसा भी माया, स्वर्ग भी माया नर्क भी माया, धर्म भी माया, अधर्म भी माया बंधन भी माया, मुक्ति भी माया, । जगत जादू है, माया है और कुछ नहीं।

यह है शंकरका मायावाद, जो कि समाजकी हर विषमता हर अत्याचारको अक्षुण्ण, अछूता रखनेके लिए जबर्दस्त हथियार है।

माया ब्रह्ममें कैसे लिपटती है ?—शंकर इस प्रश्नहीको गलत बतलाते हैं। लिपटना वस्तुतः है ही नहीं, कूटस्थ एक रस ब्रह्मपर जब उसका कोई असर हो, तब तो उसे लिपटना कहेंगे। मायामें कोई वास्तविकता नहीं यह तो अविद्याके सिवाय और कुछ नहीं, और जैसे ही सत्य (=अद्वैत ब्रह्म)का साक्षात्कार होता है वैसे ही वह विलीन हो जाती है। माया क्या है ?—इसका उत्तर सिर्फ यह दे सकते हैं कि वह अनिर्वचनीय (=अ-कथ्य) है। वस्तु न होनेसे उसे सत् नहीं कह सकते, जगत् जीव, आदिके भेदकी प्रतीति होती है, इससे उसे बिलकुल असत् भी नहीं कह सकते, इस तरह उसे सत् और असत् दोनोंसे अनिर्वचनीय (=अ-कथनीय) कह सकते हैं।

(६) मुक्ति—परमार्थतः पूछनेपर शंकर बंधन और मुक्तिके अस्तित्वसे इन्कार करते हैं, किन्तु उस बातके तात्पर्यके जबर्दस्त ढंगसे

सदाचारका भाँति वह अपने ज्ञानके स्वयं सिद्धान्तका बहुत सफलतासे समाधान कर सकते थे इसीलिए व्यवहार सत्यके रूपमें उन्हें बंधन और मुक्तिका मानना अस्वीकार नहीं। अविद्या ही बंधन है, जिसके ही कारण जीवको भ्रम होता है, यह पहिले कह आए हैं। निर्विकल्प नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव चिन्मात्र ब्रह्म ही मैं हूँ, जब यह ज्ञान हो जाता है तो अविद्या दूर हो जाती है, और बद्ध होनेका भ्रम हट जाता है, जिसे ही मुक्ति कहते हैं। ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या, जीव ब्रह्म ही है दूसरा नहीं[1]—यह ज्ञान है, जिससे अपनेको बद्ध समझनेवाला जीव मुक्त हो जाता है। आखिर बद्ध समझना एक भ्रमात्मक ज्ञान था, जो कि वास्तविक ज्ञानके होनेपर नहीं रह सकता। मैं ब्रह्म हूँ, उपनिषदका यह महावाक्य ही सबसे महान् सत्य है।

व्यवहारमें जब बंधनको मान लिया तो उससे छूटनेकी इच्छा रखने वाले (=मुमुक्षु)को साधन भी बतलाने पड़ेंगे। शंकरने यहाँ एक मध्य द्वैतवादीके तौरपर बतलाया कि वह साधन चार हैं—(१) नित्य और अनित्य वस्तुओंमें फर्क करना (=नित्यानित्य-वस्तुविवेक) (२) इस लोक परलोकके फल भोगसे विराग (३) मनका शमन, इन्द्रियोंका दमन, त्याग भावना, कष्ट-सहिष्णुता, श्रद्धा, चित्तकी एकाग्रता (शम-दम-उपरति तितिक्षा-श्रद्धा-समाधि), और (४) मुक्ति पानेकी बलवती (=मुमुक्षुत्व)।

(७) "प्रच्छन्न बौद्ध"—शंकरके दर्शनको सरसरी नजरसे देखने पर मालूम होता कि वह ब्रह्मवादको मानते हैं और उपनिषद्के अध्यात्म ज्ञानको सबसे अधिक प्रधानता देते हैं। किन्तु जब उसके भीतर घुसते हैं तो वह नागार्जुनके शून्यवादको मायावादके नामसे नामान्तर मात्र है। यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि उसकी आधार शिला रखनेवाले गौड़पाद साफे तौरसे बुद्ध और नागार्जुनके ज्ञानके अनुयायी थे और शंकरके अनुयायियोंमें सबसे बड़े अनुयायी श्रीहर्षका 'खंडनखंडखाद्य' सिर्फ माना

---

[1] "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

रामने मंगलाचरण तथा दो चार मामूली बातोंके ही कारण शुद्ध माध्यमिक दर्शन (=शून्यवाद)का ग्रंथ कहे जानेसे बचाया जा सकता है। इसी लिए कोई ताज्जुब नहीं यदि पराकुशदास 'व्यास' ने कहा—

'वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृत
प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्।
बोद्धाऽनृतो बुद्धिफलं तथाऽनृते,
यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः॥"

"(शंकरानुयायियो! तुम्हारे लिए) वेद (परमार्थतः) अनृत (=असत्य) है (वैसे ही शून्यवादी बौद्धोंके लिए) बुद्धके लिए उपदेश अनृत है, (तुम्हारे लिए) इस (=वेद)का और (उनके लिए) उस (=बुद्ध आगम) का प्रमाण होना गलत है। (तुम दोनोंके लिए) बोद्धा (=ज्ञाता जीव) अनृत है, (उसी तरह) बुद्धि (=ज्ञान) और (उसका) फल (=मुक्ति) भी अनृत है, इस प्रकार तुम और बौद्ध एक ही भाई बिरादर हो।'

इसीलिए शंकर "प्रच्छन्न बौद्ध" कहे जाते हैं।

परिशिष्ट

१—ग्रंथ-सूची

Dasgupta (S N)	History of Indian Philosophy, 2 Vols
Radhakrishnan (S)	Indian Philosophy, 2 Vols
Vidyabhushana (S C)	History of Indian Logic
Stcherbatsky (T H)	Buddhist Logic 2 Vols
Winternitz	History of Indian Literature, Vol II
Lewis (G E)	History of Philosophy
Lewis (John)	Introduction to Philosophy, 1937
De Boer (T J)	Philosophy in Islam
Thilly	History of Philosophy
Macdougell	Modern Materialism and Emergent Evolutions 1929
Stapledon	Philosophy and Living, 1939
Feuerbach (L)	Atheism
	Essence of Christianity
Engels (F)	Feuerbach (Anti-Duhring)
Marx (Karl)	Capital
	Communist Manifesto
Marx and Engels	Thesis on Feuerbach
	German Ideology

(इस्लामिक दर्शन)

ग़ज़ाली	अह्याउ'ल उलूम
	तोहाफ़तु ल् फ़िलासफ़ा
इब्न राश्द	तोहाफ़तु त्-तोहाफ़तु ल् फ़िलासफ़ा
इब्न-खल्दून	मुक़द्दमये-तवारीख़
मिस्री नेमानी	अत-ग़ज़ानी
	अत् कलाम
मुहम्मद यूनस् अन्सारी	इब्न राश्द

(भारतीय दर्शन)

	ऋग्वेद
	शतपथ-ब्राह्मण
	उपनिषद (ईश केन कठ प्रश्न मुंड, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय छान्दोग्य बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर कौषीतकि मैत्री)
	महाभारत
	भगवद्गीता
	परमसंहिता (पंचरात्र)
गौतम	गौतम धर्मसूत्र
बुद्ध (गौतम)	सुत्त पिटक (दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय अंगुत्तरनिकाय, उदान)
	विनयपिटक (पातिमोक्ख महावग्ग चुल्लवग्ग)
	संयोजनहार-सूत्र
नागसेन	मिलिन्दप्रश्न
नागार्जुन	विग्रह-व्यावर्तनी
	माध्यमिक-कारिका
वसुबंधु	विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि (त्रिंशिका)
दिङ्नाग	प्रमाणसमुच्चय

धर्मकीर्ति	न्यायबिन्दु
	प्रमाणवार्तिक
	वादन्याय
अक्षपाद (गौतम)	न्याय-सूत्र
कणाद	वैशेषिक-सूत्र
पतञ्जलि	योग-सूत्र
बादरायण	ब्रह्म-सूत्र
जैमिनि	मीमांसा-सूत्र
विश्वकृष्ण	सांख्य कारिका
प्रशस्तपाद	वैशेषिक भाष्य
उद्योतकर	न्यायवार्तिक
जयन्त भट्ट	न्यायमञ्जरी
गौडपाद	माण्डूक्य कारिका
शंकर	ब्रह्म भाष्य
रामानुज	
पराशरनन्दन (व्यास)	[illegible] (श्रुतप्रकाशिका)
श्रीहर्ष	खण्डन-खण्ड-खाद्य
	नैषधीयचरित
माधवाचार्य	सर्वदर्शनसंग्रह
बाण	हर्षचरित
भर्तृहरि	वैराग्यशतक
वराहमिहिर	बृहत्संहिता
राहुल सांकृत्यायन	बुद्धचर्या
	विश्वकी रूपरेखा
	मानव-समाज
	वैज्ञानिक भौतिकवाद
	ईरान
	कुरानसार
	पुरातत्त्व निबन्धावली

२—पारिभाषिक-शब्द-सूची

अकल—Nous (विज्ञान)
अखवानुस्सफा—पवित्र-संघ
अज्ञेयवाद—Agnosticism
अतिभौतिकशास्त्र—Metaphysics
अतिमानुष आत्माएं—अजराम गलूइया
अद्वैत—तौहीद
अद्वैतवाद—Monism
अध्यात्मज्ञान—Metaphysics
अनीश्वरवाद—Atheism
अनुभयवाद—Neutrism
अन्तर्व्यापन—Interpenetration
अन्तर्हित शक्ति—इस्तेदाद कूवत
अफलातूनीवाद। नवीन—neo Platonism
अभावप्राप्त—Negated
अरूपवाद—Nominalism
अपचीना—Fregena
अवयवी—Whole
अश्बीलिया—Seville
आकृति—Form (सूरत)
आचारशास्त्र—Ethics
आत्मकण—Monad
आत्मकणवाद—Monadism
आत्मसम्मोहन—Self-hypnotisation
आत्मा—Self soul, spirit, (नफ्स)
आत्मा। नातिक— रूह अक्ली
आत्मानुभूति—Intuition
आत्मिक जीवन—Spiritual life
आधार। कार्य— इन्फआल
आसमानों की दुनिया—आलम अफलाक।
ईश्वरस समाना—हलूल्
ईसाई जहाद—Crusade
उटोपिया—Utopia
उपलब्धि—Perception
एकाकरण—Concentration
कर्तबा—Cardova(in Spain)
कर्त्ता विज्ञान—Creative spirit
कल्पनामय—Abstract
कारण—Cause
कार्य—Effect
कार्यकारणवाद—Causality
कार्यकारण सम्बन्ध—Causality

काव्य रचना—प्रास्त
काव्यशास्त्र—Poetics
किरणप्रसारण—Radiation
क्वांटम सिद्धान्त—Quantum
खगोलीय यंत्रशास्त्र—Celestial mechanics
गरनाता—Gra ada (in Spain)
गुण—Quality
गुणात्मक परिवर्तन—Qualita tive change
घटना—Event
चिन्तन—Contemplation
चेतनावाद—Idealism
जगजावा—नफस-आलम्
जालीनस—Galen
जीव—Soul रूह फलक अक्ल
जीवन—Life
ज्ञाता—मुद्रिक
ज्ञान की प्रामाणिकता—Validity of knowledge
तत्त्व—Element
तर्कशास्त्र—Logic
तलेदता—Tolado (in Spain)
तुफैल । इब्न— Abubacer
तृष्णा—Will
दर्शन—Philosophy
दिव्य नक्षत्रागार—माजरा
दिशा—Space
दैव—अफलाक्
दैवगत्—आलम अफलाक
दैवता—अफलाक आस्मान परिस्ता
दैवलोक—आलम-अफलाक
दैवात्मा—अजराम् अफलाक जरम् अफलाक
देश—Space
द्रव्य—Substance
द्वंद्ववाद—Dialectics
द्वंद्वात्मक भौतिकवाद—Dialectical materialism
द्वंद्वात्मक विकास—Dialectical evolution
द्वंद्वात्मक विचारवाद—Dialectical idealism
द्वैतवाद—Dualism
धर्ममीमांसा—फिक्ह
धातुत्रय—मवालीद-सलासा (= धातु वनस्पति प्राणी)
नफस—nous अकल आत्मा ब्रह्म विज्ञान
नाविक बुद्धि—Nautic nous
नाविक विज्ञान—Nautic nous
नाम—Mind

भोगवाद—Hedonism
भौतिकतत्त्व—Matter (माद्दा)
भौतिक पिंड—जिस्म-सर्द
भौतिकवाद—Materialism
भौतिकवाद । यांत्रिक— Mechanical materialism
भौतिकवाद । वैज्ञानिक— Scientific materialism
भौतिकशास्त्र—Physics
मन—Mind
मनुष्यमात्रवाद—Pragmatism
मनोमय—Rational
मात्रा—Quantity
माद्दा—प्रकृति Hyla, matter
मानवजीव—नफ्स इन्सानी
मानवता—नफ्स आलम
मूलतत्त्व—Element
मूल स्वरूप—Arche type
यथार्थवाद—Realism
योगिप्रत्यक्ष—Intuition
रहस्यवाद—Mysticism
रूप—Matter
रोश्द । इब्न— Averroe
वरुण—Uranus
वस्तु अपने भीतर—Thing in itself
वस्तुवाद—Realism
वस्तुसार—Objective reality, Nomena, thing-in itself
वस्तुसारवाद—Noumenalism
वाद—Theory Thesis, कलाम
वादशास्त्र—इल्म-कलाम
वादशास्त्री—मुतकल्लिमान
विकास—Evolution
विकास । सर्जनात्मक— Creative evolution
विचार—Idea
विच्छिन्न प्रवाह—Discontinuous continuity
विच्छिन्न सन्तति—Discontinuous continuity
विच्छिन्नयुक्त प्रवाह—Discontinuous continuity
विज्ञान—Idea, intelligence mind, nous (नफ्स) science
विज्ञान । अधिकरण— अक्ल इन्फ आल नफ्स इन्फआल
विज्ञान । अभ्यस्त— अक्ल मुस्तफाद
विज्ञान । एक— वहदत अक्ल
विज्ञान । कर्ता— अक्ल फआल

नफस-फआल
विज्ञान । क्रिया—, नफ्से-फअली
विज्ञान । जगदात्मा,—अक्ल-अव्वल्
विज्ञान । ज्ञाता—,अक्ल-मुद्रिक
विज्ञान । देव— अक्ल-सानी
विज्ञान । दवात्मा—,अक्लसानी
विज्ञान । नातिक्—, Nautic nous, नफस-नातिक्
विज्ञान । परम—,अक्ल-मुत्लक
विज्ञान । प्राकृतिक— अक्लमाद्दी अक्ल हयूलानी
विज्ञान । मानव नफ्स इन्सानी
विज्ञानकण—Monad
विज्ञानवाद—Idealism
विज्ञानीय शक्ति—अक्ली कूवत
विभाजन—Differentiation
विरस—Virus
विरोधि सम्पात—Unity of opposites
विषय—Particular
विश्लेषण—Analysis
विश्वात्मा—Logo
वेदना—Sensation
वैज्ञानिक भौतिकवाद—Scientific materialism, Dialectical materialism
व्यक्ति—Particular
शक्ति । अन्तर्हित,—इस्तदाद-कूवत
शारीरक (ब्रह्म)वाद—Organism, pantheism
शिवता—सआदत
शविली—Seville (in Spain)
संक्षेप—तल्खीस
सन्तति—Continuity
सन्तान—Continuity
सन्देहवाद—Scepticism
सम्पूर्ण—Whole, अवयवी
समन्वय—Harmony
सलबीजग—Crusade
संवाद—Synthesis
साइंस—Science
साकार—Objective concrete
सापेक्ष—Relative
सापेक्षतावाद—Relativity
सामर्थ्य—सलाहियत
सामान्य—Universal जाति
सिद्धान्त—Theory
सिद्धि—माअज्जा
सीमातीत—Transcendental
सूरत—आकृति
सोफ़ा—Sophist
सोफ़िज़्म—Sophism

स्कोलास्तिक आचार्य—Scholastic doctor
स्तनधारी—Mammal
स्थिति—Duration
स्मृति—इतिहास विज्ञ
स्मृति। उच्च परिवर्तनी— हिस्ट्री सर्चानी
स्मृति। सामूहिक— हिस्ट्री मन्मुई
स्वतः उत्पन्न—*A priori*
स्वतः सिद्ध—*A priori*
innate
स्वभाव—Character
स्वयंभू—*A priori*, innate
स्वरूप—Character
स्वलक्षण—Character
हकूल—स्वरूप समाना ब्रह्मलय
हेतु—Cause
हेतुता—Causality
हेतुवाद—Causality
हयला—Hyla प्रकृति
हयलानी—प्राकृतिक माद्दा

३—दार्शनिकोंका कालक्रम

पश्चिमी यूनानी—	ई० पू०	ई० पू०	भारतीय
		१०००	वासदेव
		७००	प्रवाहण जैवलि
			उद्दालक आरुणि
		६५०	याज्ञवल्क्य
		६००	चार्वाक
थेलस	६४० ५५०		
अनक्सिमन्दर	६१० ५४५	६००	बुद्ध साकिय
अनक्सिमन	५९० ५२०	५००	वर्धमान महावीर
पिथागोर	५७० ५००		पूर्ण काश्यप

पश्चिमी	ई० पू०	ई० पू०	भारतीय
क्सेनोफन	५७० ४८०	५६२ ४८३	बुद्ध
पारमेनिद	५४० ४८३	५००	अजित[1] कम्बल
			संजय
			गोशाल
अनाक्सिमेनु[1]	५२५ ४५५		
एम्पेदोक्ल	४९० ४३०		
सुकरात	४६९ ३९९	४००	वर्धमान
दमोक्रितु[1]	४६० ३७०		
प्रोतागोरस	४२० ४४०		पाणिनि
दयोजेन	४१० ३२०		
अरस्तू	३८४ ३२२		
(सिकन्दर)	३५६ ३२३	(३२१-२९७	चन्द्रगुप्त मौर्य)
		(२९९	अशोक मौर्य)
पिरो	३६५ २७०		
एपीकुरु[1]	३४१ २७०		
जेनो	३३६ २६६		
थ्योफ्रास्तु	२८७		
नलुस्	१३३	१५०	
		(१५०	गौतम
अन्द्रानिकुस्	८६		न्यायवैशेषिक)

सन् ईस्वी

(नव अफलातूनी दर्शन)—

फिलो यूदिया	२५ ५०		
अन्तियाक	६८	१००	(विज्ञानवाद)

[1] भौतिकवादी।

पश्चिमी	ई	ई	भारतीय
		१००	(अभाषित)
		१५०	नागार्जुन
अगस्तिन्	१६०	१७५	नागार्जुन
त्रानिनु	२०५ ७१	२५०	असंग
	५८	२५	पतञ्जलि (योग)
पाकिरा	२२		
माना (ईरान)	५६५		
		३ ०	वात्स्यायन
			जैमिनि
		"	गौतमीपुत्र
		(३८० ७५	समुद्रगुप्त, राजा)
		(३८० ४१५	चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य)
अगस्तिन सन्त—	२५२ ४३०		
		४००	बौधायन
		४००	उपवर्ष
		४००	वात्स्यायन
		३५	असंग
		४००	वसुबन्धु
		४००	शबर
		४००	प्रशस्तपाद
हिपाशिया (वध)	४१५	४००	कालिदास
		४२५	दिङ्नाग
		(४७६	आर्यभट्ट ज्यौतिषी)
मजदक (ईरान)	४८० ५३१	५००	उद्योतकर
(इसाइयोंद्वारा	५००		
ज्ञान पढ़ना निषिद्ध)	५२९		गौड़पाद
		५५०	कुमारिल

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
दमाशियुस्	५४६	(००	हर्षवर्धन राजा)
इस्लामिक—			
(मुहम्मद पैगम्बर)	५९ ६२२	६००	धर्मकीर्ति
		९००	सिद्धसेन (जैन)
(मुआविया, खलीफा मदीना)	६६१ ८०		
		७०	प्रभाकर-गुप्त
		७२५	धर्मोत्तर
		७२५	शान्तरक्षित
(अब्दुल अब्बास खलीफा, बगदाद)	७४९-५४		
(मंसूर-खलीफा बगदाद)	७५४ ७५		
		७५०	अपलक्ष्य (जैन)
		८००	गोविन्दपाद
मुस्फ्फा	७५४		
(हारून खलीफा बगदाद)	७८६ ८०९	८००	वसुगुप्त (कश्मीर-शैव)
		७४० ८४०	शान्तरक्षित
(मामून खलीफा बगदाद)	८११-३३	७८८ ८२०	शंकराचार्य
अल्ताफ	८३०		
हिम्मी	८३५	८४१	वाचस्पति मिश्र
नज्जाम	८४५		
इब्न-समन	८५०		

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
एरिगेना	८१० ७१		
जर्गीज़	८६९		
अलबानस्मफा	९००		
अल्ग्रेरी	८७३ ९०४		
हिन्ना	८७०		
राज़ा	९२०		
फाराबी	८७० ९५०		
(फिर्दौसी कवि)	८४० १०२०	९८४	उदयनाचार्य
मस्कविया	१०३०	१०००	त्रिलोचन
(अल-बरूनी)	९७३ १०४८	१०००	रत्नकीर्ति
मीना	९८० १०३७	१०००	जयन्त भट्ट
त्रिवाल	१०२१ ७०	१०२५	रत्नाकरशान्ति
गज़ाली	१०५९ १११		
बाजा	११३८		
(तामरन)	११४७		
तुफ्त	११८५	१०८८ ११७२	रामचन्द्र सूरि
रोश्द	११२६ ११९८,	(११९४	जयचन्द राजा)
		११९०	श्रीहर्ष
इब्न मयमून	११२५ १२०८	१२००	गंगा
यूरोपीय दार्शनिक—		११२७ १२२४	शाक्यश्रीभद्र
[मध्यकाल—			
राजर बेकन	१२१४ ९२		
तामस् अक्विना	१२२५ ७४		
(फ्रेडरिक राजा	१२४०)		
रमोन लिली	१२२४ १३१५		
फिलारस	१३०४ ७४		

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
(इब्न-बतूता)	१३३२-१४०६		
(न्यूनार्नो-दे पिन्ची)	१४५२ १५१९		
(बस्तुल्तुनिया तुर्कि हाथम)	१४५३		
आधुनिक काल—			
बेकन	१५६१ १६२६		
हाब्स	१५८८ १६७९		
दे-कार्ते	१५९६ १६५०		
(शम्बल्)	१५९९ १६५८	(१६२७ १६५८	शाहजहाँ)
स्पिनोजा	१६३२ ७७	(१६२७ ८०	शिवाजी)
लाक	१६३२-१७०४	(१६५८ १७०७	औरंगजेब)
लाब्नित्ज	१६४६-१७१६		
(चाम्बका शिरच्छेद)	१६४९		
टाण्ड	१६७०-१७२१		
बर्क्ले	१६८५-१७५३		
वाल्तेर	१६९४ १७७८	(१७५७ ६०	क्लाइव)
हार्टेला	१७०४-५७		
ला मत्रा*	१७०९-५१		
ह्यूम*	१७११-७६		
रूसो	१७१२ ७८		
हेलवेशिया*	१७१५-७१	(१७७२ ८५	वान हेस्टिंग्स)
		(१७८६ ९३	कार्नवालिस्)
(नपोलियन)			
काट	१७२४-१८०४		
(जेनर, चेचक टीका)	१७४९ १८२३		
दा लूगाव*	१७८९		

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
कांटिन*	१७५७ १८०८		
फिक्टे	१७६२ १८१४		
हेगल	१७७० १८३१	(१७७४ १८२९	राममोहन राय)
शेलिंग	१७७५ १८८४		
शोपनहार	१७८८ १८६०		
फायरबाख	१८०४ ७२		
मार्क्स	१८१८ ८३	(१८२४ ८३	स्थानेश्वर)
स्पेन्सर (हर्बर्ट)	१८२० १९०३		
एंगेल्स	१८२१ ९५		
(मैकन)	१८२२ ८४		
(पास्तार)	१८२२ ९७		
बुचनेर*	१८२४ ९९		
माख्	जन्म १८३८		
जेम्स, (विलियम)	१८४२ १९१०		
निटशे	१८४४ १९००		
ब्राडले	जन्म १८४६		
डेवी	जन्म १८५९		
बेर्गसाँ	१८५९ १९४१		
ह्वाइटहेड	जन्म १८६१		
लेनिन*	१८७० १९२४		
रसेल (बर्टरेंड)	जन्म १८७२		

परिशिष्ट

४—नाम-सूची

अक्षपाद—(बुद्धिवादी, न्यायकार) ६१५ ६२१, ६३२
अखवानुस्सफा—देखो पवित्रसघ ९३
अगस्तिन् । सन्त—, ४२
अनक्सागोर ११
अफरीकी । ल्योन्—, २६७
अफ़लातूँ—६१६, (मत) २३४
अफ़लातूनी दर्शन । नवीन—, ३७
अबु-हाशिम बस्री—८४
अब्दुलमामिन—२८४
अमोरी—२७५
अरबी—(अनुवाद) ७३
अरस्तू—२२, ६०, (-समन्वय) ११६, (-मत) २३४
अलेक्जेंडर हेस्—२७६
अल्लाफ़—८२
अश्अरी—(सप्रदाय) ८५
अश्वल—४५७
असग—७०४
अहरन् बिन्—इल्यास्—२६७
अह्याउल-उलूम—२२०
आरुणि—(देखो उद्दालक भी)
आरुणि—(गार्ग्यायणि की शिष्यता में) ४४९ (जवलिककी शिष्यतामें) ४४७ (याज्ञवल्क्यसे सवाद) ४५०, (श्वतकेतुको उपदेश) ४५१
आतभाग—(मृत्युभक्षकपर प्रश्न) ४५७
इब्न-खल्दून्—२५३
इब्न-मैमून—९३, २४९
इब्रानी—(प्रथम अनुवाद-युग) २६४, (द्वितीय अनुवाद-युग) २६५
इस्लाम—४७, (मतभेद) ७५, (दार्शनिक सप्रदाय) ७९, (पूर्वी दर्शन) १०५, (वाद-शास्त्रके प्रवर्तक) ८१
इस्लामिक दर्शन—४७, २७६, २८५, (यूरोपम अन्त) २८८
इस्लामिक पन्थोंका समन्वय—२६७
इस्लामिक विश्वविद्यालय—२८५

इस्लामी सिद्धान्त—५६
ईरानी साधी—६७
ईरानी नास्तिकवाद—६
ईरानी—(भाषा-अनुवाद) ६५
ईश (उपनिषद्)—३९१
ईसाई—(मत) २७६ (सामीनी) २६८
उद्दालक—४४५
उपनिषद्—३८९, ६६९ (चतुर्थ काल) ४३१-४४० (तृतीय काल) ४१५ ४२९ (द्वितीय काल) ४१० ४१४ (प्रधानता मूलकारण वाद मानती) ६६६ (प्रमुख दार्शनिक) ४४०-४७८ (प्रश्न) ४१५, (प्राचीनतम) ३९१ ४०८, (लक्षण) ३९०
उपमान—(प्रमाण) ६२६
उमय्या—(शासक) २७३
एपीकुर—३१
एम्पदोक्ल—११
एरिगेना—२७४
ऐतरेय—४१०
कठ—४१८
कणाद—५७९ (परमाणुवादी) ५७९
कपिल—५४०
करामी—(सम्प्रदाय) ८५
कात्यायन । प्रकुध—(नित्यपदार्थ वादी) ४९०
काल मार्क्स—३५०
काश्यप । पूरण—(अक्रियावादी) ४८९
किन्दी । अबू-याकूब, १०६-११२
कुरान—(अनादि नहीं सादि) ८१ (एकमात्र प्रमाण) ८७, (का स्थान) ९८ (की लाक्षणिक व्याख्या) २५५
केन उपनिषद्—४१७
केशकम्बल । अजित— (भौतिकवादी) ४८५
कौषीतकि—४३१
कौषीतकेय । कहोल—, (सर्वात्मा) ४६०
क्रियानी—२८७
क्लेनोफोन—७
गशाली—२०२-२७१, २२४, (उत्तराधिकारी) २७१
गार्गी—(ब्रह्मलोक और अक्षर) ४६१
गोसाल । मक्खली—,(अकर्मण्यतावादी) ४८७
गौडपाद—८०५ ८०९
गौतम—(दर्शन उद्दालक)

गौतमबुद्ध—(क्षणिक अनात्मवादी) ४९८, देखो बुद्ध भी।
चाक्रायण । उषस्ति— (सर्वातरात्मापर प्रश्न) ४५९
चार्वाक—४८३, ५६२
छान्दोग्य (सक्षेप)—३९३
जनक—(की सभा) ४५६
जनक(को उपदेश) ४६६
जहीज़—८४
जाबाल । सत्यकाम—, ४७४
जिब्राल । ख़ल —२७९
जनो—(सन्देहवादी) ३२, (एलियातिक) ८
जेम्स । विलियम— ३७०
जन-दान—५९३, ६९६
जमिनि—(शब्दवादी) ६०३
जवलि । प्रवाहण— ४४२
टोलड—२९८
तामस अक्विना—२८०
तिब्बती—(-अनुवाद) ७२
तुफल । इब्न—, २०२ २०६
तैत्तरीय—४१२
तोहाफतुल फिलासफा—(दर्शन विध्वसन) २३१
द-ग्रा—३०२
दन् स्कातस्—२७८
दाविद्—२७५
दा विन्चि । ल्योनार्दो—, २९५
दिग्नाग—७३८
देमोक्रितु—११
दोमिनकन—(-सम्प्रदाय) २७९
धर्मकीर्ति—७४० ८०४
नचिकेता—(यमसमागम) ४१८
नज़्ज़ाम्—८३
नागसेन—५४३, ५४६
नागार्जुन—(शून्यवादी) ५६८
न्याय—(सूत्रसक्षप) ६१७
निटज्ञ—३४०
निसिबी—(सिरिया) ६६
पतजलि—(योगवादी) ६४५
परमेनिद—७
पवित्र-सघ—९४, (अखवानुस्सफा) ९३, (धर्मचर्या) ९९ (स्थापना) ९४, (सिद्धान्त) ९६
पह्लवी (भाषा अनुवाद)—६५
पाचरात्र—६९२
पाशुपत—६९१
पिथागोर—५
पिलारव—२९०
पिर्हो—३४
पेदुआ—(विश्वविद्यालय) २८६
पेरिस—२८४
पैग़म्बर—(इस्ला-) ८९
फ़ाराबी—(प- अमरापिकारा)

१२३ ११२ १२३ (कुनियाँ)
११४
फ़िक्ट—३२८
फ़ासिस्टन—(सम्प्रदाय) २७६
फ़ुरुक्कि—(द्वितीय) २६८
फ़्लरवास । लुडविग्— ३८४
बटरड रसल—३६८
बाजा । इब्न— २८६ २०२
बुतार—३४४
बुद्ध (गौतम)—४६८ ५४६
बुद्धन (पहिलव दार्शनिक)—४८३
बृहदारण्यक (-संक्षेप)—४०५
बेरूनी । अल— २०१
बेर्गसाँ—३६६
बर्कन । राजर—, २७७
बौद्ध (-सदन)—६४१
बौद्ध-(दर्शन)—४६८ ५४०-६६७,
५६३ ७६ ७०२ ८०४
बौद्ध (सम्प्रदाय)—५६५
ब्राह्मण-दर्शन (प्राचीन)—३७७
मन्नस । अल्लनम— २७६
मस्तक—६३
मर्कविया । दू-अली—, १२४
१२६
महावीर (वर्धमान सर्वज्ञतावादी)
—४६२
माडक्य—४२६
माध्यमिक—७०१
मानिनी । रेमार—, २८३
मीमांसा—७६५
मीमांसादर्शन—६०२
मीमांसा—(सूत्रसंक्षेप) ६०५
मुडक—४२३
मुहम्मद (पैगम्बर)—४८
मुहम्मद बिन्-तोमरत्—२८१
मुअम्मर—८४
मैत्री—४३३
मनयी (के उपदेश)—४७१
मोतजला—(सम्प्रदाय) ७६
मोतजली—(आचार्य) ८२
मोहिद्दीन—(शासक) २८०
यम—(नचिकेतसे समागम) ४१८
यहूदी—(इब्रानी) २६३, (दार्शनिक)
२४६, (दूसरे दार्शनिक) २८०
याज्ञवल्क्य—४१५
युक्लिड्—३६५
यूनिक—(तत्त्व जिज्ञासु) ४
युसुफ इब्न-यह्या—२५१
यूनानी दर्शन—३-४६, ५७६ ६३५,
(अन्त) २८, (अरबी अनुवाद)
६८ ७३, (ईरानी अनुवाद)
६५, (सुरियानी अनुवाद) ६५,
(प्रवास) ६२, (मध्याह्न)
१४, (अनुवाद) ६३

यूनानी भारतीय दर्शन (समागम) —५४४
योग—६९०, (-सूत्रसंक्षेप) ६४७
योगाचार—७००, (बौद्ध-दर्शन) ५७७, (भूमि) ७०५ ७१४
राजी । अज़ीज़ुद्दीन—, ९०
राधाकृष्णन्—५२८
रैवव । सयुग्वा—, ४७८
रोश्द । इब्न—, २०७-२४७
रोसेलिन्—२७५
लाइप्निटज—३०४
लॉक—३०१
लाह्यायनि—(अश्वमेधपर प्रश्न), ४५८
लिलि । रेमोद—२८४
वादरायण—६५९ ६७१, (की दुनिया) ६८४,(ब्रह्मवादी शब्द प्रमाणक) ६५९, (मत) ६८७
वेद—३७८ (नित्य ह) ६८३
वेदान्त—(प्रयोजन) ६६३, (साहित्य) ६६० (-सूत्र) ६६२
वेलट्ठिपुत्त । संजय—(अनेकान्तवादी) ४९१
वैभाषिक-दर्शन—६९७
वैशेषिक—६९४ (-सूत्र संक्षेप) ५८१, ७८३
शंकराचार्य—८०५, ८१२
शाकल्य—(देवोंकी प्रतिष्ठापर प्रश्न) ४६३
शोपनहार—३३७
श्वेताश्वतर—४३४
सांख्य—६८९ (दर्शन) ७९२
सीना । बू-अली—,१२९-२०१
सुक्रात—१४
सुरियानी (-अनुवाद)—६४
सूफीपथ—(नेता) १०१
सूफी—(सम्प्रदाय) १०० (सिद्धांत) १०२
सोफीवाद—१३
सोरबोन—२८५
सौत्रान्तिक—दर्शन—७००
स्कोलास्तिक—२७२
स्तोइक—३१
स्पिनोज़ा—२९९
स्पेन—(धार्मिक अवस्था) २७३, (सामाजिक अवस्था) २७३, (दार्शनिक) २८६
स्पेनिश् दर्शन—२७९, (यहूदी) २७९
स्पेन्सर—३४२
हूईकी कथा—१९९, २०४
हॉब्स—२९७
हेगेल—३३१
हेराक्लितु—८
ह्वाइटहेड—३६३

परिशिष्ट

५—शब्द-सूची

अवयवी—(बहुत अवयवों) ५२७
अवयव—७ ५
अवीय—[illegible]
अवयावयव—[illegible]
अर्हत्—४०४
[illegible]—६
अवयव—४६७
अधिकारी भेद—(उपपत्ति) [illegible]
अनात्म अनीश्वरवादी (बौद्ध)—५६३
अनात्मवाद—५१६
अनिश्चयवाद—७[illegible]३
अनीश्वरवाद—५२० ५६२ ६०१
अनुमान (प्रमाण)—७२८, (की आवश्यकता) ७३१, (के भेद) ७७२ (प्रमाण) ६[illegible]४ ७७० (लक्षण) ७३१
अनेकान्तवाद (जैन)—५६३ ८०३
अन्य-आत्मवाद—५४८ (देखो अनात्मवाद भी)।
अन्य-विरोधवाद—(देखो अनीश्वरवाद)।
अन्य उपपत्तिवाद—३६६
अन्यथाख्याति—७ २
अन्यापोह—४०४
अन्यापोही (बौद्धों)—७८
अन्यान्यभावाद (बौद्धों)—७३४
अपरिणामवाद—७३६
अपरोक्ष (मुक्ति)—६३३
अपोहवाद—७८६
अपरापर (नामवाद)—११६
अभाव—४६०, ६४३
अभिव्यक्तिवाद—७२०
अभोक्तृत्ववाद—५१८
अमरविशेषवाद—७३४
अयवाद—६१०
अयवयवी—६३७ ७६०
अविद्या—८१
असत्—७१६
अस्तिकाय (पाँच)—५६५
अस्तित्व—७१७
अहेतुवाद—८०२

आकाश—५९८
आचार—२२८
आचार—(व्याख्या) २२८, (शास्त्र) १२१, (शास्त्र) १२७
आचार्य—४०१
आचार्य-उपदेश—(उपनिषद) ४१४
आचार (टीका)—५०५
आप्तवाद—५७९, ७७८
आत्मा—३३०, ३३६ ३८६ ४३४ ४६८, ५८९, ६३० (अणु) ६७५ (जीव) ४२१ (नहीं) ३७२
आप्तागम—७२९
आर्यसत्य—(चार) ५०२
आलय विज्ञान—७१८
आश्रित—(एक दूसरपर) ७७३
आसन—६५८
आस्रव—५९८
इतिहास (-साइन्स)—२५८
इन्द्रिय—११० (प्रत्यक्ष) ७६५, (विज्ञान-पांच) ७१८
इस्लाम—(पूर्वी दार्शनिक) १०५
इस्लामी दार्शनिक (यूरोपमें)—२८८
ईश्वर—१०८, ११०, १३४, २३८ ३२३ ३३० ३३५, ३६४, ३६८ ३७२, ३८४, ४३५ ५९२ ६३१, ६५१ ७८१, (अद्वैत तत्त्व) ११७, (कार्य-कारणवाद) २३६, (तन्मयता) १०२ (निर्गुण) ७८ ८०, (ब्रह्म) ९८, (भलाईका स्रोत) ७९, (सर्वनियममुक्त) ८७ (की सीमित सर्वशक्तिमत्ता) ८० (-खंडन) ३५ (चमत्कार) (-वाद) २४२, (-वाद) ३६३
उच्छेदवाद—७२८
उत्पत्ति—७२२
उदाहरण—७२६
उपनिषद्—(काल) ३८९, (समन्वय) ६६३
उपादान-स्कंध—(पांच) ५०२
उपासना—६८१
एकान्त चिन्तन—१०३
एकान्तता-उपाय—२०२ (ग्रंथ)
ओम—४२९
कबीलागाही आदर्श—२६३
क्रमागत (पुनरुज्जीवन)—२४७
कर्म—५८३ ६७८, ६८० (टीका-) ५०५ (पुनर्जन्म) ५५१
कर्मकाण्ड (विरोध)—८२३
कर्मवाद—२४३ ६३३

कर्त्ता—६७६
कर्तृवाद—७३३ (देखो ईश्वर भी)।
कारणसमवायवाद—(बौद्ध) ७६२
कार्यकारण नियम अटल—२२७
कार्यकारण नियमसे इन्कार—८६
काल—५८८ ६३९
कीमिया—(-अविश्वास) १२०
कौतुकमंगलवाद—७३६
क्षणिकवाद—५१०, ६४२ ७५७
गति—(सब कुछ) २३२
गुण—५८० ५८५ ७८४
गुप्ति—५९९
गुरु—४२५
गुरुवाद—८४०
चक्षु विज्ञान—७१९
चमत्कार। दिव्य— ८९
चारित्र—६००
चित्त (=मन)—६४९
चित्त—(वृत्तियाँ) ६४९
चेतना—३६७, ५६२ ६७५, ७५५
च्युति—(मृत्यु) ७२१
जगत—१०८ ६७४, ८१६ (अनादि नहीं) २३६ (अनादि नहीं सादि) ८० (आदि अन्तरहित) २२९ (उत्पत्ति) ९६, (जीवन) १०८, (नित्यता-उत्पत्ति गलत प्रश्न) ९६ (ब्रह्मका शरीर) ६६८
जनतंत्रवाद—५०७
जप—१०३
जाति—(सामान्य) ११६
जीव—९१,९८ १३४,२३२,२४६ ३०० ४३५ ४३८, ५९५, ५९८, ६४८ ६७५ ८१५, (-अन्तर्हित क्षमता) १०९, (ईश्वर प्रकृतिवाद) १३३, ४३५ (कर्ममें स्वतंत्र) ७९, (वाय-क्षमता) १०९ (क्रिया) ११० (का ईश्वरसे समागम) ११९ (की अवस्थाएं) ६६७ (के पास ब्रह्म का शरीर) ६६८, (मानव) ९८
जीविका (ठीक)—५०५
ज्ञान—३७१, ५९२ ३९४ ३०८, ४२६, ६००, (-उद्गम) ११०, ११९, (=बुद्धिगम्य) २००, (ठीक) ५०४
ज्ञेय विषय—७१६
ज्योतिष। फलित—, (में अविश्वास) १२०
ज्वालावाद—६५
तत्त्व—३०१ ३६६ ५९५ ६१२,

(नौ) ६००, (सात) ५९८
तत्त्वज्ञान—६३४
तत्त्व विचार—१०८
तर्क—११६, (ज्ञानप्राप्तिका उपाय नही) २५८
तीर्थंकर सर्वज्ञ—४९३
तृष्णावाद—(शोपनहार) ३३८
तैतवाद—४२६
दर्शन—(अन् ऋषिप्रोक्त) ६९१ (ईश्वरवादी) ६९१ (ऋषि प्रोक्त-) ६८९,(का प्रयोजन) ३३२, (चरम विकास, भारतीय) ७०२ (तत्त्व सभी त्याज्य नही) २३३ (प्रधान) ९६, (बीस सिद्धान्त) २३५ (मध्यमार्गी), (विचार) ५१०,(-सघर्ष,यूरोपम) २७२, (स्पेनका इस्लामी) २७३
दहर—३९६
दान-पुण्य—(प्रसिद्धिके लिए) २३१
दार्शनिक—(बुद्धके बादके) ५४०
दिशा—५८९
दुःख विनाश—५०३ (-मार्ग) ५०४ (-मार्गकी त्रुटियाँ) ५०९
दुःख-सत्य—५०२
दृष्टि—(ठीक) ५०४
देवयान—४०३
द्रव्य—५८०, ५८५, ५८८, ७३६, ७८४
द्वन्द्ववाद—३३५, ३५५
द्वैतवाद—८, २८२, ३०१, ३७०, ३७२
धर्म—३२४, ५८३, ५९४, (मजहब) १२९, (अधिकारभेद, २५६ (-दर्शन-समन्वय) २२८
धर्मवाद (दार्शनिक)—२०२
धर्माचार—३९५
धारणा—६५९
ध्यान—४२३ ४२५, ६५९
नफ्स(=विज्ञान=बुद्धि) १०९
नाम—(=विज्ञान) ५५५
नाग—७५९
नास्तिकवाद—७३५
नास्तित्व—७१७
नित्य—६७५, (आत्मा नही) ७७९ (-आत्मा बुराइयोंकी जड) ७८० (तत्त्व, पाँच) ९१
नित्यता—५९१
नित्यवाद—७७७, (देखो शाश्वतवाद भी) ।
नित्यवाणी—(सामान्यरूप) ७७७
निद्रा—६५०
नियम—६५८

निर्वाण—५३२ ५५५
नरास्य-वैराग्य—५६३
पर्याय—५८४ (जैन आठ नौ) ६७
परमतत्त्व—(द्वैताद्वैतात्मक) ३३२
परम विज्ञान (=ब्रह्म प्राप्ति का उपाय) २४३
परमाणु—७०७
परमाणुवाद—५८० ६३६
परमार्थसत्—७५८
परलोक—६३२
परिवर्तन—६५३
परिस्थिति—(और मनुष्य) २४४
पवित्रमघ—६३ ९६ (ग्रन्थावली) ६४
प्रकृति—२३१ ४३५ (प्रकृति जीव ईश्वर) १९८
प्रच्छन्न-बौद्ध'—(शंकर) ८१८
प्रज्ञान—(ब्रह्म) ४१२
प्रतिज्ञा—७२६
प्रतीत्यसमुत्पाद—५१२ ७२३
प्रत्यक्ष—(-प्रमाण) ६२४, ७२७ (आभास) ७६९
प्रत्यभिज्ञा—७९६
प्रत्याहार—६५८
प्रयान—६५२
प्रभाववाद—३७१
प्रमाण—५९२ ६२२ ६५०, (अन्य-) ६१२, (दो) ७७१, (पर विचार) ७६३ (प्रत्यक्ष) ७६५ (-संख्या) ६२६, ७६४
प्रमेय—६२९
प्रयत्न—(ठीक) ५ ५
प्रयोगवाद—२५७
पाप—६००
पाप-पुण्य—१२७
प्राणायाम—६५८
पितृयान—४०३
पुण्य—६००
पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)—५९८
पुनर्जन्म—४०१ ६३२, ६७८
परम्परा-वाद—२५३
पिका (=धर्ममीमांसक)—७५
बन्धाका निर्माण—२२९
बन्ध—५९८
बुद्धकालीन दर्शन—४८३
बुद्ध-दर्शन—(तत्कालीन समाज व्यवस्था) ५३३
बुद्धि—(आत्मानुभूति) २०४, (दर्शन) २५८
बुद्धिवाद—५ १०८, ३३०, (द्वैत वाद) ३०२
ब्रह्म—३९६ ४०७, ४१२ ४२०,

४२४, ४२९, ४३१, ४३७, ४६८, (सृष्टिकर्ता) ४१४, ६७१, ६७३, ८१४, (-अंश) ६७६
ब्रह्मलोक आनन्द—४७०
ब्रह्मवाद—(शारीरिक) ९०, (स्तोइकोंका) ३१
ब्रह्मविद्या—६७९
भक्ति—४२५
भावना—६०१
भूमा—३९६
भौतिक—३९८, (जगत) ६५२, (तत्त्व) ३६८ (तत्त्व) ७५५, (वाद) ३६९, वाद (अनात्म-) ५६२
भौतिकवाद—(एपीक्युरीय) ३०, (मन) ३५९
मन—११०, ३०१ ३५९, ३९८ ५८१ ५८९ ६२९, ७७३, (उत्पत्ति) ७२१ (का स्वरूप) ७७६, (च्युति) ७२१, (=विज्ञान) ७२०, (शरीर नहीं) ७७४
मनोजप—१०३ (उपांशुजप)
महान् पुरुषोंकी जाति—३४१
मार्क्सका दर्शन विकास—३५१
मानव—(आत्मिक-विकास) १९९ (-जीव, उसका ध्येय) २०९
मानस (-प्रत्यक्ष)—७६६
माया—८१६
मिथुनवाद—(=जोड़ा-वाद) ४१५
मिथ्या ज्ञान—५९२
मिथ्याविश्वास—५६३
मुकाशफा—(योगिप्रत्यक्ष) १०३
मुक्त—५९७, (का वैभव) ६८२
मुक्तावस्था—४१७
मुक्ति—२०१ ४२७, ४३८, ६००, ६३३ (-साधन) ४२२ ४२४, ६२५ ६३४ ६७९, ८१७, (अन्तिम यात्रा) ६८१ (परलोक) ३९९
माप—६००
यम—६५८
योग—४३९ ६५६, (-तत्त्व) ६५२, (-साधन) ६५८
योगि प्रत्यक्ष—७६८, (मुकाशफा) १०३
रहस्यवाद-वस्तुवाद—१०५
राजतंत्र—२६१
रूप—५०२ ५५५ ७३६
रोशनी विज्ञान—(नफसवाद) २३८
वर्गसमर्थन—(प्रतिक्रियावाद) ६८५
वचन—(ठीक) ५०५

वस्तुवाद रहस्यवाद—१०५
वाद—(-अधिकरण) ७२५, (-अधिष्ठान) ७२६ (-अलंकार) ७२६ (-निग्रह) ७२६ (-निर्णय) ७२६
विकल्प—५५०
विचारक (स्वतन्त्र)—४८१
विचारस्वातन्त्र्य—५३१
विज्ञान—५०३ ७३७ (इन्द्रिय) २३६, (एकमात्र तत्त्व) ७५५ (कर्ता परम) २४१ (=नास्तिक) २३६, (परम विज्ञानमें समागम) २४० (प्रथम) १०६
विज्ञानवाद—१११ ३२८ ६४५ ६५४ ७१८ ७५४, (अद्वैत) २९९, (-आलोचना) ३५७
विधि—६१०
विन्दुवाद—(दश काल और गतिमें विच्छिन्न) ८८
विपर्यय—६५०
विराट—१०३
विशेष—५८० ५८८
विश्वका विकास—९२, (अद्वैत तत्त्व) ११८
विश्वास, मिथ्या—, (विरोध)—१३३
वेद—६०८
वेदना—५०३, ७३७
वैराग्य—४३३
वैशेष्य—७२७
शब्द प्रमाण—६२७ ७९६ ८१४, (नहीं) ८०१
शरीर—९१, १३४, २८२ ७७३
शारीरिक कर्म—(प्रधानता) ४९३
शारीरिक तपस्या—४९४
शाश्वतवाद—(नित्यवाद) ४९०, ७३२, ७७७
शुद्धिवाद—७३५
शून्यपर अन्यायार—६८३
शून्यता—५६९
शून्यवाद—६४४ (नागार्जुनका) ५६८
शब्दवाद—४२७
श्रद्धा—६००
श्रद्धातत्त्व—३२९
श्रोत्र—७१९
सत्—७१६
सत्ता—११७
सत्य और भ्रम—३३६
सदाचार—(साधारण) २२४, ४२२ ५८३
सद्वाद—(भूतभविष्य) ७३१, (हेतुफल) ७३०

सन्देहवाद—३४
समवाय—५८८
समाज—(परिस्थिति) ७५१
(महत्त्व) १२८
समाधि—६५९, (ठीक) ५०५
५०६
समिति—५९९
सर्वज्ञता—५३२
साधन—(आठ) ७२६
साधनवाक्य—(पाँच अवयव) ६४०
सामान्य—५८०, ५८७ ७८६
(=जाति) ११६
सारूप्य—७२६
सुप्तावस्था—३९८
सुषुप्ति—४६८
सूफी—(योग) १०२ (शब्द) १००
सूफीवाद—२५१
सृष्टि—३९७, ४०८, ४१० ४१६,
४२७ ४३८
सकल्प—२४४, (ठीक-) ५०४
सकल्पोत्पादक—(बाहरी कारण)
२४५
"हलल"वादी—(पुरान शिआ) ७७
हान—(=दुःख) ६५७, (से
छूटना) ६५७, (से छूटनेका
उपाय) ६५७
हिंसा (धर्मवाद)—७३४
हेगल-दर्शन—३३१ (की कमजो
रियाँ) ३३७
हेतु—७२६
हेतु धर्म—७७२
हेतुवाद—(पूर्ववृत्त-) ७३३
हेतुविद्या—७२४
हेय—६५७
सज्ञा—५०३
सवर—५९९, (चातुर्याम) ४९३
ससारी—५९७
सस्कार—५०३ ७३७
स्कध—७३६, (उपादान) ५०२
स्त्रीस्वतत्रता—२४७
स्थिति—३६६
स्मृति—६५०, (ठीक) ५०६
स्वप्न—४१६
स्वसवेदन—(प्रत्यक्ष) ७६७

—